भागवत

एकमात्र पारमार्थिक पाक्षिक पत्र

6 and 20 December
केशव कृष्णपक्ष व गौरपक्ष
गौराब्द ४४८

1934
मार्गशीर्ष अमावास्या व पूर्णिमा
संवत् १९९१

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति॥



क्लेशघ्नी शुभदा मोक्षलघुताकृत् सुदुर्लभा।
सान्द्रानन्दविशेषात्मा श्रीकृष्णाकर्षिणी च सा॥

ॐ विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती
गोस्वामी महाराज

प्रति संख्या -)　} सम्पादक—त्रिदण्डि-स्वामी भक्तिहृदय वन {　वार्षिक सडाक १॥)

Editor:—Tridandiswami Bhakti Hriday Bon.

विषय-सूची

"भागवत" के नियम

उद्देश्य

शुद्ध भगवद्भक्ति का प्रचार करना

प्रबंध-सम्बंधी

(१) यह पत्र प्रति अमावास्या और पूर्णिमा को प्रकाशित होता है ।

(२) इस पत्र की डाकव्यय सहित वार्षिक भिक्षा १॥) है ।

(३) इस पत्र की प्रति संख्या की भिक्षा -) है

लेख-सम्बंधी

लेखकों को केवल भागवत धर्म सम्बंधी लेख ही भागवत पत्र में छपने के लिये सम्पादक "भागवत" के नाम भेजने चाहिये । जो लेख सम्पादक को पसन्द न होंगे वे नहीं छापे जावेंगे और लेख भी वापस न किये जावेंगे ।

विज्ञापन-सम्बंधी

"भागवत" में विज्ञापन छपाई की दर नीचे लिखी है:—

साधारण पृष्ठ

प्रति संख्या

पूरा पृष्ठ या दो कालम	
आधा ,, १ ,,	
चौथाई ,, ३ ,,	
२ इंच ,, ४ ,,	१॥)
१ ,, ,, ८ ,,	१)

स्थायी विज्ञापन और कवर पर विज्ञापन छपाने का रेट नीचे लिखे पते पर पत्र-व्यवहार द्वारा तय करना चाहिये—

पत्र-व्यवहार का पता—

मैनेजर—"भागवत"

सेठ रामयश रोड, नरही, लखनऊ.

All communications are to be addressed to—

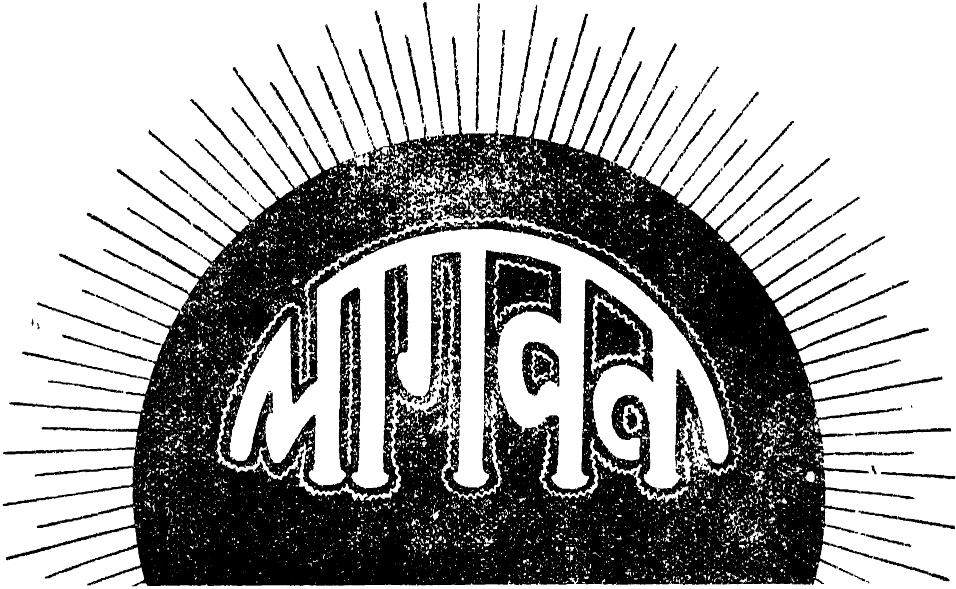
The Manager 'Bhagwat'

Seth Ramjas Road,

Narhe,

LUCKNOW.

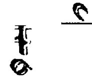
प्रकाशक—त्रिदण्डि-स्वामी भक्तिहृदय वन



कृष्णे स्वधामोपगते धर्म्मज्ञानादिभिः सह । कलौ नष्टदृशामेष समाचारोऽधुनोदितः ।

श्रीपरमहंस मठ, नैमिषारण्य

वर्ष ४ | मार्गशीर्ष-पूर्णिमा गौराब्द ४४८, सं० १९९१ वि०, २० दिसम्बर सन १९३४ ई० | संख्या १-२



कृष्णे स्वधामोपगते धर्म्मज्ञानादिभिः सह ।
कलौ नष्टदृशामेष पुराणार्कोऽधुनोदितः ॥

(श्रीमद्भागवत, १-३-४५)



महाभारत का महायुद्ध समाप्त होते ही श्रीकृष्ण भगवान धर्म्म ज्ञानादि को साथ लेकर अपने चिन्मय धाम को चले गये। कलियुग ने पृथ्वी पर पैर रक्खा, आकाश में मोह और अज्ञानरूपी काले बादल मँडराने लगे। अधर्म, अत्याचार और पाप कर्म्मों की घोर वर्षा होने लगी। जीवों के बुद्धिरूपी चन्द्रमा पर ग्रहण लग गया। चारों ओर महा अन्धकार छा गया। जीव भोग के नाना प्रकार के साधनों में लिप्त होकर निज धर्म्म और भगवान को भूल बैठे। का तिरस्कार और शास्त्रों में अविश्वास तथा उनके वाक्यों को तोड़ मरोड़कर उनपर व्यर्थ तर्क करने लगे। भोग में सहायता पहुँचानेवाले नाना प्रकार के मन-गठित धर्म्मों की रचना की जाने लगी। पाप कर्म्मों के कारण मनुष्यों की आयु क्षीण होने लगी और अध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक सभी प्रकार के दुःख अनेकों रूप से उन्हें पीड़ित करने लगे। जीवों की यह दुर्दशा देख करुणामय भगवान से न रहा गया। उनकी प्रेरणा से जीवों का अन्धकार दूर करके उन्हें भगवद्भक्ति के सच्चे मार्ग पर

नियंत्रण करने के हेतु "भागवत" रूपी सूर्य्य का उदय हुआ।

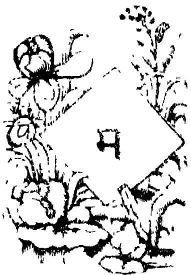
भागवत-सूर्य्य के उदय होते ही मृत्युलोक में एक दिव्य प्रकाश छा गया, मोह और अज्ञान के बादल फट गये, कल्याणानुसन्धान करनेवाले धार्मिक जीवों के लिये मानों कल्याण का मार्ग खुल गया। भगवान व्यासदेव ने सारे वेद और पुराणों का जो संग्रह करने से होने के कारण कलियुग के लोगों की बुद्धि में न आते और परस्पर विरोधी प्रतीत होते थे, उनके मूल तत्व निकालकर सर्वशास्त्रशिरोमणि श्रीमद्भागवत में इस प्रकार रख दिया कि वह सरलता से साधारण मनुष्यों की बुद्धि में आ सके। यह कथा प्रसिद्ध है कि सूत्र पुराण और वेदान्तसूत्र आदि की रचना करने के बाद भी श्रीव्यासदेव को शान्ति न मिली। तब उन्होंने ध्यान करके समाधिस्थ अवस्था में सर्वगुणसम्पन्न पूर्णरूप पुरुषोत्तम भगवान के दर्शन किया। और जीवों के प्रकृत कल्याण के लिये श्रीमद्भागवत की सरल भाषा में रचना की। इसी कारण कि श्रीमद्भागवत की रचना श्रीव्यासदेव ने और समस्त वेद और पुराणों की रचना करके समाधि द्वारा पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के अनन्तर की, श्रीमद्भागवत सब शास्त्रों से श्रेष्ठ और समस्त वेदान्त का तिलक स्वरूप माना जाता है। वास्तव में श्रीमद्भागवत, वेद और पुराणादि का अध्ययन करने से बहुत से जीवों के हृदय में जो अशांति और विस्मयरूपी अन्धकार फैल जाता है उसका नाश करके शुद्ध ज्ञान का प्रकाश डालने के लिये सूर्य्य के ही समान है। महाराज परीक्षित को ब्रह्मशाप के कारण जब यह ज्ञात हो गया कि मेरे जीवन में कुल सात दिन की अवधि बाकी है। उन्होंने अनेक ऋषि और मुनियों को बुला कर पूछा कि मुझे कौन सा कार्य्य करना चाहिये जिससे सात दिन के ही अल्प समय में भवबन्धन से छुटकारा पाकर मुझे परम शांति और उत्तम गति प्राप्त हो। ऋषियों में से किसी ने राजा को तप, किसी ने व्रत, किसी ने यज्ञादि करने का उपदेश किया, राजा यह विस्मय में पड़ गया, अन्त समय इस असमंजस को प्राप्त होकर उसे बहुत दुःख हुआ, अकस्मात श्रीशुकदेवजी उधर आ निकले। उन्होंने श्रीमद्भागवत पुराण आदि से अन्त तक सुनने का उन्हें उपदेश किया और कहा कि इससे निश्चय उसके अनर्थ की निवृत्ति होकर शुद्ध ज्ञान तथा परमशांति लाभ करेगा। श्रीशुकदेवजी के मुखारविन्द से स्थिरचित्त होकर श्रद्धापूर्ण मन से महाराज परीक्षित श्रीमद्भागवत पुराण का श्रवण करके उत्तम गति को प्राप्त हुए। श्रीशुकदेवजी ने परीक्षित को अन्य किसी वेद अथवा पुराण के सुनने या कोई कर्म्मानुष्ठान करने का उपदेश नहीं किया: इससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि श्रीशुकदेवजी ने भी केवल श्रीमद्भागवत को ही कलियुग के जीवों का मोह तथा अज्ञान अन्धकार दूर करने का मूल साधन माना है। रोगी जब मृत्यु के निकट होता है और सब प्रकार की औषधियां असफल सिद्ध हो जाती है, उस समय वैद्य अमूल्य से भी अमूल्य और शीघ्र असर करने वाले रस भस्मादि रोगी को देता है। राजा परीक्षित की मृत्यु के जब कुल सात ही दिन बाकी रह गये थे उस समय श्रीशुकदेवजी ने और कोई साधन उचित न समझ कर उन्हें श्रीव्यासदेव द्वारा समस्त शास्त्रों से खींचे हुए श्रीमद्भागवत रूपी रस का ही पान कराया।

यदि विचार कर देखा जाय तो हमारी सब की भी राजा परीक्षित की सी दशा है। काल रूपी तक्षक सदा हमारे पीछे लगा है। न जाने किस समय हम उसके मुँह का ग्रास बन जायें, राजा परीक्षित को सात दिन की अवधि थी, पर हमें तो सात पल का भी अवकाश नहीं, हमें काल अपने आने से पहिले एक पल की भी सूचना नहीं देता, ऐसी अवस्था में हमारे लिये भी श्रीमद्भागवत ही एकमात्र साधन है, भगवान के शुद्ध भक्तों के शरणागत होकर श्रद्धा और भक्ति से श्रीमद्भागवत श्रवण करना ही कलियुग के जीवों का एक मात्र धर्म्म है।

अत्यन्त शोक की बात है कि इस अमूल्य साधन के मौजूद होते हुए भी सांसारिक मनुष्य मोहपाश में पड़कर त्रिताप से पीड़ित हो रहे हैं। भागवत-सूर्य्योदय हो जाने पर भी अनेकों जीव माया के वशीभूत होकर अज्ञान और मोह की घोर निद्रा में

पड़ सो रहे हैं। उनकी यह दुर्दशा देखकर श्रीगौड़ीय मठाचार्य्य ॐ विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद्भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराज की असीम कृपा और शुभ प्रेरणा से "भागवत" पत्ररूपी दूत की सुव्यवस्था की गई है जो आज तीन साल से अज्ञान की निद्रा में पड़े हुए जीवों के घर घर जाकर उन्हें जगाता और उनके हृदय-कपाट खोलकर भागवत-सूर्य्य के दिव्य प्रकाश को उनके अन्तःकरण तक पहुँचाता है।

मथुरापुरवासियों का लन्दन-प्रत्यागत श्रीमद्भक्ति प्रदीप तीर्थ महाराज के प्रति विपुल सम्वर्द्धना



थुरापुरवासियों ने श्रीगौड़ीय मठ के एक प्रधान प्रचारक त्रिदण्डि स्वामी परिव्राजकाचार्य्य श्रीमद्भक्तिप्रदीप तीर्थ महाराज को गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के संरक्षक आचार्य ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामीमहाराज के शुद्धभक्ति प्रचार का पाश्चात्य देश में प्रथम बार झंडा फहराकर लौटे हुए सेनापति के रूप में श्रद्धाञ्जलि प्रदर्शन करने की इच्छा प्रकट की। तदनुसार मथुरानिवासी धर्म्मावलम्बी सज्जनवृन्द की तरफ से रायबहादुर बाबू राधारमण, रायसाहब बाबू तीर्थचन्द, रायसाहब बाबू गोविन्ददास, स्थानीय आनरेरी मजिस्ट्रेट बाबू लक्खीमल, रायसाहब बाबू रूपकिशोर, अधिकारी बाबू लज्जाशङ्कर, स्थानीय म्युनिसिपल बोर्ड के चेयरमैन बाबू यमुनाप्रसाद, ज्योतिषी श्रीमान् गणेशश्याम द्विवेदी, आनरेरी मजिस्ट्रेट बाबू विश्वेश्वरनाथ भार्गव, सेठ रामनिवास पोद्दार प्रभृति सम्मानित व्यक्तियों ने एक विशेष सभा की। उसमें परिव्राजकाचार्य्य स्वामीजी महाराज के "श्रीकृष्ण और मथुरा" के सम्बन्ध में एक व्याख्यान और तत्पश्चात् स्वामीजी महाराज को एक अभिनन्दन प्रदान करने की सुव्यवस्था की गई।

२८ अक्तूबर, रविवार को सायंकाल साढ़े छः बजे स्थानीय अधिवासीवृन्द प्रतिष्ठित व्यक्तियों सहित "लक्ष्मीदास हाल" में एकत्र हुए। ज्योतिषी बाबू गणेशश्याम द्विवेदी महाशय ने सर्वसाधारण की ओर से मथुरा के प्रसिद्ध एडवोकेट बाबू बसन्तलाल जी को सभा का सभापति-पद सुशोभित करने का प्रस्ताव किया, गोस्वामी पंडित लक्ष्मणाचार्य्य शास्त्रीजी ने प्रस्ताव का अन्तःकरण से समर्थन किया एवं संक्षेप में इस प्रकार की विद्वत् सभा की सार्थकता के सम्बन्ध में कुछ कहा। सभापति महाशय के आसन ग्रहण कर लेने पर त्रिदण्डि स्वामी भक्तिप्रदीप तीर्थ महाराज को पुष्प-माला से विभूषित किया गया, तत्पश्चात् ज्योतिषी श्रीयुक्त गणेशश्यामजी ने हिन्दी भाषा में श्रीगौड़ीय मठ तथा स्वामीजी महाराज के आचार-प्रचार से सब को भली भांति परिचित कर दिया। सभापतिजी के निर्देशानुसार एक उद्बोधन-संगीत का कीर्तन होने के बाद समस्त मथुरावासियों की तरफ से स्थानीय म्युनिसिपल बोर्ड के चेयरमैन बाबू यमुनाप्रसाद जी ने अंग्रेजी भाषा में लिखा हुआ निम्नलिखित अभिनन्दन पत्र सभा में पढ़ा:—

His Holiness
Tridandi Swami Sreemad Bhakti Pradip Teertha Maharaj of Sree Gaudiya Math

Your Holiness,

WE, the citizens of Muttra or Mathura, the Holy city of Nativity of Lord Sree Krishna are glad to have the opportunity of extending to Your Holiness our hearty welcome on this most auspicious occasion of Your Holiness' arrival here on return from England,

THE Sanatan Dharma is generally misunderstood and misrepresented in Kali Yuga owing to neglect of the worship of Sree Krishna, the Supreme Lord and the highest form of the Personality of Godhead whose auspicious Advent in the highest knowledge in pure form sanctified this city and whose transcendental activities are eternally associated with everything of the whole of Braja Mandal. Although for some time the sacred places and associations thereof were forgotten by the public, just 150 years ago the Lord Krishna Himself in the role of Sree Krishna Chaitanya Mahaprabhu came here and rediscovered to the public all the sacred associations of Braja Mandal which were given great publicity to by His eminent apostles, the six Goswamis headed by Sree Rupa and Sanatan who lived here long and gave to the world an elaborate literature of a wonderful nature on the theology and practice of Sanatan Dharma in its complete and living form for the highest benefit of mankind,

WE are aware that your Holiness is the disciple of Srila Thakur Bhakti Vinode, the great saint of the last century who brought out about 100 books on the teachings of Sree Chaitanya (the religion of Sree Krishna) was the pioneer in propagating this religion to the educated public of the present generation. And we are also aware that this movement has since been taken up and conducted in a world wide scale by His Divine Grace Paramahansa Sreemad Bhakti Siddhanta Saraswati Goswami Maharaj who initiated Your Holiness with Tridanda Sanyas in 1920 for carrying on the propaganda by methods approved by the Sastras and followed by Sree Chaitanya

WE are also aware that since 1920 your Holiness has been actively engaged in the preaching of Vaishnavism under the distinguished guidance of the Divine Master the Paramahansa Saraswati Maharaj to the great admiration and benefit of the educated public throughout India, but mostly confining your activities in Brindaban and Naimisaranya in the Sitapur District for the propagation and popularising of the Bhagabat.

THE brilliant career of your missionary activities in India richly qualified your Holiness in being selected by the Gaudiya Math for extending the propaganda to the West and for the first time in Great

Britain and Germany. We appreciate the great difficulties against which Your Holiness had to work in an alien country in every way different from indian outlook. But we are highly satisfied to learn of the admiration extorted from every quarter by an ideal life in purely Indian methods both in diet and in habits and by thoroughly practising what is preached.

WE are filled with great joy and pride to learn that inspite of various odds Your Holiness was successful in course of a short period of eighteen months in effecting an appreciable change in the British public in their outlook on India specially her religion and in creating a great impression among the highest dignitories, an interest among the public and in supplying food for thought and consideration among the educated—by means of private discussion, social gatherings and public lectures at the different Universities, in many learned societies and in public platforms as a result of which a centre has been established and a strong committee under the name Gaudiya Mission Society has been formed with most influential personalities of England for furthering the propaganda in the West culminating in a speedy spiritual regeneration of the world through the diffusion of the knowledge and significance of the worship of Sree Radha-Krishna by dint of the efforts of Your Holiness and other Sanyasi preachers of the Gaudiya Mission.

WE hail this opportunity of offering our deep gratitude to Your Holiness' glorious and successful preaching of the glory of Mathura, Braja-Mandal and of Radha-Krishna, your love for whom evinced by your arrival to this place on return from the West and now encouraged by the august visit in our midst of the illustrious Divine Master of Your Holiness, His Divine Grace Paramahansa Sree Sreemad Bhakti Siddhanta Saraswati Goswami Maharaj. We wish most ardently for the restoration of the worship of Sree Radha Krishna in pristine purity and we hope for the actual realisation of the loving service of Rada Krishna through the enlightenment of the able preaching of your Mission, when we will be in a position to see the real perspective of Mathura in our spiritual vision.

MUTTRA
28—10—34

We are, yours respectfully,
THE CITIZENS OF
MUTTRA.

श्रीमत् तीर्थ महाराज का प्रत्यभिभाषण

परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डि स्वामी श्री श्रीमद् भक्तिप्रदीप तीर्थ महाराज ने अभिनन्दन के प्रत्यभिभाषण में विज्ञापित वक्तृता का विषय अवलम्बन कर सुंदर अंग्रेजी भाषा में एक घंटे तक एक प्रभाव शाली व्याख्यान देकर श्रोतृवृन्द को विशेष रूप से आकृष्ट किया। वक्तृता का संक्षेप नीचे प्रकाशित किया जाता है।

स्वामीजी महाराज ने श्रीगुरु, वैष्णव, महाप्रभु और राधागोविन्द की वन्दना कर सभापति और उपस्थित श्रोतृवृन्द को आह्वान पूर्वक कहा कि मथुरा वासियों का अभिनन्दन-पत्र प्राप्त करके मैं उन्हें हृदय से धन्यवाद देता हूँ। मैं वर्तमान युग के शुद्ध भक्तिस्रोत के पुनः प्रवाह के मूल पुरुष ठाकुर भक्ति विनोद एवं उनके ही अभिन्न विग्रह मूर्त श्रीचैतन्य वाणी स्वरूप ॐ विष्णुपाद श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद का केवल एक अकिञ्चन भृत्याभास हूँ। श्रीमद् भक्तिविनोद ठाकुर के मनोऽभीष्ट परिपूरक श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामीजी ने मुझे तथा अन्य गुरुभाइयों को पाश्चात्य देश में उस प्रेम-धर्म्म का प्रचार करने का आदेश किया जिसे श्रीचैतन्यदेव ने इस मथुरा-मण्डल का मुख्य धन बतलाया था। मुझ जैसा एक नितान्त मूर्ख और सभी प्रकार से अयोग्य व्यक्ति जो केवलमात्र मस्तक पर श्रीगुरुचरणों की रज और हाथ में त्रिदण्ड लेकर समस्त प्रकार के यश, ऐश्वर्य तथा श्री आदि से विभूषित पाश्चात्य देश निवासी मनुष्यों में अप्राकृत वास्तव सत्य तथा श्रीमद्भागवत की वाणी का कीर्तन करने एवं श्रीमद्भागवत धर्म्म में बहुत से सत्यानुसन्धान करनेवाले लोगों की रुचि उत्पन्न करने में समर्थ हुआ है। इसमें श्रीगुरुदेव की असीम कृपा का मुझे बारम्बार अनुभव होता है और इस श्रीचैतन्य वाणी के मर्म की भी साथ ही साथ उपलब्धि होती है,—

"जारे देख तारे कह कृष्ण उपदेश।
आमार आज्ञाय गुरु हञा तार एई देश॥
इहाते ना बाधिबे तोमार विषय-तरङ्ग।
पुनरपि एई ठाँई पाबे मोर सङ्ग॥"

स्वामीजी महाराज ने कहा कि इङ्गलैंड में जो कोई भी भारतीय संन्यासी जाता है वह mystic समझा जाता है एवं साम्यवादीगण उसे कौतूहल परितृप्ति का साधन रूप मानकर उसका स्वागत करते हैं, किन्तु हमने पहिले से ही "To be forewarned is to be forearmed" इस न्याय के अनुसार साम्यवादियों को सचेत कर दिया था, तथैव समाचार पत्रों के रिपोर्टर हमारे पास आकर भाँति भाँति के प्रश्न करते थे, किन्तु हमने उन्हें सावधान कर दिया था कि आनरोटिजल व परमिशन किसी प्रकार का संवाद वह हमारे विषय में प्रकाशित न करें। फिर भी हमारी अनजान में दो एक भ्रमपूर्ण व विकृत संवाद प्रकाशित हुए थे जिनके संशोधन में हमने यथायोग्य चेष्टा की थी। क्योंकि हमें अपने आप को हिमालय की गुफाओं में रहनेवाले, सौ व उससे भी अधिक वर्षों से केवल वायु-भक्षण करके जीवन निर्वाह करने वाले तथा योगमार्ग द्वारा नाना प्रकार के आश्चर्यजनक दृश्य दिखानेवाले संन्यासी बतलाकर द्रव्य इकट्ठा करने की इच्छा न थी। हमने तो श्रीगुरुदेव के पादपद्मों में यह शिक्षा प्राप्त की है कि हम श्रीचैतन्यदेव के दासानुदासों के पादुका वाही अति दीनहीन सेवकमात्र हैं। श्रीहरिकीर्तन ही हमारा एकमात्र अस्त्र है, इसे छोड़कर और किसी प्रकार के भी जागतिक अस्त्र का संग्रह करना व प्रयोजन लाभ हमारा उद्देश्य नहीं है।

ग्रेटब्रिटेन की विशेषता है उसका Conservatism, जिसकी जड़ वहाँ युगयुगान्तर से सुरक्षित तथा परिपुष्ट होती आ रही है। इस कारण यदि उस स्थान में कोई जागतिक पराधीन व स्वाधीन जातीयता का अभिमान करके धर्म्म का प्रचार करना चाहे, तो असम्भव है, किन्तु सर्वेश्वरेश्वर विश्वम्भर के सेवकों

की अधीनता व चरणधूलि से मस्तक को सुशोभित करके इस प्रकार के स्थान में भी अकपट सत्य का प्रचार करना सम्भव है, इसको हमने प्रत्यक्ष उपलब्धि की है।

जब भी भारतवर्ष से कोई धर्मप्रचारक इङ्गलैंड जाते हैं तभी वहाँ के निवासी उनसे प्रश्न करते हैं कि ऐसी कौन सी नई वस्तु है, जिसे भारतवासी उन्हें दे सकते हैं? अंग्रेजी पुस्तकें पढ़कर भारतवासी प्रचारकगण धर्म के सम्बन्ध में जो चर्वित चर्वण करते हैं वह सब बातें तो उन्हें रुचती नहीं। विशेषतः भारतवासी जिस धर्म का गौरव करते हैं उस भारतवासियों के धर्म की अपेक्षा इसाई धर्म के ग्राहक कहीं अधिक हैं। पृथ्वी के प्रायः एक तिहाई लोग इसाई धर्मावलम्बी हैं और भारतवासियों का धर्म केवल पृथ्वी के अनेकों धर्मों में से एक है। इस प्रकार के लोगों में स्वामीजी महाराज और उनके सतीर्थ भ्राता ने भागवत धर्म के असमोर्द्ध्वत्व का प्रचार किया है, एवं उन्हें भली भांति सुयुक्ति द्वारा समझा दिया है कि भागवत-धर्म अथवा श्रीचैतन्यदेव की वाणी आत्मधर्म है, वह अनेकों परिवर्तनशील धर्मों के अन्तर्गत नहीं है। भागवत धर्म एकमात्र अद्वितीय धर्म है और उसी के विकृत भाव तथा अंश से ही असंख्य प्रकार के धर्मों की सृष्टि हुई है।

स्वामीजी ने योरोपनिवासियों को आत्म धर्म का वैशिष्ट्य एवं Sonhood और Consorthood of Godhead का विषय सुयुक्ति द्वारा उन्हें समझाकर यह बतला दिया कि भागवत धर्म में इसाई धर्म की अपेक्षा कौन कौन सी विशेषतायें हैं।

स्वामीजी महाराज ने यह भी कहा कि उस देश के लोग परमार्थ आलोचना के लिए एक ही काल में ३० मिनट से अधिक समय नहीं देना चाहते। इस अवस्था में स्वामीजी ने श्रीगुरुदेव का आशीर्वाद सिर पर धारण करके ३० ही मिनट के समय में प्रत्येक सभा-समिति और घर घर में संक्षेप से अप्राकृत तत्व का कीर्तन किया।

ब्रिटिश म्यूज़ियम में गीता के असंख्य अनुवाद हैं। यह सब अनुवाद मनोधर्म्मयुक्त व्याख्या और अनुवाद से परिपूर्ण हैं। सर्वप्रथम श्रीगौड़ीय मठ के प्रचारकों ने श्रीगुरुदेव का कृपादेश प्राप्त करके श्री-चक्रवर्ती ठाकुर और बलदेव विद्याभूषण प्रभु के संस्कृत भाष्य और ठाकुर भक्तिविनोद के बंगला में लिखे हुए भाष्य का अवलम्बन करके श्रीगीता का एकान्त भक्ति-प्रधान अनुवाद किया है, विद्वन्मण्डली का इस अनुवाद की ओर बड़ा आकर्षण हुआ है। श्रीगीता और भागवत के बहुत से श्लोकों की व्याख्या सुनकर उस देश के मनुष्य बहुत चमत्कृत हुए हैं। आर्क बिशप आफ कैन्टरबरी और उनके समान बहुत से महासम्मानित व्यक्तियों ने अपने निकट श्रीचैतन्यवाणी कीर्तन करने का अवसर दिया और श्रीचैतन्यवाणी से बहुत सन्तुष्ट होकर श्रीगौड़ीय मठ के प्रचारकों की प्रत्येक गाँव के बिशप से उनकी प्रशंसा करके एक एक सप्ताह ग्रेट ब्रिटेन के एक एक गाँव में श्रीचैतन्यवाणी कीर्तन करने का सुयोग दिया, यह भारतीय सन्यासियों द्वारा किये हुए भक्तिधर्म-प्रचार के इतिहास में एक बिलकुल नई बात है।

विलायत की किसी सभा समिति में व्याख्यान के बाद श्रोताओं की ओर से बहुत heckling होती अर्थात नाना प्रकार के प्रश्न पूछे जाते हैं, किन्तु भागवत-धर्म के किसी किसी विशेष व्याख्यान में श्रोतागण इतने चमत्कृत होते कि ऐसे उच्च विषय पर कुछ प्रश्न करने का उन्हें अवकाश ही न मिलता और शुद्ध भक्ति को नितान्त अप्रतिद्वन्दी कहकर ही स्वीकार करते हैं।

इस प्रचार के फलस्वरूप में वहाँ लन्दन-गौड़ीय-मिशन-सोसाइटी नामक एक समिति स्थापित हुई है, महामान्य मार्किवस आफ जेटलेंड इसके सभापति हुए हैं और वहां के बहुत श्रेष्ठ व्यक्ति इसके उच्च पदों पर नियुक्त किये गये हैं।'

इसके अतिरिक्त बहुत से सत्य की खोज करने वाले मनुष्य सदाचार का अवलम्बन करके हरिनाम कीर्त्तन करते हैं। जर्मनी के प्रेसीडेन्ट हर हिटलर ने श्रीमद्वनमहाराज को श्रीगौड़ीय मठ के प्रचारक के रूप में निमन्त्रित किया है। वह जर्मनी के विभिन्न विश्व विद्यालयों में श्रीचैतन्यवाणी का प्रचार करेंगे।

इसके पश्चात स्वामीजी महाराज ने श्रीकृष्ण

और मथुरा के सम्बन्ध में एक व्याख्यान दिया। श्रीकृष्ण का सर्व्वश्रेष्ठत्व एवं श्रीकृष्णनाम की सर्व्व-शक्तिमत्ता और श्रीकृष्णधाम मथुरा का वैकुण्ठ की अपेक्षा श्रेष्ठत्व प्रभृति विषयों का विशेष भाव से कीर्त्तन करके स्वामीजी महाराज ने मथुरावासियों से कृपा भिक्षा मांगी एवं जिस चैतन्यवाणी की कृपा से,

"पृथिवीते आछे जत नगरादि ग्राम।
सर्व्वत्र प्रचार हईबे मोर नाम॥"

यह चैतन्यवाणी सार्थक हो रही, उसकी जय घोषणा की।

सभापति महोदय के अनुरोध से गौड़ीय-संघ-पति महामहोपदेशक पंडितवर श्रीभक्तिसारङ्ग गोस्वामी भक्तिशास्त्री प्रभु ने सर्वसाधारण के लिये हिन्दी भाषा में स्वामीजी महाराज का व्याख्यान संक्षेप में कह सुनाया और सभापति महोदय तथा उपस्थित जन-मंडली को धन्यवाद देकर स्वामीजी महाराज को प्रणाम किया, तत्पश्चात सभापति महोदय का हिन्दी भाषा में एक व्याख्यान हुआ।

सभापति महाशय ने कहा,—हे सज्जन वृन्द, आप लोग आज इन महात्मा स्वामी जी महाराजकी अपूर्व व्याख्या सुनकर अवश्य परितृप्त और आनन्दित हुए होंगे, स्वामीजी महाराज ने हमारी भाषा में विशेष दक्ष न होने के कारण एवं हमारे बंगला न समझने के कारण अंग्रेजी भाषा में व्याख्यान दिया है।

पहिले हमारी अर्ध-नग्न, असभ्य जाति में गिनती होती थी, इस प्रकार की जाति के मुख से राजजाति के लिये धर्म शिक्षा स्वभावतः ही अप्रशंसनीय समझा जाता था, यद्यपि पहिले भारतवर्ष से कुछ धर्म्म-प्रचारक पाश्चात्य देशों में भारतीय धर्म्म का प्रचार करने गये हैं; फिर भी अभी तक वहां शुद्ध सनातन धर्म्म व भागवत-धर्म्म का स्थायी भाव से प्रचार नहीं हुआ था। हम कुछ समय से जिस गौड़ीय मठ के प्रचार की कथा विशेष भाव से सुनते आ रहे थे आज उसी की कृपा से पाश्चात्य देश में भी डङ्का बज गया है कि परमार्थ की चरम कथा का मुख्य धाम भारतवर्ष और विशेषतः मथुरा-मण्डल ही है। मथुरा ही उस परमतत्त्व की जन्मभूमि है, स्वामीजी ने आज अपने मुखारबिन्द से जो कुछ कहा है वह केवल एक घण्टा व दो चार घण्टे अवधारण करने की बात नहीं है। इसे तो उनके समान महात्मा के चरणों में बैठकर बार-बार सुनना होगा, भक्तिभाव से उसपर ध्यान करना होगा, सेवा-चेष्टा के साथ विचार करना होगा और उनसे करुणा की प्रार्थना करनी होगी; तब शायद हम इन बातों की उपलब्धि ठीक-ठीक कर सकेंगे। इसलिये स्वामीजी महाराज से कृपा की भिक्षा माँगकर मैं सभा समाप्त करता हूं। आज आप जैसे महात्मा को अपनी श्रद्धा दिखलाकर आप सब लोगों को मैं बहुत गौरवान्वित समझता हूँ।

सभापतिजी के अभिभाषण के बाद ब्रह्मचारी पंडित सर्वेश्वर भक्तिशास्त्रीजी ने "भजहु रे मन श्रीनंद नन्दन" इस संगीत का कीर्त्तन किया। इसके बाद सभा भङ्ग हुई।

सभा में बहुत से लोग इकट्ठा हुए थे और शहर के बहुत से प्रतिष्ठित व्यक्ति भी उपस्थित थे। उनमें कुछ के नाम नीचे प्रकाशित किये जाते हैं:—

बाबू वसन्तलाल एडवोकेट प्रेसीडेन्ट; बाबू जमुना-प्रसाद म्यूनिसिपल बोर्ड के चेयरमैन; बाबू द्वारका नाथ एडवोकेट एम॰ ए॰ एल॰ एल॰ बी॰; बाबू वृन्दावनदास बी॰ ए॰ एल॰ एल॰ बी॰; बाबू लक्ष्मणा-चार्य्य शास्त्री, पंडित मोहनलालजी आयुर्वेदाचार्य्य; बाबू श्यामबिहारीलाल मुन्सिफ; डा॰ पी॰ एन॰ गोस्वामी; ज्योतिषी राधेश्याम द्विवेदी; बाबू गोपाल-दास म्यूनिसिपल चेयरमैन; मथुरा के पोस्टमास्टर बाबू वैकुण्ठनाथ मिश्र; डा॰ एन॰ एन॰ चौधरी इत्यादि।

जर्मनी में प्रचार

(BY CABLEGRAM) Berlin. 10-11-34

Tridandiswami B. H. Bon, Preacher-in-Charge of the London Gaudiya Math, delivered a most erudite and interesting lecture on Mahaprabhu's Philosophy in Germany at the Berlin University in the presence of a large gathering of scholars and men of learning. It was appreciated by the audience. Swamiji is receiving sympathies from all quarters. British ambassador in Berlin is much impressed and has arranged for interview of Swamiji with high officials on his return from lecture on December 29. He started on Monday the 12th November to Leipzig for delivery of a lecture at the Leipzig University.

नित्यधर्म और पौत्तलिकता

(गतांक से आगे)

मुल्लाजी—तब क्या इस प्रकार कहना होगा कि सारी वस्तुएं ही ईश्वर हैं, या जिस किसी वस्तु की भी पूजा की जाय वही ईश्वर पूजा है? पाप वस्तु की पूजा करना भी ईश्वर पूजा और पाप प्रवृत्ति की पूजा करना भी ईश्वर पूजा है. ईश्वर सभी तरह की पूजा से सन्तुष्ट है?

गौराचाँद—सारी वस्तुओं को हम ईश्वर नहीं कहते. सारी वस्तुएं ईश्वर से पृथक् हैं. परन्तु ईश्वर की रची हुई हैं और उनसे सम्बन्ध रखती हैं, सम्बन्ध सूत्र द्वारा सारी वस्तुओं से ही ईश्वर-जिज्ञासा हो सकती है, उन सब वस्तुओं द्वारा ईश्वर जिज्ञासा क्रम से, "जिज्ञासास्वादनावधि" इस सूत्रमत के अनुसार क्रमशः चिन्मय वस्तु का आस्वादन होता है। आप परम-पंडित हैं, कृपा करके उदारभाव ग्रहणपूर्वक इस विषय पर विचार कीजिये। हम तो अकिञ्चन वैष्णव हैं। अधिक वितर्क में प्रवेश करने की वासना नहीं रखते। अब यदि आप आज्ञा दें तो थोड़ा श्रीचैतन्यमङ्गल गीत का श्रवण करें।

मुल्लाजी ने यह सब कथा सुनकर क्या स्थिर किया, इसका कुछ पता न चला। कुछ स्थिर होकर बोले, मुझे आपके विचार से बहुत आनन्द हुआ। फिर किसी दिन आकर और कुछ जिज्ञासा करूंगा, अब अधिक समय हो जाने से अपने स्थान पर जाने की इच्छा करता हूं. इतना कहकर मुल्ला साहब घोड़े पर सवार हो और अपने दल को साथ लेकर सत-सइका परगने की ओर चल दिये, बाबाजी और उनकी मंडली उल्लास के साथ हरि-ध्वनि करते हुए श्रीचैतन्यमङ्गल गान में प्रवेश किया।

चरम श्रेयलाभ

पाथिक

घोर रात्रि का समय है। चारों ओर अन्धकार का साम्राज्य फैला है। आलोक प्रवेश होने के लिये सुई की नाक के बराबर भी कहीं स्थान नहीं है। तिसपर भी श्रावण की वर्षा, घोर घनघटा और मेघ गर्जन! विशाल सीमा रहित प्रदेश! कीचड़ से भरा हुआ पिछलाऊ मार्ग!

एक दिन श्रान्त पथिक इसी मार्ग पर बड़ी कठिनाई से न जाने किस ओर चला जा रहा था। उस की गति देखकर कुछ कुछ ऐसा अनुमान होता था कि शायद वह किसी आश्रय की खोज में इधर उधर भटक रहा है। परन्तु वहाँ एक वृक्ष भी न था जिसका तनिक भी आश्रय लेकर बिचारा रास्ते की थकावट मिटा सकता। वृक्ष होता भी तो उस घोर अन्धकार में उसको देखना भी असम्भव था। केवल दामिनी देवी ही कभी क्षणभर के लिये प्रकट होकर उसके पथप्रदर्शक का कार्य्य करके उसी समय अन्तर्द्धान हो जाती थीं। उन्हीं की कृपा के सहारे पथिक किसी प्रकार चल रहा था, परन्तु दामिनी की दमक के पश्चात् ही बादल गरजना और इन्द्रदेव बड़े वेग से वर्षा करना आरम्भ कर देते थे। पथिक भय और शीत के मारे काँप उठता था। इसी प्रकार किसी तरह कई दुर्गम प्रान्तों को पार करके वह बड़े भाग्य से किसी ग्राम के निकट जा पहुँचा। इन्द्र देव इस समय भी पूर्णरूप से ताण्डव नृत्य कर रहे थे।

ग्राम

पथिक ग्राम के निकट आकर इतना प्रसन्न हुआ कि मानो उसके हाथ में चन्द्रमा आ गया हो, परन्तु कैसा दुर्भाग्य! इस ग्राम का विचित्र व्यापार! कहीं तो परस्पर रक्तपात, कहीं अबला निर्य्यातन, और कहीं भोले-भाले पथिक का सर्व्वस्व अपहरण!

पथिक का आशा-कमल शुष्क हुआ और उस प्रांतलग्न बड़े बड़े भीषण दृश्य प्रत्यक्ष दीखने लगे।

दैव-वाणी

इसी समय न जाने उसका कौन शुभचिन्तक उस के कान में यह कहकर अन्तर्द्धान हो गया, "हे पथिक! यदि कुशल चाहता है तो अभी किसी प्रकार इस स्थान से कूच बोल जा, नहीं तो शीघ्र ही तेरे प्राण नष्ट होंगे।"

यह सुनकर पथिक ने लम्बी साँस ली, उसके शरीर में यकायक भी थोड़े से बल का सञ्चार हुआ। उसने बड़े वेग से उस स्थान से भागना आरम्भ किया। मार्ग में जो भयानक घटनायें उसके दृष्टिगोचर हुईं उनका वर्णन करना सम्भव नहीं।

माया-बाजार

देखते ही देखते पथिक एक सुन्दर बन में पहुँचा। जहाँ नानाप्रकार के वृक्ष तरह-तरह के खिले हुए फूलों के गुच्छों से शोभायमान हैं। फूलों की सुगन्ध चारों ओर समा रही है। मकरन्द लोभी मधुकर गुन-गुनकर मधुपान करते जा रहे हैं। विविध प्रकार के फलों के पेड़ फलों के बोझ से झुके पड़ रहे हैं। इस शोभाराशि को देखकर वह चकित हो गया।

कुछ दूर और बढ़कर उसने देखा कि बड़ी-बड़ी सुरम्य अट्टालिकाओं के ऊपर सुन्दर पताके फहरा रहे हैं, कितने कवित्वकला-कुशल, संगीतकलानिपुण, साहित्यामोदी लोग भाव की लहरों से झूम-झूम कर तथा नाच गाकर लोगों का मन मोहित कर रहे हैं। कहीं अप्सरायें नानाप्रकार के तान और लय के साथ कोमल कंठ से गाकर लोगों को उत्तेजित करके उन्हें अपने वश में किये ले रही हैं। कहीं त्रिपुंड्रधारी ब्राह्मण कंठ में रुद्राक्ष की माला डाले नाना प्रकार से देवताओं की पूजा कर रहे हैं, कहीं पुरोहित लोग यजमानों को नवगृह-प्रवेश, जलाशयोत्सर्ग, प्रायश्चित्त, अशौचशुद्धि और श्राद्धादि काम्य-कर्मों का अनुष्ठान करा रहे हैं। कहीं कोई समाज-नेता समाजपति बनकर अकिंचनभाव से समाज के सम्बन्ध में नाना प्रकार उपदेश और मन्तव्यों का प्रकाश कर रहे हैं। कहीं देशहितैषी लोग फूलों की डाली के साथ देशमाता के चरणों में उपस्थित होकर "स्वर्गादपि-गरीयसी" माता की पूजा के हेतु देशवासियों को पूजा का अर्घ्य प्रदान करने के लिये निमन्त्रित कर रहे हैं। पथिक ने कुछ और आगे बढ़कर देखा कि कितने ही मकानों के दरवाजों पर लिखा है "सेवामंदिर"। कौतूहलवश पथिक ने उनके अन्दर प्रवेश करके देखा कि वहाँ रोगियों को औषधि-प्रदान, भूखों को अन्नदान, और वस्त्रहीन व्यक्तियों को वस्त्र प्रदान करके उनकी देह-शान्ति के नाना विध उपाय किये जा रहे हैं। किसी किसी मकान के द्वार पर उसने "गोरक्षणी-सभा" और "मादक-द्रव्य-निवारणी-सभा"—यह शब्द भी अंकित देखे।

यह सब देख सुनकर पथिक के हृदय को कुछ

धीरज आया। कुछ अंश में उसका भय और दुःख नष्ट हुआ। उसने सोचा कि अब अपने गन्तव्य स्थान की ओर न जाकर अपना जीवन इन श्रेष्ठ पुरुषों के सत्संग में ही व्यतीत करूंगा, यह विचारते विचारते उसकी आँखें कुछ कुछ मिचने लगीं, तन्द्रादेवी ने चुपके से आकर पथिक को आलिंगन कर लिया और कुछ समय तक उसके साथ विचित्र वार्तालाप किया। अन्तर्द्धान होते समय वह उससे यह कह गई—"हे अबोध पथिक! इस माया-बाजार के चक्कर में पड़ जाने से तुझे अपने गन्तव्य स्थान तक पहुँचने में बहुत विलम्ब होगा। पहिले की भाँति तुझे बड़े बड़े भयङ्कर दृश्य देख पड़ेंगे और बड़े कष्ट सहने होंगे, यदि मंगल चाहते हो तो शीघ्र ही इस स्थान को छोड़कर अन्यत्र चले जाओ।

पर्वत-पतन

तन्द्रा देवी की गोद से लौटकर पथिक की कुछ थकावट दूर हुई थी परन्तु उनके वचन सुनकर और भी उदासी छा गई। पथिक फिर पहिले की भाँति एक ओर से भागने लगा। भागते भागते उसने एक पर्वत की घाटी में आकर विश्राम किया, गिरिराज की शोभा अवर्णनीय थी, चोटी पर नवोदित सूर्य्य की अरुण किरणें ऐसी जान पड़ती थीं मानो महीपति रत्न जटित स्वर्ण मुकुट धारण किये हैं, पवन से हिलते हुए वृक्षों के पत्ते अपने विचित्र स्वर से और मकरन्द-मत्त मधुकर अपनी मीठी गुन गुन से गिरिराज का गुणगान करते थे, इस सुरीले गान से आकृष्ट होकर शान्ति पाने की आशा से पथिक पर्वत के ऊपर चढ़ गया, उसने पर्वत की कन्दराओं में सैकड़ों मुनि और ऋषियों को ध्यानस्थ देखा, उनके ललाट उज्ज्वल, मुख प्रशान्त, प्रफुल्ल और गम्भीर थे। उन्हें देखकर पथिक के हृदय में आनन्द की स्फूर्ति हुई, उसने सोचा कि मुझे भाग्यवश वैसा ही सत्संग प्राप्त हो गया, जैसा मैं ढूंढता था, यह मनुष्य प्रकृत शान्ति का पथ बतला कर मेरा दुःख दूर करेंगे, प्रसन्न चित्त होकर पथिक चारों ओर पर्वत की शोभा देखने लगा। परन्तु एकाएक यह क्या हुआ! हठात् मड़ मड़ शब्द करके कितने ही वृक्ष टूटकर भूमि पर आ गिरे, रीछ और बाघ आदि भयङ्कर पशु चीत्कार करने लगे, महीधर अपने आश्रित जनों को अपनी गुफाओं में छिपा रखने पर भी उनकी रक्षा न कर सके, आश्रितगण आश्रय सहित अन्तर्द्धान हो गये। रहा केवल पत्थरों का स्तूपाकार विशाल ढेर!! पथिक का भाग्य नितान्त मन्द न था; भगवान न जाने उसके प्रति क्यों इतने दयालु थे, किसी अचिन्त्य शक्ति ने पथिक के प्राणों की रक्षा की।

आशा का आलोक

पथिक इस बार बड़ा हताश हुआ। और उस मुहूर्त्त में अपने क्षुद्र जीवन में इतना परिवर्तन और मौत के मुख से इतना आश्चर्यजनक परित्राण इत्यादि स्मरण करके आश्वस्त हुआ। मन में विचारने लगा कि ऐसा जान पड़ता है कि शायद अब भी मेरे जीवन-पथ का कोई अनिर्दिष्ट लक्ष्य निर्दिष्ट है, अभी भी कदाचित् मेरे जीवन का भाग्याकाश निर्मल हो सकता है।

सन्ध्या की दैव दुर्घटना बीत चुकी है। रजनी का प्रवेश है। आज द्वितीया है। प्रकृति सुन्दरी आज प्रफुल्लित है। सैकड़ों हीरे-जवाहिरात से जटित नील रंग की सुन्दर साड़ी पहिने और अपने प्रशान्त ललाट पर सुन्दरोज्ज्वल चन्द्रभूषण धारणकर मानो सुन्दरता की सीमा तोड़ रही है। आकाश, पाताल, जल, स्थल सभी जगह आनन्द छा रहा है। पथिक के हृदय में भी मानो आज नये प्राणों का संचार हुआ है। अभी बड़े उत्साह के साथ उस पथश्रान्त पथिक ने आज फिर चलना आरम्भ किया है।

सौम्य मूर्ति

कुछ दूर चलने के पश्चात् पथिक को एक सौम्य मूर्ति पुरुष का दर्शन हुआ, ऐसा जान पड़ता था कि मानो भगवान की ही प्रेरणा से पथिक पर कृपा करने के लिये यह महात्मा पधारे हैं। पथश्रान्त पथिक को मानो मेघाच्छन्न आकाश पर यकायक ध्रुवतारा दीख पड़ गया। आशा के बुझते हुए चिराग को मानो किसी ने फिर से तेल डालकर ज्योतिर्मय कर दिया। पुरुष ने पथिक की दुरवस्था जानने के लिये करुण स्वर से पूछा—"वत्स! तुम कहाँ जाओगे?"

पथिक के कानों में ऐसा मधुर स्वर कभी न पड़ा था। वह विचारने लगा, "यह स्वप्न है या इन्द्रजाल?" आज तक तो किसी ने मुझे इतने मीठे स्वर से आह्वान नहीं किया। पथिक के कान में फिर एक सुमधुर कण्ठध्वनि पहुँची।

"वत्स! तुम्हारा गन्तव्य स्थान कौन सा है?"

पथिक और भी आशक्त होकर बोला, "देव, आप कौन हैं? कृपापूर्वक मुझे अपना परिचय प्रदान कीजिये।"

पुरुष—हे पथश्रान्त पथिक! तू कौन है?—क्या तुझे यह भी मालूम है? पहिले तू अपने परिचय से तो अवगत हो ले।"

पथिक—क्यों देव, मैं तो एक मनुष्य हूँ। अभाग्य वश पथश्रान्त होकर इधर उधर भटक रहा हूँ।"

पुरुष—तुम पथश्रान्त पथिक हो—यह तो यथार्थ ही है। परन्तु तुम्हें पूर्ण रूप से मनुष्य तो कहना उचित नहीं। मनुष्य होते तो तुम अपना मार्ग छोड़ पशु की भाँति भटकते न फिरते।

पथिक—"हे देव! मैं बड़ा दुःखित हूँ। क्षुधा और क्लेश से पीड़ित हो रहा हूँ। भगवान का इस समय मेरे ऊपर जैसा कोप है उसका वर्णन करना मेरे सामर्थ्य से बाहर है। कृपा करके अब और भी वाक्जाल का विस्तार कर मेरे दुःखित हृदय पर आघात न कीजिये।"

पुरुष—पथिक! तूने जिस पथ का आश्रय लिया है उसी पर चलते रहने से तुझे अनन्तकाल तक इसी प्रकार पथश्रान्त रहना पड़ेगा, भूख, प्यास, रोग, शोक, अभाव और असुविधाओं के कारण तू सदा दुःखी रहेगा, तू आज जिसे वाक्य जाल समझता है, एकमात्र वही तेरे मंगल का उपाय है, आत्म-परिचय शून्य होने के कारण ही तू पग पग पर विपद्ग्रस्त होता है।

पथिक—देव! आपकी तो बात कुछ समझ में नहीं आती, आप क्यों मनुष्य की भाषा में बोल रहे हैं?

पुरुष—हाँ, मैं मनुष्य की भाषा में ही बोल रहा हूँ, तभी तो मेरी बात नहीं समझ पाते, तुम यदि लाभ करना चाहो तो मेरा अनुगमन करो।

पथिक दूसरा कोई उपाय न देखकर इस पुरुष के साथ साथ चलने लगा। पथिक के मन में तरह तरह की विचार-तरंगे उठने लगीं। उसने सोचा "मैं किस ओर जा रहा हूँ? अपने स्त्री, पुत्र, परिवार, कोठी, महल इत्यादि कहाँ छोड़ जा रहा हूँ? यदि यह व्यक्ति कोई इन्द्रजालिक हुआ!

भव-जलधि

पथिक इस विचार-सागर में डूबा था कि भावना-सहचरी तन्द्रा देवी ने आकर उसे गले से लगा लिया: पथिक ने स्वप्न में भी उस सौम्यमूर्ति पुरुष का दर्शन किया। उसने देखा कि एक अनन्त महासागर है जिसमें आकाश तक ऊँची लहरें उठ रही हैं और कितने ही अंडाकार पदार्थ बराबर उसमें से निकलते, कुछ समय तक दीख पड़ते और फिर लहरों में विलीन हो जाते हैं।

विरजा

समुद्र के उसपार एक सुन्दर नदी बहती है उसमें किसी प्रकार की तरंगें नहीं उठतीं उसका जल शान्त और निर्मल है।

ज्योतिर्धाम

विरजा नदी के पीछे एक ज्योतिर्धाम है। कोटि कोटि चन्द्र और सूर्य्य की प्रभा भी उसके सामने क्षीण प्रतीत होती है। जीव इस प्रभा के एक सामान्य प्रभाव का दर्शन करते ही विमोहित हो जाता है। उसे इस प्रभा को देखने की शक्ति नहीं रह जाती।

इस ज्योतिर्मय आभा का दर्शन करके पथिक स्थिर और वाक्यहीन सा हो गया। दर्शनशक्ति के अभाव का उसे अनुभव होने लगा। इस समय उन महात्मा ने पथिक के मस्तक पर हाथ रखकर कहा "वत्स! अभी और भी दर्शनीय स्थान तुम्हें मिलेंगे। इस निस्पन्दभाव को त्याग दो और यदि और भी रमणीय वस्तु देखना चाहते हो तो अपनी इस जड़ता को उसी समय से दूर करो।

परव्योम

"विरजा ब्रह्मलोक भेदि परव्योम पाय"

(चै. च. मध्य, १८-श.)

पथिक क्या देखता है कि इस पुरुष की कृपा से उसकी जड़ता जाती रही। इस ज्योतिर्मयधाम को भेदकर उसके नेत्रों ने परव्योम नामक एक स्थान के दर्शन किये; इस स्थान में वैकुण्ठ नामक एक विचित्र प्रदेश है। यह स्थान कुण्ठ अर्थात् मायिक नहीं है, इसी से उसका नाम वैकुण्ठ पड़ा है। कमला-सेवित श्रीनारायण इसी स्थान में वास करते हैं। यह स्थान सारे ऐश्वर्यों से भली भाँति परिपूर्ण है, नारायण के कई सौ पार्षद श्रीनारायण की भाँति ही शोभाशाली होकर कमलापति की सेवा में नियुक्त हैं। स्वप्रयोग से पथिक ने इस स्थान की शोभासम्पद् का दर्शन कर एक अपूर्व और अवर्णनीय आनन्द का अनुभव किया; हृदय में एक विचित्र शान्ति का संचार हुआ; पथिक ने विचारा कि यही शान्ति जीव की एकमात्र आश्रयनीय है और इस स्थान में ही सदा के लिये निवास करने का संकल्प किया।

पथिक के पूर्वपरिचित महात्मा फिर उसके सम्मुख आये और बोले, हे पथिक! यह कैसा उत्तम स्थान है, यहाँ भगवान के दास किस प्रकार भगवान की आदर्श सेवा करते हैं, परन्तु तुम्हें इससे भी अधिक रमणीय शान्ति निकेतन दिखलाऊँगा। मेरे पीछे आओ।

माधुर्य्य-धाम

पथिक उस सौम्यमूर्ति परमदयालु पुरुष के साथ चलने लगा, वह जितना आगे जाता था, उतना ही मानो उसकी सर्व्वात्मा शान्तशीतलस्निग्ध धारा से स्नान करती थी। इस प्रकार की मधुरता और शोभा कल्पना के काँटे पर नहीं तोली जा सकती, जिन्होंने इसका अनुभव किया है, वही जानते हैं। इस स्थान में ऐश्वर्य्य का पूर्णरूप से विस्तार होने पर भी सब कुछ स्निग्ध-माधुर्य्यमय और नित्यानन्द स्वरूप है। फलफूल और नवपल्लव इत्यादि ही वहाँ की सम्पत्ति है। गोधनपूजा, गोपबालक-सहचर, गोपवधू सहचरी, दूध, दही, माखन ही—खाद्य द्रव्य, प्रकृति—प्रेमविभाविता, वहाँ की स्त्रियाँ—लक्ष्मीरूप, वृक्ष—कल्पतरु, भूमि—चिन्तामणि, जल—अमृत, कथा—गायन, चाल—नृत्य, वंशी दूति के समान और सभी कुछ चिदानन्दमय है।

इस नित्यानन्द धाम की यह सब माधुर्य्य सम्पद् केवल एक ही मनुष्य की विषय स्वरूप है, वही गोपी-कुमुद बन्धु, सुधाशोभित वृन्दावन-सुधाकर। वही गोपिका पिक विनोद नव पुष्पाकर—पशुपेन्द्रनन्दन वही मुरली की मधुर तान से शरणागतों की अशान्ति हर लेनेवाले अप्राकृत नवीन मदन हैं। वहाँ कामदेव ऐश्वर्य्य माधुरी, क्रीड़ामाधुरी, वेणु-माधुरी और श्रीमूर्तिमाधुरी के साथ उस अप्राकृत धाम में नित्यलीला किया करते हैं। ब्रह्मा, रुद्रादि देवगण निरन्तर उनका स्तव करते हैं, परन्तु फिर भी उनका दृष्टिपात नहीं होता। वहाँ रासरसाभिनन्दक, नवकिशोर नटवर गोपकुल में परिवेष्टित होकर सर्व्वदा विराजते हैं। सदाशिवादि देवतागण पर्यन्त उनकी श्रवणाञ्जलि पाकर मुरली-ध्वनि के मोहन मन्त्र से मोहग्रस्त रहते हैं। वह असमोर्द्ध—माधुर्य्य रत्नामृत वारिधि हैं। उनके चरणकमलों के नखों की शोभा के सामने कोटि-कोटि कन्दर्प की शोभा भी क्षीण जान पड़ती है।

औदार्य्य-धाम

पथिक ने अपने वर्त्म-प्रदर्शक सौम्यमूर्ति पुरुष की कृपा से सकल धाम दर्शन करके ऐसा अनुभव किया कि मानो उसकी सम्पूर्ण आत्मा ने शान्तिसागर में गोता लगा लिया हो। वह सौम्यमूर्ति इस समय फिर उसके सम्मुख उपस्थित होकर कहने लगे—

"कोटि मदन सुन्दर जो जन
कोटिशशि-सुखमय:
कोटि जननी सम स्नेह शील,
अमृत-मधु-हृदय।
कोटि कल्प पादप सदृश
दाता शील दीन गति,
कोटि सागर समान अन्तर
गम्भीर स्वभाव अति।
कोटि सुखद प्रेम-रस-प्रद
और जो पूर्णानन्द।
ऐसी वह गति जयति! जयति!
जय कृष्ण आनन्द कन्द!"

(क्रमशः)

नित्यकर्म और साधन



संसार में जितने तीर्थ हैं उनमें श्री-नवद्वीप मण्डल सबसे प्रधान है। श्रीवृन्दावन की भाँति श्री-नवद्वीप भी १६ कोस के क्षेत्रफल का है। १६ कोस में अष्ट-दल पद्म है। पद्म की कर्णिका-स्वरूप श्रीअन्तर्द्वीप है। अन्तर्द्वीप के मध्य भाग में श्रीमायापुर है। श्रीमायापुर के उत्तरी भाग में श्रीसीमन्तद्वीप है। सीमन्तद्वीप में श्रीसीमन्तिनी देवी का मन्दिर था। मन्दिर के उत्तरी भाग में विल्व पुष्करिणी और दक्षिणी भाग में ब्राह्मण पुष्करिणी है। विल्व पुष्करिणी और ब्राह्मण पुष्करिणी को लेकर जो भूमिखण्ड है उसका नाम साधारणतया सिमुलिया के नाम से कहा जाता है। अतएव श्रीनवद्वीप के उत्तरी भाग के एकान्त में सिमुलिया ग्राम है। श्रीमहाप्रभु के समय में उस स्थान में अनेक पण्डित निवास करते थे। शची देवी के पिता श्रीनीलाम्बर चक्रवर्ती महाशय उसी ग्राम में रहते थे। उन्हीं के मकान के समीप व्रजनाथ भट्टाचार्य नामक एक वैदिक ब्राह्मण निवास करते थे। विल्व पुष्करिणी के संस्कृत-पाठशाले में पढ़कर व्रजनाथ ने थोड़े ही दिनों में न्यायशास्त्र में अपार पाण्डित्य प्राप्त कर लिया। विल्व पुष्करिणी, ब्राह्मण पुष्करिणी, मायापुर, गोद्रुम, मध्यद्वीप, आम्रघट्ट, समुद्रगढ़, कुलिया, पूर्वस्थली आदि स्थानों में जो सब विख्यात पण्डित थे वे सब व्रजनाथ के नये नये तर्कों के सामने घबरा गये। जहाँ पण्डितगण बुलाये जाते, वहाँ पहुँचकर व्रजनाथ न्याय पंचानन हाथियों के झुंड में सिंह की भाँति अपने नवीन तर्क से सब के हृदय को जला देते थे। उन्हीं पण्डितों में से किसी एक कठोर हृदय नैयायिक ने तंत्र शास्त्रोक्त मारण विद्या का सहारा लेकर न्याय पंचानन के विनाश का संकल्प कर लिया। वे रुद्रद्वीप के मरुस्थल में श्मशानवासी होकर दिनरात मारण मंत्र जप करने लगे।

घोर अमावास्या की रात, चारों ओर अन्धकार छाया हुआ है। आधी रात के समय नैयायिक चूड़ामणि श्मशान के बीच में जाकर इष्ट देवता का आह्वान करने लगे—"मातः! इस कलिकाल में तुम्हीं एक उपास्या हो। मैंने सुना है कि थोड़े से जप से सन्तुष्ट होकर तुम वरदान देती रहती हो। हे करालवदनि! तुम्हारा यह सेवक अनेक कष्ट पाकर अनेक दिनों से तुम्हारा मंत्र जप रहा है। एक बार कृपा करो माँ! यह मानता हूँ कि मैं बड़ा अपराधी हूँ परंतु तुम मेरी माता हो; इसलिए मेरे समस्त अपराधों को क्षमा करके आज मुझे साक्षात्कार प्रदान करो।" इस प्रकार आर्तनाद करते-करते न्याय चूड़ामणि ने न्याय पंचानन के नाम की मंत्र हुति प्रदान की। मंत्र की क्या आश्चर्यमयी गति है! उसी समय आकाश बादलों से घिर गया। प्रबल वायु चलने लगा। मेघ के गर्जन से कान के परदे फटने लगे। बीच-बीच में बिजली की चमक में विकटाकार अनेक भूत प्रेत दिखाई पड़ने लगे। चूड़ामणि ने कारण-बल से समस्त स्नायवीय शक्ति का संचालन करते हुए कहा—"माँ! और अधिक विलम्ब न कीजिएगा।" उसी समय आकाशमार्ग में देववाणी हुई "अब अधिक चिन्ता मत करो। न्याय पंचानन और अधिक न्याय विचार नहीं करेंगे। थोड़े ही दिनों में वितर्क त्यागकर वे मौन हो जायेंगे। तुम उन्हें अपने प्रतिद्वन्द्वी के रूप में और न पाओगे। अब शान्त होकर अपने घर जाओ।" इस देववाणी को सुनकर चूड़ामणि महाशय सन्तुष्ट हो गये और तन्त्रकर्ता देव देव महादेव को बारंबार प्रणाम करके अपने घर की ओर चल पड़े।

इक्कीस वर्ष की उम्र में व्रजनाथ पंचानन दिग्विजयी पण्डित हो गये। दिन रात श्रीगंगेश उपाध्याय की ग्रन्थावली पर विचार करने लगे। काणभट्ट शिरोमणि ने जो "दीधिति" लिखा है उसमें अनेक दोष दिखाकर वे स्वतंत्र टिप्पणी करने लगे। विषय की चिन्ता तनिक भी नहीं है!

परमार्थ शब्द कभी नहीं सुनाई पड़ता। घट पट अवच्छेद व्यवच्छेद इत्यादि शब्दयोजना पूर्वक तर्क की सृष्टि करनी ही उनके जीवन का कार्य हो गया। सोने में, स्वप्न में, भोजन में, चलने फिरने में, जलीय विशेष, पार्थिव विशेष, द्रव्य, काल यही सब चिन्ताएँ सर्वदा उनके हृदय में चलती रहती थीं। एक दिन संध्या के समय व्रजनाथ गंगाजी के तट पर गौतमोक्त षोड़श पदार्थ का विचार कर रहे थे ऐसे ही समय में एक नवीन नैयायिक ने आकर कहा—"न्याय पंचानन महाशय! क्या आपने निमाई पण्डित का परमाणु-खंडन-रहस्य सुना है?" उस समय न्याय पंचानन सिंह की भाँति गर्जना करते हुए बोले—"कौन निमाई पण्डित? क्या तुम जगन्नाथ मिश्र के पुत्र को लक्ष्य करके कह रहे हो? उनका क्या रहस्य है? तुम उसे स्पष्ट शब्दों में कह सुनाओ।" नवीन विद्यार्थी ने कहा कि इसी नवद्वीप में कुछ दिन पहिले निमाई पण्डित नामक एक महापुरुष ने न्यायशास्त्र के बहुविध रहस्यों की रचना करके काणभट्ट शिरोमणि को भी परास्त कर दिया था। वे जिस प्रकार न्यायशास्त्र के ज्ञाता थे, उस समय वैसा और कोई न था किन्तु न्यायशास्त्र के पूर्ण ज्ञाता होने पर भी उन्होंने इसे तुच्छ ही समझा। केवल न्यायशास्त्र ही नहीं बल्कि समस्त संसार को ही तुच्छ समझ कर परिव्राजक का पद ग्रहण करते हुए देश देश में हरिनाम का प्रचार किया। आजकल के वैष्णवगण उन्हें पूर्णब्रह्म कह-कर श्रीगौरहरिमंत्र से उनकी पूजा करते रहते हैं। न्यायपंचानन महाशय! आप उनके रहस्यों की एकबार आलोचना करके देखियेगा। निमाई पंडित के रहस्यों का माहात्म्य श्रवणकर थोड़ा-सा अनुसन्धान करके न्याय पंचानन ने कई आदमियों के यहाँ से कई एक रहस्यों का संग्रह कर लिया। मनुष्य का स्वभाव यही है कि जिसकी जिस विषय में श्रद्धा है उसी विषय के अध्यापकों की स्वभावतः श्रद्धा करता रहता है। विशेषकर जीवित महापुरुषों के प्रति कई एक कारणों से जन साधारण की श्रद्धा सरलता से नहीं होती है। परलोकगत महाजनों के कार्य में मनुष्यों की अधिक श्रद्धा होती है। इसीलिए निमाई पण्डित के रहस्यों की आलोचना करके उनके प्रति न्यायपंचानन की अचला श्रद्धा उत्पन्न हो गई। वे कहने लगे, "हा निमाई पण्डित! यदि मैंने उस समय जन्म ग्रहण किया होता तो न जानें तुम्हारे पास से कितना ज्ञान प्राप्त कर सकता। हा निमाई पण्डित! तुम एक बार मेरे हृदय में प्रवेश करो! तुम सचमुच पूर्णब्रह्म हो। यदि ऐसा न होता तो इस प्रकार के अपूर्व रहस्य तुम्हारे मस्तिष्क से कदापि बाहर न होते? तुम वास्तव में गौरहरि हो, क्योंकि इन सब आश्चर्यपूर्ण रहस्यों की सृष्टि करके तुमने अज्ञान-अन्धकार का विनाश किया है। यह समय अज्ञान-अन्धकार से पूर्ण है; गौर होकर तुमने उसी अंधकार का विनाश किया है। तुम हरि हो क्योंकि तुम संसार के चित्त को हरण कर सकते हो। तुमने न्याय का जो रहस्य बतलाया है उससे तुमने मेरे चित्त को हर लिया है। इन सब बातों को कहते कहते व्रजनाथ थोड़ा सा उन्मत्त होकर 'हे निमाई पण्डित! हे गौरहरि! मुझ पर दया करो' कहते कहते चिल्लाने लगे। "मैं कब तुम्हारे जैसे रहस्यों की रचना कर सकूँगा। यदि तुम दया करो तो न जाने मेरे न्याय शास्त्र में कितनी शक्ति हो सकती है।"

व्रजनाथ ने अपने मन में विचार किया कि जो लोग गौरहरि की पूजा करते हैं सम्भव है, कि वे मेरी ही भाँति निमाई के पाण्डित्य से आकृष्ट हुए है। देखें, वे गौरहरि के कौन कौन से ग्रंथ अपने पास रखते हैं? इस प्रकार सोच विचार कर व्रजनाथ ने गौरांग-भक्तों का संग करने की इच्छा की।

'निमाई पण्डित' 'गौरहरि' प्रभृति शुद्ध भगवन्नाम का बारम्बार उच्चारण और गौरभक्तों की संग-वासना यही दो कार्य व्रजनाथ के लिए महत् फलोन्मुख सुकृति हो गये। एक दिन अपनी पितामही के निकट भोजन करते समय व्रजनाथ ने पूछा—"दादी! तुमने क्या गौरहरि को देखा था?" श्रीगौरांग का नाम सुनते ही

व्रजनाथ की पितामही को अपने बाल्य जीवन का स्मरण हो आया। उन्होंने कहा, "आहा मधुरमूर्त्ति गौरांगरूप और क्या कभी दिखाई पड़ेगा? उस रूप को देखने से क्या कोई फिर गृहस्थी में रह सकता है? वे जिस समय हरिनाम का कीर्तन करते थे उस समय इस नवद्वीप के पशु, पक्षी, वृक्ष, लता आदि सब प्रेम में निस्तब्ध हो जाते थे। उसी भाव का स्मरण होते ही हम लोगों के नेत्रों से अश्रु की धारा बह चलती है।" व्रजनाथ ने पूछा - "क्या तुम उनके सम्बन्ध की कोई कहानी जानती हो?" पितामही ने कहा, "हाँ, जब वे अपनी माता शचीदेवी के साथ अपने ननिहाल आते तब हमारे घरों की बड़ी बूढ़ी स्त्रियाँ उनको शाकान्न खिलाती थीं। वे शाक व्यंजन की बड़ी प्रशंसा करते हुए भोजन करते थे।" उसी समय व्रजनाथ के पात्र में उनकी माता ने शाक-व्यंजन को रखना चाहा। "नैयायिक निमाई पण्डित का प्रिय शाक" कहकर व्रजनाथ बड़े आदर के साथ भोजन करने लगे। परमार्थ बोध शून्य व्रजनाथ न्याय पाण्डित्य सम्बन्ध में निमाई के प्रति कितना अनुरक्त हो गये यह नहीं कहा जा सकता। उन्हें निमाई अच्छे लगने लगे। निमाई का नाम सुनकर वे बहुत सुखी होते। 'जय शचीनन्दन' कहकर यदि कोई भिक्षा ग्रहण करने आता तो वे उसका बड़ा सत्कार करते हैं। मायापुर के पंडित बाबाजी आदि के निकट कभी कभी जाकर गौरांग का नाम श्रवण करते और उनकी क्रिया-विजय-लीला के सम्बन्ध में अनेक प्रश्न करते हैं। इसी प्रकार तीन चार महीने बीत गये। व्रजनाथ अब दूसरे ही रूप में बदल गये हैं। न्याय पाण्डित्य के सम्बन्ध में निमाई का नाम उन्हें अच्छा लगता था पर अब सभी बातों में निमाई का नाम उन्हें अच्छा लगता है। अब वे न्याय-विषय का अधिक आदर नहीं करते हैं। अब "नैयायिक निमाई" उनके हृदय में स्थान नहीं पाते हैं, 'भक्त निमाई' ने अब उनके हृदय पर अधिकार जमा लिया है। मृदंग और करताल का शब्द सुनते ही उनका हृदय नाचने लगता है। शुद्ध भक्त देखने से मन ही मन प्रणाम करते हैं। गौरांग के आविर्भाव की भूमि होने के कारण श्रीनवद्वीप भूमि के प्रति भक्ति करते हैं। व्रजनाथ शिष्ट हो चुके हैं। उनके प्रतिद्वन्द्वी पण्डितों ने देखा कि न्याय पंचानन अब शान्त भाव से अवस्थान कर रहे हैं। रहस्यों की बाण-वर्षा करके उन्हें अब कष्ट नहीं देते हैं। नैयायिक चूड़ामणि ने सोचा कि उनके इष्ट देवता ने व्रजनाथ को निष्कर्मा बना दिया है। अब वे निर्विघ्न हैं।

व्रजनाथ एक दिन एकान्त में बैठकर आप ही आप कहने लगे - "यदि निमाई जैसे नैयायिक न्याय को परित्याग करके भक्तिमार्ग का अवलम्बन कर सकते हैं तो फिर यदि हम लोग भी वैसा ही करें तो इसमें क्या दोष है? मैं जब तक न्याय के घेरे में था तब तक इतने भक्ति अनुशीलन के मध्य में भी मैंने कदापि मनोनिवेश करके निमाई का नाम न सुना। न्यायशास्त्र में मेरा जैसा आग्रह था उसमें उस समय मुझे खाने और सोने का भी अवकाश न मिलता था। अब मैं उसका विपरीत देख रहा हूँ। न्यायशास्त्र का विषय तो स्मरण नहीं होता केवल गौरांग के नाम का स्मरण होता है। वैष्णव-गण जो नृत्य करते हैं वह देखने में मनोहर जान पड़ता है किन्तु मैं एक वैदिक ब्राह्मण-सन्तान हूँ। कुलीन और समाज में प्रतिष्ठित हूँ। यह ठीक है कि वैष्णवों का व्यवहार अच्छा लगता है किन्तु उसमें प्रवेश करना हम लोगों के लिए शोभा नहीं देता है। अतएव मन ही मन गौरभक्ति करनी ही उचित जँचती है। श्रीमायापुर में, खोलभांगाडांगा में और वैरागीडांगा में जो कई एक वैष्णव हैं, उनके मुख की श्री देखने से मुझे सुख होता है। उनमें से श्रीरघुनाथदास बाबाजी महाशय ने मेरे चित्त को अधिक आकर्षित किया है। मेरे मन में यही आता है कि मैं सर्वदा ही उनके निकट रहकर भक्तिशास्त्र का अनुशीलन करूँ। (क्रमशः)

श्रीश्रीविश्ववैष्णवराजसभा

भागवत धर्म-प्रचार-केन्द्र व भक्ति-मठ

(१) श्रीचैतन्य मठ (प्रधान मठ)
प्राचीन नवद्वीप श्रीमायापुर, नदिया

(२) श्रीमायापुर योगपीठ
(श्रीचैतन्यदेव की जन्मभूमि) श्रीमायापुर, नदिया

(३) श्रीवास अङ्गन (श्री चैतन्यदेव का संकीर्त्तन-प्रचार क्षेत्र) श्रीमायापुर, नदिया

(४) श्रीअद्वैतभवन (प्रभु अद्वैतजी की भागवत-सभा) श्रीमायापुर, नदिया

(५) भक्त काजी की समाधि-पीठ; श्रीमायापुर, नदिया

(६) श्रीस्वानन्दसुखदकुंज
(श्रीमद्भक्तिविनोद प्रभुजी का समाधिमन्दिर)
स्वरूपगंज, नदिया

(७) श्रीगौरगदाधर मठ
चंपाहाटी समुद्रगढ़, बर्द्वान

(८) श्रीमोदद्रुमछत्र (गौड़देश का नैमिषारण्य)
मामगाछी जाननगर, बर्द्वान

(९) श्रीभागवत आसन; कृष्णनगर, नदिया

(१०) श्रीएकायन मठ; हाँसखाली, नदिया

(११) श्रीगौड़ीय मठ, बागबाजार, कलकत्ता

(१२) श्रीमाध्वगौड़ीय मठ; ६० नवाबपूर, ढाका

(१३) श्रीजगन्नाथ गौड़ीय मठ; पचापुकुर, मैमनसिंह

(१४) श्रीगोपालजी मठ; कमलापूर, ढाका

(१५) श्रीगदाई गौरांग मठ; बालियाटी, ढाका

(१६) श्रीपरमहंस मठ, नैमिषारण्य (नीमसार)

(१७) श्रीसनातन गौड़ीय मठ; फरिदपुरा, काशी

(१८) श्रीरूपगौड़ीय मठ, प्रयाग

(१९) श्रीकृष्णचैतन्य मठ; सरकार ठाकुर कुंज, श्रीधाम वृन्दावन

(२०) श्रीव्यासगौड़ीय मठ; कुरुक्षेत्र, थानेश्वर, कर्नाल

(२१) दिल्ली गौड़ीय मठ; ४३ हनुमान रोड, न्यू देहली

(२२) मद्रास गौड़ीय मठ; रयापेटा, मद्रास

(२३) श्रीपुरुषोत्तम मठ; भक्तिकुटी पुरी, (उड़ीसा)

(२४) श्रीसच्चिदानन्द मठ; उड़ियाबाजार, कटक

(२५) श्रीब्रह्मगौड़ीय मठ; अलवरनाथ, ब्रह्मगिरि, पुरी

(२६) श्रीमहेश पंडितपाट कांठालपुली; चाकदह, नदिया

(२७) ब्राह्मणपाड़ा प्रपन्नाश्रम मठ; पो० माजू, हावड़ा

(२८) आमलाजोड़ा प्रपन्नाश्रम; राजबाँध, बर्द्वान

(२९) श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ,
झुमुरकोंदा चीरकुण्डा, मानभूम

(३०) श्रीभागवतजनानन्द मठ
मु० चिरौलिया; पो० वासुदेवपूर, जि० मेदनीपूर

(३१) श्रीरामानन्द गौड़ीय मठ
कब्बुर, वेष्ट गोदावरी, मद्रास

(३२) ग्वालपाड़ा प्रपन्नाश्रम, आसाम

(३३) त्रिदण्डी-गौड़ीय मठ; भुवनेश्वर, पुरी

(३४) श्रीसारस्वत-गौड़ीय मठ; हरिद्वार

(३५) बॉम्बे गौड़ीय मठ; प्रोक्टार रोड, बॉम्बे

(३६) लण्डन गौड़ीय मठ
३, ग्लास्टर हाउस, कार्नवाल, गार्डेन्स, लण्डन, S.W.7

(३७) अमरसी गौड़ीय मठ; अमरसी, मेदिनीपुर

(३८) सरभोग गौड़ीय मठ; सरभोग, आसाम

(३९) पाटना गौड़ीय मठ; १०० मीठापुर, पाटना

(४०) श्रीबालासोर गौड़ीय मठ; बालासोर, उड़ीसा

(४१) तेतियाकुंजकानन; पो० कृष्णगढ़, नदिया

(४२) कुंजकुटीर मठ; कृष्णगढ़, नदिया

(४३) श्रीगोपीविहारी मठ, शेषशायी, जिला गुरगांव

(४४) व्रज स्वानन्द सुखद कुंज, श्रीराधाकुण्ड

(४५) बार्लिन गौड़ीय मठ कार्य्यालय, बार्लिन

(४६) श्रीमुरारी गुप्त का पाट, श्रीमायापुर, नदिया

Registered No. A. 2191.

श्रीगौड़ीय मठ द्वारा प्रकाशित भक्तिग्रन्थ

संस्कृत

१—श्रीश्रीशिक्षाष्टकम् =)
२—श्रीशिक्षादशकमूलम् सटीक ।)
३—श्रीमध्वग्रन्थसारांशवर्णनम् ≡)
४—श्रीसिद्धान्तसरस्वतीदिग्विजयः ॥)
५—श्रीगौड़ीयमठस्य परिचयः -)
६—श्रीतत्त्वसूत्रम् ।)

संस्कृत बँगला अक्षरों में

१—श्रीहरिनामामृतव्याकरणम् २)
२—श्रीमद्भगवद्गीता—श्रीबलदेव विद्याभूषण-कृत भाष्य और भक्तिविनोद प्रभुजी-कृत अनुवाद और तात्पर्य-सहित सजिल्द २) अजिल्द १॥)
३—भजनरहस्य ठा० भक्तिविनोद-कृत ॥)
४—भक्तिसन्दर्भ श्रीजीव गोस्वामी प्रभु-कृत खंडों में प्रकाशित प्रति खंड १)
५—गौड़ीय कंठहार शास्त्रसुभाषितसंग्रह सजिल्द २)
६—साधन-पथ श्रीचैतन्यमहाप्रभु का शिक्षाष्टक और श्रीरूपगोस्वामी प्रभु-कृत उपदेशामृतसहित ।=)
७—तत्त्वसूत्र ठा० भक्तिविनोद-कृत बँगला अनुवाद सहित ॥)
८—श्रीचैतन्यचन्द्रामृत श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती-कृत अन्वय और बँगला अनुवाद सहित १)
९—अर्थपंचक श्रीलोकाचार्य्य-प्रणीत बँगला अनुवाद सहित -)
१०—सदाचारस्मृति श्रीमध्वाचार्य्य-प्रणीत बँगला अनुवाद सहित -)
११—श्रीमद्भागवत श्रीधर स्वामीजी-कृत टीकानुसार अन्वय, अनुवाद और श्रीमध्वाचार्य-कृत तात्पर्य और श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती कृत टीका सहित तथा कठिन कठिन श्लोकों की पद-व्याख्या और तथ्य तथा श्लोक-सूची, विषयसूची अध्याय विवरण, पात्र-स्थान-सूची सहित प्रथम स्कंध से दशम स्कंध तक २८)
एकादश स्कंध से प्रति खंड ।≡)
१२—युक्तिमल्लिका गुणसौरभ वादिराज स्वामि-कृत अनुवाद सहित २)

बंगभाषाग्रन्थ

१३—नवद्वीपधाममाहात्म्य प्रमाणखंड अनुवाद सहित ≡)
१४—नवद्वीपशतक बँगला अनुवाद -)
१५—नवद्वीपधाममाहात्म्य ठा० भक्तिविनोद-कृत =)
१६—नवद्वीप-परिक्रमा और श्रीनरहरि चक्रवर्ती कृत -)
१७—नवद्वीपभावतरंग ।)
१८—गौड़मंडलपरिक्रमादर्पण ।)
१९—श्रीचैतन्यशिक्षामृत ठा० भक्तिविनोद कृत -)
२०—भक्तिसार ।)
२१—शरणागति -)
२२—कल्याणकल्पतरु -)॥
२३—गीतावली -)
२४—श्रीहरिनामचिन्तामणि ठा० भक्तिविनोद-कृत ॥)
२५—वैष्णवमंजूषा श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराज-कृत चारों खंड ४)
२६—प्रेमविवर्त जगदानन्द गोस्वामि-कृत ॥=)
२७—जैव धर्म २)
२८—साधककंठमाला ।)
२९—चैतन्यभागवत ठा० वृन्दावनदासकृत और श्रीमद् भक्तिसिद्धांत सरस्वती प्रभु-कृत विस्तृत व्याख्या और विवृति सहित अजिल्द ५)
३०—महाप्रभु की शिक्षा ठा० भक्तिविनोद-कृत ॥)
३१—श्रीचैतन्यचरितामृत श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामि-कृत मूल और श्रीमद्भक्तिविनोद प्रभु और श्रीमद् भक्तिसिद्धांत सरस्वती गोस्वामि-कृत विस्तृत भाष्य और सूची सहित ६)

Books in English

1. Life and Precepts of Sri Chaitanya Mahaprabhu By Thakur Bhakti-Vinode /4/
2. Namabhajan: A Translation By Swami Bon Maharaj /4/-
3. Vaishnavism: Real and Apparent /4/-
4. What Gaudiya Math is doing ? /1/-
5. The Bhagabat, Its Philosophy, Ethics and Theology /4/-
6. The Erotic Principle and Unalloyed Devotion By Prof: Sanyal /4/-

Published by Swami Bon Maharaj and Printed by R. P. Bhargava at Oudh Printing Works, Lucknow.

भागवत

एकमात्र पारमार्थिक पाक्षिक पत्र

5 and 19 January

नारायण कृष्णपक्ष व गौरपक्ष

गौराब्द ४४८

1935

पौष अमावास्या व पूर्णिमा

संवत् १९९१

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥



क्लेशघ्नी शुभदा मोक्षलघुताकृत् सुदुर्लभा ।
सान्द्रानन्दविशेषात्मा श्रीकृष्णाकर्षिणी च सा ॥

ॐ विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराज

प्रति संख्या ।-) } सम्पादक—त्रिदण्डि-स्वामी भक्तिहृदय वन { वार्षिक [illegible]

Editor:—Tridandiswami Bhakti Hriday Bon

विषय-सूची

"भागवत" के नियम

उद्देश्य

शुद्ध भगवद्भक्ति का प्रचार करना

प्रबंध-सम्बंधी

(१) यह पत्र प्रति अमावास्या और पूर्णिमा को प्रकाशित होता है।

(२) इस पत्र की डाकव्यय सहित वार्षिक भिक्षा १॥) है।

(३) इस पत्र की प्रति संख्या की भिक्षा -) है

लेख-सम्बंधी

लेखकों को केवल भागवत धर्म सम्बंधी लेख ही भागवत पत्र में छपने के लिये सम्पादक "भागवत" के नाम भेजने चाहिये। जो लेख सम्पादक को पसन्द न होंगे वे नहीं छापे जावेंगे और लेख भी वापस न किये जावेंगे।

पत्र-व्यवहार का पता—

मैनेजर—"भागवत"

सेठ रामयश रोड, नरही, लखनऊ.

All communications are to be addressed to—

The Manager 'Bhagwat'

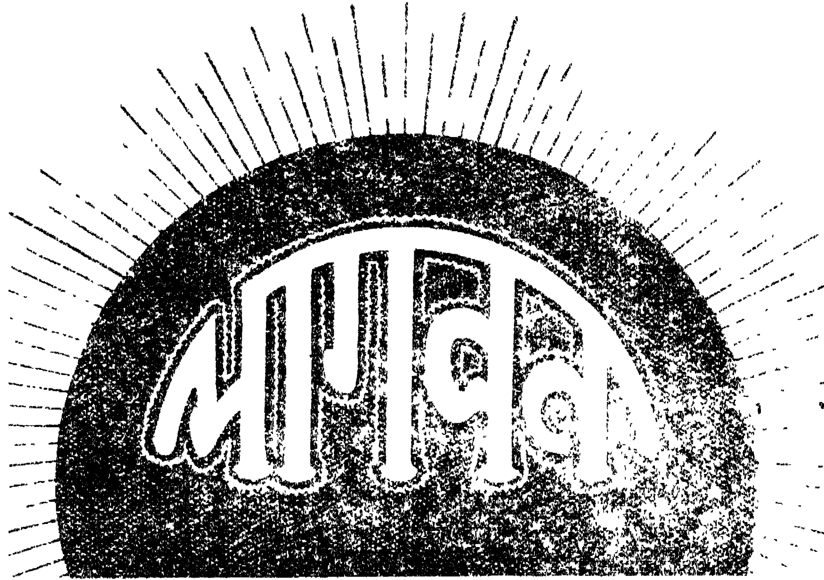
SethRamjas Road,

Narhe,

LUCKNOW.

प्रकाशक—त्रिदण्डि-स्वामी भक्तिहृदय बन

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः



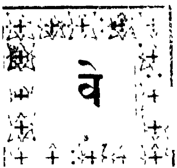
कृष्णे स्वधामोपगते धर्मज्ञानादिभिः सह। कलौ नष्टदृशामेष पुराणार्कोऽधुनोदितः॥

आचार्यदेव त्रि. गोस्वामी

वर्ष ४ | पौष पूर्णिमा गौराब्द ४८८, गौ० | जनवरी | संख्या ९-१

नित्यधर्म और साधन

(गताङ्क से आगे)



वेद में (बृ० आ० ४।५।६) कहा हुआ है,—"आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः"(१) इस मंत्र में "मन्तव्यः" शब्द में न्यायशास्त्र की चर्चा द्वारा ब्रह्मज्ञान लाभ करने का परामर्श रहने पर भी "श्रोतव्यः" शब्द में और भी कुछ अधिक विषय का प्रयोजन देखा जाता है। मैंने अनेक दिन तर्क में जीवन अतिवाहित किया है। अब श्रीगौरहरि के चरणाश्रित होने की इच्छा करता हूँ। अथवा आज श्रीरघुनाथदास बाबाजी महाशय का दर्शन करना ही श्रेय है।

दिन के अवसान समय में सूर्यदेव अस्त होने वाले हैं। और धीरे धीरे शीतल मन्द सुगन्ध त्रिविध दक्षिण वायु बहने लगी। दिग् दिगन्तर से पक्षीगण अपने अपने निर्दिष्ट स्थान को आने लगे। क्रमशः दो एक नक्षत्र गगनमंडल में उदित होने लगे। ऐसे समय में श्रीमायापुर के श्रीवास-अंगन में वैष्णव गणों ने आरति-कीर्तन करना आरम्भ कर दिया।

१—हे मैत्रेयि! परमात्मा श्रीहरि-सम्बन्धि वस्तु का दर्शन करना, उनके विषय को श्रवण करना, चिन्तन करना और ध्यान करना।

उसी समय व्रजनाथ धीरे धीरे श्रीवास अंगन के खोलभांगाडांगा में मौलश्री वृक्ष के चबूतरे पर जाकर बैठ गये। गौरहरि की आरति-कीर्तन सुन कर उनका चित्त कोमल हो गया। कीर्तन के बाद वैष्णवगण एक एक करके आकर चबूतरे पर बैठ गये। वृद्ध रघुनाथदास बाबाजी महाशय, 'जय शचीनन्दन' 'जय नित्यानंद', 'जय रूप सनातन', 'जय दास गोस्वामी' कहते कहते चबूतरे पर आकर बैठ गये। वृद्ध वैष्णव को सभी ने दण्डवत् प्रणाम किया। व्रजनाथ उस समय बिना उन्हें प्रणाम किये न रह सके। व्रजनाथ की सुनम्रता देखकर वृद्ध बाबाजी ने उनका आलिंगन किया और अपने पास बिठा लिया और पूछा "बेटा तुम कौन हो?" व्रजनाथ ने कहा "मैं एक तत्त्व पिपासु हूँ। आपसे कुछ मांगना चाहता हूँ।" निकटवर्ती एक वैष्णव व्रजनाथ का परिचय जानते थे। उन्होंने कहा—"ये व्रजनाथ न्याय-पंचानन हैं। न्यायशास्त्र में इनके समान नवद्वीप में कोई दूसरा पण्डित नहीं है। आजकल शचीनन्दन के प्रति इनमें कुछ कुछ श्रद्धा हो रही है।" व्रजनाथ का माहात्म्य सुनकर वृद्ध बाबाजी ने अनुनय पूर्वक कहा—"बेटा! तुम पण्डित हो, हम मूर्ख और अकिंचन हैं। तुम मेरे शचीनन्दन के धामनिवासी हो। मैं तुम्हीं लोगों का कृपापात्र हूँ। हम तुम्हें क्या शिक्षा देंगे? कृपा करके तुम्हीं गौरांग की कथाएँ कहकर हम लोगों को शान्ति प्रदान करो। इसी प्रकार की बातें हो ही रही थीं कि वैष्णवगण अपने कार्य से चले गये। वृद्ध बाबाजी और व्रजनाथ रह गये।

व्रजनाथ बोले—"बाबाजी महाशय। मैं जाति का ब्राह्मण हूँ उस पर विद्याभिमानी हूँ। अहंकार के कारण मैं पृथिवी को सकोरे की भाँति देखता हूँ, साधु-महन्तों का सम्मान करना नहीं जानता। नहीं जानता कि किस पुण्य प्रताप से आप लोगों के कार्य और चरित्र के प्रति मुझे कुछ कुछ श्रद्धा हो रही है। दो एक बातें पूछूँगा, उत्तर प्रदान कीजिए। मैं कपटभाव से नहीं आया हूँ। कृपया यह बतलाइए कि जीव का साध्य-साधन क्या है? न्याय शास्त्र का पाठ करते समय मैंने यह स्थिर किया है कि जीव ईश्वर से नित्य पृथक् है। ईश्वर की कृपा ही जीव की मुक्ति का कारण है। ईश्वर की कृपा जिससे प्राप्त हो सके वही साधन है। साधन करके जो कुछ मिलता है वही साध्य है। मैंने न्याय-शास्त्र में अनेक बार इस बात की खोज की है कि साध्य-साधन क्या है? परंतु उसमें मैं कुछ निर्णय न कर सका। मेरी बुद्धि कुछ भी काम नहीं करती। आप लोगों ने साध्य-साधन के सम्बन्ध में जो सिद्धान्त निश्चय किये हो कृपया उन्हें बतलाइए।"

श्रीरघुनाथदास बाबाजी महानुभव हैं। इन्होंने अनेक दिनों तक राधाकुण्ड में अवस्थान कर श्रीदासगोस्वामी के चरणाश्रय किया था। प्रतिदिन अपराह्न में श्रीदासगोस्वामी के मुख से गौरलीला श्रवण करते थे। श्रीरघुनाथदास बाबाजी और श्रीकृष्णदास कविराज महाशय ये दोनों अनेक समय तत्त्व की आलोचना करके जब कभी किसी शंका में पड़ जाते, तब श्रीदास गोस्वामी से जिज्ञासा करके उसका समाधान कर लेते थे। इस समय श्रीगौड़मण्डल में श्री रघुनाथदास बाबाजी ही प्रधान पंडित बाबाजी थे। गोद्रुम के प्रेमदास परमहंस बाबाजी महाशय से इनका अनेक प्रेमालाप होता। श्रीव्रजनाथ के प्रश्न को सुनकर इन्होंने बड़ी प्रसन्नता के साथ कहा "न्याय-पंचानन महाशय! न्यायशास्त्र को पढ़कर भी जो साध्य-साधन के विषय में जिज्ञासा करते हैं वही संसार में धन्य हैं। क्योंकि विचार करके न्याय के विषय का संग्रह करना ही न्यायशास्त्र का प्रधान उद्देश्य है। न्यायशास्त्र पढ़कर जिन्होंने केवल वितर्क ही प्राप्त किया है उनके लिए यही कहना होगा कि उनको न्यायशास्त्र पढ़ने का अन्याय ही फल प्राप्त हुआ है। उनका श्रम सर्व बेकार हुआ और उनका जीवन भी व्यर्थ ही है। जिस तत्त्व को साधन करके प्राप्त किया जाता है वही साध्य है। उसी साध्यवस्तु की प्राप्ति के लिए जिस उपाय का अवलम्बन किया जाता है उसी का नाम साधन है। मायाबद्ध जीवगण अपनी अपनी प्रवृत्ति और अधिकार के अनुसार साध्य विषय को पृथक् पृथक् रूप से देखते

है। वास्तव में साध्यतत्त्व एक ही है—दो नहीं। प्रवृत्ति और अधिकार-भेद से साध्यवस्तु के तीन प्रकार हैं अर्थात् भुक्ति, मुक्ति और भक्ति। जो लोग प्रापंचिक-कर्म में आबद्ध और प्रापंचिक-सुख के व्यवसाय में व्यस्त हैं वे भुक्ति को ही साध्य के रूप में मानते हैं। शास्त्र कामधेनु है—जो जो कुछ पाने की इच्छा करते हैं, शास्त्रों में वे वही लाभ करते हैं। प्रापंचिक सुखभोग को कर्मकाण्डीय शास्त्रों में साध्य कहकर उसके अधिकारियों को शिक्षा दी गई है। प्रापंचिक जगत् में जितने प्रकार के भावी सुखों की आशा है वे सब उन्हीं शास्त्रों में निर्दिष्ट हुए हैं। इस संसार में प्रापंचिक देह धारण करके जीव इन्द्रियसुख का विशेष आदर करता है। उन्हीं इन्द्रियसुखों का भोगायतन यही जड़ जगत् है। जन्म ग्रहण करने के मुहूर्त से लेकर मृत्यु तक जिस इन्द्रियसुख का भोग किया जाता है उसका नाम ऐहिक सुख है। मृत्यु होने के पश्चात् जिस इन्द्रियसुख का भोग किया जाता है उसका नाम आमुष्मिक सुख है। आमुष्मिक सुख अनेक प्रकार का है—स्वर्ग और इन्द्रलोक में अप्सरादि का नृत्य दर्शन, अमृतभोजन, नन्दनकानन में पुष्पादि का घ्राण, इन्द्रपुरी और नन्दनकानन की शोभा का दर्शन, गन्धर्वों का गीत श्रवण और विद्याधरियों के साथ विलास—इन सब सुखों का नाम स्वर्गीय सुख है। इसी प्रकार महः और जनलोक में भी थोड़े से सुख का वर्णन किया गया है। भू-लोक का इन्द्रियसुख अत्यन्त स्थूल है। पर परलोक में इन्द्रियाँ और उनके विषय क्रमशः सूक्ष्म हो जाते हैं। यही एकमात्र भेद है परन्तु सब इन्द्रियसुख ही है। इन्द्रियसुख छोड़कर और कुछ नहीं है। उन सब लोकों में चित् सुख नहीं है। चिदाभास जो मनोरूप लिंग-शरीर है तद्गत सुख ही वहाँ वर्तमान है। इन सब सुखभोगों का नाम 'भुक्ति' है। कर्मचक्रगत जीवगण भुक्ति की आशा में भुक्ति के साधक जिन कर्मों का आश्रय लेते हैं उसे वे लोग 'साधन' कहते हैं। "स्वर्गकामोऽश्वमेधं यजेत्" (यजु० २। ५। ५) (१) अग्निष्टोम, विश्वदेवबलि, इष्टापूर्त, दर्श पौर्णमासी इत्यादि बहुविध भुक्तिसाधन शास्त्र में निर्णीत हुए हैं। भोगप्रवृत्त पुरुषों के लिए भुक्ति ही साध्य है। इसके अतिरिक्त कुछ मनुष्य ऐसे हैं जो कि इस संसार के क्लेश से व्याकुल होकर, प्रापंचिक भोगायतन रूप चतुर्दश लोकों को तुच्छ जानकर कर्मचक्र से निकलने की इच्छा करते हैं। उनके विचार में मुक्ति ही एकमात्र साध्य है। भुक्ति को वे बन्धन समझते हैं। उनका कहना है कि जिनकी भोग-प्रवृत्ति का नाश नहीं हुआ है वे भले ही कर्मकाण्ड का आश्रय लेकर भुक्ति-साधन करें किन्तु (गी० ९-२१) 'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति' (२) इस श्लोक से यह निश्चित रूप से जाना जाता है कि भुक्ति कदापि नित्य नहीं है अर्थात् क्षयिष्णु है, जो अवश्य क्षीण होगा, वह प्रापंचिक है आध्यात्मिक नहीं है। अतएव जो नित्य है उसी का साधन करना ही कर्तव्य है। ज्ञानकाण्डीय शास्त्र में इस प्रकार के साध्यसाधन का विचार देखा जाता है। जीव जिस प्रकार अधिकार प्राप्त करते हैं, कामधेनु रूप शास्त्र उसी अधिकार की उपयोगी व्यवस्था दिखा देते हैं। मुक्ति लाभ करके यदि जीव की सत्ता रहती है तो फिर मुक्ति ही चरम साध्य नहीं है। इसीलिए वे निर्वाण तक मुक्ति की सीमा बढ़ाते हैं। वास्तव में जीव नित्य है, अतएव उस प्रकार का निर्वाण जीव के सम्बन्ध में सर्वथा असम्भव है। (श्वे. उ. ६-१३) "नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्" (३) इस प्रकार वेद मंत्र से जीव समूह की नित्यता स्वीकृत हुई है। नित्यवस्तु की निर्वाणगति असम्भव है। मुक्त होकर भी जीव की सत्ता अवश्य रहेगी। इस प्रकार जो विश्वास करते हैं वे भुक्ति मुक्ति को चरमसाध्य के रूप में नहीं मानते हैं। ये दोनों ही अवान्तर साध्य वस्तु हैं। समस्त कार्यों में ही साध्य और साधन वर्तमान हैं। जिस कार्य का उद्देश करते हैं वही

१—स्वर्गभोग के लिए अश्वमेध यज्ञ करना।

२—स्वर्गभोग के पश्चात् पुण्य का क्षय होने पर फिर मर्त्यलोक में आते हैं।

३—वे नित्यवस्तुओं के मध्य में नित्य और चेतन वस्तुओं के मध्य में चेतन हैं।

साध्य है और जिस कार्य के द्वारा वह साधित होता है वही साधन है। विवेचना करके देखिये, साध्य और साधन जीव के पक्ष में एक शृंखलामय तत्व है। जो साध्य है वही उसके उत्तर में साध्य का साधन है। इस प्रकार शृंखला अवलम्बन करके उसी शृंखला के चरमस्थल में जो साध्य प्राप्त होता है वही चरमसाध्य है। वह फिर साधन नहीं होता। क्योंकि उसके उत्तर में और कुछ साध्य नहीं है। इस साध्य-साधन-पर्वरूप शृंखला का बाह्य अनुबन्ध पार होकर भक्तिरूप अनुबन्ध अन्त में प्राप्त होता है। अतएव भक्ति ही चरम साध्य है क्योंकि भक्ति ही जीव का नित्यसिद्ध स्वभाव है। मानव जीवन में जितने कार्य हैं वे सभी साध्य-साधन-शृंखला के एक-एक अनुबन्ध हैं। अनेक ने तो अनुबन्ध के अनुसार साध्य साधन-शृंखला के कर्मरूप पर्व का निर्माण किया है पुनश्च अनेक ने अनुबन्ध के उत्तर में क्रमागत ज्ञान रूप पर्व का निर्माण किया है। ज्ञान रूप पर्व की परिसमाप्ति में भक्ति रूप पर्व का आरम्भ होता है। कर्म पर्व का शेष रहस्य प्रेम भक्ति है। जीव की स्वरूपता का विचार करने से भक्ति ही साधन और भक्ति ही साध्य है, ऐसा निश्चित होता है। कर्म और ज्ञान का साध्य और साधकता अवान्तर अर्थात् मध्यवर्ती अवस्था है, चरमस्पर्शी अवस्था नहीं है।

व्रजनाथ—"केन कं पश्येत्" (बृः आः ४—४—१५ और २।४।१४) इत्यादि श्रुतिवाक्य में, "अहं ब्रह्मास्मि" (बृः आः १—४—१०) "प्रज्ञानं ब्रह्म" (ऐतः १।५।३) "तत्त्वमसि श्वेतकेतो" (छाः ६—८—७) (१) प्रभृति महावाक्य में भक्ति की चरमता और साध्यता नहीं दिखाई पड़ती। अतएव मुक्ति को चरम साध्य कहने में क्या दोष होता है?

बाबाजी महाशय—मैंने पहिले ही कहा है कि प्रवृत्ति के अनुसार साध्य के भेद पाये जाते हैं। जब तक भुक्तिस्पृहा रहती है तब तक 'मुक्ति' नामक कोई भी तत्व स्वीकृत नहीं होता। उसके अधिकारी के पक्ष में "अक्षय्यं ह वै चातुर्मास्ययाजिनः" (आपस्तम्ब श्रौतसूत्र २य प्रः १म अः १म खण्ड। २) इत्यादि अनेक वाक्य हैं। तो फिर "मुक्ति" शब्द क्या अच्छा नहीं है? कर्मिगण मुक्ति का अनुसन्धान नहीं पाते; इसीलिए क्या वेद-शास्त्र में मुक्ति का उल्लेख नहीं किया गया है। दो एक कर्मी ऋषियों ने उत्तम मनुष्यों के लिए वैराग्य और असमर्थ मनुष्यों के लिए कर्म—ऐसा उपदेश किया है। ये सब व्यवस्थाएँ निम्नाधिकारियों को अपने-अपने अधिकार में निष्ठा दान करने के लिए लिखी गई हैं। अधिकारच्युत होने पर जीव का कल्याण नहीं होता। अधिकार-निष्ठा के साथ काम करने से उस अधिकार के ऊपर जो अधिकार है वह स्वतः ही मिल जाता है। अतएव वेदशास्त्र में इस प्रकार की निष्ठा-उत्पादक व्यवस्था की निन्दा नहीं की गई है, निन्दा करने से अधोगति होती है। संसार में जितने जीवों ने उन्नति की है उन सबों ने केवल अधिकार-निष्ठा का ही सहारा लेकर इस फल को प्राप्त किया है। कर्माधिकार में कर्म के ऊपर जो मुक्ति-साधक ज्ञान है यह प्रदर्शित न होने पर भी ज्ञानाधिकार में मुक्ति की प्रशंसा के स्थान में आपके कहे हुए मंत्र वाक्य समूह प्रतिष्ठित होते हैं। जिस प्रकार कर्माधिकार के ऊपर ज्ञानाधिकार है उसी प्रकार ज्ञानाधिकार के ऊपर भक्त्यधिकार है। "तत्त्वमसि" "अहं ब्रह्मास्मि" इत्यादि मंत्र वाक्यों में ब्रह्मनिर्वाण की प्रशंसा द्वारा मुमुक्षु को उनके अधिकार में निष्ठा प्रदान करने के लिए व्यवस्था की गई है, उसमें गुण छोड़कर कोई अवगुण नहीं है। फिर भी वही अन्तिम है, ऐसा नहीं है। वेद मंत्र के सिद्धान्त-स्थल में भक्ति को साधन और प्रेमभक्ति को साध्य कहकर निर्णय किया गया है।

व्रजनाथ—महावाक्य में क्या अवान्तर साध्य-साधन की बातें रह सकती हैं?

बाबाजी—आप जिन्हें 'महावाक्य' बतला रहे

१—"कौन किसके द्वारा किसका दर्शन करेगा?" "मैं जीवात्मा ब्रह्म जातीय वस्तु हूँ।" "प्रज्ञ (प्रेमभक्ति) अप्राकृत—ब्रह्मस्वरूप है" "हे श्वेतकेतो, तुम उन्हीं के हो।"

२—अक्षय स्वर्गकामी होकर चातुर्मास्य व्रत का याजन करना।

हैं वे महावाक्य हैं और वेद के अन्यान्य वाक्यों से श्रेष्ठ हैं ऐसा नहीं बतलाया गया है। ज्ञानाचार्यगण अपने मत की प्रधानता दिखाने के लिए उन्हें महावाक्य लिख गये हैं। वास्तव में प्रणव ही महावाक्य है और समस्त वेदवाक्य प्रादेशिक हैं। वेदवाक्य मात्र को महावाक्य कहने से दोष नहीं होता किन्तु वेद के एक मंत्र को 'महावाक्य', दूसरे को 'सामान्य वाक्य' कहने से मतवाद हो जाता है और वेद के निकट अपराधी होना पड़ता है। वेद में कर्मकाण्ड की प्रशंसा, मुक्ति की प्रशंसा प्रभृति अनेक प्रकार अवान्तर साध्य-साधन की बातें हैं। सिद्धान्त-स्थल में उन सब की चरम मीमांसा देखी जाती है। वेदशास्त्र गोरूप है और उसी गौ को दुहनेवाले श्रीनन्दनन्दन ने सिद्धान्तस्थल में कैसा वेदार्थ प्रकाश किया है उसे श्रवण कीजिए,—

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद् योगी भवार्जुन ॥ (१)
योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ।
श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥ (२)
(गी० ६ । ४६-४७)

यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥ (३)
श्वेताश्वतर में ६—२३

'भक्तिरस्य भजनं तदिहामुत्रोपाधिनैरास्येनामुष्मिन् मनसः कल्पनम्' (गोपालतापनी) (४)

"आत्मानमेव प्रियमुपासीत"; (बृः १-४-८। ५)
"आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः।" (बृः आः ४-५-६। (६)

इन सब वेद वाक्यों की आलोचना करके देखने से भक्ति को ही साधन के रूप में स्थिर करना होगा।

प्रजनाथ—कर्मकाण्ड में कर्मफलदाता ईश्वर के प्रति श्रद्धाभक्ति करने की विधि दी हुई है। ज्ञानकाण्ड में भी साधन चतुष्टय के मध्य में हरि-तोषण रूप भक्ति की व्यवस्था देख रहा हूँ। भक्ति यदि भुक्ति और मुक्तिसाधिनी हो तो फिर उनकी साध्यता कहाँ रही? वे भुक्ति और मुक्ति का साधन करके स्वयं निरस्त होंगी—यही जन् साधारण की शिक्षा है। इस विषय में मुझे कुछ दृढ़ शिक्षा प्रदान कीजिए।

बाबाजी—कर्मकाण्ड में फलभोगसाधिनी भक्ति और ज्ञानकाण्ड में मुक्तिसाधिनी भक्ति की जो व्यवस्था है वह वास्तव में सत्य है। परमेश्वर के सन्तुष्ट हुए बिना कोई भी फल नहीं होता। ईश्वर सर्वशक्ति का आश्रय है। जीव में या जड़ वस्तु में जितनी भी शक्ति वर्तमान है वह ईश्वर शक्ति का अणु प्रकाशमात्र है। कर्म अथवा ज्ञान ईश्वर को सन्तुष्ट नहीं कर सकता किन्तु ईश्वर भक्ति के आश्रय में अपना फल देता है। इसलिए कर्म और ज्ञान में भक्त्याभास की व्यवस्था है। उसमें जो भक्ति दिखाई पड़ती है वह शुद्ध भक्ति नहीं है, वह तो फल-साधक भक्त्याभासमात्र है। भक्त्याभास भी दो प्रकार का — शुद्ध भक्त्याभास और

१—सकाम कर्मरत तपस्वी की अपेक्षा कर्मयोगी श्रेष्ठ है। सांख्यज्ञानी की अपेक्षा योगी ही श्रेष्ठ है। योगशून्य तपस्या, ज्ञान, या कर्म निरर्थक है। अतएव हे अर्जुन! तुम योगी बनो।

२—जितने प्रकार के योगी हैं उन सब में भक्तियोग अनुष्ठाता योगी ही श्रेष्ठ है। जो श्रद्धावान होकर मेरा भजन करते हैं, वही योगियों में श्रेष्ठ हैं।

३—जिनके श्रीभगवान में पराभक्ति वर्तमान है और जो समान रूप से श्रीभगवान और श्रीगुरुदेव की शुद्धभक्ति करते हैं, उसी महात्मा के सम्बन्ध में ये सब विषय उपदिष्ट होकर प्रकाशित होते हैं।

४—श्रीगोविन्द की भक्ति ही भजन है। इहलोक और परलोक सम्बन्धी कामना निरसन पूर्वक इस कृष्णाख्य परब्रह्म में शुद्ध मन के प्रेम द्वारा तन्मयत्व ही भगवान का भजन है और यही भजन नैष्कर्मज्ञान है।

५—आत्मा को ही परमात्मा श्रीभगवान को ही) प्रिय-बुद्धि से उपासना करना।

६—हे मैत्रेयि! परमात्मा श्रीहरिसम्बन्धी वस्तु का दर्शन करना। उनका विषय श्रवण करना, चिन्ता करना और ध्यान करना।

विद्ध भक्त्याभास। शुद्ध भक्त्याभास के सम्बन्ध में बाद में कहूँगा। विद्ध भक्त्याभास तीन प्रकार का है। कर्मविद्ध भक्त्याभास, ज्ञानविद्ध भक्त्याभास और कर्म तथा ज्ञान उभय-विद्ध भक्त्याभास। यज्ञादि के समय "हे इन्द्र, हे पूषन, तुम लोग अनुग्रह करके इस यज्ञ के फल को प्रदान करो।" इस प्रकार की जितनी भक्त्याभास-क्रियाएँ हैं, वे सब कर्मविद्ध भक्त्याभास हैं। इसी कर्मविद्ध भक्त्याभास को किसी-किसी महात्मा ने कर्ममिश्रा भक्ति कहा है। किसी-किसी ने इसको "आरोप सिद्धा भक्ति" बतलाया है। "हे यदुनन्दन, मैं संसार के भय से भीत होकर तुम्हारे निकट आया हूँ और तुम्हारे 'हरेकृष्ण' नाम को दिनरात जप रहा हूँ। तुम कृपा करके मुझे मुक्ति प्रदान करो।" "हे परमेश! तुम्हीं ब्रह्म हो, मैं मायागर्त में पड़ा हुआ हूँ, तुम मुझे निकाल लो, अपने से अभिन्न करो।" इस प्रकार के उच्छ्वास—यह ज्ञानविद्ध भक्त्याभास कहलाते हैं। इसको महात्माओं ने 'ज्ञानमिश्र भक्ति' बतलाया है। यह भी "आरोपसिद्धा" है। ये सब शुद्ध भक्ति से पृथक् हैं। 'श्रद्धावान् भजते यो माम्' इस श्रीमुखवाक्य में जिस भक्ति का उद्देश है, वही शुद्ध भक्ति है। वही शुद्ध भक्ति ही हम लोगों का साधन है और सिद्धावस्था में वही प्रेम है। कर्म और ज्ञान ये जो दो उपाय कहे गये हैं वे केवल भुक्ति और मुक्ति के साधन हैं, जीव के नित्यसिद्ध भाव के साधन नहीं हैं।"

इन बातों को सुनकर उस दिन व्रजनाथ और कुछ अधिक न पूछ सके। उन्होंने मन-ही-मन निश्चय किया कि न्यायशास्त्र के रहस्यों की खोज करने की अपेक्षा इन सूक्ष्म तत्त्वों का विचार करना कहीं अच्छा है। बाबाजी महाशय इन सब बातों के अधिक ज्ञाता हैं। मैं क्रमशः इन सब बातों पर प्रश्न करके ज्ञान-लाभ करूँगा। आज अधिक रात हो गई, अब घर चलूँ।" यह सोच-विचार कर उन्होंने बाबाजी महाशय से कहा—"बाबाजी महाशय आज मैंने आपके निकट सुज्ञान प्राप्त किया। मैं कभी-कभी आपके समीप आकर इस प्रकार की शिक्षा ग्रहण करता रहूँगा। आप महामहोपाध्याय हैं। मेरी ओर कृपा कीजिएगा। मैं एक बात पूछना चाहता हूँ। उसका उत्तर सुनकर मैं चला जाऊँगा। मेरा प्रश्न यह है कि—श्रीशचीनन्दन गौरांग ने अपनी शिक्षाओं को किस ग्रंथ में लिपिबद्ध किया है? मैं उसी ग्रंथ को प्राप्त करना चाहता हूँ।"

बाबाजी—श्री-श्री महाप्रभु ने स्वयं किसी ग्रंथ को नहीं लिखा है। उनके अनुचरों ने उनके आदेशानुसार अनेक ग्रंथों की रचना की है। महाप्रभु ने स्वयं जीवगण को सूत्र के रूप में "शिक्षाष्टक"-नामक आठ श्लोकों को प्रदान किया है, वही भक्तों के कण्ठमणि हार हैं। उसी में उनकी सब शिक्षाएँ गूढ़ रूप से वर्तमान हैं। उन्हीं गूढ़ तत्त्वों का विचार करके भक्तों ने दशमूल की रचना की है। उसी दशमूल में सम्बन्ध—अभिधेय—प्रयोजन—विचार से साध्यसाधन सूत्र के रूप में कहा हुआ है। आप सर्वप्रथम उसी को समझ लें।

व्रजनाथ ने कहा—आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। कल सन्ध्या के बाद आपके समीप आकर दशमूल की शिक्षा ग्रहण करूँगा। आप मेरे शिक्षा-गुरु हैं—मैं आपको दण्डवत् प्रणाम करता हूँ।"

सादर उनका आलिंगन करके बाबाजी महाशय ने कहा—"बेटा! तुमने ब्रह्मकुल को पवित्र किया है। कल सन्ध्या के समय आकर मुझे आनंद प्रदान करना।"

चरम श्रेयलाभ

(पूर्व प्रकाशित से आगे)

नवीन आलोक

मानो पथिक ने आज एक बिलकुल नई बात सुनी हो, वह कौतूहलवश पूछने लगा, "हे देव ! तो क्या इस मधुर धाम से भी बढ़कर कोई और रसपूर्ण धाम है ? यहाँ तो सभी कुछ सुन्दर और नित्य नई शोभा से परिपूर्ण दीख पड़ता है।"

पुरुष—वत्स ! यह धाम परिपूर्ण परमानन्द का स्थान है, किन्तु कलियुग के जीव बड़े दुर्बल होते हैं। वह जड़ चक्षुओं से इस धाम का दर्शन न कर सकेंगे। श्रीगोलोक की शोभा सम्पद, श्रीगोलोक विहारी के रसराज का माधुर्य ग्रहण करना उनकी सामर्थ्य के बाहर है। गोकुलचन्द्र द्वापरयुग में कृपापूर्वक जगत् में अवतीर्ण हुए थे, परन्तु मूर्ख और पतित जीव उनकी उन्नतोज्ज्वल रसमाधुरी न ग्रहण कर सके। इसलिये वही गोकुलनाथ कलियुग के जीवों के प्रति कृपा करके स्वयं अपनी रसमुद्रा प्रदान करने के लिये आये हैं, इस बार वह अपने निज भेष में नहीं आये हैं, परन्तु अपने भक्त के भेष में भगवान होकर, उन्होंने स्वयं भक्तमूर्ति धारण की है। कलिकाल के जीवों के हित के लिये द्वार-द्वार साङ्गोपाङ्ग सहित प्रेमकल्पतरु का फल वितरण किया है। और सारे जीवों को सर्वदा यही अमृतफल वितरण करने के लिये आदेश कर गये हैं—

"अतएव माली आज्ञा दिल सबाकारे ।
जहाँ तहाँ प्रेमफल देह जारे तारे ॥"

वत्स ! क्या ऐसा परमदयालु और भी कोई तुमने देखा या सुना है ? माधुर्य की पूर्ण सीमा को धारण करते हुए भी उन्होंने औदार्य्य गुण द्वारा माधुर्य्य को आच्छादन कर लिया है, चलो उनके उद्देश्य कर प्रणाम करके, उनके धाम का दर्शन करें। मेरे पीछे-पीछे आओ।

नवद्वीप

सर्व्व अवतारेर सकल भक्त लेया ।
वृन्दावनचन्द्र गौर विहरे नदिया ॥

नवद्वीप वृन्दावन—दुई एक हय ।
गौर श्यामरूपे प्रभु सदा विलसय ॥
गौर कृष्णे भेद बुद्धि करे जेई जन ।
नवद्वीप वृन्दावन भेद बुद्धि तार ॥
गौर कृष्ण जे हार जीवन प्रानधन ।
तांहार सर्वस्व नवद्वीप वृन्दावन ॥
जे सुख विलास नवद्वीप वृन्दावने ।
भक्त कृपा हैले सब मर्म्म जाने ॥

शुद्ध भक्त की कृपा न होने से धाम के स्वरूप का दर्शन होना असम्भव है। माया के नेत्रों से जीव श्री धाम को साधारण स्थान की तरह देखता है। वत्स ! और भी सुनो, जिस प्रकार श्रीकृष्ण ने गोलोक मथुरा और द्वारका लीला की है उसी प्रकार गौरहरि भी गौड़मण्डल क्षेत्रमण्डल और माथुरमण्डल में नित्यकाल लीला किया करते हैं। इसी गौड़मण्डल के अन्तर्गत श्रीधाम नवद्वीप है। इस नवद्वीप की महिमा वास्तव में अकथनीय है। कवियों ने समस्वर से नवद्वीप की महिमा का कीर्तन किया है।

स्वजनः श्रीवृन्दावन मिति यमाहुर्बहुविदो ।
यमेतं गोलोकं कतिपयजनाः प्राहुरपरे ॥
सितद्वीपं प्राहुः परमपि परव्योम जगदुः ।
नवद्वीपः सोऽयं जगति परमाश्चर्य महिमा ॥

पथिक—प्रभो आपकी अमृतमयी वाणी सुनकर मेरे हृदय में परमानन्द का सञ्चार होता है।

पुरुष—और सुनो। नव द्वीपों को लेकर नवद्वीप बना है। यह एक एक द्वीप एक एक साधन-भक्ति का स्वरूप है।

नवद्वीप ऐछे विख्यात जगते ।
श्रवणादि नवविध भक्ति दीप्त जाते ॥

श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्च्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन—साधन भक्ति की यही नौ विधियाँ हैं। इनमें से आत्मनिवेदन व शरणागति सबका केन्द्र या मूल है। भीतहीन हवेली के जिस प्रकार देखने में सुरम्य होने पर भी पतिक्षण

गिरकर ध्वंस हो जाने का भय रहता है, उसी प्रकार आत्मनिवेदन-रहित श्रवणकीर्त्तनादि भक्ति के अंगों की भी कोई स्थिरता नहीं।

पथिक—प्रभो ! आपकी कृपा से मुझे अनेकों तत्वों का ज्ञान प्राप्त हुआ है। ऐसी कृपा कीजिये कि नित्यकाल में इसी प्रकार आपका अनुसरण कर सकूं।

पुरुष—वत्स ! गौरकृपा से तुम्हारे हृदय में और भी बहुत से तत्वों का प्रकाश होगा।

उज्ज्वल रसेर प्रेमसिन्धु - निस्यन्दिनी।
अपूर्व्व गौरिकाभाव खेलनानन्दिनी॥
राधाप्रकटित गौड़ाटवी गौरावास।
रसपीठ हवे नव हइत प्रकाश॥

पथिक—देव ! इस अधम के प्रति आपकी कृपा रूपा वर्षाधारा निरन्तर बहती है।

पथिक और सुनो,

"अष्ट द्वीप अष्ट दल मध्ये द्वीपवर।
अन्तर्द्वीप नाम तार अतीव सुन्दर॥
तार मध्यभागे योगपीठ मायापुर।
देखिये आनन्द लाभ करिबे प्रचुर॥
"ब्रह्मपुर" बलि श्रुतिगण जाके गाय।
मायामुक्त चक्षे ताहा मायापुर भाय॥
सर्व्वोपरि श्रीगोकुल नाम महावन।
जथा नित्य लीला करे श्रीशचीनन्दन॥
व्रजे सेई धाम गोप-गोपी-गणालय।
नवद्वीप श्रीगोकुल द्विजवास रय॥
जगन्नाथ - मिश्र गृह परम पावन।
मायापुर मध्ये शोभे नित्य निकेतन॥
मायाजालावृत चक्ष देखे क्षुद्रागार।
जड़मय भूमि जल द्रव्य जत आर॥
माया कृपा करि जाल उठाय जखन।
आँखि देखे सुविशाल चिन्मय भवन॥"

आठ पार्षदियों की तरह आठ द्वीप केन्द्रस्थलस्थ कर्णिका (कमल के छत्ता) के समान अन्तर्द्वीप को धारण किये हैं। यही अन्तर्द्वीप श्रीमायापुर योगपीठ है।

"गङ्गा यमुनार योग जेई द्वीप रय।
अन्तर्द्वीप नाम तार सर्व्वशास्त्रे कय॥
अन्तर्द्वीप मध्ये आछे पीठ-मायापुर।
जथाय जन्मिल प्रभु चैतन्य ठाकुर॥
गोलोकेर अन्तर्वर्त्ती जेई महावन।
मायापुर नवद्वीप जाने भक्तगण॥
श्वेतद्वीप वैकुण्ठ गोलोक - वृन्दावन।
नवद्वीपे सब तत्त्व आछे सर्व्वक्षण॥
अयोध्या मथुरा, माया, काशी, काञ्ची आर।
अवन्ती द्वारका जेई पुरी खेड सार॥
नवद्वीपे से समस्त निज निज स्थाने।
नित्य विद्यमान गौरचन्द्रेर विधाने॥
गङ्गाद्वार मायार स्वरूप मायापुर।
आहार माहात्म्य शास्त्रे आछये प्रचुर॥
सेई मायापुरे जेई जाय एक बार।
अनायासे हय सेई जन माया पार॥
मायापुर श्रीधामे जायार अधिकार।
दूरे जाय जन्म कभु नहे आरबार॥"

पथिक—प्रभो ! कृपा करके मुझे उसी स्थान का दर्शन कराइये, मैंने अब हर प्रकार से आपकी शरण ग्रहण कर ली है। आप ही मुझ जैसे भ्रान्त पथिक के एकमात्र पथप्रदर्शक और मङ्गलविधाता हैं, मैंने पहिले आपके प्रति न जाने कितने प्रकार के सन्देह करके आपके चरणों में अपराध किया है। आप कृपामय हैं इसलिये कृपा करके बालक के अपराध को पग-पग पर क्षमा करते हैं।

स्वप्न एवं जागरण

भ्रान्त पथिक स्वप्न में यह सब अपूर्व्व दृश्य देख रहा था। पथिक के न जाने कितने जन्म जन्मान्तर की सुकृति इकट्ठा थी जो उसे इस प्रकार के दर्शन का महा सौभाग्य प्राप्त हुआ। हठात् निद्रा देवी पथिक के नेत्रों से दूर हुई। पथिक को ऐसा जान पड़ा कि मानो वह आकाश से धरती पर गिर पड़ा हो। दूसरे ही क्षण चक्षु खोलकर उसने देखा कि वही पूर्व्वपरिचित सौम्यमूर्ति पुरुष उसके सम्मुख उपस्थित हैं। पथिक साष्टाङ्ग उन महापुरुष के चरणों पर गिर पड़ा और अपने स्वप्न का वृत्तान्त कहकर गौर-जन्म-स्थली का दर्शन करने की बड़ी उत्कंठा दिखलाने लगा।

उस सौम्यमूर्ति पुरुष ने पथिक से धीरज बधाकर कहा, "वत्स! तुम्हारा भाग्य जाग उठा है! तुम बड़े सुकृतिमान हो। तुम्हारा स्वप्न मिथ्या नहीं है, क्योंकि जीव सेवान्मुख होने से—

कभु स्वप्ने कभु ध्याने कभु दृष्टि योगे।
धामेर दर्शन पाय भाग्येर संयोगे॥

तुम मेरा अनुसरण करो, मैं तुम्हें उसी श्रीधाम मायापुर को ले चलता हूँ।

श्रीउपदेशामृत

भक्ति-पोषक-सङ्ग क्या है ?

ददाति प्रतिगृह्णाति गुह्यमाख्याति पृच्छति।
भुङ्क्ते भोजयते चैव षड्विधं प्रीतिलक्षणम्॥

मायावादी, कर्मी, मुमुक्षु, फलकामी, भोगवादी, बुभुक्षु व विषयी और अन्याभिलाषी, इन तीनों सम्प्रदायों के साथ प्रीति संस्थापन करने से सङ्ग दोष के कारण भक्ति की हानि होती है। मायावादी प्रभृति तीन प्रकार के लोगों को परामर्श या और कोई द्रव्यादि देना उचित नहीं। अन्याभिलाषी लोगों को हरिनाम दान करना घोर अपराध है, मायावादी प्रभृति लोगों से मोक्ष तथा भोग विषयक परामर्श ग्रहण करने से उनसे प्रीति होती है। इन तीनों दलों के मनुष्यों को कृष्ण भजन का उपदेश देना अनुचित है। ठाकुर नरोत्तम ने कहा है कि, "आपन भजन कथा ना कहिबे जथा तथा," अर्थात् अपने भजन की बात जहाँ तहाँ कहना ठीक नहीं। इन तीनों का स्पर्श की हुई कोई वस्तु खाना भी हानिकारक है, क्योंकि, उसमें उनकी कृष्णेतर विषय भोग-प्रवृत्ति का अंश अपने में आ जाता है। "विषयीर अन्न खाइले मलिन हय मन, मलिन मन हइले नाहि हय कृष्ण भजन"—(श्रीचरितामृत) अर्थात् विषयी का अन्न खाने से मन मलिन होता है और मन मलीन होने से कृष्ण-भजन नहीं हो सकता। त्रिविध विषयियों का जिस प्रकार भोजन खाना हानिकारक है, उसी प्रकार उन्हें भोजन कराना भी हानिकारक है। भोजन करना और कराना—दोनों क्रियाओं से परस्पर प्रेम की वृद्धि होती है, अपना भी उद्देश्य रखनेवाले मनुष्य के साथ प्रीति होने से अपने उद्देश्य की उन्नति होती है। विजातीय लोगों के साथ लेन-देन, रहस्य निवेदन और श्रवण, भोजन और भोज्य प्रदान रूप कार्य परिहार्य है।

GAUDIYA MATH MISSIONARY

Interesting Lectures at German Universities.

(By Air-Mail.)

Tridandiswami B. H. Bon of Sree Gaudiya Math, Calcutta Preacher-in-charge for propaganda works in the West is on preaching tour in the continent. He is invited by the leading Universities of Germany and France to deliver lectures there. Swamiji on arrival in Berlin on the 21st October, was received at the station by W. Hassenstein, Counsellor of the Government, Miss Von Petersdorf, Office of the Ministry for Economics and several other leading citizens. Dr. Martin Weigert, Ph. D., LL. D., Ministry of Labour of the last Government received Swamiji at his residence in Berlin-Gladow. He had discourses with Swamiji on the activities and messages of the Mission.

Regierungsrat Hassenstein called at the residence of Swamiji and had religious discourses with him for some time. On the 23rd Swamiji met Prof. Tara

chand Roy of Lahore Professor of Indian Language at the Berlin University and Dr. Th. Wilhelm of Deutscher Akademischer Austauschdienst in the Schloss (Castle). Dr. Wilhelm tried to bring Swamiji in touch with several schools in Berlin and arranged for interview with the Minister of the Kulture Board Dr. Rosenberg, one of the leading Nazi Leaders. He is taking much interest for the propagation of the message of Gaudiya Math in Germany.

Swami Bon was taken to the Grunewald Gymnasium one of the biggest schools in Berlin for boys of the rich class only. The Director of the school took him round the premises and delivered a nice little speech in German. The authorities paid much attention.

Afterwards Swamiji met many leading citizens of whom are prof. Witte, Professor of Comparative religions at the University, Luders who is a great Sans-

आचार्य श्री निम्बादित्य

प्राचीन काल में तैलंग देश की सीमा के भीतर 'वैदूर्य-पत्तन'-नामक एक नगर था। आजकल वही नगर 'मुंगेर पत्तन' या 'मुंगी पाटन' नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ विष्णु-भक्ति-परायण आरुणि मुनि अपनी धर्म-पत्नी श्रीजयन्ती देवी के साथ निवास करते थे। कहा जाता है कि भागवत में (१ – १९ – ११) परीक्षित सभा के मध्य आये हुए, जिन अरुण मुनि के नाम का उल्लेख पाया जाता है, आप उन्हीं अरुण मुनि के वंशधर थे।

द्वापर का अवसान होने पर जब भागवत-धर्म का आकाश छल-कपट के बादलों से घिर जाने पर अन्धकारमय होता चला जा रहा था और सारी जनता भिन्न-भिन्न प्रकार के छोटे-छोटे मतों के गोरख-धंधे में पड़कर जीवमात्र का कल्याण करनेवाली एक-मात्र भगवद्भक्ति से दूर होती जा रही थी, उसी समय परम करुणामय श्रीविष्णु ने इसी धर्मक्षेत्र भारतवर्ष में शुद्ध-सनातन भक्ति-धर्म की रक्षा के लिए, अपनी शक्ति से परिपूर्ण एक अवतार को भेजने की इच्छा की। परम विष्णुभक्ति-परायण श्रीमद् आरुणि और परम भक्तिमती श्रीजयन्ती देवी का आश्रय लेकर कार्तिकी पूर्णिमा तिथि को सन्ध्या समय सूर्य के तेज के समान, एक बालक-रत्न सज्जनों के हृदय में आनंद का संचार करता हुआ संसार में अवतीर्ण हुआ। आरुणि मुनि ने विधि के अनुसार पुत्र-रत्न का वैदिक संस्कार किया और तत्पश्चात् शास्त्रादि अध्ययन करने के लिए, उसे गुरु के घर भेज दिया। बालक ने थोड़ी ही उम्र में अतुल परिश्रम और योग्यता का परिचय देकर सांगोपांग वेद तथा संसार की सभी ललित कलाओं को सीख लिया। विशेषकर अध्यात्म-शास्त्र में अधिक प्रवीणता प्राप्त कर ली।

निष्ठा के साथ ब्रह्मचर्य को धारण करते हुए, आप समस्त मानव-समाज में सूर्य की भाँति तेजस्वी निकले और सनातन वैष्णव-धर्म का प्रचार करने के लिए, उत्सुक होकर आपने शास्त्र के अनुसार वैदिक त्रिदण्ड-संन्यास ग्रहण किया। संन्यास के अनन्तर श्रीकृष्ण का अवतार-दर्शन करने की प्रबल इच्छा के वशीभूत होकर, आप व्रज के नंदग्राम में आ उपस्थित हुए। वहाँ आपने "सविशेष-निर्विशेष-श्रीकृष्ण स्तव" - नामक पच्चीस छन्दों का एक सुमधुर स्तोत्र तैयार करके, अपने इष्टदेव के चरणों में समर्पित किया और एक कुटी बनाकर निर्जनता में कृष्ण-भजन का आदर्श दिखाने लगे। जिस स्थान

पर आचार्य ने कुटी बनाकर, श्री कृष्ण-भजन किया था, वह आजकल "श्रीनिम्बग्राम" के नाम से प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि एक बार कोई एक जैन संन्यासी दिग्विजय करने की इच्छा से श्री मथुरापुरी में आये और उस समय के प्रसिद्ध पण्डितों को तर्क-युद्ध में परास्त किया। वैदिक धर्म की निरर्थकता प्रमाणित करना ही उस संन्यासी का मुख्य उद्देश्य था। इस उद्देश्य को जानकर आचार्य ने शास्त्रों की युक्तियों का सहारा लेकर जैन संन्यासी के मतों का खण्डन कर दिया। पराजित होकर जैन संन्यासी ने आचार्य की शरण ग्रहण की। आचार्य ने भी वैदिक वैष्णव-धर्म का उपदेश देकर उसे अपना शिष्य बना लिया।

ऐसा विख्यात है कि जिस समय जैन संन्यासी तथा आचार्य के बीच शास्त्रार्थ हो रहा था उसी समय शास्त्र की आलोचना करनेवाले आचार्य ने देखा कि सूर्यास्त हो रहा है। अपने आश्रम में आये हुए अतिथि की सेवा के लिए जैन-संन्यासी के सामने थोड़ा-सा विष्णुप्रसाद लाकर उपस्थित कर दिया था किन्तु सूर्यास्त हो जाने के कारण जैन-संन्यासी ने उसे ग्रहण न किया; क्योंकि जैन धर्म के अनुसार रात्रि में किसी भी वस्तु का भक्षण करना निषिद्ध है। अतिथि की कठिनाई को जान कर आचार्य नीम के पेड़ पर चढ़ गये और जब तक उसने भोजन समाप्त न किया, तब तक सूर्य देव को धारण किये रहे। किसी-किसी के मत के अनुसार आचार्य नीम पर चढ़े थे अवश्य, परंतु उसपर श्रीभगवान के सुदर्शन चक्र का आह्वान करके स्थापित कर दिया था, जो तेज में सूर्य के ही समान था और अतिथि को सूर्य-सा ही दिखाई पड़ा। निम्ब (नीम) वृक्ष के ऊपर चढ़कर आदित्य या अर्क के रूप में प्रकाशित होने के कारण आचार्य "निम्बादित्य" "निम्बार्क" या "निम्बविभावसु" के नाम से प्रसिद्ध हुए। कहीं-कहीं आप "आरुणेय" "नियमानन्द" और "हरिप्रियाचार्य" के नाम से भी विख्यात हैं। किसी किसी का कहना है कि जिस समय श्रीकृष्ण के प्रपौत्र वज्र मथुरा-प्रान्त के अधिपति थे, वही समय निम्बार्काचार्य के प्राचीन गुरुगण का अभ्युदयकाल है।

वेदान्त-दर्शन के प्रथम अध्याय के तीसरे पद के आठवें सूत्र के वर्तमान प्रचलित श्रीनिम्बार्क-भाष्य में श्रीनिम्बार्क की गुरु परम्परा इस प्रकार पायी जाती है। भाष्य यथा "परमाचार्यैः श्रीकुमारैरस्मद् गुरवे श्रीमन्नारदायोपदिष्टो 'भूमात्वेव विजिज्ञासितव्य इत्यादि।" अर्थात् परमाचार्य श्रीसनत्कुमार ऋषि उनके शिष्य श्रीमन्नारद गोस्वामी, उनके शिष्य श्रीनिम्बार्क।

आचार्य निम्बादित्य का वेदान्त भाष्य 'वेदान्त-पारिजात-सौरभ' के नाम से विख्यात है। निम्बार्क के शिष्य श्रीनिवासाचार्य ने इसी पारिजात-सौरभ को थोड़ा-सा अधिक बढ़ाकर 'वेदान्त-कौस्तुभ'-नामक और एक भाष्य का प्रचार किया। श्रीमन्महाप्रभु के सम सामयिक केशव काश्मीरी ने निम्बार्क-सम्प्रदाय में प्रविष्ट होकर वेदान्त-कौस्तुभ की 'कौस्तुभ प्रभा' नामक एक चूर्णिका तैयार की। (१) 'वेदान्त-पारिजात-सौरभ' के अतिरिक्त निम्नलिखित भाष्य और ग्रन्थ भी आचार्य निम्बादित्य के बनाये हुए हैं, ऐसा उस सम्प्रदायिकों का मत है : (२) गीता भाष्य, (३) सदाचार-प्रकाश (स्मृति ग्रंथ), (४) दश श्लोकी, (५) सविशेष निर्विशेष श्रीकृष्ण स्तोत्र, (६) प्रातःस्मरणम् स्तोत्रम् (वेदान्त आसित स्तोत्रम्)। ऊपर कहे हुए छः ग्रंथों में "वेदान्त पारिजात सौरभ" (ब्रह्मसूत्रभाष्य) 'दश श्लोकी', 'सविशेष निर्विशेष श्रीकृष्णस्तव' और 'प्रातःस्मरणम् स्तोत्रम्'—यही चार ग्रंथ आजकल के निम्बार्क-सम्प्रदाय में निम्बादित्य-प्रणीत कहकर प्रचलित पाये जाते हैं।

सनकादि मुनि ने श्रीनारद मुनि को उपदेश किया। श्रीनारद से व्यास, श्री प्रह्लाद, और परम्परा के अनुसार श्रीनिम्बार्क आदि उपदेश को प्राप्त हुए।

श्रीनिम्बार्क स्वामी ने कलिकाल में श्रीनारायण-कथित भागवत-धर्म का प्रचार करने के लिए सनातन-सम्प्रदाय का गठन किया। वही सात्वत-सम्प्रदाय 'निम्बार्क-सम्प्रदाय' के नाम से विख्यात हो गया। निम्बार्क-सम्प्रदाय की कथित आचार्य-परम्परा नीचे दी जाती है—

(१) श्रीनारायण, (२) हंस, (३) सनकादि चतुःसन, (४) नारद, (५) निम्बादित्याचार्य, (६) श्रीनिवासाचार्य, (७) भास्कर भट्टाचार्य (वेद और ब्रह्मसूत्रादि के भाष्यकार) *, (८) विश्वाचार्य, (९) पुरुषोत्तम आचार्य, (१०) विलास आचार्य, (११) स्वरूप आचार्य, (१२) माधवाचार्य, (१३) बलभद्राचार्य, (१४) पद्माचार्य, (१५) श्यामाचार्य या श्यामलाचार्य, (१६) गोपालाचार्य, (१७) कृपाचार्य, (१८) देवाचार्य (वेदान्त-सूत्र के वेदान्त-सिद्धान्त जाह्नवी-नामक टीका के रचयिता), (१९) सुन्दरभट्ट, (२०) पद्मनाभभट्ट, (२१) उपेन्द्रभट्ट, (२२) रामचन्द्रभट्ट, (२३) वामनभट्ट, (२४) कृष्णभट्ट, (२५) पद्माकरभट्ट, (२६) श्रवण या श्रवणेशभट्ट, (२७) भूरिभट्ट, (२८) माधवभट्ट (२९) श्यामभट्ट (३०) गोपालभट्ट, (३१) बलभद्रभट्ट, (३२) गोपीनाथभट्ट, (३३) गोकुलभट्ट या मांगल्यभट्ट (३४) केशवभट्ट, (ये महाप्रभु के सम सामयिक केशव काश्मीरी के नाम से प्रसिद्ध और 'क्रमदीपिका' नामक ग्रंथ के प्रणेता, निम्बार्क-सम्प्रदाय को माननेवालों के मत से ये प्रस्थानत्रय के भाष्यकार हैं। श्रीचैतन्य भागवत्, श्रीचैतन्य-चरितामृत और श्रीभक्ति-रत्नाकर ग्रंथों में इन्हीं केशव काश्मीरी ने ही भगवान् श्रीगौरांगसुन्दर को जीतने की इच्छा की थी, किन्तु बाद में महाप्रभु की शरण में आ पड़े थे और अपने अभिमान की असारता जानकर दिग्विजय की इच्छा को भी छोड़ दिया था।) (३५) श्रीभट्ट, (३६) हरिव्यास देवाचार्य (आपने अर्बुद पर्वत में अम्बिका देवी को वैष्णवी दीक्षा दी थी, ऐसा सुना जाता है), (३७) स्वभूदेवाचार्य, (३८) चतुर चिन्तामणि देवाचार्य आदि।

निम्बार्क सम्प्रदायियों के मत से उनके सम्प्रदाय में निम्नलिखित प्रसिद्ध ग्रंथकारों का उदय हुआ था। (१) पर पक्षगिरि वज्रकार श्रीमाधव मुकुन्द (२) वेदान्त-रत्न मंजूषाकार श्रीअनंतराम, (३) अत्यन्त सुरद्रुमकार श्रीपुरुषोत्तमप्रसाद।

* श्रीभक्ति-रत्नाकर धृत केशवकाश्मीरी के गुरु-परम्परा में भास्करभट्ट का नाम नहीं पाया जाता है और सब मिलता है।

निम्बार्क सम्प्रदाय के मठ समूहों का स्थान-निर्देश

१—सालिमाबाद कृष्णगढ़, उदयपुर (अजमेर से जाना पड़ता है।)

२—वर्द्धमान—रायपुर रायगोर-मठ (इन लोगों का कहना है कि वर्द्धमान का मठ ही उनके सब मठों का आदि मठ है।) श्रीविग्रह राधा-गोविन्द, हंसभगवान्, रामजी, बलदेवजी।

३—उखरा—अण्डाल स्टेशन की दूसरी स्टेशन। उखरा स्टेशन से मठ एक मील की दूरी पर है। वर्तमान महन्त का नाम श्रीव्रजभूषण शरण देव।

४—युगल किशोर मठ—आईघाटा, आदि महन्त का नाम श्री गंगानारायण देव और वर्तमान महन्त का नाम सनकादिशरण देव।

५—चेतुया—घाटाल से तीन कोस की दूरी पर, नीमतला स्थान से तीन कोस पर चेतुया-मठ का नाम वैकुण्ठपुर मठ, श्री विग्रह (क) रामलाला, (ख) गोपाल, (ग) राम - लक्ष्मण - जानकी, (घ) क्षेत्रपाल शिव और (ङ) विहारी जी। पहले प्रत्येक श्रीविग्रह के पृथक् पृथक् मंदिर थे, किन्तु इस समय उन सबों के गिर जाने से सभी श्रीविग्रह श्रीविहारीजी के मन्दिर में विराजमान हैं। वर्तमान महन्त बलदेवदास।

६—आसमानपुर—कुमरी पोष्ट आफिस- नदीया। आलमडाँगा स्टेशन से दो कोस की दूरी पर है। वृन्दावन से इस मठ की उत्पत्ति है, ऐसा इन लोगों का कहना है। श्रीविग्रह गोपीनाथजी, महंत रामगोपलदासजी।

७—कन्दुली—कहा जाता है कि यह मठ पहले माध्व सम्प्रदाय के अधीन था। तीन पुश्त से निम्बार्क-सम्प्रदाय का हो गया है। महन्त रासविहारी शरणजी।

८—लोहागंज—(आजिमगंज स्टेशन से एक

माल, मुर्शिदाबाद । श्रीविग्रह गोपीनाथजी, महन्त मदनमोहनशरणजी ।

९—विनोद लाला—(आजिमगंज स्टेशन के पास ।)

१०—वस्तानगर (रानीगंज स्टेशन से एक कोस की दूरी पर है ।) इन लोगों का कहना है कि वृन्दावन से इनकी उत्पत्ति है । श्रीविग्रह— मदनमोहनजी ।

११—उलर्सी—(नाभारण स्टेशन से एक कोस है । आससानपुर, वस्तानगर और उलर्सी ये तीनों मठ श्रीवृन्दावन के परमार्थजी मठ के अनुयायी हैं । परमार्थजी मठ इस समय महन्तहीन है । सुना जाता है कि महन्तजी गृहस्थधर्मी हो गये हैं ।

१२—श्रीधाम वृन्दावन में परमार्थ-जी-मठ ।

१३—श्रीक्षेत्र में लोकनाथ के समीप दुःखि श्याममठ । तीन साल हुए महन्त दुःखिश्यामजी को क्षेत्रप्राप्ति हो चुकी है ।

१४—कटक में गोपाल जी मठ

१५—बुन्देलखण्ड में अटलविहारी-मठ, पोष्ट-आफिस सागर, ज़िला-सागर । श्रीविग्रह—श्री-अटलविहारीमटजी ।

१६ निमकाथाना में भी एक निम्बार्कमठ है । फुलेरा जंकशन से एक ब्राञ्च लाइन में निमका थाना स्टेशन है । जयपुर के राजा के यहाँ एक हज़ार निम्बार्क पल्टन है । इनमें कोई भी गृहस्थ नहीं हैं, परंतु वेतन लेकर पल्टन का काम करते हैं ।

इनके अलावा श्रीधाम वृन्दावन में निम्बार्क-सम्प्रदाय के और भी कई एक मठ हैं । गोवर्द्धन के निकट निम्बग्राम में श्रीराधाकृष्ण की युगल-मूर्ति और आचार्य की पादुका-पूजा की व्यवस्था है । पंजाब के समीप "खाड़ा"-नामक स्थान में भी निम्बार्क-सम्प्रदाय का एक मठ है ।

निम्बार्क सम्प्रदाय के समाचार आदि

१—गले में श्री तुलसी माला और ललाट में ऊर्द्धपुण्ड धारण करना प्रत्येक दीक्षा-प्राप्त व्यक्ति का कर्तव्य है । चौथे आश्रम में अर्थात् संन्यासाश्रम में आनेवाले व्यक्तियों को भी शिखा-सूत्र की रक्षा करनी चाहिए । चौथे आश्रम के व्यक्ति गेरुआ वस्त्र धारण करें । दीक्षा के समय में पंच-संस्कार अवश्य ग्रहण करना चाहिए ।

२—चारों आश्रमियों को तन, मन, तथा वाक्य से जीव-हिंसा का त्याग करना चाहिए । प्रत्येक के लिए केवल विष्णु नैवेद्य के भोजन का ही विधान है ।

३—दूसरे देवता की पूजा, दूसरे देवता की नैवेद्य-भक्षण विशेष रूप से निषिद्ध है ।

४—जन्माष्टमी, एकादशी, व्यास पूजा आदि व्रतों को विधि के अनुसार पालना चाहिए ।

५—विद्धा एकादशी या जन्माष्टमी को सब भाँति से त्याग देना चाहिए ।

६ गृहस्थ वैष्णव को विष्णु-नैवेद्य द्वारा वैष्णवों की रीति के अनुसार श्राद्ध करनी चाहिए। प्रेत श्राद्धादि करना महापाप है ।

श्रीनिम्बादित्य प्रचारित सिद्धान्त

आचार्य श्रीनिम्बादित्य ने चिन्त्य-द्वैताद्वैत सिद्धान्त का प्रचार किया । श्री निम्बादित्य ने केवल श्रुति को ही स्वतः प्रमाण-शिरोमणि कहकर स्वीकार किया है । श्रुति के अनुसार दूसरे शास्त्र भी प्रमाण के रूप में ले लिए गये हैं । चतुःसन ने श्रीनारद गोस्वामी को छान्दोग्योपनिषद् के सातवें अध्याय में जो उपदेश प्रदान किया है, वही एक दूसरे से सुनते-सुनते परम्परा के अनुसार श्री नारद से प्राप्त कर आचार्य श्रीनिम्बादित्य ने संसार में प्रचार किया है । छान्दोग्य के सातवें अध्याय में श्री सनत्कुमार ने श्री नारद गोस्वामी को जो उपदेश किया है उसमें निम्न लिखित सिद्धान्त पाये जाते हैं:—एकायन शास्त्र का उल्लेख (७ । १ । २) पुराणादि का पंचम वेदत्व (७ । १ । ४) विष्णु का सर्वकर्त्तृत्व (७ । १५ । १) श्रद्धा और निष्ठा रूपिणी भगद्भक्ति का माहात्म्य (७ । १९ । २० । १) भगवत् प्रेम का असमोर्द्धत्व (७ । २३ । १) नित्य भगवद्धाम का माहात्म्य (७ । २४ । १) भगवान् का अन्यनिरपेक्षत्व (७ । २४ । २) परम मुक्त गणों का नित्य भगवत् परिकरत्व और भगवान् के

साथ सिद्ध किया (७। २५। २) भगवान की आविर्भाव-तिरोभाव-शक्तिमत्ता (७। २६। १) वैष्णव का नित्यत्व अप्राकृतत्व और (७। २६। २) भगवत् प्रसाद का माहात्म्य (७। २६। ७) इत्यादि।

आजकल की प्रचलित दश श्लोकी जो कि श्री निम्बार्क की बनाई हुई कही जाती है, उसमें से इस प्रकार का सिद्धान्त संग्रह किया जाता है:—

सर्वं हि विज्ञानमतो यथार्थकं,
श्रुतिस्मृतिभ्यो निखिलस्य वस्तुनः।
ब्रह्मात्मकत्वादिति वेदविन्मतं,
त्रिरूपतापि श्रुति सूत्र-साधिता॥

सभी वस्तुएं ही ब्रह्मात्मक हैं। वेद के जानने वालों का यही सिद्धान्त है कि ब्रह्मरूप सद् वस्तु से असद् वस्तु का उदय हो ही नहीं सकता। वस्तु का विज्ञान ही समस्त वस्तुओं का यथार्थ तत्व है। यह श्रुति और स्मृति से ही जाना जा सकता है। कहीं पर अद्वैत वाक्य, कहीं पर द्वैत वाक्य और कहीं-कहीं पर दोनों सिद्धान्त पूर्ण अर्थात अद्वैत और द्वैत उभयनिष्ठ वाक्य पाये जाते हैं। इसलिए केवल अद्वैतवाद ही स्थान नहीं पाता है। श्रुति और स्मृति के विचार में अद्वैत और द्वैत दोनों ही सिद्ध हो चुके हैं, अतएव द्वैताद्वैतवाद को ही शास्त्र के तात्पर्य रूप में ग्रहण करना चाहिए।

जीव सम्बन्ध में श्री निम्बादित्य के सिद्धान्त

"अंशो नाना व्यपदेशादन्यथा चापि दाशकितवादित्वमधीयत एके" (ब्र० सू० २।३।४२) इसी सूत्र के निम्बार्क भाष्य में जीव-परमात्मा के भेद और अभेद का सिद्धान्त निर्दिष्ट हुआ है। भाष्य यथा—"अंशांशिभावाज्जीव-परमात्मनोर्भेदाभेदौ दर्शयति, परमात्मनो जीवोऽशः 'ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशौ' इत्यादि भेदव्यपदेशात्, 'तत्त्वमसि' इत्याद्य भेद व्यपदेशाच्च। अपि च आथर्वणिकाः "ब्रह्मदासा ब्रह्मदाशा ब्रह्मेकितवा" इति ब्रह्मणोहि कितवादित्वमधीयते।" अर्थात् सूत्रकार जीव परमात्मा का अंशांशीभाव अथवा भेदाभेदभाव प्रदर्शन कर रहे हैं, जीव परमात्मा का अंश, कारण "ज्ञ" और "अज्ञ" "ईश्वर" और "जीव" दोनों ही अज और नित्य हैं। इत्यादिश्रुति वाक्य में जीव और ईश्वर के भेद सिद्ध किये गये। हैं पुनश्च तत्त्वमस्यादि श्रुति में जीव और ब्रह्म के अभेद का उपदेश किया गया है। अथर्व शाखिगण दाश और धूर्तगण को भी 'ब्रह्म' के नाम से उल्लेख किया है अतएव जीव और ब्रह्म में भेदाभेद या अंशांशि भाव का सम्बन्ध है। दश श्लोकी से इस प्रकार का सिद्धान्त संग्रह किया जाता है—जीव ज्ञान स्वरूप और ज्ञातृस्वरूप अर्थात् स्वयं ज्ञान है और ज्ञान को जाननेवाला भी है। अहं पदवाच्यत्व हेतु ज्ञान स्वरूप और चैतन्य धर्मवशतः ज्ञाता स्वरूप है। जिस प्रकार सूरज स्वयं प्रकाश रूप होने पर भी संसार के प्रकाशक स्वरूप होते हैं उसी प्रकार चैतन्य धर्म विशिष्ट जीव ज्ञान स्वरूप होने पर भी ज्ञातृत्वधर्म युक्त होता है। जीव, जो कि अणु चैतन्य है, वह वृहत् चैतन्य परमेश्वर के अधीन है। जीव संख्या में अनन्त है। प्रति देह में भिन्न भिन्न जीव निवास करते हैं। अणुत्व के कारण जीव मायिक शरीर के योग और वियोग के योग्य है। जीव जब तक माया में पड़े रहते हैं, तभी तक आकृति और स्थूल शरीर से युक्त होते हैं। मुक्त होने पर जीव उन सब से अलग हो जाते हैं। जीव तीन प्रकार के हैं—(१) मुक्त, (२) बद्ध मुक्त और (३) बद्ध। जो श्रीहरि के चरणों में आश्रित हैं वे 'मुक्त' हैं। जो पहिले मायाबद्ध रहकर बाद में साधु-गुरु की कृपा से भगवत्प्रसाद को प्राप्त करते हैं या करेंगे, वे बद्धमुक्त हैं और जो भगवद्भक्ति से दूर रहकर सर्वदा माया-भोग में ही लगे रहते हैं वे 'बद्ध' कहलाते हैं। मुक्त, बद्धमुक्त और बद्ध जीवगण अवस्थाभेद से अनेक प्रकार के हैं। (१) मुक्त जीवगण पार्षद और पार्षद के अनुगत इत्यादि अवस्थाओं के कारण विविध हैं। (२) बद्धमुक्तगण पार्षद और साधक भेद से विविध हैं। (३) बद्धगण विषयी, विवेकी और मुक्ति के इच्छुक भेद से विविध हैं। माया अनादि है और भगवद्भक्ति से उदासीनतापूर्ण जीव ही माया के बन्धन में पड़े रहते हैं। अतएव एकमात्र भगवत् प्रसाद से ही जीव अनादि माया से मुक्त होते हैं। दूसरे उपायों द्वारा मायाजाल से छुटकारा पाना असंभव है।

जड़-सम्बन्ध में श्रीनिम्बादित्य के सिद्धान्त

जड़ या अचेतन पदार्थ दो प्रकार के हैं— काल और माया। इनमें से काल अप्राकृत और प्राकृत भेद से दो प्रकार का है। अप्राकृत काल माया प्रकृति का अतीत चित् स्वरूप है। भगवान की इच्छा से ही काल की क्रिया होती है। अतएव काल स्वयं अचेतन और क्रियाहीन प्रकृति की अतीत अवस्था में चित् द्रव्य विशेष के रूप में नित्य वर्तमान रहता है। प्रकृति की अन्तर्गत अवस्था में भूत, भविष्यत वर्तमान के अधीन होकर जड़द्रव्यविशेष हो जाता है। वास्तव में चित्काल के मायिक विकार का दर्शन ही मायिक काल है। त्रिगुणधर्मविशिष्टा माया प्रकृति चिद्विकार के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। वह प्रधान और अविद्या भेद से तथा निमित्त और उपादान भेद से नाना पद वाच्य है। वेद में "अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां" इसी मंत्र द्वारा माया के त्रिगुणत्व आदि दिखलाये गये हैं। मायातत्त्वचित् तत्त्व के समान होने पर भी अर्थात् छाया रूपी वस्तु में आदर्श की समता रहने पर भी उसके भिन्न भेद दिखलाई पड़ते हैं। समस्त जड़ जगत् और बद्ध जीवों की आकृति तथा स्थूल देह सभी अचेतन तत्त्व हैं।

ईश्वर के सम्बन्ध में श्रीनिम्बादित्य के सिद्धान्त

भगवत तत्त्व निर्दोष है। मोह, तन्द्रा, भ्रमादि अष्टादश दोष भगवत् स्वरूप में नहीं हैं। भगवान के स्वरूप में अशेष कल्याणों का समूह पूर्ण रूप से वर्तमान है। वही भगवत् तत्त्व कृष्ण स्वरूप में परमब्रह्म हैं। वे समस्त सौन्दर्य और माधुर्य के मूल तथा गोलोक के चतुर्व्यूह हैं। पर व्योम चतुर्व्यूह और अन्यान्य चतुर्व्यूह गण उन्हीं के अंश हैं, इसलिए वे मूल अंशी हैं। वे स्वरूप शक्ति वृषभानु की कन्या तथा उनकी कायव्यूह स्वरूप सहस्र सहस्र सखीगण द्वारा सर्वदा परिसेवित होकर जीव के नित्य आराध्य हैं। वे नित्य अप्राकृत विग्रहवान हैं। वे प्राकृत करादि-रहित होने के कारण प्राकृत चक्षु के निकट 'निराकार' पुनश्च अप्राकृत करादि से युक्त होने के कारण अप्राकृत चक्षु के निकट 'साकार' हैं। वे स्वतंत्र, सर्वशक्तिमान, सर्वेश्वरेश्वर अचिन्त्य शक्ति-सम्पन्न और ब्रह्मा-शिवादि देवताओं द्वारा नित्य पूजे जाते हैं।

उपासना

अनन्यभाव से एक मात्र ब्रह्म शिवादि वन्दित सर्वेश्वरेश्वर श्रीकृष्ण की ही उपासना करनी चाहिए। विष्णु के अतिरिक्त दूसरे देवताओं की उपासना से नरकवास होता है। उपासना या भक्ति दो प्रकार की है। (१) साधन रूपी अपरा-भक्ति और (२) प्रेमलक्षणा उत्तमाभक्ति। श्रवण कीर्तनादि नव विधा साधन भक्ति के याजन से प्रेमलक्षणा उत्तमाभक्ति का उदय होता है।

'श्री निम्बादित्य से निमायत सम्प्रदाय प्रचलित हुआ है। कोई कोई निमानन्दी सम्प्रदाय को निमायत सम्प्रदाय का नामान्तर समझ कर हेर फेर कर डालते हैं किन्तु वास्तव में यह विषय ऐसा नहीं है। श्री मन्महाप्रभु का एक नाम 'निमाई' है। निमाई नाम श्री नित्यानंद प्रभु को अतिशय प्यारा था, इस लिए श्री वक्रेश्वर पंडित के शिष्य श्री गोपाल गुरु गोस्वामी ने महाप्रभु को 'निमानंद' के नाम से प्रचारित किया। उन्हीं के पद्य में लिखा हुआ है।

एतत् श्री कृष्णचैतन्यः प्रेमकल्पद्रुमो भुवि।
निमानंदो यया योऽसौ विख्यातः क्षितिमण्डले॥'

जिन सज्जनों ने श्री मध्वाचार्य से ईश्वरपुरी तक (आम्नाय) परित्याग पूर्वक एक (नया) सम्प्रदाय स्थापित किया, उन्हीं सज्जनों ने महाप्रभु को 'निमानंद' का नाम दे 'निमानंद-सम्प्रदाय' कह कर अपना परिचय दिया। वास्तव में निमानंद सम्प्रदाय निमायत सम्प्रदाय से सर्वथा भिन्न है।" (सज्जनतोषिणी सप्तमखंड २६६ पृष्ठ)

किसी किसी का कहना है कि आचार्य निम्बादित्य ने स्वामी सनतकुमार के शिष्य नारद से जिन उपदेशों को प्राप्त कर संसार में प्रचार किया था, उनके अनुगत सम्प्रदाय बहुत दिन पहिले ही लुप्त हो चुके हैं। इसलिए सायनमाधव के

सर्वदर्शन संग्रह में श्री विष्णुस्वामीश्री रामानुज और श्री मन्मध्व का नाम तथा उनके प्रचारित सिद्धान्त का उल्लेख रहने पर भी श्री निम्बार्क सम्प्रदाय कुछ काल पहिले- किसी किसी के मत से, श्री मन्महाप्रभु के आविर्भाव के बाद श्री वल्लभाचार्य सम्प्रदाय की भाँति प्रचारित हुआ है। श्रीमन्महाप्रभु-प्रचारित सिद्धान्त-उपासना आदि के साथ बहुत कुछ समता होने पर तथा अन्यान्य बातों के होने के कारण सभी ऐसा ही अनुमान करते हैं। गौड़ीय वैष्णव-सिद्धान्ताचार्यवर्य श्री जीव-गोस्वामी प्रभु ने श्रीमद् विष्णुस्वामी, श्रीरामानुज, श्रीमन्मध्व सम्प्रदाय के नामों का उल्लेख सिद्धान्त-सन्दर्भ तथा सम्वादिनी में किया है। किन्तु निम्बार्क सम्प्रदाय का कहीं भी उल्लेख नहीं है। क्यों? इसका क्या कारण है? इससे बहुत से सज्जन अनुमान करते हैं कि कदाचित् सर्वदर्शन-संग्रह की रचना के बाद यहाँ तक कि वृन्दावन गोवर्द्धन आदि निवासी गौड़ीय वैष्णवाचार्य गोस्वामियों के समय में भी वर्तमान प्रचलित निम्बार्क सम्प्रदाय का मत विशेष रूप से विस्तृत नहीं हुआ था। अस्तु, आचार्य श्री निम्बादित्य एक सुप्राचीन सात्वत द्वैताद्वैत सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे —इस विषय में कोई सन्देह नहीं है। वर्तमान काल में प्रचलित निम्बार्क सम्प्रदाय का मत सर्वाचार्य श्रीमन्महाप्रभु प्रचारित सिद्धान्त द्वारा परिपुष्ट होकर संसार में प्रकाशित होने पर भी प्राचीन सात्वत आचार्य श्रीमन्निम्बादित्य के प्रचारित सिद्धान्त छान्दोग्योपनिषद् के सातवें अध्याय में सनत्कुमार के उपदेश से संगृहीत हो सकता है। इस सम्बन्ध की अन्यान्य आवश्यक बातों की आलोचना हम समयानुसार करेंगे।

ग्राहकगण के प्रति निवेदन

भागवत पत्र के महान् सब ग्राहकगण के प्रति हमारा सविनय निवेदन यह है, कि भागवत-पत्र का तृतीय वर्ष समाप्त हुआ। अतएव चतुर्थ वर्ष की भिक्षा (चन्दा) १।।) रुपया आगामी सप्ताह के भीतर मनिआर्डर द्वारा भेजकर चतुर्थ वर्ष के ग्राहक बनें। १५ वीं जनवरी तक जिनके पास से रुपया न पाया जायगा वे कृपा पूर्वक सूचना दे दें। नहीं तो उनके नाम वीपी की जायगी उसमें मनिआर्डर के अतिरिक्त ।) अधिक लग जायेंगे।

मैनेजर, भागवत

श्रीश्रीविश्ववैष्णवराजसभा

भागवत धर्म-प्रचार-केन्द्र व भक्ति-मठ

(१) श्रीचैतन्य मठ (प्रधान मठ)
प्राचीन नवद्वीप श्रीमायापुर, नदिया

(२) श्रीमायापुर योगपीठ
(श्रीचैतन्यदेव की जन्मभूमि) श्रीमायापुर, नदिया

(३) श्रीवास अङ्गन (श्री चैतन्यदेव का संकीर्त्तन-प्रचार क्षेत्र) श्रीमायापुर, नदिया

(४) श्रीअद्वैतभवन (प्रभु अद्वैतजी की भागवत-सभा) श्रीमायापुर, नदिया

(५) भक्त काजी की समाधि-पीठ;श्रीमायापुर,नदिया

(६) श्रीस्वानन्दसुखदकुंज
(श्रीमद्भक्तिविनोद प्रभुजी का समाधिमन्दिर)
स्वरूपगंज, नदिया

(७) श्रीगौरगदाधर मठ
चंपाहाटी समुद्रगढ़, बर्द्धवान

(८) श्रीमोदद्रुमछत्र (गौड़देश का नैमिषारण्य)
मामगाछी जाननगर, बर्द्धवान

(९) श्रीभागवत आसन; कृष्णनगर, नदिया

(१०) श्रीएकायन मठ; हाँसखाली, नदिया

(११) श्रीगौड़ीय मठ, बागबाजार, कलकत्ता

(१२) श्रीमाध्वगौड़ीय मठ; ३० नवाबपूर, ढाका

(१३) श्रीजगन्नाथ गौड़ीय मठ;पचापुकुर,मैमनसिंह

(१४) श्रीगोपालजी मठ; कमलापूर, ढाका

(१५) श्रीगदाई गौरांग मठ; बालियाटी, ढाका

(१६) श्रीपरमहंस मठ, नैमिषारण्य (नीमसार)

(१७) श्रीसनातन गौड़ीय मठ; फरिदपुरा, काशी

(१८) श्रीरूपगौड़ीय मठ, प्रयाग

(१९) श्रीकृष्णचैतन्य मठ; सरकार ठाकुर कुंज, श्रीधाम वृन्दावन

(२०) श्रीव्यासगौड़ीय मठ;कुरुक्षेत्र,थानेश्वर,कर्नाल

(२१) दिल्ली गौड़ीय मठ, ४३ हनुमान रोड, न्यू देहली

(२२) मद्रास गौड़ीय मठ; रयापेटा, मद्रास

(२३) श्रीपुरुषोत्तम मठ; भक्तिकुटी पुरी, (उड़ीसा)

(२४) श्रीसच्चिदानन्द मठ; उड़ियाबाजार, कटक

(२५) श्रीब्रह्मगौड़ीय मठ;अलवरनाथ, ब्रह्मगिरि, पुरी

(२६) श्रीमहेश पंडितपाटकांठालपुली; चाकदह,नदिया

(२७) ब्राह्मणपाड़ा प्रपन्नाश्रम मठ; पो० माजू, हावड़ा

(२८) आमलाजोड़ा प्रपन्नाश्रम; राजबाँध, बर्द्धवान

(२९) श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ
डुमुरकौंदा चीरकुण्डा, मानभूम

(३०) श्रीभागवतजनानन्द मठ
मु० चिरौलिया; पो० वासुदेवपूर, जि० मेदनीपूर

(३१) श्रीरामानन्द गौड़ीय मठ
कव्वुर, वेष्ट गोदावरी, मद्रास

(३२) ग्वालपाड़ा प्रपन्नाश्रम, आसाम

(३३) त्रिदण्डी-गौड़ीय मठ; भुवनेश्वर, पुरी

(३४) श्रीसारस्वत-गौड़ीय मठ; हरिद्वार

(३५) बॉम्बे गौड़ीय मठ; प्रोक्टार रोड, बॉम्बे

(३६) लण्डन गौड़ीय मठ
३, ग्लास्टर हाउस, कार्नवाल,गार्डेन्स,लण्डन,S. W. 7

(३७) अमरसी गौड़ीय मठ; अमरसी, मेदिनीपुर

(३८) सरभोग गौड़ीय मठ; सरभोग, आसाम

(३९) पाटना गौड़ीय मठ; १०० मीठापुर, पाटना

(४०) श्रीबालासोर गौड़ीय मठ; बालासोर, उड़ीसा

(४१) तेतियाकुंजकानन; पो० कृष्णगढ़, नदिया

(४२) कुंजकुटीर मठ; कृष्णगढ़, नदिया

(४३) श्रीगोष्ठविहारी मठ, शेषशायी, जिला गुरगांव

(४४) व्रज स्वानन्द सुखद कुंज, श्रीराधाकुण्ड

(४५) बार्लिन गौड़ीय मठ कार्य्यालय, बार्लिन

(४६) श्रीमुरारी गुप्त का पाट, श्रीमायापुर नदिया

Registered No. A. 2191.

श्रीगौड़ीय मठ द्वारा प्रकाशित भक्तिग्रन्थ

संस्कृत

१—श्रीश्रीशिक्षाष्टकम् =)
२—श्रीशरणागतिशतकमूलम् सटीक ।)
३—श्रीमध्वमुखमानमर्दनम् ≡)
४—श्रीसिद्धान्तसरस्वतीदिग्विजयः ॥
५—श्रीगौड़ीयमठस्य परिचयः -)
६—श्रीनामभूषणम् ॥

संस्कृत बँगला अक्षरों में

१—श्रीहरिनामामृतव्याकरणम् २)
२—श्रीमद्भगवद्गीता—श्रीबलदेव विद्याभूषण-कृत-भाष्य और भक्तिविनोद प्रभुजी-कृत अनुवाद और तात्पर्य-सहित सजिल्द ~) अजिल्द १॥)
३—भजनरहस्य ठा० भक्तिविनोद-कृत ॥)
४—भक्तिसन्दर्भ श्रीजीव गोस्वामी प्रभु-कृत खंडों में प्रकाशित प्रति खंड १)
५—गौड़ीय कंठहार शास्त्रसुभाषितसंग्रह सजिल्द २)
६—साधन-पथ श्रीचैतन्यमहाप्रभु का शिक्षाष्टक और श्रीरूपगोस्वामी प्रभु-कृत उपदेशामृत सहित ।=)
७—तत्त्वसूत्र ठा० भक्तिविनोद कृत बँगला अनुवाद सहित ॥)
८—श्रीचैतन्यचन्द्रामृत श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती-कृत अन्वय और बँगला अनुवाद सहित १)
९—अर्चनपद्धति श्रीलोकाचार्य्य-प्रणीत बँगला अनुवाद सहित -)
१०—सदाचारस्मृति श्रीमध्वाचार्य्य-प्रणीत बँगला अनुवाद सहित ≥)
११—श्रीमद्भागवत श्रीधर स्वामीजी-कृत टीकानुसार अन्वय, अनुवाद और श्रीमध्वाचार्य-कृत तात्पर्य और श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती-कृत टीका सहित तथा कठिन कठिन श्लोकों की पद-व्याख्या और तथ्य तथा श्लोक-सूची, विषयसूची अध्याय-विवरण, पात्र-स्थान-सूची सहित प्रथम स्कंध से दशम स्कंध तक २८)
एकादश स्कंध से प्रति खंड ।≡)
१२—युक्तिमल्लिका गुणसौरभ वादिराज स्वामि-कृत अनुवाद सहित २)

वंगभाषाग्रन्थ

१३—नवद्वीपधाममाहात्म्य प्रमाणखंड अनुवाद सहित ≡)
१४—नवद्वीपशतक बँगला अनुवाद -)
१५—नवद्वीपधाममाहात्म्य ठा० भक्तिविनोद-कृत ≈)
१६—नवद्वीप-परिक्रमा और भक्तिरत्नाकर नरहरि चक्रवर्ती कृत ≈)
१७—नवद्वीपभावतरंग ।)
१८—श्रीक्षेत्रमंडलपरिक्रमादर्श ।)
१९—श्रीचैतन्यशिक्षामृत ठा० भक्तिविनोद कृत २)
२०—मणिमंजरी ।)
२१—शरणागति -)
२२—कल्याणकल्पतरु -)॥
२३—गीतावली -)
२४—श्रीहरिनामचिन्तामणि ठा० भक्तिविनोद-कृत ॥)
२५—वैष्णवमंजूषा श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराज-कृत चारों खंड ८)
२६—प्रेमविवर्त जगदानन्द गोस्वामि-कृत ॥=)
२७—जैव धर्म २)
२८—साधककंठमाला ।)
२९—चैतन्यभागवत ठा० वृन्दावनदासकृत और श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभु-कृत विस्तृत व्याख्या और विवृति सहित अप्रकट ५)
३०—महाप्रभु की शिक्षा ठा० भक्तिविनोद-कृत ।॥)
३१—श्रीचैतन्यचरितामृत श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामि-कृत मूल और श्रीमद्भक्तिविनोद प्रभु और श्रीमद् भक्तिसिद्धांत सरस्वती गोस्वामि-कृत विस्तृत ... और सूची सहित ६)

Books in English

1. Life and Precepts of Sri Chaitanya Mahaprabhu By Thakur Bhakti-Vinode /4/-
2. Namabhajan: A Translation By Swami Bon Maharaj /4/-
3. Vaishnavism: Real and Apparent /4/-
4. What Gaudiya Math is doing ? /1/-
5. The Bhagabat, Its Philosophy, Ethics and Theology /4/-
6. The Erotic Principle and Unalloyed Devotion By Prof: Sanyal /4/-

Edited and Published by Swami Bon Maharaj and Printed by R. P. Bhargava at Oudh Printing Works, Lucknow.

वर्ष ४]　　श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः　　[संख्या ९

भागवत

एकमात्र

पारमार्थिक

मासिक पत्र

८ वामन
गौराब्द
४५२



आषाढ़ कृष्ण ९
संवत
१९९५ वि०

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥१॥

जिससे इन्द्रिय ज्ञानातीत श्रीकृष्ण में श्रवणादि लक्षणा फलाभिसन्धान रहिता ऐकान्तिकी स्वाभाविक निरपेक्षा भक्ति उदय होती है, वही मानव जाति का सर्वश्रेष्ठ धर्म है— उसी भक्ति के बल से अनर्थ उपशान्त होने से आत्मा प्रसन्नता लाभ करती है ।

प्रति संख्या -)॥　{ सम्पादक—त्रिदण्डि-स्वामी भक्ति भूदेव श्रौती महाराज {　वार्षिक १)

Editor—Tridandiswami Bhakti Bhudeb Shrauti Maharaj

विषय-सूची

"भागवत" के नियम

उद्देश्य

शुद्ध भगवद्भक्ति का प्रचार करना

प्रबंध-सम्बन्धी

(१) यह पत्र प्रति मास ५ कृष्ण को प्रकाशित होता है।

(२) इस पत्र की डाकव्यय सहित वार्षिक भिक्षा १) है।

(३) इस पत्र की प्रति संख्या की भिक्षा ―)॥ है।

लेख-सम्बन्धी

लेखकों को केवल भागवत धर्म सम्बन्धी लेख ही भागवत पत्र में छपने के लिये सम्पादक "भागवत" के पता से भेजना चाहिये। जो लेख सम्पादक को पसन्द न होगा वह नहीं छापा जायगा और वापस भी नहीं किया जायगा।

विज्ञापन-सम्बन्धी

"भागवत" में विज्ञापन छपाई का दर नीचे लिखा है :—

साधारण पृष्ठ

प्रति संख्या

पूरा पृष्ठ या दो कालम			...	८)
आधा	,, १	,,	...	५)
चौथाई	,, ½	,,	...	३)
२ इंच	,, ¼	,,	..	१॥)
१ ,,	,, ⅛	,,	...	१)

स्थायी विज्ञापन और कवर पर विज्ञापन छपाने का रेट नीचे लिखे पते पर पत्र-व्यवहार द्वारा तय करना चाहिये।

पत्र व्यवहार का पता—

मैनेजर—"भागवत"

श्री गौड़ीय मठ,

मीठापुर, पटना।

All communications are to be addressed to—

The Manager 'Bhagwat'

SRI GAUDIYA MATH

Mithapur, Patna

॥ श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः ॥



कृष्णेस्वधामोपगते धर्म्मज्ञानादिभिः सह। कलौ नष्टदृशामेष समाचारोऽधुनोदितः॥

श्रीगौड़ीय मठ, मोठापुर (पटना)।

वर्ष ४ | संख्या

८ वामन, ४५२, आषाढ़ कृष्ण ५, सं० १९९५ वि०

गृहस्थ और त्यागी

जिन व्यक्तियों के जीवन का मूल उद्देश्य हरिसेवा नहीं है, अर्थात जिन्होंने नाना प्रकार के धार्मिक आडम्बरों से चित्त को हटा कर मन्न हृदय से एकमात्र भगवत्-प्राप्ति को अपने जीवन का लक्ष्य नहीं बना लिया है वही "गृहस्थ" और "त्यागी" इन दो प्रकार की उपाधियुक्त अवस्थाओं की परस्पर श्रेष्ठता पर वादविवाद कर के अपना समय व्यर्थ नष्ट करते हैं। हरिसेवा से भ्रष्ट होने पर ही "गृही बड़ा है कि त्यागी"—इस प्रकार का औपाधिक वितर्क मनुष्य के हृदय में अपना अधिकार जमा लेता है। जिस दल के लोग जिस उपाधि द्वारा आच्छन्न हैं वे उसी उपाधि को श्रेष्ठ सिद्ध करने का भरपूर प्रयत्न करते हैं। और इस वादविवाद के कारण अनेक रूप से मनोमालिन्य, विच्छेद, हिंसा द्वेष और क्रमपूर्वक नाना प्रकार के दुखदाई टंटे आ खड़े होते हैं।

परन्तु अन्याभिलाषी कर्मी, ज्ञानी, योगी, व्रती, तपस्वी इत्यादि के लिये इस प्रकार का विवाद स्वाभाविक ही है। इस विषय की इतिहास में नाना प्रकार की किवदन्तियां भी सुनने में आती हैं। किसी किसी निर्विशेषवादी धर्मप्रचारक के गृही और त्यागी शिष्यों के बीच में इस वादविवाद के कारण लोहूलुहान तक हो गया है। इस सम्बन्ध में इस प्रकार की कितनी ही सत्य घटनायें प्रचलित हैं जिनका मानहानि के भय के कारण यहां उल्लेख करना उचित नहीं समझा जाता।

फल्गु-त्यागी (कृत्रिम त्याग करने वाला) और भोगी-गृही सम्प्रदाय के लोगों ने जो त्यागी और भोगी का चित्र अपने मानसिक पट पर खींच रक्खा है उससे हरिभजन-परायण गृहस्थ और निष्किञ्चन हरि-सेवक सन्यासी का स्वरूप बिलकुल स्वतन्त्र है। बहिर्मुख जनता द्वारा पूजित किसी एक व्यक्ति ने कहा है "जिसप्रकार लहसुन प्याजादि की कटोरी का गन्ध सौ बार धोने से भी नहीं जाता उसी प्रकार जिस व्यक्ति ने एकबार वैधभाव से भी स्त्रीसहवास किया है वह चाहे कितना ही साधु क्यों न बन जाये उसके समावर्तन का दुर्गन्ध उसे कभी परित्याग नहीं करता।" उन्हीं उपदेशक महोदय ने यह भी कहा है कि सन्यासी अर्थात् वह व्यक्ति जिसने कभी समावर्तन नहीं किया वह "नैकष्य कुलीन त्याग" अपतित और निष्कलंक है।

वस्तुतः आत्मा न तो इस प्रकार का भोगी गृहस्थ ही है और न भोगप्रतियोगी- त्यागी। कृष्णानुशीलनकारी आत्मा गार्हस्थ्य व सन्यास किसी भी आवरण में रह सकता है। आत्मा के विकाश का तारतम्य ले कर ही शास्त्रकारों ने विभिन्न प्रकार के अधिकारियों के तारतम्य का विचार किया है। बाह्य आवरण का विचार लेकर स्वरूप के तारतम्य का विचार नहीं किया जा सकता। इसीलिये श्रीचैतन्यदेव ने कहा है कि गृहस्थ और सन्यासादि कोई भी भेप भगवद्भक्त का स्वरूप नहीं है।

नाहं विप्रो न च नरपतिर्नापि वैश्यो न शूद्रो
नाहं वर्णी न च गृहपतिर्नो वनस्थो यतिर्वा।
किन्तु प्रोद्यन्निखिलपरमानन्दपूर्णामृताब्धे-
गोपीभर्त्तुः पदकमलयोर्दासदासानुदासः॥

बहिर्मुखता तथा कनक-कामिनी और प्रतिष्ठा-कामना से ही मनुष्य गृही और त्यागीपने का अभिमान करने लगता है। गृहस्थ विचार करता है "मैं तो अपने बाहुबल से अर्थ, काम और प्रतिष्ठा को प्राप्त हुआ हूं। सन्यासी मेरे दरवाजे भीख मांगने आता है, अपनी जीविका के निर्वाह के लिये मेरा ही मुंह ताकता है, मेरे ही द्वारा उसके क्षुधाग्रसित उदर की तृप्ति होती है और मैं ही उसका हर प्रकार से पालनपोषण करने वाला हूं। गृहस्थ के पृथ्वी पर न होने से सन्यासी का उदर पालन होना ही असम्भव है। फिर भी सन्यासी गृहस्थ के ही अर्थ से अपना पेट पाल कर गृहस्थ से भी अधिक प्रतिष्ठा पाने की चेष्टा करे, यह किसी भी गृहस्थ का हृदय कैसे सहन कर सकता है? गृहस्थ का नमक खा कर उसका गुणगान करना तो दूर रहा उसे स्त्रीपुत्रादि में आसक्त एवं भोग विषय का कीड़ा कह कर अपमानित करना उसकी धृष्टता व निर्लज्जता नहीं तो और क्या है?"

सन्यासी कहता है "मैंने स्त्री-पुत्र, धन, अर्थ और काम सभी कुछ त्याग दिया है और गृहस्थ लोग संसार-नरक में ही आसक्त हैं, मेरे साथ विषयी गृहस्थों की तुलना कैसे की जा सकती है। कहां तो मधुमक्खी और कहां विष्ठा का कीड़ा! मैं तो उसका मङ्गलकामी उपदेष्टा हूं, इसलिये मेरा सम्मान सर्वतोभावे उससे कहीं अधिक है।" जब इस प्रकार के दो दलों की सृष्टि हो जाती है तब दोनों ही शास्त्रों की दुहाई देकर अपनी अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। गृहस्थों का दल

पुकार कर कहता है कि हम अन्यान्य तीनों आश्रमों का पालन करते हैं, इसलिये हम ही श्रेष्ठ हैं और त्यागियों का दल कहता है कि सन्यास आश्रम को भगवान ने अपने मस्तक से तुलना की है, इस कारण त्यागी ही सर्वश्रेष्ठ और पूजनीय है।

इस वादविवाद में और एक नये दल के मनुष्य अपने विचार प्रगट करके इसे अधिकतर जटिल बना देते हैं। उनके विचारानुसार आज कल के गृहस्थ और त्यागी दोनों ही एक समान हैं। गृहस्थ तो फिर भी अच्छे कहे जा सकते हैं। त्यागी गृहस्थ की अपेक्षा अधिकतर गुप्त-पापी होते हैं। गृहस्थ तो स्पष्ट भोगी होते हैं पर त्यागी प्रच्छन्न रूप से भोग करते हैं। गृहस्थ विधिपूर्वक शास्त्रोक्त रीति से स्त्री-सहवास करते हैं और त्यागी गुप्त रूप से स्त्रीसंग करके पशु से भी निकृष्ट कार्य करते हैं। इस प्रकार की युक्ति द्वारा एक श्रेणी के लोग गृहस्थ और त्यागी के झगड़े को समाप्त करने की चेष्टा करते हैं परन्तु फिर भी इन दोनों दलों के बीच लगी हुई आग ऊपर से बुझी हुई दीखने पर भी भीतर ही भीतर सुलगा करती है।

श्रीमन्महाप्रभु के सर्वोत्तम उपदेशों को हृदयंगम करने से तथा नित्य-लीला-प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्री भक्तिविनोद ठाकुर के आदर्श चरित्र पर ध्यान देने और उनकी अनुपम वाणी को समझ लेने से ही यह आग सदा के लिये बुझ सकती है।

श्री भक्तिविनोद ठाकुर ने अपने "जैवधर्म" नामक सुविख्यात ग्रन्थ में लिखा है.

१। कलिकाल में जीव के लिये गृहस्थ-वैष्णव होना ही उचित है। गृहस्थ-वैष्णव के लिये पतन का भय नहीं है। गृहस्थ में भक्ति की समृद्धि भी पूर्ण रूप से हो सकती है। गृहस्थ वैष्णवों में अनेक तत्त्वज्ञ गुरु हो गये हैं।

२। गृहस्थ वैष्णवों में कोई कोई गृह-त्यागी वैष्णव बनने के भी अधिकारी होते हैं। परन्तु संसार में उनकी संख्या बहुत थोड़ी है और उनका संग बहुत दुर्लभ है।

३। जैवधर्म के सत्तरहवें अध्याय में व्रजनाथ जब वृद्ध बाबाजी महाशय से पूछते हैं कि वैष्णवगण के अर्थ से क्या गृह-त्यागी लोगों को समझना चाहिये, तब बाबाजी महाशय उत्तर देते हैं - "शुद्ध कृष्ण-भक्त ही सच्चा वैष्णव कहलाता है। गृहस्थ हो या गृह-त्यागी, ब्राह्मण हो या चाण्डाल, धनी हो या दरिद्र उसको जिस परिमाण में कृष्ण-भक्ति होती है उसी परिमाण में वह कृष्ण-भक्त कहला सकता है।

४। बाइसवें अध्याय में भी वृद्ध बाबाजी महाशय ने कहा है,—जब तक गृह त्यागने का अधिकार मनुष्य प्राप्त नहीं कर लेता तब तक उसे गृहस्थ रह कर भगवत सेवा करनी चाहिये। महाप्रभु ने अपने जीवनकाल के पहले चौबीस वर्षों में जो लीला की है वह गृहस्थ वैष्णवों के लिये आदर्शरूप है और शेष चौबीस वर्षों में उन्होंने जिस लीला का दिग्दर्शन कराया है वही गृह-त्यागी वैष्णवों का धर्म है। यह विचार करना भ्रम है कि गृहस्थ आश्रम में रह कर कृष्ण-प्रेम की पराकाष्ठा तक पहुँचना असम्भव है। महाप्रभु के अधिकांश कृपा-पात्र गृहस्थ थे जिनके चरणों की रज मस्तक पर रखने के लिये बहुत से वैष्णवगण उत्सुक रहते हैं।

ॐ विष्णुपाद श्री भक्तिविनोद ठाकुर की यह वाणी सुन कर बहुत से लोग विचार करेंगे कि जब भोग में लिप्त रह कर भी मनुष्य सिद्धि की चरमसीमा तक पहुंच सकता है तब भोग से शत्रुता करने की आवश्यकता ही क्या है? प्राकृत सहजिया सम्प्रदाय के लोग अनेक काल से इस विचार प्रणाली को लेकर परमार्थ साधन के छल से नानारूप से इन्द्रिय तर्पण कर रहे हैं। वास्तव में इस प्रकार के विचार शास्त्र और महाजनों के वाक्यों के भोग-बुद्धि रूपी दर्पण पर प्रतिफलित होने से ही उत्पन्न होते हैं। इस भूल को दूर करने के लिये हमारे आचार्यदेव ने "गृहव्रत" और "गृहस्थ" इन दो परिभाषाओं की विशेषता का भलीभांति निर्णय किया है। जो प्रकृत गृहस्थ हैं वे गृहव्रती नहीं हैं—कृष्ण-व्रती हैं। और जो प्रकृत सन्यासी हैं वे कृष्ण और कृष्णसेवा त्यागी नहीं हैं-वे हैं कृष्ण संसार के संसारी व कृष्ण-गृहव्रती। वैष्णव गृहस्थ और वैष्णव सन्यासी में स्वरूपतः कोई भेद नहीं।

गृहव्रती सदा ही पतित अथवा पतन की पिच्छिल पहाड़ी के सिरे पर अवस्थित हैं। अतएव इस प्रकार की अवस्था में पतन की आशङ्का नहीं यह भक्तिविनोद प्रभु का उपदेश कदापि नहीं हो सकता यह दूसरे ही वाक्यसे स्पष्ट हो जाता है। श्रीमन्महाप्रभु की शिक्षानुसार कौपीन धारण व मधुकरी व्रत धारण करना ही भजन का असली मतलब है। प्रत्येक जीव को एक न एक दिन इस भजन का आश्रय अवश्य ही लेना होगा। परन्तु कौपीन धारण का अर्थ फल्गु-त्याग और मधुकरी भिक्षा का तात्पर्य उदरवेग की तृप्ति के लिये सामग्री एकत्र करना नहीं है। कौपीन ग्रहण का असली तात्पर्य है भोक्ता और पुरुष-अभिमान परित्याग पूर्वक गोपीदासानुदासत्व का अभिमान करना. और मधुकरी का अर्थ है विप्रलम्भ व भजन की सर्वोत्तम अवस्था में अवस्थित होकर कृष्णानुसन्धान करना।

श्रीमन्महाप्रभु ने चिरकाल गृहस्थ रहने का उपदेश नहीं दिया है और स्वयं भी उन्होंने इस आदर्श का प्रदर्शन नहीं किया है। रायरामानन्द ने महाप्रभु के नित्य-सिद्ध पार्षद होते हुए भी श्रीमन्महाप्रभु के साथ निरन्तर अवस्थान करने के लिये विषयत्यागलीला का आदर्श दिखलाया था। महाप्रभु के जिन भक्तों ने समावर्तन नहीं किया उनको कभी उन्होंने विवाह के लिये उत्साहित नहीं किया। श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी प्रभु को महाप्रभु ने पारमार्थिक जीवन के नवीन प्रभात में जागृत होनेवाली बहिर्मुख मनुष्यों की प्रतिष्ठाशा जनित फल्गुत्याग की पिपासा का प्रतिरोध करने का आदर्श प्रदर्शन करने के लिये स्त्री परिग्रह करने का निषेध किया था. परन्तु इसके कुछ ही दिन पश्चात् इन्हीं रघुनाथभट्ट गोस्वामी को महाप्रभु ने सर्वतोभावे गृहत्याग करके अप्राकृत वैराग्य की चरम सीमा को प्राप्त करने का उपदेश किया था।

गृहस्थाश्रम में पतन की आशङ्का नहीं. ऐसा विचार करके अथवा इस छल से कि हम कृष्ण-संसार के संसारी हैं और कृष्ण के ही दास दासियों की सृष्टि (?) कर रहे हैं संसार का भोग करने से कदापि हमारा मंगल न होगा। श्री भक्तिविनोद ठाकुर ने नित्य-सिद्ध गौरजन होते हुए भी स्वयं अपने जीवन की अन्त्य लीला में कौपीन ग्रहण करने का आदर्श दिखलाया है। इससे भी अधिक उनकी वाणी का अन्तर्निहित अभिप्राय और क्या स्पष्ट हो सकता है?

वास्तव वस्तु और मतवाद

(पिछले अङ्क से आगे)

प्र० 'नित्य धर्म' और 'नैमित्तिक' धर्म में क्या अन्तर है ?

उ० **नैमित्तिक-धर्म** सोपान रूप से वास्तव वस्तु का अनुसन्धान करने में सहायक होनेके कारण धर्म ही है। वह मतवाद नहीं कहा जा सकता। परन्तु वास्तव में नित्य धर्म ही सर्व श्रेष्ठ धर्म है।

प्र० **नित्य धर्म** क्या है ?

उ० इस विषय में स्वयं श्रीमद्भागवत कहते हैं,—

"स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

जिससे इन्द्रिय-ज्ञानातीत श्रीकृष्ण में श्रवणादि लक्षणा, फलाभिसन्धान रहिता, एकान्तिकी निरपेक्षा भक्ति का उदय होता है वही मानवजाति का सर्व श्रेष्ठ धर्म है उसी भक्ति के बल से अनर्थ उपशान्त होने से आत्मा प्रसन्नता लाभ करती है।

प्र० **भक्तियोग** को नित्य धर्म क्यों कहते हैं ?

उ० भगवान नित्य हैं। जीव भी नित्य है। जीवका सम्बन्ध भगवान के साथ नित्य है; और वह सम्बन्ध भक्ति का ही है। स्वरूप में जीव का स्वाभाविक धर्म भक्ति के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है यद्यपि उसके विरूप में अवस्थान करने के हेतु वह धर्म अन्य प्रकार दीख पड़ता है।

प्र० **विरूप** किसे कहते है ?

उ० मेरा जड़ देह मैं नहीं। मुझसे यह देह अन्य है। अपने यथार्थ रूप में स्थित न रहकर उस 'अन्य' को अन्य वस्तु समझना, अर्थात् उसमें आत्म-बुद्धि करना ही विरूप में अवस्थान करना है। इस सम्बन्ध में 'यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके' श्लोक की आलोचना करना चाहिये। श्रीमद्भागवत कहते हैं कि जो सत्व, रज, तम अथवा कफ, पित्त, वायु का बना हुआ आकार रूपी कुणप में आत्म-बुद्धि करता है वह पशुओं में गधा है—"स एव गोखरः।"

प्र० जीव के विरूप में अवस्थान करने का कारण क्या है ?

उ० द्वितीयाभिनिवेश ही जीव के विरूप में अवस्थान करने का कारण है।

प्र० **द्वितीयाभिनिवेश** किसे कहते हैं ?

उ० 'द्वितीय' का शाब्दिक अर्थ है 'दूसरा', 'इतर' अथवा 'अन्य'। जिस वस्तु का दर्शन, मनन तथा चिन्तन में अद्वयज्ञानतत्व सम्बन्धी के द्वितीय' अर्थात् 'अन्य' तथा 'इतर' रूप से करता है वह द्वितीय' है। अभिनिवेश का अर्थ है मनोयोग, लीनता, एकाग्रचिन्तन, दृढ़संकल्प, उत्सुकतापूर्ण अभिलाषा। अद्वयज्ञान सम्बन्धी रहित दर्शन मनन तथा चिन्तन का ही दृढ़ संकल्प और उक्त प्रकार के दर्शन, मनन तथा चिन्तन में ही तल्लीन रहना द्वितीयाभिनिवेश है।

इसी सूत्र से यह भी समझ लेना चाहिये कि जिस मुहूर्त में मनुष्य को द्वितीय वस्तु का दर्शन, मनन तथा चिन्तन घटता है उसी मुहूर्त उसे माया ग्रास कर लेती है। यद्यपि सभी

वस्तु यथार्थ में अद्वयज्ञानतत्त्व सम्बन्धी हैं तथापि उक्त तत्त्व विमुख व्यक्तियों के प्रति ऐसा दर्शन अलभ्य है। अद्वयज्ञानतत्त्व प्रेमियोंको प्रत्येक वस्तु के देखने मे अद्वयज्ञानतत्त्व का ही स्फुरण होता है। परन्तु बहिर्मुख व्यक्ति जब किसी वस्तु को देखता है तब उसे अपने सुख, दुःख, सुविधा, असुविधा सम्बन्धी विषयों का ही स्फुरण होता है।

प्र० चिद्रूप में अवस्थान करते हुए जो भक्ति-योग की साधना की जाती है वह नित्य-धर्म कैसे हो सकता है ?

उ० पूर्णतया चिद्रूप मे अवस्थान करके भक्ति-योग की साधना किसी अंश मे भी नहीं की जा सकती। बिना सम्बन्ध-विशिष्ट हुए भक्ति-योग साधित नहीं होता। जिस परिमाण मे सम्बन्ध-विशिष्ट हुआ जाता है उसी परिमाण मे भक्ति-योग साधित होता है।

प्र० **'सम्बन्ध-विशिष्ट'** होना किसे कहते है ?

उ० निज तथा भगवान के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान के सहित इन दोनों के बीच शक्ति शक्ति-मान, दास-प्रभु, सेवक-सेव्य, भोग्य-भोक्तारूपी नित्य तथा स्वाभाविक सम्बन्ध की उपलब्धि को 'सम्बन्ध-विशिष्ट' होना कहते हैं।

प्र० यहां भी 'निज' से तात्पर्य जीव का ही तो है ? स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर से तो नहीं !

उ० 'निज' शब्द से तात्पर्य जीव का ही है। स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर तो माया के दो आवरण हैं जिनके द्वारा जीव अपने स्वरूप को भूल कर विरूप को प्राप्त हुआ है।

प्र० तो क्या जीव इन दोनों आवरणों का त्याग कर सकता है ?

उ० अवश्य कर सकता है, परन्तु भगवद्भक्ति के बिना नहीं।

> एवं मनः कर्मवशं प्रयुङ्क्ते
> अविद्ययात्मन्युपधीयमाने ।
> प्रीतिर्न यावन्मयि वासुदेवे
> न मुच्यते देहयोगेन तावत् ॥ भा: ५-५-६

प्र० **नैमित्तिक धर्म** किसे कहते है ?

उ० प्रकृतिस्थानीय जीव अपनी इन्द्रिय-तृप्ति सम्पादन करने के लिये स्थूल तथा सूक्ष्म शरीरों को वरण करता है।

"मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥"
(गीता १५-७)

इन्हीं शरीरों के द्वारा जीव संसार में अवस्थान करके अपनी इन्द्रिय-तृप्ति सम्पादन करता है। अतएव इन शरीरों को 'निमित्त' कहते हैं। इस 'निमित्त' के उपस्थित होने से जीव के स्वाभाविक धर्म के प्रकाश होने में जो व्याघात पहुंचता है उसको अतिक्रम करने के लिये शास्त्र के द्वारा उक्त 'निमित्त' को ही आधार कर के जिस धर्म का विधान किया गया है उसे **"नैमित्तिक धर्म"** कहते हैं। तात्कालिक सुख भोग की लालसा जिसमें प्रबल बनी है उसे उस नित्य-मंगल का प्रतिबंधक प्रवृत्ति से उद्धार करके परोक्षज्ञान, अपरोक्षज्ञान और अपरोक्षज्ञान के परवर्त्ति अर्थात् वास्तव वस्तु के विचारों में प्रवेश कराने के लिये ही नैमित्तिक धर्म की सृष्टि हुई है। यद्यपि नैमित्तिक धर्म की व्यवस्था स्थूल और सूक्ष्म शरीरों के उपलक्ष्य में ही है

तथापि इसका अन्तिम उद्देश्य देहाभिमान से छुटकारा दिलाने ही का है। कर्मकांड प्रतिपादक वेद और तदनुगत शास्त्रों में जो स्वर्गीय भोगों का प्रलोभन दिया गया है उसमें भटकना नहीं चाहिये। जैसे रोग-ग्रस्त लड़कों को रोग से निवृत्ति के लिये लड्डू का प्रलोभन देकर औषधि सेवन कराया जाता है उसी प्रकार भव-रोग-ग्रस्त मनुष्यों को भवरोग से निवृत्ति के लिये स्वर्गादिभोगों का प्रलोभन दिया जाता है।

उपर्युक्त विषय में श्रीमद्भागवत के निम्नांकित वचनों पर ध्यान देना चाहिये। (भा० ११-५-११)

लोके व्यवायामिषमद्यसेवा
नित्या हि जन्तोर्न हि तत्र चोदना।
व्यवस्थितिस्तेषु विवाहयज्ञ
सुराग्रहैरासु निवृत्तिरिष्टा॥

जगत में स्त्रीसंग, मांसभक्षण एवं मद्यपान प्राणीमात्र का ही स्वाभाविक धर्म है। इस विषय में शास्त्र-विधान की कोई आवश्यकता नहीं। परन्तु यदि यह समस्त कार्य सम्पूर्ण रूप से परित्याग करना असम्भव हो, तब ऐसी अवस्था में विवाह द्वारा स्त्रीसंग, यज्ञ द्वारा मांसभक्षण एवं सौत्रामणी यज्ञ द्वारा मद्यपान का नियम विधान किया गया है। सुतरां इन विषयों में सर्वतोभाव निवृत्ति ही वेद का मुख्य उद्देश्य जानना चाहिये।

धनञ्च धर्म्मैकफलं यतो वै
ज्ञानं सविज्ञानमनुप्रशान्ति।
गृहेषु युञ्जन्ति कलेवरस्य
मृत्युं न पश्यन्ति दुरन्तवीर्य्यम्॥

जिस धर्म को पालन करने से विज्ञान तथा मोक्षसाधक ज्ञान उत्पन्न होता है, ऐसे धर्मकृत्य संपादनोपयोगी धन को जो लोग केवल आत्मेन्द्रिय-तृप्ति साधन के लिये व्यवहार करते हैं, वे लोग दुरन्तवीर्य मृत्यु की कथा का चिन्तन नहीं करते। (११-५-१२)

यद्घ्राणभक्षो विहितः सुराया-
स्तथापशोरालभनं न हिंसा।
एवं व्यवायः प्रजया न रत्यै
इमं विशुद्धं न विदुः स्वधर्म्मम्॥

शास्त्र में मद्य का घ्राणरूप भक्षण ही विहित हुआ है, पान नहीं, इसी तरह से अपनी इच्छानुसार पशुहिंसा के बदले यज्ञ में पशु व्यवहार एवं आत्मतृप्ति के बदले केवल संतान उत्पादन करने के लिये ही मैथुन विहित हुआ है परन्तु मनोरथवादी लोग इस प्रकार के विशुद्ध स्वधर्म को नहीं जानते। (११-५-१३)

ये त्वनेवंविदोऽसन्तः स्तब्धाः सदभिमानिनः।
पशून् द्रुह्यन्ति विस्रब्धाः प्रेत्य खादन्ति ते च तान्॥

इस तरह के धर्मतत्त्व से अनभिज्ञ जो लोग अविनीत, साधु होने का अभिमान करने वाला दुर्जन निःशंक चित्त से पशुहिंसा करते हैं परलोक में निहत (मार-डाला हुआ) पशुगण भी प्रत्युत्तर में उनलोगों का भक्षण कर अपना बदला लेते हैं। (११-५-१४)

परोक्षवादो वेदोऽयं बालानामनुशासनम्।
कर्म्ममोक्षाय कर्म्माणि विधत्ते ह्यगदं यथा॥

परोक्षवाद (अर्थात् एक प्रकार की स्थित वस्तु का यथार्थ तत्त्व को गोपन करने के लिये अन्य प्रकार से उसका वर्णन) वेद का एक स्वभाव है। सुतरां पिता जिस तरह लड्डू इत्यादि का प्रलोभन देकर संतान को निरोग करने को औषधि पिलाता है उसी तरह वेद भी निर्बोध

व्यक्ति के प्रवृत्ति के लिये स्वर्गीय सुख-फल के प्रलोभन के छल से कर्म निवृत्ति के लिये ही विहित कर्मों का प्रतिपादन किया है। (११-३-४४)

प्र० **भक्तियोग** कैसे लाभ होता है?

उ० ऊपर कहा गया है कि भक्तियोग लाभ होने के पहले भगवत्ज्ञान लाभ होना चाहिये। तब प्रश्न यह होगा कि भगवत्ज्ञान लाभ कैसे हो? इसका उत्तर है कि भगवत्ज्ञान के लाभ होने का हेतु भगवदनुग्रह ही है।

श्री मद्भागवत कहते हैं—भा: (१० १४-२९)

'अथापि ते देव पदाम्बुजद्वय-
प्रसादलेशानुगृहीत एव हि।
जानाति तत्त्वं भगवन्महिम्नो
न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन्॥

अर्थात हे भगवन् जो आपका लेश मात्र भी अनुग्रह लाभ कर चुके हैं वे आपकी महिमा को जानते हैं। जो अपनी प्रभुता के द्वारा आपको ढूंढ निकालना चाहते हैं वे जन्म जन्मान्तर भी चेष्टा करते रह जाने पर आपका पता नहीं पा सकते। फिर कठोपनिषत् में ऐसा लिखा है:—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष
आत्मा वृणुते तनूं स्वाम्॥

यह परमात्म वस्तु बहुत तर्क, मेधा अथवा पाण्डित्य द्वारा नहीं जानी जाती। परमात्मा जिसके निकट अपना स्वयं प्रकाशतनु कृपापूर्वक अभिव्यक्त करते हैं वही उन्हें जान सकता है।

प्र० **वास्तव वस्तु** का अनुग्रह किस प्रकार लाभ होता है?

उ० इसका उत्तर श्रीमद्भागवत देते हैं:—

येषां स एष भगवान् दययेदनन्तः
सर्वात्मनाश्रितपदो यदि निर्व्यलीकम्।

जो निष्कपट होकर वास्तव वस्तु का आश्रय सब प्रकार से लेता है उसी पर वास्तव वस्तु अनुग्रह करते हैं। जिन में कर्तृत्व और भोक्तृत्व का अभिमान है उन पर नहीं। इस सम्बन्ध में गीता के भी दो श्लोकों की आलोचना करनी चाहिये (गीता ३-२७

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते॥

अर्थात् अविद्या द्वारा जड़-प्रकृति में आबद्ध होकर जीव प्राकृत अहंकार-विमूढ़ रूप से प्रकृति के गुण और ईश्वर की अध्यक्षता द्वारा क्रियमाण होकर "मैं ही अकेला सब कार्यों का सम्पादन करने वाला हूँ" ऐसा समझता है। और "मैं ही कर्ता हूँ" ऐसा भाव रखता है। बल्कि भगवान की वाणी यह है—(गी: ९-२४)

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च।

अर्थात मैं ही सब यज्ञों का भोक्ता और प्रभु हूँ।

प्र० वास्तव वस्तु का प्रेम किसे कहते हैं?

उ० वास्तव वस्तु का प्रेम हृदय-कन्दरा में अनुभव करने की वस्तु है, संकल्प-विकल्पात्मक मन का विषय नहीं। परन्तु यह समझना चाहिये कि सांसारिक वस्तुओं के प्रति जो खिंचाव है वह प्रेम नहीं है। उसे "काम" कहते हैं। उस के गुण प्रेम के गुणों से ठीक विपरीत हैं, और उसका परिणाम भी अतिशय अनुपादेय है।

प्र०—गीता शास्त्र में जो कर्मयोग और ज्ञान योग की बातें कही गयी हैं वे क्या हैं ?

उ०—वे भी मतवाद के अन्तर्गत वस्तु नहीं हैं। कर्मयोग और ज्ञानयोग कभी कभी भक्ति-योग लाभ करने की सीढ़ियां बन सकती हैं।

कर्म क्या है, और कर्मयोग क्या है उसे भी जानना चाहिये। कर्मयोग के सिद्धान्तों का अनादर करते हुए कर्मयोग की दुहाई देना सर्वथा अनर्थ है। इसी से स्वविधावाद आदि कपटतापूर्ण धर्मों की और स्वेच्छाचारिता की सृष्टि होती है। तत्त्व के निरूपण करनेवाले शास्त्रों ने कर्म की उत्पत्ति अविद्या से ही बताया है, न कि कर्म की नित्यता को स्वीकार किया है। इसके अतिरिक्त उपर्युक्त शास्त्रों ने यह भी कहा है कि कर्म का सम्पूर्ण रूप से विनाश कर्म द्वारा सम्भव नहीं होता। श्रीमद्भागवत कहते हैं, "कर्मणा कर्मनिर्हारो नह्यात्यन्तिक इष्यते।" अन्यत्र और भी श्रीमद्भागवत में कहा है:—

वृत्त्या स्वभावकृतया वर्त्तमानः स्वकर्मकृत।
हित्वा स्वभावजं कर्म शनैर्निर्गुणतामियात्॥

अर्थात् स्वभाव से की हुई वृत्ति के साथ वर्तमान स्वधर्म का आचरण करने वाला धीरे-धीरे कर्म-परित्याग-पूर्वक ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है। परन्तु जो आत्मानुरागी है अर्थात अनात्म और आत्मवस्तु को पृथक् पृथक् रूप से अवलोकन कर चुका है, वह आत्मा ही में रति वाला है, आत्मा ही में तृप्त है, और आत्मा ही में सन्तुष्ट है। उसके लिये कोई कर्त्तव्य कर्म नहीं है—(गी० ३, १७-२२)।

• निषिद्ध कर्म तो करना ही नहीं चाहिये। कर्त्तव्य कर्म भी करने का जो विधान है, वह कर्म बन्धन से छुटकारा पाने के लिये ही है। कर्त्तव्य कर्म करने की वह प्रणाली जिससे मनुष्य कर्म करते हुए भी कर्म बन्धन में न बंधे बल्कि कृत कर्म वास्तव वस्तु के अनुसन्धान के सहायक रूप में परिणत हो जाय उसे कर्मयोग कहते हैं। कर्त्तव्य कर्म का पालन करने का फल प्रणाली के भेद से दो विभिन्न रूप का हो सकता है, एक तो यह है कि कर्म केवल द्रव्यमय हो जा सकता है, और दूसरा चिन्मय हो जा सकता है। जब कर्त्तव्य कर्म वास्तव वस्तु की आलोचना के सहित सम्पादित नहीं होता है तब वह द्रव्य-मय हो जाता है। जब निरालोचना चलती रहती है तब द्रव्य के द्वारा सम्पादित होने पर भी वह चिन्मय तथा ज्ञानमय हो जाता है।

प्र०—इसका कोई प्रमाण है ?

उ०—प्रमाण तो है। स्वयं श्रीकृष्णचन्द्र ने (गीता ४, ३२-३३) कहा है:—

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे।
कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे॥
श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते॥

भिन्न भिन्न प्रकारों के यज्ञों की आलोचना करते हुए श्री कृष्ण ने कहा "ये सब प्रकार के यज्ञों के विधान वेद तथा वेदानुगत शास्त्रों में ही हैं। ये सब यज्ञ काया, मन, और वचन के द्वारा सम्पादित किये गये हुए कर्मों से ही उत्पन्न होते हैं, अतएव इन्हें कर्मज कहते हैं। उक्त प्रकार से यदि कर्मतत्त्व का विचार कर सको तो कर्म बन्धन से मुक्त हो जाओगे। यद्यपि इन सब यज्ञों के द्वारा क्रमशः ज्ञानलाभ, उसके उपरान्त शान्तिलाभ,

एवं अन्त में हमारा भक्तिलाभ रूप भाव का मंगल उदय होता है तथापि इन सब यज्ञों के विषय में एक निगूढ़ विचार है उसको जानना चाहिये। निष्ठा भेद से उपयुक्त सकल यज्ञ किसी समय द्रव्यमय और किसी समय ज्ञानमय होते हैं। द्रव्यमय यज्ञ से ज्ञानमय यज्ञ अत्यन्त श्रेष्ठ है। क्योंकि हे पार्थ समस्त कर्म ही ज्ञान में समाप्ति लाभ करते है, अर्थात् ज्ञान उनकी पराकाष्ठा है।"

परन्तु इस द्रव्यमय यज्ञ और ज्ञानमय-यज्ञ के अन्तर्निश्चित भेद को जानना बहुत कठिन है। तत्त्वदर्शी गुरु के समीप भलीभांति प्रणिपात, परिप्रश्न, और सेवा के द्वारा ही जाना जा सकता है। श्री कृष्णचन्द्र ने इसको स्पष्ट रूप से कह दिया,—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

हां परिणाम रूप से यह भेद इस प्रकार जाना जा सकता है कि द्रव्यमय यज्ञ का फल स्वर्गलोक के दिव्य भोगों को भोगकर पुण्य क्षीण होने से फिर मृत्युलोक को लौटना है और ज्ञानमय यज्ञ का फल संसार सागर को पार करके वास्तव वस्तु की पराभक्ति लाभ करने के द्वारा अपूर्व अमृत का नित्य आस्वादन करना है।

प्रश्न—चिदालोचना किसको कहते हैं?

उत्तर—तत्वविचार पूर्वक आध्यात्मिक आलोचना को चिदालोचना कहते हैं। चिदालोचना का एक दृष्टान्त हमलोग श्री कृष्णदास कविराज गोस्वामी प्रभु के चैतन्य चरितामृत ग्रन्थ में पाते हैं। श्री सनातन गोस्वामी प्रभु ने श्रीमन्महाप्रभु के समीप प्रश्न किया था,

के आमि केने आमाय जारे तापत्रय।
इहा नाहि जानि केमने 'हित' हय॥
साध्य-साधन-तत्त्व पुछिते ना जानि।
कृपा करि सब तत्त्व कह तो आपनि॥

मैं कौन हूं? मैं कहां से आया हूं? मैं यहां क्यों आया? काम-क्रोध-लोभ-मोह-मद-मात्सर्य ये छः रिपु मेरे पीछे क्यों लगे हुये हैं? मुझको त्रिताप क्यों जला रहा है? क्या मेरा कोई अपना है जो इन तापों से छुटकारा दिला सके? अगर है, तो कहां है? उसे कैसे पाऊंगा? मेरा चरम-कल्याण लाभ किसमें है? मैं कैसे उस चरम-कल्याण को प्राप्त कर सकूंगा? मनुष्य तत्व-दर्शी गुरु के निकट उपर्युक्त विषयों की आलोचना के द्वारा चिदालोचना में प्रतिष्ठित हो सकता है।

प्रश्न—शास्त्र में जो कर्म करने को कहा गया है, यदि वह कर्म से निवृत्ति के लिये हो तो कर्म करने की क्या आवश्यकता है?

उत्तर—इसका उत्तर अधिकार के अनुसार होगा! जो नैष्कर्म्य को प्राप्त हुआ है, अथवा जिसके हृदय में पूर्व जन्म की संचित सुकृति के बल से साधु संग के द्वारा भक्तियोग में निष्ठा उदय हुई है उसके लिये कर्म की आवश्यकता नहीं है। इसका प्रमाण श्री मद्भागवत का निम्न-लिखित श्लोक है:—(भाः ११-२०-९)

तावत् कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता।
मत्कथाश्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते॥

ऐसे महापुरुष जो नैष्कर्म्य अथवा भगवत कथा श्रवण करने की श्रद्धा को प्राप्त हो चुके हैं, उनको जो कर्म करते हम अपने नेत्रों से देखते हैं वे अलौकिक हैं। उन कर्मों के द्वारा न वे

खुद ही बँधते हैं न दूसरे ही का चित्त मलीन होता है। बल्कि उनके संग से जीव का कल्याण ही सम्पादित होता है। वे साधारण कर्म से बिल्कुल पृथक् हैं। यथार्थ में जो बद्धजीव का कर्म है वही कर्मपदवाच्य है। बद्ध जीव का कर्म करना उसकी इच्छा पर निर्भर नहीं है। वह बिना कर्म किये एक क्षण भी नहीं रह सकता है।

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥
गीता ३ (५)

प्रश्न इतना ही है कि कौन सा कर्म किया जाय और कर्म करने की विधि क्या है? कर्म चार प्रकार के होते हैं- अकर्म, विकर्म, कर्म और निष्काम कर्म। विकर्म का परिणाम दुःख है। जो कर्म शास्त्रविहित नियमों के अनुसार और श्रद्धा के साथ सम्पादित न किया जाय वह अकर्म है। इसका फल उलटा पलटा होता है। इससे परलोक का तो कोई प्रयोजन सिद्ध होता ही नहीं, बल्कि इस लोक का भी कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। कर्म काम्य कर्म को कहते हैं। कर्म काण्ड वेद और तदनुगत शास्त्र प्रतिपादित कर्मों का श्रद्धा पूर्वक सम्पादन करना ही कर्म है। इससे मनुष्य संसार में बंधता है, और विषयासक्त होने के कारण उसका चित्त मलीनता को प्राप्त होता है। अतएव अकर्म विकर्म और कर्म तीनों ही त्याज्य है। परन्तु हम देख चुके हैं कि मनुष्य बिना कर्म के क्षण भर भी नहीं रह सकता है और यह भी भगवान ने गीता में कहा है कि आसक्ति को त्याग कर इन्द्रिय मन बुद्धि और शरीर के द्वारा कर्म करने से अन्तःकरण शुद्ध होता है। अतएव मनुष्य को जब तक ज्ञानयोग अथवा भक्तियोग में अधिकार लाभ न हो, तब तक उसे आसक्ति को त्याग कर और सिद्धि असिद्धि में समान बुद्धिवाला होकर निष्काम कर्म ही करना चाहिये। परन्तु मनुष्य यह न भूले कि निष्काम कर्म की भूमि बहुत फिसलने वाली है क्योंकि इसका आधार मनोधर्म है। मन बहुत चंचल है अतएव निष्काम कर्म से काम्य कर्म, काम्य कर्मसे विकर्म, अकर्म तक घसक कर चले आने की आशंका रहती है। निष्काम कर्म से आगे की ओर बढ़कर आत्मधर्म में प्रतिष्ठित होने की चेष्टा बिना विलम्ब के ही होनी चाहिये।

निवृत्तं कर्म सेवेत प्रवृत्तं मत्परस्त्यजेत् ।
जिज्ञासायां सम्प्रवृत्तो नाद्रियेत् कर्मचोदनाम् ॥

मद्गतचित्त पुरुष काम्य कर्म का परित्याग तथा निष्काम कर्म का अनुष्ठान करेंगे। तत्पश्चात अच्छी तरह आत्मविचार में प्रवृत्त होकर निष्काम कर्मविधि में आदर से भी निवृत्ति लाभ करेंगे।

प्र० चित्तालोचना के सहित ही कर्मयोग अनुष्ठित होने की विधि है इसका कोई प्रमाण है?

उ० प्रमाण क्या, शास्त्रों में जो कर्मयोग की शिक्षा है उसका यही निगूढ़ मर्म है। अवश्य इसका समझना बहुत ही कठिन है परन्तु बिना इसको समझे जो कुछ किया जाता है वह कर्मयोग पदवाच्य नहीं है। कर्मयोग का उपदेश करते हुए स्वयं श्री कृष्णचन्द्र ने आरम्भ में ही गीता में (२ ४५) अर्जुन से कहा है:—

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥

अर्थात् "माया त्रिगुणमयी है। सब वेद इस त्रिगुणमयी माया सम्बन्धी वस्तुओं को विषय कहते हैं। तुम त्रिगुणमयी माया के अन्तर्गत कोई वस्तु नहीं हो। तुम मिश्रसत्व से निर्मुक्त होकर विशुद्ध-सत्वमयी सत्ता को प्राप्त हो वह तुम्हारी विशुद्ध-सत्वमयी सत्ता अविनाशी है। उसी विशुद्ध सत्व मयी सत्ता को प्राप्त होकर नित्य सत्वस्थ हो सकते हो। और उसी विशुद्ध सत्वमयी सत्ता को विषय करके रहो। यही आत्मवान होना है। इसको न समझोगे तो निर्द्वन्द्वः अर्थात् सुख-दुःख द्वन्द्वों से रहित, और निर्योगक्षेमः अर्थात् अप्राप्त वस्तु को प्राप्त और प्राप्त वस्तु की रक्षा करने की इच्छा नहीं करनेवाला होना कठिन होगा।" देखो भाई! कर्म-जड़ व्यक्ति कर्मयोग पालन नहीं कर सकता। वह कर्म ही को सर्वस्व मानता है। वह कुछ भी नहीं जानता कि कर्म केवल साधन मात्र है, साध्य नहीं। साधन-साध्य के ज्ञान का अभाव रहने के कारण वह बौद्धमतावलम्बी अथवा कर्मबीर बन बैठता है और आत्मविनाश को प्राप्त होता है।

समग्र गीता में जहां जहां कर्मयोग का उपदेश है वहा वहां चिदालोचना के सहित ही वर्तमान है। स्पष्ट रूपसे भी श्री कृष्णचन्द्र ने कहा है कि जो कर्म ज्ञान में स्थित हुआ चित्तवाला, आसक्ति रहित मुक्त पुरुष के द्वारा यज्ञ के लिये किया जाता है वह कर्म लय को प्राप्त होता है. अर्थात् जैमिनी इत्यादि कर्ममीमांसक लोग जिसे 'अपूर्व' कहते है वह अपूर्वता लाभ नहीं करता।

गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ॥

प्र०—कर्मयोग साधन है तो साध्य क्या है?

उ०—श्री कृष्ण चन्द्र ने गीता के चौथे अध्याय के ३३ वें श्लोक में कहा है:—

सर्वं **कर्माखिलं** पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते

अर्थात् हे पार्थ सम्पूर्ण कर्म ज्ञान में समाप्त होते हैं। ज्ञान उनकी पराकाष्ठा है।

फिर भी विशेष रूप से इस विषय की व्याख्या श्रीमद्भागवत से सुनियेः—

स्वधर्मस्थो यजन् यज्ञैरनाशीःकाम उद्धव।
न याति स्वर्गनरकौ यद्यन्यन्न समाचरेत्॥
अस्मिन् लोके वर्त्तमानः स्वधर्मस्थोऽनघः शुचिः।
ज्ञानं विशुद्धमाप्नोति मद्भक्तिं वा यदृच्छया॥
भा० ११।२०।१०-११

अर्थात् हे उद्धव! जो व्यक्ति फल की कामना न करते हुए स्वधर्म का आचरण करता है, एवं यज्ञ के द्वारा देवतालोगों की आराधना करता है, तथा निषिद्ध वा काम्य विषय का आचरण नहीं करता वह स्वर्ग अथवा नरक को प्राप्त नहीं होता है। पुरुष स्वधर्मस्थ निषिद्ध त्यागी एवं रागादि शून्य होकर इस लोक में वर्तमान रह कर ही केवल ज्ञान वा भाग्य क्रम से मेरी (श्री कृष्णचन्द्र की) भक्ति लाभ करता है।

सभी कर्मयोग के अनुष्ठान करने वालों को वास्तव वस्तु की भक्ति लाभ नहीं होती। कदाचित् यदि वास्तव वस्तु की कृपा हो तो वे निर्मत्सर महाभागवतों का संग लाभ करके मानवजन्म का सर्वोत्कृष्ट फलरूप वास्तव वस्तु का प्रेम लाभ कर सकते हैं।

प्र०—तो क्या चिदालोचना के सहित कर्मयोग का अनुष्ठान करना वास्तव वस्तु का प्रेमलाभ करने के लिये आवश्यक है?

उ० — नहीं, बल्कि मनुष्य यदि अपना कल्याण चाहे तो कर्मयोग और ज्ञानयोग के झगड़ों को छोड़ कर शुद्ध भक्ति मार्ग का ही अवलम्बन करे। भक्तियोग स्वतंत्र साधन है। यह और किसी दूसरे साधन की अपेक्षा नहीं करता। इसलिये भक्तियोग निरपेक्ष कहा गया है। इसके अतिरिक्त भक्तियोग केवल साधना ही नहीं, बल्कि साध्य भी है, यद्यपि साधनभक्ति भावभक्ति प्रेमभक्ति रूप से भक्ति त्रिविधा है।

प्र० — ज्ञानयोग के अनुष्ठान से कौनसी अवस्था प्राप्त होती है?

उ० — ज्ञानयोग के अनुष्ठान से जो अवस्था प्राप्त होती है श्री कृष्णचन्द्र ने गीता के पञ्चम अध्याय में विशेष रूप से "तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम्" "गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं," "ब्रह्मणि ते स्थिताः" "स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते", "ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति, ब्रह्मनिर्वाणं लभन्ते," "ब्रह्मनिर्वाणं वर्त्तते" समूह शब्दों से वर्णन कर दिया है। अर्थात ज्ञानीजन सूर्य के सदृश तेजवाले ब्रह्म का दर्शन करते हैं, संसार में आवागमन से छुटकारा पाते हैं, ब्रह्म में स्थितहोते हैं, ब्रह्मयोग से स्थित हुए अक्षय सुखका अनुभव करते हैं। ब्रह्म के साथ एकीभाव होकर ब्रह्मनिर्वाण को प्राप्त करते हैं, इत्यादि।

प्र० — ज्ञानियों एवं वास्तव वस्तु के प्रेम प्राप्त किये हुए पुरुषों की अवस्था में कोई अन्तर है?

उ० — बहुत अन्तर है। एक में केवल माया से विपरीत एक चिन्मयमात्र वस्तु का अनुभव होता है, दूसरे में विचित्रता पूर्ण चिद्विलासमयी वस्तु के साथ पुरुष रति विशिष्ट होकर और उसकी प्रेम-लीला में प्रवेश कर अवस्थान करता है।

प्र० — ज्ञान कैसे प्राप्त किया जाता है?

उ० — ज्ञान स्वतन्त्र चेष्टा से लाभ नहीं हो सकता है। इस विषय में मुण्डक उपनिषद कहते हैं: — (२-१२)

परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो
निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन।
तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्
समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्॥

अर्थात् कर्म के द्वारा प्राप्यफल समूह की अनित्यता को उपलब्धि कर, और जो कर्म से परे नित्य सत्य वस्तु है वह कर्म के द्वारा लाभ नहीं हो सकती है इस को जानकर ब्राह्मण कर्म के प्रति निर्वेदभाव को प्राप्त हो, और वास्तव वस्तु का विज्ञान (भक्ति सहित ज्ञान) लाभ करने के लिये वह समितहस्त होकर वेद का तात्पर्य जानने वाले तथा कृष्ण तत्त्ववित् सद्गुरु के समीप तन, मन और वचन के सहित जाय।

स्वयं अर्जुन ने इस आचरण का अवलम्बन करके ही श्री कृष्णचन्द्र के समीप ज्ञान लाभ किया था (गीता २-७)

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥

अर्थात् कृपणता (भगवान को न जानना) रूप दोष से मेरा स्वभाव नष्ट हो गया है। मैं धर्म और अधर्म के विषय में मोह को प्राप्त हुआ हूँ। मैं आपका शिष्य हूँ। मैं आपसे पूछता हूँ आप कृपा कर, जो मेरे लिये कल्याणकारक साधन

हो, उसे कहिये। आपका शरण लिये हुए मुझको शिक्षा दीजिये।

प्र०—भक्तियोग से ज्ञानयोग श्रेष्ठ है या नहीं?

उ०—यह विषय अच्छी तरह विचार करने का है। गीता में श्री कृष्णचन्द्र ने कहा है कि ज्ञानियों से योगी श्रेष्ठ हैं। और सबसे श्रेष्ठ वह श्रद्धावान पुरुष है, जो मुझमें शरणागत हो निरन्तर अन्तर आत्मा से मुझको भजता है। वस्तुतः वास्तव ज्ञान लाभ होने से ही वास्तव वस्तु के स्वरूप की उपलब्धि होती है और वास्तव वस्तु के स्वरूप की उपलब्धि होने से ही उसमें स्वाभाविक रति उत्पन्न होती है।

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥
॥ (गीता १८।५४)

अर्थात् जब जीव को ज्ञान लाभ होता है कि मैं ब्रह्मजातीय वस्तु हूं, ब्रह्म का हूं, और ब्रह्म से ही मेरा प्रयोजन है, तब सब शोक से निर्मुक्त हो कर वह प्रसन्नात्मा हो जाता है। अपना नित्यत्व, ब्रह्म का नित्यत्व, अपना ब्रह्म के साथ प्रेम के द्वारा सम्बन्ध का नित्यत्व, और इस प्रेम के फलरूप से सर्वोत्कृष्टता की उपलब्धि करते हुए वह पुनः शोक नहीं करता, और न किसी अन्य वस्तु की अभिलाषा ही करता है। वास्तव वस्तु का प्रेम लाभ करने से जो वास्तव वस्तु की सेवा में अपूर्व सुख मिलता है उसके समीप अपने आनन्द की उपलब्धि उसको तुच्छ मालूम होती है।

श्री ऋषभदेव।

राजर्षि अग्नीध्र के नव पुत्र थे। उन में सब से बड़े नाभि, निःसन्तान थे। अन्त में धर्म प्रवर नाभि अपनी स्त्री मेरु देवी के साथ एकाग्र-चित्त से यज्ञ का अनुष्ठान करते हुए श्री हरि का भजन करने लगे। भक्तवत्सल भगवान भक्त की प्रार्थना पर मनोहर कौशेय वस्त्र धारण कर और शंख, चक्र, गदा पद्मधारी हो चतुर्भुज मूर्ति में प्रकट हुए। दरिद्र व्यक्ति के महाधन पाने की तरह अपने इष्टदेव का सामने दर्शन कर दोनों ने दण्डवत प्रणामादि द्वारा सम्मान करते हुए अशेष प्रकार से स्तव किया। याज्ञिक ऋत्विकादि ब्राह्मण-गणोंने अनेक तरह से प्रार्थना कर दो वरों की याचना की। प्रथम वर की प्रार्थना करते हुए कहा, भगवन्! हमलोग आपके सुदुर्लभ दर्शन से कृतार्थ होकर भी प्रार्थना करते हैं, कि क्षुधा, पतन, स्खलन और दुरवस्थादि के समय जब हम लोग आप को याद करने में समर्थ होंगे, तब उस अन्तिम समय में अपने गुणों के साथ और सब पापों का नाश करने वाला नाम जिस से हमारी जिह्वा से उच्चरित हो। दूसरी प्रार्थना यह है कि यह धर्म प्रवर राजा आज प्रजा के पुरुषार्थ बोध के लिये धनदाता से अन्तःसार शून्य भूमी की तरह सन्तान की कामना करता है। अतएव हे प्रभो! आप वाञ्छा कल्पतरु हैं, भक्त की इच्छा पूर्ण कीजिये। दयामय भगवान् ऋषियों की बात पर प्रसन्न हो अन्तर्हित हो गये।

सर्वजीव-प्रभु धर्म के रक्षक, जन्मरहित स्वेच्छामय भगवान् शुद्ध सात्विक मूर्ति धारण

कर ऋषभदेव के रूप में अवतीर्ण हुए। श्री ऋषभ-देव के जन्म लेने के साथ उन के अङ्गों में सभी भगवान् के लक्षण अर्थात् पैर के तलवों में वज्रांकुशादि के चिन्ह सुस्पष्टभाव से दिखाई देने लगे। सभी जगह समस्त ऐश्वर्यादि और नये-नये प्रकार के प्रभाव दर्शन कर ब्राह्मणादि, मंत्रिमण्डल और प्रजागणने उन्हें भविष्यत् में राजा रूप से पाने की इच्छा की। उन का दिव्य [illegible] तेज, उत्साहादि गुण देख कर राजर्षि नाभि ने उनका नाम ऋषभ (श्रेष्ठ) रक्खा। कुछ काल बाद नाभि राजाने पुत्र को उपयुक्त समझ कर धर्म-रक्षार्थ उन्हें राज्य सौंप कर निज पत्नी मेरु देवी के साथ वानप्रस्थ धर्म ग्रहण करने के लिये बदरिकाश्रम चले गये। वहां कठोर भाव से भगवान वासुदेव की आराधना कर अन्त में उनके धाम को प्राप्त हुए।

तब शिक्षा-गुरु भगवान् ऋषभदेव लोक शिक्षा देने के लिये कुछ दिन गुरु के यहां रहे। गुरुदक्षिणा देकर और गुरु की आज्ञा लेकर घर लौट श्रुति-स्मृति के विधान के अनुसार राज्य शासन करने लगे। हाय! जिस क्षेत्र में स्वयं भगवान् ने अपना आचरण दिखाकर उन्हीं जीवों के गुरुकुल में वास कर गुरुसेवा रूप में ब्रह्मचर्य की शिक्षा दी है, आज वे ही क्षेत्रवासी भगवान् का विश्वास भूल कर नास्तिक हो आचार्य रूपी भगवान् की सेवा से वंचित हो गये हैं। जो कुछ भी हो, इन्द्रने ऋषभदेव को जयन्ती नाम की कन्या दान की। उसी देव-दत्ता भार्या की कृपा से ऋषभदेव को एक सौ पुत्र उत्पन्न हुए। उन एक सौ पुत्रों में भरत सब से बड़े थे। वे महायोगी और श्रेष्ठ गुणों से युक्त थे। उन्हीं के नाम पर लोगोंने इस देश का नाम भारतवर्ष रक्खा। अनेक अनजान लोग कहते हैं कि शकुन्तला-पुत्र भरत के नाम पर भारतवर्ष नाम पड़ा। परन्तु भागवत पढ़ने वाले इस बात को स्वीकार नहीं करते।

ऋषभदेव के अन्य निन्नानवे पुत्रों में कुशावर्त, इलावर्त, ब्रह्मावर्त, मलय, केतु, भद्रसेन, इन्द्रस्पृक, विदर्भ और कीकट ये नव पुत्र प्रधान थे। ये सभी भरत के अनुगत क्षत्रिय थे।

उपरोक्त नव पुत्रों के बाद कवि, हवि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रविड़, चमस और करभाजन नाम नव पुत्र महाभागवत हुए। यही बाद में नव योगेन्द्र के नाम से परिचित हुए।

अपर इकासी पुत्र सभी पितृभक्त, विनीत, वेदज्ञ, यज्ञशील और विशुद्धकर्म-सम्पन्न ब्राह्मण थे।

इस से पाठकगण अच्छी तरह समझ सकेंगे कि गुण और कर्म के अनुसार मानवगण का वर्ण और आश्रम निर्द्धारित होगा। कर्म आदि गुण से प्रकट और गुण के द्वारा गुण का परिचय होता है। स्वार्थी और मदान्ध व्यक्तिगण शास्त्र और प्रयोगादि की उपेक्षा कर आसुरी मत का समर्थन और प्रचार करते हैं।

श्रेष्ठ व्यक्तियों के आचार का अनुसरण पहिले समय में उन के शिष्य किया करते थे। अतएव ऋषभदेव स्वयं अनेक सत्कार्यों के अनुष्ठान द्वारा निज-राज्य रक्षा और प्रजापालन करते थे। जो भगवान् अन्तर्यामी रूप में सदैव हरएक प्राणी की रक्षा किया करते हैं, वहां

भगवान् आज साक्षात् प्रजापालन कर रहे हैं। अतएव उन के राज्यकाल में प्रजा कैसी सुखी थी, यह अवर्णनीय है।

एक बार भगवान् ऋषभदेव देश घूमने के लिये बाहर निकल कर ब्रह्मावर्त देश में उपस्थित हुए। वहां वे प्रधान प्रधान ब्रह्मर्षिगणों की सभा में अपने सन्तानों को उपस्थित देखा। पुत्रगण के स्वभावतः विनयी और नम्र होने पर भी प्रजा के अनुशासन के लिये भगवान प्रजा के सामने शिक्षा देने लगे।

हे पुत्रगण! मनुष्य देह दुर्लभ है। इस देह को धारण कर दुःखद विषय का भोग करना उचित नहीं है। आहार निद्रा आदि विषय सूअर योनि में जन्म लेने पर भी मिल सकते हैं। अतएव तपस्या ही मानव का एक मात्र काम है। तपस्या ही से मनुष्य का सत्व शुद्ध होता है और सत्व की शुद्धि से जीव को परम उपादेय श्री हरि की सेवा मिलती है।

महत् सेवा ही मुक्ति का द्वार है। नारी का संग और नारी के सङ्गियों के संग को पण्डितों ने नर्कद्वार बताया है। जो सब के मित्र, प्रशान्त, क्रोधरहित और सदाचारी हैं उन का सब जगह सम्मान है। वेही महत् हैं।

क्रमशः

विविध-संवाद

श्री गौड़ीय-वैष्णवाचार्य ॐ विष्णुपाद श्री श्रील अनन्तवासुदेव परविद्याभूषण गोस्वामी महाराज गत १३ मई को कलकत्ता श्री गौड़ीयमठ से प्रस्थान कर उसी दिन श्रीधाम मायापुर पहुंचे। रास्ते के स्टेशनों पर और श्रीधाम में भक्त वृन्द ने विपुल जयध्वनी एवं संकीर्त्तन के बीच पुष्पमालादि द्वारा उनका अभिवादन किया। ता० १७ मई को श्रील आचार्यदेव के अनुगत्य में श्री भगवान नृसिंहदेव का आविर्भाव महोत्सव महासमारोह के साथ मनाया गया।

× × ×

मद्रास के माननीय प्रधान मन्त्री श्रीयुत राजगोपाल आचारियार बहादुर गत ताः २४ मई को मद्रास श्री गौड़ीयमठ दर्शन करने के लिये पधारे थे। मठ-सेवक श्रीपाद भूतवृत ब्रह्मचारी जी मन्त्री महोदय को श्रीमन्महाप्रभु के प्रचार किये गये धर्म विषय की परम-चमत्कारिता, एवं वर्तमान विश्व के सम्पूर्ण जीवों को विमल प्रीति बन्धन में आबद्ध करने का यही एक मात्र उपयोगी धर्म है, इस बात को विशेष रूप से समझाया। माननीय प्रधान मन्त्री महोदय श्री गौड़ीयमठ के प्रचार-विषय को सुन कर परमानन्द को प्राप्त हुए एवं अन्तःकरण से इस मिशन की उन्नति की कामना किये। वे मठ में महाप्रसाद सम्मान करके भी परितृप्त हुए थे।

× × ×

गत ताः २९ मई को श्री गौड़ीयमठ, पटना कदमकूआं से स्थानान्तर कर मीठापुर महल्ला में संकीर्त्तन के साथ स्थापित हुआ। इस उपलक्ष्य में ब्रह्मचारी पंडित श्रीपाद रूपविलास भक्ति शास्त्रीजी के अनुगत्य में ता० ३० मई को एक महोत्सव हुआ जिसमें प्राय. चार सौ स्थानीय सज्जन पधारे थे। संकीर्त्तन एवं व्याख्यान के उपरान्त महाप्रसाद वितरण किया गया। इस महोत्सव के सम्पादन करने में श्रीपाद मधुसूदन प्रभु की सहायता व उत्साह अत्यन्त प्रशंसनीय है।

Regd. No. P. 468.

श्रीचैतन्यभागवत

श्रीश्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद-रचित गौड़ीय भाष्य के साथ ग्रन्थ का आयतन—क्राउन ४ पेजी मूल १०१६ पृष्ठ, सूचीपत्र ३२४ पृष्ठा—कुल १३४० पृष्ठा भिक्षा—६) मात्र (बिना बंधा हुआ)।

श्रील प्रभुपाद की पत्रावली—(तृतीय खण्ड)

आचार्य्य-प्रकट तिथि में श्रील प्रभुपाद की पत्रावली का तृतीय खण्ड प्रकाशित हुआ है। प्रत्येक पत्र विशेष शिक्षाप्रद व सारगर्भ उपदेश से परिपूर्ण है। हमलोग प्रत्येक मंगलकामी व सत्य का अनुसन्धान करनेवाले व्यक्ति को इस पत्रावली को पाठ करने का अनुरोध करते हैं।

श्रीचैतन्यदेव

श्रीचैतन्यदेव के आविर्भाव के पहले व बाद भारत व बंगाल की राजनैतिक अवस्था, अर्थ-नैतिक अवस्था, विद्या, साहित्य व समाजिक अवस्था, धर्म्मजगत की अवस्था, समसामयिक पृथिवी की अवस्था, नवद्वीप का परिचय व तथ्य और प्रामाणिक ग्रन्थ व विवरण समूह सहज व सरल भाव में साधारण के पढ़ने के योग्य वर्णन किया गया है। ग्रन्थ में अनेक चित्र व मानचित्र दिए गए हैं। सुन्दर जिल्द भक्त, साधारण व्यक्ति व विद्यालय के छात्र सभी के लिए यह ग्रन्थ उपयोगी व प्रीति देनेवाला होगा। भिक्षा १)। प्राप्तिस्थान—श्रीगौड़ीयमठ, पो० बागबाजार, कलकत्ता। श्रीमाध्वगौड़ीयमठ, पो० वोयारी, ढाका।

सरस्वती जयश्री

गौड़ीय-वैष्णवाचार्य्य ॐ विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद का भुवन के मंगलदायक जीवनचरित ग्रन्थ है। निम्मत्सर शुद्धभक्ति पिपासु व्यक्ति इस ग्रन्थ के पाठ से युगपत् अनेक शास्त्रग्रन्थ पाठ व अनेक साधुसङ्ग का फल लाभ कर सकेंगे। वभवपर्व का प्रथम खण्ड रायल ८ पेजी आकार में एण्टिक कागज पर उत्तमरूप से मुद्रित, ३६० पृष्ठों में। विस्तृत सूचीपत्र के साथ इसमें अनेक चित्र भी दिए गए हैं। भिक्षा ४)

'सामयिक-संख्या'—गौड़ीय

सामयिक-संख्या गौड़ीय अनेक त्रिवर्ण व एकवर्ण चित्र-शोभित व अनेक श्रेष्ठ वैष्णवसाहित्यिकगणों की गवेषणापूर्ण प्रबन्ध से समण्डित होकर प्रकाशित हुई है। श्रीधाम-मायापुर में श्रीश्रीगौरजन्मोत्सव के उपलक्ष में सर्वसाधारणों के लिए भिक्षा ॥) आना।

ठाकुर भक्तिविनोद

श्रीरूपानुगशुद्धभक्ति स्रोत के प्रवाह का मूल पुरुष ॐ विष्णुपाद श्रील ठाकुर भक्तिविनोद का जीवनचरित व शिक्षामाला बहुत सरल भाषा में बड़े बड़े अक्षरों में मुद्रित। भिक्षा ॥) मात्र। प्राप्तिस्थान—कलकत्ता (बागबाजार) श्रीगौड़ीयमठ व ढाका—श्रीमाध्वगौड़ीयमठ।

अनुभाष्यम्

चार अध्यायी ब्रह्मसूत्र के प्रत्येक अधिकरण का तात्पर्य्य श्रीमन्मध्वाचार्य्य-कृत श्लोकाकार में बहुत संक्षेप में बना हुआ। बंगभाषा में सर्वप्रथम संस्करण। पहले प्रति अध्याय के प्रति पाद का श्रीमन्मध्वाचार्य्य-विरचित अनुभाष्य-मूल, उसके बाद प्रति अध्याय के प्रति पाद का सूत्र-समूह, अनुभाष्य-मूल का बंगला अनुवाद व श्रीपाद राघवेन्द्र यति-विरचित तत्वमञ्जरी टीका, उसका बंगला अनुवाद व तात्पर्य्य इस क्रम से पुस्तक मुद्रित हुई है। इसके अतिरिक्त मातृका क्रम से ब्रह्मसूत्र समूह, उसका अध्यायांक, पदांक व सूत्रांक के साथ सूचीपत्र भी संयोजित हुआ है। भिक्षा २) मात्र।

PUBLISHED BY BRAJESHWARI PRASAD
and
PRINTED AT THE UNITED PRESS LTD. Bakerganj, Bankipore (Patna)

भागवत

एकमात्र

पारमार्थिक

मासिक पत्र

५ श्रीधर
गौराब्द
४५२



श्रावण कृष्ण ५
संवत
१९९५ वि०

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥१॥

जिससे इन्द्रिय ज्ञानातीत श्रीकृष्ण में श्रवणादि लक्षणा फलाभिसन्धान रहिता ऐकान्तिकी स्वाभाविक निरपेक्षा भक्ति उदय होती है, वही मानव जाति का सर्वश्रेष्ठ धर्म है— उसी भक्ति के बल से अनर्थ उपशान्त होने से आत्मा प्रसन्नता लाभ करती है।'

प्रति संख्या)॥ } सम्पादक-त्रिदण्डि-स्वामी भक्ति भूदेव श्रौती महराज { वार्षिक ?)
Editor—Tridandiswami Bhakti Bhudeb Shrauti Maharaj

विषय सूचि

उद्देश्य

शुद्ध भगवद्भक्ति का प्रचार करना

प्रबंध-सम्बन्धी

(१) यह प प्रति मास ५ कृष्ण को प्रकाशित होता है।

(२) इस पत्र की डाकव्यय सहित वार्षिक भिक्षा १) है।

(३) इस पत्रकी प्रति संख्या की भिक्षा ―)॥ है।

लेख-सम्बन्धी

लेखकों को केवल भागवत धर्म सम्बन्धी लेख ही भागवत पत्र में छपने के लिये सम्पादक "भागवत" के पता से भेजना चाहिये। जो लेख सम्पादक को पसन्द न होगा वह नहीं छपा जायगा और वापस भी नहीं किया जायगा।

विज्ञापन-सम्बन्धी

"भागवत" में विज्ञापन छपाई का दर नीचे लिखा है :—

साधारण पृष्ठ

प्रति संख्या

पूरा पृष्ठ या दो कालम	८)
आधा " १	५)
चौथा '	३)
२ इंच	१॥)
१ "	१)

स्थायी विज्ञापन और कवर पर विज्ञापन छपाने का रेट नीचे लिखे पते पर पत्र-व्यवहार द्वारा तय करना चाहिये।

पत्र व्यवहार का पता--

मैनेजर—"भागवत"

श्री गौड़ीय मठ,

मीठापुर, पटना।

All communications are to be addressed to—

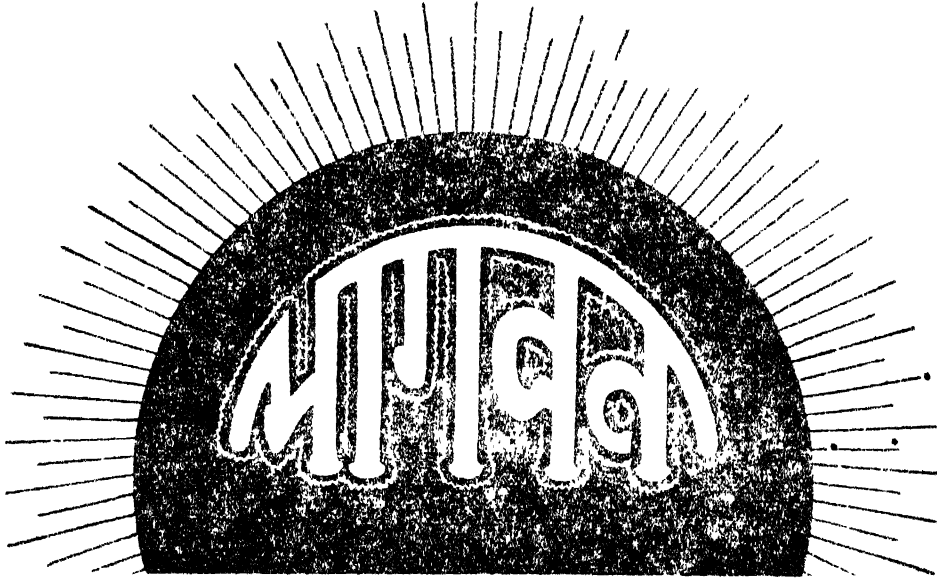
The Manager 'Bhagwat'

SRI GAUDIYA MATH

Mithapur, Patna

1лаф.

॥ श्री श्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः ॥



कृष्णे स्वधामोपगते धर्म्मज्ञानादिभिःसह । कलौनष्टदृशामेषः समाचारोऽधुनोदितः ॥

श्रीगौड़ीय मठ, मीठापुर (पटना)

वर्ष ४ — संख्या ६

[illegible] श्रावण कृष्ण ५, सं० [illegible] वि

भागवत

जो भगवान् के साथ सम्बन्ध रखते हैं, उन्हीं को 'भागवत' कहा जाता है। इसलिये इस पत्रिका का नाम भी 'भागवत' रक्खा गया। इस पत्रिका में भगवत् सम्बन्धी बातें ही प्रकाशित होती हैं। भगवद्भक्त को भी 'भागवत' कहा जाता है। परन्तु समस्त-शास्त्रशिरोमणि श्रीमद्भागवत को ही भागवत-नाम से पहिले समझना चाहिये। भक्त-भागवत और ग्रन्थ-भागवत ये दोनों ही हम लोगों पर कृपा करने के लिये मौजूद हैं। भक्त-भागवत का आराध्य तथा अवलम्ब ग्रन्थ-भागवत ही है। इस लिये श्रीमद्भागवत ही सर्व श्रेष्ठ है। अठारह पुराणों में से भागवत को महापुराण कहा जाता है।

कृष्णे स्वधामोपगते धर्मज्ञानादिभिः सह ।
कलौ नष्टदृशामेष पुराणार्कोऽधुनोदितः ॥

सनातनधर्म-रक्षक कृष्णचन्द्र के गोलोक गमन होने से कलियुग में नष्टदृष्टि मनुष्यों के लिये इस पुराण-सूर्य का प्रकाश हुआ है। नष्टदृष्टि का तात्पर्य यह है कि कलि में प्रत्येक मनुष्य की आंखें नाना प्रकार के मतवाद रूपी अन्धकार से ढकी हुई हैं। सूर्य का उदय होने से हम लोगों की आंखें खुल जाती हैं। सूर्य के अभाव में नेत्र रहने पर भी

[illegible]शक्ति कम हो जाती है। बल्कि सूर्य से भाग-वत का कुछ भेद है। सूर्य से बाहरी वस्तु का प्रकाश होता है और दृश्यों तथा भूत [illegible] का [illegible] जाता है। [illegible] नष्ट होता है, परन्तु भाग-वत [illegible] में [illegible] के [illegible], कर्म ज्ञानादि की [illegible] का नाश और आत्मा का प्रकाश होता है।

भागवत [illegible] व्यासदेव की समाधि [illegible] है। भागवत में लिखा है (१.७.४-७)

भक्तियोगेन मनसि सम्यक् प्रणिहितेऽमले ।
अपश्यत् पुरुषं पूर्णं मायां च तदपाश्रयाम् ॥
यया सम्मोहितो जीव आत्मानं त्रिगुणात्मकम् ।
परोऽपि मनुतेऽनर्थं तत्कृतं चाभिपद्यते ॥
अनर्थोपशमं साक्षाद्भक्तियोगमधोक्षजे ।
लोकस्याजानतो विद्वांश्चक्रे सात्वतसंहिताम् ॥
यस्यां वै श्रूयमाणायां कृष्णे परमपूरुषे ।
भक्तिरुत्पद्यते पुंसः शोकमोहभयापहा ॥

भगवान् व्यासदेव ने एकाग्र चित्त से [illegible] [illegible] [illegible] का दर्शन किया। परम पुरुष भगवान् [illegible], उनकी माया तथा बद्ध जीव। भगवान के पश्चात् बैठी हुई माया से जीवों का मोहन होता है। जीवगण माया से श्रेष्ठ वस्तु होने पर भी माया से पश्चाद्गत वस्तु में ममत्व के कारण माया के [illegible] में फंसे हुए कष्ट प्राप्त करते हैं। [illegible] अनर्थ कहा जाता है। इससे मुक्त होने का एक मात्र उपाय है भक्तियोग। साक्षात् भगवान् में भक्ति होने से ही मायाजाल से छुटकारा मिल सकता है। इसी भक्तियोग को भली भांति समझाने के लिये विद्वान् व्यासदेव [illegible] जीवों के लिये भागवत की रचना की है। इसके श्रवण से ही परम पुरुष भगवान् कृष्णचन्द्र के श्रीचरणों में भक्ति का उदय होता है। अतः भागवत ही सकल कल्याण का मूल है।

भगवान् से पृथक रहना ही बद्ध जीवों की प्रकृति है। वे [illegible] इन्द्रियों के सुख का ही ध्यान करते हुए उसी की खोज में मग्न रहते हैं। परन्तु व्यासदेव के समीप नारद का यह उपदेश है कि (भागवत १.५.१८)

[illegible] [illegible] प्रयतेत कोविदो
न लभ्यते यद्भ्रमतामुपर्यधः ।
तल्लभ्यते दुःखवदन्यतः सुखं
[illegible] [illegible] [illegible]रंहसा ॥

[illegible] [illegible] [illegible] जिस वस्तु की प्राप्ति नहीं किया [illegible] उसी की प्राप्ति के लिये [illegible] [illegible] [illegible], परन्तु [illegible] किये बिना दुःख जैसे [illegible] में [illegible] पड़ता है वैसे ही [illegible] [illegible] [illegible] किया जाता है। अतएव सांसारिक सुख [illegible] [illegible] आत्मानन्द के लिये ही [illegible] करना चाहिये जिसका विचार [illegible] और [illegible] में ही सुन्दर रूप से लिखा है। इसलिये कहा है,— (भागवत १२.१३.१८)

श्रीमद्भागवतं पुराणममलं यद्वैष्णवानां प्रियं
यस्मिन् पारमहंस्यमेवममलं ज्ञानं परं गीयते ।
तत्र ज्ञानविरागभक्तिसहितं नैष्कर्म्यमाविष्कृतं
तच्छृण्वन् सुपठन् विचारणपरो भक्त्या विमुच्येन्नरः ॥

श्रीमद्भागवत विशुद्ध पुराण और वैष्णवों का परम प्रिय है। इस में परमहंसगण के लिये निर्मल व परम ज्ञान का कीर्तन है तथा ज्ञानवैराग्य भक्ति के

साथ नैष्कर्म्य प्रकाशित हुआ है। [illegible] इस का श्रवण, पठन तथा [illegible] करने से [illegible] भक्ति प्राप्त किया जाता है।

अब प्रश्न हो सकता है कि [illegible] भागवत का श्रवण करना चाहिये। इस का [illegible] में ही दिया गया है ([illegible])

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

भागवत श्रवण का फल [illegible] श्रेष्ठ है। जो [illegible] के मुखारविन्द से [illegible] का श्रवण करते हैं, उनके हृदय में भगवान् प्रवेश करते हुए [illegible] की मलीनता का नाश करते हैं और नित्यकाल वहां अपना निवास स्थान बना लेते हैं। जैसे भागवत में कहा है ([illegible])

प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेण स्वानां भावसरोरुहम् ।
धुनोति शमलं कृष्णः सलिलस्य यथा शरत् ॥
धौतात्मा पुरुषः कृष्णपादमूलं न मुञ्चति ।
मुक्तसर्वपरिक्लेशः पान्थः स्वशरणं यथा ॥

भगवान् कृष्णचन्द्र कथारूप में श्रवणकारी व्यक्ति के हृदय-कमल में प्रवेश करके उस स्थान को पवित्र करते हैं तथा वहां अपना निवास स्थान बना लेते हैं। [illegible] सब स्थानों का पानी मैला हो जाता है, उसको साफ करने का [illegible] किसी [illegible] की सहायता से यह कार्य [illegible] केवल [illegible] सभी स्थानों का पानी [illegible] हो जाता है। [illegible] उसको सब [illegible] जाता है, वैसे ही यह भक्त सब प्रकार के कष्ट से मुक्त होकर परम शान्तिपूर्ण स्थान भगवत् पदकमल के [illegible] निवास करता है।

वैष्णव—सेवा

जो लोग नित्यकाल भगवान् की सेवा करते हैं, वे ही वैष्णव या साधु हैं। और जो भगवत् कथा के अतिरिक्त अन्य कथा, अन्य चिन्ता या खाना पीना लेकर ही व्यस्त हैं, वे अवैष्णव हैं। वैष्णवगण वाञ्छा कल्पतरु हैं। वे हम लोगों के सभी प्रकार की अभिला

पाप पूर्ण करने में समर्थ हैं। उन लोगों के संग में सर्व सिद्धियां प्राप्त होती हैं। वे निष्किञ्चन हैं। उन लोगों का संग वा सेवा ही हम लोगों का एकमात्र कर्त्तव्य है। वैष्णव के साथ बातचीत करने से या उनके समीप बैठे रहने से ही उनका संग वा सेवा नहीं होती। परन्तु 'संग' शब्द का अर्थ प्रीति वा आसक्ति है। जान कर या अज्ञानतावश साधु को प्रणाम, उनकी सेवा, उनके चरणामृत अथवा उच्छिष्ट की सेवा वा उनकी सेवा में कुछ अर्थादि प्रदान करने से भी हम लोगों को साधुसंग होता है। उन सब कार्यों से साधु का सम्मान करना होता है, एवं उससे किसी प्रकार का लाभ होता है सही, किन्तु साधु की वाणी की अवहेला करके साधु के शरीर के प्रति आकृष्ट होने से उनका यथार्थ परिचय के अभाव के कारण साधु से प्रीति होने के बदले साधु के चरणों में अपराध ही होता है। साधु सेवा का फल साधु की प्रीति है। ऐसा न होने से कुछ अपराध (कसूर) हुआ ऐसा समझना होगा। सुतरां साधु से वास्तव सत्य की बातें ध्यान से सुनकर पालन करना होगा, साधु का स्वभाव व सच्चरित्रता बहुत यत्न के साथ अनुसन्धानकर निष्कपट होकर उनका अनुसरण करने से हम लोगों का मङ्गल होगा हम लोग कृष्णभक्ति प्राप्त कर सकेंगे।

भक्ति आत्मा का नित्यधर्म है। भगवान् वा भगवद्भक्त के अनुग्रह के बिना भक्ति नहीं आती है। वैष्णव की सेवा या कृपा के बिना भगवत्-कृपा वा भगवत्-सेवा प्राप्त नहीं होती। विष्णु-सेवा से वैष्णव-सेवा का माहात्म्य अधिक है। वैष्णव-सेवा से ही विष्णु-सेवा होती है। वैष्णवों की सेवा वा आनुगत्य के अतिरिक्त जीव के मङ्गल का और कोई उपाय नहीं है। उन लोगों को छोड़कर कृष्ण-सेवा प्राप्त करने का बहाना बेकार है। श्रील प्रभुपाद कहते हैं "स्वयं नारायण यदि अपने को आप ही दे दें, तब भी उनके देने में कुछ बाकी रह जाता है। किन्तु भगवद्भक्त सम्पूर्ण रूप से भगवान् को दे सकते हैं, उससे भगवान की कोई हानि नहीं होती।

भगवत-अनुग्रह प्राप्त करने के लिये वैष्णव-संग वा वैष्णव-सेवा छोड़ कर अन्य कोई उपाय नहीं है। बाह्यदर्शन में (बाहर से देखने में) भगवान् की सेवा छोड़कर भी भगवद्भक्त की सेवा के लिये व्यस्त होना उचित है। वैष्णव-सेवा इतनी बड़ी वस्तु है। किन्तु साधु-संग वा साधु-सेवा करने के पहिले प्रकृत (सच्चे) साधु कौन है, उसका विचार करना आवश्यक है; नहीं तो जिसे-तिसे साधु समझ कर सेवा करने की चेष्टा करने से अमङ्गल की ही सम्भावना अधिक है। ऐसे साधु को पहचानना बहुत ही कठिन है। खूब बड़ा भाग्य नहीं होने से—साधु-संग की निष्कपट वासना हृदय में नहीं जागने से सच्चे साधु संग प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। सौभाग्यवश साधु-संग लाभ होने से विषयी बन्धु बान्धव के प्रति हृदय की आसक्ति त्याग करके वैष्णव को ही बन्धु समझ कर उनके समीप कृष्ण-कथा श्रवण करना उचित है। उनके साथ अन्य व्यवहार करने से उनका संग, सेवा या कृपा प्राप्त नहीं होती। प्रीति के साथ उनके समीप हरिकथा की आलोचना ही उनका संग करना है एवं उसी से हमलोगों का मङ्गल होगा। साधु की वाणी हम लोगों को कृष्णोन्मुख करायेगी एवं दूसरों की वाणी

हम लोगों को विषयमुखी कर छोड़ेगी। हृदय मालिन्य अधिक रहने से साधु के समीप हरिकथा सुन कर पहिले ही जीवन की गति परिवर्त्तन करने में असमर्थ होने पर भी हम लोग क्रमशः कृष्णोन्मुख हो सकते हैं। वही कृष्णोन्मुख करने वाली कथा हम लोगों की विषय वासना को क्रमशः नष्ट कर सकेगी।

साधु के समीप रह कर भी हम लोग साधु को नहीं पहचान सकते इसी कारण हम लोगों का मङ्गल नहीं होता भक्ति तो दूर की बात है, अनर्थ भी नहीं कटता। वैष्णव किस प्रकार पहचाने जायें इस विषय में हम लोगों के परम गुरुदेव श्रील गौरकिशोर प्रभु कहते हैं "वैष्णवगण जिस समय करुणावश आत्म प्रकाश करते हैं, उस समय श्रद्धा-शील व्यक्तिगण वैष्णव की कृपा से आकृष्ट होकर शरणागति के प्रभाव से वैष्णव के सच्चे स्वरूप दर्शन कर सकते हैं। अति भाग्यवान व्यक्ति ही वैष्णव की सेवा व कृपा से वञ्चित नहीं होते नहीं तो वैष्णव आत्मगोपन करने के लिये नाना प्रकार से वञ्चना करते हैं। वैष्णव पहचानने के लिये अनुक्षण श्री गौरनित्यानन्द के चरणों में अकपट कातर प्रार्थना होने से एवं उनकी कृपा से हृदय दम्भहीन व दीनता पूर्ण होने से गौरनित्या-नन्द उस हृदय में वैष्णव के स्वरूप को प्रकाश करते हैं। वैष्णव गौरनित्यानन्द को पहचनवा देते हैं और गौरनित्यानन्द वैष्णव को पहचनवा देते हैं।

वैष्णव कृष्ण के शरण में रहते हैं एवं निरन्तर भगवत सेवा में तत्पर रहते हैं, यही उनका अन्त-र्लक्षण वा आचार है। शुद्ध हरिनामग्रहण के अतिरिक्त साधु का वाह्य आचार—असत्-संग का त्याग है। वे असत्-संग सम्पूर्ण रूप से परित्याग करके निरन्तर सत्संगी—हरि गुरु वैष्णव संगी हैं। जो लोग असत्-संग त्याग के प्रति कुछ भी कोशिश न कर के हरि नाम ग्रहणादि भक्त्यङ्ग का याजन करते हैं वे लोग वैष्णवप्राय वा वैष्णवाभास कहे जाने योग्य हैं, वे शुद्ध वैष्णव नहीं हैं इन कनिष्ठाधिकारियों का संग करने से साधु-संग का फल पाना असम्भव है। बहुत से लोग श्रद्धालु होकर भी भजनोन्नति नहीं कर सकते साधु-संग का अभाव ही उन लोगों के उन्नति का प्रति-बन्धक हुआ है, ऐसा जानना होगा। सुतरां बुद्धिमान जीव अति सतर्कता के साथ शुद्ध वैष्णव निर्णय करके उनका संग व सेवा करेंगे। नहीं तो मङ्गल की आशा नहीं है।

गृहस्थ व मठवासी सब किसी के लिये वैष्णव सेवा करना नितान्त आवश्यक है। हम लोग जिसमें अतिथि सेवा व वैष्णव सेवा को एक ही वस्तु समझ कर भ्रान्त नहीं हों ऐसा करना चाहिये, अतिथि-सेवा वैष्णव-सेवा में भेद यही है कि अतिथि-सेवा गृहस्थ का धर्म है और वैष्णव सेवा वैष्णव-धर्म वा आत्म धर्म है। वैष्णव उपस्थित होने से उनको हृदय से स्नेह-प्रीति करके शरीर मन वचन द्वारा उनकी सेवा वा सन्तोष विधान करना चाहिये। उससे भक्ति की उन्नति होती है। जो भगवान के सेवाभिलाषी हैं वे ही वैष्णव को वैष्णवोचित सम्मान प्रदान कर सकते हैं। वैष्णवगण कृपापूर्वक अभक्त के घर उप-स्थित होने पर भी वे उनको अतिथि रूप से सेवा करते हैं। उसके फल से उन लोगों को अज्ञात सुकृति ही प्राप्त होती है। वैष्णव को पहचानकर आन्तरिक श्रद्धा के साथ उनकी सेवा करना और अनजान में

वैष्णव सेवा करना — इन दोनों के फल में बहुत तारतम्य है। साधु नहीं पहचानने से असाधु को साधु समझकर असत् संग होने की सम्भावना अधिकतर है। परन्तु सौभाग्यवश किसी प्रकृत साधु की (अनजान में भी) सेवा लाभ होने से एवं निष्कपट होने से उनकी कृपा से मङ्गल होने की सम्भावना होती है। सुतरां वैष्णव कौन है, उनके क्या लक्षण हैं, यह सब जानना विशेष आवश्यक है। ऐसा नहीं होने से उन्नति होने में देरी होगी, एवं बहुत बार असुविधा में भी पड़ना होगा। इसीलिये महाप्रभु कुलीन ग्राम-निवासी भक्तों के प्रश्न के जवाब में जो वैष्णव सेवा की बातें कहे हैं, वही हम लोगों को आलोचना करनी चाहिये।

अतएव जार मुखे एक कृष्ण नाम।
सेइ त वैष्णव, करिह ताहार सम्मान॥
निरन्तर कृष्ण नाम जाहार वदने।
सेइ श्रेष्ठ वैष्णव भज ताहार चरणे॥
जाहार दर्शने मुखे आइसे कृष्ण नाम।
ताहारे जानिह तुमि वैष्णव प्रधान॥

शुद्ध वैष्णव की ही सेवा करनी होगी। कारण शुद्ध वैष्णव के अतिरिक्त वैष्णव सेवा नहीं होती। शुद्ध वैष्णव की संख्या कम कहकर जिस तिस को वैष्णव समझकर सेवा करनी होगी, इस प्रकार का विचार ठीक नहीं है। भगवत्सेवा प्राप्त करने की सच्ची वासना हृदय में रहने से जिस उपाय से हो निष्कपट होकर शुद्धवैष्णवों की ही सेवा करनी होगी। शुद्ध वैष्णव की कनिष्ठ, मध्यम व उत्तम के अनुसार विभिन्नता होती है किन्तु जो नामापराधी या नामाभासी हैं, उनको शुद्ध वैष्णव कहना उचित नहीं है। जो अन्ततः एकबार भी शुद्ध नाम किये हैं वे ही शुद्ध वैष्णव हैं। हम लोग जानते हैं कि शुद्ध नाम मुक्त पुरुषों के उपास्य हैं। सुतरां वैष्णव का स्वरूप सहज ही अनुमेय है। कौन किस प्रकार के वैष्णव हैं ऐसे विचार की आवश्यकता नहीं है— इस प्रकार की बातें बोलना उचित नहीं है, इससे असुविधा ही होती है। इन्हें हम महाभागवतगण (श्रेष्ठ भक्त) ही कह सकते हैं। श्रीमन्महाप्रभु जो कनिष्ठ वैष्णव की बातें कहे हैं, वे प्राकृत भक्त नहीं, परन्तु शुद्ध भक्त हैं। इस विषय में श्रील ठाकुर भक्तिविनोद ने जैवधर्म ग्रन्थ में लिखा है "श्रीमन्महाप्रभु ने जो उत्तम, मध्यम व कनिष्ठ वैष्णव की बातें कही हैं, वे सब मध्यम व उत्तम वैष्णव के बीच गिने जायेंगे। कोई केवल अर्चापूजक रूप कनिष्ठाधिकारी नहीं हैं। केवल अर्चापूजक महाजन के मुख से कृष्ण नाम नहीं होता है केवल छाया-नामाभास होता है। नामाभासी सेवा-योग्य वैष्णव नहीं होते। शुद्ध नामाश्रयी वैष्णव ही केवल सेवा के योग्य हैं।"

श्री ऋषभदेव

(शेषांश)

भागवत कहते हैं (५ । ५ । २)

महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्ते
स्तमो द्वारं योषितां सङ्गिसङ्गम्।
महान्तस्ते समचित्ताः प्रशान्ता
विमन्यवः सुहृदः साधवो ये॥

जो स्त्री में भोगबुद्धि और पुत्र कलत्र धनादि में प्रीति नहीं रखते और मुझ में मित्र भाव रखते हुए इच्छा रहित हो देह मात्र का निर्वाह करते हैं, वे ही महत हैं।

वत्सगण! भगवान् को याद करने ही से जीव की संसार में सद्गति होती है। वह आत्म तत्त्व को भूल कर मनोमय देहवाय में मन की वासनानुयायी कर्म में प्रवृत्त होता है। संसार के अनर्थों को अर्थ समझ कर प्रवृत्ति मार्ग के अवलम्बन से इन्द्रिय तर्पण में आनन्द प्राप्त करता है। जड़ देह को मैं और पार्थिव आत्मीयगण को अपना कह कर भीषण मोहद्वारा आक्रान्त होता है और अहंकार रूपी कठिन हृदय-पाश में आबद्ध होता है। जब तक वासुदेव स्वरूप मुझ में प्रीति नहीं रखता तब तक देह योग से मुक्ति नहीं पाता। हे पुत्रगण! इस अहंकार-त्याग के पच्चीस उपाय हैं, (१) मुझ में और गुरुरूप में मुझ में भक्ति (२) अनिच्छा (३) सुख दुःखादि द्वन्द्व सहिष्णुता, (४) इहलोक और परलोक में सब जगह सब प्राणियों का दुःख देखना (५) तत्त्व जिज्ञासा (६) तपस्या (७) कामादि कर्मों का त्याग (८) मेरे निमित्त कार्य (९) मेरी कथा का कीर्तन (१०) मद्गत चित्त भक्तों के साथ नित्यवास (११) मेरे गुणों का कीर्तन (१२) निर्वैरता (१३) समता (१४) उपशम (१५) देह में और घर में 'मैं' और 'मेरा' बुद्धि का त्याग (१६) अध्यात्म शास्त्र का अभ्यास (१७) निर्जन अर्थात् ग्राम्यालाप शून्य स्थान में वास (१८) प्राण, इन्द्रिय और मन का संयम (१९) सत् श्रद्धा, (२०) ब्रह्मचर्य (२१) कर्तव्य कर्म का अपरित्याग (२२) वाक्य संयम (२३) सब जगह मेरी चिन्ता करने में निपुणता (२४) अनुभव पर्यन्त ज्ञान और (२५) समाधि। इनके द्वारा धीरज, यत्न और विवेक युक्त हो अहंकार नामक उपाधि से बचे रहना।

हे वत्सगण! इस प्रकार अहंकार से परे हो कर अविद्या द्वारा बना हुआ कर्म सब का आधार हृदय ग्रंथि छिन्न होती है। [illegible] मेरे अनु-[illegible] पिता पुत्र को, गुरु शिष्य को और राजा प्रजा को यही शिक्षा दे। जो अतीव कामना युक्त हैं, अपने मंगल करने में उदासीन हैं, वे केवल अर्थ की चेष्टा में तत्पर रह कर लेशमात्र सुख के लाभ के लिये आपस में वैर कर फलस्वरूप अपने ही आप दुःख को बुलाते हैं। अविद्या में बंधे हुए इन सब जीवों को देख कर दयालु व्यक्तिगण उनको कुमार्ग पर जाने से रोक कर मार्ग निर्देश से उनका उद्धार करेंगे। जीव अविद्या के फल से निरन्तर ही दुःखों को भोगता है। मेरी सेवा से उनके दुःखों का नाश होगा। इस उपदेश का स्वयं पालन कर दूसरों को उपदेश दे कृत करना ही दया का परिचय देना है। जो दया के ऐसे प्रकृत परिचय का अनुभव नहीं करते और दूसरों के प्रति दया प्रकट करना नहीं जानते, वे निष्ठुर हैं। वह गुरु गुरु नहीं है, वह पिता पिता नहीं है, वह माता माता नहीं है, वह देवता देवता नहीं है और वह पति पति नहीं है, जो भक्ति का उपदेश देकर जीव का मंगल नहीं करता।

> गुरुर्न स स्यात् स्वजनो न स स्यात्
> पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात्।
> दैवं न तत् स्यान्न पतिश्च स स्या-
> न्न मोचयेद्यः समुपेतमृत्युम्॥ (भा० ५।५।१८)

इस श्लोक के अभिप्राय से साफ़ मालूम होता है कि अर्थादि लाभ की आशा से सरल शिष्यों को मुग्ध करके स्वयं गुरु बनने से गुरु नहीं हुआ जाता। एक साथ रहने और अपनी जड़ीय

सुविधा के लिये आत्मीयता स्थापन करने से आत्मीय नहीं होता, लड़के पैदा करने ही से पिता नहीं कहा जाता, सन्तान को गर्भ में रखने और पालन करने ही से माता नहीं कही जाती, प्रजा की सुखी करने ही से देवता पूज्य नहीं होते, स्त्री का भरण पोषण करने ही से कोई पति कहला कर ख्याति नहीं हो सकती, सिर्फ भगवत् भजन की सुविधा कर देने ही से गुरुत्व आदि नाम की सार्थकता होती है। बलि ने अर्थ लोभी गुरु शुक्राचार्य का, भक्तराज विभीषण ने श्रीराम-द्वेषी परम आत्मीय रावण का, प्रह्लाद ने हरि-विरोधी पिता हिरण्यकशिपु का, श्री भरत ने श्रीरामसेवा-विमुख माता कैकेयी का, खट्वाङ्ग राजा ने मुक्ति प्रदान में असमर्थ जड़ ऐश्वर्य दाता देवता का और कृष्ण गत प्राणा याज्ञिक ब्राह्मण पत्नि गण ने भोग की इच्छा वाले कृष्ण-सेवा विरत मूढ़ निज पति यज्ञिक ब्राह्मण गण का संग त्याग कर उपरोक्त श्लोक का ठीक अनुकरण किया है। इसके बाद श्री ऋषभदेव ने लड़कों को अपने शरीर के अप्राकृतत्व को समझा कर बड़े लड़के परमहंस भरतदेव की सेवा करने का उपदेश दिया। 'कृष्ण का अधिष्ठान समझ कर जीव को सम्मान देंगे,' यह बात अच्छी तरह समझा दिया और ब्रह्म को जानने वाले ब्राह्मणों की सेवा करने के लिये कहा। उपस्थित ब्राह्मणगण को ब्रह्म का जानना ही सब से श्रेष्ठ है यह समझा कर ब्राह्मणों के प्रति ऋषभदेव की प्रीति का वर्णन किया। फिर पुत्रों से कहा कि मेरी पूजा ही मन, वाक्य, चक्षु और अन्यान्य इन्द्रियों का बल है। मेरी उपासना के अतिरिक्त कोई पुरुष माया पाश से कदापि दूर नहीं हो सकता।

भगवान् ऋषभदेव लोक शिक्षा के लिये सुशिक्षित पुत्रों को उपदेश देकर स्वयं परम परमहंस धर्म की शिक्षा देने के मन से सब से बड़े लड़के परम भागवत भगवत्-जन-परायण भरत को राज्य पर अभिषिक्त किया। स्वयं पागल से हो कर नंगे और खुले बालों से प्रव्रज्याश्रम में प्रवेश करने के लिये ब्रह्मावर्त्त देश का परित्याग किया और उन्होंने योग व्रत का अवलम्बन किया। दूसरों से बातें करने में जड़ मूक की तरह रहते थे और अवधूत के वेश में रहने लगे। अकेले पुर ग्राम घूमने के समय मक्खियाँ जैसे जंगली हाथी पर आक्रमण करती हैं, उसी तरह दुष्ट लोग शरीर पर मल-मूत्र त्याग करते पत्थर, धूल फेंकते, अधोवायु का त्याग करते और अप शब्द गालियाँ देते पर भी उन्होंने इस संसार को मिथ्यामय समझ कर उसकी कुछ परवा न की। उनका वह स्वभाव सुन्दर दृश्य महा पुरुष लक्षण विशिष्ट देह कपिशवर्ण पड़ी हुई लम्बी जटा से शरीर का सौन्दर्य मलिन ग्रह-ग्रस्त की तरह मालूम पड़ता था।

अपने काम में प्रतिबन्धकता के लिये प्रतिपक्षियों की वञ्चना के लिये उन्होंने अजगर व्रत का अवलम्बन किया अर्थात एक ही जगह रह कर अशन, पान, चर्वण, मल मूत्र त्याग और बिष्टा के ऊपर ही लोटने लगे। लेकिन अप्राकृत होने की वजह बदबू का लेश भी न था।

इस प्रकार कुछ दिन भ्रम कर लीला मय भगवान् अपनी लीला में अन्तर्हित हुए।

श्री भगवान् का अवतार अभक्तों के लिये महा-अनर्थ कारी लेकिन भक्तों को एक मात्र अभिलषित

है। श्री भगवान् का यह ऋषभावतार जीवों के लिये अत्यन्त प्रयोजनीय हुआ। धर्म की स्थापना करने वाले ऋषभदेव ने स्वयं धर्म का अनुशीलन कर प्रजा को शिक्षा दिया। इस सम्बन्ध में पंडित लोग ऋषभदेव की इस प्रकार वन्दना करते हैं। (भा: ५-६-३)

अहो भुवः सप्तसमुद्रवत्या
द्वीपेषु वर्षेष्वधिपुण्यमेतत्।
गायन्ति यत्रत्य-जना मुरारेः
कर्म्माणि भद्राण्यवतारवन्ति॥

श्री शुकदेव ने कहा हे राजन! भगवान् ऋषभदेव लोक, वेद, ब्राह्मण और गौ सभी के परम गुरु थे। उनके विशुद्ध चरित्र में यह कथा जो कही गई, वह जीव के समस्त दुश्चरित्रता का अपहारी और परम महत् मंगल का घर है। जो एकाग्रचित्त हो श्रद्धापूर्वक सुनते हैं और सुनाते हैं उन दोनों को वासुदेव में अटल भक्ति होती है।

जो कुछ भी हो, आइये पाठकगण! हम सब आज भक्तिमय हो उन ऋषभदेव को और उनके संग उनके अनुगत जन को प्रणाम करें और प्रार्थना करें जिसमें उनकी कृपा से उनका आदेश पालन कर मानव जन्म सार्थक कर सकें।

एकमात्र भक्ति पथ ही शुद्ध जीव का अविचलित पथ है, भक्ति पथ से किसी समय में किसी को भी असुविधा नहीं होगी, इस प्रकार के स्थिर विश्वास या अपने अभीष्ट प्राप्ति में विलम्ब देख कर साधन अङ्गों में शिथिलता नहीं करने का नाम धैर्य है। हमलोग उपदेशामृत के 'उत्साहान्निश्चयाद्धैर्यात' श्लोक में भक्ति के अनुकूल इस 'धैर्य' शब्द को देखते हैं। आदर के साथ साधु-संग में कृष्णानुशीलन को ही उत्साह कहते हैं, एवं भगवद्भक्ति ही जीव का एक मात्र परमार्थ है। मैं कितना ही पतित क्यों न रहूँ करुणामय गुरु-कृष्ण मुझ पर अवश्य ही कृपा करेंगे, इस प्रकार के दृढ़ विश्वास का नाम निश्चयता है। साधु-संग में जिन का उत्साह नहीं है, साधु के प्रति जिन का सम्पूर्ण निर्भरता का अभाव है, वे कभी भी धैर्य अवलम्बन नहीं कर सकते। सेवोत्साही दृढ़निश्चय, निरन्तर कृष्णकीर्त्तन करने वाले और साधु के संग के अतिरिक्त हमलोगों के हृदय में भक्ति का अनुकूल विचार स्थान नहीं पाता है, नित्यकाल के आशा-भरोसा हमलोगों के प्राणों में नहीं उदित होते हैं। इस कारण हमलोगों के चित्त की चञ्चलता वा मानसिक अस्थिरता भी नहीं जाती। सुतरां चित्त स्थिर करने के लिये हरि भजन में मन लगाने के लिये भक्त संग करना नितान्त आवश्यक है।

धैर्य अवलम्बन करना सेवापिपासु व्यक्ति के लिये विशेष प्रयोजन की बात है। धैर्य नहीं होने से, अपने कर्म का फल भोग करते करते परम स्वतन्त्र साधु-गुरु की कृपा की प्रतीक्षा के लिये उत्कण्ठित चित्त होकर नहीं बैठने से जीव का चित्त अवश्य ही चञ्चल हो उठेगा। जो अधीर वा चञ्चल हैं वे किसी भी कार्य में उन्नति नहीं कर सकते। किन्तु साधु व गुरु के चरण कमलों में शरणग्रहण-कारी बुद्धिमान साधक और साधुगण के सहित रह कर धैर्य अवलम्बनपूर्वक सेवा करते करते मन को वशीभूत करने में समर्थ होता है।

हमलोग हरि भक्ति के प्रतिकूल शरीर मन-वचन

के वेग की बात शास्त्रों में सुनते हैं। यह वाक्य-वेग (निरर्थक बातचीत) ही सम्पूर्ण अनर्थों का मूल है। यह जीव को चञ्चल कर छोड़ता है। साधु गुरु-कृपा से वाक्य वेग दमन होने से अर्थात निरन्तर साधु संग में हरि कथा कीर्त्तन करने का सौभाग्य उदित होने से जीव को और कोई व्यर्थ चिन्ता नहीं रहती। निरन्तर कृष्ण कीर्त्तन के प्रभाव से शरीर-मन-वचन के सभी वेग आप ही आप नियमित हो जाते हैं। उस समय मन केवल कृष्ण चिन्ता करता है, कृष्ण सेवा छोड़ कर और कुछ नहीं कर सकता। उसी समय चित्त की चञ्चलता दूर होकर चित्त धीर व स्थिर हो जाता है। उस समय हमलोगों के हृदय में कृष्ण को छोड़ कर और किसी प्रकार की कामना-वासना की प्राप्ति और नहीं रहती है। सुतरां कृत्रिम भाव से चित्त स्थिर करने की चेष्टा कर के व्यर्थ समय नष्ट करना हमलोगों का कर्त्तव्य नहीं है। मन वेग के बिना दूर नहीं सकता है। उसको अप्राकृत विषयों में व्यस्त कर सकने से वह तुच्छ विषयों के लिये नहीं दौड़ेगा। मन को कोई उच्च रस देकर भुला कर क्षुद्र प्राकृत रस से हटाना होगा-यही शास्त्र का उपदेश है। मन लगा कर साधु मुख से हरि कथा श्रवण, साधु के आनुगत्य में शास्त्र की आलोचना व रुचि को मित्रों के समीप कीर्त्तन करने के, परिणाम में श्रवण कीर्त्तन को प्रबल करने के अतिरिक्त मनोनिग्रह का और कोई उपाय नहीं है। इसलिये श्री महाप्रभु ने कहा है

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्त्तनीयः सदा हरिः॥

महाजन भी कहते हैं :-

साधु संग कृष्ण नाम एइमात्र चाइ ।
संसार जिनिते आर कोन वस्तु नाइ ॥

यदि कोई धीर न हो सकें, सहनशील न हो सकें, भगवान के लिये सम्पूर्ण दुःख-कष्ट, बाधा विपत्ति प्रसन्नता के साथ सहने के लिये प्रस्तुत नहीं हों, उन्हें कभी भी सिद्धि प्राप्त नहीं होगी। फल प्राप्ति के लिये व्यस्त होने से नहीं चलेगा। क्रम क्रम पाय जीव भवसिन्धु कूल धीरे धीरे जीव भवसिन्धु के किनारे पहुँचता है। सब्र के गाछ में मेवा फलता है। ये सब बातें निरन्तर याद रखनी होंगी। कोई काम करके धीरे धीरे उन्नति के लिये व्यग्र न होकर फल प्राप्ति के लिये उत्कण्ठित होने से अधिकतर विफल मनोरथ ही होना होगा। हमलोग अनादिकाल से बहिर्मुख हैं। अनादिकाल से हम लोग हरि-गुरु-वैष्णव-विद्वेष करते आते हैं। और कभी निरपेक्ष रह कर अपने सुख वा भोग में दिन कटा देते हैं। हमलोग इतने अकृतज्ञ, इतने अपराधी, इतने पापी हैं। हमलोगों के पाप वा अन्याय कार्य की सीमा नहीं है। सुतरां सेवा साधन-समय अपराधी हमलोगों को व्यस्त होने से कैसे चलेगा? जो इस सेवा का सन्धान दिये हैं वे तो निश्चय ही एक दिन सेवा भी देंगे ही। जिसको अपना धन नहीं है वह क्या कभी किसी को वास्तव धन का सन्धान दे सकता है वा धनहीन दरिद्र क्या कभी धन प्राप्त करने का सन्देह रहित आशा भरोसा किसी के हृदय में जगा सकता है? यदि किसी को भाग्यवश इस प्रकार की पिपासा जाग उठे, तो उसने निश्चय ही कृष्ण-प्रेमधन से धनी साधु गुरु का संग प्राप्त किया है। तब उसको हताश होने का और कारण क्या है? अनन्त जीवन तो असत-संग में वृथा ही कट गया। क्या किसी को उसके लिये चिन्ता हुई है? प्रारम्भ

करने के पहिले ही फल प्राप्ति की चिन्ता करने से कैसे कल्याण हो सकता है !

इन बातों को न समझ सकने के कारण, गुरु वैष्णव के प्रति सम्पूर्ण रूप से निर्भर न करने के कारण साधन समय अभीष्ट प्राप्त होने में विलम्ब देख कर धैर्य को छोड़ कर बहुत से लोग परमार्थ से भ्रष्ट हो जाते हैं, नास्तिक हो जाते हैं। और शुद्ध सेवा प्राप्त करने की आशा से जो साधक सेवोन्मुख होकर कृपा की प्रतीक्षा करते हैं-धैर्य अवलम्बन करते हैं, वे शुद्ध सेवा फल प्राप्त करके कृतार्थ होते हैं। सुतरां गुरु वैष्णव-भगवान आज वा सौ वर्ष बाद वा किसी जन्म में अवश्य ही मुझ अयोग्य पतित पर कृपा करेंगे, मैं अनर्थयुक्त रहूँ वा अनर्थमुक्त हो जाऊ, सर्व अवस्था में हरि गुरु वैष्णव के चरणारविन्द को दृढ़ भाव से आश्रय करके निष्कपट भाव से उन लोगों की सेवा करूँगा, उन लोगों की सेवा के लिये-सुखविधान के लिये यदि मुझे जन्मजन्मान्तर नरक भोग भी करना हो तब भी मैं उनके चरणारविन्द को न छोड़ूंगा--इस प्रकार का धैर्य वरणीय व वाञ्छनीय है। ऐसा होने से और किसी प्रकार की बाधा विपत्ति हमलोगों को कुछ नहीं कर सकेगी। इस प्रकार की दृढ़ता रहने से हमलोगों का पातित्य, नितान्त अयोग्यता एवं श्रीगुरुपादपद्म का पतित पावनत्व-असीम शक्ति व अपार करुणा की कथा हम लोगों को उपलब्ध होगी। नहीं जानता कब मैं पूर्व गुरुनामाचार्य श्रील ठाकुरहरिदास के उपदेशानुसार कह सकूंगा ।

खण्ड खण्ड हय यदि जाय देह प्राण ।
तबु आमि वदने ना छाड़ि हरिनाम ॥

इसी का नाम धैर्य है। इसी का नाम सेवा है ।

हरि सेवा के लिये अनन्त कामना-वासना हरि गुरु वैष्णव की सेवा के लिये निरन्तर उत्कण्ठा वा व्यस्तता ही चित्त की प्रकृत स्थिरता है।

वैराग्य

जो लोग घर में वास करते हैं, वही केवल संसारी या भोगी हैं और जो लोग संसार त्याग किये हैं, वे ही वैरागी हैं ऐसी कोई बात नहीं है। आत्मेन्द्रिय तर्पण (अपनी इन्द्रियों की प्रसन्नता) की चेष्टा जहाँ पर है, वहीं पर भोग या संसार है। इस आत्मेन्द्रिय तर्पण का पदार्थ साधारणतः घर ही में पूर्णरूप से पाया जाता है, इसी से समझ कर गृहासक्त व्यक्ति को ही संसारी कहा जाता है। किन्तु ऐसे गृही व्यक्ति भी यदि साधुसंग। साधु-मुख से हरिकथा सुन कर प्रसाद निष्ठा से उसको पालन करके सेवामार्ग स्वीकार करें तो वे भी संसारमुक्त हो सकते हैं। और गृहत्याग कर के भी यदि कोई हरिकथा श्रवणविमुख हो जांय, तो उनका मंगल नहीं होगा। कारण उनके द्वारा आत्मेन्द्रिय तर्पण होने पर भी कृष्णेन्द्रियतोषण नहीं होता। जड़ वस्तु में आसक्ति को ही संसार कहते हैं। साधुसंग के बिना जड़ासक्ति छूटना असम्भव है। इसी कारण बुद्धिमान व्यक्तिगण असत्संग त्याग कर साधुसंग करते हैं।

विषय के प्रति वितृष्णा को वैराग्य कहते हैं। साधुसंग होने पर भी भगवान के प्रति अनुराग नहीं होने से विषयरागी नहीं जाता। बहुत से लोग संसार भोग के लिये व्यस्त होकर भोगी और बहुत से लोग संसार में सुख नहीं है ऐसा समझ कर त्यागी हो जाते हैं। इन में से एक संसारी और एक कृत्रिम वैरागी है। दोनों ही अपने सुख के चाहने वाले हैं। तब एक व्यक्ति स्पष्ट भोगी और दूसरा प्रच्छन्न भोगी है। किन्तु भगवद्भक्त भोगी भी नहीं हैं या त्यागी वा फल्गु-वैरागी भी नहीं हैं

वे भगवत् चरणानुरागी--युक्त वैराग्यवान हैं। विषय भोग में नाना प्रकार की असुविधायें समझ कर उससे निवृत्ति के लिये जो अस्वाभाविक चेष्टा दीख पड़ती है उसका नाम शुष्क वा फल्गु वैराग्य है। भक्तगण उस प्रकार के शुष्कवैराग्य को स्वीकार नहीं करते। सहज-स्वभाव में कृत्रिमता का स्थान नहीं है। कृत्रिमता थोड़े ही समय तक ठहरती है। कृत्रिम उपाय का अवलम्बन करने से हृदय शुष्क हो कर भक्तियाजन के लिये अयोग्य हो जाता है। वाह्यरूप से विषय परित्याग करने से ही विषय जीव को नहीं छोड़ता। कारण, विषय से कोई श्रेष्ठ रस नहीं प्राप्तकरने से जीव के लिये विषय चेष्टा अनिवार्य है। हमलोगों को बहुत कष्ट से विषय त्याग करने पर भी मन ही मन विषय भोग होता रहता है, इसीलिये श्री भगवान् गीता में कहतेहैं,

कर्म्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥
विषया विनिवर्त्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्ज्यं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्त्तते ॥

जो मूढ़ व्यक्ति कर्मेन्द्रिय संयमपूर्वक मन ही मन विषय की चिन्ता करता है, वह व्यक्ति कपटाचारी है। दुर्बल निराहारी वा संयमी व्यक्ति में विषयभोग की योग्यता का अभाव देख पड़ने पर भी उनलोगों के हृदय में विषय तृष्णा नहीं जाती उन लोगों के मन ही मन सम्पूर्ण विषयों की चिन्ता होती है। किन्तु जब विषय-रस के बदले भगवद्भक्ति रस प्राप्त होता है, उस समय सुखदुःख देने वाला विषय आप ही आप निवृत्त हो जाता है। इसलिये कृत्रिमरूप से चेष्टा करने की आवश्यकता नहीं होती। भगवद्भक्तगण विषय परित्याग नहीं करते परन्तु विषय को अपना भोग्य न समझ कर भगवत्सेवा में स्थापनापूर्वक उसके द्वारा भगवत् अनुशीलन करते रहते हैं। भगवान् के साथ जिसका सम्बन्ध नहीं हुआ, उस व्यक्ति को युक्त वैराग्य सम्भव नहीं है। तब जड़ासक्त हमलोगों के हृदय में इस प्रकार का सहज-वैराग्य जब तक उदय नहीं हो तब तक भक्ति-प्रतिकूल विषय इत्यादि अत्यन्त यत्न से परित्याग करके साधुसंग में भगवदनुशीलन के लिये यत्न करना होगा। गुरु वैष्णव की कृपा से भक्ति के उदय होने के साथ २ ज्ञान-वैराग्य आप ही आप उदित होगा।

हम लोग संसारी जीव है, साधु-संग छोड़ कर हम लोगों की और गति नहीं है। देह तथा गृहासक्ति हम लोगों को सर्वदा रहती है। सौभाग्यवश यदि आत्मनिवेदनकारी शरणागत साधु का संग होतो हम आश्रयहीन व्यक्ति आश्रय पा सकते हैं, नहीं तो संसार से छुटकारा पाने का और कोई भी उपाय नहीं है। जैसा संग करेंगे वैसा ही फल प्राप्त करेंगे। यदि भोगी का संग करें तो विलासी होंगे, यदि त्यागी वा वैरागी का संग करें तो उससे शुष्क वैरागी बनेंगे। और कृष्णानुरागी का संग करने से कृष्णानुराग व विषय विराग सहज ही प्राप्त होगा। यह नित्य स्थायी बात है।

सद् गुरु के चरणारविन्द में आत्म समर्पण करने से ही जीव को संसार से मुक्ति हो जाती है। इसी का नाम मन्त्र ग्रहण वा दीक्षा है। मन्त्र हम लोगों को मनन धर्म (भला-बुरा विचार) से रक्षा करता है। श्री गुरुदेव के चरणारविन्द में आत्म-समर्पण करने के उपरान्त सेवा में तल्लीन रहने से

संसार निवृत्ति होने पर हम लोग भगवान की शुद्ध सेवा प्राप्त कर सकते हैं। हम लोग वर्तमान समय में जो साधन भजन करते हैं वह अप्राकृत तत्वानुसन्धान-रूपी चेष्टा छोड़ कर और कुछ नहीं है। साधु के अनुगत हो कर साधन कर सकने से समल जीव निर्मल हो सकता है। इस साधन के काम में कुछ शुद्ध चेष्टा व कृष्ण कृपा की आवश्यकता है। जिस समय हमलोग साधु के अनुसरण करके शुद्ध सेवा प्रार्थी होते हैं, उस समय अकिञ्चन होकर निष्कपट भाव से श्री गुरु वैष्णव और भगवान् के चरणों में आत्म-दुःख निवेदन करने से उन लोगों की कृपा से ही हम लोगों के हृदय में भगवत स्फूर्ति होती है। इस भयङ्कर संसार बन्धन को एक ही मुहूर्त्त में काट डालना दुःसाध्य है। इसी कारण असत संग को त्याग कर साधु-संग में भजन करना होगा। भजन करते करते संसार क्षय होने से हम लोग कृष्णोन्मुखी हो सकते हैं। किन्तु जो लोग इस संसार-बन्धन को क्षण मात्र में नाश करने की चेष्टा करते हैं एवं उसके लिये वास्तविक यत्न न करके व्यस्त व चञ्चल हो जाते हैं, वे फल्गु वैराग्य का आश्रय करके अन्त में निराशा ही भोग करते हैं।

कृष्ण-चिन्ता न होने से संसार-चिन्ता नहीं जाती। सुतरां कृष्ण स्मृति ही एक मात्र प्रयोजन है। श्रवण-कीर्त्तन करते करते ही यह सम्भव होता है। इस के अतिरिक्त विषय-वैराग्य का और कोई भी उपाय नहीं है। सुतरां जीते-मरते, सोते-जागते कृष्ण कीर्त्तन के अतिरिक्त हम लोगों की और कोई गति नहीं है।

फल्गु वैराग्य का कोई मूल्य नहीं है, इसी लिये श्री रूपगोस्वामी प्रभु ने युक्त वैराग्य की शिक्षा दी है।

अनासक्तस्य विषयान् यथार्हमुपयुञ्जतः।
निर्बन्धः कृष्ण सम्बन्धे युक्तं वैराग्यमुच्यते॥
प्रापञ्चिकतया बुद्धया हरिसम्बन्धिवस्तुनः।
मुमुक्षुभिः परित्यागो वैराग्यं फल्गु कथ्यते॥

ब्रह्माजी को श्रीभगवान् जी का उपदेश

भगवानने कपटतारहित तप द्वारा सेवित होकर अपना ज्ञानमय रूप दिखाकर ब्रह्मा से जो कहा है, वह तत्वज्ञान लाभ करना जीवों को एकान्त आवश्यक है। ब्रह्माजी के तप व स्तुति से प्रसन्न होकर श्रीभगवान् बोले--ब्रह्माजी! मेरे परम गोपनीय तथा विज्ञानयुक्त ज्ञान रहस्य और अंग के साथ मुझसे प्राप्त करो।

अहमेवासमेवाग्रे नान्यत् यत् सदसत् परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्॥

सृष्टि के प्रथम केवल मैं ही था। मुझ से अन्य कोई पदार्थ पृथक रूप से न था। सृष्टि होने पर सम्पूर्ण पदार्थों में मैं ही हूँ एवं सृष्टि के लय होने पर एक मात्र मैं ही शेष रहूँगा।

ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथा भासो यथा तमः॥

पूर्व श्लोक में परमतत्व का स्वरूप ज्ञान वर्णित हुआ है। किन्तु स्वरूप से इतर तत्व के ज्ञान द्वारा स्वरूप तत्व के ज्ञान को जब तक दृढ़ न करें तब तक विज्ञान नहीं होता। स्वरूपतत्व से इतर तत्व का नाम माया है। उसी माया-तत्व का ज्ञान इस श्लोक में विस्तृत होता है। स्वरूप तत्व ही अर्थ, अर्थात यथार्थ तत्व है। उस तत्व से

पृथक् जो प्रतीत होता है, एवं उस स्वरूप तत्व में जिसकी प्रतीति नहीं है उसी को आत्मतत्व का माया वैभव जानना चाहिये । इसके दो प्रादेशिक उदाहरण दिये जाते हैं । स्वरूप तत्व को सूर्य के सदृश जानना चाहिये । सूर्य में इतर तत्व दो प्रकार के प्रतीत होते हैं—एक आभास और दूसरा तमः (अंधकार)। सूर्य का प्रतिबिम्ब जल से अन्य स्थान में गिरता है, उसको 'आभास' कहते हैं। सूर्य का प्रभाव जिधर देखने में नहीं आता है उसको 'तमः' अर्थात् अंधेरा कहते हैं। जीवतत्व भगवत् स्वरूप के किरण-स्वरूप हैं। चित्तत्व से सुदूरवर्त्ती अन्धकार माया वैभव है। तात्पर्य यह है, आत्मतत्व और मायातत्व का परस्पर दो प्रकार का सम्बन्ध है। प्रथम सम्बन्ध यह है कि, आत्म स्वरूप के अतिरिक्त जो इतर स्वरूप प्रकाशित होता है, वह माया है, एवं आत्म स्वरूप से सुदूरवर्त्ती अनात्म अज्ञान ही माया है।

यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु ।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम् ॥

जिस प्रकार सकल महाभूत वृहत् और क्षुद्र पदार्थों में प्रविष्ट होकर भी अप्रविष्ट रूप से स्वतन्त्र वर्तमान रहते हैं, उसी प्रकार मैं भूतमय जगत में सर्व भूतों में सत्वाश्रयरूप परमात्म भाव से प्रविष्ट होकर भी पृथक भगवद्रूप से नित्य विराजमान और भक्तों के एक मात्र प्रेमास्पद हूं। तात्पर्य यह है कि, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश रूप महाभूत सकल पञ्चीकृत होकर जिस प्रकार स्थूल जगत् को प्रकाशित करते हुए उनके उपकरणरूप से उनमें रह कर भी वे महाभूत अवस्था में स्वतन्त्र हैं, उसी प्रकार चिन्मय परमेश्वर अपने जड़ शक्ति तथा जीव शक्ति द्वारा जगत सृष्टि करके एक अंश से जगत में सर्वव्यापी रह कर भी साथ ही साथ अपने चिद्धाम में पूर्ण चिद्विग्रह रूप से नित्य विराजमान रहते हैं। और चिद्विग्रह के किरण-परमाणु स्वरूप जीवगण शुद्ध प्रेम मार्ग से विमल प्रेम आस्वादन करते हैं—यही रहस्य है।

एतावदेव जिज्ञास्यं तत्वजिज्ञासुनात्मनः ।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा ॥

जो आत्मतत्व के जिज्ञासु हैं वे अन्वय-व्यतिरेक द्वारा इस विषय को विचारपूर्वक जो वस्तु सर्वत्र एवं सर्वदा नित्य है उसी का अनुसन्धान करेंगे। तात्पर्य यह है प्रेम रहस्य जिस उपाय से साधित होता है उसका नाम साधन-भक्ति है। तत्वजिज्ञासु पुरुष सद्गुरु के चरण से अन्वयव्यतिरेक अर्थात् विधि निषेध शिक्षापूर्वक तत्वानुशीलन करते करते तत्व ज्ञान लाभ करेंगे।

श्रीमद्भागवत में महाप्रभुचैतन्यदेव का विचार सम्पूर्ण रूप से है, भागवत ग्रन्थ में १८००० श्लोक हैं, उन अठारह हजार श्लोकों में जो कुछ है उनका मूल यही चार श्लोक है। 'अहमेव' श्लोक में भगवत्तत्व, भगवत्स्वरूप, उनके गुण और लीला संक्षेप में वर्णित है, 'ऋतेऽर्थं' श्लोक में भगवत्स्वरूप तत्व से पृथग् रूप से प्रतिभात मायातत्व एवं उस माया तत्व से सम्बन्ध जनित माया शक्ति के वश योग्य जीवतत्व एवं जीव का भोगायतन जड़तत्व विचारित हुआ है। इन्हीं दोनों श्लोकों से सम्बन्ध ज्ञान सम्पूर्ण रूप से मालूम होता है। 'यथा महान्ति' श्लोक से जीव एवं जड़ से भगवत्तत्व का अचिन्त्य भेदाभेद होने

पर भी भगवान् के नित्य स्वरूप का पृथक् अवस्थान एवं जीवगणों का उनका चरणाश्रय करने से महा प्रेम सम्पत्ति लाभ रूप परम प्रयोजन कहा गया है। 'एतावदेव' श्लोक में उस परम प्रयोजन प्राप्त करने का एक मात्र उपाय स्वरूप साधनभक्ति उल्लेखित हुआ है। साधनभक्ति के अन्तर्गत प्राप्तिसाधक-विधि समोंका आनुकूल्य भाव से 'अन्वय' करके वर्णन किया गया है। उसका प्राप्ति के बाधक क्रियाओं को निषेध में परिगणित करके व्यतिरेक शब्द से उक्ति किया गया है। साधनतत्व का नाम 'अभिधेय' अर्थात् शास्त्र के अभिधावृत्ति के अनुसार जो उपदेश प्राप्त होता है, वही अभिधेय है।

विविध-संवाद

पटने का संवाद

गत २७ वीं जून सोमवार को पटना श्रीगौड़ीय मठ में गौड़ीय वैष्णवाचार्य ॐ विष्णुपाद परमहंस परिव्राजकाचार्यवर्य श्री श्रीमद् अनन्त वासुदेव परविद्याभूषण गोस्वामी महाराज के कृपा आशीर्वाद से जगद्गुरु नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद परम-हंस सच्चिदानन्द श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर के २४ वीं वार्षिक अप्रकट तिथि पूजा विशेष समारोह के साथ सुसम्पन्न हुआ था। ब्राह्ममुहूर्त्त में मंगलारात्री के बाद "गुरुवन्दना", "गुरुपरम्परा" प्रभृति महाजन पदावली कीर्त्तन एवं श्रीचैतन्यभागवत पाठ और व्याख्या हुआ था। मध्यान्ह में श्रीविग्रह के भोगारात्री के बाद श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर के श्रीचरण में श्रील आचार्यदेव, श्रील प्रभुपाद, श्रीलगौरकिशोरदास गोस्वामीगण के आनुगत्य में पुष्पाञ्जलि दी गई थी। संध्यारात्रि के बाद मठ में एक सभा का अधिवेशन हुआ था जिसमें मठ के ब्रह्मचारी एवं गृहस्थ भक्तों ने हिन्दी, बंगला और अंग्रेजी भाषा में ठाकुर महाशय के गुणानु-कीर्त्तन किये थे। पाठ के आदि और अन्त में महाजन पदावली वो महामंत्र कीर्त्तन हुआ था। सभा के उपरान्त समागत श्रोतावृन्द को महा-प्रसाद दिया गया था।

—:o:—

पुरी का संवाद

श्रीपुरुषोत्तम धाम पुरी में श्रीविश्ववैष्णव राज सभा पुरुषोत्तम मठ नामक एक संस्था है। वहां पर स्नान यात्रा के दिन से हेरा पंचमी तक (१२ वीं जून से ९ वीं जुलाई तक) बहुत से भक्तों का समागम हुआ था और हर दिन सुबह आरति के उपरांत धाम-परिक्रमा, तीसरे प्रहर श्रीमद्भागवत और रात में चैतन्यचरितामृत की व्याख्या तथा मैजिक लालटेन से श्रीकृष्णलीला, श्रीचैतन्यलीला आदि के सम्बन्ध में वक्तृता हुई थी। २० वीं जून भक्तिविनोद विरह तिथि के दिन करीब ६०० साधु, भद्र, शिक्षित और गरीबों को महाप्रसाद दिया गया था। २८ वीं जून गुण्डिचा मन्दिर का मार्जन और २९ वीं जून रथयात्रा के दिन भक्त लोग बड़े ही प्रेम के साथ श्रीजगन्नाथ देव के सामने नृत्य और संकीर्त्तन किये थे।

अलालनाथ का संवाद

गत १२ वीं जून भागवत के सम्पादक ने कुछ भक्तों के साथ अलालनाथ श्रीब्रह्मगौड़ीय मठ में

पधारे और स्नानयात्रा के दूसरे दिन (१३ वीं जून) वहां एक भारी महोत्सव किया था। रात में बहुत भद्रलोक के सम्मिलित होने पर सम्पादक ने श्रीचैतन्यमहाप्रभु के अलालनाथ-यात्रा के बारे में एक भाषण दिया। वहां भी लगभग ५०० व्यक्ति को महाप्रसाद दिया गया।

— ✻ —

दिल्ली के संवाद

जर्म्मन भक्त श्रीपाद सदानन्द ब्रह्मचारी जी (डा, जि० सुलत्जे) का दिल्ली में प्रचार।

गत १२ वीं जून को दिल्ली के हिन्दू महासभा भवन में 'सत्य का अनुसन्धान' के सम्बन्ध में श्री गौड़ीय मिशन के अन्यतम सेवक श्रीपाद सदानन्द ब्रह्मचारीजी की एक गवेषणा पूर्ण वक्तृता हुई थी। इस सभा में कितने विशिष्ट जर्म्मनी देश के माननीय सज्जन, बहुत से खृष्टधर्मावलम्बी एवं बहुत से हिन्दु-प्रतिष्ठान के सभ्य लोग पधारे थे।

गत १३ वीं जून को ब्रह्मचारी जी ने निउ दिल्ली के सिनियर केम्ब्रिज स्कूल के छात्र और अध्यापकों के सन्मुख 'धर्म और विज्ञान' के सम्बन्ध में और १४ वीं जून को दिल्ली के रामजास् कौलेज में 'नया भारत और धर्म की प्रयोजनीयता' के सम्बन्ध में दो व्याख्यान दिया था।

गत १४ वीं जून को ब्रह्मचारी जी लखनऊ गये थे और वहां से मंसूरी के कितने विशिष्ट सज्जनों के अनुरोध से मंसूरी पधारे।

श्रीश्रीभक्तिविनोद-शतवर्ष-पूर्त्त्य-विर्भाव-महामहोत्सव।

७ वीं सेप्टेम्बर (१९३८) बुद्धवार वर्तमान युग के शुद्ध भक्ति स्रोत के पुनः प्रवाहक मूल पुरुष नित्य लीला प्रविष्ट गौरजन ॐ विष्णुपाद श्रीश्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुर का शत-वर्षपूर्त्त्याविर्भाव-तिथी के उपलक्ष में श्री-भक्तिविनोद आसन श्री गौड़ीयमठ में (बागबजार कलकत्ता) ८वीं जुलाई (१९३८) शुक्रवार श्री-शयन एकादशी से ९ वीं सेप्टेम्बर (१९३८) शुक्र-बार पूर्णमासी तिथी तक दो मास श्रीश्रीभक्ति-विनोद-महिमा कीर्त्तन-महा महोत्सव का अनुष्ठान होगा।

भजन

भजहुं रे मन श्री नन्दनन्दन
अभय चरणारविन्द रे।
दुर्लभ मानव जनम सतसङ्गे
तरह ए भवसिन्धु रे॥
शीत आतप बात बरिषण
ए दिन यामिनी जागि रे।
विफले सेविन कृपण दुरजन
चपल सुखलव लागि रे॥
ए धन यौवन, पुत्र परिजन
इथे कि आछे परतीति रे।
कमलदलजल, जीवन टलमल
भजहु हरि पद निति रे॥
श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, वन्दन
पादसेवन, दास्य रे।
पूजन, सखीजन, आत्मनिवेदन
गोविन्द दास अभिलाष रे॥

Regd. No. P. 468.

श्रील प्रभुपाद की पत्रावली—(तृतीय खण्ड)

आचार्य्य-प्रकट तिथि में श्रील प्रभुपाद की पत्रावली का तृतीय खण्ड प्रकाशित हुआ है। प्रत्येक पत्र विशेष शिक्षाप्रद व सारगर्भ उपदेश से परिपूर्ण है। हमलोग प्रत्येक मंगलकामी व सत्य का अनुसन्धान करनेवाले व्यक्ति को इस पत्रावली को पाठ करने का अनुरोध करते हैं।

श्रीचैतन्यदेव

श्रीचैतन्यदेव के आविर्भाव के पहले व बाद भारत व बंगाल की राजनैतिक अवस्था, अर्थ-नैतिक अवस्था, विद्या, साहित्य व समाजिक अवस्था, धर्म्मजगत की अवस्था, समसामयिक पृथिवी की अवस्था, नवद्वीप का परिचय व तथ्य और प्रमाणिक ग्रन्थ व विवरण समूह सहज व सरल भाव में साधारण के पढ़ने के योग्य वर्णन किया गया है। ग्रन्थ में अनेक चित्र व मानचित्र दिए गए हैं। सुन्दर जिल्द भक्त, साधारण व्यक्ति व विद्यालय के छात्र सभी के लिए यह ग्रन्थ उपयोगी व प्रीति देनेवाला होगा। भिक्षा १) । प्राप्तिस्थान—श्रीगौड़ीयमठ, पो० बागबाजार, कलकता। श्रीमाध्वगौड़ीयमठ, पो० वोयारी, ढाका।

सरस्वती जयश्री

गौड़ीय-वैष्णवाचार्य्य ॐ विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद का भुवन के मंगलदायक जीवनचरित ग्रन्थ है। निर्म्मत्सर शुद्धभक्ति पिपासु व्यक्ति इस ग्रन्थ के पाठ से युगपत् अनेक शास्त्रग्रन्थ पाठ व अनेक साधुसङ्ग का फल लाभ कर सकेंगे। वैभवपर्व्व का प्रथम खण्ड रायल ८ पेजी आकार में एण्टिक कागज पर पर उत्तमरूप से मुद्रित, ३६० पृष्ठों में। विस्तृत सुचीपत्र के साथ इसमें अनेक चित्र भी दिए गए हैं। भिक्षा ४)

'सामयिक-संख्या'—गौड़ीय

सामयिक-संख्या गौड़ीय अनेक त्रिवर्ण व एकवर्ण चित्र-शोभित व अनेक श्रेष्ठ वैष्णवसाहित्यिकगणों की गवेषणापूर्ण प्रबन्ध से सुमण्डित होकर प्रकाशित हुई है। श्रीधाम-मायापुर में श्रीश्रीगौरजन्मोत्सव के उपलक्ष में सर्वसाधारणों के लिए भिक्षा ॥) आना।

ठाकुर भक्तिविनोद

श्रीरूपानुगशुद्धभक्ति स्रोत के प्रवाह का मूल पुरुष ॐ विष्णुपाद श्रील ठाकुर भक्तिविनोद का जीवनचरित व शिक्षामाला बहुत सरल भाषा में बड़े बड़े अक्षरों में मुद्रित। भिक्षा ।॥) मात्र। प्राप्तिस्थान—कलकत्ता (बागबाजार) श्रीगौड़ीयमठ व ढाका—श्रीमाध्वगौड़ीय मठ।

अनुभाष्यम्

चार अध्यायी ब्रह्मसुत्र के प्रत्येक अधिकरण का तातपर्य्य श्रीमन्मध्वाचार्य्य-कृत श्लोकाकार में बहुत संक्षेप में बना हुआ। बंगभाषा में सर्वप्रथम संस्करण। पहले प्रति अध्याय के प्रति पाद का श्रीमन्मध्वाचार्य्य-विरचित अनुभाष्यमूल, उसके बाद प्रति अध्याय के प्रति पाद का सूत्र-समूह, अनुभाष्य-मूल का बंगला अनुवाद व श्रीपाद राघवेन्द्र यतिविरचित तत्वमञ्जरी टीका, उसका बंगला अनुवाद व तातपर्य्य इस क्रम से पुस्तक मुद्रित हुई है। इसके अतिरिक्त मातृका क्रम से ब्रह्मसूत्र समूह, उसका अध्यायांक, पदांक व सूत्रांक के साथ सुचीपत्र भी संयोजित हुआ है। भिक्षा २) मात्र।

PUBLISHED BY BRAJESHWARI PAASAD
and
PRINTED AT INDIAN NATION PRESS, PATNA.

वर्ष ४]   श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः   संख्या ७]

भागवत

एकमात्र
पारमार्थिक
मासिक पत्र

५ हृषीकेश
गौराब्द
४५२

भाद्र कृष्ण ५
संवत
१९९५ वि०

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥१॥

जिससे इन्द्रिय ज्ञानातीत श्रीकृष्ण में श्रवणादि लक्षण फलाभिसन्धान रहित ऐकान्तिकी स्वाभाविक निरपेक्षा भक्ति उदय होती है, वही मानव जाति का सर्वश्रेष्ठ धर्म है— उसी भक्ति के बल से अनर्थ उपशान्त होने से आत्मा प्रसन्नता लाभ करती है।

प्रति संख्या ―)॥ | **सम्पादक-त्रिदण्डि-स्वामी श्री भक्तिभूदेव श्रौती महाराज** | वार्षिक १)

Editor—Tridandiswami Sree Bhakti Bhudeb Shrauti Maharaj

विषय सूचि

उद्देश्य

शुद्ध भगवद्भक्ति का प्रचार करना

प्रबन्ध-सम्बन्धी

(१) यह पत्र प्रति मास ५ कृष्ण को प्रकाशित होता है।

(२) इस पत्र की डाकव्यय सहित वार्षिक भिक्षा १) है।

(३) इस पत्र की प्रति संख्या की भिक्षा ≡)॥ है।

लेख-सम्बन्धी

लेखकों को केवल भागवत धर्म सम्बन्धी लेख ही भागवत पत्र में छपने के लिये सम्पादक "भागवत" के पता से भेजना चाहिये। जो लेख सम्पादक को पसन्द न होगा वह नहीं छापा जायगा और वापस भी नहीं किया जायगा।

विज्ञापन-सम्बन्धी

"भागवत" में विज्ञापन छपाई का दर नीचे लिखा है :—

साधारण पृष्ठ

प्रति संख्या

पूरा पृष्ठ या दो कालम	...	८)
आधा " "	...	५)
चौथाई " "	...	३)
२ इंच " "	...	१॥)
१ " " "	...	१)

स्थायी विज्ञापन और कवर पर विज्ञापन छपाने का रेट नीचे लिखे पते पर पत्र-व्यवहार द्वारा तय करना चाहिये।

पत्र व्यवहार का पता--

मैनेजर—"भागवत"

श्री गौड़ीय मठ,

मीठापुर, पटना।

All communications are to be addressed to—

The Manager '*Bhagwat*'

SRI GAUDIYA MATH

Mithapur, Patna

॥ श्री श्री   जयतः ॥



कृष्णे स्वधामोपगते धर्म्मज्ञानादिभिः सह । कलौ नष्टदृशामेषः समाचारोऽधुनोदितः ॥

श्रीगौड़ीय मठ, मीठापुर (पटना)

वर्ष ४   संख्या ७

भाद्र कृष्ण ५.सं० १९९५ वि०,१६ वीं अगस्त १९३८

प्रह्लाद—चरित्र

प्रह्लाद महाराज एक उच्चकोटि के भक्त थे। उनका परिचय हिन्दुस्थान में किसी को अज्ञात नहीं है। तथापि भक्तों का गुण कीर्त्तन करने से हमलोगों की आत्मा पवित्र होती है, इसी विचार से उनके चरितामृत के आस्वादन की लालसा हुई है।

दैत्यराज हिरण्यकशिपु के चार पुत्रों में से प्रह्लाद सर्वश्रेष्ठ थे। उनका गुण अतुलनीय था जिससे भक्त लोग भी उनकी उपासना करते थे। वह सत्यवादी, जितेन्द्रिय, सर्व-प्रिय और सुहृत थे। भक्तों के समस्त गुण उनमें पूर्णतया विराजते थे। शत्रु भी उनकी भक्ति की तारीफ करते थे। श्रीभगवच्चरणारविन्द मे तल्लीन रहते थे, इस वजह से इस दुनियां की खबर उनके समीप नहीं पहुँचती थी।

प्रह्लाद के पिता ने दैत्यकुल के अन्यान्य बालकों के साथ पण्डित षण्डामर्क के समीप प्रह्लाद के अध्ययन का भी बन्दोबस्त किया था। किन्तु प्रह्लाद, अपना मन सर्वदा भगवत-चिन्तन में तत्पर रहने के कारण पाठ में ध्यान नहीं देते थे और भगवत-सम्बन्ध-रहित शिक्षा उनके मन पर असर नहीं कर सकी। केवल पिता की आज्ञा पालन करने के लिये गुरु के पास पढ़ते थे।

एक दिन हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद को गोद में

वस्तु है, वह मुझे बताओ।" प्रह्लाद ने कहा—"हे असुरराज, मेरे विचार से सर्वश्रेष्ठ यही है कि, अनित्य संसार में सतत नाना प्रकार की घबराहटों से व्याकुल रहने के बदले इस दुःखपूर्ण अंधकूप (सूखे कुएं) के सदृश गृह को त्यागकर वन में गमन करते हुए भगवान के चरणों की शरण लेनी चाहिये।" प्रह्लाद के पिता विष्णु-वैष्णव-विद्वेषी थे। इस लिये प्रह्लाद के कथन से हिरण्यकशिपु के सच्चे स्वरूप का परिचय भी प्राप्त हो गया था। असुरों के विचार से वह जवाब अच्छा नहीं था। वह हंसते हुए पण्डित से बोले—"शत्रुपक्ष के किसी व्यक्ति ने आकर प्रह्लाद को ऐसा ज्ञान प्रदान किया है। परन्तु वह बालक है। बालक स्वभावतः दूसरों की शिक्षा सहज ही ग्रहण करते हैं। अतः अच्छी तरह ख्याल रखना चाहिये, कि शत्रुपक्ष का कोई व्यक्ति आकर उसकी बुद्धि को बिगाड़ न दे। परशामर्क ने प्रह्लाद को अपने घर ले जाकर मधुर वचनों से पूछा:—"प्रह्लाद! सच कहो कि तुम्हारी कृष्णोन्मुखी बुद्धि कहां से प्राप्त हुई? क्या किसी के परामर्श से, या तुम्हारा ऐसा ही स्वभाव है?" प्रह्लाद पण्डित का यह विचार सुनकर बहुत ही आश्चर्य के साथ मन ही मन भगवान् को प्रणाम करने लगे, जिनकी माया से जीवों की बुद्धि मोहित रहती है। उनकी कृपा से यह मायामुग्ध पशुबुद्धि नष्ट हो सकती है, नहीं तो शास्त्रज्ञ व्यक्ति अथवा ब्रह्मादि देवगण भी परमात्मा को समझाने में असमर्थ हैं। पश्चात् वह पण्डित से बोले:—"हे ब्रह्मन्! जैसे चुम्बक लोहे को खींचता है, वैसे ही मेरा चित्त भगवान की इच्छा से उनकी चरणों से आकृष्ट है।" यह सुनकर पण्डित बहुत ही क्रोध से चिल्लाया—अरे, कोई है तो जाकर बेंत लाओ। प्रह्लाद को आज अच्छी तरह शिक्षा दूंगा। इस प्रह्लाद से दैत्यकुल का संहार हो जायगा। इस प्रकार बहुत डांटते हुए, उसने और कुछ दिन पढ़ाया। जब उसने समझा कि प्रह्लाद ने अपना पाठ अच्छी तरह याद कर लिया, तब उसने महाराज हिरण्यकशिपु के पास उनके इम्तहान का बन्दोबस्त किया।

राजा के समीप ले जाने पर प्रह्लाद ने पिता को दण्डवत प्रणाम किया। हिरण्यकशिपु ने भी बहुत ही प्रेम से प्रह्लाद को गोद में लेते हुए आनन्द प्रकट कर पूछा:—"प्रह्लाद! तुम ने आज तक अपने गुरु से जो कुछ पढ़ा, उसमें से कुछ अच्छा पाठ मुझे सुनाओ।" पुत्र ने पिता से कहा:—

श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥
इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा।
क्रियेत भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम्॥

अर्थात् विष्णु के नामादि का श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, उनके पदकमल का सेवन, पूजन, दास्य, प्रणाम, उनके साथ सख्यता तथा उनको आत्म-निवेदन जो यह नवधा भक्ति भगवान की प्रीति के लिये अनुष्ठान करते हैं, मेरे विचार से उन्हीं ने ही यथार्थ अध्ययन किया है—अर्थात वे ही पण्डित हैं।

यहां 'श्रवण' से भगवान् के नाम, रूप, गुण, परिकर तथा लीला का श्रवण समझना चाहिये। ऐसा ही कीर्त्तन और स्मरण के विषय में भी समझना होगा। नवधा भक्ति के अंगों में से एक ही की सिद्धि होने पर भी चित्त-शुद्धि के लिये पहले भगवान् के नाम का श्रवण सन्तों के मुखारविन्द से करना चाहिये। ऐसा करते करते चित्त शुद्ध होने

पर उनके रूप-सम्बन्धी बातें स्फुरित होंगी। श्रीरूप का उदय सम्पूर्ण रूप से हो जाने के बाद गुण का स्फुरण स्वयं ही होगा। इसके बाद परिकर और लीला का उदय होगा।

श्रवण-कार्य भगवद्भक्त के सिवा अन्य किसी से नहीं होना चाहिये। दूसरों से होने पर वह व्यर्थ हो जायगा। भगवत्-अनुरागी भक्तों के समीप प्रणाम, परिप्रश्न और सेवा के साथ श्रवण करने का आदेश गीता में भी किया गया है।

कीर्त्तन में भी कुछ विधि है। नाम कीर्त्तन ऊँचे स्वर से होना चाहिये, इससे चित्तरूपी दर्पण बहुत ही शीघ्र मार्जित होता है।

कीर्त्तन में किन-किन नामों का कीर्त्तन करना चाहिये, उसको भी समझना होगा। भगवान् के कुछ नाम गौण और कुछ मुख्य हैं। गौण जैसे सृष्टि कर्त्ता, विश्वपाता, ब्रह्माण्डपति इत्यादि। इनसे मुख्य नाम ही अच्छे हैं। यथा—राम, हरि, कृष्ण, गोविन्द इत्यादि। मुख्य नाम का ही कीर्त्तन करना होगा। कलिकाल का प्रधान साधन ही नाम-कीर्त्तन है और वह नाम है,—

"हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥"

इस तारक ब्रह्म-नाम को छोड़ कर और किसी अपने मनोकल्पित नाम का जप वा कीर्त्तन करने में शास्त्र की आज्ञा तामील नहीं होती है। अतः वह बेकार हो जाता है।

कीर्त्तन में दशविध नामापराध का भी विचार करना होगा। यथा—(१) साधुगण की निन्दा, (२) श्रीविष्णु से अन्यान्य देवता को स्वतंत्र समझना या दोनों को समान समझना, (३) गुरुदेव की अवज्ञा, (४) वेद और उसके अनुगत शास्त्र की निन्दा, विशेषतः जिस शास्त्र में भगवत् नाम का माहात्म्य है, उसकी निन्दा करना, (५) नाम में अर्थवाद अर्थात् नाम के माहात्म्य को केवल प्रशंसा मात्र समझना, (६) नाम को कल्पित समझना, (७) नाम के सहारे पाप करना अर्थात् नाम लेने से जब पाप नष्ट हो जाता है तब फिर पाप-कर्म करने में क्या डर है, ऐसा समझ कर पाप करने की इच्छा करना, (८) धर्म, व्रत, त्याग, यज्ञादि शुभ कर्म के साथ नाम की बराबरी करना, (९) श्रद्धाहीन व्यक्ति को नाम लेने का उपदेश करना और (१०) नाम-माहात्म्य सुनकर भी नाम में अप्रीति करना। ये दश प्रकार के अपराध त्याग कर शुद्ध नाम लेने से भगवत्प्रीति शीघ्र ही प्राप्त होती है। अपराध रहने पर भी सदाकाल नाम का कीर्त्तन होने से वह अपराध छूट जाता है।

श्रीभगवत्-विग्रह के समीप अपनी दीनता या मनोभाव का निवेदन करना, स्तवपाठ करना भी कीर्त्तन के अन्तर्भुक्त है।

नामकीर्त्तन द्वारा अन्तःकरण शुद्ध हो जाने से स्मरण होता है। उस पर भी कीर्त्तन छोड़ना नहीं चाहिये। स्मरणांग पांच प्रकार के हैं—स्मरण, धारणा, ध्यान, ध्रुवानुस्मृति तथा समाधि। वस्तु का यत्किंचित् अनुसन्धान का नाम है स्मरण, सब विषयों से चित्त को हटा कर साधारण भाव से एक वस्तु में स्थापना करने का नाम है धारणा। विशेष भाव से रूपादि-चिन्ता का नाम है ध्यान। अमृत-धारा के समान अखण्ड भाव से स्मरण होने से वह है ध्रुवानुस्मृति और केवल ध्येय वस्तु का उदय सदा रहने से समाधि का विषय होता है।

रुचि रहने से श्रवणादि न छोड़ कर ही पाद-सेवन होता है। श्रीमूर्त्ति का दर्शन, स्पर्श, परिक्रमा,

अनुगमन और भगवत्-मन्दिर - धामादि गमन भी पादसेवन का ही अंग है । गंगादि पवित्र तीर्थ' तुलसी तथा सन्तों की सेवा भी पादसेवन के अन्तर्गत समझना चाहिये ।

अब अर्चन की बातें कही जाती हैं । अर्चन मार्ग में श्रद्धा रहने से गुरुदेव से उपदेश लेकर अर्चन करना चाहिये । पूजन छोड़कर भी श्रवणादि अन्यान्य अंगों में से एक अंग का साधन से ही सिद्धि होती है, जैसे

श्रीविष्णोः श्रवणे परीक्षिदभवद् वैयासकिः कीर्तने प्रह्लादः स्मरणे तदङ्घ्रिभजने लक्ष्मीः पृथुः पूजने । अक्रूरस्त्वभिवन्दने कपिपतिर्दास्येऽथ सख्येऽर्जुनः सर्वस्वात्मनिवेदने बलिरभूत् कृष्णाप्तिरेषां परम ।

भगवत् कथा के श्रवण से परीक्षित, कीर्तन से शुकदेव, स्मरण से प्रह्लाद, पादसेवन से लक्ष्मी देवी, पूजन से पृथु, प्रणाम से अक्रूर, दास्य से हनुमान, सख्य में अर्जुन और सर्वस्व-निवेदन कर बलि राजा ने भगवत्सेवा प्राप्त की है, तब भी भगवान् के साथ विशेष सम्बन्ध की स्थापना करने के लिये दीक्षा के बाद अर्चन की आवश्यकता है । विशेषतः जो गृहस्थ लोग दौलतमंद हैं, वे यदि अकिंचन भक्तों के बराबर केवल कीर्त्तनादि करें तो उनका विषय भगवत्सेवा में नहीं देने की वजह से 'वित्तशाठ्य-दोष' होता है अर्थात् गृहस्थों का विषय भगवत्सेवा के लिये ही है; अपने शरीर-निर्वाह के लिये कुछ ग्रहण करने के बाद जो कुछ है सब ही भगवत्सेवा के वास्ते । अतएव भगवत्सेवा के अतिरिक्त और किसी कार्य में खर्च करने से भगवान् के साथ शठता या वंचना की जाती है । समर्थ होने पर या अधिकार रहने से तनख्वाह देकर पुजारी से पूजन करवाना भी ठीक नहीं है । वह केवल आलस्य का परिचायक है ।

अर्चन में भी ३२ प्रकार के अपराध त्याग करना चाहियेः—यथा जूता या खड़ाऊ पहन कर अथवा गाड़ी, रथ आदि पर सवार होकर मन्दिर में जाना, भगवत् उत्सवादि न करना, मूर्त्ति के सामने प्रणाम न करना, अशौच-अवस्था में प्रणाम करना, एक हाथ से प्रणाम करना, विग्रह के सामने प्रदक्षिणा करना, उनके सामने पैर पसारना, दोनों हाथों से जानु-बंधन कर बैठना, सोना, भोजन करना, मिथ्या बोलना, चिल्लाना, बेकार बातें करना, रोना, झगड़ा करना, किसी के ऊपर प्रभुता दिखलाना, कड़ी बातें कहना, कम्बल से शरीर को ढकना, किसी की निन्दा या स्तुति करना, भद्दी बातें करना, अपान वायु त्यागना, अभाव न होने पर भी क्षुद्र उपकरण से पूजन करना, जो वस्तु भगवान् को निवेदन नहीं की गई उसका भोजन, जिस समय जो फलादि पैदा होता है, वह भगवान् को निवेदन न करना, भगवान् को भोग लगाने के पहले किसी वस्तु का कुछ अंश किसी को देना या दूसरे काम में लगाना, विग्रह को पीठ दिखलाना, उनके सामने और किसी को प्रणाम करना, गुरुपूजा में मौन रहना अर्थात् उनका स्तव न करना, अपनी प्रशंसा और अन्यदेवता की निन्दा करना ।

प्रणाम करने के भी कुछ नियम हैं—एक हाथ से, कपड़े से शरीर को ढंक कर, विग्रह के सामने पीठ दिखाकर, विग्रह की बायीं ओर से, बगल से, अतिसमीप या गर्भ मन्दिर में (मन्दिर के भीतर) प्रणाम करना मना है ।

दास्य के कार्य अन्यान्य भक्त्यंगों में ही हैं । भजन तो दूर की बात है, केवल भगवान् के दास-

अभिमान होने से भी जीव कृतार्थ हो जाता है।

सेवापरायण कोई-कोई भक्त भगवान् को मित्र के बराबर समझते हैं। यह भाव दास्य से श्रेष्ठ है।

आत्मनिवेदन में अपने स्वार्थ का अभाव रहता है। अपना सब कुछ भगवान को सौंप कर उनकी सेवा में जीवन को भी समर्पण करना ही आत्मनिवेदन है।

प्रह्लाद के मुह से [illegible] सुनकर हिरण्यकशिपु ने बहुत ही क्रोध से पण्डित से कहा:- अरे ब्राह्मणाधम ! मैं यह क्या देखता हूं ? तुम्हारा विचार ऐसा ही हुआ कि मेरी आज्ञा छोड़कर मेरे पुत्र को तुमने शत्रुपक्ष की भक्ति की शिक्षा दी है ? ऐसे बहुतेरे कपटी लोग मित्रों के भेष में रहते हैं, किन्तु आखिर में उनका कपट कार्य जाहिर ही प्रगट हो जाता है। इस प्रकार पापिष्ठ व्यक्ति का पाप उसकी बीमारियों से जान पड़ता है।

पण्डित ने बहुत ही घबरा कर कहा - "हे इन्द्र-शत्रो ! आप जब भौंह चढ़ाते हैं तब इन्द्र भी घबरा उठते हैं, मुझ पर ऐसा न कीजिये। आप का पुत्र किसी की शिक्षा के अनुसार ऐसा नहीं कहता है, परन्तु उसकी आदत ही ऐसी है।"

गुरु से उत्तर सुनकर राजा ने फिर प्रह्लाद से पूछा, "क्या प्रह्लाद, गुरु से यह शिक्षा न मिलने से कहां से ऐसी अभद्र मति तुझको मिली ?"

प्रह्लाद बोले "जो लोग गृहासक्त हैं, उनकी इन्द्रियां सदा ही विषय में फंसी हुई रहती हैं और आखिर में नरक में ही जाने का मार्ग दिखलाती हैं। ऐसे लोगों का चित्त कभी भी किसी के उपदेश से अथवा आप-ही-आप भगवत्पादपद्म में आकृष्ट नहीं होता है। क्योंकि वे लोग तुच्छ स्वार्थ के लिये ही व्यस्त हैं। भगवच्चरणारविन्द को अपना श्रेष्ठ स्वार्थ नहीं समझते हैं। इस लिये उनका गुरु भी ऐसा ही एक विषयासक्त व्यक्ति ही होता है, जिसने स्वयं प्रकृत मार्ग को नहीं देखा है। इस लिये अन्धे से चालित अन्धे के समान वह विषय के गड्ढे में ही गिरता है। वह पण्डित होने पर भी वेदरूपी रस्सी अपने गले में डालकर मुक्तिमार्ग की ओर अग्रसर नहीं होता है। हां, उसके इस भाव को हटाने का एक मात्र उपाय भक्तों के चरणरज से अभिषिक्त होना है। ऐसा न होने से उसकी सांसारिक मति शुद्ध नहीं होगी।"

राजा ने यह बात सुनकर प्रह्लाद को गोद से फेंक दिया और असुरों से बोले- "अरे इसको जल्दी यहां से हटा कर मार डालो। यह मेरा भ्रातृ-हन्ता विष्णु की सेवा करता है अतः यह भी मेरा भ्रातृहन्ता है, क्योंकि यह शत्रु की नौकरी करता है। पांच वर्ष की उम्र में ही इसने अपने पिता-माता का प्रेम त्याग दिया है। हितकर दवा जङ्गल में भी रहने से उसको बहुत प्रेम से उठा कर घर में रखा जाता है। दूसरा व्यक्ति भी हितकारी होने से उसको अपनाता है, किन्तु अपना आदमी भी अनहित करने से उसको शत्रु के समान त्यागना चाहिये। इसको किसी भी उपाय से मार डालो।" यह बात सुन कर दैत्यों ने बहुत ही चिल्ला कर प्रह्लाद को मारने के लिये प्रयत्न किया परन्तु प्रह्लाद का मन भगवत्पदकमल में लवलीन रहने के कारण राक्षसों के सब प्रयत्न व्यर्थ हो गये।

इससे राजा भी बहुत घबड़ा उठे और प्रह्लाद को मारने के लिये हजारों कोशिशें कीं। हाथी, सांप, मंत्र, यंत्र द्वारा मारण-उच्चाटनादि हिंसा कार्य, पहाड़ से गिराना, गड्ढे में गिराना, विष पिलाना, जल, अग्नि, हिम, वायु या अन्यान्य कितनों ही

उपायों से मारने की कोशिश करते हुए भी जब मार न सके तब वह बहुत ही व्याकुल हो गये। उनकी यह हालत देखकर पण्डित बोले, "महाराज आप अपनी शक्ति से तीनों लोकों को जीते हैं, और आप की भौंहें चढ़ाने से समस्त देवतागण भी कांपते हैं, अतः आप के घबराने का कोई कारण नहीं है। बालक का स्वभाव अधिक अवस्था होने पर बदल जाता है। आप प्रह्लाद के वास्ते मत चिन्ता कीजिये। मेरे पिता शुक्राचार्य जी के परदेश से लौटने पर उनकी शिक्षा से सब ठीक हो जायगा। ऐसा कहने से राजा भी उससे सहमत हो घर लौटे और पण्डित लोग प्रह्लाद को फिर पढ़ाने लगे।

जब पण्डित सांसारिक काम के वास्ते घर जाते थे, तब बालकों को खेलने का समय मिलता था। उसी मौके पर प्रह्लाद बालकों को अपने पास बुलाकर उपदेश करते थे। उनका यह उपदेश दैत्यबालकगण बहुत ही ध्यान से सुनते थे।

आगामी अङ्क में प्रह्लाद का उपदेश प्रकाशित किया जायगा।

"फिर पछताये होत क्या चिड़ियां चुग गईं खेत"

(लेखक श्रीयुत अनवर्गबिहारी लाल कपूर, एम. ए, मौनिकलाल)

संसार परिवर्तनशील है। प्रकृति के महान पृष्ठ पर समयरूपी लेखनी से केवल एक शब्द "परिवर्तन" आदि से अंत तक अंकित है। "परिवर्तन" ही संसार की प्रत्येक वस्तु का ट्रेड-मार्क है। परिवर्तन ही संसार का अविचल नियम है। एक पाश्चात्य दार्शनिक ने इसी बात को समझाते हुए कहा है—"हम एक नदी में दो बार स्नान नहीं कर सकते" ("We cannot bathe in the same river twice") हमारा दूसरा स्नान एक दूसरी नदी में होता है। पहले और दूसरे स्नान के अन्तर में नदी का स्वरूप कितनी बार बदल चुकता है। किसी भी स्थान पर जल की वही बूंदें नहीं रहतीं जो उस स्थान पर पहले थीं।

प्रकृति के इस नियम के आधार पर जगत के सारे कार्य होते हैं। बीज धरती पर गिरता है, अनुकूल जलवायु के संयोग से क्रमशः अंकुरित और पल्लवित होता है और अन्त में वृक्ष का रूप धारण कर पतझड़ ऋतु के एक आघात से फिर भूमि पर आ गिरता है। शिशु एक दिन माता के गर्भ से बहिर्गत होकर कुटुम्बियों के हृदय में सुख और आनन्द का संचार करता है और शनैः शनैः वृद्धावस्था को प्राप्त कर अथवा इसके पूर्व ही मृत्यु का ग्रास बन परलोक की यात्रा करता है। तलवार और बन्दूकों के बल से बड़े बड़े साम्राज्य स्थापित होते हैं और समय आने पर इस प्रकार पृथिवी में विलीन हो जाते हैं कि उनका नाम-निशान भी नहीं रह जाता। उनके इतिहास को फिर से ढूंढ़ निकालने के लिये पुरातत्ववेत्ताओं (archaeologists) को अकसर सैकड़ों फीट गहरी जमीन खोद कर प्राप्त की हुई कुछ प्राचीन वस्तुओं पर वैज्ञानिक रीति से विचार करना पड़ता है।

परन्तु आश्चर्य का विषय है कि मनुष्य यह सब देखता हुआ भी अन्धे का-सा व्यवहार करता है। परिवर्तन, नाश और मृत्यु की चक्की में संसार

की प्रत्येक वस्तु को पिसते हुए देख कर भी वह यही समझता है कि वह नित्य अजर और अमर है। इसी का नाम तो माया है !

यदि मनुष्य को क्षण भर के लिये भी इस बात का वास्तविक रूप से ज्ञान हो जाय कि यह संसार अनित्य है, इसके सारे पदार्थ क्षणभंगुर हैं और उसका जीवन पानी के बुदबुदे के समान नाशवान है तो उसे मायाजाल में अधिक भटकना न पड़े।

मृत्यु का ज्ञान वैसे तो प्रायः सभी मनुष्य में होता है परन्तु उसके ऊपर जीवन का एक ऐसा आवरण पड़ा होता है जो उस ज्ञान को बिलकुल मेट सा देता है। मनुष्य कितना ही बूढ़ा हो जाय अथवा कितना ही रोग ग्रसित क्यों न हो उसे हर समय और हर अवस्था में जीवन की आशा बनी ही रहती है। इसी आशा के आधार पर संसारी मनुष्य निश्चिन्त रहते हैं। जब उनमें कोई विवेक-बुद्धि का संचार होकर कल्याण पथ पर अग्रसर होने की सलाह देता है, वे कह दिया करते हैं कि अभी तो जीवन बहुत ही बाकी है, इसलिये अभी संसारी विषयों में अपनी इन्द्रियों को सन्तुष्ट कर लें, फिर वृद्धावस्था में निश्चिन्त होकर भगवत-भजन कर लेंगे। यदि मनुष्य में जीवन की आशा इतनी प्रबल न होती तो उसे इस प्रकार की युक्तियों द्वारा कल्याण पथ से अपने आप को विचलित करने का अवकाश न मिलता।

महाराज परीक्षित को जब यह ज्ञात हो गया कि केवल सात दिन बाद वह तक्षक द्वारा दंशित हो कर मृत्यु को प्राप्त होंगे और जब उनके जीवन की आशा बिलकुल जाती रही, उन्होंने तत्काल अपने आप को भगवत्प्राप्ति के साधन में लगा दिया।

विवेकशाली पुरुष को महाराज परीक्षित के उदाहरण से बहुत कुछ शिक्षा मिल सकती है। महाराज परीक्षित को भगवत् प्राप्ति के हेतु प्रयत्न करने के लिये पूरे सात दिन का अवकाश मिला था, परन्तु साधारण मनुष्य तो मिनट भर के लिये भी अपने जीवन का भरोसा नहीं कर सकता। न जाने किस समय उसके प्राण-पखेरू उड़ जायेंगे। उसे तो हर समय ही मृत्यु से सचेत रहना चाहिये और क्षण भर का समय भी भगवत् स्मृति के बगैर व्यर्थ नष्ट न करना चाहिये।

हम नित्य प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं कि नवजात शिशु, युवक तथा वृद्ध सभी एकाएक काल के मुख में प्रवेश करते हैं, ऐसी अवस्था में अधिक समय जीने की आशा करना और भगवत-भजन की इच्छा को कार्य के रूप में तत्काल परिणत न करके आगे के लिये टालते रहना भूलना नहीं तो क्या है? कबीर साहब ने कैसा अच्छा कहा है—

माली आवत देखिके, कलियां करें पुकार।
फूली फूली चुन लई, काल हमारी बार॥

उद्यान में फूलों को तोड़ने के साथ माली को आते देख कर अधखिली कलियां शोर मचाने लगती हैं और एक दूसरी को चेताती हैं कि निर्दयी माली ने चटके हुए फूलों को तोड़ लिया। कल हमारा भी यही हाल होगा।

इस संसारोद्यान में कालरूपी माली नित्य अपनी झोली भर कर ले जाता है। हमारे लिये भी उसकी झोली में कोई स्थान अवश्य निश्चित है। न जाने किस समय हमें उसकी झोली में प्रवेश करना पड़े। उसका ढंग तो निराला है। वह जब किसी को लेने आता है, पहले से कोई सूचना भी नहीं भेजता। उसे इस बात का भी कुछ ख्याल नहीं होता कि, हम उसके साथ जाने के लिये प्रस्तुत हैं या नहीं। हमने संसार में कौन कौन से कार्य कर लिये हैं

और कौन से करने बाकी हैं - इन बातों का वह कभी विचार नहीं करता। इसीलिये मनुष्य-जीवन की असारता को प्रकट करते हुए पुनः कबीर दास ने कहा है

पानी केरा बुदबुदा, अस मानुष की जात।
देखत ही छिप जायगा, ज्यों तारा परभात॥

अतः आज से ही "भागवत" के प्रत्येक पाठक को चाहिये कि वह श्रीगुरुदेव की कृपा प्राप्त करने की चेष्टा करें और उनके बतलाये हुए भगवत्-प्राप्ति के साधनों में तन मन-धनसे लग जाय। इस सम्बन्ध में और अधिक टालमटोल न करें। ऐसा न हो कि इसी प्रकार करते करते मृत्यु आ झपटे और कबीर के शब्दों में पश्चात्ताप करना पड़े कि हाय---

रात गवाँई सोय कर, दिवस गवाँया खाय।
हीरा जनम अमोल था, कौड़ी बदले जाय॥

क्योंकि अन्त समय पश्चात्ताप करने से फिर क्या हाथ आयगा?

आछे दिन पाछे गये, हरि से किया न हेत।
फिर पछताये होत क्या, चिड़ियाँ चुग गईं खेत॥

"वास्तव वस्तु और बाहरी रूप"

(श्रीयुत भागमंगल प्रसाद अग्निहोत्री-लिखित)

महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्य और राय रामानन्द के सम्वाद में कई प्रकार के साधन वैधी और कई रागानुग बतलाये गये हैं। वैधी (विधि के अन्तर्गत) साधनों में भी अनेक भेद बतलाये हैं। सच्चे साधन की सत्यता इसी बात पर निर्भर करती है कि साधक ने साधन-पथ में कितनी उन्नति की है। यदि कोई व्यक्ति साधन-पथ में नियुक्त हो वैधी साधन के अंगों का पालन करे पर उन्नत अवस्था के साधक का अनुकरण करे, तो वह शास्त्र में बताये हुए वैधी साधन-पथ से भी भ्रष्ट हो जाता है। ऐसा अनुकरण-कारी साधक सच्ची भगवत्-सेवा से वंचित होकर बहिर्मुखता को ही प्राप्त करता है। सच्ची भगवत्सेवा अधोक्षज भूमिका में प्रारम्भ होती है। परन्तु बद्ध जीव भगवत् प्राप्ति के लिये साधन-मार्ग में प्रवेश करने के साथ ही अधोक्षज भूमिका को प्राप्त नहीं करता। वैकुण्ठ में भगवत्-सेवा प्राप्त करने के पहले साधक को चौदह भुवन, विरजा और ब्रह्मलोक को अतिक्रम करना होगा। साधक का अपने आत्मिक स्वरूप का ज्ञान इसी परिमाण में होता है, जिस परिमाण में वह भक्तिलता के बीज को, जिसको वह श्रीगुरु-भगवत्कृपा से सद्गुरु से प्राप्त करता है, अपनी बद्धावस्था में श्रवण-कीर्त्तन-वारि से सींच कर अपने लक्ष्य वैकुण्ठ की ओर वापस जाता है। साधक को बद्धावस्था में अनेक पूर्व-जन्मों में प्राप्त भगवत्-विमुखता के कारण साधनपथ में उन्नति करने में बहुत कठिनाइयाँ होती हैं। अपने संचित भगवत् विमुखता के कारण साधक अपने अनुभवों पर भरोसा रख सद्गुरु के बताये पथ पर चल कर अपनी बाधाओं को अतिक्रम नहीं कर सकता। जब तक साधक उन बाधाओं के अधीन रहता है, तब तक भगवत्-सेवा के गुप्त रहस्य में उसका प्रवेश नहीं होता है।

भगवत्-सेवा की बाधाएं अनेक प्रकार की होती हैं, जिन में क्रमशः तीन मुख्य हैं (१) निरीश्वरवाद(२)

संदेहवाद (३) मायावाद। चौदहों भुवन के पथिक लोगों में निरीश्वरवाद या भगवत् सेवा में स्वाभाविक विमुखता कम या अधिक पायी जाती है। उन जीवों की कुल कारवाइयां शास्त्रों में 'कर्म' नाम से विदित हैं जो स्थूल या सूक्ष्म इन्द्रियों की तात्कालिक प्रसन्नता के लिये की जाती है। ऐसा कर्म शुद्ध भक्ति के सिद्धान्तों से विरुद्ध है। इन सिद्धान्तों को समझने के लिये विशेष आलोचना की आवश्यकता है। इन्द्रियां ग्यारह हैं। पांच कर्मेन्द्रियां, पांच ज्ञानेन्द्रियां और मन। पांचों कर्मेन्द्रियां जड़ जगत् के विषयों से सम्बन्ध प्राप्त कर ज्ञानेन्द्रियों को सभी प्रकार से उत्तेजित होने के लिये विषय प्रदान करती हैं। मन के अनुशासन से ज्ञानेन्द्रियां संसारी असद् वस्तुओं से मेल मिलाप करती हैं। इन्द्रियों की कुल कारवाइयों का मुख्य नायक मन ही है। और बुद्धि---जिसका पद मन से बड़ा है, वह भला या बुरा निश्चय कर आज्ञा देनेवाली है। अहंकार--जिसके द्वारा मनुष्य जड़-वस्तुओं के साथ विशेष रूपसे संबद्ध जान पड़ता है बुद्धि से उसकी ऊंची अवस्था है, जो आत्मा को आवृत रखनेवाली वस्तु है। अहंकार के ऊपर चित्त (महत्तत्व) है। उसके भी ऊपर प्रकृति या वह शक्ति है जो आत्म-विरुद्ध कार्य करने की योग्यता रखती है। जो लोग जड़ जगत् के विषयों के भोग या त्याग को ही अपना ध्येय समझते हैं, उनकी उपर्युक्त सारी अनात्म सामग्रियां अपने-अपने कामों में पूर्णरूप से नियुक्त हैं। उन्हीं को शास्त्रीय कर्म कहते हैं। शरीर और मन के द्वारा चौदहों भुवनों में नाना प्रकार के कर्म किये जाते हैं। पर मनुष्य अहंकार के वश समझता है कि मैं ही सम्पूर्ण कर्मों का करने-वाला हूँ और संसार मेरी भोग्य-वस्तु है। उसकी ऐसी समझ कृष्ण के पूर्ण आधिपत्य को पूर्णरूप से इनकार करना है। इन्द्रियों की कारबारी की निरर्थकता अनुभव होने पर संदेह-वाद का आरम्भ होता है। विरजा के किनारे भोग तथा त्याग की बुद्धि लीन हो जाती है। ऐसी अवस्था को बुद्ध सम्प्रदाय के वर्तमान विचार के अनुसार बहुत उच्च अवस्था कही जाती है। ब्रह्मलोक की उच्च अवस्था में, आत्मा का नाश हो जाता है। उस अवस्था में मोह को प्राप्त जीव यह समझता है कि अपनी सत्ता का नाश कर देना ही कर्मों की चरम सीमा है। यह जीव की काम करती हुई वर्तमान सत्ता (भगवत्-सेवा) के विरुद्ध युद्ध है। शंकर के सिद्धान्त की यही चरम-सीमा है। निरीश्वरवादी, संदेहवादी और मायावादी तीनों भगवत्-सेवा से वञ्चित रह कर अलग-अलग रास्ते पर चलते हैं। इसका कारण यह है कि सत्य के अनुसन्धान में मूर्खतावश अपनी बुद्धि पर पूर्ण भरोसा करके उनका विचार चित्त के आगे नहीं जाता है।

शरणागति ही भगवत्-सेवा है। कर्म, ज्ञान इत्यादि शरणागति को भुलाकर अपने बल और उत्साह पर भरोसा करने की सलाह देना है। यदि हम इच्छापूर्वक अधोक्षज भगवान् की शरण न लें तो हमलोग अवास्तव चेतन के द्वारा प्रकृति की शरण लेंगे जिसके द्वारा हम अपने (आत्मा) को भूल कर 'हम शरीर या मन ही हैं' ऐसे मिथ्याभिमान को प्राप्त करेंगे। हम लोग माया के फंदे से छुटकारा पाने की पूर्णरूप से कोशिश करने के साथ ही छुटकारा पा जाते हैं, यदि दृष्टि मायावाद या संदेहवाद के तरफ न हो। शास्त्र में बताये गये साधन हमलोगों को क्रमशः जड़ जगत्, विरजा तथा ब्रह्मलोक होकर बैकुण्ठ के तरफ ले जाता है, क्योंकि

अधोक्षजसेवा वैकुण्ठ-भूमिका में ही होती है। लेकिन इस प्रकार की सेवा अत्यन्त आवश्यक है जिस के द्वारा बद्ध जीव ब्रह्मलोक को पार होकर वैकुण्ठ लोक को पहुंचता है और भगवान की वास्तव-सेवा को प्राप्त करता है।

वैकुण्ठ के तरफ की वापसी सफर नीचे बताये हुए सोपानों के द्वारा होती है। वैकुण्ठ में वापस जाने की पहली सीढ़ी श्रद्धा है। श्रद्धा का अर्थ वह पूर्ण विश्वास है कि कृष्ण की सेवा करने से ही मनुष्य का कुल कर्त्तव्य-पालन हो जाता है। किसी कारणवश किसी व्यक्ति के हृदय में ऐसा दृढ़ विश्वास पैदा होने से ही वह स्वयं नम्रता के साथ कृष्ण के शुद्ध भक्त अर्थात साधु का संग करता है। ऐसे सत्संग से वह साधन पथ में प्रवेश करता है। साधन-पथ में रहने से वह साधक सांसारिक विषयों से अलग होता है। इसके उपरान्त क्रमशः निष्ठा, रुचि, आसक्ति, भाव और कृष्ण-प्रेम को प्राप्त करता है। जब तक वासना पूर्ण रूप से नाश नहीं होती, तब तक साधनकाल है। ऐसी अवस्था में साधक के पतन होने की पूरी सम्भावना रहती है। वह कृष्ण की कृपा से सच्चे साधु के पूर्ण आनुगत्य में रहने के कारण और उनमें पूर्ण विश्वास रखने के कारण सिद्धान्त से सम्बन्ध-विशिष्ट रहता है। इस प्रकार साधक इच्छा-पूर्वक विवेक से सच्चे साधु के बताये हुए वैकुण्ठ-प्राप्ति के पथ को स्वीकार करने की योग्यता प्राप्त करता है और शास्त्र में बताये हुए साधनों को विधिपूर्वक अपनाते हुए उनके गुप्त रहस्य का प्रत्यक्ष करता है। जब तक सच्चे साधु की कृपा से साधन का गुप्त रहस्य प्रगट न हो, तब तक आत्म-ज्ञान के पथ पर अग्रसर होता हुआ नहीं कहा जा सकता और जब उसे गुप्त रहस्य प्रगट कराया भी जाता है तो उसके साथ ही साथ उसे रागानुग-साधन का अधिकार प्राप्त नहीं होता। वैधी और रागानुग साधन का भेद तब तक कायम रहता है जब तक साधक के हृदय से विषय-भोग की चेष्टा नाश नहीं होती और उसका शरीराभिमान नहीं जाता। शुद्ध भक्त के पूर्ण आनुगत्य में भगवत-नाम ग्रहण करने से जिस परिमाण से असत्-तृष्णा कम होती है उसी परिमाण में साधक को अपराध-रहित भगवत्-नाम की स्फूर्ति होती है। वैकुण्ठ-भूमिका प्राप्त होने से वैकुण्ठ नाम ग्रहण करने की विचित्रता अनुभूत होती है। वैकुण्ठ नाम की सेवा श्रवण और कीर्त्तन के द्वारा ही सम्भव है। साधक दीनता के साथ साधु के मुख से नाम श्रवण कर अपराधरहित नाम ग्रहण करने की योग्यता प्राप्त करता है। साधन की यही चरम-सीमा है। वास्तव वस्तु नाम और उनके शुद्ध भक्त हैं। संसार में भक्ति के वैधी साधन जितने हैं उनका मूल्य उसी परिमाण में होता है जिस परिमाण में उन साधनों से नाम और उनके शुद्ध भक्तों की सेवा होती है। परन्तु नाम और उनके शुद्ध भक्त की सेवा तब तक सम्भव नहीं है, जब तक साधक शुद्ध भक्त के पूर्ण आनुगत्य में श्रवण या कीर्त्तन में तत्पर नहीं होता। यदि साधक अपने कुल कामों में शुद्ध भक्त के पूर्ण आनुगत्य स्वीकार न करे, तो वह अपराध-रहित-शुद्ध नाम न तो श्रवण कर सकता, न कीर्त्तन ही कर सकता है। पंचरात्र में बताये हुए अर्चन से कुछ लाभ नहीं होता यदि वह शुद्ध भक्त के आनुगत्य में न किया जाय, शुद्ध भक्त साधक नहीं हैं, परन्तु भगवत्-

पार्षद हैं। वैकुण्ठ-भूमिका में नाम और नामी में भेद नहीं है। परन्तु जब तक स्थूल या सूक्ष्म शरीर रहता है तब तक जीवात्मा नाम-नामी का भेद नहीं भूलता है। यदि नाम ग्रहण करनेवाला साधक नाम और भगवान् को एक ही नहीं समझता, तो उसका साधन एक बाहरी क्रिया-मात्र है। यह अवस्था प्रायः सभी साधकों की हुआ करती है। यदि इसी बाहरी साधन को वैकुण्ठ-नाम से तुलना की जाय, तो वास्तव वस्तु की श्रेष्ठता के प्रति घोर अपराध हो जाता है। बाहरी साधन के असत रूप को वास्तव वस्तु के साथ बराबरी करना या दोनों को एक ही समझना अथवा वास्तव वस्तु और बाहरी साधन के रूप को एक ही समझना मुनासिब नहीं है। रागानुग भजन की पूर्ण श्रेष्ठता को किसी प्रकार कम नहीं करना चाहिये। अपराध-युक्त कृष्ण-नाम करनेवाले साधक वास्तविक नाम-भजन की पराकाष्ठा को नहीं समझ सकते। जब तक साधक अपने सम्पूर्ण कार्यों में साधु के पूर्ण आनुगत्य को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं है, तबतक उसको आत्मज्ञानप्राप्ति के पथ में अग्रसर होने की कोई सम्भावना नहीं है। साधक के साधन पथ को मुक्त पुरुष के भजन के साथ एक समझना भूल है। साधक के जितने साधन हैं वे परिवर्तनशील भूमिका में होते हैं। यदि वे साधन वैकुण्ठ नाम ग्रहण करने वाले शुद्ध भक्तों की सेवा के प्रति किये जायें तो उनके प्रति उदासीन होना उचित नहीं है। वैधी साधक की सेवा वास्तव-सेवा प्राप्त करने के सोपान का काम करती है। परन्तु यह याद रखना उचित है कि किसी भी अवस्था में रागानुग-सेवा और वैधी सेवा एक नहीं है। वैकुण्ठ-भूमिका में भी रूप से नाम की श्रेष्ठता है। वहां भी नाम के द्वारा रूप का दर्शन होता है। वास्तव वस्तु पूर्णरूप से नाम ही में अवस्थित है। वास्तव वस्तु की श्रेष्ठता मायावाद के विचारों से पूर्णरूप से रक्षित है। जब तक बद्ध अवस्था बनी रहती है तब तक पूर्णरूप से शब्द ब्रह्म (नाम संकीर्त्तन) का आश्रय लेना आवश्यक है, जिसके द्वारा शास्त्रों में बताये हुए रागानुग भजन की भूमिका प्राप्त करने की योग्यता होती है या महाजनों के बताये हुए साधन-पथ पर चलने की योग्यता होती है उस अवस्था में भी जितने साधन किये जाते हैं वे शुद्ध भक्ति के सहायक मात्र हैं। जब तक जीव असत-तृष्णा से मुक्त न हो जाय तब तक उस के लिये कृष्ण के भेजे हुए नित्यमुक्त शुद्ध भक्त को जानना असम्भव है जो कि जीव के कल्याण और गुरु परम्परा कायम रखने के लिये जगत में अवतीर्ण होते हैं। जीव को उद्धार करना कृष्ण का काम है, वे इस कार्य को नित्य पार्षद के द्वारा सम्पादन करवाते हैं, जो भगवान के प्रकाशविग्रह होते हैं और साधारण जीव से श्रेष्ठ हैं। पार्षद के नाम, रूप, गुण, लीलादि भेद रहित हैं। उनके मुखार-विन्द से निकले नाम को श्रद्धा के सहित श्रवण और कीर्त्तन करने के अतिरिक्त और किसी उपाय से उनके समीप कोई नहीं पहुंच सकता है। यदि उनको और किसी उपाय से जानने का प्रयत्न किया जाय, तो वह मनुष्य कृष्ण के त्रिगुणात्मक मायाशक्ति के अधीन होकर साधन के बाहरी रूप के फंदे में पकड़ा कर उसी में भूला हुआ रह जायगा।

—:❀०❀:—

बद्ध जीव का रोग, निदान और चिकित्सा

जीव दो प्रकार के होते हैं, बद्ध और मुक्त, परन्तु दोनों ही भगवान के विभिन्नांश हैं। जो सब जीव नित्यकाल कृष्णपादपद्म-सेवोन्मुख हैं वे नित्य-मुक्त और जो सब कृष्ण से वहिर्मुख होकर नित्यसंसारचक्र में वहिरङ्गाशक्तिमाया-द्वारा दण्डित होकर नरक इत्यादि का दुःख भोग करते हैं वे सब जीव नित्य-बद्ध हैं। श्रीमन्महाप्रभु के सिद्धान्त से हमलोग जानते हैं कि,—

"जीवेर 'स्वरूप' हय कृष्णेर नित्यदास।
कृष्णेर 'तटस्था शक्ति' भेदाभेद प्रकाश॥"

सर्वेश्वरेश्वर व्रजेन्द्रनन्दन ही एकमात्र प्रभु एवम् आराध्य हैं। ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, और महर्षियों के साथ देवतागण भी भगवान् के श्रीचरण कमल की सेवा में मस्त हैं। अतएव देवतागण या जीवगण कृष्ण के नित्यदास हैं। ये सब विभिन्नांश जीव दो स्थानों में रहते हैं, जिनमें एक का नाम चिज्जगत् और दूसरे का नाम मायिक जगत है। समुद्र के जल भाग एवं स्थल भाग के मिलने के स्थान को 'तट' कहा जाता है। जीवात्मा चिद्वस्तु (चेतन पदार्थ) है। वह चिज्जगत् और मायिक जगत् के मिलन के स्थान अर्थात सन्धि स्थलमें अवस्थित होकर दोनों स्थानों को देखता है। इसलिये जीव को कृष्ण की तटस्थाशक्ति कहते हैं। बृहदारण्यक उपनिषद् में जो जीवात्मरूप पुरुष का चिज्जगद्रूप जाग्रतावस्था, जड़जगद्रूप, सुषुप्तावस्था एवं दोनों के सन्धिस्थान तटस्थरूप स्वप्नावस्था तीनों प्रदर्शन किये हैं, वे इस—"तस्य वैतस्य पुरुषस्य द्वे एव स्थाने भवत इदञ्च परलोक स्थानञ्च सन्ध्यं तृतीयं स्वप्नस्थानं। तस्मिन् सन्ध्ये स्थाने तिष्ठन्नेते उभे स्थाने पश्यतीदञ्च परलोक स्थानञ्च" अर्थात् जीवात्मा के दो स्थान हैं— इहलोक और परलोक। जाग्रत और सुषुप्ति के सन्धिरूप 'स्वप्नस्थान' तृतीय है। जीवात्मा सन्धिरूप तृतीय स्थान में रहकर जाग्रद्रूप परलोक और सुषुप्तिरूप इहलोक इन दोनों स्थानों को देखता है। तटस्थावस्था को प्राप्त जीवगण अपनी स्वतन्त्रता का दुरुपयोग करके मायिक संसार की विचित्रता में मुग्ध होकर कृष्ण से वहिर्मुख हो जाते हैं और कृष्ण से पृथक् मायिक वस्तु में आसक्त हो जाते हैं। यही कृष्णेतर (कृष्ण से पृथक) द्वितीयाभिनिवेश (विषय अथवा अन्य पदार्थ में मनोयोग) ही भवरोग है। अद्वयज्ञान (भगवत् ज्ञान) के अभाव के कारण स्वतन्त्रता ही जीव को इस प्रकार से जन्ममृत्युरूप भवरोग ग्रस्त करके नाना प्रकार के रोग, अनुचित और अवाञ्छनीय व्यापार में प्रवेश कराकर भय उत्पादन करता है। भगवत्-माया रूपी वहिरंगाशक्ति चिच्छक्ति की उपलब्धि का आवरण (ढक) कर इस प्रपञ्च में जीवगण को भोगी बना देती है, मूल आश्रयविग्रह का कायव्यूह (अंश) स्वरूप श्री गुरुपादपद्म की उपलब्धि से वञ्चित करके दण्ड्य के तौर पर आबद्ध करती है। उस अवस्था में जीव को स्वरूप में अवस्थान करने की स्मृति उदित नहीं होती। अद्वयज्ञान के अभाव से माया-शक्ति की क्रियाएं प्रेम-धर्म नहीं समझने देती है। धर्म-अर्थ-काम के क्षणिक माधुर्य को देख कर जीव औदार्य विग्रह श्री आचार्य के चरणारविन्द में विमुखता प्रदर्शन करता है। सुतरां नित्य-माधुर्य के विलास-विक्रम के प्रति उदासीनता दिखलाना ही उसका धर्म हो जाता है। भगवन्माया की विक्षेपात्मिका और आवरणी वृत्ति, अपने स्वरूप को भूले हुए जीव को,

संसारचक्र (आवागमन) में भ्रमण कराता रहता है, उस समय उसका सम्पूर्ण कल्याण लुप्त हो जाता है। जिस समय वह अहंकारवश अथवा भोग प्रवृत्ति के अधीन होकर नश्वर वस्तु को प्राप्त करने के लिये दौड़ने के योग्य नहीं रहता है, उसी समय उसको मुण्डक उपनिषद् के "[illegible]" इत्यादि मन्त्रों द्वारा उद्दिष्ट (निष्कलाग्र तृष्णा) विषय हृदय पर अधिकार करके ईशसेवोन्मुखता की ओर रुचि प्रदर्शन करता है। उसी समय ज्ञान सम्पन्न जीव भगवदभिन्न आश्रय जातीय श्री गुरु विग्रह (अङ्ग) में श्रद्धान्वित होकर उनकी सेवा करते करते भजनराज्य में प्रवेश करते हैं। अतिशय भाग्यवान पुरुषों को श्री भगवान की आवरणी तथा विक्षेपात्मिका दो शक्तियों के [illegible] अन्धकार से मुक्ति प्राप्त होती है [illegible] ज्ञान-निर्मल भक्ति का आश्रय लेकर भगवत् सेवोन्मुख होने का सुयोग उपस्थित होता है। उस समय वे भगवत्-विस्मृतिरूप रोग से निर्मुक्त होकर प्राकृत जगत को भी भगवत् सेवोपकरण समझ कर तदनुकूल प्रसन्नता प्राप्त करते हैं। उस समय वे आध्यात्मिक ज्ञान से रूपरसादि विषयों में मुग्ध या आकृष्ट न होकर श्रीगुरुदेव के दिये हुए दिव्यज्ञान से श्रीकृष्ण के अङ्ग के रूप-गुण-सौरभाकर्षणोपलब्धि कर सकते हैं। जो बुद्धिमान लोग "लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं" श्लोक के अर्थ को जान कर श्रीगुरुपादपद्म को सम्पूर्ण मङ्गल का ढेर जान कर, सम्पूर्ण रोग नाशक निदान स्वरूप आश्रयजातीय मुकुन्दप्रिय भगवत्-अभिन्न विग्रह या सरल शब्दों में अत्यन्त कृपालु कह कर भूलोक में अवतीर्ण गोलोकवासी-सेवक कृष्ण कह कर निःसन्देह विख्यात हैं, उन्हीं की अत्यन्त निमग्न देश-सेवा प्रबल होकर अभक्तिपथ से विचरण करने की आशङ्का के हाथ से विमुक्त होता है। गुरुपादपद्म रूप श्रौतपथ परित्याग करने से बाहर के सजीव संसार में अनेक पथ हैं या भिन्न भिन्न पथ में कामनायुक्त होकर भी अभीष्ट सिद्ध हो सकता है, प्रयोजन तत्व के विषय में इस प्रकार अत्यन्त भयानक भ्रान्ति प्रदर्शन करते हैं। [illegible] सब अश्रौतपथ का विचार [illegible] और अद्वयज्ञान के [illegible] हैं।

सांसारिक [illegible] लोग अपने दुष्प्रवृत्ति के कारण, [illegible] ही एकमात्र स्वार्थ देने वाले हैं इस [illegible] पञ्चोपासना प्रभृति नाना [illegible] करते हैं। इस से केवल [illegible] होता है। उन सभी-कामुकों के निकट कृष्ण-प्रेम अत्यन्त दुर्लभ पदार्थ है। मुकुन्दप्रिय श्रीगुरुदेव के चरणारविन्द प्राप्त करने वाले लोगों की कृष्णशक्ति उनकी माया की दोनों शक्तियों (विक्षेपात्मिका और आवरणी) से छुटकारा दिला देती है। वे लोग अनायास भवरोग से निष्कृति प्राप्त करके वैकुण्ठ प्रतीति में अवस्थित होते हैं। किन्तु श्री श्री आचार्य-पादपद्म में अपराध होने से भगवद्विमुखतारूप [illegible] रोगरूप में उदित होकर जीव को कल्याण के मार्ग से हटा कर भोग एवं भोग-त्याग राज्य में ले जाते हैं। इस कारण धीर या बुद्धिमान् व्यक्ति श्री गुरुदेव के आनुगत्य में हर समय शुद्ध सेवा में नियुक्त होने का अधिकार प्राप्त करते हैं। वे लोग प्रापञ्चिक श्रेयः विचार का समर्थन नहीं करते। उस समय वे रोग मुक्त जीवगण परव्योम में वैकुण्ठ-धर्म में अवस्थित होकर

सम्पूर्ण इन्द्रियों के द्वारा हृषिकेश की नित्य सेवाधिकार रूप स्वास्थ्य प्राप्त करते हैं।

जीव का यह अनादि बहिर्मुखता रूप भवरोग केवल स्थूल देह और सूक्ष्म मन के ऊपर ही काम करता है ऐसी बात नहीं है, इसी लिये उसके (भवरोग के) निदान वा चिकित्सा की प्राप्ति एकमात्र अधोक्षज वासुदेव की अहैतुकी कृपा के ऊपर ही निर्भर करती है, जो कृपा अन्तरङ्ग मार्ग [illegible] से इस प्रबन्ध में प्रकट [illegible] ब्रह्माण्ड के चिन्तास्रोत से उत्पन्न हुआ निदान वा चिकित्सा इस भवरोग के नाश होने में [illegible] रूप से असमर्थ होने पर कृष्ण ही [illegible] रूप से कृष्णज्ञानदाता होकर माया के [illegible] करते हैं। वे वेद वेदान्त या वेदान्त के [illegible] भाष्य अमल पुराण श्रीमद्भागवत रूप से, भागवत-श्रेष्ठ श्रीमुकुन्दप्रिय श्रीआचार्यरूप से और अन्तर्यामी चैत्यगुरु रूप से, "कृष्ण ही एक मात्र प्रभु और रक्षक हैं" -यह दिव्यज्ञान दान करते हैं। श्रीश्रीचैतन्यचरितामृत हम लोगों को इस निदान या चिकित्सा के विषय में कहते हैं:--

कृष्ण भुलि सेइ जीव-अनादि-बहिर्मुख।
अतएव माया तारे देय संसार दुःख॥
कभु स्वर्गे उठाय, कभु नरके डुवाय।
दण्डयजने राजा येन नदी ते चुवाय॥
माया मुग्ध जीवेर नाहि कृष्ण-स्मृति-ज्ञान।
जीवेरे कृपाय कैला कृष्ण वेद-पुराण॥
शास्त्र-गुरु-आत्मरूपे आपनारे जनान।
'कृष्ण मोर प्रभु, त्राता'-जीवेर हय ज्ञान॥
साधु-शास्त्र-कृपाय यदि कृष्णोन्मुख हय।
सेइ जीव निस्तरे, माया ताहारे छाड़य॥

अतएव मुझ जैसे पतित, मायामुग्ध, कृष्ण-स्मृति-ज्ञान शून्य, जीव के अनादिबहिर्मुखतारूप रोग के नाश होने के लिये या सम्पूर्ण इन्द्रियों के द्वारा हृषीकेश की सेवा रूपी स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिये एकमात्र उपाय सम्प्रति जगत में प्रकट जगद्गुरु श्रीमुकुन्दपार्षद, पतितपावन आचार्य-पाद पद्म के अतिरिक्त और-क्या है? हे मेरे [illegible] तुम्हारे दोनों चरणों को पकड़ दीन स्वर से [illegible] यह प्रार्थना करता है कि वेद में [illegible] की अत्यन्त प्रशंसा या अधर्म कह कर [illegible] निन्दा की जाती है, वे सम्पूर्ण धर्मा-धर्म [illegible] औदार्य-लीलामयविग्रह श्री चैतन्य-महाप्रभु ही [illegible] उदार स्वरूप श्रीधाम में [illegible] परित्याग कर श्रीधामवासीगणों के [illegible] करते हुए उन श्रीशचीनन्दन और नन्दनन्दन में अभेद बुद्धि से श्रीमन्महाप्रभु के [illegible] हो। श्रीमुकुन्दप्रिय गुरुपादपद्म पतित [illegible] उद्धार करने के लिये संसार में प्रकट हुए हैं। तुम अपना कुशल चाहो तो उन्हीं को एकमात्र गति जानकर उनके श्रीचरणों को पकड़ कर सर्वदा उनके आदेश को स्मरण कर के हृद्रोग को आराम करके चिद्बल से बलवान हो। अन्त में मनःशिक्षामृत का गान कर आत्मशोधन करें।

याचि मन धरि तव पाय।

धर्माधर्म परिहरि, व्रजभूमे वास करि, रत हउ युगल सेवाय॥

श्री शचीनन्दन धने, श्री नन्दनन्दन सने, एक करि करह भजन।

श्री मुकुन्दप्रियजन; गुरुदेवे जान मन, तोमा लागि पतित पावन॥

जगते प्रकट ताइ, ताँहा विना गति नाइ, यदि चाह आपन कुशल।

ताहार चरणे धरि, तदादेश सदा स्मरि, पतित सेवके देह बल॥

विविध—संवाद

ठाकुर भक्तिविनोद गोस्वामी का शत वार्षिक महोत्सव

ठाकुर भक्तिविनोद के प्रगट काल के सौ वर्ष पूर्ण हो गये । अतएव कलकत्ते के श्रीगौड़ीय मठ (बाग बाजार) में दो महीने तक उनकी चरितावली की आलोचना करने के लिये [illegible] जुलाई से ८ सितम्बर निश्चित किया गया है ।

इस सम्बन्ध में उनके पवित्र जीवन की दो चार घटनायें यहां प्रकाशित किये जाते हैं ।

ठाकुर भक्तिविनोद १८३८ ई० के दूसरी सितम्बर को पृथिवी पर प्रगट होकर [illegible] से १९१० साल तक सनातन भक्ति धर्म का प्रचार किये थे, और इस प्रचार के उपयोगी किताबें भी रची थीं जिसके द्वारा श्रीचैतन्यमहाप्रभु की शिक्षा आधुनिक युग के लिये सहज हो सुबोध हुआ है ।

ठाकुर भक्तिविनोद ने हमलोगों को यह शिक्षा दी है कि प्रकृत धर्मजिज्ञासा के विषय एकमात्र सर्वतन्त्र स्वतन्त्र भगवान् कृष्णचन्द्र ही हैं । ठाकुर जी के इस उपदेशानुसार गौड़ीय मिशन के भक्तलोग उनकी गवेषणा, प्रचार-पद्धति और सिद्धान्तों का अनुसरण में ही आत्मनियोग किये हैं । भगवान् का ज्ञान प्राप्त करने के लिये श्रौत-वाणी की आवश्यकता है, जो एक गुरु से उनके शिष्य एवम् इसी क्रम से ब्रह्माजी से आ रहा है । उस ज्ञान को प्राप्त करने के लिये सद्गुरु की शरण लेनी चाहिये, अपनी इन्द्रियों की सहायता से भगवत् ज्ञान प्राप्त करना सम्भव नहीं है । पारमार्थिक गुरु की बातें अक्षर रूप में उनके शिष्यों के द्वारा प्रकाशित होती हैं । अपनी इन्द्रियों के सहारे जो ज्ञान प्राप्त किये जाते हैं वे भ्रान्त हैं, इसलिये भगवत्ज्ञान प्राप्त करने के लिये श्री गुरुचरण में शरण लेकर उनके मुखारविन्द से उनकी बातें सुननी होती हैं । इसी को श्रौतपन्था कहते हैं । वह श्रौतपन्था की बातें ठाकुर जी ने ऐसी ही बताई हैं—

कृष्णचन्द्र ही एकमात्र परम पुरुष तथा जगन्नाथ हैं, वह सर्वशक्तिमान और अखिलरस के आधार हैं । जीवगण तटस्थ धर्म के वश में हैं इस कारण बद्धदशा में मायाकवलित हैं, भगवत् भजन करने से मुक्ति होती है । यह विश्व भगवान् के साथ भिन्न भी है और अभिन्न भी । भक्ति ही भगवान के साधन का उपाय है । और भगवत्प्रेम ही सब प्राणियों की प्रयोजनीय वस्तु है ।

ठाकुर भक्तिविनोद इस शिक्षा को ग्रहण करने का जो उपाय बताये हैं, उसको ग्रहण करना प्रत्येक बुद्धिमान व्यक्ति का कर्त्तव्य है ।

गया में झूलनयात्रा—महोत्सव

गत ६ अगस्त (१९३८) शनिवार से ११ अगस्त बृहस्पतिवार तक श्रीश्रीविश्ववैष्णवराजसभा की अन्यतम शाखा गया श्रीगौड़ीयमठ में श्रीराधाकृष्ण जी की झूलन यात्रा महोत्सव विशेष समारोह के साथ सुसम्पन्न हुआ । श्रीविग्रह का अपूर्व श्रृङ्गार दर्शन-योग्य हुआ था । प्रतिदिन असंख्य भद्र महोदय और महिलाएं विग्रह-दर्शन कर और हरिकथा सुनकर आत्म मङ्गल का सुयोग लाभ कर परमानन्दित हुई थीं

पटना श्रीगौड़ीयमठ में झूलन-यात्रा महोत्सव

गत ६ अगस्त (१९३८) शनिवार से ११ अगस्त बृहस्पतिवार तक श्रीश्रीविश्ववैष्णवराज-सभा की अन्यतम शाखा पटना श्रीगौड़ीय मठ में श्रीराधाकृष्णजी का झूलन-यात्रा महोत्सव विशेष समारोह के साथ सुसम्पन्न हुआ। इस उत्सव के उपलक्ष में प्रतिदिन ब्राह्ममुहूर्त्त चार बजे से दस बजे रात तक मङ्गलारति, श्रीचैतन्यभागवत पाठ, श्रीमूर्ति का अर्चन, भोगारति, श्रीकृष्णनाम [illegible] आलोचना, श्रद्धावान श्रोतावृन्द के [illegible] प्रदान, सदाचार उपदेश, [illegible] चरितामृतपाठ, महाजन पदावली कीर्त्तन इष्टगोष्ठी आलोचना प्रभृति [illegible] हुआ था।

प्रथम दिवस संध्यारति के बाद श्रीमठ के अन्यतम सेवक पूज्यपाद श्रीपाद [illegible] दासाधिकारी जी प्रायः डेढ़ घंटे तक "श्री श्रीराधा-कृष्ण जी के अप्राकृत झूलन-दर्शन करने के अधिकारी कौन हैं?" "गौड़ीय मठ का प्रचार-विषय क्या है?"—प्रभृति विषय सम्बन्धी [illegible] में सरल भाषा में उपस्थित श्रोतावृन्द के निकट कीर्त्तन किये थे। झूलन के चतुर्थ एवं पंचम दिवस संध्या में हिन्दी 'भागवत' पत्रिका के सम्पादक त्रिदण्डि स्वामी भक्ति-भूदेव श्रौती महाराज ने श्रीचैतन्य चरितामृत की आदि-लीला से तृतीय एवं चतुर्थ परिच्छेद पाठ तथा हिन्दी भाषा में व्याख्या की थी। इस प्रसङ्ग में उन्होंने कहा था—कलियुग-पावनावतारी, युगधर्म प्रवर्त्तक श्रीमन्महाप्रभु [illegible] जो जगत को कभी दान नहीं किया गया था, वही सर्वश्रेष्ठ भक्ति-सम्पत्ति, [illegible] जी को दान करने के लिये कृपापूर्वक अवतीर्ण हुए थे।

स्वामी जी का व्याख्यान श्रवण कर समागत श्रोतावृन्द परमानन्दित हुए थे। इस उत्सव के अवसर पर बहुत से शिक्षित महोदय एवं भद्र-महिलाए श्रीमठ में आगमन पूर्वक श्रीविग्रह-दर्शन और पाठ-कीर्त्तन-श्रवण कर—आत्म-मङ्गल का सुयोग लाभ कर धन्यातिधन्य हुई थीं।

पटना में श्रीगौड़ीयमठ का नगर-संकीर्त्तन

गत १४ अगस्त को पटना में आचार्यदेव की कृपा तथा आशीर्वाद से एक विराट नगर संकीर्त्तन हुआ था। संकीर्त्तन-समाज में प्रायः एक सौ मनुष्य सैख, घंटा, मृदंगादि वाद्य-यंत्र और रंगीन पताकों से सुसज्जित थे। संकीर्त्तन समाज ४ बजे पटना गौड़ीय-मठ से कीर्त्तन करते हुए मीठापुर, खगौल रोड, पटना-गया रोड, गोलघर, मेन-रोड, बी० एन० दास रोड, होकर संध्या समय ७ बजे मठ में पहुंची थी जहां-तहां लोगों की बहुत भीड़ हो जाती थी और सभी लोग भगवन्नाम कीर्त्तन सुन कर परमानन्दित हुए थे। मठ में पहुँचते ही महाजन-पदावलि-कीर्त्तन हुआ और इसके बाद मठ के अन्यतम सेवक श्रीपाद राधारमण ब्रह्मचारी जी 'राग कुमुद' हिन्दी भाषा में 'नाम-संकीर्त्तन के सम्बन्ध में एक गवेषणापूर्ण व्याख्यान दिया था। व्याख्यान के बाद भी कीर्त्तन हुआ और समागत सज्जनवृन्दों को महाप्रसाद-वितरण किया गया था। ब्रह्मचारी जी धर्म-सम्बन्ध में हिन्दी में प्रतिदिन संध्या को शनिवार तक व्याख्यान देंगे।

SREE KRISHNA CHAITANYA

By Prof. N. K. SANYAL, M. A.

Late Senior Professor of History, Ravenshaw College, Cuttack.

A rational, scientific and comprehensive study, based on the SHRAUTA PATH, with a highly appreciative foreward by His Divine Grace Parmahansa Srimad Bhakti Sidhanta Saraswati Goswami with an Introduction containing full information for following the narrative of events, as well as with an Index and a Glossary Royal 8 vo 800 pages, handsome calico jacket—Price Indian Rs. 15/- ; Foreign 21 s. nett

To be had at **SREE GAUDIYA MATH,** Baghbazar, Calcutta.

SREE BRAHMA SAMHITA (Fifth Chapter)

With commentary by Sri Jeeva Goswami and translation and purport in English by His Divine Grace Sreemad Bhakti Sidhanta Saraswati Goswami.

First class calico binding—Rs. 2-8-0.

RELATIVE WORLDS

A lecture delivered on the 28th August 1932 at the Saraswati Assembly Hall of Sree Gaudiya Math, Calcutta by His Divine Grace Ans. 0-6-0

A few words on Vedanta by His Divine Grace—Ans. 0-8-0

The Vedanta its Morphology and ontology by His Divine Grace—Ans. 0-8-0.

THE BHAGBAT

Its Philosphy, Its Ethics and its Theology New enlarged edition with an appendix by Srila Prabhupad. Full calico bound—Rupee One Thick paper bound—Twelve Ans

---

(बंगला में)

श्रीमद्भागवतम्

महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यास—प्रणीत, मूल, श्रीमन मध्वाचार्यकृता तात्पर्य निर्णयटीका, श्रीमद् विश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठाकुर-कृत सारार्थदर्शिनी टीका, बंगानुवाद , संस्कृत अन्वय व प्रतिशब्द, तथ्य व विवृत्यादियुक्त। प्रति स्कन्ध के आरम्भ में उस स्कन्ध का प्रतिपाद्य कथासार, प्रत्येक अध्याय के प्रथम में उस अध्याय सार के साथ सुविस्तृत तात्पर्यादि विवृत है। श्लोकसूची, विषयसूची अध्याय-विवरण, पत्र व स्थान-सूची के साथ उत्तम कागज पर उत्तम अक्षर में मुद्रित। प्रथम से १२वां स्कन्ध तक छपा सम्पूर्णरूप से शेष हो गया है। भिक्षा प्रथम से १२वां स्कन्ध तक ४०), १०म स्कन्ध सम्पूर्ण बिना बंधा हुआ ८) और कपड़े की बंधाई ९) मात्र।

श्रीश्रीचैतन्यचरितामृत

श्रील कविराज गोस्वामीकृत। श्रीभक्तिविनोद ठाकर रचित 'अमृतप्रवाहभाष्य' व श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद-लिखित 'अनुभाष्य' श्रुति-स्मृत्यादि अनेक शास्त्र प्रमाण के साथ प्रकाशित हुए हैं। श्लोक की सान्वय व्याख्या, बंगानुवाद व प्रत्येक पयार के पूर्व संक्षिप्त अभिधेय संयोजित है। प्रत्येक अध्याय के आरम्भ में उसी अध्याय का कथासार लिखा हुआ है। श्लोक, पयार, शब्द, स्थान, पात्र का सुवृहत सूची व ग्रन्थकार की विस्तृत जीवनी—समन्वित इस तरह का अभूतपूर्व संस्करण इसके पहले कहीं भी प्रकाशित नहीं हुआ है। उत्तम कागज पर सजावट के साथ मोटे अक्षर में मूलांश मुद्रित हुआ है ग्रन्थ प्राय १५०० पृष्ठ में सम्पन्न है। भिक्षा बिना बंधा हुआ ६) कपड़े की बंधाई ७) मात्र।.

श्रीचैतन्भागवत

श्रीश्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद-रचित गौड़ीय भाष्य के साथ ग्रन्थ का आयतन—क्राउन ४ पेजी मूल १०१६ पृष्ठ, सुचीपत्र २४४ पृष्ठ—कुल १३४० पृष्ठ भिक्षा—६)मात्र (बिना बंधा

Regd. No. P. 468.

श्रील प्रभुपाद की पत्रावली—(तृतीय खण्ड)

आचार्य-प्रकट तिथि में श्रील प्रभुपाद की पत्रावली का तृतीय खण्ड प्रकाशित हुआ है । प्रत्येक पत्र विशेष शिक्षाप्रद व सारगर्भ उपदेश से परिपूर्ण है। हमलोग प्रत्येक मंगलकामी व सत्य का अनुसन्धान करनेवाले व्यक्ति को इस पत्रावली को पाठ करने का अनुरोध करते हैं।

श्रीचैतन्यदेव

श्रीचैतन्यदेव के आविर्भाव के पहले व बाद भारत व बंगाल की राजनैतिक अवस्था, अर्थ-नैतिक अवस्था, विद्या, साहित्य व समाजिक अवस्था, धर्मजगत की अवस्था, समसामयिक पृथिवी की अवस्था, नवद्वीप का परिचय व तथ्य और प्रमाणिक ग्रन्थ व विवरण समूह सहज व सरल भाव में साधारण के पढ़ने के योग्य वर्णन किया गया है। ग्रन्थ में अनेक चित्र व मानचित्र दिए गए हैं। सुन्दर जिल्द भक्त, साधारण व्यक्ति व विद्यालय के छात्र सभी के लिए यह ग्रन्थ उपयोगी व प्रीति देनेवाला होगा। भिक्षा १) । प्राप्तिस्थान—श्रीगौड़ीयमठ, पो० बागबाजार, कलकत्ता। श्रीमाध्वगौड़ीयमठ, पो० वांयारी, ढाका ।

सरस्वती जयश्री

गौड़ीय-वैष्णवाचार्य्य ॐ विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद का भुवन के मंगलदायक जीवनचरित ग्रन्थ है। निम्मनस्तर शुद्धभक्ति पिपासु व्यक्ति इस ग्रन्थ के पाठ से युगपत् अनेक शास्त्रग्रन्थ पाठ व अनेक साधुसङ्ग का फल लाभ कर सकेंगे। वैभवपर्व्व का प्रथम खण्ड रायल ८ पेजी आकार में एण्टिक कागज पर पर उत्तमरूप से मुद्रित, ३६० पृष्ठों में। विस्तृत सुचीपत्र के साथ इसमें अनेक चित्र भी दिए गए हैं। भिक्षा ४)

'सामयिक-संख्या'—गौड़ीय

सामयिक-संख्या गौड़ीय अनेक त्रिवर्ण व एकवर्ण चित्र-शोभित व अनेक श्रेष्ठ वैष्णवसाहित्यिकगणों की गवेषणापूर्ण प्रबन्ध से सुमण्डित होकर प्रकाशित हुई है। श्रीधाम-मायापुर में श्रीश्रीगौरजन्मोत्सव के उपलक्ष में सर्वसाधारणों के लिए भिक्षा ॥) आना ।

ठाकुर भक्तिविनोद

श्रीरूपानुगशुद्धभक्ति स्रोत के प्रवाह का मूल पुरुष ॐ विष्णुपाद श्रील ठाकुर भक्तिविनोद का जीवनचरित व शिक्षामाला बहुत सरल भाषा में बड़े बड़े अक्षरों में मुद्रित। भिक्षा ।॥) मात्र। प्राप्तिस्थान—कलकत्ता (बागबाजार) श्रीगौड़ीयमठ व ढाका—श्रीमाध्वगौड़ीय मठ ।

अणुभाष्यम्

चार अध्यायी ब्रह्मसुत्र के प्रत्येक अधिकरण का तातपर्य श्रीमन्मध्वाचार्य-कृत श्लोकाकार में बहुत संक्षेप में बना हुआ। बंगभाषा में सर्वप्रथम संस्करण। पहले प्रति अध्याय के प्रति पाद का श्रीमन्मध्वाचार्य-विरचित अणुभाष्यमूल, उसके बाद प्रति अध्याय के प्रति पाद का सूत्र-समूह, अणुभाष्य-मूल का बंगला अनुवाद व श्रीपाद राघवेन्द्र यतिविरचित तत्वमञ्जरी टीका, उसका बंगला अनुवाद व तातपर्य इस क्रम से पुस्तक मुद्रित हुई है। इसके अतिरिक्त मातृका क्रम से ब्रह्मसूत्र समूह, उसका अध्यायांक, पदांक व सूत्रांक के साथ सुचीपत्र भी संयोजित हुआ है। भिक्षा २) मात्र।

Printed by:— Brajeshwari Prasad, at The 'Indian Nation Press' and published by him from Sree Gaudiya Math, Mithapur, Patna.

भागवत

एकमात्र

पारमार्थिक

मासिक पत्र

५ पद्मनाभ
गौराब्द
४५२

आश्विन कृष्ण ५
संवत
१९९५ वि०

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥१॥

जिससे इन्द्रिय ज्ञानातीत श्रीकृष्ण में श्रवणादि-लक्षण। फलाभिसन्धान - रहिता एकान्तिकी स्वाभाविक निरपेक्षा भक्ति उदय होती है, वही मानव जाति का सर्वश्रेष्ठ धर्म है— उसी भक्ति के बल से अनर्थ उपशान्त होने से आत्मा प्रसन्नता लाभ करती है।

प्रति संख्या)॥ सम्पादक-त्रिदण्डि-स्वामी श्री भक्तिभूदेव श्रौती महराज वार्षिक ३)

Editor—Tridandiswami Sree Bhakti Bhudeb Shrauti Maharaj

विषय सूची

उद्देश्य

शुद्ध भगवद्भक्ति का प्रचार करना

प्रबन्ध-सम्बन्धी

(१) यह पत्र प्रति मास १५ तारीख को प्रकाशित होता है।

(२) इस पत्र की डाकव्यय सहित वार्षिक भिक्षा २) है।

(३) इस पत्र की प्रति संख्या की भिक्षा =)॥ है।

लेख-सम्बन्धी

लेखकों को केवल भागवत धर्म सम्बन्धी लेख ही भागवत पत्र में छपने के लिये सम्पादक "भागवत" के पता से भेजना चाहिये। जो लेख सम्पादक को पसन्द न होगा वह नहीं छापा जायगा और वापस भी नहीं किया जायगा।

विज्ञापन-सम्बन्धी

"भागवत" में विज्ञापन छपाई का दर नीचे लिखा है:—

साधारण पृष्ठ

प्रति संख्या

पूरा पृष्ठ या दो कालम	...	८)
आधा " "	...	५)
चौथाई " "	...	३)
२ इंच " "	...	१॥)
१ " "	...	१)

स्थायी विज्ञापन और कवर पर विज्ञापन छपाने का रेट नीचे लिखे पते पर पत्र-व्यवहार द्वारा तय करना चाहिये।

पत्र व्यवहार का पता—

मैनेजर—"भागवत"

श्री गौड़ीय मठ,

मीठापुर, पटना।

All communications are to be addressed to—

The Manager '*Bhagwat*'

SRI GAUDIYA MATH

Mithapur, Patna

श्री श्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः ॥



कृष्णे स्वधामोपगते धर्मज्ञानादिभिः सह । कलौ नष्टदृशामेषः पुराणार्कोऽधुनोदितः

श्रीगौड़ीय मठ, मीठापुर (पटना)

वर्ष ४ | संख्या ८

आश्विन कृष्ण ५, सं० १९९५ वि०, १४ सितम्बर सन् १९३८ ई०

भक्त-महिमा

जो सुख होत भक्त-घर आए;

सो सुख होत नहीं बहु संपति, बाँझहि बेटा जाए ।
जो सुख होत भक्त-चरणोदक पावन, गात लगाए
सो सुख सपनेहुँ नाहिं पैयत, कोटिन-तीरथ न्हाए ।
जो सुख भक्तन कौ मुख देखति, उपजत दुख बिसराए
सो सुख होत न कामहि कबहूँ कामिनि उर लपटाए ।
जो सुख कबहूँ न पैयत पितु-घर, सुत कौ पूत खिलाए
सो सुख होत भक्त बचननि सुनि, नैनन-नीर बहाए ।
जो सुख होत, मिलत-साधुन सौं, छिन-छिन रंग बढ़ाए,
सो सुख होत न नैकु 'व्यास' कौ लंक सुमेरहु पाए ।

——:*:*:——

"श्रीश्री गुरुदेव का अभिभाषण"

हरिभजन किसे कहते हैं, यह संसार के जीवों को समझा देना होगा। महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्य के दान की बातें प्रत्येक मनुष्य को जना देनी होगी। महाप्रभु ने कहा है—संसार को कृष्णकथा कहना। उन लोगों को माया की बातें कहने से वे सब जीव भोग वा त्याग में प्रमत्त रहेंगे।

श्रीमन्महाप्रभु ने कृष्णप्रेम प्रदान किया था, इसलिये उनको महावदान्य कहते हैं। वे संकीर्त्तन के पिता हैं, फिर हमलोग महाप्रभु को यों प्रणाम करते हैं:—

नमो महावदान्याय कृष्णप्रेमप्रदाय ते।
कृष्णाय कृष्णचैतन्यनाम्ने गौरत्विषे नमः॥

श्रीमन्महाप्रभु ने क्या दान किया था? उनको लोग महावदान्य (महाकृपालु) क्यों कहते हैं? वे सब से बड़े दानी थे, इसलिये कि उन्होंने हरिकीर्त्तन करने की शिक्षा दी है, कृष्णप्रेम दान किया है, कृष्णकथामृत वितरण किया है। हरिकीर्त्तन करने से जो सुनते हैं, उनका भी प्रचुर मङ्गल होता है, यही वदान्यता (कृपा) का श्रेष्ठ आदर्श है। हरिकथा पहले गुरुमुख से श्रवण करने से तब कीर्त्तन होगा। हे जीव! निरन्तर हरिकथा-कीर्त्तन करो। त्यागपन्थी होकर—निर्जन-भजन के बहाने चुपहोकर बैठ जाने से अमङ्गल होगा। जो हरिकीर्त्तन नहीं करेंगे, उनका सर्वनाश होगा। जो लोग हरिकीर्त्तन के बदले नामापराध करते हैं एवं चिल्लाकर पित्तवृद्धि करते हैं, वे निर्विशेषवादी होकर थियेटर, सिनेमा, टॉकी, ग्रामोफोन, पैसा कमानेवाले कथक, पाठक, वक्ता, पण्डित अथवा स्त्रैन एवं भक्ति रहित इतर विचारयुक्त व्यक्ति का संग करने या उनसे कथा सुनने से हरिकथा श्रवण का फल नहीं प्राप्त करते हैं। वे लोग कोई भी हरिकथा नहीं जानते। प्राकृत सहजिया (विषयी व्यक्ति) विषय कार्य और हरिकथा को एक ही समझते हैं। कृष्णभजन बड़ी वस्तु है। जिन्होंने कृष्ण की कृपा प्राप्त की है श्रीहरि ने उनका सर्वस्व हरण किया है। श्रीकृष्ण ने उनकी शेष आसक्ति के विषय को भी अपहृत किया है ऐसा समझना होगा। "यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः"। अर्थात् मैं जिस पर कृपा करता हूँ, उसका सर्वस्व धीरे धीरे हरण करता हूँ।

जय नामधेय मुनिवृन्दगेय
जनरञ्जनाय परमाक्षराकृते।
त्वमनादरादपि मनागुदीरितं
निखिलोग्रतापपटलीं विलुम्पसि॥

हे हरिनाम! मुनिवृन्द सर्वदा आपका कीर्त्तन करते रहते हैं, भक्तों के कल्याण के लिये आपने परम अक्षराकार रूप (अप्राकृत शब्दब्रह्म) धारण किया है। साङ्केत्य, परिहास, स्तोभ, हेला—इन चार प्रकार के नामाभास के साथ यदि आप को कोई उच्चारण करे तो उससे भी आप उस के सम्पूर्ण उत्कट ताप को—यहाँ तक कि सूक्ष्म शरीर का भी विनाश कर देते हैं। अतएव, हे नामधेय! आप की जय हो। श्रीहरिनाम उनके सेवकों के त्रिविध उग्रताप नष्ट कर देते हैं। तब सुख दुःख से विह्वल होने से हरिभजन करनेवालों की नहीं चलेगी।

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥

शारीरिक, मानसिक और सामाजिक क्लेश

उपस्थित होने से भी जिसका मन उद्विग्न नहीं होता, उन विषयों में सुख प्राप्त होने से भी जिसको स्पृहा (इच्छा) नहीं होती, एवं जो अनुराग, भय और क्रोध से विमुक्त है, वही स्थितधी अर्थात स्थितप्रज्ञ है। जो तत्काल सुखदुःख में विचलित नहीं होते, जो कृष्णकीर्त्तन करते हैं, उनको इतर चिन्ता नहीं होती है। रोग की चिन्ता करनी नहीं होगी। हरिसेवा नहीं करने से रोग होता है।

हरिकथा कहना ही जीवों के प्रति श्रेष्ठ दया है। कृष्णकीर्त्तन होने से कृष्ण का इन्द्रियतर्पण होता है। 'कीर्त्तन' कहने से नाम, रूप, गुण, लीला तथा परिकरवैशिष्ट्य (परिषद) का कीर्त्तन समझना होगा। कृष्णनाम तथा अन्य शब्दों को एक ही समझना महापराध है। हरिभजन के प्रतिकूल सम्पूर्ण विषय सदा वर्जनीय है। भजन के अनुकूल छः गुण प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है।

अत्याहारः प्रयासश्च प्रजल्पो नियमाग्रहः ।
जनसङ्गश्च लौल्यञ्च षड्भिर्भक्तिर्विनश्यति ॥
उत्साहान्निश्चयाद्धैर्य्यात तत्तत्कर्म्म प्रवर्त्तनात ।
सङ्गत्यागात सतोवृत्तेः षड्भिर्भक्तिः प्रसिध्यति ॥

माया की कथा वा भोगवार्ता श्रवण करते करते हमलोगों के कान भर गए हैं। अतएव उन असुविधाओं को दूर करने के लिये अब यथेष्ट परिमाण में हरिकथा-श्रवण करना होगा।

सतां प्रसङ्गान्मम वीर्य्यसंविदो
भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथाः ।
तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि
श्रद्धारतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति ॥

साधु लोगों के प्रकृष्ट (उत्तम) सङ्ग होने से मेरे माहात्म्य प्रकाशक शुद्ध हृदय-कर्ण के प्रीति-उत्पादक कथा की जो आलोचनाएं होती हैं, उनकी प्रीतिपूर्वक सेवा करते करते शीघ्र ही प्रकृत मोक्ष-वर्त्म-स्वरूप (अर्थात मोक्ष की राह के समान) मुझ में यथारूप से पहले श्रद्धा, तब रति और अन्त में प्रेमभक्ति उदित होगी।

साधुगुरु-मुख से चौबीसों घण्टे कृष्णकथा सुननी होगी। कृष्णकीर्त्तन करने से चौबीसों घण्टे कृष्ण-स्मरण होगा। बहिर्मुख गृहमेधी लोग यह नहीं समझते कि किस प्रकार अष्टयाम हरि-भजन होता है।

अविस्मृतिः कृष्णपदारविन्दयोः
क्षिणोत्यभद्राणि च शं तनोति ।
सत्त्वस्य शुद्धिं परमात्मभक्तिं
ज्ञानञ्च विज्ञान-विराग-युक्तम् ॥

श्रीकृष्ण के युगल पदकमल की अनुक्षण स्मृति जीव के सम्पूर्ण अभद्रों अर्थात अमङ्गलों को विनष्ट करके अशेष कल्याण करती है। उनके चरणों का स्मरण करने से अन्तःकरण की शुद्धि होती है और ज्ञानविज्ञान तथा विरागयुक्त प्रेम लक्षणा-भक्ति प्राप्त होती है।

हमलोगों को स्मरण होती है अपने भोग की बातें—कभी भी कृष्ण स्मरण नहीं होते। विष्णु-विस्मृति को undo (नाश) करना उचित है। क्षिणोति अभद्राणि—अभद्र अर्थात अमङ्गल, undesirable elements अथवा बहिर्मुख सङ्ग, कृष्णस्मृति होने से सभी अमङ्गल दूर होंगे।

..... महाराज जो अप्रकट हो गये हैं, उन्होंने कृष्ण विस्मृति को undo (नाश) किया था। उन्होंने महावदान्यता की कथा सुनी थी इसलिये प्रत्येक

जीव के निकट महाप्रभु की कथा कीर्त्तन करने के लिये वे यथेष्ट व्यस्त होते थे। उनको हरिकीर्त्तन करने की योग्यता प्राप्त हुई थी।

> एतावज्जन्मसाफल्यं देहिनामिह देहिषु।
> प्राणैरर्थैर्धिया वाचा श्रेय आचरणं सदा॥
> तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्।
> शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम्॥

यहां पर ब्रह्म शब्द का अर्थ हरिनाम है। मेरा सब से बढ़ कर मङ्गल किस प्रकार होगा ऐसी चिन्ता जिसके मन में उदित होगी, उसी को भजन की उपलब्धि होगी।

> यदृच्छया मत्कथादौ जातश्रद्धस्तु यः पुमान्।
> न निर्विण्णो नातिसक्तो भक्तियोगोऽस्य सिद्धिदः॥
> नेह यत् कर्म्म धर्म्माय न विरागाय कल्पते।
> न तीर्थपदसेवायै जीवन्नपि मृतो हि सः॥

वैरागी वा आसक्त होने से हरिभजन नहीं होगा।

Austerities and privations ... ultimately baffled. हरि भजन में नियुक्त नहीं होने से केवल जड़त्याग से कोई फायदा नहीं होता। वैराग्य के नाम पर आलस्य में प्रवृत्त होना अथवा भोगी-कर्मी होकर विषय में प्रवृत्त होना इन दोनों में से कोई भी उचित नहीं है। भोग त्याग, आसक्ति-विरक्ति, आलस्य एवं कर्मपरता प्रभृति के उदय होने से या उन्हीं कार्यों में रत-व्यक्तियों का संग करने से हमलोग असत् हो जायगे। कीर्त्तन नहीं करूंगा—ऐसा विचार करने से असत होना होगा और अन्त में सर्वनाश होगा।

> श्रीमद्भागवतं पुराणममलं यद्वैष्णवानां प्रियं
> यस्मिन् पारमहंस्यमेकममलं ज्ञानं परं गीयते।
> यत्र ज्ञान-विराग-भक्ति-सहितं नैष्कर्म्यमाविष्कृतं
> तच्छृण्वन् सुपठन् विचारणपरो भक्त्या विमुच्येन्नरः॥

श्रीमद्भागवत निर्मल पुराण है। यह वैष्णवमात्र के प्रिय है इस ग्रन्थ में एक अमल पारमहंस्यज्ञान वर्णित है एवं विराग सहित नैष्कर्म्य यज्ञान इसमें आविष्कृत हुआ है। इस भागवत का श्रवण, पठन एवं इसपर विचार करते करते उदित भक्ति द्वारा जीव का मायाबन्धन दूर होता है। मैं अवाज ज्ञान की [illegible] नहीं करता हूँ। मैंने जो समझ लिया है वही करूंगा यह बहिर्मुख व्यक्ति का हठधर्म मात्र है। अपने चित्त वृत्ति को नष्ट करना नहीं होगा, चित्त की मलिनता को दूर करना होगा। [illegible] के हाथ से [illegible] स्वरूप में प्रतिष्ठित होना होगा। पहले सम्बन्धज्ञान की बातें [illegible] से श्रवण करके स्वरूप का उद्बोधन (आविष्कार) [illegible] करने से क्रमशः [illegible] रहेगी। यदि [illegible] करना है तो [illegible] भजन करना होगा। हमलोगों पर [illegible] की बहिर्मुखता एवं चित्त की मलिनता [illegible] है। इसलिये प्रकृत (सच्चे) [illegible] साधुमुख से निरन्तर शुद्ध-निर्मल सर्वस्पर्शी कथा श्रवण करना आवश्यक है। We must [illegible] and [illegible] all [illegible] and relativities हमलोग ऐसे अपराधों की सन्तान हुए हैं कि भोग के अतिरिक्त और कोई कथा हमलोगों के विचार के अन्दर नहीं आती है।

'अनयाराधितो नूनं'—अर्थात सत्य वस्तु का परिपूर्ण इन्द्रियतर्पण करना ही भजन या आराधना है। अपना भोग या त्याग चलाना ही 'माया' है। प्राण रहते रहते हमलोगों का स्वरूप उद्बुद्ध होना आवश्यक है एवं कृष्ण के अतिरिक्त वासनाओं का का त्याग होना भी आवश्यक है।

नेह यत्कर्म धर्माय न विरागाय कल्पते।
न तीर्थपदसेवायै जीवन्नपि मृतो हि सः॥

मैं भारी वैष्णव नाम से विख्यात हूँगा एवं विपक्ष बुद्धि [illegible] - यह सब हरिभजन का अभि-नय मात्र है। यह सब कुकामनाएँ एवं प्रतिष्ठा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। श्रील रघुनाथदास गोस्वामी प्रभु ने [illegible] आलोचना की [illegible] ही [illegible] करना है।

प्रतिष्ठाशा धृष्टा श्वपचरमणी मे हृदि नटेत्
कथं साधुप्रेमा स्पृशति शुचिरेतन्ननु मनः।
सदा त्वं सेवस्व प्रभुदयितसामन्तमतुलं
यथा तं निष्काश्य त्वरितमिह तं वेशयति सः॥

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

तेइ प्रभु सेनापति, विक्रम करिया अति,
श्वपचिनी सङ्ग छाड़ाइया;
राधाकृष्ण प्रेमधने [illegible] तबे आकिञ्चने,
बले विनोद मस्तक नाड़िया॥

प्रतिष्ठा की आशा अत्यन्त भीषण है। उसको छोड़ना बहुत ही कठिन है। सब कुछ त्याग किया जा सकता है, परन्तु यह छोड़ा नहीं जाता। निरन्तर हरिकथा की आलोचना हो, सर्वत्र हरि-कीर्तन हो। जहाँ तहाँ चित्त लिप्त के निकट से हरिकथा श्रवण करने से मङ्गल नहीं होगा। शुद्ध वैष्णव श्रीगुरुपादपद्म से नाम ग्रहण करना होगा - हरिकथा श्रवण करना होगा। इस मनुष्य-जन्म को गवाँने पर फिर मनुष्य जन्म होगा, इसका निश्चय नहीं है। इसीलिये महाजनगण कहते हैं नरतन भजन का मूल है—

लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसम्भवान्ते
मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः।
तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्यु यावत्
निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात्॥

गीता की शिक्षा

गीता साक्षात् भगवान् के श्रीमुखारविन्द से निकली हुई है। इसीलिये प्रायः सभी लोग गीता को थोड़ा बहुत मानते हैं। परन्तु इसकी शिक्षा क्या है, इस विषय में विभिन्न व्यक्ति का जवाब विभिन्न प्रकार है। कोई कहता है गीता में कर्म की बातें हैं। किसी के विचार से ज्ञान, किसी के योग, किसी के राजनीति या और कुछ, परन्तु यथार्थ उपदेश क्या है, इसको कोई नहीं समझता है। कारण यह है कि भगवत् ज्ञानी पुरुष से इस विषय में पूछा नहीं। वे ही लोग यथार्थ ज्ञान बता सकते हैं। इसी वजह से भगवान् कहता है कि—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

भगवत् तत्वज्ञानी व्यक्ति के पास, उनसे परिप्रश्न और उनकी सेवा करते हुए भगवत् ज्ञान

को प्राप्त करना चाहिये ।

गीता के [illegible] क्या है ? इस विषय में किसी का कहना है कि भगवान् कृष्णचन्द्र ने अर्जुन के [illegible] को [illegible] के लिए गीता का उप-देश किया था । कोई [illegible] कहता है कि इसमें [illegible] कोई ऐसा भी कहता है कि उसको [illegible] की [illegible] आवश्यकता थी, हमलोगों को गीता से कुछ [illegible] नहीं है । कुछ व्यक्तियों का विचार है कि गीता में जो धृतराष्ट्र आदि का नाम है, [illegible] परन्तु इसमें [illegible] [illegible] हमलोगों को [illegible] हमलोगों ने [illegible] किया [illegible]

[illegible] श्लोक में

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः ।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ॥

[illegible] में यही समझा जाता है कि गीता उपनिषदों का सारांश है । उपनिषद्-रूपिणी गाय को दुहकर गोपालनन्दन कृष्णचन्द्र ने गीतामृत निकाला है । अर्जुन को बछड़ा का रूप दिया है । इसका अर्थ यह है कि गाय से जो दूध निकाला जाता है वह बछड़ा नहीं पीता, परन्तु दोहन करने में मदद करता है । भगवान् अर्जुन ने गीता कीर्त्तन में सहायता की है । परन्तु सुधी लोग गीतामृत पीते हैं ।

गीता के पाठकों को दो प्रकार गिना जा सकता है एक स्थूलदर्शी और दूसरा सूक्ष्मदर्शी । स्थूल-दर्शी पाठकगण केवल वाच्यार्थ लेकर सिद्धान्त ठीक करते हैं । सूक्ष्मदर्शी पाठकगण शब्द का तात्त्विक अर्थ लेकर विचार करते हैं, स्थूलदर्शी पाठक सम्पूर्ण गीताशास्त्र पढ़कर यह सिद्धान्त स्थिर करते हैं कि वर्णाश्रमधर्म-विहित कर्म नित्य हैं । इसलिये अर्जुन ने समस्त गीता को सुनकर युद्धरूपी क्षत्रिय-धर्म को ही मान लिया था । अतएव वर्णधर्म-विहित कर्माश्रय करना ही गीता का तात्पर्य है । सूक्ष्मदर्शी पाठकगण ऐसे जड़ सिद्धान्त से सन्तुष्ट नहीं होते । वे लोग ब्रह्मज्ञान अथवा भक्ति ही गीता का तात्पर्य है ऐसा विचार करते हैं । उन लोगों का कहना है कि अर्जुन का युद्ध करने का सिद्धान्त केवल स्वाधिकार-निष्ठा के उदाहरण स्वरूप है, वही गीता का चरम तात्पर्य नहीं है । मनुष्यगण अपने अपने स्वभाव के अनुसार कर्माधिकार प्राप्त करते हैं और उसीके आश्रय से जीवन बिताते हुए अन्त में तत्त्वज्ञान प्राप्त करेंगे । कर्माश्रय न होने से जीवनयात्रा यथार्थ रूप से निर्वाह नहीं होता और तत्त्वदर्शन भी सुलभ नहीं होता ।

अतएव तत्त्वलाभ के नाते कर्म और वर्णधर्म से कुछ सम्बन्ध है । जब तक जीवों के संसार बन्धन मुक्त नहीं होते तब तक वह सम्बन्ध अनिवार्य है । अर्जुन में जो स्वभाव देख पड़ता है, उससे यही सिद्धान्त स्थिर होता है कि उनको युद्ध करना ही क्षत्रिय-स्वभाव सुलभ कर्त्तव्य है । अर्जुन गीता सुनकर युद्ध करने के लिये ही मुस्तैद हुए थे । इससे यह निष्कर्ष निकला कि ब्रह्मस्वभाव वाले व्यक्ति गीता सुनकर संसार से सन्यास करेंगे । अतएव गीता का गूढ़ तात्पर्य यह है कि जो व्यक्ति जिस स्वभाव से युक्त है उसे उसी स्वभाव के अनुसार कर्मादि का अधिकार होता है अपने अपने स्वभाव के अनुकूल कर्म करते हुए परमात्मा की आलोचना होने से ही उसमें परम कल्याण प्राप्त किया जा सकता है ।

अब यहां प्रश्न हो सकता है कि अर्जुन परम वैष्णव थे। इसलिये उनका ब्रह्मस्वभाव ही होना चाहिये क्षत्रिय स्वभाव क्यों था ? इस का उत्तर यह है कि अर्जुन भगवान् की लीलापुष्टि के लिये क्षत्रियस्वभाव को स्वीकार कर प्रगट हुए थे। वह उनका तात्कालिक स्वभाव था।

फिर भी एक संशय होता है कि इसमें कर्म, ज्ञान, योग और भक्ति सभी के लिये कुछ न कुछ विचार है, तब गीता में किस किस विषय का उपदेश है ? इसके उत्तर के लिये बहुत कुछ सुनना होगा। पहिले यह समझना चाहिये कि इसमें अधिकार किसका है ? भगवान कृष्णचन्द्र का कहना है — (गीता १८।६७-६८)

इदन्ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति ॥
य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ॥

जो तपस्वी या भक्त नहीं है अथवा जिसका विष्णुवैष्णव सेवा में जी नहीं लगता और जो भगवान् की सच्चिदानन्द मूर्त्ति की हिंसा करता है, उसको मत सुनाओ। जो मेरे भक्तों को इस परम गूढ़ गीताशास्त्र का उपदेश करेंगे वह मुझ से भक्ति प्राप्त कर अन्त में मुझको प्राप्त करेंगे। इन दोनों श्लोकों में ही गीता का अधिकारी बताया जाता है कि सिर्फ भक्तों का ही इसमें अधिकार है।

इसका दूसरा विचार है कि भगवान् श्रीचैतन्यदेव दक्खिन-देश में भ्रमण करते हुए श्रीरंगक्षेत्र में पधारे थे। वहां एक वैष्णव-ब्राह्मण श्रीरंगजी के श्रीमन्दिर में आकर हर दिन गीता का अध्ययन बहुत ही प्रेम से करते थे। श्रीचैतन्यदेव ने उनका यह भाव देखकर पूछा—हे ब्राह्मण ! गीता के अध्ययन में आप को ऐसा प्रेम कैसे होता है ? ब्राह्मण बोले कि मैं मूर्ख हूँ, मुझ में शब्दार्थ समझने की शक्ति नहीं है, सिर्फ गुरुजी की आज्ञा से गीतापाठ करता हूँ, परन्तु जबतक मैं गीता पढ़ता हूँ तबतक मुझे ऐसा दर्शन होता है कि अर्जुन के रथ में कृष्ण भगवान् सारथी के रूप में बैठे हुए अर्जुन को गीता का उपदेश करते हैं यह देखकर मेरा मन गीतापाठ छोड़कर [illegible] कहीं नहीं जाता। श्रीचैतन्यदेव बोले कि गीता-पाठ का तुम्हीं हो एकमात्र अधिकारी हो, और गीता का यथार्थ अर्थ तुम्हें ही मालूम है।

गीता के पहले छः अध्यायों में कर्म की बातें, मध्य के छः अध्यायों में भक्ति और अन्त में भक्ति-परिपोषक ज्ञान के उपदेश हैं। मतलब यह है कि जैसे मूल्यवान सामग्री सन्दूक के बीच में रक्खी जाती है, पास में उसके दो आवरण रहते हैं वैसे ही कर्म और ज्ञान दोनों आवरणों के बीच में परम मूल्यवान भक्ति को रक्खा गया है। परन्तु भक्ति का उपदेश ही गीता का मुख्य लक्ष्य है। यह क्रमशः विचार किया जायगा।

गीता के पहले अध्याय में भगवान की भक्त-वत्सलता का परिचय प्राप्त होता है। भक्त के लिये भगवान भी एक तुच्छ काम करने को आये हैं। अर्जुन जानते थे कि मुझे स्वजनों के साथ युद्ध करना होगा। और उस काम के लिये अर्जुन प्रस्तुत भी थे। परन्तु अचानक यह क्या विचार दीख पड़ता है कि अर्जुन कहते हैं—हे कृष्ण, अपने स्वजनों को युद्धाभिलाषी देखकर मेरे शरीर में कंपन तथा रोमांच हो रहा है मुख सूख रहा है, मेरे अंग शिथिल हुए जाते हैं, गाण्डीव हाथ

से गिर रहा है और त्वचा भी बहुत दग्ध हो रही है। मैं ठहर नहीं सकता और विपरीत भावों को देख रहा हूँ। हे कृष्ण, मुझे विजय-वासना या राज्य सुख की इच्छा नहीं है। पृथ्वी के राज्य से क्या है। स्वर्गराज्य में भी मुझे कुछ प्रयोजन नहीं है। धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारने से मुझे पाप होगा और कुल का नाश हो जाने से कुलधर्म नष्ट हो जायगा जिससे अधर्म का प्रभाव कुल में आ पड़ेगा और स्त्रियाँ दुष्ट हो जायँगी। ऐसे वर्णसंकरों की उत्पत्ति होगी जिसका परिणाम है पितृगण का पिण्ड तर्पणादि का लोप इत्यादि बहुत सी बातें कह कर अर्जुन युद्ध से निवृत्त हो गये। इसका कारण क्या है? महाजनों का सिद्धान्त यह है कि हृषीकेश अपनी अचिन्त्य शक्ति के प्रभाव से अर्जुन को मोहित सा करते हुए उनके मोह को हटाने के बहाने से अपने भजन का उपदेश करते हैं। किसी मायाबद्ध जीव के साथ उनका साक्षात्कार नहीं होता। भगवान का यह स्वभाव है कि वे अपने भक्तों में ही सदाकाल तत्व-ज्ञान का उपदेश करते हैं। उद्धव, देवहूति आदि को उपदेश करने का दृष्टान्त श्रीमद्भागवत में प्रसिद्ध है। अर्जुन का यह भाव एक बद्ध जीव का अभिनय करना मात्र है। शरीर में अहं-बुद्धि रखने वालों के विचार में कुलधर्म का अभिमान प्रबल रहता है। वे लोग अपने घर अपने कुल या अपने स्वजनों के साथ सम्बन्ध को ही सत्य समझते हैं। यह नहीं समझते हैं कि शरीर-त्यागने के साथ ही वह सम्बन्ध भी लुप्त हो जायगा। फिर भी दूसरा जन्म प्राप्त होने पर दूसरे कुल का अभिमान आ जायगा। जीवात्मा को किसी कुल का परिचय नहीं है। वह नित्य कृष्णदास है यह सम्बन्ध भूल जाने से ही उसको बद्धावस्था का अभिमान आता है। सद्गुरु की कृपा से स्वरूप का अभिमान प्राप्त होता है। यहाँ कृष्ण भगवान् गुरु के रूप में अर्जुन को उपदेश करने के लिये कहते हैं

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन॥

हे अर्जुन! इस विषम क्षेत्र में तुम्हें ऐसा मोह कहाँ से आया? यह मोह [illegible] लोगों के योग्य, स्वर्ग-प्रतिबन्धक तथा अकीर्तिकर है। [illegible] लगता है, ऐसा भगवान् कहते हैं।

क्लैब्यं मास्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप॥

हे अर्जुन तुम नपुंसकता को प्राप्त न बनो। यह तुम्हारे लिये अनुपयुक्त है। [illegible] हृदय-दुर्बलता का त्याग कर युद्ध के लिये उठ जाओ।

श्रीगुरुदेव ऐसे भाव से मायाबद्ध जीवों का हृदय दुर्बलता को दूर करते जाते हैं, [illegible] के स्वरूप को प्रकट कर देते हैं। मायाबद्ध जीव नानाप्रकार [illegible] स्वतंत्र रहने के लिये कोशिश करता है। जब उसकी बुद्धि वहन करने से असमर्थ हो जाती है तब वह कहता है—

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥

मैं स्वाभाविक कार्पण्य-दोष से धर्म विमूढ़ चित्त होकर आपसे पूछता हूँ कि मेरे लिये जो श्रेयस्कर हो वह उपदेश कीजिये। मैं आप की शरण लेकर शिष्य बनता हूँ।

शिष्य जब सर्वतोभावेन गुरुजी के चरणों

। शरण लेते हैं तब गुरुदेव कृपाकर इन्हें ज्ञान देने के लिये कुछ दिन तत्वज्ञान के सम्बन्ध में सुनाते हैं

शिष्य का लक्षण भी अर्जुन के शब्दों से समझा जा सकता है. अर्थात प्रथम अध्याय में कहे गए "किं नो राज्येन गोविन्द" तथा "अपि त्रैलोक्य-राज्यस्य हेतोः किन्तु" इत्यादि वचनों से यह समझा जाता है कि ऐहिक तथा पारलौकिक भोग-सुख की आवश्यकता जिनके पास तुच्छ बन गयी है वही प्रकृत शिष्य के योग्य है। उनका कर्त्तव्य है सर्वतोभावेन गुरु की शरण में जाना तथा अपनी स्वतंत्रता को गुरु जी के चरणों में न्योछावर करना।

जब शिष्य तन-मन-वचन से गुरु की शरण लेता है तब गुरुदेव शिष्य को आत्मतत्व का ज्ञान बताते हैं —

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ॥
न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥
देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥
अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥
अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद् युध्यस्व भारत ॥
न जायते म्रियते वा कदाचि
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

अर्थात् हे अर्जुन ! तुम ज्ञानी के योग्य बातें करते हो, फिर शोक के अयोग्य विषय के लिये सोचते हो। पण्डित लोग मृत या जीवित किसी के निमित्त नहीं सोचते हैं। क्योंकि आत्मा अविनाशी है। सुतराम नित्य वस्तु के लिये शोक करना अयुक्त है। वास्तव में मैं (परमात्मा), तुम और ये सब राजा गण पहले नहीं थे ऐसी बात नहीं बल्कि थे, पश्चात् रहेंगे. अब भी हैं अर्थात् मैं तुम और अन्यान्य जीव सब काल में ही हैं अर्थात नित्य हैं। किन्तु जैसे जीवात्मा की इस देह में कुमार, युवा और वृद्ध अवस्थाएं होती हैं, वैसे ही अन्य शरीर की प्राप्ति होती है, सुतराम इस विषय में पण्डित लोग नहीं मोहित होते हैं अर्थात् जैसे लड़कपन, जवानी और बुढ़ापा रूपी स्थूल शरीर के विकार अज्ञान के निमित्त आत्मा में आरोपित होते हैं वैसे ही एक शरीर से दूसरे शरीर को प्राप्त करना भी है। इसलिये तत्वज्ञानी पुरुष इस विषय में नहीं मुग्ध होते हैं। जो आत्मा मनुष्यादि के सर्व शरीर में व्याप्त है उसको नाशरहित समझो। क्योंकि इस अविनाशी आत्मा का नाश करने में कोई समर्थ नहीं है। परन्तु जीवात्मा का सारा शरीर नाशवान है किन्तु वह अप्रमेय है अतएव हे अर्जुन तुम युद्ध करो। यह आत्मा किसी काल में भी न जन्मता है न मरता अथवा न होकर फिर होनेवाला है। क्योंकि वह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है. शरीर का नाश होने पर भी यह नष्ट नहीं होता है। इस देह के साथ आत्मा का सम्बन्ध और भी सहज दृष्टान्त से बताते हैं—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥

अर्थात् तुम यदि कहो कि मैं तो शरीर के नाश के निमित्त ही शोक करता हूँ तो यह भी उचित नहीं है। क्योंकि जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्याग कर दूसरे नये वस्त्रों को ग्रहण करता है वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीर को त्याग कर नये शरीर को प्राप्त करता है। (क्रमशः)

अद्भुत-नौकरी

इस लेख के विषय को देख कर पाठक चकित हो गये होंगे। ऐसा होना कोई आश्चर्य की बात भी नहीं है। मैं 'अद्भुत-नौकरी' से क्या समझता हूँ और इससे मुझे क्या शिक्षा मिली है, उसीकी कुछ चर्चा करता हूँ।

आजकल बेकार लोगों की संख्या बहुत बढ़ी हुई है। मैं भी अपने को इसी दल का अन्यतम समझता था। किन्तु अकस्मात मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि मैं बेकार बैठा नहीं हूँ—मैं सर्वदा कार्य में लगा हूँ। हिन्दी में एक कहावत है, "गोद में लड़का और नगर में ढिंढोरा।" यही कहावत मेरे साथ भी चरितार्थ हुई। नौकरी करते रहने पर भी मुझे ज्ञात नहीं हुआ कि मैं नौकरी कर रहा हूँ। ऐसे नौकर और ऐसी नौकरी की बलिहारी है।

नौकरी करने से धन या अन्य कोई वस्तु वेतन-रूप में हमलोगों को मिलती है। किन्तु जिस नौकरी की चर्चा मैं कर रहा हूँ उससे बहुत से पदार्थ पाये जाते हैं जिनकी गणना करना बहुत कठिन है। संसार में जितनी वस्तुएँ हमलोगों को प्राप्त होती है उनमें से किसी से सुख और किसी से दुःख होता है। अतः उपर्युक्त नौकरी में जो कुछ प्राप्त होता है, उसे एक सामासिक पद में सुख-दुःख कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी।

इस नौकरी को करने के लिये पहले पहल किसी स्कूल या कॉलेज में इसको सीखनी नहीं पड़ती है। अतएव जब से मेरा जन्म हुआ उसी दिन से मैं यह नौकरी कर रहा हूँ और मुझे वेतन भी मिल रहा है। किन्तु एक विचित्र बात यह है कि इसमें जितनी ही शारीरिक मानसिक और सामाजिक उन्नति होती है उतनी ही आत्मा की अवनति होती है।

भागवत के पाठक तो मेरे मनिब के नाम से भलीभांति परिचित है। परन्तु सर्वसाधारण की जानकारी के लिये कहता हूँ कि मेरे मनिब का नाम है माया देवी। उन्हीं की नौकरी मैं सर्वदा करता हूँ और तारीफ की बात तो यह है कि मैं अपने मनिब की सेवा से क्षण-भर भी विचलित नहीं होता हूँ। आप लोग तो दफ्तर जाकर ८,१० घंटे काम करने के बाद घर लौट आते हैं। किन्तु मेरे मनिब का दफ्तर एक ही जगह नहीं है—संसार में सूई की नोक के बराबर भूमि भी उनके दफ्तर से बाहर नहीं है। इससे मुझे बहुत सुविधा है। मेरे मनिब ऐसे उदार हैं कि बुढ़ापे में भी बलपूर्वक पेन्शन नहीं देते और कहते हैं कि यदि तुम मुझे स्मरण करते रहोगे तो किसी जन्म में भी मैं तुम्हें नौकरी से नहीं छुड़ाऊँगा। अपने मनिब के समान थोड़ा उदार मैं भी हूँ। इसीसे अनादिकाल से उनकी आज्ञानुसार कार्य करता हूँ।

मेरे मनिब का राज्य कितना बड़ा है यह आप लोग अच्छी तरह जानते होंगे। उनके राज्य में उनके

विरुद्ध झगड़ा करने की भी हिम्मत किसी को नहीं होती है; क्योंकि वे बड़े शक्तिशाली हैं। किन्तु वे वैष्णव लोगों से बहुत डरते हैं। क्योंकि वैष्णव लोग उनके नौकरों को सर्वदा उनके राज्य से भगा लेजाते हैं। हजारों परिश्रम करते रहने पर भी उनको वैष्णव लोगों के सामने कुछ करने की हिम्मत नहीं पड़ती है। आप लोग भूल से ऐसा विश्वास मत कीजियेगा कि वैष्णव किसी को लेजाकर कष्ट देते हैं। वे उसको ऐसे स्थान पर ले जाते हैं जहां दुःख का नाम भी नहीं है-जहां सुख-ही-सुख है। उस स्थान का नाम वैकुण्ठ है। कुछ दिनों से वैष्णव लोग मुझे भी वहां ले जाने के लिये नाना प्रकार के यत्न कर रहे हैं, किन्तु मैं ऐसा अभागा हूँ कि उनलोगों का उपदेश मुझे कड़ुआ प्रतीत होता है। यह मेरा दुर्भाग्य नहीं तो और क्या है? मेरी मती कैसे फिरे? प्रह्लाद महाराज ने कहा है:— (भा ७-५-३०)

मतिर्न कृष्णे परतः स्वतो वा
मिथोऽभिपद्येत गृहव्रतानाम्।
अदान्तगोभिर्विशतां तमिस्रं
पुनः पुनश्चर्वितचर्वणानाम्॥

गृहव्रत लोगों की इन्द्रियाँ चंचल होती हैं। वे अजितेन्द्रिय हैं, इससे घोर नरक में प्रवेश करते हैं और संसार में बारंबार पशु के सदृश चर्वित सुख-दुःख को ही चर्वण करते रहते हैं। अर्थात् विषय-वासना में सर्वदा लीन रहते हैं। दूसरों के उपदेश से, अपनी चेष्टा से, अथवा परस्पर के सत्सङ्ग या किसी प्रकार से कभी भी इनलोगों की बुद्धि कृष्ण की ओर आकर्षित नहीं होती है।

तो क्या मेरी मती किसी उपाय से भी नहीं फिरेगी? अवश्य फिर जायगी, यदि मैं प्रकृत रूप से साधुसंग करूँगा। मैंने सुना है कि वैष्णव लोगों से जिसका संग होता है उसके मंगल होने में देर नहीं लगती। क्योंकि उन लोगों की सत्संगति होने से उन लोगों की वीर्यवती-वाणी श्रवण करने का सौभाग्य प्राप्त होता है और उस वाणी में एक अचिन्त्य शक्ति होने के कारण विषयी लोगों की प्रवृत्ति भी परिवर्त्तित हो जाती है। (भा ३-२५-२५)

सतां प्रसंगान्मम वीर्य्यसम्विदो
भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथाः।
तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि
श्रद्धा रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति॥

अर्थात् साधु लोगों के प्रकृत संग होने से भगवान् की वीर्यवती-वाणी श्रवण करने का सौभाग्य मिलता है, जो शुद्ध हृदय-कर्ण को आनन्द प्रदान करती है। उस कथा की प्रीति-सहित सेवा करने से शीघ्र ही अविद्या-निवृत्ति (माया का नाश) और क्रमशः श्रद्धा, रति और प्रेमभक्ति उदित होती हैं।

किन्तु मैं तो पहले ही कह चुका हूँ कि मैं अपने मनिब का बड़ा ही कृपापात्र हूँ। एक सेकन्ड भी उनकी कृपा से वंचित नहीं हूँ। इससे जिस समय वैष्णव लोग मुझे भगवान् की अप्राकृत कथा श्रवण कराते हैं उस समय मैं मायिक मन और बुद्धि द्वारा अप्राकृत हरिकथा को भी प्राकृत समझ कर वंचित होता हूँ। मेरे सदृश मनुष्य को पद्मपुराण नारकी प्रमाण करते हैं। क्योंकि मेरी जड़ बुद्धि निम्न लिखित अप्राकृत वस्तु को भी प्राकृत समझती है अर्थात् श्रीविष्णु की अर्चा में साधारण शिला-बुद्धि, श्रीभगवत्-पार्षद श्रीगुरुदेव में मानुष्य-बुद्धि, वैष्णव में जाति-बुद्धि, श्रीविष्णु-वैष्णव के कलिदोष नाश करने वाले चरणामृत में जल-बुद्धि, श्रीविष्णु के सर्वपापनाशक नाम और मंत्र में

साधारण शब्द-बुद्धि तथा सर्वेश्वरेश्वर श्रीविष्णु के साथ दूसरे देवताओं को बराबर समझना है। वैष्णव लोगों की वीर्यवती-वाणी के प्रभाव से मेरे सदृश नारकी के मन में भी कभी कभी ऐसा विचार आता है कि अब से भगवत् सम्बन्धी किसी वस्तु को प्राकृत दृष्टि से नहीं देखूँगा। किन्तु दुर्भाग्यवश मेरा मनिब रूपी मन बुद्धि रूपी आसन पर बैठ कर, विशुद्ध अप्राकृत विचार में चंचलता उत्पन्न कर देता है। यही (हृदय-दुर्बलता) बद्धजीव के चार प्रकार के अनर्थों में से एक अनर्थ है। इस प्रकार मेरे मनिब मुझे और तीन प्रकार के अनर्थरूपी अर्थ (अपराध, स्वरूप-भ्रम और असत् तृष्णा) वेतनरूप में देते हैं। इस प्रकार की अद्भुत नौकरी से छुड़ाने के लिये वैष्णव लोग दरदर जाकर उपदेश देते हैं। "महान्तेर स्वभाव एइ तारिते पामर। निज कार्य नाहि तबु जान पर घर॥" किन्तु मेरे मनिब हरिकथा सुनने के समय दरवाजा बन्द कर, मेरे सदृश नौकर को एक ऐसे अद्भुत काम में लगा देते हैं कि परमार्थ लाभ करना मेरे लिये कठिन ही नहीं वरन असम्भव हो जाता है। तथापि न जाने किस सुकृति के बल से यह समझता हूँ कि यदि मैं उनकी (वैष्णव लोगों की) शरण में जाऊँ तो किसी-न-किसी दिन मेरा अवश्य मंगल हो जायगा। शास्त्रों में भी ऐसा अनेक स्थानों पर वर्णित है कि माया, जो ब्रह्मा और शिव से भी अपनी सेवा करा लेती है विष्णु सेवकों पर कुछ भी प्रभाव नहीं दिखा सकती। हरिदास ठाकुर इसके प्रत्यक्ष उदाहरण है। फिर यदि मैं वैष्णव लोगों की शरण लूँ तो मेरी 'अद्भुत-नौकरी' आप से आप क्यों नहीं छूट जायगी। किन्तु जब तक उनलोगों की कृपा नहीं होगी तब तक उनलोगों का शरण-ग्रहण भी सम्भव नहीं होता। इसलिये उनलोगों की कृपा के सिवा और दूसरा भरोसा नहीं है।

बहुत आश्चर्य की बात है कि आजकल सभी शिक्षित लोग यह यत्न कर रहे हैं कि सभी लोग नौकरी प्राप्त करें—कोई बेकार न बैठे। वे कैसे समझते हैं कि कोई बेकार बैठा है? मैं तो देखता हूँ कि संसार में जितने जीव हैं, वे सभी सर्वदा (चौबीसो घंटे) कुछ-न-कुछ कार्य करते रहते हैं। गीता में भी कहा है :-- (गी ३ ५)

न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥

कोई भी मनुष्य क्षण भर भी बिना काम किये नहीं रह सकता है क्योंकि माया के तीनों गुण बलपूर्वक हमलोगों से सर्वदा कार्य कराते रहते हैं। यदि कोई काम से छुटकारा पाने के लिये चुपचाप बैठ भी जाय तोभी उसको काम करने से छुटकारा नहीं मिलती--उस समय भी उसका मन कुछ न-कुछ कार्य करते रहता है निद्रित अवस्था में भी वह शान्त नहीं रहता जो धन उपार्जन नहीं करता वह बेकार है ऐसा कहना ठीक नहीं। अधिकांश लोगों का कहना है कि 'काम' वही है जिससे धन मिलता है। तब कहना पड़ता है कि लोग (Unemployment) 'बेकारी' के लिये दुःखी नहीं है दुखी हैं 'धन के लिये'—आत्मेन्द्रिय तृप्ति के लिये, क्योंकि धन से आत्मेन्द्रिय तृप्ति होती है। किन्तु यह सर्वसम्मत है कि सांसारिक वस्तुओं की प्राप्ति होने से ही हमलोगों का अभाव दूर नहीं होता, तो फिर शान्ति कैसे मिलेगी? कृष्ण-सेवा प्राप्त होने से हमलोगों को शान्ति मिल सकती है और सभी वस्तुओं का अभाव दूर हो सकता है।

इसलिये नर-तनु पाकर नित्य-मंगल के लिये ही यत्न करना चाहिये।

लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसम्भवान्ते
मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः।
तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्यु-याव
न्निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्व्वतः स्यात्॥

अनेक जन्मों के बाद यह मानव-जन्म लाभ हुआ है, सुतरां यह अत्यन्त दुर्लभ है। यह जन्म अनित्य होने पर भी परमार्थप्रद है। इसलिये क्षण भर भी विलम्ब न करके मृत्यु के पहले ही नित्य-मंगल के लिये यत्न करना चाहिये। विषय तो प्रत्येक जन्म में प्राप्त होता है।

जो मेरे सदृश 'अद्भुत नौकरी' की फेर में पड़े हैं उनलोगों के समीप सकातर निवेदन है कि वे कृपया महाजनों के उपदेश पर ध्यान देते हुए नित्य-मङ्गल को प्राप्त करें। क्योंकि—

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं
प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं
पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा॥

मनुष्यशरीर ही मनुष्यों के निज मंगललाभ करने का एकमात्र उपाय है। बहुत जन्मों के बाद यह लाभ होता है। भगवान् के अनुशीलन में निपुण श्रीगुरुदेव कर्णधार का कार्य करते हैं। भगवत् कृपा-रूपी अनुकूल वायु नरदेह रूपी नौका को बहा कर इस संसार-सागर से पार कर देती है। जो अपनी देह की नौका की उपलब्धि नहीं करते, गुरुदेव को अपना कर्णधार नहीं समझते और भगवत् कृपा को ही अनुकूल वायु नहीं समझते, वे अपने नित्य मंगल का विनाश कर आत्मघाती होते हैं।

नाम और नामी

"जेइ नाम सेइ कृष्ण भज निष्ठा करि।
नामेर सहित आछेन आपने श्रीहरि॥"

नाम और नामी अभिन्न हैं। हमलोगों में से अनेक इससे परिचित हैं। किन्तु श्रीचैतन्यचरितामृत का यह उपदेश है कि—

"सिद्धान्त बलिया चित्ते न करो आलस।
इहा हइते कृष्णे लागे सुदृढ़ मानस॥"

शास्त्र-सिद्धान्त से यह विचार हृदय में दृढ़ रूप से प्रतिष्ठित होना चाहिये, नहीं तो अक्षज युक्ति आकर हमलोगों को अप्राकृत तत्व वस्तु से गिरा सकती है। अक्षज युक्ति का अर्थ है वह ज्ञान जो हम लोगों को जड़ इन्द्रियों से प्राप्त होता है। भगवान् को अप्राकृत तत्व वस्तु समझना चाहिये।

भगवान् के प्रकृत स्वरूप को प्रकाश करने के लिये श्रीमद्भागवत में बारंबार 'अधोक्षज' शब्द का व्यवहार किया गया है। अर्थात् भगवान् को हम लोग अक्षज ज्ञान द्वारा नहीं जान सकते।

जिससे वस्तु का सम्यक् रूप से परिचय होता है उसी वस्तु को 'नाम' और जो परिचित होता है उसे 'नामी' कहते हैं। संसारी वस्तु के नाम से वह वस्तु सर्वदा पृथक् है। जैसे एक वस्तु का नाम आम है। केवल 'आम' नाम उच्चारण करने या आम चाहने से आम के मीठापन का आस्वादन हमलोगों को नहीं मिलता। यदि हमलोगों को आम का स्वाद लेने की इच्छा हृदय में जागे तो इसके लिये आम खाना ही पड़ेगा, केवल आम का नाम लेने

से अथवा 'आम', 'आम', उच्चारण करने से कुछ नहीं होगा। इससे यह साबित होता है कि यहां 'आम' नाम से आम का गुण मीठापन या आम की क्रिया पुष्टि-तुष्टि या आम का रूप पृथक है। पुनः एक पुरुष का नाम 'ज्योतिर्मय' है। यहां भी हमलोग देखते हैं कि ज्योतिर्मय नाम से वह पुरुष या नामी पृथक है। ज्योतिर्मय नाम का कोई पुरुष नहीं है। यहां देश और काल में बहुत भेद वर्तमान है। 'ज्योतिर्मय' नाम से जो वस्तु सूचित होती है, पुरुष में वह कभी भी पूर्ण रूप से नहीं है। और उस पुरुष का ज्योतिर्मय नाम उसके जन्म होने के पहले नहीं था और उसके मरने पर भी नहीं रहेगा। किन्तु अप्राकृत या अधोक्षज भगवान के नाम और भगवान में कोई भेद नहीं है। 'कृष्ण' नाम और 'कृष्ण' एक ही है। अधोक्षज वस्तु का नाम साक्षात् वही वस्तु है। नाम नामी से तनिक भी कम नहीं है। यह नाम पहले था, इस समय भी है और भविष्य में भी रहेगा। द्वापरयुग के पहले कृष्ण भगवान या 'कृष्ण' नाम प्रकट नहीं थे ऐसा समझना नितान्त मूर्खता है।

प्राकृत वस्तु के समान भगवान के नाम किसी एक देश-विशेष या किसी खास समय में पैदा नहीं हुए हैं और इनका नाश भी नहीं होगा। संसार में प्रत्येक वस्तु के नाम, रूप, गुण और क्रिया सीमा-विशिष्ट है अर्थात हमलोग परिश्रम करने पर संसार की प्रत्येक वस्तु के नाम रूप, गुण और क्रिया को जान सकते हैं किन्तु अप्राकृत वस्तु (भगवान) के नाम, रूप, गुण और उनकी लीला सीमा-रहित हैं। हमलोग अपनी इन्द्रियों के सहारे उनको नहीं जान सकते। वे अद्वय-वस्तु है, उनके समान भी कोई नहीं है और उनसे बढ़कर भी कोई नहीं है। जैसे प्राकृत उदाहरण में 'राजा जा रहे हैं' कहने से यह समझा जाता है कि राजा, राजदण्ड, मुकुट, छत्र, शरीर-रक्षक फौज इत्यादि सहित जा रहे हैं। उसी प्रकार भगवान के नाम के साथ ही उनके रूप गुण और उनकी लीला प्रकाशित होती हैं। प्राकृत राजा और उनके साज आदि में जिस प्रकार भेद है वैसा भेद अप्राकृत भगवान् और उनके नामगुणादि में नहीं है। नाम, धाम, रूप, गुण और लीला अधोक्षज वस्तु के ही कायविस्तार है। राजा के राजदण्ड, छत्र, मुकुट इत्यादि राजा नहीं है, किन्तु भगवान् के नाम रूप गुण लीला धाम भगवान् से अभिन्न हैं। इसीलिये वेद कहते हैं:

> पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
> पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

फिर सात्वतपुराण भी कहते हैं:—

> नामचिन्तामणिः कृष्णश्चैतन्यरसविग्रहः।
> पूर्णः शुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नत्वान्नामनामिनोः॥

इस श्लोक की श्रील जीव गोस्वामी प्रभु ने इस प्रकार व्याख्या की है:—

एकमेव सच्चिदानन्दरसादिरूपं तत्वं द्विधा विभूतमित्यर्थः अर्थात श्रीकृष्णतत्व अद्वय सच्चिदानन्द वस्तु है। उनके दो प्रकार के प्रकाश है—नामी-रूप से श्रीकृष्णविग्रह और नाम रूप से श्रीकृष्णनाम चिन्तामणि सब कुछ दे सकते हैं। कृष्णनामचिन्तामणि भी कामी जन को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष दान करते हैं एवं निष्कामी जन को विशुद्ध-प्रेम दान करते हैं। वे चैतन्यरस विग्रह हैं, नित्यमुक्त हैं, नित्य शुद्ध सत्व हैं—मायिक (सत्व, रज और तम) गुणों से युक्त नहीं हैं, नाम (कृष्ण) और नामी (कृष्णविग्रह) अभिन्न हैं।

"परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते"

इत्यादि श्रुतिवाक्य में परतत्व (कृष्ण) को सर्वशक्तिमान कहा गया है। सर्वशक्तिमान का अर्थ है— जो सब प्रकार की शक्तियों से युक्त हो— जिनमें किसी प्रकार की शक्ति का अभाव नहीं है। इस संसार में हमलोगों को जो बिलकुल असम्भव और विरुद्ध प्रतीत होता है अचिन्त्य शक्तिसम्पन्न भगवान् में वही सम्भव और बहुत सुन्दर रूप से विराजित होकर भगवान् के सेवकों के निकट प्रकाशित होता है। जैसे भगवान् के पैर, आंख, मुख नहीं हैं किन्तु वे खूब तेजी से चलते, सब कुछ देख सकते और सब कुछ ग्रहण कर सकते हैं। भगवान् स्वाधीन हैं, किन्तु पराधीन हैं। ये सब गुण भगवान् के सिवा इस संसार के किसी अन्य प्राणी में नहीं हो सकता।

अतएव अविचिन्त्यशक्तिमान पुरुष (भगवान) अचिन्त्यशक्तिप्रभाव से अपने भक्तों के निकट कृष्ण रूप (कृष्णविग्रह रूप से) से प्रकाशित होते हैं या भक्तों के सेवोन्मुखी जिह्वा पर कृष्णनाम रूप से प्रकट होते हैं। इसीलिये नाम चिन्मय वस्तु हैं, जड़-अक्षर मात्र नहीं है। अक्षर-रूप से जो नाम आविर्भूत होते हैं वे नामी के शाब्दिक अवतार हैं। हमलोग समझते हैं कि भक्त लोग जो नाम ग्रहण करते हैं और हमलोग जो नाम ग्रहण करते हैं उसमें कोई भेद नहीं है। किन्तु उसमें बहुत भेद है। हमलोग जो नाम ग्रहण करते हैं वह नामाक्षर, नामापराध या नामाभास मात्र है किन्तु भक्तलोग सर्वदा शुद्ध-नाम ग्रहण करते हैं। शुद्ध नाम के सिवा और किसी उपाय से कृष्ण-प्रेम लाभ नहीं किया जा सकता। जड़ज्ञानसम्पन्नव्यक्तिगण श्रीभगवान् के अप्राकृत नाम, रूप, गुण और लीला को अपने अपने प्राकृत विषयों के समान ही समझते हैं और मायावादीगण भगवान् के अचिन्त्य-प्रभाव को समझने में असमर्थ होकर पराशक्ति को इनकार कर परतत्व की पूर्णता को नष्ट करने की चेष्टा करते हैं।

भगवान् के नाम दो प्रकार के हैं—गौण और मुख्य। भगवान् के जो नाम इस संसार में प्रकाशित किसी विशेष गुण को लक्ष्य करता है या केवल चेतन भाव को प्रकाशित करता है वह गौण नाम है; और जो नाम वैकुण्ठ में प्रकाशित, भगवान् के नाम, रूप, गुण, लीला और परिकर-वैशिष्ट्य के पूर्ण, पूर्णतर और पूर्णतम भाव को प्रकाशित करता है वह मुख्य नाम है। गौण नाम— जैसे धाता, सृष्टिकर्त्ता, विश्वपति इत्यादि वा ब्रह्म, परमात्मा प्रभृति। ये सब नाम अनन्त शक्तिमान भगवान् के जड़जगत में प्रकाशित किसी विशेष शक्ति को ही लक्ष्य करते हैं। जड़जगत में प्रकाशित शक्ति को अक्षज दृष्टि से देख कर कोई कोई भगवान् को एक एक नाम से विभूषित करते हैं। और कोई कोई भगवान् को निःशक्तिक कल्पना करके ब्रह्म कहते हैं। ये सब नाम जड़ सम्बन्ध-युक्त हैं। इन सब नामों में भगवान् के चिन्मय स्वरूप का प्रकाश नहीं होता है। इन सब गौण नामों को किसी किसी मनुष्य ने अक्षज ज्ञान द्वारा सिरजा है। इसलिये ये सब गौण नाम नामी के चिन्मय स्वरूप को प्रकाशित नहीं कर सकते। किन्तु मुख्य नाम भगवान् के नित्य चिन्मय अधोक्षज स्वरूप का प्रकाशक है। सुतरां मुख्य नाम नामी से सम्पूर्ण अभिन्न हैं। मुख्य नाम जैसे— नारायण, राम, हरि, गोपाल, गोविन्द, कृष्ण इत्यादि। इनमें 'नारायण' वा 'राम' नाम श्रीभगवान् के ऐश्वर्यप्रकाशक नाम हैं। (क्रमशः)

विविध-संवाद

विभिन्न मठों में श्रीकृष्णजन्माष्टमी और नन्दोत्सव

श्रीश्रीविश्ववैष्णव राज सभा के अन्तर्गत श्रीचैतन्यमठ के शाखामठ वृन्दावन श्रीकृष्ण चैतन्यमठ, काशी श्रीसनातन गौड़ीयमठ, बम्बई श्रीगौड़ीयमठ, कलकत्ता श्रीगौड़ीयमठ में एवं अन्यान्य प्रत्येक शाखामठ में गत १९ अगस्त को श्रीश्रीकृष्णजन्माष्टमी व्रतोत्सव एवं २० अगस्त को श्रीश्रीनन्दोत्सव बहुत समारोह के साथ सम्पादित हुआ था। श्रीकृष्णजन्माष्टमी दिवस में भक्तवृन्द ने उपवास रहकर निरन्तर पाठ, कीर्त्तन, वक्तृता और पारायणादि द्वारा अहर्निश अखण्ड कीर्त्तन जारी रखा था। नन्दोत्सव के दिन भी कीर्त्तन और वक्तृता द्वारा भागवत प्रसङ्ग आलोचित हुआ एवं सभी मठों में असंख्य व्यक्तियों को महाप्रसाद वितरण किया गया।

गत १९ अगस्त शुक्रवार को पटना श्रीगौड़ीय मठ में श्रीश्रील आचार्यदेव के आनुगत्य में श्रीश्री कृष्णजन्माष्टमी व्रत महासमारोह के साथ सुसम्पन्न हुआ। ब्राह्ममुहूर्त्त में मंगलारति के बाद क्रमशः गुरुपरम्परा महाजन पदावली कीर्त्तन और श्रीचैतन्य-भागवत का पारायण हुआ था। अहर्निश पारायण जारी था। अपराह्न काल से लेकर रात्रि एक बजे तक हजारों यात्री श्रीविग्रह दर्शन करने के लिये उपस्थित हुए थे।

अपराह्न साढ़े चार बजे से मठ में एक विराट सभा का अधिवेशन हुआ जिसमें मठाश्रित भक्त लोगों ने क्रमशः भोग और सेवा, श्रीकृष्ण का आविर्भाव और तिरोभाव, श्रीकृष्ण-आविर्भाव का कारण, श्रीकृष्ण-सेवा और कार्ष्ण-सेवा सम्बन्धी व्याख्यान दिये थे। इसके बाद संध्यारति, और पुनश्च श्रीकृष्ण जयन्ती क्या है इस सम्बन्ध में व्याख्यान हुए। तदुपरान्त छायाचित्र द्वारा श्रीमन्महाप्रभु के बाल्य-लीला सम्बन्ध में व्याख्यान हुआ। फिर श्रीकृष्णोपासना के सर्वश्रेष्ठत्व के सम्बन्ध में व्याख्यान होने के बाद महाजन पदावली कीर्त्तन और भागवत दशवें स्कन्ध से श्रीकृष्ण-जन्मलीला पाठ ग्यारह बजे रात तक हुआ था।

२१ अगस्त श्रीनन्दोत्सव के दिन भी अपराह्न पांच बजे से मठ में एक विराट सभा का अधिवेशन और मठाश्रित भक्त लोगों के क्रमशः 'श्रीनन्दानुगत्य, 'श्रीनन्द महाराज का दान', 'श्री नन्दालय और मन्दालय' और श्रीनन्दनन्दन-कृष्ण और वसुदेवनन्दन-कृष्ण के सम्बन्ध में व्याख्यान हुए थे; जिसमें यह भलीभांति समझाया गया कि 'श्रीनन्दोत्सव' बहिर्मुख जनगणों के आमोद प्रमोद का विषय नहीं है। इसके बाद 'श्रीनन्द और श्रीगुरु पादपद्म' के सम्बन्ध में व्याख्यान हुआ और प्रायः ५०० भद्र लोग और महिला गण को विचित्र महाप्रसाद दिया गया। इसके दूसरे दिन प्रातःकाल ७ बजे से १२ तक प्राय ६००-७०० कंगालियों को महाप्रसाद वितरण किया गया था।

गत ११ अगस्त श्रीबलदेवजी के आविर्भाव-तिथि के दिन श्रीबलदेव जी के विषय में 'भागवत' पत्र के सम्पादक और श्रीयुत रूपविलास ब्रह्मचारीजी एक युक्तिपूर्ण भाषण दिये थे। प्रायः ५०० श्रोतागण उपस्थित थे।

Regd. No. P. 408.

श्रील प्रभुपाद की पत्रावली—(तृतीय खण्ड)

आचार्य-प्रकट तिथि में श्रील प्रभुपाद की पत्रावली का तृतीय खण्ड प्रकाशित हुआ है। प्रत्येक पत्र विशेष शिक्षाप्रद व सारगर्भ उपदेश से परिपूर्ण हैं। हमलोग प्रत्येक मंगलकामी व सत्य का अनुसन्धान करनेवाले व्यक्ति को इस पत्रावली को पाठ करने का अनुरोध करते हैं।

श्रीचैतन्यदेव

श्रीचैतन्यदेव के आविर्भाव के पहले व बाद भारत व बंगाल की राजनैतिक अवस्था, अर्थ-नैतिक अवस्था, विद्या, साहित्य व समाजिक अवस्था, धर्मजगत की अवस्था, समसामयिक पृथिवी की अवस्था, नवद्वीप का परिचय व तथ्य और प्रमाणिक ग्रन्थ व विवरण समूह सहज व सरल भाव में साधारण के पढ़ने के योग्य वर्णन किया गया है। ग्रन्थ में अनेक चित्र व मानचित्र दिए गए हैं। सुन्दर जिल्द भक्त, साधारण व्यक्ति व विद्यालय के छात्र सभी के लिए यह ग्रन्थ उपयोगी व प्रीति देनेवाला होगा। भिक्षा १)। प्राप्तिस्थान—श्रीगौड़ीयमठ, पो० बागबाजार, कलकत्ता। श्रीमाध्वगौड़ीयमठ, पो० वोयारी, ढाका।

सरस्वती जयश्री

गौड़ीय-वैष्णवाचार्य ॐ विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद का भुवन के मंगलदायक जीवनचरित ग्रन्थ है। निर्म्मत्सर शुद्धभक्ति पिपासु व्यक्ति इस ग्रन्थ के पाठ से युगपत् अनेक शास्त्रग्रन्थ पाठ व अनेक साधुसङ्ग का फल लाभ कर सकेंगे। वैभवपर्व का प्रथम खण्ड रायल ८ पेजी आकार में एन्टिक कागज पर पर उत्तमरूप से मुद्रित, ३६० पृष्ठों में। विस्तृत सूचीपत्र के साथ इसमें अनेक चित्र भी दिए गए हैं। भिक्षा ४)

'सामयिक-संख्या'—गौड़ीय

सामयिक-संख्या गौड़ीय अनेक त्रिवर्ण व एकवर्ण चित्र-शोभित व अनेक श्रेष्ठ वैष्णवसाहित्यिकगणों की गवेषणापूर्ण प्रबन्ध से सुमण्डित होकर प्रकाशित हुई है। श्रीधाम-मायापुर में श्रीश्रीगौरजन्मोत्सव के उपलक्ष में सर्वसाधारणों के लिए भिक्षा ॥) आना।

ठाकुर भक्तिविनोद

श्रीरूपानुगशुद्धभक्ति स्रोत के प्रवाह का मूल पुरुष ॐ विष्णुपाद श्रील ठाकुर भक्तिविनोद का जीवनचरित व शिक्षामाला बहुत सरल भाषा में बड़े बड़े अक्षरों में मुद्रित। भिक्षा ।॥) मात्र। प्राप्तिस्थान—कलकत्ता (बागबाजार) श्रीगौड़ीयमठ व ढाका—श्रीमाध्वगौड़ीय मठ।

अणुभाष्यम्

चार अध्यायों ब्रह्मसूत्र के प्रत्येक अधिकरण का तात्पर्य श्रीमन्मध्वाचार्य-कृत श्लोकाकार में बहुत संक्षेप में बना हुआ। बंगभाषा में सर्वप्रथम संस्करण। पहले प्रति अध्याय के प्रतिपाद का श्रीमन्मध्वाचार्य-विरचित अणुभाष्यमूल, उसके बाद प्रति अध्याय के प्रतिपाद का सूत्र-समूह, अणुभाष्य-मूल का बंगला अनुवाद व श्रीपाद राघवेन्द्रयतिविरचित तत्वमञ्जरी टीका, उसका बंगला अनुवाद व तात्पर्य इस क्रम से पुस्तक मुद्रित हुई है। इसके अतिरिक्त मातृका क्रम से ब्रह्मसूत्र समूह, उसका अध्यायांक, पदांक व सूत्रांक के साथ सूचीपत्र भी संयोजित हुआ है। भिक्षा २) मात्र।

Printed by:— Brajeshwari Prasad, at The 'Indian Nation Press' and published by him from Sree Gaudiya Math, Mithapur, Patna.

वर्ष ४]　　श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः　　संख्या ६]

भागवत

एकमात्र
पारमार्थिक
मासिक पत्र

५ दामोदर
गौराब्द
४५२

कार्त्तिक कृष्ण ५
संवत
१९९५ वि०

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥१॥

जिससे इन्द्रिय ज्ञानातीत श्रीकृष्णमें श्रवणादि-लक्षणा फलाभिसन्धान रहिता एकान्तिकी स्वाभाविक निरपेक्षा भक्ति उदय होती है, वही मानव जातिका सर्वश्रेष्ठ धर्म है— उसी भक्तिके बलसे अनर्थ उपशान्त होनेसे आत्मा प्रसन्नता लाभ करती है।

प्रति संख्या -)॥

सम्पादक-त्रिदण्डि-स्वामी श्रीभक्तिभूदेव श्रौती महाराज

वार्षिक १)

Editor—Tridandiswami Sree Bhakti Bhudeb Shrauti Maharaj

विषय सूची

उद्देश्य

शुद्ध भागवद्भक्तिका प्रचार करना

प्रबन्ध-सम्बन्धी

(१) यह पत्र प्रति मास ५ कृष्णको प्रकाशित होता है।

(२) इस पत्रकी डाकव्यय सहित वार्षिक भिक्षा १) है।

(३) इस पत्रकी प्रति संख्याकी भिक्षा ~)॥ है।

लेख-सम्बन्धी

लेखकोंको केवल भागवत धर्म सम्बन्धी लेख ही भागवत पत्रमें छपनेके लिये सम्पादक "भागवत" के पतामें भेजना चाहिये। जो लेख सम्पादकको पसन्द न होगा वह नहीं छापा जायगा और वापस भी नहीं किया जायगा।

विज्ञापन-सम्बन्धी

"भागवत" में विज्ञापन छपाईका दर नीचे लिखा है :—

साधारण पृष्ठ

प्रति संख्या

पूरा पृष्ठ या दो कालम	...	८)
आधा " १ "	..	५)
चौथाई ¼ "	..	३)
२ इंच " "	.	१॥)
१ " " "	.	[illegible]

स्थायी विज्ञापन और कवरपर विज्ञापन छपानेका रेट नीचे लिखे पतेपर पत्र व्यवहार द्वारा तय करना चाहिये।

पत्र व्यवहारका पता :—

मैनेजर——"भागवत"

श्रीगौड़ीयमठ,

मीठापुर, पटना।

All communications are to be addressed to—

The Manager '*Bhagwat*'

SRI GAUDIYA MATH

Mithapur, Patna

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः ॥



कृष्णे स्वधामोपगते धर्म्मज्ञानादिभिः सह । कलौ नष्टदृशामेष पुराणार्कोऽधुनोदितः ॥

श्रीगौड़ीयमठ, मीठापुर (पटना)

वर्ष ४ | कार्तिक कृष्ण ५, सं० १९९५ वि०, १८ अक्टूबर सन् १९३८ ई० | संख्या ६

❋ शरण गये को को न उबार्‌यो ? ❋



जब जब भीर परी संतनको चक्रसुदर्शन तहाँ सँभार्‌यो

भयो प्रसाद जो अम्बरीषको दुर्वाशाको क्रोध निवार्‌यो ।

ग्वालन हेतु धर्‌यो गोवर्धन प्रगट इन्द्रको गर्व प्रहार्‌यो ॥

कृपा करी प्रह्लाद भक्त को, खंभ फारि उर नखन विदार्‌यो ।

नरहरि रूप धर्‌यो करुणा करि छिनक माँहि हरनाकुश मार्‌यो ॥

ग्राह ग्रसत गजको जल बूड़त नाम लेत वाको दुःख टार्‌यो ।

सूर-श्याम बिनु और करै को रंगभूमिमें कंस पछार्‌यो ॥



श्रीकृष्णजन्माष्टमी तथा श्रीनन्दोत्सव

(प्रयागके श्रीरूपगौड़ीयमठमें श्रीनन्दोत्सवके दिन श्रीयुत अवध बिहारी लाल कपूर, एम० ए० का व्याख्यान)

उपस्थित सज्जनवृन्द,

आज श्रीकृष्णजन्माष्टमीके उपरान्त श्रीनन्दोत्सव मनानेके लिये हम यहां एकत्र हुए हैं। प्रत्येक वर्ष इसी प्रकार हम बड़े उत्साह और समारोहके साथ श्रीकृष्णजन्म और नन्दोत्सव मनाया करते हैं। पर क्या हम इन त्योहारोंके वास्तविक आध्यात्मिक अर्थको जानते हैं? मेरा अनुमान है कि शायद हममेंसे बहुतसे सज्जन इससे अनभिज्ञ हैं। केवल यही नहीं बल्कि और भी बहुतसे ऐसे त्योहार होंगे जिनका ठीक ठीक उद्देश्य हम नहीं जानते लेकिन इस धारणासे कि हमारे पूर्वज सैकड़ों वर्षसे उन्हें मनाते आये हैं हम भी उनका प्रति वर्ष पालन करते हैं। परन्तु मनुष्य समाजमें कोई भी ऐसा कार्य जो बिना समझे बूझे किया जाता है मनुष्यके स्वभावके विपरीत होता है। अंग्रेजीमें मनुष्यकी परिभाषा है —Rational animal, अर्थात बुद्धिमान जीव। भगवानने मनुष्यको बुद्धि दी है, इसलिये कि वह जब कोई कार्य करे तो उसके उद्देश्यपर पहले विचार कर ले। ऐसा करनेसे उसे अपने कार्यमें पूरी सफलता होगी। इसमें सन्देह नहीं कि धर्म-कार्य बहुतसे बिना समझे बूझे केवल इस भावनासे किये जानेपर भी कि वह भगवत निमित्त हैं फलदायक होते हैं, परन्तु यदि वह विचारपूर्वक किये जाय तो अवश्य उनका फल और अधिक होगा।

इसके पूर्व कि मैं आजके उत्सवके आध्यात्मिक अर्थके सम्बन्धमें जैसा गुरुजनोंसे मैंने सुन रक्खा है, उसके अनुसार कुछ कहूँ, यह आवश्यक प्रतीत होता है कि संक्षेपमें श्रीकृष्णजन्मकी कथा कह दूं। आपमेंसे प्रायः सभी लोगोंने श्रीकृष्णजन्मकी कथा पहले भी कितनी बार स्वयं पढ़ी होगी और पंडितोंसे सुनी होगी। इसलिये यह शंका हो सकती है कि शायद आपको आज फिर उसी कथाको सुननेमें कुछ आनन्द न मिले और आप मेरे वक्तव्यसे ऊबने लग जाय। परन्तु मैं जानता हूँ कि भगवानके चरित्रकी कथा भक्तजनोंको प्रिय हुआ करती है और अनेक बार उसे कह सुन लेनेपर भी उन्हें सदा उसका श्रवण और कीर्तन करनेकी इच्छा बनी ही रहती है। यही तो भगवान और उनके सुन्दर चरित्रकी विशेषता है। भगवान जिस प्रकार नित्य नवीन हैं और भक्तगण जिस प्रकार उनके दर्शनसे नित्य नवीन रूपमाधुरीका अनुभव कर उत्तरोत्तर आनन्दको प्राप्त होते हैं उसी प्रकार भगवानके नाम, गुण और लीला आदिका श्रद्धाके साथ जितनी बार श्रवण किया जाता है उतना ही और अधिक आनन्द उनसे प्राप्त होता है। जागतिक विषयोंका जितना भोग किया जाता है उतनी ही उनसे रुचि हटती जाती है। किसी एक ऐतिहासिक किस्सेको एक बार सुन लेनेसे फिर उसे बार बार सुननेकी इच्छा नहीं होती और किसी देश अथवा नगरको दो चार बार देख लेनेके पश्चात उसे फिर देखनेकी उतनी तबियत नहीं करती। परन्तु जब इन जागतिक विषयों का ही अनेक बार भोग करनेमें बहुतसे लोग अपनी

बड़ाइ समझते हैं और बहुधा गर्वके साथ कहा करते हैं कि "मैंने इतनी बार शेक्सपियरके ड्रामा आदिसे अन्त तक पढ़ डाले हैं" "मैं इतनी बार हवाई जहाजपर बैठ चुका हूँ", अथवा 'मैं अमुक बार लन्दन शहरकी यात्रा कर आया हूँ" तो इसमें आश्चर्यकी क्या बात है यदि भगवद् प्रेमी लोग अनेक बार भगवान् कृष्णके जन्मकी कथाका श्रवण कीर्त्तन कर लेनेपर भी हृदयमें और अनेक बार उसे सुननेके लिये उत्सुक हों, वह भी विशेष कर इस शुभ अवसरपर जब कि स्वतः ही उनके हृदयमें भगवानके दिव्य चरित्रकी स्मृति जाग्रत हुआ करती है।

प्राचीन ज्योतिषियोंने भगवान् कृष्णके जन्म-समयके ग्रहनक्षत्रोंके अवस्थानके अनुरूप गणना करके यह स्थिर किया है कि उनका जन्म इस समयसे ५० वर्षसे कुछ पूर्व, अर्थात् कलियुगके आरम्भ और द्वापरके शेष भागमें हुआ था। उस समय यादवोंका राजा कंस मथुरामें राज्य करता था। वह बड़ा दुराचारी और नास्तिक था। उसने अपने पिता उग्रसेनको राज-गद्दीसे उतार कर राज्यपर अपना अधिकार जमाया था। देवकी उसकी बहिन थी। जिस समय वसुदेव देवकीको व्याह कर रथमें लिये जा रहे थे, कंस वसुदेवका रथ हाँक रहा था। उस समय अकस्मात् आकाशवाणी हुई कि 'हे दुष्ट! तू जिस देवकीका रथ हाँक रहा है उसके आठवें गर्भसे उत्पन्न बालक तेरी मृत्युका कारण होगा।' इतना सुनते ही कंस भगिनीके स्नेहको भूल गया और अपने शत्रुकी जड़ काटनेके उद्देश्यसे वह देवकीको मारनेके लिये खड्ग लेकर खड़ा हो गया। वसुदेवने उस समय बहुत ज्ञानोपदेश द्वारा कंसको इस घृणित कार्यसे बचाना चाहा परन्तु उसने एक न मानी। अन्तमें वसुदेवने इस बातकी प्रतिज्ञा की कि देवकीके गर्भसे जितनी सन्तान उत्पन्न होगी सबको वह कंसके पास स्वयं ले जाकर उसके हवाले कर देंगे। यह बात उसकी समझमें कुछ आ गई और उसने देवकी की प्राण-हत्या नहीं की। परन्तु उसने वसुदेव और देवकीको कैदखानेमें डाल दिया और एक एक कर पहली छः सन्तानोंका बध किया। सातवीं बार जब विष्णु भगवानके अंश अनन्त भगवान् देवकीके गर्भमें आये तब योगमायाने उस गर्भको खींच कर वसुदेवकी दूसरी पत्नी रोहिणीके गर्भमें स्थापित किया जो उस समय गोकुलमें वसुदेव के अन्तरंग मित्र नन्दके घरमें वास करती थी। इस रोहिणीके पुत्रका ही नाम बल-देव है जिन्हें गर्भके आकर्षण किये जानेके कारण सङ्कर्षण भी कहते हैं। वह गोकुलवासियोंके आनन्दकी वृद्धि करते थे, इसलिये उनका एक नाम राम पड़ा और वह भगवानके सेवकोंके हृदय-को सेवाकार्यके लिये बलप्रदान करते हैं इस कारण भक्तगण उन्हें 'बलदेव' पुकारते हैं। देवकीसे खींचा जाकर जब रोहिणीमें यह गर्भ स्थापित हो गया तब समस्त मथुरावासियोंने यह विचार किया कि देवकीका सातवां गर्भ नष्ट हो गया।

अब आठवें गर्भकी बारी आई। कंस अपने शत्रुका खाने-पीने, सोने-जागने ध्यान करते करते सारे जगतको शत्रुमय देखने लगा। इस समय भगवान् कृष्णने देवकीके गर्भमें प्रवेश किया। भगवानके गर्भमें प्रवेश करते ही देवकीके मुखपर एक अपूर्व तेज छा गया और समस्त कारागार एक अलौकिक छटासे आलोकित हो गया। ब्रह्मा, शिव, नारद

मुनिगण और देवगण देवकीके निकट आ कर गर्भकी स्तुति करने लगे। भाद्रमासकी कृष्णाष्टमी तिथिको रोहिणी नक्षत्रमें, समस्त दिशाएँ जिस समय प्रसन्न हो उठीं, देवता और मुनिगण पुष्पवृष्टि करने लगे, उसी अन्धकारमय रात्रिके समय कंस कारागारके सूतिकागृहमें देवकीकी शय्यापर कृष्ण आविर्भूत हुए। वसुदेवने भगवानको उस समय एक अद्भुत बालकके रूपमें देखा। उनकी चार भुजाएँ थीं जिनमें उन्होंने शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये थे। उनके वक्षःस्थलपर श्रीवत्सचिन्ह था। गलेमें कौस्तुभमणिकी माला और मस्तकपर वैदुर्यमणिसे सुसज्जित मुकुट शोभायमान था। पानीभरे बादलके समान श्याम शरीरपर पीताम्बर, मेखला, अङ्गद और कङ्कण आदिकी अपूर्व शोभा थी। विस्मययुक्त वसुदेवके नेत्र-कमल प्रफुल्लित हो उठे। हरिको पुत्ररूपसे अपने यहाँ प्रकट हुए देख कर वसुदेवके आनन्दकी सीमा न रही और उन्होंने कृष्णावतारके आनन्दसे संभ्रमयुक्त हो कर मनमें ब्राह्मणोंको दस हजार गौ दान करनेका संकल्प किया और कृष्णकी स्तुति करते करते उनसे अपने चतुर्भुजरूपको छिपा कर द्विभुजरूप प्रकाश करनेको कहा। श्रीकृष्णने वसुदेवको उनके पूर्वजन्मकी कथाकी स्मृति दिला कर अपने आपको शीघ्र ही गोकुलमें नन्दजीके यहां ले जानेको कहा। इधर गोकुलमें जिस रात्रिको भगवान देवकीके यहाँ आविर्भूत हुए थे उसी रात्रिको यशोदाके गर्भसे योगमायाने जन्म लिया था। योगमायाके प्रभावसे कारागारके पहरेदार और नागरिकगण घोर निद्रामें बेखबर पड़े थे, और उन्हीं योगमायाके प्रभावसे वसुदेवजी जिस समय बालकको ले कर कारागारके बाहर आनेको हुए, कारागारके दरवाजे आपसे आप खुल गये। वसुदेवजी भगवान्को ले कर गोकुलकी ओर जाने लगे, मार्गमें अंधकार छाया था और आकाशमें बादल गरज रहे थे। मन्द-मन्द वृष्टि भी हो रही थी। भगवानको वृष्टिसे बचानेके लिये अनन्त भगवान अपने छातेके समान फणोंको भगवानके ऊपर फैलाकर वसुदेवजीके पीछे पीछे चलने लगे। यमुनाने वसुदेवजीके पार उतरनेके लिये उसी प्रकार मार्ग दे दिया जिस प्रकार रामचन्द्रजीको लंका जाते समय समुद्रने दिया था। कुछ ही समय बाद वसुदेवजी गोकुल पहुंचे। समस्त गोकुल योगनिद्रामें पड़ा सो रहा था। कृष्णको यशोदाकी शय्यापर लिटा और योगमायाको गोदमें ले वह शीघ्र ही मथुरा लौट आये और योगमायाको देवकीकी शय्यापर लिटाके पूर्वकी भांति फिर कपाट बन्द कर दिये और अपने हाथ पैरोंमें बेड़ियां डाल लीं। समय पा कर योगमायाने अपने रोनेकी आवाजसे सोते हुए पहरेदारोंको जगा दिया। उन्होंने जाकर कंसको देवकीके आठवें गर्भका समाचार सुनाया। कंस सुनते ही देवकीके सूतिकागृहमें दौड़ा हुआ आया और योगमायाको मारनेके लिये तैयार हुआ। देवकीके अनेक प्रकारसे अनुनय विनय करनेपर भी उसने योगमायाको उसके हाथोंसे छीन लिया और दोनों हाथोंसे उठा कर वेगसे पत्थरके ऊपर दे मारा। कन्या कंसके हाथोंसे छूटते ही अष्टभुजी मूर्त्ति धारण कर आकाशमें उड़ गई और पुकारकर बोली 'हे दुष्ट, तेरे मारने वालेने अवश्य ही कहीं-न-कहीं जन्म ग्रहण किया है। इसलिये मेरी अथवा अन्य बालकोंकी हत्या करनेमें तेरा कुछ लाभ न होगा। देवीकी यह वाणी सुनकर कंसको बड़ा पश्चाताप हुआ। उसने तुरंत वसुदेव और देवकीको

मुक्त कर दिया और अपने मंत्रियोंसे परामर्श कर कर्मचारियोंको आज्ञा दे दी कि १० दिन तकके जितने भी बालक राज्यमें हों सबको यमपुरी पहुँचा दो। कृष्ण जन्मकी कथा सुनकर जनसाधारण-के हृदयमें एक स्वाभाविक शंका उत्पन्न होती है। भगवान् जन्म-रहित हैं। वह समस्त चित-अचित जगत्को उत्पन्न करने वाले हैं और सृष्टिके आदि और अन्तमें नित्य विराजमान हैं। भगवान्के ही नाभिकमलसे सृष्टिकी रचना करने वाले ब्रह्मा-का जन्म होता है और प्रलयके समय भगवान्के ही विराट-शरीरमें समस्त जीव-लयको प्राप्त होते हैं। ऐसे भगवान्का किसी एक कालविशेषमें एक स्त्रीके गर्भमें जन्म लेना एक उपहास जनक बात है। भगवान तो सर्वव्यापक हैं। हर समय और हर जगह पूर्णरूपसे विराजमान हैं। फिर उनका किसी समय एक विशेष स्थानमें प्रवेश करना कैसे युक्तियुक्त हो सकता है? भगवानने जब कौशल्या माताके गर्भमें राम रूपसे जन्म लिया था तब उन्होंने भी भगवानकी इसी प्रकार स्तुति की थी—

ब्रह्माण्ड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति वेद कहैं।

मम उर सो बासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै॥

भगवान्के चरित्रमें इस प्रकारके विरोध-को लेकर बहुतसे नास्तिकगण अपने मतकी पुष्टि करते और कहते हैं कि कृष्णका जन्म एक साधारण व्यक्तिकी भाँति एक स्त्रीके गर्भसे हुआ था इसलिये वह एक विशेष शक्तिशाली साधारण व्यक्ति थे, और उन्हें भगवान् या पूर्ण ब्रह्मके रूप-में मानना मनुष्य समाजकी भूल है। इस प्रकार-की युक्तिसे नास्तिक लोग जब भगवान्के ऊपर आक्षेप करते हैं तो मुझे भागवतमें कही हुई उस भस्मासुर या वृकासुरकी कथा याद आती है, जिसने शिवजीको अपनी तपस्यासे प्रसन्न कर यह वरदान प्राप्त किया था कि वह जिसके सिर-पर हाथ रक्खे वह भस्म हो जाय और फिर शिवजीपर ही उस वरदानकी परीक्षा कर उन्हें भस्म करना चाहा था।

जो नास्तिकगण अपनी तुच्छ बुद्धिसे भगवानकी भगवत्ताको नाश कर उन्हें एक जड़शरीरधारी जन्म-मृत्युके बन्धनमें बन्धे हुए साधारण जीव-के रूपमें ठहराना चाहते हैं, उनका भी व्यवहार ठीक भस्मासुर का-सा होता है। भगवानने जीवों-को बुद्धि इसलिये दी है कि वे उसकी सहायतासे सत्य-असत्यका निर्णय कर अपने कल्याणका प्रयत्न कर सकें और जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त हो सकें, न कि इसलिये कि भगवानको भी भगवान्के दिये हुए बुद्धिरूपी अस्त्रसे काटनेकी चेष्टा करें।

परन्तु शोकका विषय है कि केवल नास्तिक लोग ही नहीं, बड़े-बड़े अपनेको आस्तिक कहने वाले पंडित भी अकसर इस प्रकारके भगवानके चरणोंमें अपराध कर बैठते हैं। वह बलपूर्वक भगवान्के दिव्य चरित्रको अपनी क्षुद्र बुद्धिके साँचेमें ढालनेकी चेष्टा करते हैं और जब वह देखते हैं कि भगवान् उनकी बुद्धिके साँचेमें पूर्ण रूपसे नहीं समाते तो उनमें मनमानी काट-छाँट आरम्भ कर देते हैं। उदाहरण रूपसे भगवान्-के सम्बन्धमें जो साकार और निराकारका झगड़ा चला करता है उसीको ले लीजिये। भग-वानमें इन दोनों गुणोंका आरोप करनेमें

पंडितोंको विरोध मालूम पड़ता है। वह विचार करते हैं कि जो सत्ता निराकार सर्वव्यापक और अनंत है उसे नाम, गुण और रूपसे सीमाबद्ध करना उसकी पूर्णताकी हानि करना है, इसलिये वह साकार नहीं हो सकती। इसी प्रकार कुछ पंडितगण जिन्हें भगवानका साकार रूप प्रिय है वह भगवानको निराकार माननेमें आपत्ति करते हैं। उनके विचारसे भगवानका निराकार निर्गुण और निर्लेप मानना उनके सौन्दर्य पर आघात करना तथा उनके दिव्यगुणोंका भस्मीभूत करना है। अपनी जड़बुद्धिको प्रधान मान कर जब हम उसके सहारे भगवानके रूप और उनके चरित्रको समझने का प्रयत्न करते हैं तब इस प्रकारके और भी अनेकों झगड़े और तर्क वितर्क उठ खड़े होते हैं। धर्मशास्त्र और दर्शन शास्त्रमें भी हमारी बुद्धि अनेक प्रकारके मतमतान्तर उत्पन्न करती है। चैतन्य महाप्रभुने तथा उनके शिष्य जीवगोस्वामी आदिने भगवानके सम्बन्धमें इस प्रकारसे उत्पन्न होने वाली शंकाओंका बहुत सरल और स्वाभाविक रूपसे समाधान किया है। उनका कथन है कि भगवान सर्वशक्ति-सम्पन्न हैं और उनकी अनन्त शक्तियोंमें एक विरोधभंजिका शक्ति भी है जिसके कारण सब प्रकारके विरोधी गुणोंका उनमें सुन्दर समावेश होता है। भगवानकी भगवत्ता इसीमें है कि उसके लिये असम्भव भी सम्भव है, असंगतभी संगत है और जीवकी क्षुद्रता इसीमें है कि उसकी शक्ति सीमाबद्ध है और उसके अन्दर किसी एक गुणके होते हुए उसके विरोधी गुणके लिये कोई स्थान नहीं हो सकता। भगवान् सर्वव्यापक होते हुए भी एक स्थानमें विशिष्ट रूपसे निवास कर सकते हैं। जीव एक स्थानमें रहते हुए दूसरे स्थानमें नहीं रह सकता। भगवान् अनन्त और असीम होते हुए भी सीमाबद्ध हो सकते हैं परन्तु जीव एक सीमाके अन्दर रहते हुए उसी समय उस सीमाके बाहर नहीं हो सकता। जीव और जागनिक वस्तुओंका एक समय एक ही रूप होता है परन्तु भगवान् एक ही समयमें अनन्त रूप धारण करते हैं। आज कलके कुछ पाश्चात्य दार्शनिक तो जागनिक वस्तुओंके बारेमें यह सिद्ध करनेकी चेष्टा करते हैं कि प्रत्येक वस्तुके अनन्त रूप हैं और पृथक पृथक रूपका पृथक पृथक दशामें, अनुभव होता है। जब जागनिक वस्तुओंके बारेमें इस प्रकारकी कल्पना की जा सकती है तो भगवानके सम्बन्धमें तो यह निश्चित रूपसे युक्तयुक्त होनी ही चाहिये। इसलिये यदि भगवान् अनन्त अनादि, अविकार और अजन्मा होते हुए भी देवकीके गर्भसे जन्म लें तो इसमें आश्चर्य ही क्या हो सकता है। भगवान्की अचिन्त्य शक्ति है और वह अपने भक्तोंके हेतु नानाप्रकारकी लीला किया करते हैं जो जीवोंकी तुच्छ बुद्धिके बाहर होती है। जब भगवानकी कोई लीला किसी व्यक्तिकी समझमें न आवे तो उसे भगवानके चरित्रमें दोष लगानेके बजाय अपनी बुद्धिका ही दोष मानना चाहिये और भगवानसे प्रार्थना करनी चाहिये कि वह उसकी बुद्धिको शुद्ध करें जिससे कि वह उनकी दिव्य लीलाको समझ सके और उसके आनन्दकी उपलब्धि कर सके। यदि हम अपनी बुद्धिका अभिमान कर भगवान्को उसके फंदोंमें जकड़नेकी चेष्टा करेंगे तो हमारा हाल वही होगा जो भस्मासुरका हुआ था। उनकी जड़ बुद्धि शीघ्र ही उनका सर्वनाश कर देगी।

(क्रमशः)

भक्तिके अनुकूल तथा प्रतिकूल विचार

भक्तिके अनुकूल तथा प्रतिकूल विषय जाननेके लिये भक्तिके स्वरूपपरिचयकी धारणा होना आवश्यक है। साधारणतः संसारमें भक्तिके जो सब आदर्श देखे जाते हैं, दस पांच आदमी जिसको भक्ति कहते हैं, उन सब आदर्श वा धारणाओंमें शुद्ध-भक्ति बिलकुल ही पृथक वस्तु है। स्वराट लीलापुरुषोत्तमके सर्वेन्द्रियपरिपूर्ण-तृप्तिसाधनका दूसरा नाम भक्ति है। जहांपर सांसारिक किसीप्रकारकी विधिके नियामकत्व (संयमता) का अभाव है वा भगवानके स्वराटत्व एवं सर्वतन्त्रस्वतन्त्रताकी धारणा नहीं है, वहां पर भक्तिका स्थान नहीं है। वे निरङ्कुश स्वेच्छाचारी और सम्पूर्णरूपसे स्वाधीन हैं। मानव, देव, ऋषि प्रभृति प्रणीत कोई नीति वा बाधा उनके सम्मुख उपस्थित नहीं हो सकती। वे स्वेच्छामय, पुरुषगणोंके बीच उत्तम एवं लीलामय हैं। सम्पूर्ण विलास उनमें समन्वित है। जो परतत्व को (श्रेष्ठतत्व) निराकार निर्विशेषरूपसे धारणा करते हैं, उनको भक्ति प्राप्त होना असम्भव है, यद्यपि किसी विशेष कारणवश वे भक्ति शब्द उच्चारण करते हैं तौभी वह सच्ची भक्ति वा भजन नहीं है, वह भक्तिका व्यभिचारमात्र है। निराकार, निःशक्तिक निर्विष्ट ब्रह्ममें भक्ति शब्द प्रयुक्त नहीं हो सकता। इन्द्रियहीनको इन्द्रियतर्पण नहीं होनेसे ब्रह्ममें भक्तिका छल केवल भगवानको ठगनेके बहाने अपनेको वञ्चना करना है। भजनीयवस्तुके प्रति शरीर-मन-वचनके द्वारा जीवकी ओरसे चेष्टा ही भक्ति है। सुतरां निरिन्द्रियमें (इन्द्रिय रहित ब्रह्म) भक्तिका अवस्थान किस प्रकार सम्भव हो सकता है? भगवान् पूर्णरूपसे सर्वेन्द्रियवान्, पुरुषोत्तम हैं। ब्रह्मक्लीववस्तु (नपुंसक) हैं, उनमें भक्तिका प्रयोग नहीं होता, कृष्ण ही पुरुषोत्तम एवं पुलिङ्ग, सुतरां उन्हींमें भक्तिका पूर्णरूपसे प्रयोग होता है।

उसी लीलापुरुषोत्तमके समस्त इन्द्रियोंके पूर्णतृप्तिविधानके लिये 'को सब साधक और को सब बाधक हैं' यही आज हम लोगोंका आलोच्य विषय है। साधक अनुकूल, बाधक प्रतिकूल हैं। भक्तिके अनुकूल एवं प्रतिकूल विचारके महाजन श्रीमन्महाप्रभुके शक्त्याविष्ट श्रील रूपगोस्वामी प्रभुने लिखा है:—

उत्साहान्निश्चयाद्धैर्य्यात्तत्तत्कर्म्म प्रवर्त्तनात्
सङ्गत्यागात् सतो वृत्तेः षड्भिर्भक्तिः प्रसिध्यति ॥
अत्याहारः प्रयासश्च प्रजल्पो नियमाग्रहः ।
जनसङ्गश्च लौल्यञ्च षड्भिर्भक्तिर्विनश्यति ॥

उत्साह—भक्तियाजनमें उत्साहकी आवश्यकता है। हरिगुरुवैष्णवकी सेवामें बाधा-विघ्न उपस्थित होनेसे हमलोगोंमें उत्साह नहीं रहता, भक्तिके ऊपर संदेह होता है। संसारादि त्याग करके मठमें वास करते हैं, किन्तु कुछ दिनके उपरान्त मनमें विचार करते हैं कि मेरी आशा तो पूरी नहीं हुई। भक्तिराज्यमें लाभकी आशासे आकर यदि निरुत्साह हो, तो वह मायाकी परीक्षा है। अनुकूल विषयोंकी ओर बढ़नेके लिये, सेवावृत्तिको क्रमशः प्रकट करनेके लिये उत्साहकी आवश्यकता है। कृत्रिम चेष्टासे उत्साह प्रस्तुत नहीं हो सकता। स्वाभाविक उपाय है—केवल वैष्णवलोगोंकी, गुरुदेवकी, भगवानकी कृपा प्रार्थना। कृपा प्रार्थना करनेसे दीनताकी वृद्धिके साथ साथ उत्साहकी वृद्धि होती है। साधु-गुरु-भगवानकी कृपा निष्कपट हृदयमें प्रार्थना करनेसे उत्साह बढ़ता है। मायाग्रसित होनेके

सबसे कातरक्रन्दन आवश्यक है। सचमुच उत्साह चाहनेसे वे (साधु-गुरु-भगवान्) सम्पूर्ण विपदाओंसे उद्धार करते हैं। उत्साह विघ्न द्वारा ही अधिकतर निर्मलरूपसे प्रकाशित होता है। प्रति विघ्नसे उत्साहकी मात्रा बढ़ती जाती है। सभी तपस्यामें भी सैकड़ों विघ्न उपस्थित होते हैं और गोविन्द भक्तिमें भी अनन्त बाधायें उपस्थित होती हैं, सम्पूर्ण निकटवर्ती जगत शत्रुता करता है। किन्तु ये सब भगवत्-कृपाके चिन्ह हैं। उनसे उत्साहकी असीम वृद्धि होती है। भक्तिके अनुकूल विचारोंमें उत्साह ही सबसे पहला एवं प्रधान है। बाधाके कारण पतन होनेपर भक्त-भगवानकी कृपासे उनके समीप दीन भावसे कातर प्रार्थना करनेसे सम्पूर्ण आत्म निवेदन होनेसे फिर उत्साहकी धारा प्रवाहित होगी।

निश्चय गुरुवैष्णवकी वाणीको ध्रुवतारा मानकर चलनेसे, निश्चय ही हमलोग भक्तिपथमें अग्रसर हो सकेंगे। हमलोग अनेकबार हृदयमें निश्चय समझते हैं। उसका अनुसरण करनेसे उल्टा फल होगा। गुरुवैष्णववाणीरूपी कसौटीको यदि सर्वदा सामने स्थापन करके असतसङ्ग त्यागकर भजनपथपर चलें, तभी मङ्गल होगा। उत्साह जिस प्रकार आवश्यक है उसी प्रकार वैष्णवकी कृपा प्राप्त करनेके लिये उनकी वाणीमें ध्रुव विश्वास होना चाहिये।

धैर्य—सत् ही मन निश्चय होनेसे ही नहीं होता। धैर्य धारण करना होगा। भक्तिका चरमफल प्राप्त करनेके लिये जन्म जन्मान्तर चले जा सकते हैं, अथवा वह थोड़े ही दिनमें प्राप्त हो सकता है। अपने आत्मनिवेदनके परिमाणकी हमलोग परीक्षा नहीं करते। अपनेको भगवानके प्रति कितना समर्पण किया है एवं हममें कितना दोष है इन सब बातोंकी परीक्षा करने ही से भक्ति बढ़ती है। विचार करने ही से हम देख सकेंगे—निजेन्द्रिय-तर्पण के लिये सब विषयादि रख दिये हैं। कभी अन्याभिलाष, कभी कनक-कामिनी-प्रतिष्ठाशा प्रभृति, कभी क्षुद्र विषय-स्पृहा हमको बाधित करती रहती है। सम्पूर्ण रूपसे आत्मसमर्पण होनेसे समस्त बाधा-विघ्न एक ही बार कट जाते हैं।

कृष्ण तोमार हइ यदि [illegible] एकबार।
माया बन्ध हते कृष्ण तारे करेन पार॥

हृदयसे आत्मवृत्तिद्वारा जिस समय सर्वस्व समर्पण कर सकेंगे, उस समय धैर्य क्रमशः भगवत् चरणारविन्दमें आकृष्ट करेगा "मैंने वर्तमान समयके सभी पदार्थोंको अपना करके रख छोड़ा है। मुझ दुर्बलको बाधा विघ्नको अतिक्रम करनेकी शक्ति कहां है? विक्रीत पशु होकर धीरताके साथ कातर निवेदन छोड़कर और उपाय क्या है? मैं दुर्बल, अन्याभिलाषी, इन्द्रियतर्पण पिपासु हूं किसप्रकार आपकी सेवा-प्राप्त करने योग्य होऊंगा, यह मैं नहीं जानता। इस समय आपको सब समर्पित कर चुका हूं, मारिये या रखिये आपकी इच्छा।" सुतरां हृदयसे इसप्रकार अनुभूतिके साथ कातर होकर कृपा प्रार्थना-पूर्वक समयकी प्रतीक्षा करनी होगी।

तत्तत् कर्म प्रवर्त्तन—आलसी होकर बैठ रहनेसे कभी भी उन्नति नहीं होगी। भक्तिके अनुकूल कार्योंको करना होगा। गुरुदेवके समीप रहकर विश्रम्भके साथ उनकी सेवा करनी चाहिये। गुरुदेवकी सर्वेन्द्रियां प्रतिक्षण कृष्णेन्द्रिय-तोषणमें नियुक्त हैं। उनके पीछे रहकर कृष्णेन्द्रिय तोषणमें सहायता करनी ही कृष्ण-सेवा है। कृष्णको मैं नहीं जानता अथवा मेरे प्राकृत इन्द्रिय-द्वारा उस

अधोक्षज (इन्द्रियज्ञानातीत) की सेवा नहीं हो सकती--यह कहकर निश्चेष्ट हो जानेसे, अवहेलना करनेसे कुछ भी उन्नति नहीं होती । भगवद्भक्तिपथमें अग्रसर होनेका अभिनय (दिखावट) करके भी हृदयसे विषयाशक्तिरूपी लङ्गर उठाया नहीं गया । भगवान्ने नाममें सब शक्तियाँ दे रक्खी हैं । अग्रसर होनेकी चेष्टा करनेमें भगवान् ही बल प्रदान करेंगे । अपने अहङ्कारके साथ अग्रसर होनेकी चेष्टा करनेसे सभी व्यर्थ हो जायगा । अपनी बुद्धि एवं विचारका व्यवहार करके अपनेको वञ्चितकर एवं अकर्मण्य होकर बैठ जानेसे काम नहीं चलेगा ।

सङ्गत्याग--असत्सङ्ग-त्याग ही प्रथम अनुकूल कर्म है । स्त्रीसङ्गी और कृष्णका अभक्तसङ्ग नहीं छोड़ सकनेसे क्या भक्तिपथपर चलना हो सकता है ? चेष्टा करके असत्सङ्ग त्याग करना होगा । सर्वेन्द्रिय द्वारा कृष्णके सम्पूर्ण भोगोपकरण वस्तुके प्रति भोग बुद्धि त्याग करना होगा । नश्वरवस्तुके प्रति भोग्य-दर्शनकारी वा उसको त्यागकारी दोनों ही असाधु पद-वाच्य हैं । दोनों ही का सङ्ग त्याग करना होगा । भगवत्सेवाके उपकरणमें अपनी इन्द्रियोंका इन्धन--ज्ञान जिन लोगोंको हुआ है, वे तो नास्तिक और असाधु हैं, और जो सेवोपकरण वस्तुको वृथा समझकर त्याग करते हैं, भगवानकी इन्द्रियोंका अभाव समझकर उनको निराकार निर्विशेष समझते हैं, वे अधिकतर असाधु हैं । वे कृष्णके विलासको स्वीकार नहीं करते, सुतरां नास्तिकसे भी बढ़कर असाधु हैं । हमलोगोंके देशमें वर्तमान समयमें इस प्रकारके धार्मिकलोग भोगीका सङ्ग त्याग करनेका उपदेश देते हैं, किन्तु त्यागीका सङ्ग परित्याग करनेका उपदेश नहीं देते । दोनोंको छोड़कर कृष्णका संसार करना होगा ।

कृष्णेर संसार कर छाड़ि अनाचार ।
जीवे दया कृष्णनाम सर्वधर्म सार ॥

कृष्णका संसार करनेसे भोगका संसार त्याग करना होगा । संसारके सम्पूर्ण पदार्थोंको उचितरूपसे कृष्णके इन्द्रियतर्पणमें लगाना होगा । पाप और पुण्य, दोनों ही अनाचार हैं । तीर्थभ्रमण, वैदिक कर्मकाण्ड, पुण्यलाभ, स्वर्गगमन--भोग एवं प्रतिष्ठा अनाचार हैं, पुण्यकामी भक्त नहीं है ।

जीवोंके प्रति दयाके साथ कृष्णनामका घनिष्ठ सम्बन्ध है । जीवोंके प्रति दया नहीं करनेसे कृष्ण-नाम उच्चारित हो ही नहीं सकते । जीवोंका स्थूलदेह वा सूक्ष्मदेहके प्रति दया, दया नहीं । सामान्य नैतिक व्यक्ति जीवोंका स्थूल वा सूक्ष्म देहोंके प्रति दया दिखलाते हैं । पीड़ाका आरोग्य वा प्राकृत विद्या वितरण--जीवोंकी स्थूलदेह वा मानसदेहका किञ्चित् क्षणभङ्गुर उपकार है । जीवोंके प्रति दयाका प्रकृत (सच्चा) तात्पर्य ही उनकी आत्मा, चेतनताके प्रति दया है । शुद्ध हरिनामकीर्त्तनके अतिरिक्त आत्माके प्रति दया नहीं की जाती । अपनी आत्मा एवं संसारके सभी जीवोंकी आत्माओंके प्रति दया करनी होगी जो समस्त धर्मका सार है । अपनेको दाता अभिमान करके नहीं । दयाके मालिक वैष्णवोंके चरणारविन्दके रजको प्राप्त करनेकी आशासे हरिकीर्त्तनका आश्रय लेना होगा ।

कुछ लोगोंके मनमें ऐसा विचार हो सकता है कि भक्ति याजन करनेमें दुर्जनसङ्ग त्यागकरनेसे दूसरोंके प्रति विद्वेषभाव क्यों आता है ? निन्दा नहीं होनेसे उससे त्यागका भाव कैसे आयगा ? किन्तु विचार करना होगा--दुःसङ्ग त्याग-द्वारा मेरा अपना एवं असद्गणोंका दोनों पक्षका मङ्गल होगा ।

साधुपथमें जानेके लिये असनका त्याग करनेसे उस समय भी अपनी भूल समझमें आ सकती है।

साधुकी वृत्ति—साधु जिस प्रणालीमें सेवाका अनुशीलन करते हैं, उसका अनुसरण करना होगा। अमानी मानद (अपने लिये मानकी आशा नहीं करके सभीको मान करना), तृणादपि सुनीच (तृणसे भी बढ़कर तुच्छ) होकर अनुशीलन करना चाहिये। दाम्भिकता लेकर व्यस्त रहनेसे भक्तिका आविर्भाव नहीं होता। चेतन पदार्थकी दीनता, हृदयके अन्तस्थलमें (भीतर) दीनता चाहिये। दीनताका विग्रह (स्वरूप) होना होगा। दूसरेको सम्मान देंगे। मैं हीन तुच्छ हूं यह मुखसे केवल कहने ही से नहीं चलेगा। दीनता हृदयमें जागनेसे कृष्णसेवाकी उत्कण्ठा उपस्थित होगी--विप्रलम्भ-भाव आयगा। संसारके सम्पूर्ण पदार्थ ही मेरे गुरु हैं। मैं अपदार्थ हूं (सारहीन) मुझसे गुरुसेवा, कृष्णसेवा नहीं हुई-- हृदयमें इस प्रकारकी गाढ़-अनुभूति (Feeling) होनी चाहिये। वृक्ष जिस प्रकार काटनेपर भी कुछ नहीं बोलता है, जलाभावसे मृत्यु होनेपर भी वृक्ष कुछ इच्छा प्रकट नहीं करता है, इसीप्रकारके साधुगणोंका अनुसरण करना होगा। उससे ही भक्ति क्रमशः बढ़ेगी। भक्ति--जीवका सहज (स्वाभाविक) धर्म है, जीवका स्वभाव है, वह चेतनके साथ सर्वदा रहती है। किन्तु धैर्य, उत्साहादि नहीं रहनेसे वह लुप्त होकर रहेगी।

भक्तिके केवल अनुकूल विचारोंको जाननेसे असम्पूर्णता रहेगी। प्रतिकूल कार्योंको छोड़ना भी सभी प्रकारसे आवश्यक है। अन्वय तथा व्यतिरेक (direct and indirect) दोनों ज्ञान नहीं रहनेसे एकान्तिकता (एक लक्ष्य) नहीं आयगी। प्रतिकूल विचार ये हैं;——

अत्याहारः प्रयासश्च प्रजल्पो नियमाग्रहः।
जनसङ्गश्च लौल्यञ्च षड्भिर्भक्तिर्विनश्यति॥

अत्याहार--'आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवास्मृतिः' इन्द्रिय द्वारा विषय ग्रहण ही आहार है। अपने भोगके लिये विषय-ग्रहणको आहार कहते हैं। दश इन्द्रियोंके आहारकी अपेक्षा मनका आहार अत्यन्त भीषण एवम् अदमनीय है। श्रीतुलसीदासजी कहते हैं--"तनकी भुख तनिक है तीन पाव क्या सेर। मनकी भुख अनेक है निगलत मेरु सुमेर॥" मनकी आहरण-प्रवृत्तिकी निवृत्ति नहीं है। शरीरका आहरण निरस्त करनेसे भी नहीं चलता है, उसको यत्नपूर्वक अच्छे रास्तेपर लाने ही से काम चलेगा। तब अत्याहार-प्रवृत्ति चली जायगी उसको ध्वंस करना असम्भव है। इन्द्रियोंका नाश करनेकी प्रवृत्ति रहनेसे नहीं चलेगा। काम क्रोधादि रिपुओंको भगवानकी सेवाकार्यमें लगानेसे वे समस्त इन्द्रियोंको सत्पथमें संचलित देंगे। उस समय इन्द्रियोंकी आहरण चेष्टा चली जायगी।

ईहा यस्य हरेर्दास्ये कर्म्मणा मनसा गिरा।
निखिलास्वप्यवस्थासु जीवन्मुक्तः स उच्यते॥

हरिदासको अनन्त चेष्टा चाहिये। काम-प्रतिहत होनेसे क्रोधकी उत्पत्ति होती है। भगवानके भक्तगण निरन्तर कृष्णकामी हैं। उनलोगोंके कृष्णेन्द्रियतर्पण-के बाधकगण असुर श्रेणीमें गिने गये हैं। उन असुरोंके प्रति क्रोधका विक्रम दिखाना होगा। असुरोंकी चेष्टा हजम करनेसे इष्टसेवामें शिथिलता आयगी एवं सेवामें फुरसत हो जायगी। हमलोगोंकी सन्देशादि मिष्टान्नद्वारा जिह्वा-परितृप्तिकी इच्छा दुर्दमनीय है। हरिकथा मधुरसे भी सुमधुर, अप्राकृत अमृत है। साधुसङ्गमें उस अमृतको सेवन करनेके लिये निरन्तर उत्कण्ठा-पोषण करना होगा।

कर्णद्वारा उस अमृतका पान करनेसे वाक्यवेग, मनोवेग, क्रोधवेग, जिह्वावेग उदरवेग, उपस्थवेग एवं समस्तवेग प्रशमित (शान्त) हो जायेंगे। इष्टलाभ भगवद्दास्य-प्राप्तिमें सामान्य विलम्ब आकर उपस्थित होनेसे मोह वा मूर्च्छा आकर उपस्थित होगी। अर्थ, पुत्रादिके लिये हमलोगोंको मोह होता है। यह सब परम अर्थ, चरम मङ्गल नहीं है। कृष्णदास्य प्राप्त करनेके लिये अपनेको नितान्त अभावग्रस्त समझनेसे ही कृष्णसेवामें मोहका व्यवहार होता है। कृष्णगुणगानमें मदको नियोग करना होगा। जो कृष्णभजनसे धनी हैं, उनके समीप पृथ्वीकी सर्वश्रेष्ठ सम्पत्ति भी अत्यन्त तुच्छ है। जिस प्रकार श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वतीने कहा है, श्रीमन्महाप्रभुके चरणसेवकगण इन्द्रके ऐश्वर्यकी भी इच्छा नहीं रखते। केवल मत्सरता ही कृष्णसेवामें नियुक्त नहीं की जा सकती। दूसरोंकी श्रेष्ठताको सहन करनेमें असमर्थ होनेका नाम मात्सर्य है यह हिंसावृत्ति है। भगवद्भक्तोंमें यह (मत्सरता) किस प्रकार सम्भव हो सकती है? अत्यधिक इन्द्रिय-सेवाकी चेष्टा ही अत्याहार है।

यावता स्यात् स्वनिर्व्वाह स्वीकुर्य्यात् तावदर्थवित्।
आधिक्ये न्यूनतायाञ्च च्यवते परमार्थतः॥

हमलोग स्वयं अपने सम्पूर्ण अभावोंके सृष्टि-कर्त्ता हैं। जीवन धारणका केवल उपयोगी भगवत् प्रसाद ग्रहण तथा एकादश्यादि व्रतसम्मान द्वारा अत्याहारप्रयास दमन होगा। निष्कपट भजन-प्रयासी अभावको सङ्कुचित करके रखते हैं। गृहस्थ वा गृहत्यागी सबोंके प्रति एक ही विचार है। बहुत बार गृहत्यागी लोगोंके बीच भी जिह्वाकी लोलुपता अधिक देखी जाती है। सम्पूर्ण लोभ इत्यादि जिह्वाको केन्द्र बनाकर, उसको आश्रय करके रहते हैं। जिह्वाके लोभको नहीं जीतनेसे कोई इन्द्रिय वशीभूत नहीं हो सकती। केवल आहारके लोभमें विलासप्रियता आकर हमलोगोंको भजन-पथसे अलग कर देती है।

प्रयास अत्यन्त भयानक है। मनुष्यमात्र ही प्रयासके पक्षपाती हैं। प्रयास तीन प्रकारके होते हैं—कर्मप्रयास, ज्ञानप्रयास और भक्तिप्रयास। कर्मप्रयास प्रायः कर्मवीरत्व प्रदर्शन करता है, असाध्यसाधन करनेमें विमुख नहीं होता। वह प्रतिष्ठा प्राप्त करनेके लिये कर्म करनेकी योग्यताको पूर्णरूपसे प्रदर्शन करता है। अपने तथा स्त्री पुत्रादिके भोग-विधानके लिये समस्त जीवनको बिता देता है। इससे परमार्थलाभ बहुत दूर चला जाता है। और बहुतसे लोग कर्मप्रयासको वृथा श्रम समझकर, ज्ञानप्रयाससे आत्महत्या कर लेते हैं। अपने इन्द्रियजज्ञानपर निर्भर करनेवालोंके ज्ञानकी चरम अवस्था निर्विशेष ज्ञान है; उससे अन्धतमसके बीच वह आच्छन्न हो जाता है। अतएव कर्मप्रयास तथा ज्ञानप्रयास छोड़कर एकमात्र साधुमुखसे निकली हुई हरिकथा श्रवण करनेमें समस्त प्रयास नियोजित करना होगा।

जो शरीर मन वचन द्वारा साधुमुखसे हरिकथा श्रवण करते हैं, वे ही कृष्णको हृदयमें आवद्ध कर सकते हैं।

प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेण स्वानां भावसरोरुहम्।
धुनोति शमलं कृष्णः सलिलस्य यथा शरत्॥

जीवन धारण करनेका एकमात्र मुख्य उद्देश्य हरिकथा श्रवणकरके समय काटना होगा। परीक्षित महाराज बोले—"हे शुकदेव, आप कृष्णकथा कीर्त्तन कीजिये। तक्षक काटे तो उसे काटने दीजिये उससे किसी प्रकारके उद्वेगका कारण नहीं। किसी विपदसे मैं उद्धार नहीं चाहता हूँ। आप मधुरसे भी मधुरतम कृष्णगाथा गान करते रहिये। भगवद्धर्म-तृप्ति,

शान्ति या मोक्षके लिये नहीं है। आपका विलास सर्वांगसे सर्वदा उपस्थित रहे, मेरा सर्वनाश हो। आपकी इच्छाके अतिरिक्त मेरी कोई स्वतन्त्र इच्छा नहीं—यही भगवानका अनुकूल अनुशीलन है। ऐसे हरिकथा-अनुशीलन द्वारा अजित भगवान् सहज ही जीते जाते हैं।

प्रजल्प—ग्राम्यकथा की आलोचना। मनुष्य वाक्शक्ति पाकर प्रजल्प छोड़कर रह नहीं सकता। हमलोग कोटि प्रकार इन्द्रियतर्पणके विषय, परस्पर आलाप करके क्षणमात्र आनन्द प्राप्त करनेके लिये नाना प्रकारसे, प्रयास करते हैं। कोई समाचारपत्रसे बालिकाओंकी चोरी, चीन जापानका युद्ध, मामला, नाटक, नावेल, प्राकृत काव्य इत्यादि पढ़कर बन्धु बान्धवके साथ बातचीतकर समय बिताना अच्छा समझते हैं। श्रीमत् कृष्ण-द्वैपायन व्यासदेवने मनुष्योंकी बहिर्मुखताकी रुचि इस प्रकार देखकर मूषक-बिड़ालादिकी गल्पके बहाने महाभारतके बीच भक्तिकी शिक्षा दी है। भक्तिकी कथा सबसे श्रेष्ठ है। अन्य किसी कथाकी आवश्यकता नहीं है।

परनिन्दा एवं परचर्चा एक प्रधान प्रजल्प है। 'परचर्चकेर गति नाहि कोन काले' किन्तु साधुसङ्ग ग्रहण एवं असाधुसङ्ग त्याग करनेके लिये सत्य विषयकी आलोचना प्रजल्प नहीं है। उसीका बहाना करके इस प्रकारकी आलोचनामें अधिक मग्न हो जाय, तो उससे अपना अकल्याण करेंगे। अपने दोषोंकी निरन्तर विशेष रूपसे आलोचना करनी चाहिये। अपनेको प्रतिदिन सौ झाड़ू मारकर जर्जरित करना होगा। स्वयं कृष्णभक्त होकर अपने चित्तको संशोधन न कर दूसरोंके दोषोंकी केवल चर्चा करनेसे भक्तिवृद्धि कैसे होगी? हरिकथा-श्रवणादि अतिरिक्त और किसी प्रकारसे प्रजल्प नहीं रुकता है।

> प्रतिष्ठाशा धृष्टा श्वपचरमणी मे हृदि नटेत्
> कथं साधु प्रेमा स्पृशति शुचिरेतन्ननु मनः।
> सदा त्वं सेवस्व प्रभुदयितसामन्तमतुलं
> यथा तां निष्काश्य त्वरितमिह तं वेशयति सः॥

प्रतिष्ठाशा रहने ही से कपटता (अर्थ, धर्म, काम मोक्षकी इच्छा) हृदयको ग्रास करती है, हम हरिभक्तिसे दूर चले जायेंगे। श्रीगुरुदेवने कहा है—"दुष्ट मन, तुमि किसेर वैष्णव? प्रतिष्ठार तरे, निर्ज्जनेर घरे, तव हरिनाम केवल कैतव॥" अपने दुष्ट मनका शासन करना आवश्यक है। अपनी ओर दृष्टि नहीं देनेसे हरिभजन होना असम्भव है।

नियमाग्रह—अनियमका अनादर वा नियमका आग्रह। संख्यानाम किसी दिन पूरा हुआ और किसी दिन नहीं, इससे व्यथा नहीं होती, किन्तु शारीरिक वा मानसिक सामान्य अभाव वा हानिसे सम्पूर्ण जगत् दलमलित हो जाता है, ऐसा भाव भक्तिका प्रतिबन्धक है। इसके अतिरिक्त अर्चा (श्रीमूर्त्ति) वा नामसेवा करनेके लिये उद्यत होकर गुरु वा वैष्णवकी मर्यादा लङ्घन वा अनादर करना भी अत्याग्रहरूपी सर्वनाशकारी व्यवस्था है। अत्याग्रह त्याग नहीं करनेसे भक्ति नहीं होगी। भक्ति चेतन वस्तु है। अपनी चेतनवृत्तिको जगाकर हृदयमें कायमें परिणत करनेसे वह आचरण द्वारा प्रकाशित हो जायगी। तभी भक्ति बढ़ेगी।

जनसङ्ग—बहिर्मुख व्यक्तिके साथ छः प्रकारके व्यवहार होते हैं। इच्छा नहीं भी रहनेपर अज्ञात-भावसे विषय-प्रवेश हो जाता है। परन्तु शुद्ध हरिकथा-श्रवण-कीर्त्तनको केन्द्र बनाकर बहुत लोगोंका सङ्ग करनेसे वह भक्तिप्रतिकूल नहीं होगा। भगवानकी सेवा संरक्षण करनेमें यदि बहिर्मुख-लोगोंका सङ्ग करना हो, तो वह प्रतिकूल जनसङ्ग

नहीं है। उससे कृष्णेन्द्रियतर्पण ही एकमात्र उद्देश्य है। भक्तिका पथ "क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया" है। किसी ओर थोड़ा दबने ही में पतन हो सकता है। इस पथमें चलनेमें अनन्यचित्तसे साधुमुखसे हरिकथा-श्रवण तथा उसका अनुकीर्त्तन ही एकमात्र पाथेय (रास्तेका खर्च) है।

लौल्य — अस्थिरता, चञ्चलता — अभिनिवेशका अभाव। मनकी अस्थिरताके कारण आज एक स्थान, कल अन्य स्थान, आज एकअङ्ग साधनका सामान्य प्रयास, फिर उसके पूर्णाङ्ग साधन होनेके पहले ही अन्य अङ्गोंके साधनका प्रयास होना। यह केवल अपनी इन्द्रियोंके परितृप्तिविधानका पृथक् पृथक् भेदमात्र है। एकमात्र भगवानकी इन्द्रियतृप्तिके लिये सम्पूर्ण उत्साह, उद्यम, धैर्य, अध्यवसाय (पुनः पुनः चेष्टा) एवं एकाग्रता परिचालित करनी होगी। साधुलोगोंकी अमायिक कृपा सिरपर धारण एवं वरण करना होगा। जो वञ्चना करना चाहते हैं, वे अपनेही वञ्चित होते हैं। साधु मुझसे प्रचुर स्नेह करते हैं उसी स्नेहके सहारे जागतिक किसी विषयकी चेष्टा रहनेसे वञ्चित हो जायँगे। साधु कभी भी वञ्चना नहीं करते। किन्तु मेरी अन्य अभिलाषायें मुझे ठग देती हैं।

भक्तिराज्यमें अनुकूल एवं प्रतिकूल विचार करनेसे हमलोगोंकी चित्तकी मलिनताको साफ करनेकी चेष्टा दृढ़ता प्राप्त करती है। मैं साधु गुरुका शासन कपटरहित होकर मान लूंगा। दुर्बल होनेके कारण जीवकी सर्वदा पतनकी सम्भावना बनी रहती है सही, किन्तु कपटरहित होकर (अर्थ, धर्म, काम, मोक्षकी इच्छा छोड़कर) साधुगुरुकी कृपा प्रार्थना करनेसे चिद्‌बलका सञ्चार हमलोगोंको भक्ति राज्यमें विचरण करनेमें अग्रसर करा देगा। संसारके कर्मवीर तथा ज्ञानवीर प्रभृतिकी अपेक्षा प्रचुर शक्तिमान् नहीं होनेसे भक्तिपथमें स्थिर नहीं रह सकेंगे। निष्कपट होकर बलप्रार्थना करनेसे प्रचुर बल आकर हमलोगोंकी सम्पूर्ण मायिक विघ्नोंको पार कर देगी। कपटि-व्यक्तिका उद्धार नहीं है, वैष्णवताका दूसरा नाम सरलता है। निर्मत्सर होना चाहिये। समस्त साधु, वैष्णववृन्द तथा गुरुवर्गोंके निकट कातर प्रार्थना है, जिससे मैं उनलोगोंकी कृपासे हरिसेवाके पथमें चलनेके लिये सर्वदा अनुकूल-प्रतिकूल-विचार हृदयमें धारण करके क्रमशः अग्रसर हो सकूं।

श्रीहरिनाम

इस घोर संसारमें पतित होनेके कारण जो मनुष्य विवश हो गया है वह भी भगवन्नाम लेते लेते इस संसारसे शीघ्र ही मुक्त हो सकता है। भगवन्नामसे यमके दूतगण तो दूर रहें, स्वयं महाकाल भी भय-भीत होते हैं। (भा० १-१ १४)

आपन्नः संसृतिं घोरां यन्नाम विवशो गृणन्।
ततः सद्यो विमुच्येत यद्बिभेति स्वयं भयम्॥

वह भगवन्नाम क्या है इस विषयमें शास्त्र कहते हैं—

नामचिन्तामणिः कृष्णश्चैतन्यरसविग्रहः।
पूर्णः शुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नत्वान्नामनामिनोः॥

कृष्णनाम कृष्ण-प्रेम-फलको देने वाला है। वह स्वयं कृष्ण है, वह चिन्मय स्वरूप है, उसकी सत्ता रजोगुण और तमोगुणसे सम्पूर्णतः निवृत्त है, वह कालातीत है। वह सांसारिक विकारोंसे मुक्त है और वह नामीके साथ एक है। वह सब किसी

का संचालक है, उसका संचालन कोई दूसरा नहीं कर सकता। मनुष्य अपनी ही अपनी जड़ जिह्वाके द्वारा मुहका प्राण संचालन करे जड़ाकाशमें तरंगें पैदा कर जड़ शब्द प्रगट करे परन्तु वह भगवन्नाम स्पर्श नहीं कर सकता। भगवन्नाम केवल अपनी इच्छासे कृपावश हो उस व्यक्तिकी जिह्वापर प्रकट होता है जो उसका आश्रय निष्कपट भावसे लेता है हमारे ऐसे विषयी लोगोंकी जिह्वापर नहीं। श्रीमद्भागवत कहते हैं (१-८-२६)

जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभिरेधमानमदः पुमान् ।
नैवार्हत्यभिधातुं वै त्वामकिञ्चनगोचरम् ॥

(हे कृष्ण अच्छे कुलमें जन्म, विद्या एवं रूपके कारण जिसका अहंकार वृद्धिको प्राप्त हुआ है वह व्यक्ति तुम्हारा श्रीकृष्ण, गोविन्द इत्यादि नाम जो एकमात्र तुम्हारे निरभिमान निष्काम भक्तोंकी ही सम्पत्ति है उसका कीर्तन करनेमें समर्थ नहीं हो सकता है।)

तब यह प्रश्न हो सकता है कि इतने मनुष्य जो नाम ले रहे हैं क्या वे सब अकिञ्चन नहीं हैं? इसका उत्तर है, 'नहीं'। वे अकिञ्चन नहीं हैं और वे नाम भी नहीं ले रहे हैं। हां, यदि नाम शब्दका अर्थ नामापराध ही समझा जाय, तो वे नाम अवश्य ले रहे हैं। परन्तु नामापराध नाम नहीं हो सकता है। शास्त्र कहता है कि नाम तो दूर रहे नामाभास भी होनेसे मुक्ति प्राप्त होती है। परन्तु मुक्तिकी तो बात ही क्या है, मैं नाम लेता लेता पापाचरणकी वृत्तिको ही बढ़ा रहा हूं, नरक जानेकी तैयारी ही कर रहा हूं। क्या यही नाम लेनेका फल है? नहीं, यह नाम लेनेका फल कदापि नहीं हो सकता, यह नाम प्रभुके चरणोंमें अपराधी बने रहनेका ही फल है। यद्यपि जो नाम मैं लेता हूं वह यथार्थ नामके सदृश ही दीख पड़ता है तथापि यथार्थमें वह नाम नहीं है। एक प्याली दूध और एक प्याली चूनेका पानी देखनेमें एक सा मालूम पड़ता है परन्तु वे दोनों पृथक् पृथक् पदार्थ हैं। शास्त्र नामके सम्बन्धमें शुद्ध नामके अतिरिक्त और दो प्रकारके नामका कथन करते हैं—नामापराध और नामाभास। नामापराधयुक्त व्यक्ति भी शास्त्रोक्त उपायको अवलम्बन करके नामापराधसे मुक्ति लाभ कर सकता है, निष्किञ्चन और निष्काम हो सकता है और शुद्ध नामकी कृपा प्राप्त कर सकता है, परन्तु शुद्धनाम और नामापराधको एक समझ कर बैठ रहनेसे नहीं। शुद्धनाम और नामापराधके रूपको पृथक पृथक जानकर नामापराधसे बचनेकी चेष्टा करते करते शुद्धनामकी कृपाका प्रार्थी होना परमावश्यक है। नामापराधसे मुक्त होनेका उपाय क्या है? पद्मपुराण कहते हैं—

नामापराधयुक्तानां नामान्येव हरन्त्यघम् ।
अविश्रान्तप्रयुक्तानि तान्येवार्थकराणि च ॥

नामापराधियोंका अपराध नाम ही हरते हैं निरन्तर नाम लेनेसे नामापराध क्षय होता है। नामापराधोंका अपराध क्षय होते होते बहुत समय लगता है पद्म पुराण कहते हैं—

नामैकं यस्य वाचि स्मरणपथगतं श्रोत्रमूलं गतं वा
शुद्धं वाशुद्धवर्णं व्यवहित रहितं तारयत्येव सत्यम् ।
तच्चेद्देह-द्रविण-जनता-लोभ-पाषाणमध्ये
निक्षिप्तं स्यान्नफलजनकं शीघ्रमेवात्र विप्र ॥

यदि शुद्ध नाम न होकर नामापराध अथवा नामाभास होता रहे तो देरसे फल दिखलाता है।

नामापराध दस प्रकारके हैं। पद्म पुराण कहते हैं

(१) सतां निन्दा नाम्नः परममपराधं वितनुते

यतः ख्यातिं यातं कथमुसहते तद्विगर्हाम् ।
(२) शिवस्य श्रीविष्णोर्य इह गुणनामादि-सकलं
धिया भिन्नं पश्येत स खलु हरिनामाहितकरः ॥
(३) गुरोरवज्ञा (४) श्रुतिशास्त्रनिन्दनम् (५) तथार्थवादो (६) हरिनाम्नि कल्पनम् ।
(७) नाम्नो बलाद् यस्य हि पापबुद्धिर्न विद्यते तस्य यमैर्हि शुद्धिः ॥
(८) धर्म्मव्रतत्यागहुतादि-सर्व्वशुभक्रियासाम्यमपि प्रमादः ।
(९) अश्रद्दधाने विमुखेऽप्यशृण्वति यश्चोपदेशः शिवनामापराधः ॥
(१०) श्रुतेऽपि नाममाहात्म्ये यः प्रीतिरहितो नरः ।
अहं ममादि परमो नाम्नि सोऽप्यपराधकृत् ॥

(१) "साधुनिन्दा अर्थात् असली साधुको असाधु समझना और जो वास्तवमें असाधु है उसको साधु समझना--सर्व प्रथम नामापराध है।" जो चौबीसों घंटे कृष्णनाम-परायण हैं, जो पूर्णरूपसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी सेवामें लगे हुए हैं और जो ब्रह्माण्डके सब जीवोंको जगा कर भगवान्, गुरुदेव और वैष्णवोंकी सेवाकी ओर उन्मुख करनेके लिये सर्वदा व्यग्र रहते हैं, वे ही साधु हैं। वे एकमात्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके ही शरणागत हैं, वे भक्त हैं, साधु हैं, वैष्णव हैं। बिना अपराधके एक कृष्णनामोच्चारण करनेवाले कनिष्ठ वैष्णव होते हैं, जो निरंतर कृष्णनाम-परायण व्यक्ति हैं वे मध्यम वैष्णव हैं और जिनको देखनेसे ही मुखमें कृष्णनाम आता है अर्थात् कृष्णभजन करनेकी स्पृहा उत्पन्न होती है वे उत्तम वैष्णव हैं। वैष्णव लोग विष्णुके ही अङ्ग और प्रत्यङ्ग हैं। वैष्णवोंसे ही जगत्में नाम-प्रेम की विस्तृति होती है। ऐसे वैष्णवोंके चरणोंमें जो अपराध करते हैं उनपर श्रीनाम प्रभु कभी कृपा नहीं करते। (भा ९-४-६८)

(२) "सर्वकारणोंके कारण, सब ईश्वरोंके ईश्वर, श्रीकृष्णचन्द्रके साथ अन्य देव देवियोंको समान समझना तथा अन्य देव-देवियोंको श्रीकृष्णचन्द्रसे स्वतन्त्र समझना--द्वितीय नामापराध है। जिस तरह प्राणको आश्रय करके शरीरका समस्त अंग प्रत्यंग जीवित रहते हैं एवं अपना अपना कार्य सम्पादन करते हैं, उसी तरह सब प्राणोंके प्राण, सब देवताओंके प्राण श्रीकृष्णचन्द्रको आश्रय करके समस्त जीव, जगत और देवतावृन्द अपना अपना कार्य सम्पादन करते हैं। (भा ४-३१-१४) गुणाक्रान्त देवदेवीगण निर्गुण श्रीकृष्णचन्द्रकी दी हुई शक्तिके बलसे अपने अपने अधिकारमें स्थित रहकर अपना अपना कार्य करते हैं। श्रीकृष्णचन्द्र ही एकमात्र समस्त देवताओंका और समस्त ईश्वरोंका ईश्वर अर्थात् सर्वेश्वरेश्वर हैं। सुतरां वह स्वयं भगवान् हैं (कृष्णस्तु भगवान् स्वयं)। श्रीकृष्णचन्द्रके सहित अन्य किसी जीव अथवा देवताकी तुलना ही नहीं हो सकती है।

एकला ईश्वर कृष्ण, आर सब भृत्य ।
यारे यैछे नाचाय, से तैछे करे नृत्य ॥
[चैतन्यचरितामृत]

३ "गुरु अवज्ञा अर्थात् श्रीगुरुदेवके प्रति मनुष्य बुद्धि—तृतीय नामापराध है।" एक बद्धजीव दूसरे बद्धजीवका उद्धार नहीं कर सकता है एवं एक अन्धा दूसरे अन्धेको रास्ता नहीं दिखला सकता है। श्रीगुरुदेव एक बद्धजीव मात्र नहीं हैं वे नित्यसिद्ध अप्राकृत महाभागवत हैं। श्रीगुरुदेव अन्धे नहीं हैं। वे दिव्यचक्षुष्मान हैं। वे दिव्य धाममें अप्राकृत नेत्रसे श्रीराधा गोविन्दका विलास दर्शन करते हैं। वे अपनी चिन्मय देहके द्वारा नित्य श्रीराधागोविन्द

की सेवा करते हैं और अज्ञानरूपी अंधकारसे आच्छादित शिष्योंका दिव्यचक्षु खोल श्रीराधा-गोविन्दके चरण-कमलोंका दर्शन करानेमें सर्वथा समर्थ हैं। वे श्रीराधाकृष्णके प्रिय हैं, सुतरां उनको एक प्राकृत बद्धजीव समझना भीषण नामापराध है। श्रीमद्भागवतमें श्रीभगवानने कहा है (भा० ११-१७-२७) "मैं ही आचार्य हूं, उस आचार्यको असूया (ईर्ष्या, द्वेष) वश होकर मनुष्य समझना भीषण अपराध है।" श्रीहरि ही पतित-पावन गुरुरूपमें पतित जीवको उद्धार करनेके लिये अवतीर्ण होते हैं। श्रीगुरुदेवकी आज्ञा उल्लंघन करनेसे श्रीकृष्णचन्द्रके प्रति अवज्ञा करना होता है।

४। "श्रुति और तदनुगत शास्त्रोंकी निन्दा—चतुर्थ नामापराध है।" श्रुति है वेदमाता। उस श्रुतिसे और उस श्रुतिका पका हुआ फल श्रीशुकमुख-निःसृत श्रीमद्भागवतमें सम्बन्ध (उपास्य) कृष्ण, अभिधेय (साधन) कृष्णभक्ति और प्रयोजन (साध्य) कृष्ण-प्रेमकी कथाका वर्णन किया गया है। जो लोग श्रुतिमें वर्णन किया हुआ यह सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजन-की कथा स्वीकार नहीं करके श्रीकृष्णको निर्विशेष, निराकार, निःशक्तिक और निष्क्रिय समझते हुए "केवलाद्वैत-निर्विशेष वैराग्यमूलक त्यागवाद अथवा स्वयं कृष्ण बनकर भोगवाद प्रचार करते हैं वे लोग वेद मुखसे मानते हैं अवश्य परन्तु कार्यतः वेदविरुद्ध मतवाद प्रचार और अनुमोदन करनेके कारण वेदनिन्दक हैं। अतएव वे लोग श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंमें अपराधी हैं। उनलोगोंके मुखमें कृष्णनाम अथवा हरिनामकी स्फूर्ति नहीं होती है। भा० १०-८१-२६)। (क्रमशः)

श्रीगोवर्द्धन में ऊर्जव्रत

श्रीगौड़ीय मठाचार्य ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद् अनन्त वासुदेव परविद्याभूषण गोस्वामी महाराजके आनुगत्यमें श्रीगौड़ीयमठके भक्तलोग गत ६ अक्टूबरसे श्रीगिरिराज गोवर्द्धनमें ऊर्जव्रत (कार्त्तिक व्रत) कर रहे हैं। इस उपलक्षमें हरदिन सुबह ४॥ बजे मंगलारतिके उपरान्त नगर कीर्त्तन, श्रीचैतन्यभागवत तथा उपनिषद् पाठ और तीसरे पहर ४॥ बजेसे "श्रीदामोदराष्टक," तथा "श्रीगोवर्द्धन वास प्रार्थना दशकम्" पाठ, श्रीमद्भागवत की व्याख्या और सन्ध्यारतिके बाद श्रीचैतन्यचरितामृत और गीता पाठ इत्यादि हो रहा है। भक्तलोगोंके निवासके लिये श्रीगोवर्द्धनके सुप्रसिद्ध कुंवर साहब श्रीयुत गोविन्द सिंहजी तथा आगरा चिटिखाना निवासी श्रीयुत केदारनाथ गोपीनाथ गोदानी महाशयने दो सुन्दर धर्मशालाएँ दी है। इस कामके लिये हमलोग हार्दिक कृतज्ञता प्रगट करते हैं।

पटना श्रीगौड़ीयमठमें अन्नकूट महोत्सव

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः

श्रीगौड़ीयमठ

मीठापुर, पटना

विहित सम्मानपूर्वक निवेदन यह है कि आगामी २३ अक्टूबर रविवार पटना श्रीगौड़ीयमठमें श्रीगोवर्द्धन पूजा और अन्नकूट महोत्सव अनुष्ठित होगा।

उस दिन सन्ध्या ६ बजेसे श्रीविग्रहकी आरती आदि श्रीमद्भागवतपाठ और व्याख्याके प्रसङ्गमें श्रीगोवर्द्धन पूजा तथा अन्नकूट महोत्सवके सम्बन्धमें आलोचना, महजनपदावली कीर्त्तन एवं तत्पश्चात् सर्वसाधारणको महाप्रसाद वितरण किया जायगा।

महाशय, इष्ट-मित्रों सहित उक्त समयमें श्रीमठमें आगमनपूर्वक योगदान कर हमलोगोंका आनन्द वर्द्धन कीजियेगा।

निवेदक--
श्रीगौड़ीयमठके सेवकवृन्द

SREE KRISHNA CHAITANYA

By Prof. N. K. SANYAL, M.A.

Late Senior Professor of History, Ravenshaw College, Cuttack.

A rational, scientific and comprehensive study, based on the SHRAUTA PATH, with a highly appreciative foreward by His Divine Grace Paramahansa Srimad Bhakti Sidhanta Saraswati Goswami with an Introduction containing full information for following the narrative of events, as well as with an Index and a Glossary. Royal 8 vo 800 pages, handsome calico jacket—Price Indian Rs. 15/-; Foreign 21 s. nett

To be had at **SREE GAUDIYA MATH,** Baghbazar, Calcutta.

SREE BRAHMA SAMHITA (Fifth Chapter)

With commentary by Sri Jeeva Goswami and translation and purport in English by His Divine Grace Sreemad Bhakti Sidhanta Saraswati Goswami

First class calico binding—Rs. 2-8-0

RELATIVE WORLDS

A lecture delivered on the 28th August 1932 at the Saraswati Assembly Hall of Sree Gaudiya Math, Calcutta by His Divine Grace Ans. 0-6-0

A few words on Vedanta by His Divine Grace—Ans. 0-8-0

The Vedanta its Morphology and ontology by His Divine Grace—Ans. 0-8-0

THE BHAGBAT

Its Philosphy, Its Ethics and its Theology New enlarged edition with an appendix by Srila Prabhupad Full calico bound—Rupee One Thick paper bound—Twelve Ans

---

(बंगला में)

श्रीमद्भागवतम्

महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यास—प्रणीत, मूल, श्रीमन मध्वाचार्यकृता तात्पर्य निर्णयटीका, श्रीमद् विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर-कृत सारार्थदर्शिनी टीका, बंगानुवाद, संस्कृत अन्वय व प्रतिशब्द, तथ्य व विवृत्यादियुक्त। प्रति स्कन्धके आरम्भमें उस स्कन्धका प्रतिपाद्य कथासार, प्रत्येक अध्यायके प्रथममें उस अध्याय सारके साथ सुविस्तृत तात्पर्यादि विवृत है। श्लोकसूची, विषयसूची अध्याय-विवरण, पत्र व स्थान-सूचीके साथ उत्तम कागजपर उत्तम अक्षरमें मुद्रित। प्रथमसे १२वां स्कन्धतक छपा सम्पूर्णरूपसे शेष हो गया है। भिक्षा प्रथमसे १२वां स्कन्धतक ४०), १०म स्कन्ध सम्पूर्ण बिना बंधा हुआ ८) और कपड़े की बंधाई ९) मात्र।

श्रीश्रीचैतन्यचरितामृत

श्रील कविराज गोस्वामीकृत। श्रीभक्तिविनोद ठाकुर रचित 'अमृतप्रवाहभाष्य' व श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद लिखित 'अनुभाष्य' श्रुति-स्मृत्यादि अनेक शास्त्र प्रमाणके साथ प्रकाशित हुये हैं। श्लोककी सान्वय व्याख्या, बंगानुवाद व प्रत्येक पयारके पूर्व संक्षिप्त अभिधेय संयोजित है। प्रत्येक अध्यायके आरम्भमें उसी अध्यायका कथासार लिखा हुआ है। श्लोक, पयार, शब्द, स्थान, पात्रका सुबृहत सूची व ग्रन्थकारकी विस्तृत जीवनी समन्वित इस तरहका अभूतपूर्व संस्करण इसके पहले कहीं भी प्रकाशित नहीं हुआ है। उत्तम कागजपर सजावटके साथ मोटे अक्षरमें मूलांश मुद्रित हुआ है ग्रन्थ प्राय १५०० पृष्ठमें सम्पन्न है। भिक्षा बिना बंधा हुआ ६) कपड़ेकी बंधाई ७) मात्र।

श्रीचैतन्भागवत

श्रीश्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद-रचित गौडीय भाष्यके साथ ग्रन्थका आयतन—क्राउन ४ पेजी मूल १०९६ पृष्ठ, सूचीपत्र २४४ पृष्ठ—कुल १३४० पृष्ठ भिक्षा—६) मात्र (बिना बंधा हुआ)।

Regd. No. P. 468.

श्रील प्रभुपादकी पत्रावली—(तृतीय खण्ड)

आचार्य-प्रकट तिथिमें श्रील प्रभुपादकी पत्रावलीका तृतीय खण्ड प्रकाशित हुआ है। प्रत्येक पत्र विशेष शिक्षाप्रद व सारगर्भ उपदेशसे परिपूर्ण है। हमलोग प्रत्येक मंगलकामी व सत्यका अनुसन्धान करनेवाले व्यक्तिको इस पत्रावलीको पाठ करनेका अनुरोध करते हैं।

श्रीचैतन्यदेव

श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके पहले व बाद भारत व बंगालकी राजनैतिक अवस्था, अर्थ-नैतिक अवस्था, विद्या, साहित्य व समाजिक अवस्था, धर्मजगत्की अवस्था, समसामयिक पृथिवीकी अवस्था, नवद्वीप-का परिचय व तथ्य और प्रमाणिक ग्रन्थ व विवरण समूह सहज व सरल भावमें साधारणके पढ़नेके योग्य वर्णन किया गया है। ग्रन्थमें अनेक चित्र व मानचित्र दिये गये हैं। सुन्दर जिल्द भक्त, साधारण व्यक्ति व विद्यालयके छात्र सभीके लिये यह ग्रन्थ उपयोगी व प्रीति देनेवाला होगा। भिक्षा १) प्राप्तिस्थान—श्रीगौड़ीयमठ, पो० बागबाजार, कलकत्ता। श्रीमाध्वगौड़ीयमठ, पो० वोयारी, ढाका।

सरस्वती जयश्री

गौड़ीय-वैष्णवाचार्य ॐ विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादका भुवन-के मंगलदायक जीवनचरित ग्रन्थ है। निर्मत्सर शुद्धभक्ति पिपासु व्यक्ति इस ग्रन्थके पाठमें युगपत् अनेक शास्त्रग्रन्थ पाठ व अनेक साधुसङ्गका फल लाभ कर सकेंगे। वैभवपर्वका प्रथम खण्ड रायल ८ पेजी आकारमें एन्टिक कागजपर उत्तमरूपसे मुद्रित, ३६० पृष्ठोंमें। विस्तृत सूचीपत्रके साथ इसमें अनेक चित्र भी दिये गये हैं। भिक्षा ४)

'सामयिक-संख्या'—गौड़ीय

सामयिक-संख्या गौड़ीय अनेक त्रिवर्ण व एकवर्ण चित्र-शोभित व अनेक श्रेष्ठ वैष्णवसाहित्यिकगणों-की गवेषणापूर्ण प्रबन्धसे सुमण्डित होकर प्रकाशित हुई है। श्रीधाम-मायापुरमें श्रीश्रीगौरजन्मोत्सवके उपलक्षमें सर्वसाधारणोंके लिये भिक्षा ॥) आना।

ठाकुर भक्तिविनोद

श्रीरूपानुगशुद्धभक्ति स्रोतके प्रवाहका मूल पुरुष ॐ विष्णुपाद श्रील ठाकुर भक्तिविनोदका जीवनचरित व शिक्षामाला बहुत सरल भाषामें बड़े बड़े अक्षरोंमें मुद्रित। भिक्षा ।॥) मात्र। प्राप्तिस्थान—कलकत्ता (बागबाजार) श्रीगौड़ीयमठ व ढाका—श्रीमाध्वगौड़ीय मठ।

अणुभाष्यम्

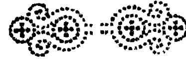
चार अध्यायी ब्रह्मसूत्रके प्रत्येक अधिकरणका तात्पर्य श्रीमन्मध्वाचार्य-कृत श्लोकाकारमें बहुत संक्षेपमें बना हुआ। बंगभाषामें सर्वप्रथम संस्करण। पहले प्रति अध्यायके प्रतिपादका श्रीमन्मध्वाचार्य-विरचित अणुभाष्यमूल, उसके बाद प्रति अध्यायके प्रतिपाद का सूत्र-समूह, अणुभाष्य-मूलका बंगला अनुवाद व श्रीपाद राघवेन्द्रयतिविरचित तत्त्वमञ्जरी टीका, उसका बंगला अनुवाद व तात्पर्य इस क्रमसे पुस्तक मुद्रित हुई है। इसके अतिरिक्त मातृका क्रमसे ब्रह्मसूत्र समूह, उसका अध्यायांक, पदांक व सूत्रांकके साथ सूचीपत्र भी संयोजित हुआ है। भिक्षा २) मात्र।

Printed by:— Brajeshwari Prasad, at The 'Indian Nation Press' and published by him from Sree Gaudiya Math, Mithapur, Patna.

भागवत

एकमात्र
पारमार्थिक
मासिक पत्र

५ केशव
गौराब्द
४५२



अग्रहण कृष्ण ५
संवत
१९९५ वि०

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥१॥

जिससे इन्द्रिय ज्ञानातीत श्रीकृष्णमें श्रवणादि-लक्षणा फलाभिसन्धान - रहिता एकान्तिकी स्वाभाविक निरपेक्षा भक्ति उदय होती है, वही मानव जातिका सर्वश्रेष्ठ धर्म है— उसी भक्तिके बलसे अनर्थ उपशान्त होनेसे आत्मा प्रसन्नता लाभ करती है।

प्रति संख्या ─)॥ | सम्पादक-त्रिदण्डि-स्वामी श्रीभक्तिभूदेव श्रौती महराज | वार्षिक १)

Editor—Tridandiswami Sree Bhakti Bhudeb Shrauti Maharaj

विषय सूची

उद्देश्य

शुद्ध भगवद्भक्तिका प्रचार करना

प्रबन्ध-सम्बन्धी

(१) यह पत्र प्रति मास ५ कृष्णको प्रकाशित होता है।

(२) इस पत्रकी डाकव्यय सहित वार्षिक भिक्षा १) है।

(३) इस पत्रकी प्रति संख्याकी भिक्षा ~)॥ है।

लेख-सम्बन्धी

लेखकोंको केवल भागवत धर्म सम्बन्धी लेख ही भागवत पत्रमें छपनेके लिये सम्पादक "भागवत" के पतामें भेजना चाहिये। जो लेख सम्पादकको पसन्द न होगा वह नहीं छापा जायगा और वापस भी नहीं किया जायगा।

विज्ञापन-सम्बन्धी

"भागवत" में विज्ञापन छपाईका दर नीचे लिखा है :—

साधारण पृष्ठ

प्रति संख्या

पूरा पृष्ठ या दो कालम	..	८)
आधा " "	..	५)
चौथाई "	..	३)
२ इंच "	...	१॥)
१ " "	...	१)

स्थायी विज्ञापन और कवरपर विज्ञापन छपानेका रेट नीचे लिखे पतेपर पत्र-व्यवहार द्वारा तय करना चाहिये।

पत्र व्यवहारका पता--

मैनेजर—"भागवत"

श्रीगौड़ीयमठ,

मीठापुर, पटना।

All communications are to be addressed to—

The Manager '*Bhagwat*'

SRI GAUDIYA MATH

Mithapur, Patna

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः ॥



कृष्णे स्वधामोपगते धर्मज्ञानादिभिः सह । कलौ नष्टदृशामेषः पुराणार्कोऽधुनोदितः ॥

श्रीगौड़ीयमठ, मीठापुर (पटना)

वर्ष ४ — संख्या १०

अग्रहायण कृष्ण [illegible] गौ० [illegible] नवम्बर सन् [illegible] ई०

प्रह्लाद-चरित्र

(पूर्वप्रकाशित ८ वीं संख्यासे आगे)

प्रह्लाद महाराजने दैत्यबालकोंसे कहा — भाइयो ! बचपनमें ही भगवद्भजन करना चाहिये। क्योंकि यह मनुष्यजन्म दुर्लभ है। चौरासी लाख अन्यान्य जन्म प्राप्त करनेके बाद यह मिलता है; परन्तु यह अनित्य है; कबतक जीवन रहेगा उसका कुछ ठिकाना नहीं है। फिर भी इसी जन्ममें हमलोग अपने यथार्थ प्रयोजनको पूरा कर सकते हैं। यदि इन्द्रियसुखके लिये हम इस जन्ममें व्यस्त हैं, वह अन्यान्य जन्ममें दैववश मिलता है अर्थात् भाग्यमें रहनेसे बिना परिश्रम ही प्राप्त कर सकते हैं। उदाहरणार्थ दुःख न मांगनेपर भी भाग्यवश आ पहुँचता है। इसलिये उस सुखके लिये प्रयास करना मुनासिब नहीं है, क्योंकि उसमें व्यर्थ समय बीत जाता है, परन्तु कोई कल्याण नहीं प्राप्त किया जाता है। अतएव संसारमें जन्म प्राप्त करनेके साथ ही शरीरमें सामर्थ्य रहते रहते यथार्थ कल्याणके लिये कोशिश करना चाहिये।

मनुष्यका जीवनकाल सौ वर्षका होता है। अजितेन्द्रिय व्यक्ति उसका आधाकाल व्यर्थ निद्रामें ही बिताता है। बालकपनमें मोहवश तथा क्रीड़ामें बीस वर्ष यों ही नष्ट हो जाते हैं। पुनः बुढ़ापा आनेपर हरएक काममें असमर्थ हो जानेसे और बीस वर्ष बीत जाते हैं। अब जो काल बाकी रहता है वह दुष्पार काम तथा बलवान मोहके वशमें ही

नष्ट हो जाता है। और पारलौकिक साधनाभ्यास आसक्त होनेसे वह बन्धन छूटना अजितेन्द्रिय व्यक्तिके लिये बहुत ही कठिन है। जो प्राण प्राणसे भी वाञ्छनीय है, उसकी तृष्णा त्याग करनेमें भी समर्थ नहीं होता। चोर, राजसेवक और सौदागर लोग अपनी जानको तुच्छ समझकर धन संग्रह करते हैं। जो लोग संसारकी प्रत्येक वस्तुकी चिन्तामें आसक्त हो जाते हैं, वे स्त्री, पुत्र, आत्मीय, गृह, मित्रादिकी चिन्ता छोड़कर भगवत् चिन्तन नहीं कर सकते। बल्कि रेशमका कीड़ा जैसे रेशमका घर बना कर उसीमें आबद्ध हो जाता है फिर निकल नहीं सकता, वैसे वे लोग इन्द्रिय सुखको ही अभीष्ट मान कर मोहवश संसारमें फँस जाते हैं फिर विरक्त नहीं हो सकते। अपनी इस सिर्फ़ी संसारमें जो अनमोल समय बीत जाता है, उसका ख़याल नहीं रखते और उसमें परमार्थ-साधनका काल भी नष्ट हो जाता है, यह बात भी नहीं समझते। वे तुच्छ कौड़ी भर विषय नष्ट हो जानेसे उसके लिये ज्यादा दुःख प्रगट करते हैं। ऐसे अपने सांसारिकमें ही आसक्त व्यक्ति इस लोक तथा परलोकमें सदा ही दुःख प्राप्त करते हैं। फिर भी वे अशान्त व्यक्ति अपने इन्द्रियोंके पालन पोषणमें सदाकाल नियुक्त हो तथा धनमें आसक्त रहकर दूसरोंका विषय हरण करते हैं और इस लोकमें राजदण्ड तथा मृत्युके पश्चात परलोकमें यमदण्ड भोगते हैं। संसारमें "मैं-मेरा" और "अपना-पराया" विचार ही सभी आपदाओंका मूल है। पण्डित लोग भी इसी बुद्धिके वशमें रहते हुए संसारमें अधिक आसक्ति दिखलाते हैं। वे आत्मज्ञानका उपदेश नहीं लेते परन्तु विमूढ़ होकर अज्ञानताको ही प्राप्त करते हैं। किसी देशमें कभी भी अज्ञानी लोग अपनेको मुक्त नहीं कर सकते। क्योंकि ये लोग सम्भोगकी आसक्तिसे कामिनीकी क्रीड़ाके पतंगे बनकर संसारके बद्धसेवक हो जाते हैं। इसलिये संसारमें प्रवेश करनेके पहले ही श्रीभगवान्का श्रीचरणाश्रय लेना चाहिये।

हे असुर-बालको! भगवान् श्रीहरि—सर्वप्राणीके आत्मा हैं। उनकी आराधनामें बालकपन या बुढ़ापा इत्यादिकी अपेक्षा नहीं है। क्योंकि श्रीहरि सर्वत्र सर्वकालमें ही प्रसिद्ध हैं। उनको प्रसन्न करना भी बहुत कठिन काम नहीं है। एक चिल्लू पानी और एक तुलसीदलसे भक्तिपूर्वक पूजनेसे उनकी कृपा बहुत ही सुलभ हो जाती है। अतएव जिस कार्यसे उनकी प्रसन्नता होती है हिंसा-रहित होकर उसी कामको करनेके लिये प्रयत्न करना कर्त्तव्य है। सर्व-आदि, अनंत-गुणवान् और सर्वकारणोंके कारणस्वरूप भगवान्के प्रसन्न होनेसे भक्तोंको कुछ दुष्प्राप्य नहीं रहता। भगवद्भक्तोंको धर्म, अर्थ, काम—इन तीनों पुरुषार्थोंसे कुछ काम नहीं है और मोक्षसे भी कुछ-प्रयोजन नहीं सिद्ध होता।

धर्म,अर्थ और कामका नाम है 'त्रिवर्ग'। आत्मविद्या, कर्मविद्या, तर्क दण्डनीति, कृषि इत्यादि वेद द्वारा प्रचारित होनेपर भी सभी नाश होनेवाली हैं। परन्तु श्रीभगवान्में शरणागति ही यथार्थ सत्य है। उसीसे मनुष्य कृतार्थ हो सकता है।

हे दैत्यबालको! मुझसे जो ज्ञानकी बातें सुन रहे हो वह मेरी कल्पित नहीं है। परन्तु भगवान् नर नारायणने उन्हें पूर्वकालमें नारदजीसे कही थी। वही ज्ञान नारदकी कृपासे मैंने प्राप्त किया है। जो भगवान्के एकान्त भक्त हैं उनके लिये यह सुलभ है—और इसमें प्रत्येक श्रद्धावान् व्यक्तिका ही

अधिकार है।

दैत्यबालकोंने पूछा---प्रह्लाद! पण्डामर्कके सिवा और दूसरे गुरुके समीप ज्ञान प्राप्त करते हुए तुमको कभी नहीं देखा। क्योंकि महाराज हिरण्यकशिपुकी कठोर आज्ञासे जनाना महलमें किसीका प्रवेशाधिकार भी नहीं है। तब कैसे हमलोग मानें कि तुमको नारदजीसे मिलनेका अवसर मिला? अगर कोई विश्वासका कारण है तो बताओ।

प्रह्लाद महाराजने कहा - मेरे पिता हिरण्यकशिपुकी तपस्या करनेके लिये मन्दर पर्वतपर पधारनेके बाद देवताओंने दैत्योंके साथ युद्ध-घोषणा की थी। देवतागणोंके आडम्बर देखकर असुर लोग इधर-उधर भाग गये। वे लोग अपने अपने प्राणोंके लिये इतना घबड़ाये थे कि अपने पुत्र, कलत्र, गृह, पशु, अर्थ आदिकी चिन्ता भी छोड़ कर भग पड़े। यह मौका देखकर देवगणने दैत्यराजके सर्वस्व लूट लिये और देवराज इन्द्र मेरी माताको साथ लेकर चले गये। राहमें देवर्षि नारदके साथ भेंट हुई। उन्होंने इन्द्रका यह काम देखकर पूछा, सुरराज! इस निरपराध और दुबल दैत्यपत्नीको ले जाना मुनासिब नहीं है। इस सतीको मुक्त करो, मुक्त करो।

महाराज इन्द्रने कहा,--हे देवर्षि! इनके गर्भमें दैत्यराजका पुत्र विराज रहा है। उसे भूमिष्ट हो जानेके उपरान्त उसको संहार कर इनको छोड़ दूँगा।

नारदजी बोले---यह बालक निष्पाप तथा भगवानके प्रिय भक्त है। अतएव तुम इन्हें नहीं बध कर सकोगे।

इन्द्र महाराज यह बात सुनकर बहुत ही सम्मान-के साथ मेरी माताकी प्रदक्षिणा करते हुए उसे छोड़कर स्वर्गकी ओर चले गये।

उस समयसे मेरी माता, देवर्षि नारदके आश्रममें निवास करती थी। जबतक पिताजी तपस्यासे न लौटे तबतक वह अत्यन्त श्रद्धाके साथ मुनिराजकी सेवा करती रही। नारदजीने करुणावश माताको धर्म-तत्त्वका उपदेश किया। इच्छाप्रसव-वर दिया (अर्थात् जब इच्छा होगी तब सन्तान प्रसव करेगी, परन्तु कालके वशसे [illegible] बहुत दिन बीत जानेकी वजहसे माताको यह बात याद नहीं है, परन्तु नारदकी कृपासे उस ज्ञानको मुझको काम किया और मैं भूला भी नहीं। तुम लोग भी श्रद्धायुक्त होकर मेरी बातें सुननेसे आत्मज्ञानका विवेक प्राप्त करोगे, यहाँ तक कि स्त्रियाँ तथा बालकोंको भी यही अधिकार हो सकता है यदि वे लोग श्रद्धापूर्वक श्रवण करें।

आत्मा नित्य, अव्यय, शुद्ध, एक, क्षेत्रज्ञ, सर्वाश्रय, विकारशून्य, स्वयंदर्शी, सर्वकारण, असंग, व्यापक और अनावृत है। इन बारह लक्षणोंसे आत्माको पृथक् समझकर आत्मदर्शी व्यक्ति शरीरसे मोहके कारण जो 'मैं' और 'मेरा' विचार होता है उसको त्याग देता है। ... बुद्धिसे ही संसार होता है। यह अज्ञानमूलक है अर्थात् अज्ञान ही उसका कारण है, अज्ञानको नष्ट करनेसे ही मनुष्यको मुक्ति मिलती है। इसके लिये हजारों उपायोंमेंसे कुछ उपाय यहाँ कहे जाते हैं— गुरुसेवा, भक्ति, समस्त वस्तु भगवान्‌जीको अर्पण करना, साधुओंका संग, भगवत् आराधना, उनकी कथामें श्रद्धा, उनके गुण कर्मोंका कीर्त्तन करना, पदकमलका ध्यान और मूर्त्तियोंका दर्शन तथा पूजन, और श्रीहरि समस्त प्राणियोंमें वर्तमान हैं-- इस विचारसे सर्वभूतोंमें समदृष्टि होनी चाहिये।

ये सब कार्योंमें काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि छः रिपुओंको जीतकर भगवानमें भक्ति प्राप्त कर सकोगे। इन छः शत्रुओंको नहीं जीतनेसे क्या होता है?

काम, क्रोध, लोभ, मोह [illegible] जब लौं
मनसे त्याग।
क्या पण्डित क्या मूर्ख दोनों एक समान ॥

एकमात्र भगवत्चरणाश्रयसे ही इस संसारका नाश होगा और उसीसे भगवत्प्रेम प्राप्त हो सकेगा। हे असुरबालकगण! श्रीहरि हृदयके भीतर आकाशके समान विराज रहे हैं। वे आत्माके मित्र हैं, अतएव उनका सन्तोष उत्पादन करना कुछ कठिन नहीं है। इस संसारमें धन, स्त्री, पशु आदि, घर, भूमि, हाथी, घोड़ा इत्यादि पशुओं, [illegible] काम और मनुष्योंके जीवन सभी क्षणभङ्गुर हैं। सुतराम् इन सभी अचिरस्थायी वस्तुओंसे मनुष्योंका क्या प्रिय कार्य हो सकता है? विशेषतः मनुष्य जीवन भी अनित्य है। स्वर्गादि देवलोक भी अनित्य हैं। सुतराम् ये सब हमलोगोंकी कामनाकी वस्तु नहीं हैं। विद्वान् व्यक्ति यहां विषय सुखके लिये संकल्प कर लौकिक तथा वैदिक कर्मका अनुष्ठान करते हैं किन्तु उनकी कामना उससे पूरी नहीं होती बल्कि विपरीत हो जाती है।

कर्मीलोग यहां सुखकी प्राप्ति और दुःखकी निवृत्तिके लिये ही चेष्टा करते हैं पर जबतक यह कोशिश नहीं करते तबतक वे शान्त और सुखी रहते हैं। कोशिशके आरम्भसे ही दुःख आता है। फिर भी जो शरीरके लिये सुखकी कामना करते हैं वह सियार-कुत्तोंके भक्षणकी सामग्री, क्षणभंगुर और अनित्य है। जब अपने शरीरकी यह दशा है, तब फिर शरीरसे भिन्न स्त्री पुत्र, घर, धन, राज्य, पशु आदिकी तो बात ही नहीं पूछनी चाहिये। ये सब पदार्थ शरीरके समान नश्वर हैं। अतएव इन सभी तुच्छ वस्तुओंसे नित्यानन्दकी खान आत्माको क्या आवश्यकता हो सकती है? पूर्वजन्ममें किये हुए कर्मोंके वश ही यह शरीर और ये सब कष्ट प्राप्त किये जाते हैं, फिर उसी शरीरसे कर्म करते हुए क्या मङ्गल प्राप्त किया जायगा? कर्म समाप्त हो जानेसे भी भोगनेका अन्त नहीं होगा। क्योंकि जीव अपने शरीरसे कर्म करता है। वह कर्म फिर अन्यान्य शरीरका विस्तार करता है। ऐसे अज्ञानके कारण कर्म और देह विस्तृत होते रहते हैं। अतएव मुमुक्षुओंके लिये धर्म, अर्थ, कामकी सेवा छोड़कर भक्तोंके अनुसरणसे श्रीहरिकी आराधना करना कर्तव्य है। श्रीहरि सब प्राणियोंके आत्माके स्वरूप, प्रिय और ईश्वर हैं। सब प्राणी उनसे सृष्ट हुए हैं, इसीलिये वे अन्तर्यामी हैं। मनुष्य, देवता, असुर, यक्ष, गन्धर्व जो कोई हो, मुकुन्द पदकमलका भजन करनेसे कल्याण प्राप्त कर सकेंगे। ब्राह्मणत्व, देवत्व, ऋषित्व, सदाचार या बहुज्ञता कोई भी वस्तु भगवानकी प्रीति उत्पादन करनेमें समर्थ नहीं है। दान, तपस्या, यज्ञ, शौच, व्रत आदि भी उनकी प्रीतिका कारण नहीं हैं। केवल निष्काम भक्तिसे ही भगवान सन्तुष्ट होते हैं और सब तुच्छ है। अतएव हे असुरगण! तुम सब हर काल भगवानके प्रति [illegible] भक्ति विधान करो। यक्ष, राक्षस, स्त्री, शूद्र, गोप, पशु पक्षियोंने भी भक्तियोगके प्रभावसे भगवत्पदकमल प्राप्त किया है। और इस संसारमें उनके चरणोंमें एकान्त भक्तिको ही परम पुरुषार्थ कहा गया।

प्रह्लादके उपदेशसे बालकोंकी बुद्धि विष्णुमें स्थित देखकर गुरु षण्डामर्कने डरके मारे हिरण्यकशिपुसे समस्त वृत्तान्त निवेदन किया। दैत्यराजने

यह समाचार सुनकर बहुत ही क्रोधसे प्रह्लादकी हत्या करनेकी इच्छा की और तीव्र स्वरमें प्रह्लादसे कहा—हे दुर्विनीत, मन्दबुद्धि, कुलभेदकारी, अधम! तू मेरी आज्ञाका उल्लंघनकारी है इसलिये आज तुझको यमालय भेजूँगा। मुझे क्रुद्ध होनेसे देवताओंके साथ तीनों लोक कम्पित हो जाते हैं। तू किसके बलसे निडर होकर मेरे सामने खड़ा रहता है?

प्रह्लाद महाराज बोले- हे महाराज! मैं जिनके बलसे बलवान हूँ, वे ही आपके और अन्यान्य बलवानोंके बल हैं, और स्थावर जङ्गम उत्कृष्ट तथा निकृष्ट, यहाँ तक कि ब्रह्मादि देवताओंको भी अपने वशमें रखते हैं। वे ही परमेश्वर काल, इन्द्रियशक्ति, देहशक्ति और आत्माके स्वरूप हैं। उनकी शक्ति असीम है। वे स्वयं अद्वैत तथा तीन गुणोंके अधीश्वर हैं और अपनी शक्तिके द्वारा इस विश्वकी सृष्टि, रक्षा और संहार करते हैं।

आप आसुरी भाव छोड़ दीजिये। हृदयसे शत्रु-मित्र-भेद दूर कर एक समभाव धारण कीजिये। जिस मनको वशमें नहीं किया जा सकता, उससे बढ़कर कोई शत्रु नहीं है। सब भूतोंमें समदर्शन ही भगवानकी श्रेष्ठ उपासना है। आप कामादि छः शत्रुओंके वशीभूत रहकर ही समझते हैं कि आपने दशों दिशाएँ जीत ली हैं। किन्तु समबुद्धि जितेन्द्रिय व्यक्तिका कोई शत्रु नहीं है।

हिरण्यकशिपुने यह सुनकर कहा— अरे मन्दबुद्धि! तू मेरी निन्दा करते हुए अपनेको जितेन्द्रिय समझता है। परन्तु मेरी यह धारणा है कि तुझे मरनेमें और देर नहीं है क्योंकि मरनेके समय ऐसे ही अनहोनी भाव प्रगट होते हैं। तूने कहा कि मेरे अलावा और एक जगदीश्वर हैं। अगर ऐसा ही हो, तो वह कहाँ है? यदि सर्वत्र ही विराजते हैं, तो क्या इस स्तम्भमें भी है? अच्छा, मैं तेरा सिर शरीरसे अलग कर देता हूँ। देखूँ, तेरे हरि तेरी रक्षा कैसे करते हैं? ऐसा कहते हुए हिरण्यकशिपु प्रह्लादको डाटने लगे और बहुत ही तेजीसे स्तम्भमें मुष्टिसे आघात किये। आघातके साथ ही साथ एक भयङ्कर आवाज हुई, जैसे ब्रह्माण्ड भेद हो गया हो। देवगणोंने समझा कि इस आवाजके प्रभावसे वे लोग स्थानभ्रष्ट हो जायँगे। हिरण्यकशिपु भी धारणा करनेमें असमर्थ हुआ कि वह आवाज कहाँसे आयी।

भगवान् अपने भक्तके वचन सत्य करनेके लिये अर्थात् "श्रीहरि सर्वत्र विराजमान हैं" प्रह्लादकी कही हुई इस बातका सच्चा प्रमाण देनेके वास्ते तथा वे सब स्थानोंमें और सब प्राणियोंमें ही विराजते हैं- यह भी दिखलानेके वास्ते अर्द्ध नर और अर्द्ध सिंह मूर्त्ति प्रकट होकर हिरण्यकशिपुकी सभामें नृसिंह भगवानने आत्म-प्रकाश किया। इस मूर्त्तिको देखकर सभी लोग भयभीत हो गये। नृसिंह देवका रूप अत्यन्त भयानक था। उनके नेत्र चमकते सोनेके समान [illegible] दीख पड़ते थे। जटा और केशरसे संयुक्त मुखारविन्द क्रोध-पूर्ण उन्नत, मुख पर्वत गुफाके समान, आकाशको स्पर्शकारी तथा चन्द्रमाकी किरणोंके सदृश सफेद लोमोंसे ढके हुए शरीर, चारों ओर प्रसारित असंख्य भुजायें और अस्त्रादि दीख पड़ते थे। हिरण्यकशिपुने इस मूर्त्तिको देखकर सोचा कि अवश्य मायावी हरि इसी मूर्त्तिसे मेरी मृत्युका विधान करेंगे तो भी इससे मेरा क्या डर है? ऐसा कहते हुए वह गदा लेकर नृसिंह भगवानकी ओर दौड़ा। फतिंगा जैसे अग्निमें गिरनेसे वह फिर नहीं दीख पड़ता ऐसी ही हिरण्यकशिपुकी दशा हुई। उसके

उपरान्त हिरण्यकशिपुने नृसिंह [illegible] आक्रमण किया। गरुड़ जैसे सर्पको पकड़ लेते हैं वैसे ही भगवान्‌जीने हिरण्यकशिपुको [illegible] पकड़ लिया। [illegible] के लिये [illegible] देवगणोंने मेघके अन्तरालमें [illegible] कर अच्छा न समझा। [illegible] हिरण्यकशिपु [illegible] को भयभीत [illegible] आया। भगवान्‌जी हिरण्यकशिपुको [illegible] उसके ऊपर स्थापित कर नखसे [illegible] डाला। इसके उपरान्त हिरण्यकशिपुके [illegible] अनुचरोंका भी संहार किया। उस समय आकाश तक व्याप्त हुई थी और [illegible] पृथ्वी विचलित हुई थी। [illegible] नृसिंहदेव

सन्तुष्ट सभामें राजासनपर बैठे, पर इनके सामने कोई भी उनकी सेवा करनेमें समर्थ न हुआ। तीनों लोकोंको शोक देने वाला असुरका विनाश होनेसे देवस्त्रियोंने भगवान्‌के ऊपर पुष्पवृष्टि की, गन्धर्व लोगोंने गीत और अप्सराओंने नृत्य किया था। इसके उपरान्त ब्रह्मा, इन्द्र, महादेव आदि देवगण, ऋषिगण, पितृगण, सिद्ध-विद्याधर तथा नागगण, मनु आदि प्रजापति, अप्सरा और गन्धर्वलोग, चारण, यक्ष, किन्नर, वेताल, किंपुरुष, गरुड़ प्रभृति विष्णुपार्षदगण भगवान् समीप आगमन कर हाथ जोड़ते हुए उनकी स्तुति करने

(क्रमशः)

श्रीश्रीगिरिराज गोवर्द्धनमें कार्त्तिक व्रत

कार्त्तिक व्रतका दूसरा नाम दामोदरव्रत, ऊर्जव्रत अथवा नियमव्रत है। ऊर्ज शब्दका अर्थ उत्साह या बल है। [illegible] उत्साह होता है अथवा [illegible] उत्साह बढ़े उसीको ऊर्जव्रत कहते हैं। बारहों महीनोंमें कार्त्तिकमास ही कृष्णको सबसे प्रिय है। इस महीने में थोड़े उपहारसे भी भगवान सम्पूर्णरूपसे पूजित होकर पूजकको अभीष्ट प्रदान करते हैं, इसमें सन्देहकी कोई बात नहीं है। दामोदर श्रीकृष्ण जिस प्रकार भक्तवत्सल नामसे विख्यात है, उनके कार्त्तिक मास भी उसी प्रकार विख्यात है। यह मास थोड़ी सेवाको भी बहुत समझते है।

जो व्यक्ति किसी विशेष कारणवश चार महीनों तक चातुर्मास्य व्रत पालन नहीं कर सके, उनके लिये इस ऊर्जव्रतमें कम से कम एक महीना नियमपालन करना अत्यन्त आवश्यक है। यह व्रत अवश्य पालनीय है। जो व्यक्ति इस अनुकल्प विधिको भी पालन नहीं करते वे या तो अनिमुक्त हैं नहीं तो अति बद्ध। जो व्यक्ति बिना आराधनाके इस कार्त्तिकमासको बिता देते हैं कृष्ण उनसे विमुख रहते हैं, क्योंकि यह महीना कृष्णको परम प्रिय है।

हमलोगोंको शास्त्र पढ़नेसे विदित होता है, कि कार्त्तिक महीनेमें मथुरामें भगवत्सेवा करनेसे श्रीकृष्णमें अत्यन्त प्रेम बढ़ता है। कार्त्तिक महीनेमें मथुरापुरीमें हरिसेवाका फल सम्पूर्ण सेवाओंसे अधिक है। जो कार्त्तिक महीनेमें मथुरा नगरीमें स्नान करके दामोदरकी पूजा करते हैं, वे निश्चय ही कृष्णदर्शन करनेमें अग्रसर होते हैं। मथुरामें कार्त्तिकमास मानवगणके लिये परम दुर्लभ है। श्रीकृष्ण मथुराके अतिरिक्त अन्यत्र पूजित होकर सेवकगणको भोगमोक्ष फल प्रदान अवश्य करते हैं,

किन्तु परमगुह्य भक्ति वितरण नहीं करते, क्योंकि भक्ति ही श्रीहरिको वश करती है। परन्तु जो कार्त्तिक महीनेमें भगवद्भक्तोंकी अनुगतिमें श्रीहरिकी आराधना करते हैं, वे अनायास ही हरिभक्ति प्राप्त करते हैं। ध्रुवने बालक होकर भी कार्त्तिक महीनेमें मथुरा पुरीमें श्रीहरिकी आराधना कर थोड़े ही समयमें भगवानके चरणारविन्दका दर्शन प्राप्त किया था। इसलिये गौड़ीय मठाचार्य [illegible] त्रिदण्डिपाद श्रीश्रीमद् अनन्त वासुदेव पर विद्याभूषण गोस्वामीजीकी कृपासे श्रीमाथुर मण्डलके अन्तर्गत श्रीकृष्णकी लीलास्थली श्रीश्रीगोवर्द्धनमें गौड़ीय भक्तोंके कार्त्तिक या ऊर्जव्रतका पालन हुआ है।

इस उपलक्षमें प्रातःकाल ४॥ बजे मङ्गल-आरतिके उपरान्त नगरकीर्तन, श्रीश्रीगोवर्द्धन, मानस गङ्गा, कुसुमसरोवर, राधाकुण्ड प्रभृतिकी परिक्रमा तथा 'श्रीदामोदराष्टक' और 'श्रीगोवर्द्धनवास प्रार्थना-दशकम्' पाठ, श्रीमद्भागवतकी व्याख्या और सन्ध्या-आरतिके बाद श्रीहरिनाम [illegible] गिरि, श्रीचैतन्यचरितामृत, गीता पाठ तथा [illegible] हरिनाम सङ्कीर्तन होता था।

[illegible] अनुकूल [illegible], यत्न-पूर्वक [illegible] अकपट (अर्थ-धर्म काम एवं मोक्ष-कामनारहित) वैष्णवोंकी [illegible] करना चाहिये। कार्त्तिक महीनेमें श्रीराधा-दामोदर [illegible] श्रीराधाजीके आनुगत्य करना चाहिये।

इस वर्ष भी कलकत्ता, ढाका, पटना, काशी, मथुरा, प्रयाग, दिल्ली, कुरुक्षेत्र, मेदिनीपुर, प्रभृति कई स्थानोंके भक्तोंने योगदान किया था। [illegible] सुप्रसिद्ध [illegible] श्रीयुत [illegible] निवासी [illegible] गोस्वामीजी महाशयों-के [illegible] ऊर्जव्रत पालन करनेके लिये [illegible] लिये देकर [illegible] कृतज्ञता ज्ञापन करता है।

श्रीश्रीभक्तिविनोद ठाकुरका उपदेश

परमेश्वरकी कृपाके अतिरिक्त इस दुस्तर भव सिन्धु पार होनेका दूसरा कोई उपाय नहीं है। जड़ वस्तुसे श्रेष्ठ होनेपर भी जीव स्वभावतः दुर्बल तथा पराधीन है, एकमात्र भगवान् ही जीवका नियन्ता, रक्षक तथा उद्धार करने वाले हैं। जीव अणुचैतन्य है, इसलिये परमचैतन्यके अधीन है और उनका सेवक है। परमचैतन्यस्वरूप भगवान् ही जीवका आश्रय हैं। भगवद्विमुखतावश जीवको मायाके साथ सम्बन्ध होता है। भगवत् दर्शन छोड़कर जीवको मायाके हाथसे उद्धार पानेका और कोई उपाय नहीं है। भगवत् बहिर्मुख जीव ही मायावश होता है। भगवदुन्मुख जीव ही मुक्त होता है।

भगवानकी प्रसन्नता प्राप्त करनेका कारण भक्तिके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। साधन भक्ति—श्रवण कीर्तनादि नौ प्रकार की है। उनमेंसे श्रवण, कीर्तन एवं स्मरण ही प्रधान साधनाङ्ग है। भगवानके नाम-रूप-गुण और लीला- इन्हीं चार विषयोंका श्रवण, कीर्तन तथा स्मरण होता है। इनमें नामही मुख्य है और सबोंके बीजके समान है।

अतएव हरिनामही समस्त साधनाओंके मूल हैं। प्राकृत वस्तु ही इन्द्रियग्राह्य होती है। कृष्णनामादि अप्राकृत (प्रकृतिसे परे) वस्तुएं हैं। वे कभी इन्द्रिय ग्राह्य नहीं होतीं। परन्तु जो नाम जिह्वापर प्रकाशित होते हैं, वह भक्तोंके अपार आनन्दकी स्फूर्ति मात्र है। अन्तःकरण समय आत्माकी अप्राकृत जिह्वासे कृष्णनाम उच्चारण करते हैं उस समय वह उच्चारित परमतत्त्व प्राकृत जिह्वापर आविर्भूत होकर नृत्य करते हैं। प्राकृत नाम हास्य, क्रोध, क्रन्दन, प्रीति प्रभृति जिसप्रकार प्राकृत रसोंसे सम्बन्ध-सम्पन्न रहते हैं, इसीप्रकार अप्राकृत रस जिह्वा तक कृष्णनाम उतार लाते हैं। केवल जिह्वापर कृष्णनामका जन्म नहीं होता है। साधनकालमें जिस नामका अभ्यास होता है, वह वास्तविक नाम नहीं है उसको कभी नामापराध और कभी नामाभास कहते हैं। अपराधरहित हरिनाम ग्रहण करना साधकोंका परम कर्त्तव्य है। जिनसे भगवत् तत्त्व जाना जाता है, वे आचार्यरूपी भगवान हैं। उनमें दृढ़ भक्ति करके हरिनाममें अचल श्रद्धा प्राप्त करना कर्त्तव्य है।

कृष्ण जीवका नित्य प्रभु और जीव कृष्णका नित्यदास है। इसको स्वाभाविक कह सकते हैं। कृष्ण आकर्षक, जीव आकृष्ट। कृष्ण ईश्वर, जीव ईश्वराधीन। कृष्ण द्रष्टा जीव दृश्य; कृष्ण पूर्ण, जीव दीन एवं क्षुद्र, कृष्ण सर्वशक्तिमान, जीव निःशक्तिक है। अतएव कृष्णकी नित्य अधीनता वा दास्य ही जीवका नित्यस्वभाव या धर्म है।

कृष्ण वस्तुतः वृहत्, पूर्ण, शुद्ध तथा सनातन है। जीव वस्तुतः अणु, खण्ड तथा अशुद्ध होने योग्य है। किन्तु धर्मतः जीव-वृहत्, शुद्ध अखण्ड और सनातन हैं। जीव जबतक शुद्ध रहता है तभीतक उसे स्वधर्मका विमल परिचय होता है। जीव जब मायासम्बन्धमें प्रवृत्त हो जाता है, तभी वह स्वधर्म विस्मृति के कारण अविशुद्ध, अनाश्रित एवं सुख-दुःखसे पीसा जाता है। जीवका कृष्णदास्य विस्मृत होनेके साथही संसारगति आकर उपस्थित होती है।

एक चित पदार्थ दूसरे चित पदार्थके साथ जिस गुणके द्वारा आकृष्ट होता है उसका नाम प्रेम है। हरिनामका अनुशीलन एकमात्र चिदनुशीलन है। कुछ दिन हरिनाम करते करते उस नाममें अपूर्व अनुराग उत्पन्न होता है। अनुरागके साथही चित्तशुद्धता सम्भव होता।

विचित्रशक्तिद्वारा भगवान एक ही समयमें सर्वव्यापी तथा साकार रह सकते हैं। परमेश्वर वस्तुतः साकार निराकार दोनों हैं। जो लोग दोनोंमेंसे एकके प्रति श्रद्धा करते हुए दूसरे स्वरूपको नहीं मानते हैं, वे दोनों तत्त्वोंमें नहीं देखते, ऐसा कहना होगा। साकार-निराकार लेकर विवाद करना नितान्त अनावश्यक है। परमेश्वरका भौतिक (पांचों भूतोंसे बना हुआ) आकार नहीं होता। किन्तु भूतातीत अप्राकृतस्वरूप विभु (सर्वव्यापक) का अप्राकृत सच्चिदानन्दरूप भक्तोंके ग्राह्य (ग्रहण योग्य) है। सिद्धान्त यह है कि प्राकृत चक्षुके लिये परमेश्वर निराकार एवम् अप्राकृत चक्षुके लिये साकार कहे जा सकते हैं। अतएव उनके दोनों स्वरूप स्वीकार किये जाते हैं। सात्वततत्व (विष्णुतत्व) सम्पूर्ण सम्प्रदायोंके अतीत है। अतएव सारग्राही व्यक्ति साकार-निराकाररूप विवादमें कभी भी लिप्त न होंगे। भक्ति उदय होनेसे मनुष्यकी बुद्धिमें दोनों प्रकारके ईश्वरकी उपलब्धि होगी।

ईश्वर समस्त चेतन एवम् अचेतन पदार्थोंकी

सृष्टि करनेवाले हैं। उनका शरीर जड़ नहीं होनेके कारण उनको हमलोग नहीं देख सकते। वे पूर्णस्वरूप एवं शुद्ध चेतन पदार्थ हैं। वे हमलोगोंके सृष्टिकर्त्ता रक्षक तथा उद्धार करनेवाले हैं। उनकी इच्छा करनेसे हमलोगोंका मङ्गल होता है। उनकी इच्छासे हमलोगोंका पालन होता है। वे भगवत्स्वरूपसे बैकुण्ठधाममें राज्य कर रहे हैं। वे समस्त शास्त्रोंके राजा हैं। उनकी इच्छानुसार समस्त संसारका काम चल रहा है।

श्रीकृष्णजन्माष्टमी तथा श्रीनन्दोत्सव

भगवान्के जन्मको प्राकृत मानना हमारी [illegible] बहुत बड़ी भूल है। भगवान्ने स्वयं गीताके चतुर्थ अध्यायमें अपने जन्मके सम्बन्धमें अर्जुनसे कहा है।

(गीता ४।६)

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

[illegible] अजन्मा मैं और अवश्य जीवोंके जन्ममें बड़ा भेद है। मैं सब प्राणियोंका ईश्वर, जन्मरहित और क्षयरहित हूँ, और अपनी इच्छासे संसारमें प्रकट होता हूँ, और जीव मेरी मायाके अधीन होकर अपने कर्मफलानुसार जन्म लेता है। मैं मायाधीश हूँ और जीव मायादास। भगवान्के जन्मके अप्राकृत होनेके सम्बन्धमें एक प्रमाण यह भी है कि भगवान् कृष्ण जिस समय माताके गर्भसे प्रकट हुए उनका रूप साधारण जीवके समान न था। उनकी चार भुजाएँ थीं जिनमें दिव्य शंख चक्र, गदा और पद्म सुशोभित थे। उनके शरीरकी अपूर्व छटा अलौकिक वस्त्र और आभूषणोंसे देदीप्यमान हो रही थी। भगवान्ने और भी कहा है।

जन्म कर्म्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥
(गीता ४।९)

जो [illegible] इस प्रकार [illegible] जानते हैं वह [illegible] फिर जन्म ग्रहण नहीं करते और वह मुझमें प्राप्त होते हैं।

[illegible] और [illegible] आदि मायिक [illegible] नहीं [illegible] भगवान्के जन्मके रहस्यको जानता है वह स्वयं जन्म मरणसे मुक्त हो जाता है।

भगवान्के सम्बन्धमें [illegible] शब्द प्रयुक्त होता है तो उसका यह अर्थ नहीं होता कि जिसका जन्म न हो और [illegible] कि जिसका जन्म अन्य जीवोंकी भाँति प्राकृत होता है। इसी प्रकार भगवान्को अजन्मा और [illegible] कहा जाता है जिसका अर्थ है कि उनके नाम और रूप अन्य जीवोंकी भाँति प्राकृत नहीं हैं।

भगवान् जिस प्रकार स्वयं नित्य हैं उसी प्रकार उनकी लीलाएँ भी नित्य हैं। श्रीकृष्णजन्म भी भगवान्की एक नित्य लीला है जिसका कभी अन्त नहीं होता। भगवान् अपने नित्य धाम गोलोक वृन्दावनमें जो लीला करते हैं वही नित्य लीला किसी काल विशेषमें वे प्रेमी भक्तोंके लिये संसारमें प्रकट करते हैं। मनुष्यका जन्म होता है और मृत्यु। परन्तु भगवान्का जन्म होता है न कि मृत्यु। मनुष्यकी देह और देही भिन्न है। भगवानकी

देह भगवानसे अभिन्न है, इसीसे भगवानके शरीरका नाश सम्भव नहीं है।

भगवान जब संसारमें आविर्भूत होते हैं, उनके साथ उनका दिव्यधाम और उनके नित्य पार्षद आदि भी संसारमें प्रकट होते हैं। इसलिये भगवान के संसारमें प्रकट होनेपर भी मायिक जगतका उनसे स्पर्श नहीं होता।

श्रीकृष्ण पूर्णपुरुष और नित्य लीलामय तथा प्रेम रसपूर्ण हैं। संसारमें उनके आनेका कारण एकमात्र भक्तोंका प्रेम ही है। गीतामें जो साधुओंका परित्राण असाधुओंका विनाश और धर्म संस्थापन भगवानके अवतारके कारण बतलाये हैं वह स्वयं भगवान श्रीकृष्णके लिये नहीं बल्कि उनके प्रकाश या अंश अनिरुद्ध, विष्णु, राम, नृसिंह, वाराह, वामन आदि अनेक अवतारोंके लिये हैं। चोर और डाकुओंको पकड़नेके लिये जिस प्रकार स्वयं सम्राट अपना सिंहासन छोड़कर नहीं आते बल्कि उनके कर्मचारी कान्सटेबल, दरोगा और कोतवाल आदि ही इस कार्यको करनेमें समर्थ होते हैं उसीप्रकार पृथ्वी पर शान्ति स्थापित करनेके लिये स्वयं भगवान कृष्णके आनेकी आवश्यकता नहीं होती। जिस प्रकार सम्राट्के दिग्विजयके लिये जाते समय उनके अधीन सेनापतिगण भी साथ जाते हैं उसी प्रकार जिस समय पूर्णपुरुष भगवान् संसारमें अवतीर्ण होते हैं, उनके साथ साथ वैकुण्ठके नारायण; वासुदेव, सङ्कर्षण, मत्स्य, कूर्म प्रभृति अंशावतार; युगावतार और मन्वन्तरावतार आदि सब संसारमें आते हैं। श्रीकृष्ण लीलामें जो असुरवधादि कार्य भगवान् किये हैं, वह सब उनके आंशिक अवतारों द्वारा ही किये गये हैं। वृन्दावनमें जो भगवान्ने ब्रह्माको अद्भुत कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड दिखलाया था वह भी उनके अंश नारायणकी लीला थी।

कृष्णजन्मका प्रकृत अर्थ जीवके हृदयमें भगवानका प्रकट होना है। वसुदेव विशुद्ध सत्वका रूप है "सत्त्वं विशुद्धं वसुदेव शब्दितं।" वसुदेवके समान जिसका हृदय पवित्र होता है उसके हृदयमें वासुदेव प्रकट होते हैं। विशुद्धसत्वमें परिपूर्ण प्रेमी भक्तके हृदयमें जब भगवानके प्रति ममता और आसक्तिका सञ्चार होता है तब विशुद्ध सत्वका नन्द स्वरूप प्रस्फुटित होता है और भक्तके हृदयमें नन्दनन्दनके निखिल ऐश्वर्य माधुर्य रूपका विकास होता है। यही श्रीकृष्णजन्मका वास्तविक तात्पर्य है। संसारमें जिस प्रकार रक्त और वीर्यका प्राणियोंमें परस्पर सम्बन्ध होता है उस प्रकार अप्राकृत चिन्मयजगतमें रक्त और वीर्यका सम्बन्ध नहीं होता। वीर्यके संयोगसे जिस प्रकार किसी स्त्रीके गर्भमें प्रविष्ट होकर जीवकी उत्पत्ति होती है उस प्रकार वासुदेव भगवान् प्रकट नहीं होते। पूर्व दिशा जिस प्रकार चन्द्रमाको धारण करती है उसी प्रकार देवकीने भी विशुद्धसत्व वसुदेवके हृदय-रत्नको अपने हृदयमें धारण किया था, यशोमतीके गर्भसे नन्दनन्दन आविर्भूत नहीं हुए, इसीलिये यह नहीं कहा जा सकता कि वह यशोदा-नन्दन नहीं हैं। इसी प्रकार हिरण्यकशिपुके सभास्तम्भसे नृसिंहदेव प्रकट हुए, इसलिये उन्हें स्तम्भ-पुत्र नहीं कहा जा सकता। उत्तराके गर्भकी रक्षा करनेके लिये भगवानने उसके गर्भमें प्रवेश किया था, इसलिये उत्तराको कृष्णकी माता नहीं कहा जाता और ब्रह्माकी नाकसे वाराहदेव प्रकट हुए थे इसलिये ब्रह्माको भगवानका पिता नहीं कहा जाता। भगवान् और जीवमें केवल प्रेमका ही सम्बन्ध हो सकता है। जीव भगवान्की उपासना जिस रूपमें करता

है, भगवान् भी उसी रूपमें उसको सदा ध्यान करते हैं। इसको भी तो भगवान्ने स्पष्ट रूपमें गीतामें स्वीकार किया है "ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्"। जो भगवान्को पुत्ररूपमें ध्यान करता है उसे वह पिता रूपमें स्वीकार करते हैं, जो स्वामी रूपसे उनकी उपासना करता है उसे वह अपना दास करके मानते हैं और इसी प्रकार भक्तोंके प्रेमके वशमें होकर वह अनेक रूपमें उनके साथ विहार करते हैं।

जीव जबतक भगवान् कृष्णके चरणकमलोंको प्राप्त नहीं कर लेता तबतक उसके आवागमन और सांसारिक सुख-दुःखोंका शेष नहीं होता; और तबतक भगवान स्वयं आकर उसके हृदयरूपी मथुरामें प्रकट नहीं होते तबतक जीव उन्हें प्राप्त भी नहीं कर सकता। जीवकी दशा एक अन्धकूपमें गिरे हुए अभागे मनुष्यके समान है जो लाख बार प्रयत्न करने पर भी स्वयं अन्धकूपसे बाहर नहीं निकल सकता जबतक ऊपरसे कोई दयालु पुरुष उसके सहारेके लिये रस्सी न लटकावे जिसे पकड़कर वह ऊपर आ सके। या इस प्रकार कहिये कि भगवानकी कृपाके बिना केवल अपनी बुद्धि और इन्द्रियोंका भरोसा कर जीवका भगवान्को प्राप्त करनेकी चेष्टा करना वैसा ही है जैसा कि रात्रिके समय किसी मूर्खका दीपककी रोशनीमें सूर्यकी तलाश करना।

हृदयको इस प्रकार पवित्र बनानेका साधन जिससे भगवान कृष्ण उसमें प्रकट हो सकें केवल भक्ति है। हृदयमें भक्तिका संचार होनेसे जन्म-जन्मके पाप कट जाते हैं और भगवानके जन्मके लिये वह एक उपयुक्त सूतिकागृहके समान हो जाता है।

परन्तु भगवानकी यह निर्मल भक्ति भगवानके भक्तोंसे ही प्राप्त हो सकती है। इसलिये भगवानसे अधिक महिमा भगवानके भक्तोंकी है और इसीलिये श्रीनन्दोत्सव हमारे लिये श्रीकृष्ण जन्माष्टमीके उत्सवसे भी अधिक महत्वपूर्ण है। नन्द महाराजने जो वात्सल्य प्रेमका आदर्श जीवोंके प्रति रखा है वह वास्तवमें अद्वितीय है। संसारके इसके किसी धर्ममें भगवानकी भक्तिका यह आदर्श नहीं मिलता। ईसाके धर्ममें तथा अन्यान्य धर्मोंमें भगवानका पितृत्व स्वीकार किया गया है और भगवानको बड़ा और पूजनीय मान कर कृतज्ञ बुद्धिसे उनकी उपासना बतलाई गई है परन्तु पिताका जिस प्रकार पुत्रके प्रति स्वाभाविक आसक्तिमय प्रेम होता है उसी प्रकार भक्तका भगवानके प्रति प्रेम हो सकता है, इसकी कल्पना भी इन धर्मोंमें नहीं की गई। भगवानको पिता मानकर उनसे अपनी इन्द्रियोंको तृप्त करनेके लिये जो व्यक्ति नाना प्रकारकी सामग्रियोंकी प्रार्थना करता है वह शुद्ध भक्ति एवं सेवाका परिचय न देकर भगवानके साथ एक प्रकारका व्यवसाय करता तथा उलटा उनसे अपनी सेवा कराता है; किन्तु भगवानको पुत्र मानकर जो उनकी उपासना करता है, वह भगवान्से कुछ मांगनेकी अपेक्षा अपना तन मन उनकी सेवामें लगा देता है और दिन-रात, सोते-जागते, उठते बैठते, खाते-पीते उनके सुखकी चिन्तामें रहता है। नन्द और यशोदाकी भगवानमें पाल्य-बुद्धि तथा उनकी भगवानमें आसक्ति इतनी बढ़ी हुई थी कि कृष्ण जिस समय सखाओंको साथ लेकर गायें चराने वनको जाते थे उस समय नन्द और यशोदा उन परब्रह्म परमेश्वरको जिनके भयसे भय भी भयभीत होता है असहाय जानकर विघ्न निवारक

व्याघ्रनखादि पहिना, ब्राह्मणादिसे आशीर्वाद दिला और बलराम, पश्चात् श्रीकृष्णको विशेषरूपसे उनका ध्यान रखनेके लिये बार-बार [illegible] किया करते थे। [illegible] मानो नन्द और यशोदाका जीवन था। [illegible] कारण गृहस्थीके [illegible] तथा उनके ही लिये भोजन [illegible] नन्द और यशोदा [illegible] को [illegible] कल्याण हो सकता है, [illegible] में की है।

[illegible]

अहमिह [illegible]

[illegible]

[illegible] की कामनासे [illegible] शास्त्रोंको [illegible] जो सांसारिक सुखोंमें [illegible] पूर्ण [illegible] करते हैं, [illegible] ही [illegible] की वन्दना करता है जिसके वामस्वरूपमें परमानन्दकन्द परब्रह्म श्रीकृष्ण लीला करते हैं।

जीवके हृदयमें भक्तिलताका अङ्कुर जिस समय निकलता है आशंका और नास्तिकता [illegible] उसे समूल उखाड़ कर फेंकने तथा कुचल डालनेका प्रयत्न करता है। परन्तु यदि जीव अपनी भक्तिमें दृढ़ रहता है तो समय पाकर भगवान उसके हृदयमें प्रकट होते हैं और उनके प्रकट होते ही उसके [illegible] आपसे आप [illegible] जाती है—वह [illegible] मुक्ति पाता है। [illegible] और उन्हीं [illegible] जो भक्तके हृदयमें भक्तिरूपी [illegible] करते हैं और [illegible] अपने सहस्र [illegible] रहते हैं वह [illegible] अज्ञान और [illegible] रात्रि में [illegible] भगवानके अप्राकृत [illegible] जा पहुंचता है और वहां नित्य [illegible] करते हुए परमानन्दमें मग्न रहता है।

श्रीहरिनाम

(गताङ्कसे आगे)

[illegible] श्रीहरिनामके माहात्म्यको [illegible] स्तुति समझना—पञ्चम नामापराध है। श्रीमद्भागवतादि सात्त्वत शास्त्रोंने श्रीहरिनामका जो फल और माहात्म्य वर्णन किया है उसको मिथ्या समझना यह नामापराध है (भा० [illegible])।

६। श्रीहरिनामको एक काल्पनिक वस्तु समझना—छठा नामापराध है। श्रीहरिनाम-अक्षर-मात्र है, इसकी कोई नित्यसत्ता नहीं है, इसको मनुष्यने अपने मनसे कल्पना करके निकाला है—ऐसा जो लोग विचार करते हैं वे नामापराधी हैं। वैकुण्ठनाम और कुण्ठायुक्त जागतिक शब्दको एक या समान समझना अथवा नामको नामीसे पृथक समझना नामापराध है (भा० ६-२-१४)।

७। [illegible] नामके भरोसे पापबुद्धि—सप्तम नामापराध है। अर्थात्, हम कितना ही पाप क्यों न करें हरिनाम करते ही से सब पाप क्षय हो जायगा—

इस बुद्धिसे जो पाप करता है वह नामापराधी है। परन्तु अपराधी व्यक्ति भी यदि श्रीनामप्रभुके चरणोंमें 'हे श्रीनामप्रभु! मैं जिससे आपके चरणोंमें अपराध न करूँ ऐसी मति दीजिये, मैंने अब-तक जो कुछ पाप किया है उसको क्षमा कीजिये। मैं फिर अब पाप नहीं करूँगा एवं आपके तथा आपके भक्तोंके वचनोंका उल्लंघन करके आपके और आपके भक्तोंके चरणोंमें अपराध नहीं करूँगा' इस प्रकार आन्तरिकताके सहित अपने किये हुए नामापराधोंके मार्जनकी प्रार्थना निरन्तर करे तब श्रीनामप्रभु कृपा करके उसका समस्त अपराध क्षमा करते हैं। क्योंकि दया-नामी श्रीकृष्णचन्द्रके कृष्णनामका माहात्म्य अचिन्त्य है (श्रीनामाष्टक षष्ठश्लोक)। सरलता ही वैष्णवता है और कपटता ही अभक्ति अथवा अपथ है। कपट अर्थात् धर्म अर्थ काम मोक्ष तथा सिद्धि लाभ करनेकी आकांक्षा जिनके भी हृदयमें रहनेसे हरिनाम उच्चारित नहीं होते हैं। यदि कोई व्यक्ति यों निवेदन करे कि 'हे नाथ मैं आपसे धन नहीं मांगता हूँ, जन नहीं मांगता हूँ, सुन्दरी भार्या नहीं मांगता हूँ, पाण्डित्य नहीं मांगता हूँ यहां तक कि मोक्ष भी नहीं चाहता हूँ, और न कोई जगत्में प्रतिष्ठा चाहता हूँ। आपके चरणकमलोंकी अहैतुकी सेवाकी ही मेरी एकमात्र प्रार्थना है। इसको छोड़ मुझे और किसी चीज की कामना नहीं है' इस प्रकार निष्कपट भावसे प्रार्थना करते करते निरंतर हरिनाम करे तो उसका नामापराधका खण्डन हो जाता है। सरल चित्त रखने वालेका नामापराध अविश्रान्त नामकीर्त्तन करनेसे क्षय हो जाता है। (श्रीशिक्षाष्टक श्लोक ४)

(भा:[illegible]

८—"अन्य कोई शुभकर्मके सहित कृष्णनामकी तुलना करना (अथवा अन्य कोई शुभकर्मको कृष्णनामके समान ज्ञान करना) तथा अनवधान अथवा प्रमाद—अष्टम नामापराध है।" निरपराधके सहित एक कृष्णनामका उच्चारण करनेसे हृदयमें जो प्रेम संचार होता है उस प्रेमके साथ जगतके दूसरे कोई शुभकर्मके साथ तुलना नहीं हो सकती है। कारण इसका यह है कि कृष्णप्रेम ही मनुष्य जीवनका एकमात्र परम उद्देश्य है। कोटि कोटि गो दान व्रत स्नान, तपस्या इत्यादि कोई अनित्य फलोंका और निरानन्दमय शुभकर्मके सहित साक्षात् सच्चिदानन्दमय परमात्म श्रीहरिनामकी तुलना कदापि नहीं हो सकती है। प्रमाद—श्रीनामभजनमें उदासीनता अथवा निष्ठाका अभाव, जाड्य अर्थात् आलस्य, एवं विक्षेप अर्थात् दूसरे विषयोंमें मनोनिवेश, नामापराधका कार्य है।

९—"हरिनाममें श्रद्धाहीन व्यक्तिको हरिनाम मन्त्रका उपदेश दान नवम नामापराध है।" जिसको सांसारिक भोगके प्रति अत्यन्त प्रबल आसक्ति अथवा विरक्ति है उसको बलात् हरिनामका उपदेश देना या हरिकथा कहना नामापराध है। सबोंके निकट हरिनामका माहात्म्य कीर्त्तन करना होगा, और हरिनाम-माहात्म्य सुनकर जिनके हृदयमें हरिनामके प्रति श्रद्धा अथवा रुचि उत्पन्न होगी उनको हरिनाम अथवा हरिकथाका उपदेश भी देना ही होगा, किन्तु श्रद्धाहीन व्यक्तिके निकट कदापि नहीं।

१०—"देहात्म-बुद्धिके कारण हरिनामका माहात्म्य सुनकर भी हरिनाममें प्रीति रहित होना—दसवां नामापराध है"। जिस व्यक्तिको देहात्मबुद्धि है उसके मुखसे हरिनाम नहीं उच्चारण होता है, वह केवल नामापराध कीर्त्तन करता है। इस प्रकार

जन्म जन्मान्तर श्रवण तथा कीर्तन करनेमें भी उसको तृप्ति नहीं होती है। इसीलिये शरीरसे मैं और मेरी वृत्तिको परित्याग करनेका सम्बन्ध-ज्ञान विशिष्ट होकर श्रीमद्रूपके आनुगत्यमें जो हरिनाम करते हैं वे नामप्रभुकी कृपासे नामका फल-रूप कृष्णप्रेम प्राप्त करते हैं। अतएव मैं कृष्ण-दास हूँ और कृष्ण अर्थात् कृष्णनाम ही मेरा नित्यधन है, उनके चरणकमलोंकी सेवाके अतिरिक्त मेरी कोई दूसरी आकांक्षा नहीं है और न कोई दूसरा कृत्य है। मैं स्वरूपतः न ब्राह्मण, न क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र नहीं हूँ, और न ब्रह्मचारी गृहस्थ, वानप्रस्थ अथवा सन्यासी हूँ। मैं अखिलरसामृत मूर्त्ति गोपीभर्त्ता श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलोंके दासका दासका दासानुदास हूँ, यही मेरा नित्य स्वरूप है। ऐसा सम्बन्ध विशिष्ट होकर जो कृष्ण-नाम करते हैं वह शीघ्र ही नामापराधसे मुक्त होकर श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलोंकी प्रेम-सेवा लाभ करते हैं।

नाम और नामी

[illegible]

किन्तु ऐश्वर्यप्रकाशक नाम नामीका पूर्णरूपसे प्रकाश करनेपर भी गौरव या सम्भ्रमके कारण नाम करनेवालेको दूर रखते हैं; किन्तु पूर्ण ऐश्वर्य-प्रभाव जिसमें सब माधुर्यभाव द्वारा शिथिल हो जाता है उस समय प्रीतिकी पराकाष्ठा (सीमा) प्रकाशित होती है और उसी समय पूर्ण माधुर्य-प्रकाशक नामी, कृष्ण गोविन्द इत्यादि नाम-से भक्तकी चिन्मय सेवोन्मुखी जिह्वा पर प्रकट होते हैं।

देश भाषा धर्म और शास्त्र भेदसे भी परमेश्वरके नामोंमें भेद देखा जाता है जैसे गॉड [illegible] अल्ला इत्यादि। कृष्णनाम ही सर्वश्रेष्ठ है। इसका प्रमाण क्या है? यह क्या किसी सम्प्रदाय-विशेषकी कल्पना है? सिद्धान्त तो यह है कि जो नाम परतत्व (भगवान्) के सब भावको सम्पूर्णरूपसे प्रकाशित कर सकता है वही सर्वश्रेष्ठ है और वही सब व्यक्तिका उपास्य होना चाहिये। अल्ला शब्दसे सबसे बड़ी (बृहत्) वस्तु समझी जाती है। किन्तु बृहत् शब्दसे सब-चमत्कारिताका पूर्णरूपसे प्रकाश नहीं होता। बहुत बड़े भावमें एक प्रकारकी चमत्कारिता है और उसके विपरीत बहुत छोटे भावमें दूसरे प्रकारकी चमत्कारिता है। निर्विशेष भावमें तीसरे प्रकारकी चमत्कारिता और सविशेष भावमें चौथे प्रकारकी चमत्कारिता है। अचिन्त्य प्रभावके कारण कृष्ण और गोविन्द नाममें बहुत बड़ा और बहुत छोटा, निर्विशेष और सविशेष भाव एक ही साथ बहुत सुन्दररूपसे समन्वित रहता है। अल्ला या बृहत् वस्तुमें सम्भ्रम और गौरवकी अधिकताके कारण अल्लाके प्रिय सखा पैगम्बरमें भी अधिक घनिष्ट प्रीतिका चरम दृष्टान्त नहीं पाया जाता है। किन्तु अधोक्षज श्रीकृष्णमें सभी चिन्मय रसोंका अपूर्व समावेश रहता है। उतनी अधिक प्रीति होनेके कारण भगवान्के सेवकगण सखारूपसे

"कांधे चढ़े कांधे चढ़ाये करे क्रीड़ा रण"
"माता-रूपे होन ज्ञाने करे लालन पालन"
"प्रिया यदि मान करि करये भर्त्सन

अचिन्त्य प्रभावके कारण गोपियोंके हृदयमें अप्राकृत कामगन्धशून्य अलौकिक अनुरागका सञ्चार होता है। इस कृष्णनाम-माधुर्यका जिन्होंने आस्वादन किया है वे ही जानते हैं, प्राकृत विचार द्वारा यह नहीं समझा जा सकता है, न समझाया जा सकता है। मुख्य बात यह है कि ऐश्वर्यके सामने प्रेम शिथिल हो जाता है। इस संसारमें भी हम लोग देखते हैं कि यद्यपि नौकर अपने मालिकको बड़ा समझ कर प्रीति करता है तथापि वह प्रीति उस प्रीतिसे अत्यन्त संकुचित रहती है जो पिता अपने शिशुके प्रति प्रीति करता है।

भाषा भेद रहनेपर भी भिन्न-भिन्न एक होनेसे नामके तारतम्यका विचार नहीं होता है। भगवान का परिपूर्णरूप यदि इस जड़जगतमें किसी विदेशी भाषामें भी अप्राकृत चिन्मय सेवोन्मुखी आत्मामें प्रकाशित हो तो वह भी सर्वश्रेष्ठ नाम है। कृष्ण-नाम यदि अधोक्षज भगवत-सेवकके मुखसे उच्चरित कान्ह, कान्ह, कन्हइया अन्य कोई भाषा या शब्दसे उच्चारित हो तो उसके फलमें भी कुछ तारतम्य नहीं है।

इसीलिये शास्त्रने कहा है—'भावग्राही जनार्दनः।' इस विषयमें श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरने भी भागवतकी टीकामें आलोचना की है। सात्वत शास्त्र-ने भी सर्वभाव प्रकाशक कृष्णनामकी ही श्रेष्ठता प्रतिपादन किया है

विष्णोरेकैकं नामापि सर्ववेदाधिकं मतम्।
तादृक् नामसहस्रेण रामनामसमं स्मृतम्॥
सहस्रनाम्नां पुण्यानां त्रिरावृत्त्या तु यत्फलम्।
एकावृत्त्या तु कृष्णस्य नामैकं तत्प्रयच्छति॥

अर्थात् विष्णुका एक नाम सब वेदोंसे श्रेष्ठ है और सहस्र विष्णुनाम एक रामनामके बराबर है। पुन: अप्राकृत सहस्र विष्णुनाम तीन बार आवृत्ति करनेसे जो फल होता है वही फल कृष्णनाम एक बार भी आवृत्ति करनेसे प्राप्त होता है।

पटना श्रीगौड़ीयमठमें गोवर्द्धनपूजा

गत २७ वीं अक्टूबर, रविवार श्रीगौड़ीयमठ, पटनामें गौड़ीयवैष्णवाचार्य ॐ विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद् अनन्त-वासुदेव परविद्याभूषण गोस्वामी प्रभुपादजीके निर्देशानुसार श्रीश्रीगोवर्द्धन पूजा और अन्नकूट-महामहोत्सव विशेष समारोहके साथ सुसम्पन्न हुआ था।

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गगान्धर्विका गिरधारीजी और श्रीश्रीगोवर्द्धनपूजाके उपरान्त चतुर्विध-रससमन्वित नानाविध द्रव्यद्वारा भोग निवेदन किया गया था। भोगके उपरान्त आरति-कीर्त्तन किया गया था।

इसके बाद मठके निकटवर्त्ती सुविस्तृत मैदानमें एक महती सभाका अधिवेशन हुआ। गुरुवन्दना और महाजन पदावली-कीर्त्तन होनेके उपरान्त पण्डित श्रीपाद नन्दगोपाल ब्रह्मचारी भक्ति-शास्त्री भक्तितुल महोदय श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध २४ वें और २५ वें अध्यायमें श्रीगोवर्द्धनपूजा और अन्नकूट महोत्सवके सम्बन्धमें पाठ और सरल बङ्ग-भाषामें व्याख्या की। तत्पश्चात उपदेशक पण्डित श्रीपाद व्रजेश्वरी प्रसाद भक्तिशास्त्री, भक्ति भास्कर महोदयने उपर्युक्त विषयपर हिन्दी भाषामें प्राय: एक घण्टे तक व्याख्यान दिया था। पाठ, व्याख्या

और वक्तृताको सुनकर श्रोतृवृन्द परमानन्दित हुए थे। वक्तृताके बाद यथाविधि नन्दन और महाप्रसाद कीर्त्तन हुआ था।

इसके बाद प्रायः ... में धार्मिक उपस्थित सद् महोदय और महिलाओंका चतुर्विध रसमय- मिश्रित विचित्र महाप्रसाद वितरण किया गया था। दूसरे दिन प्रायः ... सज्जनोंको महाप्रसाद वितरण किया गया था।

श्रीश्रील आचार्यदेवका पटनामें शुभागमन

गौड़ीय वैष्णवाचार्य परमहंस विष्णुपाद श्रीश्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद ...वीं अक्टूबर (१९३०) सोमवारको त्रिदण्डी स्वामी श्रीमद् भक्तिप्रदीप तीर्थ महाराज, 'गौड़ीय' सम्पादक महामहोपदेशक श्रीपाद सुन्दरानन्द विद्याविनोद और कतिपय भक्तवृन्दोंके सहित कलकत्तेसे यात्रा करके दूसरे दिन प्रातः प्रायः १० बजे पटना पहुँच गया और पटना निकटवर्ती अनेक स्थानोंसे बहुतसे भक्त और सज्जनोंने माल्यादि सहित उपस्थित होकर श्रीश्रीगुरु गौराङ्गकी जय ध्वनिके साथ श्रीश्रील आचार्यदेव की वन्दना की। श्रील आचार्यदेव उस दिन एम० एल० सी० क्वार्टर्समें विस्तृत श्रोतृमण्डलीके सम्मुख श्रीगौड़ीयमठके हरिनामानुशीलनके वैशिष्ट्यके सम्बन्धमें एक अभिभाषण किया जिसमें बहुतसे विशिष्ट सज्जन उपस्थित रहकर भक्तिसिद्धान्त-वाणीका श्रवण किया था।

उसके दूसरे दिन प्रातःकाल श्रील आचार्यदेव परम-भागवत श्रीपाद ब्रजेश्वरी प्रसाद बी० एल० महोदय-के भवनमें उपस्थित होकर श्रीनामके सम्बन्धमें अंग्रेजी भाषामें अनेक उपदेश प्रदान किये थे। उसी दिन अपराह्णमें श्रील आचार्यदेवने परमभाग-वत श्रीयुत मधुसूदन चट्टोपाध्याय भक्तिविलास बी० एल० महोदयके भवनमें जाकर समवेत बहु-सम्भ्रान्त व्यक्तिके समक्ष हरिकथा कीर्त्तन किया था।

...वीं अक्टूबर, बृहस्पतिवारको श्रील आचार्य-देव काशीमें शुभ विजय कर गङ्गा तटस्थ हरिश्चन्द्र घाटके ऊपर एक मकानमें अवस्थानपूर्वक अनुराग हरिकथा कीर्त्तन किया था। अपराह्णमें श्रील आचार्यदेव विद्यालय ... श्रीसनातन गौड़ीयमठ के सम्बन्धमें एक ... अभिभाषण प्रदान किया था।

...वीं अक्टूबर, शुक्रवारको श्रील आचार्यदेव ब्राह्ममुहूर्त्तमें काशीसे यात्रा कर प्रायः ... बजे प्रयाग पहुँचे। दूसरे दिन इलाहाबाद विश्वविद्या-लयके प्रोफेसर ... के प्रोफेसर ... महोदयके साथ सुन्दर आलोचना किया था। उसी दिन अपराह्णमें श्रील आचार्यदेवने श्रीपाद श्रीधर महाराज, 'गौड़ीय' सम्पादक और श्रीयुत लेखनाथ घोष महाशयको लेकर "श्रीरूपशिक्षास्थली", "वेणी माधव" और "नागवासुकी" प्रभृति स्थानोंका दर्शन करते करते हरिकथा कीर्त्तन किया था।

श्रील आचार्यदेवने प्रयागमें शुभ विजय कर अनुक्षण श्रीरूप और श्रीरूपानुगवर श्रीगुरुपादपद्मकी सेवा-माधुरीकी कथा कही थी। रात्रिमें श्रील आचार्यदेव समवेत सज्जन वृन्दोंके निकट "श्रीरूपगोस्वामी प्रभु और श्रीरूप गौड़ीय-मठ" के सम्बन्धमें अनेक कथा कीर्त्तन किये थे।

श्रील आचार्यदेव श्रीनैमिषारण्य-पथमें १८ वीं अक्टूबरको प्रातःकाल लक्ष्मणावती (लखनऊ) पधारे। यहां भी बहुत-से व्यक्ति श्रीआचार्य-वाणी श्रवण कर धन्यातिधन्य हुए थे। इस प्रकार श्रील आचार्यदेव श्रीप्रभुपादके द्वितीय-विग्रहके रूपमें सर्वत्र अनर्गल हरिकथा-कीर्त्तन कर रहे हैं।

Regd. No. P. 468.

श्रील प्रभुपादकी पत्रावली—(तृतीय खण्ड)

आचार्य-प्रकट तिथिमें श्रील प्रभुपादकी पत्रावलीका तृतीय खण्ड प्रकाशित हुआ है । प्रत्येक पत्र विशेष शिक्षाप्रद व सारगर्भ उपदेशमें परिपूर्ण है। हमलोग प्रत्येक मंगलकामी व सत्यका अनुसन्धान करनेवाले व्यक्तिको इस पत्रावलीको पाठ करनेका अनुरोध करते हैं।

श्रीचैतन्यदेव

श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके पहले व बाद भारत व बंगालकी राजनैतिक अवस्था, अर्थ-नैतिक अवस्था, विद्या, साहित्य व समाजिक अवस्था, धर्मजगत्की अवस्था, समसामयिक पृथिवीकी अवस्था, नवद्वीप-का परिचय व तथ्य और प्रमाणित ग्रन्थ व विवरण समूह सहज व सरल भावमें साधारणके पढ़नेके योग्य वर्णन किया गया है। ग्रन्थमें अनेक चित्र व मानचित्र दिये गये हैं। सुन्दर जिल्द भक्त, साधारण व्यक्ति व विद्यालयके छात्र सभीके लिये यह ग्रन्थ उपयोगी व प्रीति देनेवाला होगा। भिक्षा १) । प्राप्तिस्थान—श्रीगौड़ीयमठ, पो० बागबाजार, कलकत्ता। श्रीमाध्वगौड़ीयमठ, पो० वारी, ढाका ।

सरस्वती जयश्री

गौड़ीय-वैष्णवाचार्य ॐ विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादका भुवन-के मंगलदायक जीवनचरित ग्रन्थ है। निर्मत्सर शुद्धभक्ति पिपासु व्यक्ति इस ग्रन्थके पाठसे युगपत् अनेक शास्त्रग्रन्थ पाठ व अनेक साधुसङ्गका फल लाभ कर सकेंगे। वैभवपर्वका प्रथम खण्ड रायल ८ पेजी आकारमें एण्टिक कागजपर उत्तमरूपसे मुद्रित, ३६० पृष्ठोंमें। विस्तृत सूचीपत्रके साथ इसमें अनेक चित्र भी दिये गये हैं। भिक्षा ४)

'सामयिक-संख्या'—गौड़ीय

सामयिक-संख्या गौड़ीय अनेक त्रिवर्ण व एकवर्ण चित्र-शोभित व अनेक श्रेष्ठ वैष्णवसाहित्यिकगणों-की गवेषणापूर्ण प्रबन्धसे सुसज्जित होकर प्रकाशित हुई है। श्रीधाम-मायापुरमें श्रीश्रीगौरजन्मोत्सवके उपलक्षमें सर्वसाधारणोंके लिये भिक्षा ॥) आना ।

ठाकुर भक्तिविनोद

श्रीरूपानुगशुद्धभक्ति स्रोतके प्रवाहका मूल पुरुष ॐ विष्णुपाद श्रील ठाकुर भक्तिविनोदका जीवनचरित व शिक्षामाला बहुत सरल भाषामें बड़े बड़े अक्षरोंमें मुद्रित। भिक्षा ।॥) मात्र। प्राप्तिस्थान—कलकत्ता (बागबाजार) श्रीगौड़ीयमठ व ढाका—श्रीमाध्वगौड़ीय मठ।

अणुभाष्यम्

चार अध्यायी ब्रह्मसूत्रके प्रत्येक अधिकरणका तात्पर्य श्रीमन्मध्वाचार्य ८ टीकाकारमें बहुत संक्षेपमें बना हुआ। बंगभाषामें सर्वप्रथम संस्करण। पहले प्रति अध्यायके प्रति पादका श्रीमन्मध्वाचार्य-विरचित अणुभाष्यमूल, उसके बाद प्रति अध्यायके प्रतिपाद का सूत्र-समूह, अणुभाष्य-मूलका बंगला अनुवाद व श्रीपाद राघवेन्द्रयतिविरचित तत्वमञ्जरी टीका, उसका बंगला अनुवाद व तात्पर्य इस क्रमसे पुस्तक मुद्रित हुई है। इसके अतिरिक्त मातृका क्रमसे ब्रह्मसूत्र समूह, उसका अध्यायांक, पदांक व सूत्रांकके साथ सूचीपत्र भी संयोजित हुआ है। भिक्षा २) मात्र।

Printed by:—Brajeshwari Prasad, at The 'Indian Nation Press' and published by him from Sree Gaudiya Math, Mithapur, Patna.

भागवत

एकमात्र
पारमार्थिक
मासिक पत्र

५ नारायण
गौराब्द
४५२

पौष कृष्ण ५
संवत
१९९५ वि०

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥१॥

जिससे इन्द्रिय ज्ञानातीत श्रीकृष्णमें श्रवणादि-लक्षणा फलाभिसन्धान-रहिता ऐकान्तिकी स्वाभाविक निरपेक्षा भक्ति उदय होती है, वही मानव जातिका सर्वश्रेष्ठ धर्म है—उसी भक्तिके बलसे अनर्थ उपशान्त होनेसे आत्मा प्रसन्नता लाभ करती है।

प्रति संख्या -)॥ | सम्पादक-त्रिदण्डिस्वामी श्रीभक्तिभूदेव श्रौती महाराज | वार्षिक १)

Editor—Tridandiswami Sree Bhakti Bhudeb Shrauti Maharaj

विषय सूची

उद्देश्य

शुद्ध भगवद्भक्तिका प्रचार करना

प्रबन्ध-सम्बन्धी

(१) यह पत्र प्रति मास ५ कृष्णको प्रकाशित होता है।

(२) इस पत्रकी डाकव्यय सहित वार्षिक भिक्षा १) है।

(३) इस पत्रकी प्रति संख्याकी भिक्षा =)॥ है।

लेख-सम्बन्धी

लेखकोंको केवल भागवत धर्म सम्बन्धी लेख ही भागवत पत्रमें छपनेके लिये सम्पादक "भागवत" के पतासे भेजना चाहिये। जो लेख सम्पादकको पसन्द न होगा वह नहीं छापा जायगा और वापस भी नहीं किया जायगा।

विज्ञापन-सम्बन्धी

"भागवत" में विज्ञापन छपाईका दर नीचे लिखा है :--

साधारण पृष्ठ

प्रति संख्या

पूरा पृष्ठ या दो कालम	...	८)
आधा " १ "	...	५)
चौथाई " ½ "	...	३)
२ इंच " ¼ "	...	१॥)
१ " " ⅛ "	...	१)

स्थायी विज्ञापन और कवरपर विज्ञापन छपानेका रेट नीचे लिखे पतेपर पत्र-व्यवहार द्वारा तय करना चाहिये।

पत्र व्यवहारका पता--

मैनेजर—"भागवत"

श्रीगौड़ीयमठ,

मीठापुर, पटना।

All communications are to be addressed to—

The Manager 'Bhagwat'

SRI GAUDIYA MATH

Mithapur, Patna

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः



कृष्णे स्वधामोपगते धर्म्मज्ञानादिभिः सह। कलौ नष्टदृशामेषः पुराणार्कोऽधुनोदितः॥

वर्ष ४ | श्रीगौड़ीयमठ, मीठापुर (पटना) | संख्या ११

पौष कृष्ण ५, सं० १९९५ वि०, ११ दिसम्बर सन् १९३८ ई०

श्रीश्रील आचार्यदेव और मि० हरिशङ्कर माथुर

मि० हरिशङ्कर माथुरजी लखनऊके *Govt. Hand Loom Emporium* के *Manager* हैं। श्रीश्रील आचार्यदेवने जब लखनऊमें शुभागमन किया था उस समय माथुरजी प्रायः उनके निकट उपदेश ग्रहण करनेके लिये तथा अपने प्रश्नोंकी मीमांसा करानेके लिये आया करते थे। श्रीश्रील आचार्यदेवके मुखारविन्दसे निकली हुई चेतन वाणीको श्रवण कर वे तथा उपस्थित भक्तवृन्द परमानन्दित होते थे।

गत १७ वीं अक्तूबर, सन्ध्याके बाद मि० हरिशङ्कर माथुरजीने हरिकथा श्रवण करनेके लिये श्रील आचार्यदेवके निकट अपने कुटुम्बियोंके सहित लखनऊ वाणारशी बाग 'कृष्णभवन' वा राजाराम निवासमें आगमन किया। मि० माथुरजीकी फुआ हरिकथामें विशेष शुश्रूषु और साथ ही साथ शिक्षिता महिला हैं। उनके पुत्रोंमेंसे दो ने विलायतमें आई० सी० एस० परीक्षा पास की है; जिनमें एक पुत्र वर्तमान लखनऊके कमिश्नर एवं द्वितीय पुत्र डिप्टी सेक्रेटरी हैं। माथुरजीने श्रीआचार्य-पादपद्ममें कई प्रश्न किये।

माथुरजी—गुरु और शिष्यका क्या लक्षण है?

आचार्यदेव—जो व्यक्ति गुरुपादपद्ममें काय, मन और वाक्य—ये तीन मुद्रा दक्षिणा प्रदान करते, उसके बदलेमें और कुछ नहीं चाहते तथा जो

गुरुदेवकी सेवाके सिवा कोई दूसरा काम नहीं करते हैं वे ही प्रकृत शिष्य, और जो सर्वदा कृष्णनाम-कीर्त्तनमें संलग्न रहकर कोई भी नैवेद्य मध्यपथमें ग्रहण नहीं करते (अपने लिये नहीं ग्रहण करते), जो समस्त वस्तु कृष्णपादपद्ममें पहुंचा देते अर्थात् कृष्ण-कीर्त्तन-सेवामें नियुक्त करते हैं, वे ही प्रकृत गुरु हैं।

माथुरजी--'राम', 'कृष्ण' सच्चिदानन्द', 'परमात्मा', 'जगदीश', कोई एक नाम ग्रहण करने हीसे तो फल प्राप्त किया जा सकता है ?

आचार्यदेव--नाम ग्रहण करनेसे नामकी सेवा—नामीकी सेवा-लाभ—प्रेमोदय होता है। 'परमात्मा', 'जगदीश' प्रभृति विशेषण और प्रकृति-सम्बन्ध युक्त गौण नाम हैं। 'राम', 'कृष्ण'—ये सब मुख्य नाम—विशेष्य, अप्राकृत विग्रहवान और स्वयं विशेषण हैं। सभी नामोंका फल समान नहीं है। सहस्र विष्णुनाम एक रामनामके बराबर और तीन राम-नाम एक कृष्णनामके समान हैं:—

विष्णोरेकैकं नामापि सर्ववेदाधिकं मतम्।
तादृक नाम-सहस्रेण रामनामसमं स्मृतम्॥
सहस्र-नाम्नां पुण्यानां त्रिरावृत्या तु यत् फलम्।
एकावृत्या तु कृष्णस्य नामैकं तत् प्रयच्छति॥
(पद्मपुराण और ब्रह्माण्डपुराण)

माथुरजी--सभी नाम तो एक ही भगवानके हैं तो फिर फलमें ऐसा भेद क्यों हुआ ?

आचार्यदेव- जो कृष्णनाम है वही कृष्णरूप, वही कृष्णगुण और वही कृष्ण लीला है। कृष्ण-नामका माधुर्य सर्वापेक्षा अधिक है। नारायणके वक्षःस्थिता जो लक्ष्मी हैं, वे भी कृष्णनाम सुनकर चञ्चल हो जाती हैं; स्वयं रामचन्द्र भी कृष्णनाम श्रवण कर मुग्ध हो जाते हैं; विशेष कहनेसे प्रयो-जन क्या, कृष्णनाम और कृष्णरूपमें इतनी मधु-रता है कि स्वयं कृष्ण भी निजरूप-माधुरीको दर्पणमें दर्शनकर उन्मत्त हो जाते हैं। कृष्ण ही कृष्णको दे सकते हैं, दूसरा कोई नहीं दे सकता। स्वयं कृष्ण जिस कृष्णनाम-कीर्त्तनका प्रचार करनेके लिये—कृष्णनाम वितरण करनेके लिये जिस स्वरूपमें अवतीर्ण होते हैं वही स्वरूप श्रीकृष्णचैतन्य है।

माथुरजी--जो नामकीर्त्तन न करके योगाभ्यास, ज्ञानाभ्यास और ध्यान-धारणादि द्वारा समाधि लाभ करते हैं, उनलोगोंको क्या एक ही फलकी प्राप्ति नहीं होती ?

आचार्यदेव--कभी नहीं। उस रोज आपको कहा था कि पथ दो प्रकारके हैं--आरोह पथ और अवरोह पथ। जो आरोह-पथपर चलते हैं वे कृत्रिम पन्थी—मेधा, अहङ्कार, बुद्धि और मनोधर्मकी युक्तिके बलसे सिद्धि लाभ करना चाहते हैं! उनलोगोंकी चरम-गति निर्विशेष है। और नामकीर्त्तनका पथ—पूर्ण शरणागतिका पथ है---श्रुति, गीता एवं भागवतका कहा हुआ पथ है, जिसका फल और कोई दूसरी वस्तु नहीं, केवल एक प्रेम ही है। वहां साधन और सिद्धि पृथक् वस्तु नहीं है।

माथुरजी— जो लोग योगाभ्यासादि करते हैं, उनलोगोंको क्या ईश्वर-दर्शन नहीं होता ?

आचार्यदेव—किस प्रकार होगा ? एकमात्र ईश्वरकी कृपाके बलसे ही ईश्वरका दर्शन प्राप्त होता है। जैसे सूर्यके प्रकाशसे ही सूर्यको देखा जाता है, अन्य कोई कृत्रिम प्रकाशके द्वारा या निशाकालमें अर्थात् जिस समय सूर्यदेव अपना आत्म-प्रकाश नहीं करते, उस समय क्या सूर्यको देखा जा सकता है ? युक्ति और तर्कके बलसे, बुद्धिके बलसे अर्थात् कृत्रिम उपायसे भगवानका दर्शन नहीं प्राप्त होता है। बद्धजीव निज-कल्पित चेष्टाके द्वारा परमेश्वरको

नहीं प्राप्त कर सकता। भगवान् स्वराट् हैं। एकमात्र वे ही स्वयं अपनेको दर्शन करा सकते हैं, कोई दूसरा उनका दर्शन नहीं करा सकता।

माथुरजी—ऐसा क्यों? क्या अनेक लोगोंने ध्यान-योगके द्वारा भगवान्का दर्शन नहीं किया है?

आचार्यदेव—**ध्यान तो मनका कार्य है।** मन—जड़ वस्तु है। वह किस प्रकार पूर्ण—सच्चिदानन्द भगवद्वस्तुकी उपलब्धि करेगा?

माथुरजी—ध्यान-द्वारा मनको वशीभूत कर एकाग्र-चित्त होनेसे क्या ईश्वर-दर्शन नहीं होता?

आचार्यदेव—मन तो सर्वदा चञ्चल—क्षिप्त-सङ्कल्प-विकल्पकारी सर्वदा, परिवर्त्तनशील है। पागल किस प्रकार अपने पागलपनसे आप ही परित्राण पायगा—पागलपन दूर करेगा, अर्थात् पागल किस प्रकार अपनेको वशीभूत करेगा?

माथुरजी—तब तो इतने योगी-ऋषिगण जो तपस्यादि करते हैं, मनको वशीभूत करनेकी चेष्टा करते हैं, उसके द्वारा क्या कुछ भी नहीं होता?

आचार्यदेव—

आराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किम्।
नाराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किम्॥
अन्तर्वहिर्यदि हरिस्तपसा ततः किम्।
नान्तर्वहिर्यदि हरिस्तपसा ततः किम्॥

श्रीहरि यदि आराधित हों तो और तपस्याका क्या प्रयोजन है? यदि हरि आराधित न हुए तो (कोरी) तपस्याका क्या प्रयोजन है? भीतर और बाहरमें यदि श्रीहरि विराजमान हों, तो तपस्या करनेसे क्या लाभ? पुनः अन्दर और बाहरमें यदि हरि विराजित न हों तो और तपस्या करनेका क्या प्रयोजन?

यमादिभिर्योगपथैः कामलोभहतो मुहुः।
मुकुन्दसेवया यद्वत् तथाद्धात्मा न शाम्यति॥
(भाः १-६-३६)

सदा काम, क्रोध, लोभादि रिपु-वशीभूत अशान्त मन जैसा मुकुन्द-सेवा-द्वारा साक्षात् निगृहीत होता है, वैसा वह यमनियमादि अष्टाङ्ग-योगमार्ग अवलम्बनद्वारा निरुद्ध वा शान्त नहीं होता।

युञ्जानानामभक्तानां प्राणायामादिभिर्मनः।
अक्षीणवासनं राजन् दृश्यते पुनरुत्थितम्॥
(भाः १०-५१-६०)

अभक्तगण प्राणायामादि-द्वारा चित्तका निरोध करते हैं, किन्तु हे राजन्! उसके द्वारा उनलोगोंका चित्त विषय-मलशून्य नहीं होता, इसलिये वह फिर विषयाभिमुखी हो जाता है।

प्रायशः पुण्डरीकाक्ष युञ्जन्तो योगिनो मनः।
विषीदन्त्यसमाधानान्मनोनिग्रह-कर्शिताः॥
(भाः ११-२९-२)

हे पुण्डरीकाक्ष! प्रायः यह देखा जाता है कि जो योगी योगमार्ग-द्वारा चित्तवृत्ति-निरोध करनेकी चेष्टा करते हैं, वे मनोनिग्रह विषयमें प्रवृत्त होकर असमाधान होनेके कारण कथञ्चिन्निग्रह-कार्यमें श्रान्त और क्लेशग्रस्त हो जाते हैं, इसलिये उसके द्वारा उनलोगोंका मनोनिग्रह नहीं होता।

अन्तरायान् वदन्त्येता युञ्जतो योगमुत्तमम्।
मया सम्पद्यमानस्य कालक्षपण-हेतवः॥
(भाः ११-१५-३३)

इसलिये जिन्होंने उत्तमयोग अर्थात् सर्वश्रेष्ठ भक्तियोगमें चित्त सन्निविष्ट किया है वे इन सब चेष्टाओंको भक्ति-पथके विघ्नस्वरूप कहते हैं। मेरे भक्त लोग मेरे ही द्वारा समस्त साधनोंका फल प्राप्त करते हैं; सुतरां उनलोगोंके लिये ये सब साधन-

चेष्टाएं कालक्षेपका हेतुमात्र हैं। मेरी सेवा छोड़ कर वे लोग उस प्रकार वृथा कालक्षेप नहीं करते।

किसी उन्मादव्याधिग्रस्त व्यक्तिको क्या केवल उसके घरके कपाट बन्द कर देनेसे ही उसकी उन्माद-व्याधि दूर होगी? इन्द्रियोंके द्वारसमूह सामयिक भावसे रुद्ध करने ही से क्या इन्द्रियोंका चाञ्चल्य विनष्ट हो जायगा? बीमारीका मूल-बीज उत्पाटन करना होगा। मूलव्याधि है अविद्या—कृष्णबहिर्मुखता। कृष्णके शरणागत हुए बिना उस अविद्याका नाश नहीं हो सकता। (गी: ७-१४)

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

माथुरजी—इतने बड़े बड़े ऋषिगण जिन्होंने योगाभ्यास किया है, क्या उनलोगोंमेंसे किसीको भगवत् प्राप्ति नहीं हुई?

आचार्यदेव—ऋषि दो प्रकारके हैं। उनमेंसे एक भक्तऋषि हैं और दूसरे अभक्तऋषि। अभक्तऋषि कर्मी, ज्ञानी, योगी प्रभृति हैं। ये लोग सम्पूर्ण शरणागत अर्थात् भगवद्भक्त न होने तक भगवानको नहीं प्राप्त करेंगे।

ब्रह्मादिके सदृश ऋषिकुलने भगवानकी स्तुति करके कहा था—

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिन
स्त्वय्यस्तभावादविशुद्ध-बुद्धयः।
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः
पतन्त्यधोऽनादृत-युष्मदङ्घ्रयः॥(भा:१०-२-३२)

हे पद्मलोचन! आपके भक्तोंके सिवा अन्यान्य लोग, जो अपनेको मुक्त मानकर अभिमान करते हैं, वे शम-दमादि अत्यन्त कठोर साधनों-द्वारा अपनेको जीवन्मुक्त समझकर भी आश्रयस्वरूप आपके पादपद्मका अनादर करके अधःपतित होते हैं, क्योंकि आपमें भक्ति न रहनेके कारण उनकी बुद्धि शुद्ध नहीं है।

माथुरजी—योगीज्ञानी लोगोंमें क्या भक्ति नहीं है? वे लोग भगवानमें भक्तिके साथ ही तो योगज्ञा-नादि साधन करते हैं। यदि उनलोगोंकी भगवानमें भक्ति न होती तो वे परमेश्वरका ध्यान छोड़कर अन्य लोगों या जागतिक वस्तुओंका भी तो ध्यान कर सकते थे?

आचार्यदेव—भक्ति नित्य वस्तु है। वह चेतन (आत्मा) की नित्यवृत्ति है। जिस ध्यानमें ध्यान, ध्याता और ध्येय वस्तुकी नित्यता नहीं, जिस ज्ञानमें ज्ञान, ज्ञाता और ज्ञेय-वस्तुकी नित्यता नहीं, जिस योगमें योग, योगी और योगेश्वरकी नित्यता नहीं, जिस स्थानमें ध्यान, ज्ञान और योग केवल उपाय मात्र हैं, जिस स्थानमें उपेय वा सिद्धि प्राप्त करनेके उपरान्त उपायको, साधनको, ध्यानको, ज्ञानको, योगको, और भक्तिको त्याग दिया जाता है, वह कभी भी प्रकृत ज्ञान, योग, ध्यान वा भक्तिपद-वाच्य नहीं है। ज्ञानीयोगीगणोंकी भक्तिका छलना कपटता-मात्र है। स्पष्ट नास्तिकगणोंकी अपेक्षा भी निर्विशेष-ध्यानी-निर्भेद ज्ञानीगण परमेश्वरके विरोधी हैं।

सालोक्य-सार्ष्टि-सामीप्य-सारूप्यैकत्वमप्युत।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्-सेवनं जनाः॥
(भा: ३-२९-११)

योगीका प्राप्य कैवल्यावस्थामें ईश्वर-सायुज्य और ज्ञानीका प्राप्य ब्रह्मसायुज्य भगवद्भक्तको प्रदान करनेपर भी वे उसको ग्रहण नहीं करते, बल्कि इसको नरकसे भी तुच्छ वस्तु समझते हैं। ज्ञानी

जनोंके ब्रह्मसायुज्यमे भी योगीजनोंका साध्य ईश्वर-सायुज्य अधिक निन्दनीय है।

माथुरजी—ब्रह्मसायुज्यसे भी ईश्वरसायुज्य क्यों खराब है?

आचार्यदेव—ब्रह्मसायुज्यमें निर्विशेष ज्ञानके द्वारा ही निर्विशेष गति लाभ करनेकी चेष्टा होती है, किन्तु सविशेष ईश्वरका ध्यान करके जो कैवल्यरूप ईश्वर-सायुज्य-लाभ करनेकी चेष्टा है वह अत्यन्त पतनका फल है।

माथुरजी—ध्यानके द्वारा क्या लेशमात्र भी मनको बशमें नहीं किया जा सकता?

आचार्यदेव—ध्यान कौन करेगा? मन क्या मनको बशमें कर सकता है?

किं विद्यया परमयोगपथैश्च किन्तै-
रभ्यासतोऽपि शतशो जनिभिर्दुरूहैः।
वन्दे मुकुन्दमिह यत्प्रतिमात्रकेण
कर्म्माण्यपोह्य परमं पदमेति लोकः॥

(ह: भ: क: ल. ९-२)

उस शास्त्रज्ञान वा प्रसिद्ध योगमार्ग-अवलम्बन-का कोई प्रयोजन नहीं जिसके सैकड़ों बार अभ्यास करनेपर भी दुरूह जन्मसे छुटकारा नहीं मिलता। मैं उसी मुकुन्दकी वन्दना करता हूँ जिसके पाद-पद्ममें शरणागत होनेसे ही जीव कर्मसम्बन्ध-रहित होकर परमपद लाभ कर सकता है।

माथुरजी—⋯स्वामी लगातार दो तीन घण्टे तक समाधिस्थ रहते हैं। संसारकी किसी वस्तुमें उनकी आसक्ति नहीं देखी जाती। उनका मन क्या वशी-भूत नहीं है?

आचार्यदेव—कोई भी स्वामी चाहे वे कितना भी बड़ा क्यों न हों, जिनका आचार और प्रचार शास्त्र-के तात्पर्यके साथ नहीं मिलता, उनको अकृत्रिम साधु नहीं कहा जा सकता।

माथुरजी—उनकी ऐसी शक्ति है कि उनके शरीरपर आग रखनेसे भी उनका शरीर दग्ध नहीं होता। उनको किसी प्रकारके दुःखका अनुभव नहीं होता।

आचार्यदेव—यह तो वायु नियमित करनेका एक कार्य विशेष—हठयोगकी क्रिया मात्र है। इस प्रकारके हठयोगी स्थूल-सूक्ष्म वस्तुके प्रार्थी हैं। इस वस्तु वा इच्छाका नाम है विषय-संसार। ये लोग भगवानको नहीं चाहते।

माथुरजी—भगवानके लिये ही तो ये लोग इन साधनोंको करते हैं।

आचार्यदेव—भगवानके साथ इन लोगोंका कोई सम्बन्ध नहीं है लाभ पूजा, प्रतिष्ठाके लिये ही ये लोग साधन करते हैं।

माथुरजी—अच्छा, मीराके सम्बन्धमें आपका क्या विचार है? वे क्या भक्त थीं?

आचार्यदेव—क्या आप राणा कुम्भकी महिषी मीराकी कथा पूछ रहे हैं?

माथुरजी—हां।

आचार्यदेव—सुना है कि मीरा भक्त थीं। मीराने कर्म, ज्ञान और योगसिद्धिके चरमप्राप्य-को भी तिलाञ्जली दी थी। If any one loves Krishna and if Krishna gives him one or two rupees or even hundreds or thousands of rupees, Krishna thereby merely deceives him. That is a bartering system. योगसिद्धि, कैवल्य, ब्रह्म-सायुज्य या सेवाके सिवा अन्य किसी प्रकारकी अभिलाषा रहनेसे वह Commercial interest हो जायगा। भगवान् जिसकी वञ्चना करनेकी इच्छा करते

है, उसे ही प्रेम न देकर इन सब चीजों द्वारा वञ्चना करते हैं।

माथुरजी—मुक्ति-कामना भी क्या खराब है?

आचार्यदेव—धर्म, अर्थ और कामके चरितार्थ करनेकी कामनासे भी मुक्ति कामना यद्यपि बाहरसे देखनेमें श्रेष्ठ मालूम पड़ती है तथापि वह पूर्वोक्त तीनों प्रकारकी कामनाओंसे भी घृणित है। यह सबसे बढ़कर कपटता है। जिसका दर्शन बद्ध नहीं है उसकी मुक्तिका क्या अर्थ? भक्त स्वरूपमें अवस्थित रहते हैं। सुतरां उनका मुक्ति कामनाका प्रसङ्ग ही नहीं आ सकता। बन्धन होनेसे तो मुक्ति होगी? जहां रोग ही नहीं, वहां चिकित्सा या आरोग्यका प्रसङ्ग कैसा?

माथुरजी—आजकल भी क्या कोई ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने यथार्थ में भगवानका दर्शन किया है या जो दूसरेको भगवान्का दर्शन करा सकते हैं?

आचार्यदेव—ऐसा छोटा शिशु जिसको अभी वर्ण-परिचय भी नहीं हुआ या जो अभी स्कूलमें भर्ती नहीं हुआ, यदि वह प्रश्न करे कि "लखनऊमें कोई पण्डित है?" तो उस छोटे शिशुको यह बात किस प्रकार समझायी जायगी? वह किस प्रकार समझेगा? कि कौन पण्डित है और कौन मूर्ख? प्रकृत पण्डितका सचमुच साक्षात्कार करा देनेपर भी वह पण्डितका पाण्डित्य किस प्रकार समझेगा? पण्डितके अपने सम्मुख उपस्थित रहने-पर भी वह बालक पण्डितका चेहरामात्र दर्शन करेगा, उसके अभ्यन्तरका कुछ भी उपलब्धि नहीं कर सकेगा। भगवान् प्रकृतिके अन्तर्गत कोई वस्तु नहीं हैं। **जो यह कहते हैं कि मैंने भगवान्को देखा है, वे भगवान्को नहीं देखते। जो सच्चे भक्त हैं वे भगवान्के अधिकतर दर्शनकातर—अधिकतर अतृप्त रहते हैं।**

अयि दीनदयार्द्रनाथ हे मथुरानाथ कदावलोक्यसे।
हृदयं त्वदलोककातरं दयित भ्राम्यति किं करोम्यहम्॥

(पद्यावलीके चतुःशताङ्कधृत माधवेन्द्रपुरी-वाक्य)

हे दीनदयार्द्र नाथ मथुरानाथ कब मैं आपका दर्शन पाऊंगा! आपका दर्शन नहीं होनेसे मेरा कातर हृदय व्याकुल हो रहा है! हे प्रिय!—मैं अब क्या करूं?

हे देव, हे दयित, हे भुवनैकबन्धो,
हे कृष्ण, हे चपल, हे करुणैकसिन्धो।
हे नाथ, हे रमण, हे नयनाभिराम,
हा हा कदा नु भवितासि पदं दृशोर्मे॥

(श्रीकृष्णकर्णामृतके ४० वे श्लोकमे बिल्वमङ्गलवाक्य)

हे देव! हे प्रिय! हे भुवनके एकमात्र बन्धु! हे कृष्ण! हे चपल! हे करुणासिन्धु! हे नाथ! हे रमण! हे नयन-रञ्जन! आह! आप कब मुझे दर्शन दीजियेगा?

न प्रेमगन्धोऽस्ति दरापि मे हरौ
क्रन्दामि सौभाग्यभरं प्रकाशितुम्।
वंशी-विलास्याननलोकनं विना
बिभर्मि यत्प्राणपतङ्गकान् वृथा॥

(श्रीश्रीमहाप्रभुपादोक्त श्लोक)

हे सखि, मेरी लेशमात्र प्रेमकी गन्ध भी कृष्णमें नहीं, तब जो मैं क्रन्दन करती हूँ वह केवल अपने सौभाग्यातिशयको प्रकाश करनेके लिये ही। वंशी-बदन कृष्णके दर्शनके बिना ही जो मैं प्राणपतङ्ग धारण करती हूँ वह व्यर्थ है।

आश्लिष्य वा पादरतां पिनष्टु मा-
मदर्शनान्मर्म्महतां करोतु वा।
यथा तथा वा विदधातु लम्पटो
मत्प्राणनाथस्तु स एव नापरः॥

(पद्यावलीके १३४ वें अङ्कमें शिक्षाष्टकका ८ वाँ श्लोक)

इस पादतल-अवस्थित दासीको कृष्ण आलिङ्गन-पूर्वक हृदयसे लगा लें या अदर्शन द्वारा मर्माहत ही करें, वे लम्पट पुरुष हैं मेरे प्रति चाहे वे कैसा ही व्यवहार क्यों न करें, तथापि वे मेरे प्राणनाथ हैं—कोई दूसरा नहीं है।

जो नित्यकाल भगवानका दर्शन करते थे ये सब श्लोक उनके ही मुखारविन्दसे उच्चारित होते हैं। प्रथम श्लोक श्रील माधवेन्द्र पुरीपादका हुआ है जिनको प्रेमकल्प-वृक्षका प्रथम अङ्कुर कहा जाता है, द्वितीय श्लोक विल्वमङ्गलका एवं तृतीय और चतुर्थ स्वयं श्रीचैतन्यदेवके कहे हुए हैं, जो सर्वश्रेष्ठ प्रेमिकके वेशमें इस संसारमें अवतीर्ण हुए थे। जो कहते हैं कि **"मैंने भगवानको देखा है, तुमको भगवान्‌का दर्शन करा सकता हूँ उसके साथ भगवान्‌का दर्शन नहीं हुआ है। वह वञ्चक है।** ब्रह्मा शिव भी क्या कभी ऐसा अभिमान करते हैं कि 'मैंने भगवानको देखा है'। वे लोग, तथा यहाँ तक कि उनमें बहुत उच्च अधिकारी साक्षात् श्रील उद्धवजी भी व्रजवासीके पदरजसे अभिषिक्त होनेकी इच्छा करते हैं। जिन्होंने 'भगवानका दर्शन किया है'—उनके हृदयमें सर्वदा **"मैं कब भगवान्‌का दर्शन करूंगा, मैं कब उनकी सेवासे अभिषिक्त होऊँगा" इस प्रकारकी विरह-वेदना विद्यमान रहती है। सतीका पतिके लिये विरह सर्वदा वर्तमान रहता है। जो भगवानके नाम—कीर्त्तनकी सेवामें सर्वदा प्रतिष्ठित हैं वे ही सर्वदा भगवान्‌का दर्शन कर रहे हैं।** निरपराध नामाश्रयके फलसे जिस समय जीवका हृदय दैन्यको प्राप्त होता है, भगवानके विरहसे निर्मल होता है, शुद्ध-सत्व नामके साथ प्रकाशित होता है, उस समय भगवान उस स्थानमें (हृदयरूपी धाममें) वास करते हैं।

जो लोगोंको दिखला कर नहीं बल्कि हृदयसे निष्कपट होकर सर्वदा इस प्रकार "हे प्रभो!—मैं अत्यन्त अयोग्य हूँ कृपण हूँ हे प्रभो!-आप मुझे इस संसारका रूप क्या दिखला रहे हैं, (मुझे क्यों जड़ दर्शन हो रहा है) मेरे प्रति आप इतने कठोर, निष्ठुर क्यों हैं, आप तो जगन्नाथ हैं और मैं जगतसे बाहर नहीं हूँ, आप मुझे अपनी अहैतुकी सेवा दान कीजिये" प्रार्थना करते हैं उन्हें ही **भगवन्नामकी स्फूर्ति होनेपर भगवद्दर्शन होता है।** किसी प्रकारकी कृत्रिमता वा कपटता न करके हृदयके अन्तरतमसे वैष्णव लोगोंके निकट सर्वदा उनकी कृपा प्राप्त करनेके लिये क्रन्दन करना होगा, सर्वदा वैष्णव लोगोंकी सेवा करनी होगी। शुद्ध वैष्णव दमड़ी चमड़ी पेटके लिये अथवा धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके लिये कुछ नहीं चाहते। उनको ही तन, मन और धन—सर्वस्व प्रदान करना होगा—उपर्युक्त तीन मुद्रा-दक्षिणा दान देना होगा, पूर्ण देनेसे पूर्ण वस्तु प्राप्त

होगी आंशिक देनेसे आंशिक वस्तु मिलेगी—भोग देनेसे भोग ही पाया जायगा।

माथुरजी "भगवानका दर्शन उन्हींको प्राप्त हुआ है जो कहते हैं कि मुझे भगवानका दर्शन नहीं मिला' यदि ऐसा विचार किया जाय तो संसारमें भगवानके दर्शनकारी व्यक्तिकी ही संख्या अधिक होगी ऐसा सिद्धान्त करना होगा।

आचार्यदेव—'मुझे भगवानका दर्शन नहीं मिला इस प्रकार भगवानके विरहमें सांसारिक लोग कभी भी हृदयसे व्याकुल नहीं होते। कोई कोई भगवानका दर्शन नहीं हुआ ऐसा कह कर मौखिक भावसे खेद तो अवश्य प्रकट करते हैं किन्तु यह वे हृदयसे नहीं कहते। यदि यह उनके हृदयकी बात होती तो भगवानके विरहमें वे उन्मत्त (पागल) हो जाते। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष या मोक्षकी पिपासा, शान्तिकी पिपासा भोग एवं त्यागकी पिपासा, याने किसी प्रकारकी सम्भोग-पिपासा उनलोगोंको व्याकुल नहीं कर सकती। भगवानका दर्शन नहीं हुआ"ऐसा समझकर फिर निश्चिन्त होकर बैठा नहीं जाता या कर्म, ज्ञान, योगादिकी चेष्टामें समय नष्ट नहीं किया जा सकता, जिन्हें भगवानके दर्शनके लिये सचमुच ही विरह उपस्थित हुआ है वे भगवानका नाम लेकर सर्वदा भगवान्‌को पुकारते हैं, उनका अहं मम भाव, दम्भ, दूर हो गया है।

माथुरजी—भक्त और अभक्तको किस प्रकार पहचाना जा सकता है?

आचार्यदेव—जिस विषयमें सांसारिक लोग निद्राके वशीभूत रहते हैं, भगवद्भक्त ही वहां जाग्रत रहते हैं। सांसारिक लोग चलचित्र, रङ्गमञ्च, युद्ध-विग्रह, सम्भोग और वैराग्य दि इन्द्रिय-तर्पण-मूलक व्यापारोंमें खूब जाग्रत रहते हैं किन्तु इन इन्द्रिय-तर्पण-व्यापारोंमें भक्तगण निद्रित रहते हैं। भक्त लोग कृष्ण-सेवामें सर्वदा जाग्रत रहते हैं किन्तु सांसारिक लोग वहां निद्रित रहते हैं। भगवानके साथ भक्तोंकी निरन्तर-प्रेम सेवा हो रही है। अभक्त लोग चर्म-चक्षुके द्वारा भोग्य-दर्शन करते हैं किन्तु भक्त लोग सेवोन्मुख कर्णके द्वारा सेव्य भगवानका दर्शन करते हैं।

माथुरजी—भगवानको प्राप्त करनेका सहज पथ (सरल उपाय) क्या है?

आचार्यदेव—**The only royal road approved by Srimad Bhagabat (श्रीमद्भागवतानुमोदित एकमात्र राज पथ) is नाम-कीर्त्तन और सभी न्यूनाधिक वञ्चनामय हैं**। श्रीनाम सर्व-शक्तिमान हैं। सबसे बढ़ कर असीम दयामय श्रीगौर-नित्यानन्दने नितान्त पतितको,—दुर्दशा ग्रस्तको भी वही सर्वशक्तिमान अमूल्य धन वितरण किया है। देखिये! चक्षु, नासिका, जिह्वा और त्वक्—प्रकृतिजात चतुष्टय, एक साथ संलग्न हैं, किन्तु कर्णेन्द्रिय पृथक और दूर अवस्थित रह कर मानो इसका वैशिष्ट्य निर्देश कर रही है। —इससे यह शिक्षा मिलती है कि श्रद्धायुक्त होकर श्रौत-पन्थी साधुके निकट श्रुति या चेतनमयी भगवत कथा—शब्दब्रह्मका वरण करना होगा—श्रवण करना होगा—शिष्य होना होगा।

माथुरजी—सांसारिक लोगोंके दर्शन और भक्त लोगोंके दर्शनमें क्या अन्तर है? भक्तलोग कानके द्वारा दर्शन करते हैं, इसलिये क्या वे सांसारिक वस्तुओंका अनुभव नहीं करते?

आचार्यदेव—दुनियाके लोग मांसदृक् और भक्त ही वेददृक्, नामदृक् हैं। वे सर्वत्र भगवत्सम्बन्धी दर्शन करते हैं जिस प्रकार दो पृथक् स्थानोंके पुरुष स्त्री पति-पत्नी सम्बन्धमें आबद्ध होनेसे सती—स्वामीके सम्बन्धसे अपने सभी सम्बन्ध ठीक करती है, उसी प्रकार चेतन दर्शनमें Response होता है जिस प्रकार स्तम्भके साथ प्रह्लादका Response हुआ था। प्रह्लाद जड़ दर्शन नहीं करते थे विमुचित दर्शन वा सत्य दर्शन करते थे। भक्त लोगोंका सर्वत्र गुरु-दर्शन होता है, कहीं भी भोग्य-दर्शन नहीं होता। सर्वत्र प्रेम-दर्शन, आनन्दमय दर्शन होता है। यही पूर्ण विद्वद्दर्शन—परमहंस दर्शन—आत्म दर्शन वा चिद्दर्शन है।

माथुरजी—किस प्रकार हरिनाम शब्दभावसे होगा ?

आचार्यदेव—श्रीगौर-नित्यानन्दकी कृपासे शुद्ध हरिनाम होता है। सर्वदा उनलोगोंकी कृपा-प्रार्थना करनी होगी लोगोंको दिखलानेके लिये नहीं—कपटता करके नहीं। "हे गौर नित्यानन्द, मैं दीन-दरिद्र, अयोग्य हूं आपलोग परम कृपामय हैं, अतएव निश्चयही आपलोग मुझपर दया कीजियेगा, यही मेरी एकमात्र आशा है; मेरी अपनी कोई योग्यता नहीं, एक तृण उठानेकी भी मेरी शक्ति नहीं है; मैं किस प्रकार प्रभुत्व स्थापन कर सकता हूं ? मेरे चक्षुसे संलग्न वस्तुको भी मुझे देखनेकी सामर्थ्य नहीं; दूसरी वस्तुओंको देखनेकी सामर्थ्य तो दूर रहे आखोंकी शक्ति ऐसी है कि मुझे अपनी आंखोंके पाता और उससे संलग्न पपनीको भी देखनेकी सामर्थ्य नहीं। मैं पतिताधम हूं, आप लोग जगन्मङ्गल हैं, इस अत्यन्त पतित जीवपर कृपा कीजिये" ऐसा कहकर सर्वदा श्रीगौर-नित्यानन्दके चरणोंमें आत्म-निवेदन करना होगा। दरवाजा बन्द रखनेसे क्या सूर्यकी किरण आयगी ? हृदयका रुद्ध द्वार खोल देनेसे, निष्कपट होकर सर्वात्मसमर्पण करनेसे तो उनकी कृपा रश्मि हमलोगोंपर अजस्र धारासे प्रवाहित होती रहेगी। जो व्यक्ति अपने घरके दरवाजे खोलकर रखते हैं उन्हींके घरमें सूर्यकी रश्मि प्रवृष्ट होती है। जिस प्रकार राजा, प्रजा, धनी, निर्धन, सती, असती सभीको सूर्य समान भावसे आलोक प्रदान करते हैं ऐसी प्रकार श्रीगौर नित्यानन्दकी कृपा वृष्टि उनके ही ऊपर होती है जो धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष-वासना रूपी रुद्ध द्वारको खोल देते हैं।

माथुरजी—आपने उस दिन कहा था कि राम और कृष्णके भजनमें विशेषता है, उस सम्बन्धमें कुछ श्रवण करना चाहता हूं।

आचार्यदेव—विवाहके पूर्व ही नित्य दिन जीवनकी कथा सुननेसे अपकार होनेकी सम्भावना अधिक रहती है। पहले सम्बन्ध स्थापित होनेसे पीछे अभिधेयकी कथा श्रवण करनी चाहिये। नामके साथ सम्बन्ध होनेसे नाम ही अपने सम्पूर्ण स्वरूपको प्रकाशित करेंगे। कृष्णमें ६४ गुण हैं और रामचन्द्रमें ६० गुण। भगवानके विभिन्न स्वरूपके उपासक भक्तगणोंके मध्य भी तारतम्य है। देवताओंकी अपेक्षा इन्द्र श्रेष्ठ, इन्द्रकी अपेक्षा ब्रह्मा, ब्रह्माकी अपेक्षा शिव, शिवकी अपेक्षा प्रह्लाद, प्रह्लादकी अपेक्षा हनुमान, हनुमानकी अपेक्षा पाण्डवगण कृष्णको स्वजन समझते हैं, पाण्डवकी अपेक्षा यादवगण श्रीउद्धवादि श्रेष्ठ हैं। ऐसे श्रेष्ठ भक्त होनेपर भी उद्धवजी मथुरावासियोंके पादपद्मकी धूलि होनेकी आकांक्षा करते हैं। अतएव यादवगणकी अपेक्षा

मथुरवासी श्रेष्ठ और उनकी अपेक्षा वृन्दावनवासी श्रेष्ठ हैं। व्रजवासियोंके मध्य क्रमशः शान्त, दास्य, सख्य और वात्सल्य रसके सेवकगण श्रेष्ठ हैं। उनकी अपेक्षा मधुर रसकी सेविका गोपियें श्रेष्ठ और गोपियोंके मध्य कृष्णकी मूल पराशक्ति श्री राधारानी ही सर्वश्रेष्ठ हैं।

माथुरजी श्रीराधारानीका विवाह शायद कृष्णके सिवा एक दूसरेके साथ हुआ था?

आचार्यदेव यह बहुत उच्च कथा मुक्तिके बादकी कथा है। इसकी अभी आलोचना करनेसे यह भी एक साधारण मनुष्यके ऐसा व्यापार मालूम पड़ेगा। अपरिपक्व-अवस्थाके बालक-बालिकाओंको क्या विवाहित युवक युवतीके व्यवहारकी कथा कहनेसे कभी मङ्गल हो सकता है? अकाल-पक्वता (अपरिपाका) बड़ी ही अनर्थकारी है, क्रमानुपथानुसरण के लिये मङ्गलदायक है। सद्गुरुपादाश्रयके पश्चात् क्रम-पथसे भजन करते-करते जिस समय अनर्थ-निवृत्ति होगी, स्थायीभाव—रति मूलक अप्राकृत सेवा-रसके प्रति निर्मल आत्माकी स्वाभाविक लालसा उदित होगी, उस समय सभी तत्त्व श्रीगुरु-कृपासे सहज ही स्फूर्ति लाभ करेंगे।

भगवान् श्रीचैतन्यदेवका विद्या विलास

भगवान श्रीकृष्णचैतन्यदेवको इस जड़ जगतमें प्रकट हुए ४५२ वर्ष बीत गये। सन्यासलीलाके पहले महाप्रभु निमाइ पण्डित' के नामसे विख्यात थे, तथा अध्यापक शिरोमणिरूपसे हजारों शिष्योंको विद्या प्रदान करते थे। वे प्रत्येक शास्त्र-विषयपर सिद्धान्त-पूर्ण स्वतन्त्र-मत प्रकाश करते थे तथा विरोधीको पराजय करनेकी चेष्टा करते थे। शास्त्र-मत श्रवण करनेमें सहिष्णुता छोड़कर ब्रह्माके तुल्य विद्वान पण्डितके विचारको भी नहीं ग्रहणकर उसको पराजय करनेका यत्न करते थे। परन्तु प्रभुके मधुर व्यवहारसे सम्भाषित व्यक्ति अपनेको गौरवान्वित समझकर प्रभुकी सेवा करनेकी इच्छा करता था। ऐसे समयमें एक दिग्विजयी महापण्डित तर्क युद्धमें संसारके कुल पण्डितोंको हराकर एवं जयपत्र प्राप्तकर नवद्वीपमें उपस्थित हुआ और घर घर घूमकर अपना प्रतिद्वन्द्वी खोजने लगा। वह भोगवाञ्छक भी, अहङ्कारी तथा कर्त्तृत्वाभिमानी था, इसलिये अनेक उपासना करनेपर एवं मन्त्र जप करनेपर भी पराविद्या वा शुद्ध सरस्वतीकी कृपासे विष्णुभक्ति प्राप्त न कर छायामूर्त्ति जड़ सरस्वतीसे दिग्विजयी होनेका वर प्राप्त किया और माया-विमोहित हो भगवन्नाम-महिमा कीर्त्तन करनेसे वञ्चित रहा। पराविद्या वा सरस्वती अहंकारी तथा भोगी व्यक्तिके समीप अपनेको गुप्त रखकर अपनी छायामूर्त्ति जड़ सरस्वती रूपसे उसकी वञ्चना करनेके लिये वर प्रदान करती हैं। ऐसे वर प्राप्त व्यक्तिगण त्रिभुवन जय करनेमें समर्थ होनेपर भी वरदायियोंके पति भगवानके समीप सम्पूर्णरूपसे पराजित होने योग्य रहते हैं।

उस दिग्विजयी पण्डितके आगमनसे नवद्वीप वासी पण्डितोंमें बड़ी सनसनी उत्पन्न हुई। वे विचार करने लगे कि जिसकी जिह्वासे सरस्वती साक्षात् बोल

रही हैं उससे मनुष्य किस प्रकार शास्त्रार्थ कर सकता है, और यदि उससे शास्त्रार्थ न किया जाय तो संसारमात्रमें नवद्वीपकी निन्दा होगी। वहांके हजारों हजार पण्डित मिलकर विचार कहने लगे कि इस संकटसे कैसे त्राण हो। ऐसे समयमें महाप्रभुके कुछ शिष्य उनके समीप उपस्थित हो कहने लगे—एक दिग्विजयी पण्डितने सरस्वतीसे वर प्राप्त करते हुए संसारके पण्डितोंको शास्त्रार्थमें हराकर जय-पत्र प्राप्त किया है और बहुतसे हाथी, घोड़े, पालकी और सेवकोंके साथ नवद्वीपमें शास्त्रार्थ करनेके लिये आ उपस्थित हुआ है। वह घर घर घूमकर अपना प्रतिद्वन्द्वी खोज रहा है और यदि शास्त्रार्थ करनेके लिये कोई प्रस्तुत न हो तो सबोंसे जय पत्र लिखदेनेके लिये कहता है।

महाप्रभु श्रीगौराङ्गदेव शिष्योंके वचनको सुनकर मायाद्वारा अपनेको छिपाये हुए हंसकर इस प्रकार कहने लगे :—हे भाइयो, आपलोग सुने, ईश्वर कभीभी अहङ्कार नहीं सहते। जिन-जिन गुणोंसे मत्त होकर जीव अहङ्कार करता है उन सभी गुणोंका ईश्वर संहार करते हैं। इसलिये फलवान वृक्ष और गुणवान व्यक्ति नम्र होते हैं। देखो हैहय, नहुष, वेण, बाणासुर, नरकासुर, रावण प्रभृति राजे महादिग्विजयी थे परन्तु भगवानने सबोंका गर्व चूर्ण कर दिया उसी प्रकार दिग्विजयी पण्डितके अहंकारका भी संहार यहींपर हो जायगा। ऐसा कहकर महाप्रभु चैतन्यदेव हँसते हुए सन्ध्यासमय शिष्योंके साथ गङ्गातटपर पधारे और उनके समीपही उनको घेरकर शिष्यगण बैठ गये। वहांपर महाप्रभुने शिष्योंको शास्त्र तथा धर्मके बहुतसे उपदेश किये और मन-ही-मन दिग्विजयी पण्डितके उद्धारका उपाय सोचने लगे। महाप्रभुने विचार किया कि यदि सभाके बीच इस पण्डितका अहंकार चूर्ण किया जाय तो यह संसारमें जीते ही मृतकके तुल्य हो जायगा। वैसी हालतमें इसको संसारके लोग तुच्छ समझेंगे और इसकी सम्पत्ति लूट लेंगे। उसके दुःखसे यह मर जायगा। इसलिये महाप्रभुने निर्जन स्थानमें ही दिग्विजयीका दर्प चूर्ण करनेका सङ्कल्प किया जिससे उस विप्रको दुःख न हो। भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य ऐसा विचार कर रहे थे कि उसी मौकेपर दिग्विजयी पण्डित वहां आकर उपस्थित हुआ। पूर्णचन्द्रके उदय होनेसे रात्रि अत्यन्त निर्मल थी। भागीरथी बहुत शोभायमान दीख पड़ती थी। शिष्योंके सहित गङ्गाके किनारे भगवान् श्रीगौराङ्गदेव कोटि कन्दर्पके समान शोभायमान देख पड़ते थे। श्रीचन्द्र वदन निरन्तर हास्ययुक्त था, एवं दोनों नेत्र दिव्य दृष्टि-युक्त थे। दन्त मुक्ताके समान थे और अधर अरुण था। सम्पूर्ण शरीर दयामय एवं सुकोमल दीख पड़ता था। श्रीमस्तकपर श्रीकेश शोभा पा रहे थे। सिंहके समान गर्दन, गजके समान स्कन्ध (कंधा) विचित्र वेश, प्रकाण्ड श्रीविग्रह (शरीर) और सुन्दर हृदय था। अनन्तदेव यज्ञोपवीतरूपसे गलेपर विराजमान थे। श्रीललाट ऊँचा एवं तिलक मनोहर था। दोनों भुजायें सुन्दर थीं और घुटने तक पहुँचती थीं। गलेसे लटकती हुई चादरको श्रीवदनमें बांधे हुए प्रभु पद्मासन लगाये बैठे थे। प्रभु इसप्रकार विराजते हुए शास्त्रोंकी व्याख्या कर रहे थे और तर्कद्वारा सत्यको असत्य तथा असत्यको सत्य प्रमाणित कर रहे थे। शिष्यगणसे घिरे हुए महाप्रभुको देखकर दिग्विजयी आश्चर्यमें पड़ गया एवं मनमें सोचने लगा कि यही निमाइ पण्डित मालूम पड़ते हैं। उसने कुछ देरतक महाप्रभुके सौन्दर्यको ध्यानसे देखकर देखा और शिष्योंसे उनका नाम पूछा। तदुपरान्त उस विप्रने गङ्गाको

प्रणामकर भगवान चैतन्यदेवकी सभाके अन्दर प्रवेश किया। उसको देखकर महाप्रभुने कुछ हसते हुए आदरके साथ बैठनेके लिये कहा। वह पण्डित स्वभावतः निडर होनेपर भी प्रभुको देखकर डर गया क्योंकि विमुख जीवको ईश्वर—दर्शनसे अपनी क्षुद्रता पूर्णरूपसे स्मरण हो आती है। कुछ बातचीत करनेके उपरान्त महाप्रभुने कहा कि आपके कवित्वकी सीमा नहीं है इसलिये आज आप गङ्गाजीकी महिमा वर्णन कीजिये जिसको सुनकर पाप नाश होता है। प्रभुके इस वाक्यको सुनकर दिग्विजयी गङ्गाजीकी महिमा वर्णन करने लगा। उसकी जिह्वापर साक्षात् सरस्वती विराजती थीं और वह जो कुछ कहता था वह प्रमाण था। वह इतनी तेजीसे बोलता था कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। एवं उसकी वाणी भी मेघके सदृश गम्भीर थी। ऐसा कोई विद्वान नहीं था जो उसकी कविताको समझ सके, खण्डन करना तो दूरकी बात थी। महाप्रभु चैतन्यदेवके शिष्यगण उसकी कविता सुनकर अचँभेमें आगये तथा विचार करने लगे कि ऐसी स्फूर्त्ति मनुष्यके लिये असम्भव है। सर्व शास्त्रोंके महा विशारद भी दिग्विजयीकी कविताको समझनेमें असमर्थ थे। इसप्रकार वह पण्डित पहरभर गङ्गाजीकी महिमा वर्णन करता रहा। जब वह चुप हुआ तब श्रीगौराङ्गदेव हसते हुए एवं पण्डितकी प्रशंसा करते हुए बोले कि तुम्हारे शब्दोंका गूढ़ अभिप्राय बिना तुम्हारे समझाये समझमें नहीं आता। इसलिये तुम आपही कुछ व्याख्या करो। तुम्हारे वचनही प्रमाण है। महाप्रभुके अति मधुर वचनोंको सुनकर वह विप्र अपने रचे श्लोकोंकी व्याख्या आपही करने लगा। ज्यों ही उस पण्डितने व्याख्या शुरू की त्यों ही महाप्रभु गौराङ्गदेवने उसकी व्याख्याके आदि, मध्य तथा अन्तमें खण्डन कर दिया, महाप्रभुने दिग्विजयीसे कहा कि तुम्हारे येसब शब्द अलंकार-शास्त्रके अनुसार शुद्ध नहीं है। तुमने किस अभिप्रायसे ये सभी अलङ्कार दिये उसका वर्णन करो। भगवान् श्रीहरिके प्रश्न करनेपर सरस्वतीसे वरप्राप्त उस दिग्विजयी पण्डितके हृदयमें सिद्धान्तकी कुछ भी स्फूर्त्ति नहीं हुई और उसकी बुद्धि लुप्त हो गई। उसने थोड़ा बहुत जो कुछ कहा प्रभुके सामने उसका समर्थन नहीं कर सका और उसने जो कुछ कहा प्रभुने उसको दोषयुक्त ठहराया। भगवान्के सामने उसकी प्रतिभा सम्पूर्णरूपसे लुप्त हो गई। वह विप्र क्या कहता था, आपही नहीं समझता था। तब महाप्रभु चैतन्यदेवने कहा कि तुम इस विषयको छोड़कर कोई दूसरा विषय वर्णन करो परन्तु अब उसे कविता रचना करनेकी पूर्ववत शक्ति भी नहीं थी।

जिस प्रभुके सम्बन्धसे वेद भी मोहको प्राप्त हुए, उनके सामने यदि दिग्विजयी पण्डित सम्मोहित हुआ तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। अनन्तदेव, चतुर्मुख ब्रह्मा एवं शिव जिनके दृष्टिपातसे ही अनन्त ब्रह्माण्डकी सृष्टि होती है और जो भगवान् श्रीहरिसे मोहको प्राप्त होते हैं उन्हीं श्रीहरिके सामने यदि वह दिग्विजयी विप्र मोहप्राप्त हुआ तो इसमें आश्चर्यकी बात ही क्या है?

भगवानकी माया दो प्रकारकी है, एक योगमाया और दूसरी महामाया। लक्ष्मी सरस्वती आदि योगमायाके स्वरूप हैं और उनकी छाया अथवा परछांहीको महामाया कहते हैं जो अनन्त ब्रह्माण्डके बहिर्मुख (ईश्वरविमुख विषयी कामी) जीवोंको

मोहित करती है। वह महामाया भी जिस भगवानके सम्मुख मोहको प्राप्त होती है और इसलिये निरन्तर उनके पीछे रहती है, वेदमन्त्र गानेवाले अनन्तदेव भी जिनके रूपको दर्शनकर मोहको प्राप्त होते हैं उस भगवान्के सामने दिग्विजयी पण्डितकी मोह-प्राप्ति आश्चर्यका विषय नहीं है। मनुष्य के लिये जो भी काम अत्यन्त असम्भव है वे सर्व-शक्तिमान भगवान्के लिये लीलामात्र है। वास्तवमें भगवानकी लीला जीवमात्रके कल्याणके लिये होती है। यदि असीम कृपावश भगवान् संसारमें प्रकट होकर अपनी लीला प्रकाश न करें तो तटस्थ जीव किस प्रकार भगवान्के गुण तथा महिमा जान-कर महामायाके राज्यसे पार हो सकें? इस संसार-में भी बड़े बड़े लोगोंके चरित्रको पढ़कर जो इति-हासमें वर्णन किये गये हैं, हमलोग उनको थोड़ा बहुत जानते हैं। उसी प्रकार भगवान्का नाम, रूप, गुण, लीला तथा परिकरका निरन्तर गान करनेसे हमलोग भगवानकी कृपा प्राप्त कर भगवान्को जान सकते है और उनको प्राप्त कर सकते हैं। जीवोंके प्रति असीम कृपावश भगवान् युगयुगमें प्रगट होकर अपने नाम, रूप, गुण, लीलादि जीवोंके कल्याणके लिये यहां छोड़ जाते हैं। इस बातकी पूर्ण अनुभूति अन्याभिलाष-रहित शुद्ध भक्तोंके संगसे प्राप्त होती है। दिग्विजयी पण्डितके पराजयको देखकर भगवान् गौरहरिके शिष्यगण, जो पहले उसकी लगातार कविताको सुनकर विस्मित हो गये थे, अब हंसने लगे। परन्तु महाप्रभुने उनको शीघ्र ही मना किया एवं विप्रसे मधुर शब्दोंमें बोले कि आज तुम अपने डेरेपर जाओ, कल फिर विचार किया जायगा। आज तुम अनेक कविता रचनाकरके थक गये हो और रात्रि भी बहुत बीत गयी है इसलिये इस समय विश्राम करो। कल पुस्तक देखकर आना और मेरे प्रश्नोंका उत्तर देना। प्रभुके ऐसे कोमल व्यवहारसे जिसको वे तर्कमें पराजय करते थे वह दुःखको प्राप्त नहीं होता था। नवद्वीपमें जितने अध्यापक थे वे तर्कमें प्रभुसे पराजय प्राप्त होकर भी प्रभुके व्यवहारसे अत्यन्त प्रसन्न थे। प्रभुसे पराजित होकर कोई पण्डित अपनी मानहानि नहीं समझता था। शास्त्रार्थमें वह प्रतिद्वन्द्वीका तेजो- नहीं करते थे और उनके व्यवहारसे सबोंकी उनके साथ प्रीति होती थी। दिग्विजयी पण्डितसे मधुर वचन कह कर, महाप्रभु शिष्योंके सहित घरकी ओर चले और वह विप्र अपने डेरे पर लौटा। वह हृदयमें बहुत ही लज्जित हुआ और मन ही-मन विचार करने लगा कि सरस्वतीने प्रसन्न होकर मुझे वर दिया था तथा उनकी कृपासे न्याय, सांख्य, पातञ्जल, मीमांसा, वैशेषिक, वेदान्त आदि दर्शन शास्त्रमें निपुण कोई व्यक्ति भी संसारमें मुझे नहीं मिला जो मुझसे शास्त्रार्थ करे और पराजित न हो। परन्तु ब्रह्माकी कैसी गति है कि इस ब्राह्मण (महाप्रभु) ने जो शिशुशास्त्र अर्थात् व्याकरण पढ़ाता है मुझे शास्त्रार्थमें जीत लिया। बड़े आश्चर्य की बात है कि सरस्वतीका वर मिथ्या हो गया। तब वह विचार करने लगा कि सम्भवतः इष्टदेवके प्रति कोई घोर अपराध हो गया जिस कारण मेरी पराजय हो गयी। हो सकता है कि देवीके प्रति कोई अपराध हुआ है जिससे मेरी प्रतिभा लोप हो गयी थी। इसका कारण जाननेके लिये वह पण्डित अपने डेरे लौट कर मन्त्र जपते जपते सो गया. स्वप्नमें सरस्वती उसके सामने आयी और भक्तपर कृपाकर शास्त्रार्थके गुप्त रहस्यको कहने लगी। हे विप्र! सुनो मैं तुमसे अत्यन्त गोपनीय

कथा कहनी तो वेदके भी अगोचर है । यदि तुम इस रहस्यको किसी दूसरेको बताओगे तो शीघ्र ही तुम्हारी आयु क्षीण हो जायगी और तुम मृत्युको प्राप्त होगे । जिससे तुम्हारी पराजय हुई है वह अवश्य ही अनन्त ब्रह्माण्डोंके प्रभु हैं । मैं उनके चरणकमलोंकी नित्य दासी हूँ और जड़ सरस्वती (अपरा विद्या) होनेके कारण उनके सम्मुख जानेसे लज्जित होती हूँ । मैं ही तुम्हारी जिह्वासे बोलती हूँ, परन्तु भगवान श्रीगौरहरिके सम्मुख मेरी शक्ति काम नहीं करती अर्थात मैं तुम्हारी जिह्वाद्वारा नहीं बोल सकती । मैं, ब्रह्मा और देव नहीं, साक्षात शेष भगवान जो सहस्रमुखसे भगवानका गुण गान करते हैं, तथा शिवादि जिनकी उपासना करते हैं, वे भी जिन गौरनारायणसे मोह प्राप्त होते हैं, जो परब्रह्म हैं, नित्य शुद्ध, अखण्ड और अव्यय हैं, जो परिपूर्णरूपसे सबके हृदयमें वास करते हैं कर्म, ज्ञान, विद्या, शुभ, अशुभ, दृश्य अदृश्य पदार्थ जिनसे उत्पन्न होकर, जिनमें वास कर, जिनमें लय प्राप्त होते हैं उन्हीं प्रभुका तुमने विप्ररूपमें आज दर्शन किया है । ब्रह्मासे कीट पतंगादि तक सब कोई इन्हीकी इच्छानुसार सुख-दुःख पाते हैं । मत्स्य-कूर्म आदि जितने अवतार हुए हैं वे विष्णु परतत्व इस प्रभुसे अभिन्न हैं । इन्होंने वराहरूपसे पृथ्वीको स्थापित किया था और इन्होंने नृसिंहरूपसे प्रह्लादकी रक्षाकी थी । इन्होंने वामनरूपसे बलिको छला था और इनके ही चरणारविन्दसे गङ्गाजी उत्पन्न हुई हैं । इन्होंने अयोध्यामें अवतीर्ण होकर दुष्ट रावणका वध किया था और बहुत सी लीलायें की थीं । यही द्वापर युगमें वासुदेव तथा नन्दनन्दनके नामसे विख्यात थे और इस समय विप्ररूपसे विद्यारसमें मग्न हैं । वेद क्या उनके अवतारोंकी बात जानते हैं ? जब वह कृपापूर्वक अपने को जना देते हैं तभी कोई उनको जाननेमें समर्थ होता है । तुमने मन्त्र जपकर धन-जन-विषयादि जो सब तुच्छ सम्पत्ति प्राप्त की है वह सब तात्कालिक सुख देने वाली है, बल्कि परिणाममें दुःखदायी हैं । मन्त्र जप करनेका फल दिग्विजयी होना नहीं है । मन्त्रकी कृपासे तुमने अब अनन्त ब्रह्माण्डपति श्रीगौरहरिका दर्शन प्राप्त किया है । हे विप्र, अब तुम शीघ्र जाकर उनके चरणारविन्दमें आत्म समर्पण करो । मेरे उपदेशको स्वप्नमात्र नहीं समझना । तुमने मन्त्रकी सिद्धि प्राप्त की है इसलिये वेदोंसे भी गुप्त यह कथा मैंने तुमसे कही । इतना कहकर सरस्वती अन्तर्द्धान हो गई और महा भाग्यवान विप्र की निद्रा भङ्ग हुई । जागनेके साथ ही वह विप्र अत्यन्त प्रातःकालमें ही प्रभुके वासस्थानकी ओर चला तथा उनके समीप पहुंचकर उनको दण्डवत प्रणाम किया । उस समागत विप्रको महाप्रभुने उठाकर हृदयसे लगा लिया और पूछा कि हे विप्र ! तुम्हारे व्यवहारमें ऐसा परिवर्तन क्यों है ? विप्रने उत्तर दिया कि आपकी कृपा दृष्टि प्राप्त करनेकी इच्छा ही इसका कारण है । प्रभुने पूछा—दिग्विजयी होकर तुम इस प्रकार व्यवहार क्यों करते हो ? तब दिग्विजयीने हाथ-जोड़ते हुए कहा कि हे ब्रह्मण्यदेव ! सुनिये आपको भजनेसे ही सब कार्योंकी सिद्धि हो जाती है । कलियुगमें अधोक्षज (इन्द्रियातीत) नारायण आप विप्र रूपमें प्रकट हुए हैं । परन्तु आपकी कृपाके सिवा कौन आपको पहचान सकता है ? आपके प्रश्नोंका उत्तर देनेमें असमर्थ होकर मुझे पहले ही सन्देह हुआ था कि आप साधारण जीव नहीं हैं । आप जो अहंकार-रहित हैं, यह बात वेदोंमें कही गयी है और मैंने अपने नेत्रोंसे आज देखा । आप मुझे तीनवार पराजय करके भी मुझे मान देकर मेरे गौरवकी रक्षाकी है । आप ही

विनय तथा मानद धर्मके पूर्ण आदर्श हैं, जो ईश्वरके बिना और किसीको पूर्णरूप प्राप्त नहीं है, अतएव आप अवश्य ही नारायण हैं। गौड़, तिरहुत, दिल्ली, काशी गुजरात, विजयनगर, काञ्चीपुरी, अङ्ग, बङ्ग, तैलङ्ग तथा संसारमें पण्डितोंके अन्यान्य समाजोंमें मुझे कोई व्यक्ति ऐसा नहीं मिला जो मेरे वाक्योंको समझे, खण्डन करना तो दूरकी बात थी। ऐसा पण्डित होनेपर भी मैं आपके समीप सिद्धान्त निर्णय नहीं कर सका और मेरी बुद्धि कहां चली गई इसका पता भी नहीं मिला। आपके लिये यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। आप सरस्वतीपति हैं, यह बात देवीने आपही मुझे कही है। ऐसा कहकर दिग्विजयी पण्डित अपने भाग्यकी बड़ाई करने लगा और बोला कि मैं बड़े शुभ मुहूर्तमें नवद्वीपमें आया था कि भवकूपमें डूबकर आपका दर्शन प्राप्त किया। मायाके फन्देमें फंसकर और मोहको प्राप्त होकर अपनेको वञ्चित कर दुनियांमें भटक रहा था। पूर्वजन्मकी किसी विशेष सुकृतिके प्रभावसे आपका दर्शन प्राप्त हुआ है। अतएव आप मुझपर कृपाकटाक्ष डालकर मेरा उद्धार कीजिये। जीवोंकी भलाई करना आपका स्वभाव है। आपके सिवा शरणागतपर और कोई दया नहीं कर सकता। हे प्रभु अब आप ऐसा उपदेश कीजिये कि जिससे मेरे चित्तमें किसी प्रकारकी दुर्वासना न रहे। इसप्रकार वह दिग्विजयी अत्यन्त नम्र होकर दीनतापूर्वक स्तुति करने लगा। विप्रकी दीनतापूर्ण स्तुति सुनकर श्री गौरहरि हंसते हुए बोले, हे द्विजवर! तुम बड़े भाग्यवान् हो, क्योंकि साक्षात् सरस्वती तुम्हारी जिह्वापर वास करती है। परन्तु जड़ सम्पत्ति प्राप्त करना विद्याका फल नहीं है, भगवद्भक्ति प्राप्त करना ही विद्याकी उपयोगिता है। विद्याका काम दिग्विजय करना नहीं है ईश्वरको भजन करनेमें विद्या सफलता प्राप्त करती है। प्राकृत अनित्य सम्पदादिको इस प्राकृत अनित्य देहसे सम्बन्ध है। देखो जब इस देहको छोड़कर जब चलोगे तब इस संसारका धन, दौलत वा पौरुष साथ नहीं जायगा, संसारी विषयोंसे सम्बन्ध छोड़कर अप्राकृत भगवत् सम्बन्ध प्राप्त करना ही मनुष्यमात्रका कर्त्तव्य है। इसलिये और व्यक्ति-अन्याभिलाष शून्य होकर, सम्पूर्णरूपसे विषय परित्यागकर और हृदयसे विषयासक्तिरूपी लंगर उठाकर हम निरन्तर ईश्वरसेवा करते हैं। इसलिये हे विप्र सब प्रकारकी कुटिलताको छोड़कर शीघ्र ही कृष्णचरणका भजो। जबतक मृत्यु समीपस्थित न हो तबतक हृदयसे श्रीकृष्णकी सेवा करो। विद्या प्राप्त करनेका यही फल है कि कृष्णके पदारविन्दमें चित्त दृढ़रूपसे लग जाय- इस बातपर पूर्ण विश्वास करना चाहिये। अनन्त संसारमें विष्णु, विष्णुभक्त तथा वैष्णव ही वास्तवमें नित्य-सत्य हैं और सभी पदार्थ नाशवान तथा इसी कारण असत्य हैं। इस महोपदेशको तुम्हारे कल्याणके लिये मैंने तुमसे कहा क्योंकि तुमने मेरी शरण ली है। ऐसा कहकर श्रीगौरहरिने प्रसन्न होकर उस-विप्रको आलिङ्गन किया। वैकुण्ठनाथका आलिङ्गन प्राप्तकर वह पण्डित सम्पूर्ण अनर्थसे निवृत्त हो गया (अर्थात तत्व भ्रम, असत्, तृष्णा, हृदय दौर्बल्य और अपराधसे वह विमुक्त हो गया) और माया बन्धन छूट गया। तब प्रभुने कहा कि हे विप्र अब तुम सब प्रकारके दम्भको त्यागकर कृष्णको भजो और सर्व भूतोंपर दया करो अर्थात उन्हें पूर्व कथित अनर्थोंसे मुक्तकर कृष्ण भजनमें नियुक्त करनेकी चेष्टा करो। तुमको सरस्वतीने जो कुछ कहा है उस-

को किसीसे मत कहना क्योंकि श्रद्धारहित तथा अनभिलाषीका भगवान्‌का नाम रूप, गुण तथा लीलादिका उपदेश करनेमें महापराध होता है और परलोकमें भी हानि होती है। प्रभुकी आज्ञा तथा उपदेश प्राप्त करके उस विप्रने प्रभुको निकट ही दण्डवत् प्रणाम किया, बारम्बार चरणारविन्दकी वन्दना की और महा कृतकृत्य होकर वहांसे चला। प्रभुकी कृपासे उसे उसी समय भक्ति, विरक्ति तथा विज्ञान प्राप्त हो गये। उसका, दिग्विजयी होनेका अभिमान सर्वथा लुप्त हो गया और वह तृणसे भी नीच हो गया (अर्थात् तृणसे भी अपनेको तुच्छ समझा)। उसने महाप्रभुकी कृपासे वैष्णव-आचार ग्रहण किया अर्थात् असत् सङ्ग छोड़ दिया। हाथी, घोड़ा, इत्यादि सर्वस्व दानकर अकेला ही वहांसे श्रीगौरहरिको स्मरण करता हुआ चला। उनकी कृपाका स्वाभाविक धर्म यही है कि मनुष्य राज्यपद छोड़कर भिक्षुक होकर मधुकरी मांगता है। विषयका पूर्णरूपसे परित्याग नहीं करनेसे तथा कर्त्तृत्वाभिमान नहीं छोड़नेसे आत्मज्ञान नहीं होता। कलियुगमें इसके साक्षी दबिरखास हैं जिन्होंने राज्यपद छोड़कर अरण्य विलास (वृन्दावन वास) किया था। धर्म अर्थ, काम तथा मोक्षप्राप्तिको कपटता समझकर, शुद्ध कृष्णभक्त उनका त्याग करते हैं। जिस वैभवको प्राप्त करनेके लिये संसारीलोग अनेक प्रकारके कर्म करते हैं उसको पानेसे भी कृष्णदास अपने लिये ग्रहण नहीं करते। जीव तभीतक राज्यादि पदको सुखका हेतु समझता है जबतक वह भक्तिसुखकी महिमा नहीं जानता। राज्यादि सुखकी बात तो दूर रही कृष्णदास मोक्षसुखको भी तुच्छ ही समझता है। एकमात्र भगवत् कृपा-कटाक्ष हीसे नित्य मङ्गल होता है। इसलिये वेदमें भगवद्भजनकी बात कही गई है। इसप्रकार श्रीगौरहरिकी अद्भुत कृपासे दिग्विजयी पण्डितका उद्धार हुआ।

नदिया निवासियोंको जब यह बात विदित हुई कि निमाइ पण्डितने दिग्विजयी पण्डितको शास्त्रार्थमें पराजित कर दिया तब वे लोग महा आश्चर्यमें पड़ गये और सोचनेलगे कि निमाइ पण्डित बहुत विद्वान मालूम पड़ते हैं। भगवानकी त्रिगुणात्मक माया ऐसी है कि जबतक वह अपनेको जना नहीं दें तबतक उनको कोई जान नहीं सकता। वे अधोक्षज अर्थात् इन्द्रियातीत वस्तु हैं। जो अन्याभिलाष रहित होकर उनकी शरण लेते हैं अर्थात् जो शुद्ध भक्त हैं उन्हीके हृदयमें वे अपनेको प्रकाशित करते हैं - विषयी कामीके समीप नहीं। इसीलिये नवद्वीपवासी साधारण लोग भगवान् गौरचन्द्रको देखकर भी नहीं पहचानते थे, उनको वे एक अच्छा पण्डित समझते थे। वे लोग विचार करने लगे कि ऐसा कोई पण्डित संसार में नहीं दीख पड़ता जो दिग्विजयीको हरा सके परन्तु निमाइ पण्डितने उसको पराजितकर अपना नाम रख लिया और अपनी विद्याको संसारमें प्रकट कर दिया। अज्ञानवश किसीने कहा कि यदि यह ब्राह्मण न्यायशास्त्र पढ़े तो भट्टाचार्य हो जाय, यह बात कभी मिथ्या न हो किसी ने कहा भाई! सब पण्डित मिलकर इनको 'वादिसिंह'की पदवी दे दें। भगवानकी मायाका प्रभाव ऐसा ही है कि देखकर भी उनको कोई पहचान नहीं सकता, उनकी कृपा ही भरोसा है। इस प्रकार नवद्वीपवासी सबकोई प्रभुकी कीर्त्ति गान करने लगे।

गत ११ वीं दिसम्बरको पटना श्रीगौड़ीय मठमें गौड़ीय वैष्णवाचार्य नित्य लीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद् भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराजजीका अप्रकट तिथि पूजा श्रीश्रील आचार्यदेवके आनुगत्यमें बड़े समारोहके साथ हुआ है।

Regd. No. P. 468.

Printed by:— Brajeshwari Prasad, at The 'Indian Nation Press' and published by him from Sree Gaudiya Math, Mithapur, Patna.

वर्ष ४]

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः

संख्या १२]

भागवत

पारमार्थिक

मासिक पत्र

५ माधव
गौराब्द
४५७

माघ कृष्णा ५
संवत्
१९९९ वि०

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥६॥

जिसमें इन्द्रिय ज्ञानातीत श्रीकृष्णमें श्रवणादि लक्षणा फलाभिसन्धान-रहिता ऐकान्तिकी स्वाभाविक निरपेक्षा भक्ति उदय होती है, वही मानव जातिका सर्वश्रेष्ठ धर्म है। उसी भक्तिके बलसे अनर्थ उपशान्त होनेसे आत्मा प्रसन्नता लाभ करता है।

प्रति संख्या ।)

सम्पादक-त्रिदण्डिस्वामी श्रीभक्तिहृदय बन महाराज

वार्षिक ४)

Editor—Tridandiswami



विषय सूची

उद्देश्य

शुद्ध भगवद्भक्तिका प्रचार करना

प्रबन्ध-सम्बन्धी

(१) यह पत्र प्रति मास ५ कृष्णको प्रकाशित होता है।

(२) इस पत्रकी डाकव्यय सहित वार्षिक भिक्षा १) है।

(३) इस पत्रकी प्रति संख्याकी भिक्षा ‒)॥ है।

लेख-सम्बन्धी

लेखकोंको केवल भागवत धर्म सम्बन्धी लेख ही भागवत पत्रमें छपनेके लिये सम्पादक "भागवत" के पतामें भेजना चाहिये। जो लेख सम्पादकको पसन्द न होगा वह नहीं छापा जायगा और वापस भी नहीं किया जायगा।

पत्र व्यवहारका पता--

मैनेजर—"भागवत"

श्रीगौड़ीयमठ,

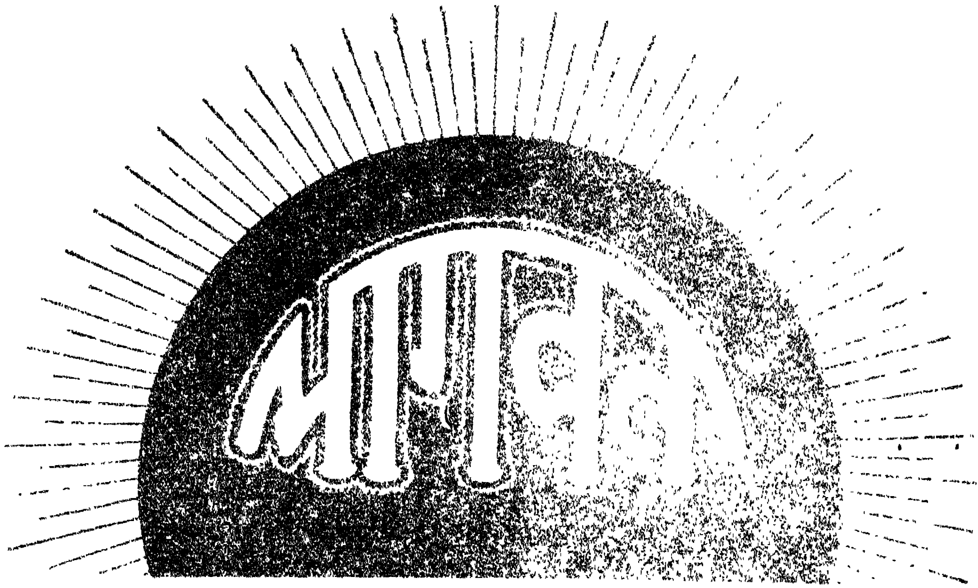
मीठापुर, पटना।

All communications are to be addressed to—

The Manager '*Bhagwat*'

SRI GAUDIYA MATH

Mithapur, Patna



कृष्णे स्वधामोपगते धर्मज्ञानादिभिः सह । कलौ [illegible] पुराणार्को [illegible]नोदितः ॥

गौडीयमठ, [illegible]

वर्ष ४ [illegible] संख्या १२

नामाचार्य श्रीलठाकुर हरिदास (२)

जिस समय महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्य इस जगत्‌में प्रकट हुए थे (अर्थात् ४[illegible] वर्ष पहले), उस समय जगत्‌के सम्पूर्ण जीव तुच्छ एवं नाशशील विषयोंके भोग करनेमें उन्मत्त थे । परमार्थ ही जीवका एकमात्र प्रयोजन है—यह बात न समझनेके कारण सब जीव अपने अपने भाग्यविषयोंके समूहमें ही तल्लीन होकर कृष्णसेवा विमुख थे । धर्म, अर्थ और काम प्राप्तिको श्रेष्ठ समझकर भोगी तथा मुक्ति प्राप्तिकी इच्छासे त्यागीजन सम्पूर्णरूपसे भगवत्-सेवा रहित हो गये थे । उनलोगोंके हृदयमें लेश-मात्र भी कृष्णसेवा-प्रवृत्ति नहीं दीख पड़ती थी ।

[illegible] तथा सम- [illegible] कृष्ण- [illegible] सङ्कीर्त्तन [illegible] सङ्कीर्त्तन करनेका आदिष्ट [illegible] कोई [illegible] अकेला है, हाथमें [illegible] तो बहिर्मुख लोग [illegible] पूछते थे कि इतने [illegible] क्या आवश्यकता है ? कृष्णकीर्त्तन [illegible], वैष्णवविद्वेषी तथा पाण्डित्याभिमानी लोग कहते थे कि जीव ही तो

है, अतएव भगवान् विष्णु ही प्रभु हैं, और जीवमात्र उनका नित्यदास है—ऐसा विचार वैष्णवलोग क्यों करते हैं? इन्द्रियज ज्ञानद्वारा वे विचार करते थे कि विष्णुके साथ जीवका प्रभु-दास्य सम्बन्ध सगुण तथा अनित्य है और इसलिये त्याज्य है। मालूम होता है कि चिल्लाते हुए हरिको पुकारकर ये लोग संसारको सोचित कर रहे हैं जिससे इनलोगोंको मांगकर खानेमें सुभीता हो, अतएव इनलोगोंका घर द्वार तोड़मरोड़ कर फेंक दिया जाय और ये लोग नवद्वीपसे निकाल दिये जायँ तो ठीक हो। पाखण्डियोंके ऐसे दुष्टतापूर्ण विचारोंको सुनकर भक्तगण दुःख पाते थे, परन्तु ऐसा कोई व्यक्ति नहीं था जिससे वे अपना भाव प्रकट करें। वे भक्तलोग उस समय सम्पूर्ण संसारको भक्तिहीन देखकर 'हा कृष्ण' कहकर दुःख प्रकट करते थे। शुद्ध भक्तिका अभाव देखकर शुद्ध भक्तगण मायाग्रस्त जीवोंके दुःखसे अतिशय दुःखित होकर उनलोगोंको दुर्दशासे छुड़ानेके लिये गम्भीररूपसे चिन्ता करते थे एवं कृष्णके निकट उनके दुःखकी बातें निवेदन करते थे। समस्त देशमें शुद्ध-भक्तिका अभाव देखकर शुद्धभक्तगण दुःखके साथ विलाप करते थे, ऐसे समय ठाकुर हरिदास कृष्ण-इच्छासे श्रीनवद्वीप-मायापुरमें आकर उपस्थित हुए। ठाकुर हरिदास वैधी भक्तिके प्रचारक नहीं थे, वे अन्याभिलाष-रहित निर्भेद-ब्रह्मानुसन्धानरहित एवं कामहीन, निर्मल भक्तिका यजन करते थे। हरिदास ठाकुर नित्यसिद्ध भगवत् पार्षद थे। वे यशोहर जिलेके अन्तर्गत बूढ़नग्राममें यवन कुलमें आविर्भूत हुए थे। उनकी कृपासे उस जिलेके बहुतसे लोग कृष्णकीर्त्तनमें श्रद्धायुक्त हुए थे। वे कृष्णभक्तिके स्वरूप थे और उनकी कथा सुननेसे कृष्णप्राप्ति होती है। कुछ दिन घरपर रहकर हरिदास ठाकुर शान्तिपुरके समीप फुलिया ग्रामको पधारे और गङ्गा किनारे ठहरकर नाम संकीर्त्तन करने लगे। वहांपर उन्हें अद्वैताचार्यका सत्सङ्ग प्राप्त हुआ जिससे दोनों अत्यन्त आनन्दित हुए। भक्त प्रवर ठाकुर हरिदास रातदिन उच्चस्वरसे कृष्ण-नाम लेते हुए गङ्गा किनारे घूमते थे। वे विषय-विरक्त पुरुषोंमें अग्रगण्य थे तथा कृष्णनाम-प्रेममें मग्न रहते थे। वे क्षणभरके लिये भी गोविन्दनामसे विरत नहीं होते। वे भक्तिरससे विह्वल होकर ज्ञान दशामें नाना प्रकारके भाव प्रदर्शन करते थे। कभी तो आपही आप नृत्य करते थे और कभी मतवाले सिंहके सदृश गरजते थे, कभी उच्चस्वरसे रोते थे और कभी बहुत खिलखिलाकर हंसते थे, कभी हुङ्कार करके गरजते थे तथा कभी मूर्च्छित होकर गिर जाते थे। कभी पुकारकर अलौकिक शब्दोंमें कुछ कहते थे और कभी अच्छी तरहसे वर्णन करते थे। प्रभु हरिदास जब नृत्य करने लगते थे तब अश्रुपात, रोमाञ्च, हंसी मूर्च्छादि धर्म कृष्णभक्तिके जितने विकार हैं वे उनके श्रीवदनमें प्रवेश करते थे। उनकी अद्भुत प्रेमा-भक्ति तथा आनन्दको देखकर अत्यन्त पाखण्डी भी आश्चर्यमें पड़ जाते थे। उनके अङ्गोंकी पुलकावलीको देखकर ब्रह्मा तथा शिव भी आनन्दित होते थे। फुलिया ग्रामवासी जितने ब्राह्मण थे ठाकुर हरिदासको देखकर अत्यन्त हर्षको प्राप्त करते थे। सबोंकी श्रद्धा देखकर ठाकुर हरिदास वहां पर कुछ दिन ठहर गये। वे गङ्गा स्नानकर उच्चस्वरसे निरन्तर हरिनाम करते हुए घूमते रहते थे। ठाकुर हरिदासकी जिह्वा सर्वदा कृष्णनाम ग्रहण करनेके लिये व्यग्र रहती थी। वे संसारी विषय-

सुख-भोगोंसे बिलकुल ही उदासीन थे । जो लोग भोगी हैं उनकी जिह्वापर कृष्णनाम प्रकट नहीं होते । जो लोग षड्रस भोजन करनेके लिये व्याकुल रहते हैं—विषयसुख प्राप्तिके लिये जिनका चित्त विक्षिप्त रहता है भगवत्नाम उच्चारण करनेकी उनकी रुचि नहीं होती । भोगी लोगोंके सदृश फल्गु त्यागी दल भी हरिनाम भजनसे उदासीन रहते हैं। ठाकुर हरिदासने संसारी सुख भोगोंसे पूर्णत: उदासीन होकर पूर्ण श्रेष्ठता प्राप्त कर ली थी। ठाकुर हरिदासके चरित्रको देखकर मत्सरता-वश वहांके काजीने नवाबके पास शिकायत की कि यह यवन होकर हिन्दूका आचार पालन करता है । इस-लिये आप इस बातपर विचार कीजिये । उस पापीके वचनको सुनकर नवाबने हुक्म दिया कि शीघ्र हरिदासको पकड़कर ले आओ । कृष्णकी कृपासे ठाकुर हरिदास कालसे भी नहीं डरते थे, यवनकी तो कोई बात ही नहीं । अतएव नवाबके दूत-के आनेपर वह शीघ्र ही 'कृष्ण कृष्ण' कहते हुए उसके साथ चले और नवाबके समीप उपस्थित होकर उसको दर्शन दिया ।

ठाकुर हरिदासके आनेका समाचार सुनकर सज्जनगण हर्ष तथा विषादको प्राप्त हुए । जितने बड़े बड़े लोग कैदखानेमें थे वे हर्षयुक्त होकर विचार करने लगे कि इनके आनेसे हमलोगोंके कैदखानेका दुःख कम हो जायगा । वे लोग जेलके रक्षकोंसे निवेदन कर उनकी आज्ञासे हरिदास ठाकुरका दर्शन प्राप्त करनेके लिये एकत्रित हुए और उनको देखकर नम्रतापूर्वक उनका अभिवन्दन किया । हरिदासके घुटनोंतक पहुँचनेवाली भुजा, कमलके सदृश नेत्र और सुन्दर मुखारविन्दका दर्शन प्राप्त-कर सबोंने भक्तिपूर्वक हृदयसे बारबार नमस्कार किया और महाभागवतके दर्शनके प्रभावसे उनलोगोंको कृष्ण-भक्तिका सात्त्विक-विकार उत्पन्न हुआ । उन-लोगोंकी भक्तिको देखकर ठाकुर हरिदास कृपापूर्वक हँसने लगे और गुप्तरूपसे हृदयमें आशीर्वाद देकर बोले कि जैसी हालतमें तुमलोग हो वैसे ही रहो । परन्तु उनके इस दुर्बोध वचनको न समझ सकनेके कारण बन्दीगण मन-ही मन कुछ दुःखित हुए । उनके इस भावको समझकर ठाकुर हरिदास अपने गुप्त आशीर्वादको प्रकाशित कर कहने लगे कि मैं किसीको बुरा आशीर्वाद नहीं देता । कृष्णके प्रति तुमलोगोंका मन जैसा इस समय है हमेशा ऐसा ही रहे । अब सब कोई प्रतिदिन प्रतिक्षण कृष्ण-नाम लेते तथा कृष्ण चिन्तन करते हो, परन्तु यहांसे लौटनेपर यदि तुमलोग असत्सङ्ग करके विषय-की चिन्ता करोगे तो कृष्ण भक्तिकी बात अवश्य भूल जाओगे । विषयमें रहनेसे कृष्ण प्रेम उदित नहीं होता । इन्द्रियसुख-प्राप्तिके लिये तत्पर, विषय भोगी तथा स्त्री संगीके हृदयमें कृष्णप्रेमका उदय नहीं होता । निश्चय करके जानो कि कृष्ण विषयसे बहुत दूर रहते हैं । ईश्वर-कृपासे यदि किसी भाग्यवान् व्यक्तिको साधुसंग प्राप्त होता है तब वह विषयके आवेश (वेग) को छोड़कर कृष्णभजन करता है । ऊपर कहे गये सम्पूर्ण उपदेशका तात्पर्य यह है कि विषयसंग करनेसे कृष्ण विमुखतारूपी अपराध बारबार होता रहता है । इसलिये स्थूल देहकी स्वाधीनताका सुख तथा पराधीनताके दुःखरूपी भोगकी चिन्ता छोड़कर निरन्तर कृष्णनाम ग्रहण करो । 'बराबर बन्दी रहो' ऐसा आशीर्वाद मैं नहीं देता । 'विषय छोड़कर रात दिन हरिनाम लो' यही मेरा आशीर्वाद है । 'कृष्णमें दृढ़ भक्ति हो' यही जीवोंके प्रति मेरी दया है ।

इसके अतिरिक्त तुमलोग और किसी बातकी चिन्ता मत करो क्योंकि तुमलोग दो चार दिनके भीतर ही जेलखानेसे छूट जाओगे। जेलखानेमें रहो या बाहर रहो तुम्हारी कभी भगवत् सेवासे विमुख न हो। बन्दीलोगोंको ऐसा उपदेश तथा आशीर्वाद देकर ठाकुर हरिदास नवाबके समीप गये। उनके अत्यन्त दिव्य तेजको देखकर नवाबने उनको आदरके साथ बैठनेको कहा और अपनापन प्रकट करते हुए वह पूछने लगा कि भाई! तुम्हारी बुद्धि इस प्रकारकी कैसे हुई? [illegible] भाग्यसे तुमने यवन कुलमें जन्म ग्रहण किया है। तब निकृष्ट हिन्दुओंका आचरण क्यों ग्रहण करते हो? हम लोगोंको भ्रष्ट समझकर उनलोगोंका बनाया हुआ अन्न भी हमलोग नहीं खाते। तुमने अच्छे वंशमें जन्म ग्रहण किया है। इसलिये उत्तम जातिसे नीच जातिमें गिरना बुद्धिमत्ताका चिन्ह नहीं है। तुम श्रेष्ठ यवन धर्मको छोड़कर तथा अन्य प्रकारका व्यवहार कर मरनेपर किस प्रकार स्वर्गको प्राप्त करोगे? जो हो, अब कलमा पढ़कर हिन्दू धर्मरूप पाप से मुक्त हो जाओ। नवाबके ऐसे उपदेश सुनकर ठाकुर हरिदासने मन-ही-मन विचारा कि ऐसी उक्ति विष्णुमाया-मुग्ध जीवोंके ही योग्य है। मायाबद्ध जीव इन्द्रियज ज्ञान तथा संसारी वस्तुओंको अपने भोगोंका पदार्थ समझकर भगवत् प्राप्तिसे वञ्चित रहता है। भगवान् वैकुण्ठ वस्तु (भयशून्य) हैं और संसारकी सम्पूर्ण वस्तुएं इन्द्रियग्राह्य और भोग करने योग्य हैं। अतएव ठाकुर हरिदास नवाबके उपदेशको सार हीन समझकर मधुर शब्दोंमें यों बोले--"परमेश्वर एक नित्य, अद्वितीय (जिसके समान कोई दूसरा न हो) एवं सकल जीवोंके प्रभु हैं। हिन्दू-मुसलमान, बालक-वृद्ध, युवक-युवती, सबोंका ईश्वर एक हैं। ईशतत्त्व-अनभिज्ञ हिन्दू तथा यवन, दोनो ही ईश्वर-के नामसे पृथक् बुद्धि करके अर्थात् पृथक् पृथक् ईश्वर कल्पना करके एक दूसरेके प्रति विरोध करते हैं, किन्तु जिस समय विषमता (वैर) तथा द्वेषभाव छोड़कर यवनशास्त्र कुराण एवं हिन्दू शास्त्र-पुराणका विचार करते हैं उस समय ईश्वर-तत्त्वमें कोई भेद नहीं आता। ईश्वर निर्मल, शुद्ध वस्तु है। वह अविनाशी तथा नित्य-कालस्थितिशील वस्तु है, ईश्वर साम्प्रदायिक भावसे खण्डित नहीं होते। कालके प्रभावसे ईश्वरमें कमी नहीं होती अथवा उनका नाश नहीं होता। सुतरां वह अन्तर्यामीरूपसे हिन्दू तथा मुसलमान सभी जातिके लोगोंके हृदयमें सम्पूर्णरूपसे अखण्ड भावसे अवस्थान करते हैं। यवनके हृदयमें जिस ईश्वरका अधिष्ठान (वासस्थान) है हिन्दूके हृदय-में भी वही ईश्वर अधिष्ठित हैं (निवास करते हैं)। जीव अनादिकालसे ईश्वर विमुखताके वश मन्द-मति होकर तथा अनित्यवस्तुसे सम्बन्ध युक्त होकर अपनेको भोक्ता समझ (मुझे सुखी होना चाहिये ऐसा समझकर) ईश्वर विमुख हो अपने हृदयमें अव-स्थित अन्तर्यामी परमात्माको सम्पूर्णरूपसे अखण्ड नहीं समझते। वे अपने ही समान ईश्वरको भी खण्ड-वस्तु समझते हैं। भ्रान्त होकर भी कल्पित भोग तथा त्यागमूलक ज्ञान छोड़कर भक्तिके प्रभावसे "वह एक एकमात्र सेव्य वस्तु है" ऐसा जान सकते हैं। वही अखण्ड अव्यय (जो विकारको प्राप्त न हो) नित्यशुद्ध ईश्वर बद्धजीवोंको प्रेरणा करके जिसको जैसी शक्ति प्रदान करते हैं वह वैसी ही योग्यता प्राप्तकर मनोधर्मके वश नाना प्रकार-के कर्म करता है। जिस प्रकार इन्द्रजाल जानने-

वाला कठपुतलीको नचाता है उसी प्रकार ईश्वर सकल भूतोंके हृदयमें अवस्थानकर उनलोगोंको प्रेरणा करते रहते हैं। उस ईश्वरके नाम, रूप, गुण, परिषद् तथा लीलाकी व्याख्या पृथ्वीके भिन्न भिन्न प्रचारकगण अपने अपने शास्त्रानुसार नाना प्रकारसे करते हैं। भावग्राही जनार्दन सबोंके भावानुसार सेवा ग्रहण करते हैं। परन्तु यदि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तिके भावोंकी निन्दाकर उसके प्रति हिंसा अवलम्बन करता है तो ऐसी हिंसाके द्वारा ईश्वर ही हिंसित होते हैं। अतएव भूतहिंसा करना सर्वथा अयोग्य है। किसी व्यक्तिके भावोंको परिवर्तित कर उसके हृदयमें अपना मतृ भावों को स्थापित करनेका यत्न करनेसे केवल परधर्मकी निन्दा होती है। ऐसा नहीं वरन् सकल धर्मोंके प्रतिपाद्य ईश्वरकी ही हिंसा होती है। ईश्वरकी सेवा तथा हिंसा पृथक् पृथक् वस्तु है। यदि कोई ईश्वर सेवाको हिंसा समझकर भ्रान्त बुद्धियुक्त हो जाय तो ऐसा होनेसे उसने ईश्वर सेवा विमुख होकर अपनेको ही हिंसा की। भगवानसे परिरहित होनेसे जीव कभी अन्याभिलाषी, कभी कर्मी, कभी हठयोगी, कभी राजयोगी इत्यादि हो जाता है। ऐसे जीवोंको नित्य-मङ्गल-प्राप्तिके लिये उनलोगोंको मुकुन्दसेवामें प्रवृत्त कराना हिंसा नहीं है। परन्तु उन जीवोंको ईश्वरसेवाके विरुद्ध या उसके बदलेमें इन्द्रियसुखकारी कार्योंमें नियुक्त करनेसे उनलोगोंके प्रति हिंसा होती है। ऐसा करना मना है। इसलिये ईश्वरने मेरे चित्तमें जिसप्रकारकी स्फूर्ति दी है मैं उसीप्रकारके चित्तसे भगवनसेवा-कार्यमें नियुक्त हूँ। भगवान् जिसपर जिसप्रकार अनुग्रह करते हैं वह उसी प्रकारसे भगवानके सेवा-कार्यमें अग्रसर होता है। मैं जिस प्रकार यवन-कुलमें प्रकट होकर भगवत् इच्छानुसार ब्राह्मणका धर्म अर्थात विष्णुसेवामें रत हुआ हूँ, उसी-प्रकार कोई ब्राह्मण भी भगवत् इच्छासे सामाजिक ब्राह्मणता छोड़कर अपने मनोधर्मानुसार वेदविरुद्ध कार्य कर सकता है। जीव अपनी अपनी रुचिसे प्रेरित होकर जो जो धर्म करता है उसीके अनुसार वह फल भी प्राप्त करता है। अतएव उसको स्वतन्त्रभावसे दण्डविधानका प्रयोजन नहीं है।

ठाकुर हरिदासके वचनको सुनकर यवनलोगोंको सन्तोष हुआ। परन्तु वहांका काजी हिंसाके वश नवाबसे यों कहने लगा-"हरिदाससे यवन कुलपर ग्लानि लाकर हिन्दू लोगोंके धर्मकी जो प्रशंसा की है एवम् आदर्श-पथ दिखलाया है उसका अनुसरण करनेसे बहुतसे यवन भविष्यमें यवन धर्मपर कलङ्क लगायेंगे। अतएव जिससे ऐसा अनर्थ न हो, उसके लिये हरिदासको कठिन सजा देकर सबोंको सावधान कर देना चाहिये, अथवा हरिदास स्वयं अपने कर्मके लिये पश्चात्ताप-कर अपना अपराध स्वीकार करें। काजीके वचनको सुनकर नवाब बोला कि हरिदास तुम हमलोगोंके धर्म विरोधी लोगोंके आचरणको परित्यागकर तथा यावनिक शास्त्रमत स्वीकारकर यदि उसीके अनुसार चलो तो तुमको किसी बातकी चिन्ता अथवा भय करनेकी आवश्यकता नहीं है, नहीं तो काजीगण तुमको अति-कठिन दण्ड देंगे। तुम सावधान हो जाओ। दण्डित होकर अपनी मर्यादा नष्ट करनेसे क्या लाभ होगा? नवाबके वचनको सुनकर हरिदासको कुछ भी भय नहीं हुआ और उन्होंने कहा-"भगवान् जो करेंगे वही होगा? उसके अतिरिक्त और कोई कुछ नहीं कर सकेगा। एकमात्र ईश्वर ही जीवको उसके किये हुए कर्मका फल देने वाले हैं। अहङ्कार-विमूढ़ जीव अपनेमें कर्त्ताका धर्म आरो-

चितकर कर्म करता है यह केवल उसका मिथ्या अभिमान है। भगवत इच्छा फलवती होती है। जीव हेतुस्वरूप होनेपर भी ईश्वर इच्छाही बलवती है। अतएव यदि मेरा शरीर टुकड़े टुकड़े करके काट दिया जाय तब भी मैं हरिनाम ग्रहण करना नहीं छोड़ सकता। श्रीनामप्रभुके प्रति अचल श्रद्धा प्रकट करते हुए ठाकुर हरिदासने कहा माता पितासे प्राप्त यह देह चिरस्थायी नहीं है। कृष्णसेवा विमुख प्राण जो वर्तमान समयमें विषयसुखमें मत्त है, वह भी नाशवान है। किन्तु श्रीभगवानके नाम तथा भगवान पृथक वस्तु नहीं है। मायिक वस्तुका नाम (मनुष्यका दिया हुआ) कल्पित है। परन्तु बैकुण्ठनाम तथा नामी एकही वस्तु है। अतएव नामसेवा परित्यागकर मैं स्थूल तथा सूक्ष्म शरीरोंमें श्रद्धा स्थापन नहीं कर सकता। स्वरूपतः सभी जीव वैष्णव हैं। वैष्णवके लिये श्रीहरिनाम ग्रहण करनेके अतिरिक्त और कोई कर्त्तव्य नहीं है। साधन तथा सिद्ध दोनों अवस्थामें नामसेवा ही जीवका एकमात्र कर्त्तव्य है, उसको छोड़कर मैं कभी भी मनुष्य कल्पित सामाजिक आचार ग्रहण नहीं करूंगा। इसके लिये समाज तथा काजी मुझे जो दण्ड दें उसे मैं सहन करूंगा। नित्य हरिसेवा परित्यागकर मैं कभी भी अनित्य विषय सुखके लिये नहीं दौड़ूंगा। श्रौतपथ (गुरु परम्परासे प्राप्त श्रौत पथ) अवलम्बनकर मैं बैकुण्ठ नाम प्राप्त किया है, उस कृष्णकीर्त्तनके अतिरिक्त मेरा और कोई कर्त्तव्य नहीं है। देह तथा मन दोनों शरीर "शरीरी मैं" से पृथक है। इसलिये "मैं" नित्य वस्तु हूँ किन्तु देह तथा मन अनित्य वस्तु हैं।

(क्रमशः)

प्रह्लाद चरित्र

(पूर्व प्रकाशितसे आगे)

श्रीब्रह्माजीने भगवानकी स्तुति करते हुए कहा अनन्त, अद्भुत-प्रभाव, पवित्र कर्मकारी और सत्वादि तीनगुणोंसे सृष्टि-स्थिति-लयकर्ता तथा अव्ययात्मा आपको नमस्कार करता हूँ।

श्रीरुद्रजीने कहा—आपके क्रोधका समय प्रलय काल ही है। यह असुर भी नष्ट हो गया। सुतराम्, हे भक्तवत्सल! आपके शरणागत प्रह्लादकी रक्षा कीजिये।

इन्द्रने कहा—हे परमेश्वर, दैत्यराजने हमलोगोंके यज्ञांश हरण कर लिया था। वह आपकी कृपासे फिर हम सबोंने प्राप्त किया है। आपके सेवकोंके समीप कालग्रस्त ऐश्वर्य अति तुच्छ है, यहांतक कि मुक्ति भी उनलोगोंका वांछनीय नहीं है।

ऋषियोंने कहा—हे आश्रितपालक आदिपुरुष! आपने हमलोगोंको जो तपस्याके बारेमें उपदेश किया था, वह इस दैत्यने हरण कर लिया था। आपने यह शरीर प्रकट कर उसका विनाश किया है। आपको नमस्कार करते हैं।

पितृगण बोले—यह दैत्य हमारी सन्तानोंसे हमलोगोंके दिये हुए पिण्डादि बलपूर्वक भोजन करता था। उससे आपने कृपाकर उद्धार किया है।

सिद्धोंने कहा—हे नृसिंह! हमलोगोंकी तपस्यासे प्राप्त सिद्धियाँ असाधुने छीन ली थीं। उस गर्वित दुरात्माका आपने संहार किया है।

विद्याधरोंने कहा—हमलोगोंकी पृथक् पृथक् धारणासे प्राप्त की हुई विद्या जिस मूढ़ असुरने रोकी थी, उस मूर्खका भगवानने पशुवत विनाश किया है;

अतएव, उन्हें हमलोग नमस्कार कर रहे हैं ।

नागोंने कहा—जिस दुरात्मा हिरण्यकशिपुने हमलोगोंके शिरसे रत्नको और स्त्रियोंको हरण कर लिया था, उसका विनाश करते हुए जिसने हमलोगोंको आनन्द दिया है उसे हमलोग प्रणाम कर रहे हैं।

मनुष्योंने कहा—हे देव ! आपके सेवक हमलोगोंकी वर्णाश्रम-मर्यादा असुरने नष्ट की थी। आपने उसका विनाश किया है। हम किंकरोंको आज्ञा कीजिये कि हम अब क्या सेवा कर सकते हैं ?

प्रजापतिगण बोले—हे परेश, हमलोग आपके सृष्ट हैं किन्तु यह असुर हमलोगोंको सृष्टिके काममें अड़चन था। अब आपने उसका संहार किया है। आपका यह अवतार मंगलका स्वरूप है।

गन्धर्वोंने कहा—हे विभो ! हमलोग आपके ही नट वा गायक हैं परन्तु इस असुरने हमलोगोंको अपने वशमें रक्खा था। अब इस दशाको प्राप्त हुआ है। असन्मार्गमें चलनेसे कभी किसीका मंगल नहीं हो सकता।

चारणोंने कहा—हे हरे ! हमलोग आपके संसारनिवारणकारी चरणकमलोंमें शरण लेते हैं।

यक्षोंने कहा—हे भगवन्, आपके सेवकश्रेष्ठ हमलोग इस असुरकी शिविका ढोनेमें नियुक्त थे। आपने इसका अत्याचार समझकर इसका संहार किया है ।

विष्णुपार्षदोंने कहा—हे आश्रयदाता ! हमलोगोंने आज आपके इस मंगलमय नृसिंहरूपका दर्शन प्राप्त किया। आपके ब्रह्मशापग्रस्त भृत्यका विनाश उसके मंगलके लिये ही है ।

ब्रह्माशिवादि देवगण ऐसे भगवान्‌के स्तवन करते हुए भी उनके समीप पहुंचनेमें डर गये। साक्षात् लक्ष्मीको भेजा गया। वह भी डरके मारे "यह रूप कभी मैंने न देखा न सुना" कहकर लौट आयी। तब ब्रह्माने प्रह्लादको नृसिंह-भगवान्‌के पास भेजा। उन्होंने भी बहुत ही आनन्दके साथ भगवान्‌के पास जाकर साष्टांग प्रणाम किया। भगवान्‌ने भी बहुत ही करुणावश अपने अभय हस्त कमल प्रह्लादके सिरपर रखे। उसी स्पर्शसे प्रह्लादके समस्त अशुभोंका विनाश हो गया। वह आनन्दसे अवश हो एकाग्र चित्तसे भगवान्‌का स्तवन करने लगे। ब्रह्मादि देवगण सत्वगुणके कारण एकाग्रचित्त हो अनेक वचनोंके प्रवाहसे जिनकी आराधनामें समर्थ नहीं हुए, वह क्या असुरकुलमें उत्पन्न मेरी स्तुतिसे सन्तोष प्राप्त करेंगे ? हां, मैं समझता हूं कि धन, सत्कुलमें जन्म, सुन्दरता, तपस्या, पाण्डित्य, इन्द्रिय-निपुणाई, तेज, प्रताप, शारीरिक बल या बुद्धि तथा अष्टांग योग—ये सब भगवान्‌के सन्तोषके कारण नहीं हैं; परन्तु केवल भक्ति ही उनको वश कर सकती है जिसका उदाहरण हैं गजराज। ज्ञान, सत्य, दम, शम, हिंसा-शून्यता, लज्जा, तितिक्षा, अनसूया, दान, यज्ञ, तप तथा पाण्डित्य—इन बारह गुणोंसे पूर्ण ब्राह्मण भगवत् भक्ति रहित होनेसे अपनेको कभी पवित्र नहीं कर सकता। मगर एक चाण्डाल कुलमें उत्पन्न व्यक्ति भी भक्तिसे अपने कुलके साथ अपनेको भी पवित्र करता है। विशेषतः भगवान्‌को कुछ अभाव नहीं है बल्कि क्षुद्र, अधम मूर्खोंकी भी भक्तिके साथ अर्पण की हुई सामग्रीको कृपाकर ग्रहण करते हैं। वह केवल उनलोगोंके मंगलके लिये ही है। सुतराम् मैं नीच होनेपर भी शंका छोड़कर अपनी बुद्धिके अनुसार भगवत् महिमाका कीर्त्तन करूंगा। जिससे संसार पवित्र होता है। हे प्रभो ! ब्रह्मा आदि देवतागण सात्त्विक प्रकृति और आपके सेवक हैं। सुतराम् इन लोगोंका भय निवारण करना चाहिये। आपका यह अवतार जगत्

के मंगलार्थ है। अब कृपया आपके क्रोधका संवरण करना चाहिये। असुरका विनाश हो जानेसे साधुओंको आनन्द प्रकट हुआ है। मनुष्यगण भय-निवारणके लिये ही आपके इस रूपका स्मरण करेंगे। आपके भयानक रूपसे ये लोग भयभीत हुए, पर मुझे कुछ भी डर नहीं है। किन्तु मैं अपने कर्म-वश इस असुर कुलमें निक्षिप्त हो संसार चक्रमें भटकनेसे डरता हूं। हे प्रभो, आप कब कृपा करके अपने अभय चरणोंमें शरण देंगे? इस संसारमें सब योनियोंमें ही प्रिय, अप्रिय तथा संयोग और वियोगके कारण दुःख आता है। उसके प्रतीकारके उपाय भी दुःखपूर्ण हैं। तब भी हमलोग उसीमें मुग्ध होकर इस दुनियांमें भटकते हैं। आपका दास्य करनेसे ही वह नष्ट होगा। आपका दास मैं आपके सेवकोंके संगसे संसारमुक्त हो आपकी लीलाकथा-के सत्सगमें बिना परिश्रम ही संसारसे उत्तीर्ण हो जाऊंगा। हे नृसिंह! आपसे उपेक्षित जो लोग दुःखों-के प्रतिकारके लिये अन्यान्य उपाय करते हैं वे सब क्षणिक मात्र हैं। मातापिता अपने बच्चोंकी दवा बीमारियोंमें तथा नाव समुद्रमें डूबे हुए मनुष्योंकी रक्षा नहीं कर सकती, परन्तु केवल आपके चरण-कमलोंके स्मरणसे वह अत्यन्त आसान है। आपका आश्रय छोड़कर कोई भी आपकी मायासे रचे हुए इस संसारको अतिक्रम नहीं कर सकता। इसके उदाहरण स्वरूप मेरे पिताको देखा जिसने समस्त देवतोंको अपने वशमें कर लिया था किन्तु वह आसानीसे आपके हाथसे जान छोड़ चुके। इस-लिये मैं अन्यान्य देवतागणकी पदवी या आयु तथा ऐश्वर्यकी कामना नहीं करता, बल्कि आपके सेवकों-के पास सदा शरण मांगता हूं। हे प्रभो, मृगमरीचिका रूप और सुननेमें ही सुखका स्वरूप विषय भी कहां ये सब जान बूझकर भी मनुष्य क्षणिक सुखके पीछे दौड़ता है जिससे कामाग्नि तो बुझती नहीं परन्तु क्रमशः वृद्धि प्राप्त करती है।

हे परमेश्वर! मैंने रजोगुणयुक्त असुर कुलमें जन्म लिया। परन्तु सत्त्वगुणयुक्त ब्रह्मादि देवगणको भी जो कृपा प्राप्त करनेका सौभाग्य नहीं हुआ, लक्ष्मीजीको भी जो कृपा नहीं मिली, आपके अभय कर कमलोंके आशीर्वाद स्वरूप वह कृपा मुझे सुलभ हुई। आपके आत्मा और मित्र स्वरूप आपको ऊंच-नीचका भेद नहीं है। पर सेवा करनेसे ही कल्पवृक्षके समान आप कृपा करनेमें कोई भेद-विचार नहीं करते। हे भगवन्! संसार कूपके पतित तथा काम्यकर्मोंके पीछे भटकने वाले मुझको आपके सेवक नारदजी-ने कृपाकर आपके आधीन किया है। इसीलिये मैं उसी भक्तसंगकी ही प्रार्थना करता हूं।

आप अपने भृत्यका वचन सत्य करनेके लिये अर्थात् मैंने असुरराजसे कहा था कि भगवान सर्वत्र हैं अतः स्तम्भमें भी हैं इस वाक्यकी सचाई दिखानेके लिये आपने स्तम्भसे प्रगट हो असुरका विनाश किया।

हे बैकुण्ठनाथ! मेरा पापी चित्त आपकी कथा-में सन्तुष्ट नहीं होता क्योंकि वह कामातुर और हर्ष, शोक, भय तथा विविध वासनाओंसे पीड़ित होनेकी वजहसे मैं आपके तत्त्व विचारसे लाचार हूं। हे अच्युत! जैसे एक पतिकी बहुत पत्नियाँ रहनेसे हर स्त्री उसे अपनी ओर खींचती है वैसे ही मेरी रसना अतृप्त हो रसकी ओर, शिश्न कामिनीके प्रति, चर्म और तरफ, कान शब्दकी ओर, नाक सूंघनेके लिये और कर्मेन्द्रियां कर्म करनेके लिये जा रही हैं। इसीलिये मैं आपके

ऐसे भव–वैतरणीमें पतित, कर्मानुसार जन्म-मरण इत्यादिसे भयभीत मूढ़ व्यक्तियोंपर आप कृपा कीजिये। हे जगद्गुरु! इन पतित मूढ़ोंका उद्धार करनेमें आपका श्रम ही क्या है? आप जगतकी सृष्टि-प्रलयादि कार्य आसानीसे ही करते हैं। हे सर्वोत्तम! मैं इस दुस्तर भव-नदीको तैरनेसे डरता नहीं; क्योंकि मैं तो आपकी कथारूपी विशाल अमृतहृदमें मग्न-चित्त हूं, परन्तु जो लोग आपसे विमुख हो इन्द्रिय सुखके लिये संसार-समुद्रमें डूबे रहते हैं; उनलोगोंके लिये ही शोक करता हूं। हे देव! अक्सर बहुत मुनि लोग अपनी मोक्ष-कामनासे निर्जनमें मौन रहते हैं। ये लोग दूसरोंके लिये नहीं सोचते। पर मैं दीन जनगणको छोड़कर मोक्ष नहीं मांगता हूं और देखता हूं आपके अलावा इनलोगोंके उद्धारका और कोई अवलम्ब नहीं है। ये लोग स्त्री-सम्भोगादि तुच्छ संसार-सुखमें ही आसक्त रहते हैं—जो खुजलीके बराबर अन्तमें कष्टदायक है—यह जानकर ज्ञानी लोग उससे अलग रहते हैं; परन्तु मूढ़ लोग उसी खुजलीके समान सम्भोगादिमें ही फंसे रहते हैं; पर कभी उससे तृप्त नहीं होते। उनमें कोई-कोई तो मुक्तिसाधक मौनव्रत, शास्त्रज्ञान, तपस्या, वेदपाठ, धर्मव्याख्या, निर्जनवास, जप तथा समाधि प्रभृतिका आडम्बर दिखाते हुए भी उसे केवल अपने सम्भोगके लिये ही करते हैं।

हे उरुगाय! देवगण तथा मृत्युलोकके जीवगण, सभी जन्म-मरणके वशमें हैं। ये लोग आपको समझनेमें असमर्थ हैं। ज्ञानीलोग यह जानकर अध्ययनादि कर्मोंको छोड़कर आपके प्रति नमस्कार, स्तुति, कर्मार्पण, पूजन, स्मरण और लीलादिके श्रवण—इन सभी भक्तिके अंगोंके साधनमें ही नियुक्त रहते हैं। आपको प्राप्त करनेके लिये भक्तिके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।

प्रह्लाद महाराजके इस प्रकार स्तवन करनेके उपरान्त करुणामय भगवानने अपने भक्तसे कहा—हे प्रह्लाद! मैं तुझसे सन्तुष्ट हूं। तू मुझसे वर मांग। मेरी प्रसन्नताका साधन करनेमें और किसीको सोचना नहीं पड़ता।

वर मांगना भक्तियोगकी अड़चन है—यह जानकर प्रह्लाद महाराजने हंसते हुए कहा—हे भगवन्! स्वभावसे ही कामासक्त मुझको आप वरका लालच मत दीजिये। कामसे भीत हो उससे मुक्तिके लिये ही मैंने आपकी शरण ली। तब आपकी यह लीला मुझसे भक्तका लक्षण कहलानेके लिये एक छल मात्र है, नहीं तो करुणा-करुणालय आपके लिये यह सम्भव नहीं होता। जो आपसे विषयभोग मांगता है, वह भृत्य नहीं बल्कि बनिया है (जो एक वस्तुके बदलेमें अर्थ या अर्थके बदले विषयकी लेन-देन करता है)। भक्तलोग बनियेके समान कुछ उपहार देकर कोई वर नहीं मांगते, और प्रभु भी सेवकका कल्याणकी कामना करते हैं पर उसको धनादि देकर संसार-कूपमें फिर नहीं ढकेलते। मैं आपका निष्काम सेवक हूं और आप भी मेरा निरुपाधिक स्वामी हैं। अतएव हमदोनोंमें राजा तथा भृत्यके समान कोई सम्बन्ध नहीं है। अगर आप कुछ वर देनेकी इच्छा करते हैं, तो कृपाकर यह वर दीजिये कि मेरे हृदयमें कभी किसी कामनाकी उत्पत्ति न हो; उससे इन्द्रियाँ, मन, प्राण, देह, धर्म, धीरता, बुद्धि, शरम, सम्पत्तियां, स्मृति, सत्य आदि सभी नाश हो जाते हैं। मनुष्य जब कामको सम्पूर्णरूपसे छोड़ सकता तब, वह आपके समान ऐश्वर्यको प्राप्त कर सकता है।

अब भगवान बोले—तुम्हारे समान मेरे भक्तलोग ऐहिक तथा पारलौकिक कुछ भी कल्याणकी प्रार्थना नहीं करते। तुम दैत्योंके अधिपति बनकर एक मन्वन्तर राज्यसुख भोगो और मेरी कथाकी आलोचना और सर्व कर्मको मुझे अर्पण करते हुए—मेरी आराधनामें तत्पर रहते हुए अन्तमें देवगणके भी प्रशंसनीय हो मुझको प्राप्त करोगे। जो तुम्हारे कहे हुए इस स्तवनका कीर्त्तन करेगा वह भी कर्म-बंधनसे मुक्त हो जायगा।

प्रह्लाद महाराजने फिर कहा—हे महेश्वर! मैं आपसे यही वर मांगता हूँ, कि मेरे पिताने आपके ईश्वरीय तेजको न समझकर आपकी निन्दा तथा मेरा अपमान किया है। उस पापसे उनको पवित्र करना चाहिये। श्रीभगवानजी बोले—हे प्रह्लाद! तुम्हारे समान कुलपावन वंशधरके जन्मसे तुम्हारे इक्कीस पुश्तोंको पवित्रता प्राप्त हो गई। यहांतक कि जहां जहां मेरे भक्तलोग निवास करते हैं वहांके पापिष्ठ लोग भी पवित्र हो जाते हैं। फिर भी तुम तो मेरे भक्तोंमें श्रेष्ठ होनेकी वजह भक्तोंका उदाहरण-स्वरूप हो। मेरे स्पर्शसे ही तुम्हारे पिता सर्वतोभावेन पवित्र हो गये। फिर भी तुम उनका प्रेतकार्य करना, जिससे उन्हें उत्तम लोकमें गति होगी।

गुरुगृह-वासकी प्रयोजनीयता

श्रीश्रीराधानाथकी सेवा ही जीवका परम प्रयोजन है। किन्तु श्रीराधा या श्रीराधाजनगणोंके आनुगत्यके बिना उस सेवाका कोई अधिकारी नहीं हो सकता। श्रीमतीके निज-जनका अर्थ है श्रीगुरुपादपद्म। श्रीगुरुपादपद्मके आश्रयकी आवश्यकता है। आश्रयका अर्थ है प्रपन्न होना। शरणागत पात्रको ही गुरुकृपा प्राप्त होती है। इसलिये श्रीगुरुपादपद्मके शरणागत होनेकी आवश्यकता है। उनके समीप अभिगमन करना होगा। श्रीगुरुदेवके समीप रहना ही पड़ेगा। वे श्रीवार्षभानवीके निजजन हैं, सुतरां अप्राकृततत्त्व है। प्राकृत-भावके द्वारा श्रीगुरुदेवका सामीप्य लाभ नहीं होता। जड़बुद्धि सम्यकरूपसे छुटनेसे ही उनकी प्राप्ति होती है। श्रीगुरुदेवके सहचर ही उनके सेवादेश लाभ करनेका सौभाग्य प्राप्त करते हैं। जो उनसे विलग हैं, जिनपर वे कृपा नहीं करते उनको दिव्यज्ञान किस प्रकार प्राप्त होगा? श्रीगुरुदेवके दर्शन योग्य पात्र होना चाहिये। श्रीराधारानीके सेवकोंका कुत्सित दर्शन नहीं होता है। श्रीगुरुधाममें मलिनताके प्रवेश करनेका अधिकार नहीं है। जो कपटी हैं वे कभी गुरु सेवा नहीं कर सकते। जो अप्राकृत श्रीगुरुपादपद्मके दर्शनके इच्छुक हैं, उन्हें अपने स्थूल (पंच-भूतात्मक शरीर) और सूक्ष्म उपाधियों अर्थात् मन, बुद्धि, और अहंकारसे मुक्त होना होगा। चित् स्वरूपमें अवस्थित होना होगा। जबतक उपर्युक्त उपाधियाँ साथ रहती हैं तबतक रूपानुगगणोंके पादपद्मसे बहुत दूर अवस्थित रहना पड़ता है। श्रीगुरुधाम—श्रीगुरुगृह अथवा श्रीमठ एकही तत्त्व है।

श्रीगुरुदेवकी सेवा करनेके लिये उनके धाम और उनके गृहमें वास करना होगा। श्रीगुरुदेव कृष्णके अतिशय प्रिय हैं। उनके धाम और गृह नित्य हैं। वहां रहकर वे निरन्तर कृष्णसेवा कर रहे

हैं। वहां उनके निजजनोंके अतिरिक्त और किसीका प्रवेशाधिकार नहीं है। अभक्त लोग वहांकी शांति भङ्ग नहीं कर सकते। श्रीगुरुदेव कृपा करके जिसको अधिकार देते हैं एकमात्र वही वहां वास कर सकता है। जो वहांकी आब-हवाके अनुकूल नहीं हो सकता, जो वहांके चाल-ढालमें निपुण नहीं हैं, उनका उस अप्राकृत धाममें किस प्रकार निर्वाह हो सकता है। श्रीगुरुकृपासे जो श्रीगुरुतत्त्व-उपलब्धि कर सके हैं वे ही श्रीगुरुदेवके मनो-भिलाप जानते हैं, श्रीगुरुधामके वैशिष्ट्य भी उन्हींके हृदयमें प्रकट होता है, वे ही श्रीगुरुगृहमें वास करनेके योग्य होते हैं। अयोग्य व्यक्तियोंको गुरुधामके चौत्रपाल बाहर कर देते हैं।

गुरुगृहमें वास करनेके लिये श्रीगुरुदेवकी कृपा भिक्षा करनी होगी, उनकी कृपासे उनको जानना होगा। वे क्या चाहते हैं--उनका क्या प्रयोजन है, उसको समझना होगा। उनके मनोभिलाप पूर्तिका यन्त्र होना होगा। श्रीवार्षभानवीके निजजनोंके कुञ्जोंमें वास सम्पूर्णरूपसे उन्हींकी कृपाकी अपेक्षा करता है। यदि वे प्रवेशाधिकार नहीं दें, उनके समीप कोई नहीं जा सकता। उनका ही दिया हुआ प्रवेश-पत्र (Pass Port) लेकर उनके गृहमें प्रवेश किया जा सकता है। श्रीगुरुदेवको लघनकर या प्राकृत भूमिकामें रहकर उनके गृहमें प्रवेश करनेकी अभिलापा केवल अनधिकार-चेष्टा वा वातुलता मात्र है।

श्रीगुरुदेव श्रीभगवत्पार्षद हैं। वे मर्त्य वस्तु नहीं हैं। श्रीवार्षभानवीके राज्य ही में उनका वास है। उनका गृह कोई पार्थिव (मिट्टीका बना) वस्तु नहीं है। श्रीगुरुपादपद्म, उनकी सेवा और उनका निकेतन सभी अप्राकृत गोलोक-वस्तुएँ हैं। अप्राकृततत्त्व प्राकृत इन्द्रियों द्वारा देखे नहीं जाते। यही कारण है कि प्राकृत दृष्टिमें श्रीगुरुपादपद्म-का दर्शन प्राप्त नहीं होता है। श्रीगुरुपादपद्म-में मर्त्यबुद्धि करनेसे उनकी सेवा प्राप्त नहीं होती। श्रीगुरुदेव जड़ रक्तमांसके पिण्ड नहीं हैं—उनके धामको जड़ धूलि-मिट्टीसे निर्माण नहीं किया गया है, उनका गृह भी ईंट पत्थरका बना हुआ नहीं है वे सब चिन्मय हैं। इसीलिये प्राकृत बद्ध जीवका गुरुगृहमें वास सम्भव नहीं है। प्राकृत मन, बुद्धि और अहंकार द्वारा उनको प्राप्त करना असम्भव है। निर्मल हृदयमें विशुद्ध सत्वके प्रतिष्ठित होनेसे वहां श्रीगुरुपादपद्मका उदय होता है। जिस हृदयमें श्रीगुरुपादपद्म आविर्भूत होते हैं उस हृदयमें उनका सिंहासन प्रतिष्ठित होता है उसी हृदयको गुरुगृह कहते हैं। श्रीगुरुधाममें ही वास करना होगा-- क्योंकि वही जीवका नित्यधाम है। श्रीगुरु-पादपद्म वार्षभानवीके नित्यधाममें निवास करते हैं। उस नित्यधाममें वासकर नित्य श्रीगुरुदेवके आनु-गत्यमें नित्यतत्त्व श्रीराधनाथकी सेवा ही जीवकी नित्यवृत्ति है। उस नित्यधामकी प्राप्ति ही जीवका प्रयोजनतत्त्व है। श्रीगुरुधाम चरमकल्याणके आश्रय हैं। उनके गगन पवन सभी श्रीराधागोविन्दके सेवो-पकरणसे परिपूर्ण हैं। उनके प्रति धूलकण सेवो-न्मुखतासे मुकुलित हैं। वहां श्रीराधाकान्तकी सेवा-व्यतीत अन्य कार्य नहीं होता। वहांकी गतिविधि उन्हींकी ओर रहती है। वहांका शब्दकोलाहल ही उनका नामकीर्त्तन है। वहांके सब सत्ता ही परम कान्तके नाम धाम और कामकी सेवाके लिये नित्य उन्मुख हैं। परम करुणामय श्रीगुरुदेव अपने सेवाकुंजमें नित्य अवस्थित रहकर अपने इष्टदेवका

प्रसाद-स्वरूप सेवाका अधिकार अनुगत जनोंको वितरण कर रहे हैं। भृत्यगण उस अधिकारको शिरपर धारण करके कृतार्थ होकर कभी उनका यशगान करते, कभी उनकी सेवा-विचित्रता, ऐश्वर्य और परिपाट्य देखकर मुग्ध हो जाते हैं। श्रीगुरुदेव सेवा विग्रह हैं, इसलिये गुरुधाम सेवानिकेतन है एवं वहांके अधिवासी सभी सेवक हैं। इसलिये गुरुगृह कहनेसे श्रीराधाकान्तका सेवासदन ही समझना चाहिये।

सेवासदन सेवोन्मुख जीवगणोंकी ही आवास स्थली है। वह सेवकवृन्दोंकी सेवाकलरवसे मुखरित रहता है। वहां नित्य नव नव सेवा-वैचित्र्य आविष्कृत हो रहे हैं। वहांके उपस्थित (समवेत) अधिवासीगण भी श्रीगुरुदेवके आनुगत्यमें श्रीश्रीराधावल्लभकी सेवामें नियोजित रहते हैं। एकमात्र राधानाथ सब लोगोंके सेव्य विषय होनेके कारण वहां मत्सरता या प्रतिद्वन्दिताका अवकाश नहीं है, एक प्राण-कान्तकी ही सेवा-वैचित्र्य सम्पादन करनेके लिये वहां परस्पर इष्ट गोष्ठी होती है। उस सेवासदनके एकमात्र सम्राट—श्रीराधावल्लभ हैं। वहांके सभी निवासी उस परम पुरुषके माधुर्यसे आकृष्ट होकर उनके भोगके इन्धन स्वरूप बने रहते हैं। परम करुणामय श्रीगुरुदेव सभीको सेवाधिकार बाँटते हैं। सब लोग उनके आदेश-पालनके लिये लालायित रहते और श्रीगुरुप्रसाद पाकर सेवानन्दमें मग्न हो जाते हैं। पूर्ण वस्तुके साथ लगाव (सम्बन्ध) रहनेके कारण वहां किसी प्रकारका क्षोभ या अभाव रहने नहीं पाता। श्रीगुरुदेवके गृहमें श्रीमाधव ही एकमात्र नायक हैं। उन्हींको केन्द्र बनाकर वहांका प्रत्येक व्यापार चलता है। श्रीवार्षभानवीके प्रधान सेविकारूपसे श्रीगुरुदेव माधवतोषणकार्यमें निरन्तर नियुक्त रहते हैं। उनके आदेशसे उनके अनुचरगण भी, सहायकरूपसे उनकी सेवाकी विचित्रताका विस्तार करनेमें व्यस्त रहते हैं। वहां कन्हैयाके सिवा अन्य गीत नहीं, राधिकाके सिवा अन्य राज्ञी नहीं और राधा-कृष्णके सिवा अन्य भाव नहीं हैं। गुरुधाममें अपने लिये कोई व्यस्त नहीं रहता। निजानन्द (आत्मेन्द्रियतृप्तिवांछा) को तिलाञ्जलि देकर श्रीगुरुपादपद्म और श्रीराधामाधवका इन्द्रिय-तर्पण ही वहांका प्रधान विषय है। उद्देश्य एक होनेके कारण वहां अनवधानता (मनोयोग शून्यता) का स्थान नहीं। श्रीगुरुपादपद्म नित्य नये नये सेवा वैशिष्ट्य दिखलाकर सेवकोंको आकृष्ट कर रहे हैं।

श्रीगुरुपादपद्मका निवास स्थान वैकुण्ठसे भी उच्च है। वह गोलोकभूमिकामें अवस्थित है। मुक्त पुरुष भी उनको आकाङ्क्षा करते हैं। प्राणीमात्रका वह आकाङ्क्षणीय-वस्तु (प्रयोजनतत्व) है। बद्ध और अनर्थग्रस्त जीव वहां कैसे वासकर सकता है? किन्तु करुणामय दयासागर श्रीगुरुपादपद्मकी अपार दयाका पारावार नहीं है। वे पतित जीवोंका उद्धार करनेके लिये इस प्रपञ्चमें अवतीर्ण होते और मेरे सदृश बद्ध जीवोंका हाथ धर अपने धाममें ले जाते हैं। उनलोगोंके साथ बद्धभूमिकामें रहकर उनलोगोंकी विमुखता दूर करते हैं, स्वरूपावस्थानका सन्धान देते हैं—अनिच्छुक जनोंको भी सेवा-रस पान कराते हैं। उनकी यह औदार्यलीला ही मेरे सदृश बद्धजीवोंका अवलम्ब (भरोसास्थल) है। वे पतितपावन—करुणामय हैं। यद्यपि मुझमें लेशमात्र भी योग्यता नहीं है—तथापि एक बड़ी आशा यह है कि वे अहैतुक स्नेहशील हैं। वे अतिशय दयालु हैं—अनधिकारीको भी अधिकार वितरण करते हैं। वे असीम

दया लेकर इस प्रपञ्चमें अवतीर्ण हुए हैं। यही कारण है कि एक दिन उनके सुशीतल श्रीचरण छायाके नीचे स्थान पानेकी दुराकाङ्क्षा पोषण करनेका साहस होता है। नहीं तो श्रीगुरुगृहमें वास करनेकी आशा करना भी मेरे सदृश बद्ध, पतित और अनर्थग्रस्त जीवके लिये धृष्टतामात्र है।

भक्ति क्या भुक्ति है ?

'भक्ति' का अर्थ है सेवा और 'भुक्ति' का अर्थ भोग। 'भगवद्भक्ति' कहनेसे भगवान्‌जीकी सेवा समझी जाती है। अधिकारके अनुसार सेवा अनेक प्रकारकी होती है। कनिष्ठाधिकारी केवल श्रद्धाके साथ विग्रहसेवा (श्रीमूर्त्तिकी सेवा) करते हैं। किन्तु जो विग्रह व्यवसाय करते हैं अर्थात् जो विग्रह दिखलाकर पैसा कमाते या अपनी इन्द्रिय-तृप्ति-विधान करते हैं वे किस श्रेणीके भक्त हैं? सभी जगह विशेषतः तीर्थ-स्थानोंमें इन विग्रह व्यवसायियोंकी संख्या अधिक है। ये विग्रह-सेवक हैं या नहीं, इसे भलीभाँति विचार करनेकी आवश्यकता है। अपनी भोग-वासनाको त्याग प्रभुकी प्रीतिके लिये कार्य करना ही 'सेवा' है। जिस परिमाणमें अपनी भोग-वासना रहती है उसी परिमाणमें सेवामें बाधा उपस्थित होती है। भगवानके बहाने अपनी सेवा करानेकी वासना (भगवानके भोग्य पदार्थको स्वयं भोग करना) नितान्त खोटा काम है। जहाँ इस प्रकार सेवाके नामपर व्यभिचार होता है उसको हमलोग न तो सेवा कह सकते और न उसके लिये अर्थ ही प्रदान कर सकते हैं। क्योंकि वहां सेवा नहीं बल्कि भोग होता है। असत् कार्य करनेका जो फल है वही फल असत् कार्य-समर्थन करनेका भी है। असत् चेष्टाको समर्थन करना सर्वथा अनुचित है। इसलिये वैसे स्थानमें अर्थ देनेसे सेवापराध होता है। इस प्रकारके सेवकाभिमानियोंका संग सदा त्याग करना चाहिये। तुलसीदास जीने कहा है:--

उदासीन नित रहिये गुसांई।
खल परिहरिये स्वान की नाई॥
बरु भल बास नरक कर ताता।
दुष्ट संग जनि देई विधाता॥

इस प्रसंगमें एक कहानी याद पड़ती है। एक बाबू किसी ऑफिसमें काम करते थे। वह किसी दिन बहुत परिश्रम और साहबकी डाँट-डपट सुनकर घर लौटे। उस समय उनकी स्त्री भोजन बनानेमें व्यस्त थीं। किन्तु बाबूको बहुत भूख लगी हुई थी। अतएव रामशरण नामक अपने नौकरको बाजारसे चार "सन्देश" लानेके लिये एक रुपया दिया। नित्य-कर्मसे निवृत्त होकर उन्होंने देखा कि रामशरण एक ही सन्देश लाया है। देखते ही आग-बबूला हो गये। भूखसे व्याकुल तो थे ही, दूसरे अर्थ भी नष्ट हो गया, पर अभीष्ट वस्तु नहीं मिली। क्रोधित होकर नौकरसे पूछा, "अरे मूर्ख तुझे एक रुपयेमें एक ही सन्देश मिला।" नौकरने डरकर उत्तर दिया, "नहीं सरकार, मैं क्या ऐसा मूर्ख हूँ कि एक रुपयेमें एक ही सन्देश खरीदूँगा! आप अभी थके हुए हैं, थोड़ा विश्राम कीजिये, पीछे सभी बातें कहूँगा।" "पीछे सभी बातें कहूँगा, बदमाश, अभी कहो, नहीं तो तुम्हारा सिर फोड़ डालूँगा।"

"सरकार, यदि आप क्रोध न करें तो मैं सभी बातें इसी समय कह सकता हूँ।"

"अच्छा, ठीक ठीक बतलाओ।"

"बहुत अच्छा सरकार, मैं आपसे सभी बातें

सच्च-सच्च कहता हूँ। सरकार, आप कभी बुरी चीज व्यवहार नहीं करते हैं। इसलिये......'

"इसलिये......क्या। साफ-साफ कहो'

"महाराज, इसलिये एक मिठाई चखकर देखा कि कैसी है।

"अरे शैतान, तुझे खरीदनेको कहा था कि चखनेके लिये? अच्छा जो हो मान लिया कि एक सन्देश खा गया फिर दो और क्या हुए?'

"सरकार,आप मेरे प्रभु मां-बाप हैं। तीन देकर आपका शत्रु कैसे होता? बहुत असमञ्जस-मे पड़ा था कि अकस्मात् एक युक्ति सूझ पड़ी। इसलिये एक और खा गया। सरकार! आप ही विचार कीजिये तीन वस्तुएँ भी क्या किसी मित्र या आत्मीयको देनी चाहिये?"

"रे नीच! तुझको अच्छी युक्ति सूझी। मेरी खूब भक्ति करता है! अच्छा दो सन्देशोंमें-से बचा हुआ एक और क्या किया?"

"सरकार, आप जो कुछ खाते हैं उसमेंसे कुछ मेरे लिये सर्वदा छोड़ देते हैं। उसको मैं पहले ही खा गया। मैं समझता हूँ कि आप इसके लिये रंज न होंगे।"

"मूर्ख! कैसा स्वामीवंचक-भक्त है। भोगके पहले उच्छिष्ट पाता है। अरे, दो सन्देश तो खा ही गये थे, तीसरा कैसे खाया?'

"सरकार, खानेका तरीका दिखलानेके लिये मैं खूब राजी हूँ। मुझे दोष न दीजियेगा। आप देखना चाहते हैं इसीलिये दिखलाता हूँ। देखिये इस प्रकारसे खाया था।" ऐसा कह, उसने चौथे सन्देशको भी मुँहमे डालकर खानेका तरीका बहुत अच्छी तरह दिखला दिया। उसके बाद जो कुछ हुआ उसे लिखकर मैं प्रबन्धका आकार बढ़ाना नहीं चाहता। अब पाठक स्वयं विचार करें कि यह किस प्रकारका प्रभुभृत्य-सम्बन्ध है?"

'जीव नित्य कृष्णदास' इसको भूल, मायाकी फाँस गलेमें पहनकर कृष्णको धोखा देनेकी चेष्टा करता है। किन्तु वास्तवमें वह स्वयं ही वंचित हो रहा है और साथ ही दूसरेको भी वंचित कर रहा है। आपलोग विचार कीजिये कि इस प्रकार सेवास्थान- में विग्रह-व्यवसाय प्रभुसेवा है कि अपना भोग-साधन? मैं और उत्तर देकर एक श्रेणीके लोगोंको दुःखी क्यों करूँ। मैं निरपेक्ष रहता हूँ। आप ही लोग कहें कि यह भक्ति है अथवा भुक्ति?

विविध-संवाद

ढाकामें श्रीविश्ववैष्णवराजसभाके पात्रराज

श्रीश्रीविश्ववैष्णवराज-सभाके वर्तमान पात्रराज गौड़ीय-सम्प्रदायके संरक्षक आचार्यवर्य परमहंस ॐ विष्णुपाद श्रीश्रील अनन्त वासुदेव परविद्याभूषण गोस्वामी प्रभु गत २३ वीं दिसम्बर (१९३८) को राय बहादुर श्रीयुत क्षीरोदचन्द्र सेन बि-इ, पूर्णियाके एस-डी-ओ श्रीयुत बाबू यमुनाप्रसादजी एम-एस-सि बि-एल, अलोयाके जमीन्दार श्रीयुत शचीनाथ राय चौधुरी भक्तिप्रमोद और कतिपय ब्रह्मचारियोंके सहित नारायणगञ्ज घाटपर अवतरण किये। स्थानीय सज्जन, भक्त, विशिष्ट राजकर्मचारी तथा-श्रीमाध्वगौड़ीय मठके सेवकवृन्द श्रील आचार्य-

देवकी अभ्यर्थना कर हरिसंकीर्त्तन करते हुए मोटरमें नारायणगञ्जसे ढाका ले आये।

श्रील आचार्यदेव ढाकावासी सज्जनोंके निकट प्रतिदिन शुद्धभक्तिसिद्धान्त वाणीका कीर्त्तन कर रहे हैं। श्रील आचार्यदेवने कृपापूर्वक गत २८ वीं दिसम्बर (१९३८) से १ ली जनवरी तक प्रतिदिन अपराह्न ३ बजेसे ५ बजेतक विभिन्न लोगोंके विभिन्न पारमार्थिक प्रश्नोंका समाधान किया।

श्रील आचार्यदेव सर्वसाधारणकी सुविधाके लिये अपराह्न ४॥० बजेसे ६॥० बजेतक विभिन्न भक्ति-विषयक परिप्रश्नोंके शुद्धभक्तिसिद्धान्तमूलक सदुत्तर प्रदान कर रहे है। लोगोंकी संख्या क्रमशः बढ़ती ही जा रही है। बहु विशिष्ट व्यक्ति श्रील आचार्यदेवके समीप आगमनकर अपने पारमार्थिक जीवनकी समस्याओंका समाधान करा रहे हैं।

शुभ-संदेश

आनन्दका विषय है कि श्रीगौड़ीयमठके भूतपूर्व आचार्य लोकप्रसिद्ध ॐ विष्णुपाद परमहंस भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादके कृपापात्र डाक्टर अवध बिहारी लालजी कपूर, एम० ए० डी० फिल० को एलाहाबाद विश्वविद्यालयसे नवम्बर मास १९३८ के कनवोकेशन (Convocation)में डाक्टर आफ फिलासफीकी डिग्री प्राप्त हुई है। विशेष गौरवकी बात यह है कि एलाहाबाद विश्वविद्यालयकी जबसे स्थापना हुई है तबसे अभी तक केवल आपको ही दर्शनशास्त्र (Philosophy) के विषयमें यह सम्मान प्राप्त हुआ है। दर्शनशास्त्रमें आपका स्वाभाविक प्रेम है। सन १९३१ में आपने दर्शनशास्त्रके विषयमें एलाहाबाद विश्वविद्यालयसे एम० ए० की परीक्षा पास की और उसमें प्रथम उत्तीर्ण हुए। तत्पश्चात् एलाहाबाद विश्वविद्यालयके दर्शनशास्त्रके विभागमें रिसर्चस्कालर (Research Scholar) नियुक्त किये गये। १९३२ में इन्डियन इन्सटिच्यूट आफ फिलासफी (Indian Institute of Philosophy) अमलनेरमें रिसर्च फेलो नियुक्त किये गये और पुनः १९३६ में एलाहाबाद विश्वविद्यालयमें डी० लिट स्कालरके पदपर नियुक्त हुए और "श्रीचैतन्य महाप्रभुके दार्शनिक विचार (The Philosophy of Sree Chaitanya) के सम्बन्धमें अन्वेषण करना आरम्भ किया। इसी विषयपर आपने डाक्टर आफ फिलासफीकी डिग्रीके लिये एक पुस्तक (Thesis) लिखी। आपके परीक्षक डाक्टर सर एस राधाकृष्णा, प्रोफेसर आर० डी० रानाडे और प्रोफेसर एन० के० सानयाल नियुक्त किये गये। सभी परीक्षकोंने आपकी पुस्तककी बहुत प्रशंसा की है। आपने श्रीचैतन्य महाप्रभुके धार्मिक विचारोंको दार्शनिक ढंगसे संगठित कर तथा प्राच्य और पाश्चात्य दर्शनशास्त्रमें उनकी विशेषता दिखलाकर नर समाजकी बहुत बड़ी सेवाकी है। अधिकांश लोगोंका विचार है कि चैतन्य महाप्रभु केवल एक भावुक व्यक्ति थे और श्रीकृष्णप्रेममें दीवाने होकर गान और नृत्यादि किया करते थे। दर्शनशास्त्रका न तो उन्हें विशेष ज्ञान ही था और न दर्शनशास्त्रके विषयमें उनके कुछ निश्चित विचार थे। अवध बिहारी लालजीने गौड़ीय वैष्णव साहित्यकी बहुत कुछ छानबीन कर अपनी पुस्तकमें इस बातको सिद्ध किया है कि चैतन्य महाप्रभु केवल दर्शनशास्त्रकी योग्यता ही नहीं रखते थे बल्कि उनके स्वतंत्र दार्शनिक विचार भी थे और उन्होंने दर्शनशास्त्र की बहुत सी कठिन समस्याओंको सुन्दर और सरल रूपसे हल किया है पुस्तक अंग्रेजी और हिन्दी भाषाओंमें प्रकाशित होने वाली है। आशा है कि धार्मिक लोग इससे भरपूर लाभ उठायेंगे।

भागवत-पत्र

चतुर्थ वर्ष

निवेदन

भागवत-पत्रका चतुर्थ वर्ष समाप्त हो रहा है । इसलिये भागवत-पत्रके ग्राहकोंसे प्रार्थना है कि वे लोग कृपया पंचम वर्षकी भिक्षा (चंदा) १) एक रुपया भागवत-ऑफिसमें भेजनेकी कृपा करें ।

Regd. No. P. 468.

श्रील प्रभुपादकी पत्रावली—(तृतीय खण्ड)

आचार्य-प्रकट तिथिमें श्रील प्रभुपादकी पत्रावलीका तृतीय खण्ड प्रकाशित हुआ है। प्रत्येक पत्र विशेष शिक्षाप्रद व सारगर्भ उपदेशसे परिपूर्ण है। हमलोग प्रत्येक मंगलकामी व सत्यका अनुसन्धान करनेवाले व्यक्तिको इस पत्रावलीको पाठ करनेका अनुरोध करते हैं।

श्रीचैतन्यदेव

श्रीचैतन्यदेवके [illegible] राजनैतिक अवस्था, अर्थ-नैतिक अवस्था, विद्या, साहित्य व सामाजिक अवस्था, [illegible] अवस्था, समसामयिक पण्डितोंकी अवस्था, नवद्वीपका परिचय व [illegible] प्रामाणिक ग्रन्थ व विवरण [illegible] सरल भाषामें साधारणके पढ़नेयोग्य वर्णन किया गया है। [illegible] अनेक चित्र [illegible] दिये गये हैं। [illegible] साधारण व्यक्ति व विद्यालयके [illegible] भिक्षा [illegible]। प्राप्तिस्थान—श्रीगौड़ीयमठ, पो० बागबाजार, कलकत्ता [illegible] श्रीमाध्वगौड़ीयमठ पो० [illegible], ढाका।

सरस्वती जयश्री

गौड़ीय-वैष्णवाचार्य [illegible] विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादका भुवनके मंगलदायक जीवनचरित ग्रन्थ है। निर्मत्सर शुद्धभक्ति पिपासु व्यक्ति इस ग्रन्थके पाठसे युगपत् अनेक शास्त्रग्रन्थ पाठ व अनेक [illegible] फल लाभ कर सकेंगे। [illegible] प्रथम खण्ड [illegible] पेज, [illegible] आकारमें [illegible] [illegible] साथ इसमें अनेक चित्र भी दिये गये हैं। भिक्षा [illegible]।

'सामयिक-संख्या'—गौड़ीय

[illegible]

ठाकुर भक्तिविनोद

श्रीरूपानुगवर [illegible] ठाकुर भक्तिविनोदका जीवनचरित व शिक्षामृत [illegible] मुद्रित। भिक्षा [illegible]। प्राप्तिस्थान—कलकत्ता (बागबाजार) श्रीगौड़ीयमठ व ढाका—श्रीमाध्वगौड़ीयमठ।

अणुभाष्यम्

चार अध्यायों ब्रह्मसूत्रके प्रत्येक अधिकरणका [illegible] श्रीमन्मध्वाचार्य-कृत श्लोकाकारमें बहुत संक्षेपमें बना हुआ। [illegible] सर्वप्रथम संस्करण, पहले प्रति अध्यायके प्रतिपादका श्रीमन्मध्वाचार्य-विरचित अणुभाष्यमूल, उसके बाद प्रति अध्यायके प्रतिपादका सूत्र-समूह, अणुभाष्य-मूलका बंगला अनुवाद व श्रीपाद [illegible] विरचित तत्त्वमञ्जरी टीका, उसका बंगला अनुवाद व तात्पर्य इस क्रमसे पुस्तक मुद्रित हुई है। इसके अतिरिक्त [illegible] क्रमसे ब्रह्मसूत्र समूह, उसका अध्यायांक, पदांक व सूत्रांकके साथ सूचीपत्र भी संयोजित हुआ है। भिक्षा [illegible] मात्र।

Printed by: Brajeshwari Prasad, at The 'Indian Nation Press and published by him from Sree Gaudiya Math, Mithapur, Patna.

वर्ष ५]

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः

Regd. No. P. 468,

संख्या १]

श्रीव्यासपूजा-संख्या

भागवत

पारमार्थिक

मासिक पत्र

५ गोविन्द
गौराब्द
४५२

फाल्गुण कृष्ण ५
संवत
१९९५ वि०

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥१॥

जिससे इन्द्रिय ज्ञानातीत श्रीकृष्णमें [illegible] तथा फलाभिसन्धान-रहिता ऐकान्तिकी स्वाभाविक निरपेक्षा भक्ति उदय होती है, वही मानव जातिका सर्वश्रेष्ठ धर्म है-- उसी भक्तिके बलसे अनर्थ उपशान्त होकर आत्मा प्रसन्नता लाभ करती है ।

प्रति संख्या)॥ | सम्पादक-त्रिदण्डिस्वामी श्रीभक्तिभूदेव श्रौती महाराज | वार्षिक १)

Editor—Tridandiswami Sree Bhakti Bhudeb Shrauti Maharaj

SREE GAUDIYA MATH Mithapur (Patna).

विषय सूची

उद्देश्य

शुद्ध भगवद्भक्तिका प्रचार करना

प्रबन्ध-सम्बन्धी

(१) यह पत्र प्रति मास ५ कृष्णको प्रकाशित होता है।

(२) इस पत्रकी डाकव्यय सहित वार्षिक भिक्षा १) है।

(३) इस पत्रकी प्रति संख्याकी भिक्षा –)॥ है।

लेख-सम्बन्धी

लेखकोंको केवल भागवत धर्म सम्बन्धी लेख ही भागवत पत्रमें छपनेके लिये सम्पादक "भागवत" के पतासे भेजना चाहिये। जो लेख सम्पादकको पसन्द न होगा वह नहीं छापा जायगा और वापस भी नहीं किया जायगा।

विज्ञापन-सम्बन्धी

"भागवत" में विज्ञापन छपाईका दर नीचे लिखा

साधारण पृष्ठ

प्रति संख्या

पूरा पृष्ठ या दो कालम	...	८)
आधा " १ "	...	५)
चौथाई " "	...	३)
२ इंच " " "	...	१॥)
१ " " "	...	१)

स्थायी विज्ञापन और कवरपर विज्ञापन छपानेका रेट नीचे लिखे पतेपर पत्र-व्यवहार द्वारा तय करना चाहिये।

पत्र व्यवहारका पता--

मैनेजर—"भागवत"

श्रीगौड़ीयमठ,

मीठापुर, पटना।

All communications are to be addressed to—

The Manager 'Bhagwat'

SRI GAUDIYA MATH

Mithapur, Patna

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः



कृष्णे स्वधामोपगते धर्मज्ञानादिभिः सह । कलौ नष्टदृशामेष पुराणार्कोऽधुनोदितः ॥

श्रीगौड़ीयमठ, भीखापुर (पटना)

वर्ष ५ | संख्या १

[illegible]

नम ॐ विष्णुपादाय कृष्णप्रेष्ठाय भूतले ।
श्रीमते भक्तिसिद्धान्तसरस्वतीति नामिने ॥
श्रीवार्षभानवीदेवीदयिताय कृपाब्धये ।
कृष्णसम्बन्धविज्ञानदायिने प्रभवे नमः ॥
माधुर्योज्ज्वलप्रेमाढ्य—श्रीरूपानुगभक्तिद ।
श्रीगौरकरुणाशक्तिविग्रहाय नमोऽस्तु ते ॥
नमस्ते गौरवाणी—श्रीमूर्तये दीनतारिणे ।
रूपानुगविरुद्धापसिद्धान्तध्वान्तहारिणे ॥

श्रीश्रीप्रभुपादपद्म-स्तवकम्

(श्रीमद् भक्तिरक्षक श्रीधर स्वामिपाद विरचितम्)

सुजनार्बुदराधितपादयुगं
युगधर्मधुरन्धरपात्रवरम् ।
वरदाभयदायकपूज्यपदं
प्रणमामि सदा प्रभुपादपदम् ॥१॥

भजनोर्जित-सज्जन-सङ्घपतिं
पतिताधिक कारुणिकैकगतिम् ।
गतिवंचितवंचकाचिन्त्यपदं
प्रणमामि सदा प्रभुपादपदम् ॥२॥

अतिकोमलकांचनदीर्घतनुं
तनुनिन्दितहेममृणालमदम् ।
मदनार्बुदवन्दितचन्द्रपदं
प्रणमामि सदा प्रभुपादपदम् ॥३॥

निजसेवकतारकरञ्जिविधुं
विधुताहितहुंकृतसिंहवरम् ।
वरणागतबालिशशन्दपदं
प्रणमामि सदा प्रभुपादपदम् ॥४॥

विपुलीकृतवैभवगौरभुवं
भुवनेषु विकीर्तितगौरदयम् ।
दयनीयगणार्पित गौरपदं
प्रणमामि सदा प्रभुपादपदम् ॥५॥

चिरगौरजनाश्रयविश्वगुरुं
गुरुगौरकिशोरकदास्यपरम् ।
परमादृतभक्तिविनोदपदं
प्रणमामि सदा प्रभुपादपदम् ॥६॥

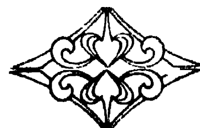
रघुरूपसनातनकीर्तिधरं
धरणीतलकीर्तितजीवकविम् ।
कविराजनरोत्तमसख्यपदं
प्रणमामि सदा प्रभुपादपदम् ॥७॥

कृपया हरिकीर्तनमूर्तिधरं
धरणीभरहारकगौरजनम् ।
जनकाधिकवत्सलस्निग्धपदं
प्रणमामि सदा प्रभुपादपदम् ॥८॥

शरणागतकिंकरकल्पतरुं
तरुधिक्कृतधीरवदान्यवरम् ।
वरदेन्द्रगणार्चितदिव्यपदं
प्रणमामि सदा प्रभुपादपदम् ॥९॥

परहंसवरं परमार्थपतिं
पतितोद्धरणे कृतवेशयतिम् ।
यतिराजगणैः परिसेव्यपदं
प्रणमामि सदा प्रभुपादपदम् ॥१०॥

वृषभानुसुतादयितानुचरं
चरणाश्रितरेणुधरस्तमहम् ।
महदद्भुतपावनशक्तिपदं
प्रणमामि सदा प्रभुपादपदम् ॥११॥



वर्षारम्भ

भागवतके पंचम वर्षका आरम्भ हुआ। बालक का पांचवां वर्ष होनेसे पितामाताको बहुत ही आनन्द होता है। वे बच्चोंके अध्ययनका बन्दोबस्त करते हैं। किन्तु इसे बालक होनेपर भी हमको ऐसा नहीं समझना चाहिये। भागवत नित्य सत्यधर्मका प्रचारक है। नीतिवादियोंके विचार हैं—

"सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् मा ब्रूयात्सत्यमप्रियम्"

अर्थात् सत्य बोलो, यदि वह प्रिय हो, अप्रिय सत्य मत बोलना। किन्तु भागवतमें ऐसा विचार नहीं चलता। जो लोग कपटसे भरे हैं। वह कपट क्या है? धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। जो इन चारों वस्तुओंके प्रार्थक हैं, वे कपटी कहलाते हैं, किन्तु भागवत में कहा गया है कि—

धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां
वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम्।
श्रीमद्भागवते महामुनिकृते किं वा परैरीश्वरः
सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात्॥

(भागवत १।१।२)

महामुनि वेदव्यासकृत श्रीमद्भागवतमें हिंसा-रहित साधुओंका धर्म निरूपित हुआ है। उस धर्म में धर्म, अर्थ, काम या मोक्षकी अभिलाषा भी नहीं है। इस शास्त्रकी आलोचनासे त्रिताप जड़से नष्ट हो जाते हैं, और श्रवणकारी सुकृतिमान व्यक्तियोंके हृदयमें हरि फौरन अवरुद्ध हो जाते हैं। सुतराम्, भागवतके सिवा और किसी भी शास्त्रकी जरूरत नहीं है। श्रीमद्भागवतकी वाणीके प्रचारक इस भागवत-पत्रकी बोली सुतरां वही है।

भागवत ग्राम्य बातोंको बिलकुल स्थान नहीं देता। क्योंकि भागवतका कहना है—

न यद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो
जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित्।
तद्वायसं तीर्थमुशन्ति मानसा
न यत्र हंसा निरमन्त्युशिक्क्षयाः॥
तद्वाग्विसर्गो जनताघविप्लवो
यस्मिन् प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि।
नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि यत्
शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः॥

(भागवत १।५।१०।११)

जो वाक्य या ग्रन्थ विचित्र पदविशिष्ट होकर भी भुवनपावन भगवानकी महिमाका कीर्त्तन नहीं करता, ज्ञानीलोग उसे वायस-तीर्थ (कौएका उच्छिष्ट स्थान जहां बहुत ही गंदा रहता है) अर्थात् कौएके तुल्य कामीगणका रतिस्थान कहते हैं, उसमें सत्व गुणयुक्त मनमें स्थित रहने वाले मुनिलोगोंको कभी भी आनन्द नहीं होता, क्योंकि इनलोगोंका निवास सदा कमनीय ब्रह्मगं ही है। परन्तु जिस वाक्य या ग्रन्थमें भगवान् अनन्तदेवके महिमायुक्त नामोंका वर्णन है उसमें मामूली शब्द रहनेपर भी साधुगण उसीका श्रवण, कीर्त्तन तथा गान करते हैं क्योंकि वह शब्द जगत्के पापोंका विनाश करता है। भागवतमें कर्म, ज्ञान, योग तथा अन्यान्य साधारण धर्मका विचार नहीं किया जाता है। अन्याभिलाषीलोगोंकी कोई प्रिय बातें भी इसमें नहीं प्रकाशित की जाती। किन्तु भागवत-धर्मके मूल पुरुष भगवान् श्रीकृष्णचैतन्य तथा उनके प्रधान पार्षद श्रीरूपगोस्वामी के प्रचारमें यही सिद्धान्त है—

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥

भागवत उसी शुद्ध भक्ति धर्मका प्रचारक है, जिस धर्ममें भगवत्सेवाके अतिरिक्त दूसरी अभि-

लापा नहीं है, और जो ज्ञान, कर्म तथा [illegible] साधनोंके द्वारा आवृत्त नहीं है । पर जिन जिन कामोंसे भगवानके चिन्तन-मनन होते हैं, उन्हीं कामोंको भक्तिके अनुकूल भावसे करनेका [illegible] उपदेश करता है ।

"सत्यं परं धीमहि" अर्थात इसी परम [illegible] भगवानका ही हमलोग ध्यान करते हैं । यही भागवतका मूलमंत्र है । भागवत और [illegible] बारंबारकी बाते नहीं उच्चारण करता । [illegible] कृष्णचन्द्र ही एकमात्र [illegible] इसीलिये उन्हें केवल "सत्य" कहा [illegible] तो प्रलयमें उनका नाश ही होता है न [illegible] जन्म । परन्तु उनके श्रीमुखका [illegible]

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत् [illegible]
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥

(भागवत २।९।३२)

[illegible] भगवानने कहा है कि सृष्टिके पहिले [illegible] नहीं था; सृष्टिके उपरान्त [illegible] और अन्तमें भी मेरा अवस्थान होगा [illegible] इसी नित्यवस्तुके उपासकलोग [illegible] करते हैं । वे लोग भी नित्य [illegible]

[illegible] अन्य अभिलाषा [illegible] कोई भाव उसमें आ [illegible] भी करुणामय भगवान् [illegible] अपना आसन [illegible] है । अतएव भागवत पत्रके

चिद्विलास

([illegible])

मनुष्यमें विचार करनेकी शक्ति है । इसीलिये सांसारिक जीवोंमें उसका दर्जा सबसे [illegible] है । परन्तु उसमें एक बहुत बड़ी कमजोरी यह है कि वह प्रत्येक वस्तुको जो किसी न किसी रूपमें उसके विचारक्षेत्रमें प्रवेश करती है अपने दृष्टिकोणसे ही देखनेकी चेष्टा करता है । इस कमजोरीके कारण मनुष्यने व्यावहारिक क्षेत्रमें तो निस्संदेह अगणित भूलें की हैं, किन्तु धर्म तथा ज्ञानक्षेत्रमें भी उसकी अनेक त्रुटियोंका प्रधान कारण यही है । वह भगवानमें नरत्वका आरोप करता है, पारमार्थिक जगतको जड़जगतके देश-कालकी सीमाओंमें बांधनेकी चेष्टा करता है और भगवान् और भक्तोंके [illegible] सांसारिक तथा जड़शरीरधारी लोगोंके [illegible] समान समझता है ।

[illegible] निर्विशेषवाद और साधनमार्गमें [illegible] मूलमें हुई है । सांसारिक वस्तुओंके नाम रूप गुणादि सीमाबद्ध तथा नश्वर हैं । इसीलिये बहुतसे दार्शनिकोंका मत है कि भगवान् जो अनन्त और चिरस्थायी हैं रूप-गुणादिसे सम्पन्न नहीं हो सकते । उनके बारेमें केवल इतना ही कहा जा सकता है कि वह निर्विशेष, निर्गुण तथा निर्लेप हैं । इसीप्रकार सांसारिक-विषयभोगोंको नश्वर और दुःखप्रद देखकर बहुतसे लोग विचार करते हैं कि पारमार्थिक जगतमें विला-

सिताका कोई स्थान नहीं हो सकता। परन्तु पारमार्थिक जगत्में जिस प्रकार निर्विशेष और सविशेषमें कोई विरोध नहीं है उसी प्रकार विलास और विरागमें भी परस्पर विरोध नहीं है। भगवान् अनन्त और अखण्ड होते हुए भी निर्विशेष हैं। और किसी प्रकारके विषयभोगकी इच्छा न रखते हुए भी अपने नित्य पार्षदोंके साथ लीला विलासमें सदा लिप्त रहते हैं। उनकी इन्द्रियाँ बद्ध जीवोंकी भाँति नश्वर और प्राकृत नहीं हैं। वह सच्चिदानन्द विग्रह हैं—

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम्॥

और इसी कारण उनकी इन्द्रियों और क्रियाओंमें एक अद्भुत विचित्रता है

अङ्गानि यस्य सकलेन्द्रियवृत्तिमन्ति
पश्यन्ति पान्ति कलयन्ति चिरं जगन्ति।
आनन्दचिन्मयसदुज्ज्वलविग्रहस्य
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

(ब्र० सं०)

निर्विशेष ब्रह्म जिसमें चिद्विलासका कोई स्थान नहीं, केवल ज्ञानियोंकी कल्पनामात्र है। यह भगवानका कृत्रिम और असम्पूर्णरूप है। ज्ञानी तभी तक उसकी प्रशंसा किया करते हैं और उसके ध्यानमें लीन रहते हैं जब तक भगवान्‌की विलास मूर्तिके दर्शनसे वह वञ्चित रहते हैं। नारायण कविने क्या ही अच्छा कहा है—

चाहे तू योग करि भृकुटी मध्य ध्यान धरि,
चाहे नाम-रूप मिथ्या जानिकै निहारि ले।
निर्गुन, निर्भय, निराकार ज्योति व्याप रही,
ऐसो तत्त्वज्ञान निज मनमें तू धारि ले॥
नारायन अपनेको आपही बखान करि,
मोतें वह भिन्न नहीं या विधि पुकारि ले।
जौं लौं तोहि नन्दको कुमार नाहिं दृष्टि पर्यो,
तब लौं तू बैठि भले ब्रह्मको विचारि ले॥

प्राकृत जगत् अप्राकृत जगत्‌की प्रतिछबिके समान है। इसीलिये अप्राकृत जगत्में जो अत्यन्त उत्कृष्ट है वही प्राकृत जगत्में अत्यन्त निकृष्ट है। प्राकृत जगत्में विलास दुःखका कारण है परन्तु अप्राकृत जगत्में वह परमानन्दका देनेवाला है। चतुःसन और शुकदेवादि मुनिगण उच्चकोटिके वैरागी थे परन्तु वह भी चिद्विलासके सौन्दर्यमें आकर्षित हुए थे और उन्होंने शान्त रसकी अपेक्षा, जिसमें जीव मुक्त होकर निरपेक्षतापूर्वक अवस्थान करता है, दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य रसकी श्रेष्ठता स्वीकारकी थी जिनमें चिद्विलास उत्तरोत्तर पूर्णताको प्राप्त होता है।

वास्तवमें अप्राकृत जगत्में विलास और विराग परस्पर विरोधी न होकर एक दूसरेके सहयोगी हैं। माधुर्य रसमें विलास सबसे अधिक प्रस्फुटित होता है और विराग भी यहीं अपनी पराकाष्ठापर पहुँचता है। जहाँ पर समस्त क्रियाओंका एकमात्र तात्पर्य भगवानको सुख पहुँचाना है वहाँ 'विलास' और 'विराग' का पारस्परिक सहयोगी होना स्वभाविक ही है। वहाँ तो भक्त उस प्रेमानन्दका भी तिरस्कार करता है जो कृष्ण सेवानन्दमें बाधा डालता है—

"निज प्रेमानन्दे यदि कृष्ण-सेवानन्द बाधे।
से आनन्देर प्रति भक्तेर हय महाक्रोधे"॥
लोकधर्म्म, वेदधर्म्म, देहधर्म्म कर्म्म।
लज्जा, धैर्य्य, देहसुख, आत्मसुख मर्म्म॥
दुस्त्यज्य आर्य्यपथ, निज परिजन।
स्वजने करये जत ताड़नभर्त्सन॥

सर्व्व त्याग करि करे कृष्णेर भजन।
कृष्णसुख हेतु करे प्रेम सेवन ।
इहाके कहिये कृष्णे दृढ़ अनुराग।
स्वच्छधौत वस्त्रे जैछे नाहि कोन दाग ॥

गोपियोंके जितने भी काम हैं सब कृष्णके हेतु हैं। उनका तन मन, धन सब भगवान्को ही समर्पित है। अपने शरीरमें जो उनकी आसक्ति मालूम पड़ती है वह भी भगवान्के लिये ही है। कविराज गोस्वामी गोपियोंके अपनी देहकी रक्षा और शृंगारादि करनेका इस प्रकार वर्णन करते हैं—

तबे जे देखिये गोपीर निज देहे प्रीति ।
सेहो त कृष्णेर लागि जानिह निश्चित ॥
एइ देह केलूँ आमि कृष्णे समर्पण ।
तांर धन, तांर एइ सम्भोग कारन ॥
एदेह दर्शन स्पर्शे कृष्ण-सन्तोषन ।
एइ लागि करे अङ्गेर मार्ज्जन भूषन ॥

नामाचार्य्य श्रील ठाकुर हरिदास (२)

जब ठाकुर हरिदासने नवाबसे कहा कि "खण्ड खण्ड हइ देह जाय यदि प्राण। तबु आमि वदने ना छाड़ि हरिनाम" और उनको समझाया कि पिता-मातासे प्राप्त यह सम्बन्ध चिरस्थायी नहीं है। मायिक वस्तुका नाम (मनुष्यका दिया हुआ) कल्पित है। परन्तु वैकुण्ठनाम तथा भगवान् एक ही वस्तु है। अतएव नामसेवा परित्यागकर मैं स्थूल तथा सूक्ष्म शरीरसे आत्म-स्थापन नहीं कर सकता। श्रौत पथ अवलम्बनकर मैंने वैकुण्ठनाम प्राप्त किया है, उस कृष्णकीर्त्तनके अतिरिक्त मेरा और कोई कर्तव्य नहीं है। उसको छोड़कर मैं कभी भी मनुष्यकल्पित सामाजिक आचार ग्रहण नहीं करूँगा। इसके लिये समाज तथा काजी मुझे जो दण्ड दें उसे मैं सहन करूँगा।

ठाकुर-हरिदासके कहे हुए सिद्धान्तको सुनकर नवाबने काजीसे पूछा कि अब क्या करना चाहिये। तब श्रौतपन्थी वैकुण्ठ-शब्दनिष्ठ जगद्गुरु ठाकुर हरिदास तथा उनके प्रचारित सत्यका विलोप करनेके लिये श्रुतिविरोधी असुर काजी बोला कि प्यादे-लोग इसको बाइस बाजारोंमें घुमाकर बेतोंसे मारें जिसमें इसके प्राण निकल जाय, इसमें और कुछ विचार न किया जाय। यहाँ हिन्दुत्व ग्रहणकर हिन्दुओंके घृणित आचारको स्वीकारपूर्वक हिन्दुओंके देवताओंके नाम ग्रहणरूप पापका उचित दण्ड है। इतनी मार खानेपर भी यदि हरिदास जीता रहे तब वह निष्कपट तथा सत्यवादी समझा जायगा, और यदि वह मार खाते खाते मर जायगा तो उसको उपयुक्त दण्ड ही मिला। तब काजी प्यादोंको पुकारकर गरजकर बोला कि इसको बाइस बाजारोंमें घुमाकर इतनी मार मारना कि इसके प्राण निकल जाय। सत्योपासक ठाकुर-हरिदासमें जाति बुद्धिकर, उनके शरीरको नष्टकर उनको उद्धार करनेका विचार प्रकट करते हुए काजी बोला कि यवन होकर यह हिन्दुआनी करता है। अतएव प्राणान्त होनेसे यह इस पापसे छुटकारा पायगा। जो लोग यवन-धर्म छोड़कर काफिर हिन्दूका धर्म तथा आचार ग्रहण करते हैं, प्राणदण्ड ही उनकी उचित सजा है।

सत्यविरोधी काजीकी बातें मानकर नवाबकी आज्ञासे प्यादे-लोग ठाकुर-हरिदासको पकड़कर ले गये और प्रति बाजारमें घुमा घुमाकर क्रोधपूर्वक मारने लगे। जो लोग वैष्णवोंके प्रति विद्वेष करते

है, उनलोगोंका पाप परिपूर्णता प्राप्त करता है। पाखण्डी काजीके ठाकुर-हरिदासके प्रति द्रोह करनेके कारण, वह एवं नवाब तथा उनके अनुचरगण, सभी महा-पापके भागी हुए। परन्तु ठाकुर हरिदास निरन्तर "कृष्ण कृष्ण" स्मरण करते हुए नामानन्दमें मग्न थे और इसलिये शारीरिक दुःखका अनुभव नहीं करते थे। ठाकुर-हरिदासके प्रति महा अत्याचारकी बातें देख तथा सुनकर सज्जनगण अत्यन्त दुःखित हुए। उन लोगोंमेंसे किसी किसीने कहा कि वैष्णव-विरोधके कारण देशमें शीघ्र ही महा अमङ्गल होगा। वैष्णव-विद्वेषके कारण ही पृथ्वीमें दुर्भिक्ष, अनावृष्टि, महामारी, विप्लव, भूकम्प प्रभृति नाना प्रकारके क्लेश उत्पन्न होते हैं। भक्त-द्रोहके कारण किसी किसी सत्यविश्वासीके मनमें समग्र देशके नाश हो जानेकी आशङ्का होने लगी। किसी किसीने कहा कि यह राज्य शीघ्र ही उजड़ जायगा। कोई क्रोधवश राजा तथा वजीरको शाप देने लगे तथा कोई यवन लोगोंको करबद्ध कहने लगा कि इनको मत कम मारो तो मैं तुम्हें इनाम दूंगा। तोभी दुष्टलोगोंको दया नहीं आती थी और वे प्रति बाजारमें अत्यन्त क्रोधपूर्वक मारते जाते थे। परन्तु कृष्णकी अद्भुत कृपासे हरिदास ठाकुरके श्रीअंगपर इतना प्रहार पड़नेपर भी उनको प्रह्लादके सदृश लेशमात्र भी क्लेश नहीं हुआ।

हिरण्यकशिपुने जिसप्रकार अपने महाभागवत पुत्र प्रह्लादको नाना प्रकारसे कष्ट देकर वध करनेकी चेष्टाकी थी, महापापी यवनगण भी उसी प्रकार हरिदास-ठाकुरको क्लेश देकर मारनेकी चेष्टा करने लगे, किन्तु तिसपर भी उन्होंने भक्तराज प्रह्लादकी नाईं लेशमात्र भी दुःख-क्लेशका अनुभव नहीं किया। महाभागवतगणोंकी इसप्रकारकी सहिष्णुता स्वाभाविक होती है। वे भगवत्सेवामें प्रतिक्षण इसप्रकार व्यस्त तथा निरत रहते हैं कि भगवद्‌बहिर्मुख संसारके लोगोंकी हिंसा-वृत्ति उनको किसी प्रकारसे विचलित करनेमें समर्थ नहीं होती। श्रीमन्महाप्रभुने इसीलिये शिक्षाष्टकमें कहा है कि जो तृणके सदृश सहिष्णुता-गुण सम्पन्न हैं वे ही कृष्ण-कथा कीर्त्तन करनेमें समर्थ होंगे, दूसरे नहीं। यदि साधक सहिष्णुता-रहित हो, तो वे हरि-कीर्त्तन नहीं कर सकेंगे, कारण संसारमें अनेक स्थानोंमें देखा गया है कि सब प्रकारके शुभदायक सत्य कथा प्रचारक हरिकीर्त्तनकारीको ईर्षाविमुख जन अन्यायपूर्वक आक्रमण करते हैं, एवम् उनके हरिकीर्त्तन-रत-मुखको बन्द करनेके लिये नानाप्रकारसे चेष्टा करते हैं। कुल वा जातिमद धनमद तथा अपरा विद्यामदसे प्रमत्त दुर्वृत्त-समाज एक मात्र वास्तव-सत्यवस्तु हरि संकीर्त्तनको समस्तरूपसे बाधा देनेके लिये सचेष्ट यत्न करता है, यहां तक कि, कपटकर वे लोग नाममात्रके हरिसंकीर्त्तन दलमें योगदान करनेका आग्रह एवं छल करके भी सत्यवस्तु हरिनामके प्रति अत्यन्तरूपसे विरोध करते हैं।

असुरलोगोंके अत्यन्त प्रहार करनेपरभी हरिदास ठाकुरको किसीप्रकारका शारीरिक दुःख नहीं हुआ। यह बात तो दूर रहे उनकी सहिष्णुताका वृतान्त स्मरण करनेसे ही मनुष्यके सभीप्रकारके दुःख विनष्ट हो जाते हैं। वे उन पापी सत्य-विरोधी असुरलोगोंकीके कल्याणकी चिन्ता हृदयमें धारण करने लगे और अपने प्रभु श्रीकृष्णके समीप उनलोगोंके अपराधको क्षमा करनेके लिये प्रार्थना करने लगे। जोलोग भागवत-वैष्णवगणोंके विरुद्ध आचरण करते हैं, उनसब अपराधियोंके दुराचारके लिये साधुगण उनलोगोंके मङ्गल तथा, उद्धारके लिये उन-

लोगोंको अत्यन्त दयाका पात्र समझकर हृदयमें अतिशय दुःख अनुभव करते हैं। खीष्ट तथा हैजरतके चरित्रमें भी इस प्रकारका चित्र देखनेमें आता है। हरिदास-ठाकुर हृदयमें कहने लगे "हे कृष्ण इन जीवोंपर कृपा कीजिये। मुझसे द्रोह करनेके कारण इनको अपराध न हो।" भगवद्भक्तोंके प्रति विरुद्ध आचरण करनेसे भगवान भयानकरूपसे असन्तुष्ट होते हैं। महा-पापी यवनलोगोंका अपने ऊपर अत्याचार होनेके कारण भगवानकी अप्रसन्नता देखकर ठाकुर-हरिदासजीने भगवानके चरणोंमें उनलोगोंके कल्याणके लिये प्रार्थना की थी। परन्तु पापीलोग ठाकुर-हरिदासको प्रति बाजारमें घुमाते हुए उनपर प्रहार करते जाते थे और उनके प्राण लेनेके लिये यथेष्ट चेष्टा करते थे। किन्तु ऐसा करनेपर भी जब उनके प्राण नहीं निकले तथा उस प्रहारकी स्मृति भी उनको नहीं हुई तब यवनलोग सोचने लगे कि इतनी मार खानेपर क्या मनुष्यके प्राण रह सकते हैं ? दो तीन बाजारमें मारनेसे ही तो आदमी मर जाता है परन्तु बाइस बाजारोंमें मारनेपर भी यह मृत्युको प्राप्त नहीं हुआ बल्कि कभी कभी हँसता भी है! यह मनुष्य क्या पीर है ?—ऐसा सब मन ही मन सोचने लगे कि साधारण बद्धजीवगण बाहरी संसारके चिन्ता-स्रोतमें बिल्कुल ही विमूढ होकर अपने अपने चञ्चल मनको ही व्यवहारिक कार्योंका परिचालक समझते हैं। किन्तु भगवद्भक्तगण हरिसेवामें निरन्तर व्यस्त रहकर बाहरी विषयोंका भोग करनेके लिये कभी अपनेको नियुक्त नहीं करते। संसारी जड़-वस्तु या किसी घटनाके विषयमें उन्हें बाहरी-देह तथा भीतरी-मनकी स्मृति किसी प्रकार नहीं रहती—सम्पूर्णरूपसे देहात्मबोध-विस्मृति हो जाती है- उनकी कृष्ण नाममें प्रीति, जड़ वस्तुमें उदासीनता तथा निर्दोष-आनन्दमय अवस्था बनी रहती है।

तब उग्र-प्रहारकारी यवन-भृत्यगण हरिदास-ठाकुरसे कहने लगे कि इतना प्रहार करनेपर भी तुम्हारा प्राण नहीं निकला इसलिये मालूम पड़ता है कि तुमको लेकर हमलोगोंका सर्वनाश होगा। प्रहारकर यदि तुम्हारा प्राण हमलोग नहीं ले सकें तो काजी क्रोधके वश हमलोगों को मरवा डालेगा। तब हरिदास ठाकुरने कहा कि तुमलोगोंके द्वारा अत्यन्त प्रहृत होकर भी यदि मेरे प्रकट अवस्थामें तुमलोगोंको किसी प्रकार का अनिष्ट हो तो तुमलोगोंके उस अमङ्गलके विनाशके लिये तथा तुम्हारे मङ्गलके लिये मैं इसी समय देह त्याग कर सकता हूँ—ऐसा कहकर वे शुद्धसत्व-हृदयमें चिन्मय भगवद्ध्यानमें मग्न होकर शुद्ध समाधि-अवस्थामें मृतवत हो गये। भगवद्भाव समाधिके कारण प्रभु हरिदास चेष्टारहित होगये और अब उनका निःश्वास-प्रश्वास बन्द हो गया ऐसा देखकर यवनगण विस्मित हो गये और उनको उठाकर नवाबके द्वार पर ले गये। तब सत्य-विरोधी नवाब तथा काजी समाधियोगाश्रित जगद्गुरुको शव समझकर अपने अपने चित्तवृत्तिके अनुसार यो व्यवस्था करने लगे:

नवाबने कहा कि इसको ले जाकर मिट्टी दो परन्तु काजीने इस बातको स्वीकार नहीं किया और उन्होंने कहा कि ऐसा करनेसे इसको सद्गति हो जायगी। वह घोर पाखण्डको प्रकट करते हुए कहने लगा कि हरिदासने अति-श्रेष्ठ यवनकुलमें जन्म ग्रहण करके भी नीच कर्म किया अर्थात हिन्दुओंके देवताका नाम ग्रहण किया अतएव इसको मिट्टीमें न गाड़कर गङ्गाजीमें फेंक दो जिसमें इसको सद्गति न हो और यह अनादि-काल तक दुःख भोगता रहे। तब काजीके आज्ञानु-

सार यवनलोग ठाकुर-हरिदासको उठाने लगे परन्तु वे ध्यानानन्दमें निश्चल हो गये और साक्षात विश्वम्भर उनके शरीरमें प्रकाशित हुए। उनको हटानेके लिये बहुतसे बलवान-यवन चेष्टा करने लगे परन्तु प्रभु महास्तम्भके सदृश निश्चल थे। कृष्णानन्दसुधासिन्धुमें मग्न रहनेके कारण ठाकुरका बाह्य प्रकाश नहीं था। वे कब अन्तरीक्षमें, कब पृथ्वीपर तथा कब गङ्गामें थे इस बातकी स्मृति उन्हें नहीं थी। प्रह्लादको जिस प्रकार भगवान् वासुदेवके प्रति स्वाभाविक रति थी, बाल्यावस्थामें अनित्य क्रीड़ादि परित्याग करके जिस प्रकार भगवान श्रीकृष्णके निरन्तर ऐकान्तिक-स्मरणके प्रभावसे कृष्णकी सेवायुक्त चित्त तथा कृष्णाक्रान्त-हृदय होकर वह सम्पूर्णरूपसे संसारी विषय ज्ञान-शून्य थे, जिसप्रकार गोविन्द-परिरम्भित होकर वह उपवेशन, पर्यटन, भोजन, शयन,पान तथा वाक्य-उच्चारण करके भी इन सकल चेष्टाओंका अनुसन्धान नहीं करते थे-- केवल अभ्यासवश ही सम्पादन करते थे—उसीप्रकारकी रति ठाकुर-हरिदासकी भगवानके चरणारविन्दमें थी। जिन ठाकुर-हरिदासके हृदयमें भगवान गौराङ्गदेव प्रत्यक्षरूपसे निरन्तर निवास करते थे उनको बाहरमें क्या हो रहा है इस बातकी सुधि नहीं थी। लङ्का विजय करनेके समय भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके नित्यसिद्ध पार्षद हनुमानजीने जिस प्रकार राक्षसराज रावणके पुत्र इन्द्रजीतके छोड़े हुए ब्रह्मास्त्रके बन्धनमें पड़कर ब्रह्मास्त्रके सम्मानकी रक्षाकी थी, उसीप्रकार ठाकुर-हरिदासने भी समस्त जगत्के समक्ष सर्वोत्तम सहिष्णुताका आदर्श उपस्थित करनेके लिये यवनोंके भीषण निष्ठुर प्रहारको स्वीकार किया था। ठाकुरने अपने आचारणद्वारा संसारके लोगोंको उपदेश दिया है कि हरिनाम ग्रहण करनेमें चिरकाल दुर्गति हो तथा प्राण भी निकल जाय तौभी भगवद्भजन नहीं छोड़ना चाहिये। कृष्णानन्दमें मग्न ठाकुर-हरिदासको गङ्गामें फेंककर जब यवनलोग चले गये तब वे बहकर ईश्वर-इच्छासे कुछ देरमें किनारे लगकर परमानन्दमें मग्न होकर उठे और उच्च स्वरसे कृष्ण नाम ग्रहण करते हुए फुलिया नगरमें पहुँचे। उनकी अद्भुत शक्तिको देखकर यवन लोगोंकी उनके प्रति हिंसावृत्ति विनष्ट हो गई और उनलोगोंका मन निर्मल हो गया। सबोंने उनको पीर समझकर नमस्कार किया और पापोंसे निस्तार पा गये। तब नवाबने सम्भ्रमके साथ हाथ जोड़कर कहा कि मुझे अब ठीक मालूम पड़ता है कि आप बहुत बड़े पीर हैं। साधारण योगी वा ज्ञानी अपने बड़प्पनको दिखलानेके लिये अद्वय-ज्ञानकी (भगवत्-ज्ञानकी) बातें बोल सकता है परन्तु वास्तवमें आप ही सिद्ध महापुरुष हैं। तब नवाबने अपने किये अपराधको क्षमा करनेके लिये प्रार्थना की, और कहा कि आप समदर्शी एवं शत्रु-मित्र रहित हैं। इन तीनों भुवनोंमें ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जो आपको पहचान सके। संसारके लोग इन्द्रियज-ज्ञान द्वारा महा भागवत परमहंस-वैष्णवको नहीं पहचान सकते। अब आप निज इच्छानुसार गङ्गा-तटपर निर्जन गुफामें बैठकर भजन कीजिये अथवा विचरणकर संसारके लोगोंका मंगल कीजिये—जैसी इच्छा हो वैसाही कीजिये। यवनगण साधारणतः भगवद्भक्ति रहित होते हैं। अन्याभिलाषी, कर्मी तथा ज्ञानी प्रभृति अभक्त सम्प्रदायगण महाभागवत श्रेष्ठ ठाकुर-हरिदासके औदार्य एवं माहात्म्यके दर्शनकरनेसे उनको अपने-अपने-विषयोंकी उपलब्धि होनेसे छुटकारा मिलती है। नितान्त ईश-विमुख

पापिष्ट जीवगण भी उनका दर्शनकर अपनी भक्ति-विरोधी-चेष्टाओं भूलकर मुग्ध हो गये थे । अहो, महाभागवत परमहंस वैष्णव-शिरोमणिकी कैसी अलौकिक महिमा है! ठाकुर-हरिदाससे विरोध करनेवाले जिस नवाबने पहले भीषण क्रोधवश ठाकुरको अति कठिन दण्ड देनेके लिये अपने समीप पकड़वाकर मंगाया था उसी विष्णु-वैष्णव विरोधी महा-पापी व्यक्तिने कैसे अन्तमें ठाकुरकी अलौकिक क्षमा तथा सहिष्णुताका ज्वलन्त आदर्श देखकर अतिशय विस्मित तथा मुग्ध होकर उनको ईश्वर-प्रेरित अतिमर्त्य (मृत्युसे अतीत) महापुरुष समझकर पूज्य समझा! इतना ही नहीं, वह पाखण्डी महापराधी अनुतापरूपी अग्निमें दग्ध होकर अपने अपराधको क्षमा करानेके लिये प्रार्थनाकर ठाकुरके चरण-कमलकी वन्दना करनेके लिये भी बाध्य हुआ।

फुलियाके काजीके अत्याचार तथा नवाबकी यन्त्रणासे छुटकारा पाकर ठाकुर-हरिदास फुलिया-ग्रामनिवासी ब्राह्मणोंके नित्य-कल्याण साधनके लिये उच्च स्वरसे हरिनाम करते ब्राह्मणोंके समीप उपस्थित हुए। सङ्कीर्ण-साम्प्रदायिकता तथा सामाजिक भक्ति विद्वेषवश किसी किसी ब्राह्मणपद-वाच्य पुरुषने हरिदास-ठाकुरको पहले नामदाता श्रीगुरुदेव स्वीकारकरनेके लिये रुचि प्रदर्शित नहीं की थी। परन्तु अब उनकी अलौकिक, अमित शक्तिकी बात सुनकर अत्यन्त मर्यादा-सम्पन्न ब्राह्मणोंने भी उनको भगवत् अभिन्न-नामदाता स्वीकार किया एवं महा आनन्द-के साथ उनका आदर करने लगे। महाभागवत ठाकुर-हरिदासके संगमें ब्राह्मणगण हरिध्वनि करने लगे और ठाकुर आनन्दसे नाचने लगे। उससमय ठाकुरको अद्भुत अष्टसात्विक भाव-विकार होकर अश्रु, कम्प, हास्य, मूर्च्छा, पुलक तथा हुङ्कारादि होने लगा। ठाकुर प्रेमरसमें लोटने लगे जिसको देखकर ब्राह्मणगण आनन्दसागरमें गोते खाने लगे। कुछ देरके उपरान्त हरिदास-ठाकुर स्थिर होकर बैठे और विप्रगण उनको चारों ओरसे घेरकर बैठ गये। तब विप्रगणसे अपने द्रोहकी बात सुनकर तथा उनको दुःखित देखकर उनको समझाते हुए ठाकुरने सामान्यजीवके सदृश दीनताके साथ कहा कि आप लोग मेरे लिये चिन्ता मत कीजिये। चूंकि मैंने पूर्व जन्मके कर्म-दोषसे भगवद्-विमुखताके कारण भगवद्-विरोधमयी कथा सुनी और उसका यथोचित प्रतीकार नहीं किया, इसलिये भगवानने मुझे ऐसा दण्ड दिया।

जो भक्त तथा भगवानके प्रति विद्वेषकी बात सुनकर अपनेको सहिष्णु दिखलानेके लिये उसका प्रतीकार करनेके विचारसे प्रयत्न नहीं करते उनको भगवान् कठोर दण्ड देते हैं। विषयासक्त सम्प्रदाय-के लोग हरि-गुरुवैष्णवकी निन्दाकी बात सुनकर भी अपनी घृणित नीच कपटताको वैष्णवाचार कह-कर समर्थन करते हैं, इसलिये उनकी भीषण दुर्दशा होती है। ठाकुर-हरिदास वास्तवमें सहिष्णुता-धर्मके सर्वोत्तम आदर्श थे, परन्तु कपटी विषयासक्त सम्प्रदायके लोग (अर्थात् अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्षकामी) ठाकुर-हरिदासके सहिष्णुता-धर्मका कृत्रिम अनुकरणकर नानाप्रकारके क्लेशको प्राप्त होते हैं। महाभागवत-परमहंस-वैष्णव स्वयं निन्दादि रहित हृदयसे भगवद्-विमुखतासे उत्पन्न दूसरेकी निन्दा-प्रशंसा-प्रजल्प-चर्चा जड़ बहिर्दर्शन नहीं करते किन्तु विषयासक्त लोगोंको उस प्रकारकी उच्च अवस्था प्राप्त नहीं होनेके कारण उनके लिये श्रेष्ठ-भक्तका अनुकरण करनेकी चेष्टा घृणित कपटमात्र है; इसलिये उनको अवश्यही दुःख भोगना पड़ता है।

यही बात कपटी-विषयासक्त-वैष्णव-सम्प्रदायके लोगोंको समझानेके लिये ठाकुर-हरिदासने साधारण लोगोंके सदृश कर्म-फल भोगकी बात कही। विषयासक्त-जीवको कर्मफल भोगना पड़ता है, किन्तु हरिनाम उच्चारण करनेवाले मुक्तकुलशिरोमणि हरिदास-ठाकुर कर्म-फलाधीन नहीं थे। इस सम्बन्धमें श्रीरूपगोस्वामी प्रभुजीने भी कहा है कि ब्रह्मसाक्षात्कार-निष्ठाद्वारा भी भोगके अतिरिक्तप्रारब्धकर्म नाश नहीं होता है, किन्तु हे नाथ, जिह्वापर तुम्हारेनामकी स्फूर्तिमात्रसे ही (नामाभाससे ही) वह प्रारब्धकर्म समूल नष्ट हो जाता है।

विष्णुवैष्णवकी निन्दा सुनकर जो मूढव्यक्ति 'तरोरपि सहिष्णु', श्लोकके वास्तव तात्पर्यके विरुद्ध कृत्रिम सहिष्णुताके बहाने अपनेको उदार-चरित्र-प्रदर्शित करता है उसको उसके महा अपराध-का फल समझना चाहिये। इसीलिये जगद्गुरु ठाकुर-हरिदास कपट- दैन्य अभिनयकारी-विषयासक्त मूर्ख-जीवोंके कल्याणके लिये दीनता पूर्वक कहने लगे कि मैंने प्रभुकी बहुत निन्दा सुनी थी इसलिये ईश्वरने मुझे ऐसा दण्ड देकर मेरी बहुत भलाई की और थोड़ीसी ही सजा देकर मेरे बहुत बड़े दोषको क्षमाकर दिया। विष्णु-निन्दा सुननेसे कुम्भीपाक नरकमें जाना पड़ता है—ऐसा मैंने अपने कानों द्वारा सुना है। ऐसा महापराध मैं फिर न करूँ—इसीलिये प्रभुकी कृपासे यवनद्वारा ऐसी व्यवस्था हुई थी। स्वयं पुण्य-पापातीत महाभाग-वत होकर भी ठाकुरने अपनेको यम-दण्ड्य बद्ध-जीव सदृश मानकर लोकशिक्षाके लिये दीनता-पूर्वक ब्राह्मणोंको विष्णुनिन्दा श्रवण करनेसे सतर्क कर दिया। इसप्रकार ठाकुर-हरिदास विप्रगणके सहित महाआनन्दसे संकीर्त्तन करने लगे। उनको जिन यवनलोगोंने दुःख दिया था वे वैष्णवाचार्य द्रोहरूपी महापराधके फलसे कुछ दिनोंमें सवंश नष्ट हो गये। तदुपरान्त ठाकुर-हरिदास गङ्गा-किनारे गुफा निर्माणकर एकान्तमें रात दिन कृष्ण-स्मरण करने लगे। वहांपर वे तीन-लक्षनाम ग्रहण करते थे और वह गुफा वैकुण्ठके सदृश हो गया था। परन्तु उसगुफाके भीतर एक महानाग वास करता था जिसकी ज्वालाको कोई प्राणी नहीं सह सकता था। हरिदास-ठाकुरके दर्शनके लिये जोलोग वहां आते थे उस सर्पकी ज्वालाके प्रभावसे वे शीघ्रही वहांसे चले जाते थे। परन्तु नामग्रहणमें रत ठाकुरको इस बातकी कुछ भी अनु-भूति नहीं थी। तब विप्रगण गुफासे कुछ दूर बैठ-कर विचार करने लगे कि ठाकुरकी गुफामें इतनी ज्वाला क्यों है, परन्तु कुछ निश्चय नहीं कर सके। जब इसबातकी खबर चारों ओर फैल गई तब वहांपर ग्रामनिवासी एक वैद्य आया और बोला कि इस गुफाके भीतर एक महानाग रहता है जिसकी ज्वालासे यहां पर कोई ठहर नहीं सकता। इसलिये ठाकुर यहांसे शीघ्र ही दूसरे स्थानमें चले जायँ। सर्पका सङ्ग त्यागकरना चाहिये ऐसा विचारकर सबोंने सर्पका वृतान्त ठाकुरसे कहा और उस भजनस्थानको छोड़ देनेके लिये अनुरोध किया। उन-लोगोंके प्रस्तावको सुनकर ठाकुरने कहा कि इस गुफेमें मैं बहुत दिनोंसे अवस्थान करता हूँ परन्तु मैंने किसीप्रकारका विष वा ज्वाला अनुभव नहीं की। परन्तु जब आपलोग मेरे लिये व्यस्त हैं, तब आप-लोगोंके सन्तोषके लिये मैं अन्यत्र चला जाउँगा। यदि वास्तवमें यहांपर नागराज हो और यदि वे इस स्थानको कल न छोड़ेंगे तो मैं कल यहांसे

किसी दूसरे स्थानको प्रस्थान करूँगा। आपलोग अब चिन्तारहित हो कृष्ण-गुण-गान कीजिये। ठाकुरके आदेशानुसार कृष्ण संकीर्त्तन होते समय वहांपर एक अद्भुत घटना हुई। महाभागवत ठाकुर-हरिदासके स्थान-त्याग करनेके सङ्कल्पको सुनकर महानाग सन्ध्या समय उनकी भजनकुटीके गढ़ेसे निकलकर सबोंके सामनेही अन्य स्थानको चले। वे अद्भुत नागराज महाभयङ्कर तथा पीत-नील एवं शुक्लवर्णके परम सुन्दर थे। उनके मस्तकपरसे एक प्रखर मणिका तेज निकल रहा था जिसको देखकर विप्रलोग भयसे "कृष्ण कृष्ण" कहने लगे। सर्पके चले जानेके उपरान्त वहांपर और ज्वाला नहीं रही जिससे विप्रगण अत्यन्त आनन्दित हुए। हरिदास-ठाकुरकी महाशक्तिको देखकर विप्रलोगोंको उनमें विशेष भक्ति उत्पन्न हुई। हरिदास-ठाकुरका ऐसा प्रभाव है कि जिनके वचन सुनकर नागराज उनकी भजन-कुटि छोड़कर चले गये, जिनकी दृष्टि पड़नेसे अविद्या-बन्धन छूट जाता है, तथा कृष्ण भी जिनका वचनका उल्लङ्घन नहीं करते।

(क्रमशः)

श्रीसरस्वती-पूजा

आज श्रीसरस्वती पूजाका दिन है। परा विद्याके उपासकगण आज संकीर्त्तनके साथ श्रीश्रीविष्णुप्रियादेवीकी पूजामें नियुक्त हैं; और अपरा विद्याके उपासकगण अपनी अपनी कामनाकी पूर्तिके लिये अपरा विद्याकी अधीश्वरी श्रीसरस्वतीकी पूजामें लगे हैं। अपरा विद्याके उपासकगण वाणीपूजा किसको कहते हैं नहीं जानते, इसीलिये वे लोग आज छाया (प्रतिविम्ब) सरस्वतीके निकट सकाम प्रार्थना कर रहे हैं। परा विद्याकी आलोचना करने वालोंको इस प्रकारकी अज्ञता नहीं रहती, इसलिये वे लोग कामना-वासनाको छोड़कर संकीर्त्तन यज्ञमें कृष्णकी आराधनामें तत्पर रहते हैं।

बद्ध तथा मुक्त दोनों ही सरस्वतीकी पूजा करते हैं। हमलोग बद्धजीव अर्थ वा प्रतिष्ठा देनेवाली विद्याकी इच्छासे सरस्वती-पूजा करते हैं। श्रीजीवगोस्वामी प्रभुने लिखा है कि प्राकृतजन-पूजिता सरस्वतीदेवी सङ्कीर्ण शास्त्रादिके प्रतिपाद्य देवता हैं। सरस्वती—वाक्यकी अधिष्ठात्री देवी हैं। इनको विद्या वा ज्ञानकी अधिष्ठात्री देवता भी कहते हैं। इस जड़ जगतमें मायादेवी दुर्गा नामसे परिचित हैं, उनके आवरणोंमें सरस्वती देवी पड़े जाती हैं. और ऐकान्तिक भक्तगण सरस्वती देवीको भगवच्छक्ति रूपमें पूजा करते हैं। तब प्रश्न हो सकता है कि बद्ध तथा मुक्त दोनों प्रकारके जीवोंके उपास्य देवता सरस्वती एक हैं अथवा पृथक्। मायामुक्त तथा मायाबद्ध जीवोंकी उपास्य सरस्वती एक नहीं हैं। एक स्वरूपशक्ति अर्थात् अन्तरङ्गशक्तिकी वृत्ति है और दूसरी मायाशक्ति वा बहिरङ्गशक्तिकी वृत्ति है। एक कृष्ण-कृपारूपिणी, कृष्णकीर्त्तन-सरस्वती वा वैकुण्ठ-सरस्वती और दूसरी विमुख-विमोहिनी कृष्णेतर रागविलासिनी (मायिक वस्तुमें आनन्द देने वाली) हैं। दोनों सरस्वतीके जीवन कृष्ण हैं। माया-शक्ति एवं चिच्छक्ति शक्तिविचारसे अभिन्न होनेपर भी वस्तु तथा वस्तुकी छाया जिसप्रकार पृथक् रहती हैं, उसी प्रकार छायासरस्वती तथा वैकुण्ठ-सरस्वती परस्पर भिन्न हैं। मायाशक्ति शक्तिमान् भगवान्की शक्ति होनेपर भी दुष्टा पत्नी जिसप्रकार

स्वामीके समीप जानेमें लज्जा बोध करती है उसी प्रकार मायाशक्ति "विलज्जमानया यस्य स्थातुमीक्षापथेऽमुया" इस भागवत-वचनानुसार भगवानके सम्मुख नहीं जा सकती, और चिच्छक्ति भगवानके निकट निरन्तर अवस्थान करके उनका सेवासुख प्राप्त करती हैं।

हमलोग छायासरस्वतीके सेवक हैं। सरस्वती उपासकगणोंके बीच प्रसिद्ध कवि कालिदास तथा केशवकाश्मीरी नामक विख्यात दिग्विजयी पण्डितका नाम सुनते हैं। परा विद्यास्वरूपिणी श्रीसरस्वती श्रीगौरहरि जिस समय नवद्वीपमें अवतीर्ण हुए थे उस समय सरस्वतीके श्रेष्ठ पुत्रगणोंकी समस्त जड़ पाण्डित्य-प्रतिभा कुंठित हो गयी थी। महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्यके निकट पराजित दिग्विजयी केशवकाश्मीरीको सरस्वतीने ऐसा आदेश किया था—

"हे विप्र! सुनो मैं तुमसे अत्यन्त गोपनीय कथा कहती हूँ जो वेदके लिये भी अगोचर है। यदि तुम यह रहस्य किसी दूसरेको बताओगे तो शीघ्रही तुम्हारी आयु क्षीण हो जायगी और तुम मृत्युको प्राप्त होगे। जिनसे तुम्हारी पराजय हुई है वे अवश्य ही अनन्त ब्रह्माण्डके प्रभु हैं मैं उनके चरणकमलकी नित्य दासी हूँ और जड़-सरस्वती (अपरा विद्या) होनेके कारण उनके सम्मुख जानेसे लज्जित होती हूँ।"

कीर्त्तनमुख भक्तिका दूसरा नाम शुद्धसरस्वती है। वे कृष्णके अत्यन्त प्रिय हैं। वे शुद्ध भक्तगणोंकी जिह्वापर अवस्थानकर निरन्तर भगवत्सेवामें निरत रहती है। शुद्ध भक्तगण श्रवण-कीर्त्तनद्वारा इस सरस्वतीकी नित्य पूजा करते हैं। श्रीयुक्त जयदेव सरस्वती इसी शुद्धसरस्वतीके एक प्रधान पूजक थे। सेवोन्मुख भक्तोंकी जिह्वापर जिस शुद्धसरस्वतीको स्फूर्ति होती है, भाग्यवान् जीवगण श्रवणद्वारा उनकी सेवा करते हैं। शुद्धसरस्वती देवी भी भाग्यवान जीवोंके कर्णरन्ध्र द्वारा हृदयमें प्रवेशकर उनके हृदयको निर्मल तथा अपने पति श्रीहरिके अवस्थानके योग्य बनाकर उस भाग्यवान् भक्तकी जिह्वापर नृत्य (नाच) करते करते अपने स्वामीको प्रसन्न करती है। जो वाणी कृष्णको प्रसन्न नहीं करके जीवोंको प्रसन्न करती है उसी वाणीको जड़ वा छाया सरस्वती कहते हैं। इसी छाया सरस्वतीकी पूजामें जगतके लोग नियुक्त हैं। इसीलिये वे कृष्ण-बहिर्मुख होकर नाना प्रकारके दुःख तथा क्लेश सहन करते हैं, और परा सरस्वतीके उपासक कृष्णोन्मुख रहकर निरन्तर कृष्णसेवाके आनन्दमें मग्न हो जाते हैं। भक्तकी उपास्य शुद्ध-सरस्वती तथा अभक्त पूजित सरस्वतीमें क्या भेद है इसको किसी महाजनने इस प्रकार वर्णन किया है:-

मनरे, केन कर विद्यार गौरव?
स्मृतिशास्त्र व्याकरण, नाना भाषा आलोचन,
वृद्धि करे यशेर सौरभ॥
किन्तु देख चिन्ता करि' यदि ना भजिले हरि,
विद्या तव केवल रौरव।
कृष्ण प्रति अनुरक्ति, सेइ वीजे जन्मे भक्ति,
विद्या ह'ते ताहा असम्भव॥
विद्यार मार्ज्जना ता'र, कभु कभु अपकार,
जगतेते करि अनुभव।
जे विद्यार आलोचने, कृष्णरति स्फुरे मने,
ताहारी आदर जान सब॥
भक्ति वाधा याहा ह'ते से विद्यार मस्तकेते,
पादाघात कर अकैतव।
सरस्वती कृष्णप्रिया कृष्णभक्ति ता'र हिया
विनोदेर सेइ से वैभव॥

भक्तगण मायाशक्तिकी आधीनता परित्यागकर चिच्छक्तिके आनुगत्यमें रहते हैं इसलिये वे ही वास्तव में सरस्वतीपूजाके अधिकारी हैं। वे लोग सरस्वती को अपनी सेवामें नियुक्त न कर उनके द्वारा विद्या-वधूजीवन श्रीकृष्णकी ही सेवा करते हैं, जिसमें शुद्धसरस्वतीको सन्तोष होता है। किन्तु, हरि-विमुखजन पूजनीय सरस्वतीके प्रति उदासीन रहकर अपने लाभ, पूजा और प्रतिष्ठादिके लिये जिस सरस्वतीकी पूजा करते है उसमें उनकी हरि-विमुखता दिन-पर-दिन बढ़ती ही जाती है और वे परा विद्यारूपी वाणीपूजामें वञ्चित रहते हैं।

अपनी इन्द्रियोंकी प्रसन्नताका दूसरा नाम काम है—जिसको हरिविमुखता वा नास्तिकता भी कहते हैं। इस प्रकारकी नास्तिकता कभी प्रच्छन्न तथा कभी स्पष्टरूपसे देखनेमें आती है। इसीलिये वे लोग नानाप्रकारसे भोग प्रदाता देवताओंकी आराधनामें व्यस्त रहते हैं। देवता यदि सेव्य हों तो उनसे धन, जन विद्यादि अदा करनेके लिये इतनी चेष्टा क्यों की जाती है? वे क्या हमलोगोंके दास हैं कि हमलोगोंको तावेदारी करेंगे--हमलोगोंकी इन्द्रिय-तृप्तिकी वस्तु पहुँचा देंगे? इसीलिये कहा जाता है कि यह देवतापूजा है, या देवतासे अपने लिये पूजा अदा करानेकी चेष्टा है।

हमलोग अपनी अपनी विद्याकी पारदर्शिता (निपुणता) के लिये सरस्वतीकी पूजा करते हैं। हमलोगोंका प्रयोजन—कनक, कामिनी तथा जड़-प्रतिष्ठा है। इसीको आत्मेन्द्रियतर्पण वा काम भी कहते है। इस देशके बहुतसे स्थानोंमें तथा विद्यालयोंमें सरस्वतीपूजा एक प्रधान उत्सव हो गया है। परन्तु शुद्धभक्त लाभ-पूजा-प्रतिष्ठादिके लिये सरस्वतीकी पूजा करके वणिक्-वृत्ति अवलम्बन नहीं करते। वे लोग परा विद्यारूपिणी सरस्वती-देवीकी अनुचरण श्रवण-कीर्त्तनद्वारा पूजा करते रहते हैं। इसीलिये कहा जाता है कि भगवद्भक्त ही श्रेष्ठ सरस्वती-पूजक हैं।

ॐ विष्णुपाद त्रिदण्डिस्वामी अष्टोत्तर शत श्री

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादके

पंचषष्टितम आविर्भाव-तिथिपूजाके उपलक्षमें

कुसुमाञ्जलि

परम दयालु **श्रीगुरुदेव** !

आज व्यासपूजाके दिवस आपके श्रीचरणोंमें कुसुमाञ्जलि समर्पित करते हुए हमारे हृदयमें स्वाभाविक रीतिसे यह प्रश्न उठता है कि क्या वास्तवमें आपकी असीम और अनुपम कृपाकी अनुभूति करते हुए हम इस कुसुमाञ्जलि द्वारा आपके प्रति प्रकृतरूपसे अपनी कृतज्ञता प्रकट कर रहे हैं? क्या यह कुसुमाञ्जलि उन्हीं सुन्दर और सुगंधित पुष्पों द्वारा तैयारकी हुई है जो आपकी अहैतुकी कृपाकी वास्तविक अनुभूतिके सलिलसे नित्य प्रति सींचे हुए हृदय-उद्यानसे चुन कर लाये गये हैं, अथवा उन कृत्रिम फूलों द्वारा बनी है जो दिखावटी भावस्रोतके रङ्ग-बिरङ्गे कपड़ोंको गूंथ-कर बनाये जाते हैं। गुरुदेव! हमारी बुद्धि अहङ्कार-

रूपी मदिरासे दूषित है और इस प्रश्नका ठीक ठीक उत्तर देनेका हमें साहस नहीं होता; परन्तु हमें इस बातकी शङ्का है कि कदाचित् कुसुमाञ्जलि समर्पित करने का यह सब हमारा ढोंग मात्र है। यदि ऐसा नहीं तो आज हमारा हृदय आपकी असीम कृपाकी उपलब्धिकर आपके चरण कमलोंमें कृतज्ञता और प्रेमके भावसे व्याकुल होकर क्यों नहीं लोटने लगता ? क्यों नहीं प्रेमाश्रुओंसे हमारा शरीर सराबोर हो जाता और अपने भावोंको प्रकट करनेकी व्यर्थ चेष्टामें कंठ रूंधने लगता ?

आपकी करुणाका सागर कैसा अपार है, दयानिधे. इसका तनिक भी ज्ञान यदि हमें होता तो हम आपके प्रेममें अवश्य विभोर हो जाते और दीवाने होकर नित्य प्रति आपकी दयाके गीत गाया करते। हमारे जैसे जीवोंको संसार बन्धनसे मुक्त कर भगवत् सेवामें नियुक्त करनेके लिये कितनी तन मनसे आपने चेष्टा की है, साधनके कैसे कैसे नूतन और आधुनिक परिस्थितियोंके अनुकूल उपायोंका आविष्कार कर सभी श्रेणीके मनुष्योंको भगवत्सेवामें जीवन व्यतीत करनेका सुअवसर दिया है।

किस प्रकार देश-विदेशमें नाना भक्तिमठरूपी पारमार्थिक अस्पताल स्थापित कर नित्यकाल मायारोग-ग्रसित तथा त्रितापसे पीड़ित जीवोंकी चिकित्साका सुन्दर प्रबन्ध किया है और मोह तथा अज्ञानकी नींदमें पड़े चिरकालसे सोते हुए जीवोंको 'गौड़ीय', 'नदिया-प्रकाश', 'भागवत' इत्यादि पारमार्थिक पत्र रूपी दूतोंको भेज कर जगाते रहनेके लिये कैसी सुन्दर व्यवस्थाकी है। सुयोग्य शिष्योंमें अपनी अलौकिक शक्तिका संचारकर उनके द्वारा पृथ्वीके विचित्र स्थानोंमें शुद्ध भक्तिका प्रचार करवाया है।

किस प्रकार साधन मार्गमें अनेक पथभ्रान्त करनेवाले मत-मतान्तरोंको अपनी शास्त्रसम्बन्धी युक्तियोंसे खंड खंड कर आपने हमारा मार्ग विघ्नरहित कर दिया है।

कहां तक हम आपकी करुणाका वर्णन कर सकते हैं। गुरुदेव, आपने तो पतितसे भी पतित, दुष्टसे भी दुष्ट और भक्तिकी आड़में नाना प्रकारके भोग और विषयोंमें लिप्त घोर अपराध करने वाले व्यक्तियोंको भी अपनी शरणमें आकर्षित कर अपना कल्याण करनेका भरपूर अवसर दिया है। और, यद्यपि इस समय आप हमारे जड़ नेत्रोंसे ओझल हो गये हैं, तथापि आपकी इस अनुपम दयाका स्रोत अब भी साक्षात्‌रूपसे प्रवाहित होता हुआ दीखता है। आज वही करुणा स्रोत आपसे नित्यकाल अभिन्न और आपकी सम्पूर्ण पारमार्थिक सम्पत्तिके एकमात्र उत्तराधिकारी आचार्यवर ॐ विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद्‌अनन्त वासुदेव परविद्याभूषण गोस्वामी प्रभुके श्रीचरणोंसे प्रवाहित हो रहा है।

आपके इस अपार करुणासागरके एक विन्दुकी भी यदि हमें वास्तविक उपलब्धि होती तो हम आज कृतकृत्य हो जाते। आपका करुणा-सागर जितना अपार है उतना ही हमारे निकट यह शोक और लज्जाका विषय है कि आपके श्रीचरणोंमें हम प्रतिवर्ष जो श्रद्धाञ्जलि समर्पित करते हैं, उनमें यद्यपि मौखिकरूपसे आपका गुणगान करते और हमारे कल्याणके लिये जो नानाप्रकारकी चेष्टाओंमें आप संलग्न रहते हैं उनके कारण आपके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रगट करते हैं, फिर भी हमारे अन्तःकरणमें इसकी तनिक भी उपलब्धि नहीं होती। परन्तु दयामय ! हमें सम्पूर्ण आशा है कि हमारे इस दिखावटी

प्रयत्नका भी आपके निकट कुछ मूल्य है और आपकी अहैतुकी कृपा से हमारा यह प्रयत्न आपकी करुणाकी वास्तविक अनुभूतिके द्वारा कभी न कभी प्रकृत सेवामें परिवर्तित हो जायगा।

नित्य- सेवाभिखारी
आपके सेवकवृन्द

विविध-संवाद

गया जिलेमें प्रचार—श्रीश्रीविश्ववैष्णवराजसभाके अन्यतम प्रचारक उपदेशक पण्डित श्रीपाद रूपविलास ब्रह्मचारी बी० ए० भक्तिशास्त्री, विद्यार्णव महोदयने कई ब्रह्मचारियोंके साथ गया जिलेके अन्तर्गत औरङ्गाबाद सबडिविजनके विभिन्न स्थानोंमें कई दिन हरिकथा प्रचार किया था।

गत १४ वीं जनवरी शनिवारको डा० श्रीयुत धरणीधर प्रसाद एम० बी० महाशयके गृहमें ब्रह्मचारीजीने श्रीचैतन्यचरितामृतसे सनातन-शिक्षा-पाठ किया था। दूसरे दिन दुर्गाकमिटी हाउसके विस्तृत हॉलमें एक सदर्थी सभामें राय साहब श्रीयुत अखौरी कृष्ण प्रसाद सिंह बी० एल०.एम० एल०ए० महोदयके सभापतित्वमें ब्रह्मचारीजीने हिन्दी भाषामें "श्रीचैतन्यदेव और श्रीनाम सङ्कीर्तन" के सम्बन्धमें प्राय: डेढ़ घण्टे तक एक हृदयग्राहिणी वक्तृता देकर श्रोतृवृन्दका चित्ताकर्षण किया था।

पलामू जिलामें प्रचार

गत २० वीं जनवरीको ब्रह्मचारीजी औरङ्गाबादका प्रचार शेषकर पलामू जिलाके अन्तर्गत नगरउन्टारी थानाके अस्पतालके डा० श्रीयुत नरेशचन्द्र राय महाशयके सादर निवेदनमें कई ब्रह्मचारियोंके साथ पहुँचकर प्राय: एक सप्ताह तक वहां शुद्धभक्तिका प्रचार किया। तत्पश्चात् २७ वीं जनवरीको डालटनगंज पहुँचकर वहाँ भी पाठ, व्याख्यान और सङ्कीर्त्तन कर शुद्धभक्तिका प्रचार कर रहे हैं।

श्रीधामनवद्वीप परिक्रमा

आगामी २४ फरवरी शुक्रवारसे लेकर नौ दिनों तक श्रीश्रीविश्ववैष्णवराजसभाके उद्योगसे श्रीगौड़ीयाचार्य ॐ विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद् अनन्तवासुदेव परविद्याभूषण गोस्वामी प्रभुके निर्देशानुसार सङ्कीर्त्तनसहित श्रीधाम नवद्वीपकी परिक्रमा होगी। उस सुअवसरपर बहुतसे साधु लोग परिक्रमामें योगदान देंगे। संसारकी परिक्रमा करनेसे केवल संसारासक्ति ही बढ़ती है किन्तु यदि धामकी परिक्रमा की जाय तो इससे नित्य मङ्गल प्राप्त होगा। धाम चिन्मय वस्तु हैं। हरि, गुरु, वैष्णव लोगोंके आनुगत्यमें शरणागत होकर हरिकथा श्रवण कीर्त्तन करते हुए यदि धामकी परिक्रमा की जाय तो सर्वेन्द्रिय द्वारा हृषिकेशकी सेवा आपसे आप हो जायगी। श्रीकृष्णचन्द्र वा वृन्दाबन धामसे भी श्रीगौर व श्रीगौरधाम अधिक उदार है। धामकी कृपा नहीं होनेसे कभी भी भगवानकी कृपा प्राप्त नहीं हो सकती। विशेष कर कलियुग में श्रीगौराङ्गमहाप्रभुकी कृपा प्राप्त किये विना कल्याण नहीं: क्योंकि वे ही कलियुगके एकमात्रधर्म--नामसंकीर्त्तनके पिता हैं। भिन्न भिन्न देशोंसे बहुत लोग श्रीधामकी परिक्रमा करनेके लिये आयेंगे। सज्जनगणके कृपापूर्वक परिक्रमामें योगदान देनेसे परमानन्द प्राप्त होगा।

आगामी ५ मार्च रविवारसे लेकर तीन दिनों तक श्रीधाम मायापुर-योगपीठ (नवद्वीपसे प्राय: ३ मील पर) में श्रीश्रीचैतन्यदेवका जन्मोत्सव मनाया जायगा।

श्रील प्रभुपादकी पत्रावली—(तृतीय खण्ड)

आचार्य-प्रकट तिथिमें श्रील प्रभुपादकी पत्रावलीका तृतीय खण्ड प्रकाशित हुआ है । प्रत्येक पत्र विशेष शिक्षाप्रद व सारगर्भ उपदेशसे परिपूर्ण है । हमलोग प्रत्येक मंगलकामी व सत्यका अनुसन्धान करनेवाले व्यक्तिको इस पत्रावलीको पाठ करनेका अनुरोध करते हैं ।

श्रीचैतन्यदेव

श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके पहले व बाद भारत व बंगालकी राजनैतिक अवस्था, अर्थ-नैतिक अवस्था, विद्या, साहित्य व समाजिक अवस्था, धर्मजगत्‌की अवस्था, समसामयिक पृथिवीकी अवस्था, नवद्वीपका परिचय व तथ्य और प्रमाणिक ग्रन्थ व विवरण समूह सहज व सरल भावमें साधारणके पढ़नेके योग्य वर्णन किया गया है । ग्रन्थमें अनेक चित्र व मानचित्र दिये गये हैं । सुन्दर जिल्द भक्त, साधारण व्यक्ति व विद्यालयके छात्र सभीके लिये यह ग्रन्थ उपयोगी व प्रीति देनेवाला होगा । भिक्षा १) प्राप्तिस्थान—श्रीगौड़ीयमठ, पो० बागबाजार, कलकत्ता । श्रीमाध्वगौड़ीयमठ, पो० वोयारी, ढाका ।

सरस्वती जयश्री

गौड़ीय-वैष्णवाचार्य ॐ विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादका भुवनके मंगलदायक जीवनचरित ग्रन्थ है । निर्मत्सर शुद्धभक्ति पिपासु व्यक्ति इस ग्रन्थके पाठमें युगपत् अनेक शास्त्रग्रन्थ पाठ व अनेक साधुसङ्गका फल लाभ कर सकेंगे । वैभवपर्वका प्रथम खण्ड रायल ८ पेजी आकारमें एण्टिक कागजपर उत्तमरूपसे मुद्रित, ३६० पृष्ठोंमें । विस्तृत सूचीपत्रके साथ इसमें अनेक चित्र भी दिये गये हैं । भिक्षा ४)

'सामयिक-संख्या'—गौड़ीय

सामयिक-संख्या गौड़ीय अनेक त्रिवर्ण व एकवर्ण चित्र-शोभित व अनेक श्रेष्ठ वैष्णवसाहित्यिकगणोंकी गवेषणापूर्ण प्रबन्धसे सुमण्डित होकर प्रकाशित हुई है । श्रीधाम-मायापुरमें श्रीश्रीगौरजन्मोत्सवके उपलक्षमें सर्वसाधारणोंके लिये भिक्षा ॥) आना ।

ठाकुर भक्तिविनोद

श्रीरूपानुगशुद्धभक्ति स्रोतके प्रवाहका मूल पुरुष ॐ विष्णुपाद श्रील ठाकुर भक्तिविनोदका जीवनचरित व शिक्षामाला बहुत सरल भाषामें बड़े बड़े अक्षरोंमें मुद्रित । भिक्षा ।॥) मात्र । प्राप्तिस्थान—कलकत्ता (बागबाजार) श्रीगौड़ीयमठ व ढाका—श्रीमाध्वगौड़ीय मठ ।

अणुभाष्यम्

चार अध्यायी ब्रह्मसूत्रके प्रत्येक अधिकरणका तात्पर्य श्रीमन्मध्वाचार्य-कृत श्लोकाकारमें बहुत संक्षेपमें बना हुआ । बंगभाषामें सर्वप्रथम संस्करण । पहले प्रति अध्यायके प्रति पादका श्रीमन्मध्वाचार्य-विरचित अणुभाष्यमूल, उसके बाद प्रति अध्यायके प्रतिपाद का सूत्र-समूह, अणुभाष्य-मूलका बंगला अनुवाद व श्रीपाद राघवेन्द्रयतिविरचित तत्वमञ्जरी टीका, उसका बंगला अनुवाद व तात्पर्य इस क्रमसे पुस्तक मुद्रित हुई है । इसके अतिरिक्त मातृका क्रमसे ब्रह्मसूत्र समूह, उसका अध्यायांक, पदांक व सूत्रांकके साथ सूचीपत्र भी संयोजित हुआ है । भिक्षा २) मात्र ।

Printed by:— Brajeshwari Prasad, at The 'Indian Nation Press' and published by him from Sree Gaudiya Math, Mithapur, Patna.

वर्ष ५]

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः

Regd. No. P. 468,

संख्या २]

भागवत

एकमात्र

पारमार्थिक

मासिक पत्र

५ विष्णु
गौराब्द
४५३



चैत्र कृष्ण ५
संवत
१९९५ वि०

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥१॥

जिसमें इन्द्रिय ज्ञानातीत श्रीकृष्णमें श्रवणादि-लक्षण फलाभिसन्धान - रहित एकान्तिकी स्वाभाविक निरपेक्षा भक्ति उदय होती है, वही मानव जातिका सर्वश्रेष्ठ धर्म है— उसी भक्तिके बलसे अनर्थ उपशान्त होनेसे आत्मा प्रसन्नता लाभ करती है ।

प्रति संख्या ।-)॥ | सम्पादक-त्रिदण्डिस्वामी श्रीभक्तिभूदेव श्रौती महाराज | वार्षिक ३)

Editor—Tridandiswami Sree Bhakti Bhudeb Shrauti Maharaj

SREE GAUDIYA MATH Mithapur (Patna).

विषय सूची

श्री मायापुरधाममें महामहोत्सव

गत २४ फरवरी शुक्रवारसे लेकर नौ दिनों तक श्रीगौड़ीयाचार्य ॐ श्रीविष्णुपाद परमहंस श्री श्रीमद् अनन्तवासुदेव परविद्या भूषण गोस्वामी प्रभुके निर्देशानुसार संकीर्त्तनसहित श्रीधाम नवद्वीपकी परिक्रमा हुई। इस सुअवसरपर बहुतसे साधुलोग परिक्रमामें योगदान दिये थे। बिहार प्रान्तके भी बहुतसे भक्तगण इस सुअवसर पर उपस्थित थे। महाप्रभु श्रीकृष्ण चैतन्यदेवका जन्मोत्सव ५ मार्च रविवारसे लेकर तीन दिनों तक अत्यन्त समारोहके साथ मनाया गया। ता० ५ मार्च को श्री नवद्वीप धाम प्रचारिणी सभाकी वार्षिक अधिवेशन हुइ थी।

पत्र व्यवहारका पता--

मैनेजर——"भागवत"

श्रीगौड़ीयमठ,

मीठापुर, पटना।

All communications are to be addressed to—

The Manager '*Bhagwat*'

SRI GAUDIYA MATH

Mithapur, Patna

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः



वर्ष ५ श्रीगौड़ीयमठ, मीठापुर (पटना) किरण

चै० कृष्ण ५, ४६३ सं० २००६ वि०, १० मार्च सन् १९५० ई०

श्रीभक्ति सिद्धान्त वाणी

भगवत-प्राप्ति करना कठिन काम है ऐसा मनमें सोचकर भयभीत होनेसे नहीं चलेगा; सत्यवस्तु जाननेके लिये हृदयमें बहुत बलकी आवश्यकता होती है। तैरना सीखनेवाला यदि जल देखते ही डर जाय तो उसको तैरना नहीं आयगा। भगवान्की शरणागति कठिन बात नहीं है, वही आत्माका अति स्वाभाविक एवं सहज धर्म है। शरणागतिके विपरीत जो कुछ है वह अस्वाभाविक तथा क्लेशकर है।

भगवान्की कथा सुननी होगी—भगवान्के गुरुजनके (आचार्यके) समीप सुननी होगी। जिस समय हरिकथा सुनेंगे, उस समय समस्त पार्थिव अभिज्ञता, कुतर्क प्रभृतिको हटा देना होगा। भगवानकी पराक्रमपूर्ण वीर्यवती कथा सुनते-सुनते हृदयके दौर्बल्यादि अनर्थ कट जायंगे—हृदयमें अभूतपूर्व साहस होगा; उस समय शरणागति वा आत्माका सहज धर्म सम्पूर्णरूपसे उदित होगा। उस शरणागत हृदयमें चतुर्थमान अर्थात् तुरीय अतीन्द्रिय राज्यका स्वप्रकाश सत्य स्वयं प्रकाशित होगा। इस उपायसे ही सत्य जाना जाता है; और किसी प्रकारसे अकैतव (छल रहित) सत्य नहीं जाना जा सकता। भगवत्-कथा तथा संसारकी कथामें भेद है। प्रत्येक शब्दकी दो प्रकारकी वृत्तियां होती हैं उनमें एक संसारके परिवर्त्तनशील वस्तुको निर्देश

करती है तथा भगवान्‌को विस्मृत करा देती है, और दूसरी नित्यवस्तुको निर्देश करती है एवं भगवान्‌के स्वराज्यकी उपलब्धि तथा उद्दीपन कराती है। वैकुण्ठका शब्दब्रह्म तथा इस कुण्ठित (नाशशील) संसारके शब्दोंमें क्या भेद है उसे आचार्यके मुखसे श्रवण करनेसे भगवन्नाम ग्रहण करनेकी योग्यता प्राप्त होती है।

गीताशास्त्रमें लिखा है कि जीव वा आत्मा स्थूल तथा सूक्ष्म आवरणसे आवृत (आच्छादित) होकर भगवत्-विस्मृतिके कारण संसारमें आता है। इस प्रकारकी अवस्थामें मनके द्वारा जो ज्ञान तथा मनके द्वारा जो रूप रसादि विषय ग्रहण किये जाते हैं, उनमें और भी अधिक भ्रम उदित होता है तथा सनातन स्मृतिरूप आत्मस्वभाव आवृत हो जाता है। सङ्कल्पविकल्पात्मक विद्याभास मनके सहित अणुचैतन्य सनातन शुद्ध जीवात्माका पूर्ण पार्थक्य है। मन परिवर्त्तनशील पर आत्मा अपरिवर्त्तनीय तथा नित्य है। मनका काम भोग वा त्याग और आत्माका काम सेवा है। मन त्रितीयमान (जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्ति) तककी वस्तुको जान सकता है, उसको चतुर्थमानकी वस्तुको जाननेका अधिकार नहीं है। आत्मा ही चतुर्थमान व तुरीयावस्थाका अभिज्ञान प्राप्त कर सकता है। संसारके पाण्डित्यसे वास्तव सत्य नहीं जाने जा सकते।

"वर्त्तमान अवस्थामें उन समस्त विषयोंको जानना अत्यन्त कठिन है" यह जिसप्रकार सत्य है, उसीप्रकार उन विषयोंको जाननेका जो उपाय है वह भी सत्य है। हमलोगोंके दूरदेशस्थ बान्धवोंका समाचार डाकिया हमलोगोंके निकट लेआता है। किसी किसीका संवाद पिअन नही भी ला सकता है। पिअन जिसकी चिट्ठी नहीं लाया उसका भाग्य अत्यन्त मन्द है ऐसा समझना चाहिये। जो लोग पत्रके लिये आर्त्त (पीड़ित) हैं उनके निकट अवश्य ही पिअन चिट्ठी ला देता है।

किसी वस्तुके विषयमें ज्ञान उपार्जन करनेके लिये संसारमें दो प्रकारके उपाय देखे जाते हैं: एक संसारके पाण्डित्यद्वारा वस्तुको जाननेकी चेष्टा, और दूसरा संसारके पाण्डित्यकी असम्पूर्णताकी उपलब्धि कर चित् जगतसे अवतीर्ण पुरुषके (आचार्यके) निकट सम्पूर्णरूपसे आत्मसमर्पण करके श्रौत पथ द्वारा ज्ञान लाभ करना।

यदि मैं दाम्भिक हो जाऊं तो सेवासे चिरकालके लिये वञ्चित हो जाऊंगा। भगवानकी भक्ति किसप्रकार करना होता है भगवद्भक्तके चरणोंमें यदि उसी प्रकारकी भक्तिका उदय न हो तो मैं अपदार्थ (अयोग्य) हो गया जीवन वृथा हो गया। मैं कितना ही अयोग्य क्यों न होऊं मेरे मङ्गलके लिये बहुतसे भक्त कृपापूर्वक आविर्भूत हुए हैं। मेरी दुर्दमनीय दाम्भिकताको दमन करनेके लिये बहुतसे भक्तोंका समावेश हुआ है। ये लोग मुझे भगवद्भजन की शिक्षा दे रहे हैं। भगवद्भक्तोंके निकट अपेक्षाकृत अधिक सम्मान पाऊंगा, इस प्रकारकी दुर्बुद्धिको जिस दिन हजारों हजार झाड़ुओं द्वारा नष्टकर सकूंगा दूसरोंके निकट सुविधा के लाभकी आशासे जिस दिन उद्धार प्राप्त करूंगा, उसी दिन मेरे प्रति भगवानकी कृपा होगी, और मैं भगवद्भक्ति प्राप्तकर धन्य होऊंगा—

भक्तिका आश्रयकर यदि हम दाम्भिक हो जायं, केवल भगवानकी पूजाकर भक्तोंकी पूजाके प्रति अनादर प्रदर्शित करें--तो ऐसा होनेसे भक्तोंके चरणोंमें अपराध होनेके कारण नाना प्रकारकी असुविधाएँ

होगा। मैं केवल अच्छा होकर सम्पूर्णरूपसे अमङ्गल हो जायगा।

मनुष्य जीवन अमङ्गल सञ्चय करनेके लिये नहीं हुआ है, यह जन्म परम मङ्गल प्राप्त करनेके लिये ही हुआ है। यह मैं क्यों भूल जाता हूं! मैं सबोंसे क्षुद्र तथा अधम हूं इसकी विस्मृति मुझे क्यों होती है? मायाके प्रलोभनसे लालचमें पड़कर भोगी होनेसे बड़ा होनेके लिये विषय नितान्त क्षुद्र तथा अप्रयोजनीय है। यदि संसारमें बड़े होनेकी प्रवृत्तिको कम करनेकी आवश्यकता हो, प्रकृत (वास्तविक) स्वास्थ्य प्राप्त करनेकी आवश्यकता हो, तो वैष्णवोंका विचार ग्रहण करना चाहिये।

जो हरिसेवा करते हैं, वे अपनेको सबोंसे हीन समझते हैं। अपनेको सबोंसे हीन समझनेवाले ऐसे ही व्यक्ति अभिमान शून्य होते हुए सर्वश्रेष्ठ हो सकते हैं। सर्वश्रेष्ठ होकर वे हरिभक्तिकी कथा कह सकते हैं।

सर्वोत्तम होनेके लिये अपनी अयोग्यताकी परीक्षा करनी चाहिये। अपनी परीक्षा तो होती नहीं फिर दूसरोंके दोषकी खोजमें इतनी प्रवृत्ति क्यों है? क्या ऐसा ही वैष्णवका स्वभाव होता है? वस्तुतः वैष्णवके चरणारविन्दके आदर्शको ग्रहणकरनेसे अयोग्य भी योग्यता लाभ करते हैं।

मैं अच्छा होऊंगा, मेरा रोग दूर हो मङ्गल हो-यह विचार अच्छा है परन्तु मैं बड़ा हो करके संसारके सभी लोगोंको रोककर मेरी हिंसा-वृत्ति चरितार्थ हो - इस प्रकारकी धारणा बिलकुल ही प्रशंसनीय नहीं है। अपनेको श्रेष्ठ समझकर भक्तोंकी सेवामें बाधा देना अनुचित है।

मेरा जन्म ऐसे स्थानमें हो जिसमें मैं भगवद्भक्तोंके चरणारविन्दकी धूल होकर श्रीरूपानुगसिद्धांतके अनुसार चल सकूं। अपनी अयोग्यताकी उपलब्धिरूप दीनता ही इसका मूल है। मैं अयोग्य हूं—यह विचार आप ही आप यदि आ जाय तो मैं भगवद्भक्तोंके चरणारविन्दकी शोभाके दर्शन प्राप्त कर सकूंगा।

भजन

भूलिया तोमारे संसारे आसिया,
पेये (पाकर) नानाविध व्यथा।
तोमार चरणे, आसियाछि आमि
बलिब (बोलने के लिये) दुःखेर कथा ॥१॥
जननी जठरे (गर्भ), छिलाम जखन,
विषम बन्धन पाशे।
एकबार प्रभु, देखा दिया मोरे,
वञ्चिले (छल किया) ए दीन दासे ॥२॥
तखन भाविनु, जनम पाइया,
करिब भजन तव।
जनम हइल, पड़ि माया-जाले
ना हइल ज्ञान लव ॥३॥
आदरेर छेले, स्वजनेर कोले (गोद में)
हासिया (हँसकर) काटानु काल (समय बिता दिया)
जनक जननी स्नेहेते भुलिया,
संसार लागिल भाल (सुन्दर) ॥४॥
क्रमे दिन दिन, बालक हइया,
खेलिनु बालक सह।
आर किछु दिने, ज्ञान उपजिल,
पाठ पड़ि अहरहः (सर्वदा) ॥५॥
विद्यार गौरवे, भ्रमि देशे देशे,
धन उपार्जन करि।

यौवन पालन, करि एक मन
भुलिनु (भूल गये) तोमारे हरि ॥३॥
वार्द्धक्ये (बुढ़ापेमें) एखन, भकतिविनोद,
काँदिया (रोकर) कातर अति ।
ना भजिया तोरे, (आपको) दिन वृथा गेल,
एखन कि हबे गति ॥४॥

करुणा-धारा

श्रीब्रह्म-माध्व गौड़ीय-सम्प्रदायके संरक्षक ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीश्रीमद् भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामीजी महाराजकी निखिल भुवन मंगलमयी करुणा-धारा

परम मंगलमय परमेश्वरकी इच्छासे युग युग पर उनका तथा उनके भक्तोंका आविर्भाव भारत भूतलमें हुआ करता है। यह केवल उनके कृपापात्र ही समझ सकते हैं। अन्यान्य व्यक्ति भक्तोंकी कृपासे यह सिद्धान्त जान सकते हैं। इसमें भी श्रद्धा की आवश्यकता है। श्रद्धारहित मनुष्योंका चित्त विषय-वासनासे कलुषित रहनेके कारण इन सब बातोंके उनके कानमें प्रवेश करनेपर भी वे दूसरा भाव धारण करते हैं। वेलोग भगवान् तथा भक्तोंकी करुणाधारामें स्नान न होनेके कारण उनकी लीलाओंकी समालोचनामें ही प्रवृत्त होते हैं अथवा अन्य प्रकारके सिद्धान्तमें उपनीत होते हैं।

जगद्गुरु आचार्यवर श्रीश्रीमद् भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद एक ऐसे समयमें पृथ्वीपर प्रगट हुए थे, जिस समय शुद्ध भक्तिरसामृत वितरणकारी एक आचार्यके आविर्भाव की नितान्तही आवश्यकता थी अर्थात् जब मनुष्यगण भगवत्-बहि-र्मुखताके मोहसे समाच्छन्न होकर विवश हो गये थे, और जब ऐसा कोई नहीं था जो प्यास निवृत्त करनेके लिये यथार्थ शान्तिजल दे सके। गोस्वामी-जीके आविर्भावके पहिले भारत एक परिणाम भ्रष्ट हो गया था। उस समय श्रीमद् भक्तिविनोद गोस्वामीजीने भागवत धर्मका झण्डा फहराया था। परम पूज्यपाद श्रीश्रीमद् भक्ति-सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामीजी महाराज श्रील भक्तिविनोदसे एक महा-पुरुषके हरिकीर्त्तन-मुखरित श्रीधाम और पुरुषोत्तम क्षेत्रमें आविर्भूत हुए थे। उनका अन्नप्राशन श्री जगन्नाथ देवजीके महाप्रसादसे ही हुआथा। बचपन-से ही उनको हरिकथाश्रवण, भक्तसंग तथा तीर्थ-भ्रमणादिकी सुविधा प्राप्त थी। बाल्य कालमें ही उन्होंने भक्ति सदाचारका पालन और भक्तिग्रन्थका अध्ययन किया था। यौवन कालमें परमभक्त श्रीमद् गौरकिशोर दास गोस्वामीजीका सत्संग प्राप्त हुआ था इस महापुरुषके प्रचारकी जो विशेषता है वही हम लोगों की आलोचनाका विषय है।

हमलोगोंकी यह धारणा थी कि वैष्णवधर्म जगतके कुछ थोड़ेसे ऐसे व्यक्तियोंका ही धर्म है जो संकीर्ण साम्प्रदायिक या कट्टर हैं। कोई कोई ऐसा भी समझते थे कि यह केवल हिन्दू-धर्मका ही एक अंश है परन्तु इस महात्मा ने ही पहले पहल यह प्रचार किया था कि वैष्णवधर्म सार्वजनीन सार्वकालिक और सार्वभौमिक सनातन धर्म है।

समस्त जीवों का धर्म है। इसलिये वैष्णवधर्मका दूसरा नाम है जैवधर्म, आत्मधर्म या भागवतधर्म।

साधारण मनुष्यकी अथवा किसी किसी नामधारी महात्माकी भी यह धारणा है कि प्रचार करना बिल्कुल बुरा है। क्योंकि जो व्यक्ति प्रचार करते हैं वे अपनी साधुताका प्रकाश करते हैं। यह नितान्त कपटता है। एकान्तमें साधन करना ही यथार्थ साधुता है; किन्तु इस महात्मा ने यह बतलाया कि जगत् में सत्यवाणी का प्रचार नहीं रहनेसे ही मायापिशाचिनी के मोहमें कवलित व्यक्ति मिथ्या, वंचना, कपटता आदि द्वारा सदा भ्रान्त होकर नरकके मार्गपर ही चलनेके लिये प्रस्तुत होंगे। इसलिये इस महात्मा का मुख्य प्रचार यही है कि "कीर्त्तनीयः सदा हरिः" - श्रीहरिका कीर्त्तन सदा ही होना चाहिये। मौनीबाबालोग अन्यान्य व्यक्तियोंके मंगलकी कामना नहीं करते अतएव वे यथार्थ परोपकारी नहीं हैं किन्तु इस आचार्यका मूलमन्त्र था वास्तव-सत्यका प्रचार। श्रीचैतन्य महाप्रभुकी यह वाणी है कि

पृथिवीते आछे यत नगरादि ग्राम।
सर्वत्र संचार हइबे मोर नाम॥

अर्थात् पृथिवीपर जितने नगर या ग्राम हैं उन सब स्थानों में मेरे नाम का प्रचार होगा—इस वाक्यकी सार्थकताका सम्पादन करने के लिये इस आचार्यका आविर्भाव हुआ था। पूर्वाचार्यों के चरित्रमें ऐसी विपुल भावसे प्रचार करनेकी चेष्टा नहीं थी। वे लोग शायद इनके लिये ही यह कार्य बाकी रख गये थे। अनेक आचार्योंके चरित्रमें दिग्विजय करनेकी चेष्टा भी दीख पड़ती थी किन्तु इनकी यावतीय चेष्टा थी श्रीचैतन्यदेवकी करुणा का विस्तार करना। भगवान् श्रीकृष्णचैतन्यने दक्षिण देशमें, श्री नित्यानन्द प्रभुने गौड़ देशमें श्रीरूपसनातनने व्रजमण्डलमें प्रचार किया था पर समय के प्रभावसे वे सब बातें कहीं लुप्त व कहीं विकृत हो गई थीं। किन्तु इस आचार्यने उनसब स्थानोंका उद्धार करते हुए वहां श्रीचैतन्य चरणचिह्नकी स्थापना की और कहीं कहीं मठ मन्दिरकी प्रतिष्ठा करके चैतन्यमहिमाकी प्रचारका यथेष्ठ बन्दोबस्त किया।

इस आचार्यके चरित्रमें यह विशेषता दीख पड़ती है कि पृथिवीका कोई भी मनुष्य बालक स्त्री वृद्ध या जवान उनके श्री चरणोंमें प्रणाम करनेसे वे भी "दासोऽस्मि" कहते हुए सिर झुकाते थे। इस विचारमें जीवका "नारायण" ज्ञान नहीं है, किन्तु प्रत्येक व्यक्तिको गुरुदेवकी वाणी कीर्त्तनका उच्चार समझना चाहिये।

प्रचार कार्यके लिये उन्होंने भारतवर्ष तथा भारतके बाहरके प्रधान प्रधान नगरों तथा तीर्थस्थानोंमें भगवत्कथाकीर्त्तन मठोंकी स्थापना की है। इन सब मठोंका नाम भी दिया गया "गौड़ीय अस्पताल"। शहरमें बहुतसे भवरोगी (जो पुनः पुनः जन्म-मृत्युको प्राप्त करते हैं ऐसे भगवद्बहिर्मुख लोग) एकत्र होते हैं, इसलिये उन लोगोंको हरिकथा सुनाकर संसारसे मुक्त करनेके लिये उनका इलाज करनेके मतलबसे ही मठोंकी स्थापना की गई।

संकीर्त्तन-प्रचारके वास्ते वर्त्तमान वैज्ञानिक युगमें उन्होंने जिन सब अंगोंको साधन बनाया है उनमेंसे मुद्रणयन्त्र अर्थात् छापाखाना ही प्रधान है। प्रचारकार्यके आरम्भ करनेके पहले उन्होंने इस मुद्रणयन्त्रको ही कीर्त्तनके मुख्य अंगके रूपमें ग्रहणकर भक्तिग्रन्थादिकी छपाई शुरू की थी। इसका नाम दिया गया था—"बृहत् मृदंग"। अर्थात्

साधारण मृदङ्गकी सहायतासे कीर्तन होता है जो केवल निकटमें रहने वाले लोगोंको ही सुनाई पड़ता है। किन्तु छापाखानेकी सहायतासे पृथिवीमें सर्वत्र पुस्तक तथा सामयिक पत्रादि छापकर भेजे जा सकते हैं जिससे बहुत दूरमें अवस्थित व्यक्तियोंको भी श्रवणका अवसर मिलता है।

कुछ आचार्य जनके श्रेष्ठ व्यक्तियोंके पास नहीं जाना पसन्द करते थे किन्तु इस आचार्यका उद्देश्य दुनियाके सभी लोगोंके निकट भगवत्कथाका कीर्तन करना था। धनी, गरीब, अपढ़, राजा, महाराजा जो कोई उनका दर्शन करता था उन सबके निकट ही हरिकीर्तन के सिवा उनका अन्य उद्देश्य नहीं था।

उनके प्रचारका और एक तरीका था "सत् शिक्षा प्रदर्शनी"। कुरुक्षेत्र, कलकत्ता, नवद्वीप-मायापुर, ढाका, पटना काशी, इलाहाबाद प्रभृति स्थानोंमें कहीं महीने तक, कहीं पन्द्रह दिनों तक पारमार्थिक प्रदर्शनीमें शास्त्रके गूढ़ तात्पर्य सरल रीतिसे समझानेका बन्दोबस्त किया गया था। पारमार्थिक आलोचनाके लिये वैष्णव-सम्मिलन का अधिवेशन हुआ करता था।

भगवानकी जयन्ती तथा वैष्णव-आचार्योंके जन्मदिवसके उपलक्षमें सम्भ्रान्त शिक्षित तथा साधारण लोगोंको निमंत्रितकर भगवत्प्रसाद बांटने के बहानेसे भगवत्कथा श्रवणका मौका देना उनकी कृपाका एक और तरीका था।

विभिन्न शहरों तथा गांवोंमें प्रचारक भेजकर भगवत्कथाका प्रचार करवाना उनकी और एक विशेषता थी। श्रीश्रीमन् नित्यानन्द प्रभु तथा ठाकुर हरिदासने नवद्वीपमें, और रूप सनातनादिने व्रजमें, श्रीश्रीठाकुर नरोत्तम, श्रीनिवास आचार्य और श्री श्यामानन्द प्रभुने बङ्गदेश और उत्कलमें प्रचार किया था परन्तु इस महात्माने समस्त भारत तथा भारतके बाहर लण्डन जर्मनी, फ्रांस, अष्ट्रिया, जेकोस्लोवाकिया प्रभृति स्थानोंमें भी सनातनधर्मके प्रचारका बन्दोबस्त किया था। पाश्चात्य श्रेष्ठ धर्मयाजकोंने भी सनातन धर्मकी श्रेष्ठताको मान लिया था। भारत-सचिव महामान्य लार्ड जैटलैण्ड महोदयने लण्डन-गौड़ीय मिशनके सभापतिका पद ग्रहणकर लण्डनमें विष्णु मन्दिर प्रतिष्ठामें उत्साह दिखलाया था। इस समय कई स्थानोंके भिन्न भिन्न सम्प्रदायोंके धर्मप्रचारके प्रचारमें अपना तनख्वाह देकर प्रचार करवानेका बन्दोबस्त भी दिखलाई पड़ता है। परन्तु ये महात्मा ऐसे कार्यको भक्तिरहित या ढोंग समझते तथा करते थे। वे बराबर कहा करते थे कि अनाचारी वक्ता (Professional Speaker) अथवा व्यवसायी पुरोहित (Professional priest) कभी भी 'गुरु' नहीं हो सकते। मेरे बढ़ा करने वाला व्यक्ति कभी प्रचारक नहीं बन सकता। व्यापारियों-से सदा अलग रहना। भागवत वाचक आठो पहरमेंसे आठो पहर भागवत सेवा करता है कि नहीं यही देखना चाहिये।

इस महात्माने अपने शिष्योंके साथ भारतमें भ्रमण करते हुए भगवत्कथाका प्रचार किया था। इससे विभिन्न प्रदेशोंके रहने वालोंने उनके सत्संग तथा कृपाकी प्राप्ति की है। भिन्न भिन्न अवसरों पर भिन्न भिन्न व्यक्तियों ने उनके श्रीमुखारविन्दसे भगवत् कथा सुननेका मौका प्राप्त किया था। ओहियो विश्वविद्यालयके अध्यापक साद्रार्स, रेवरेण्ड स्टानली जोन्स, अध्यापक डा० वि० जोन्स, डाक्टर मोरेनो, डाक्टर स्टेला क्रेमरिस, सर मालकम हेली,

सर जान एण्डारसन प्रभृति उच्चपदस्थ सज्जनों को भी उन्होंने भगवत्वाणी सुनायी और ये सब व्यक्ति उनके अलौकिक चरित्रसे आकर्षित हुए थे।

आचार्य ठाकुरने विभिन्न तीर्थों तथा भगवद्धामों की परिक्रमाकी चाल चलाई है। उनसे प्रवर्तित की गई गौड़ मण्डल परिक्रमा एक अनोखा व्यापार और अनहोनी भक्तियोग है। वंगदेशके जिन जिन स्थानोंमें श्रीचैतन्यदेवके पार्षदगण आविर्भूत हुए थे उन्होंने अपने शिष्योंको लेकर उन स्थानोंमें संकीर्त्तन और हरिकथाका प्रचार किया था।

श्रीधाम नवद्वीप Oxford of Bengal कहा जाता है। परन्तु कालके प्रभावसे यहांका वह गौरव लुप्त हो गया था। इस आचार्यने यहां फिर विद्यापीठकी स्थापना की। इसके अनुशीलनके लिये उपयुक्त कृष्णानुशीलनागार तथा अंगरेजी स्कूल छात्रावास इत्यादि की भी प्रतिष्ठा की। भिन्न भिन्न भक्तोंके निवासस्थान धर्मशाला अस्पताल इलेक्ट्रिक लाइट डाकखाने आदि कार्यों द्वारा नवद्वीपके लुप्त गौरवका उद्धार किया।

उनका दान पार्थिव दान नहीं है। समस्त जगत की बहिर्मुखता को हटाकर कृष्णभक्तिकी नींव देने के लिये ही उनकी यावतीय चेष्टायें थीं। उनके कार्यों में पूर्व आचार्योंके कार्योंसे कुछ विशेषता लक्षित होनेपर भी उन सबोंके साथ एकता थी। उनलोगोंके चरित्र और वैभवको दुनियामें प्रचार करनेकी उनकी चेष्टा में उनकी और भी एक विशेषता है। उन्होंने श्रीरामानुज, मध्व, निम्बार्क विष्णुस्वामी, आचार्य शंकर तथा लिंगायत सम्प्रदाय के भिन्न २ आचार्योंके विषयमें तथ्य संग्रह करने के लिये यथेष्ट कष्ट उठाया था। अन्यान्य सम्प्रदायके आचार्य इनका साम्प्रदायिक वैभवज्ञान देखकर आश्चर्यान्वित हो गये। पेरुमबदुर, श्रीरंगम, उडुपी, सलीमाबाद, अहोबल, पाण्डरपुर, नाथद्वार, नंजनगड़ प्रभृति स्थानोंसे आपने जो तथ्य संग्रह किया उसे गौड़ीय साहित्यमें प्रकाशितकर जगतका बहुत ही उपकार किया। आपने श्रीरामानुज, मध्व, निम्बादित्य, विष्णुस्वामी, शङ्कराचार्य, माणिक्य भास्कर, श्रीवल्लभाचार्य, श्री विश्वनाथ चक्रवर्त्ती श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभृति आचार्योंके चरित्र साहित्यमें प्रकाशितकर गौड़ीय सिद्धान्तकी एक और विशेषता दिखलाई थी।

भारतमें दशनाम सन्यासी कहने से मायावादी सन्यासी समझा जाता था, किन्तु आपने विष्णुस्वामी सम्प्रदायसे इसकी प्राचीनता दिखलाई है और शङ्कर-सन्यासी तथा वैष्णव-सन्यासीका जो भेद है वह भी प्रकट किया है।

वेदान्त कहनेसे लोग शङ्करके मतवादको समझते थे। पर आपने वेदान्तका यथार्थ तात्पर्यके प्रचार द्वारा वेदान्तको वैष्णवधर्मका ही एकमात्र शास्त्र बतलाया है। वेदान्तके Ontology और morphology की विशेषता, भागवत और पांचरात्र का समन्वय और अन्यान्य धर्ममतसे अचिन्त्य भेदाभेद सिद्धान्तकी विशेषता प्रदर्शनकी है और निर्विशेष ब्रह्मवादसे पंचोपासना, एकत्ववासुदेव, (शक्तिशून्य वासुदेव, जो गीताके उपदेशक) लक्ष्मीनारायण, सीताराम, द्वारकेश, मथुरेश तथा ब्रजेन्द्रनन्दनकी उपासनाकी विशेषता और श्रेष्ठता बतलायी है।

अन्याय धर्ममतवादके साथ सनातन वैष्णवधर्मकी विशेषता कहां है आपने यह भी निर्भीक कण्ठसे कीर्तन किया है।

उनकी इन सब दयामयी बातों पर विचार

करनेसे हृदयमें एक अपूर्व आनन्द तथा ज्ञानका संचार होगा। आपके इस करुणा धारामें स्नान करनेसे सभी श्रद्धावान व्यक्ति यथार्थ मंगल प्राप्त कर सकेंगे।

यस्य प्रसादाद् भगवत्प्रसादो
यस्याप्रसादान्न गतिः कुतोऽपि।
ध्यायन् स्तुवंस्तस्य यशस्त्रिसन्ध्यं
वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥

आश्रय

निराश्रय अवस्थामें कोई ठहर नहीं सकता। प्रत्येक जीव किसी न किसीका आश्रित है। आश्रय दो प्रकारका है एक नित्य और दूसरा अनित्य। जिस आश्रयकी नित्यता नहीं, वह आश्रय-स्वरूप प्रतीत होनेपर भी यथार्थमें आश्रय नहीं। अनित्य आश्रय यह संसार या यहांके मनुष्य है और नित्य आश्रय या चेतनके एकमात्र अवलम्बन- जगदीश और जगदीशजन है। हमलोगोंके सदृश बद्धजीव वर्तमान विश्वको अपना एकमात्र आश्रय समझ केवल वञ्चित ही हो रहे हैं। इस दुःखमय प्रपञ्चमें कहीं भी आश्रय नहीं। गोलोका-वतीर्ण श्रीश्रीगुरुपादपद्म ही संसार-समुद्रमें एक-मात्र आश्रयस्थल हैं। ये भवसमुद्रके एकमात्र कर्ण-धार हैं। इनके सिवा और कोई रक्षाकर्ता नहीं।

भगवान् ही सर्वाश्रय हैं। भगवानके श्रीचरणोंमें ही आश्रय या शरण लेना होगा। इसीलिये कह रहा हूं कि भगवच्चरण, भगवत्पाद, विष्णुपाद या आचार्यपाद ही सबोंके एकमात्र आश्रय हैं। श्री-श्रीगुरुपादपद्म ही आश्रय विग्रह-जीवको आश्रय देनेके लिये श्रीकृष्ण ही गुरुरूपमें अवतीर्ण होते हैं। इसी आश्रयविग्रहके श्रीचरणोंमें आश्रय लेने-की कथाको शास्त्रोंने बारम्बारसे कीर्त्तन किया है। यह श्रीगुरुपादपद्म-श्रीश्रीआचार्यपादपद्म ही जीव की एकमात्र गति हैं। वे ही विश्वमें एकमात्र अनु-ग्रह और निग्रह करनेके अधिकारी हैं। ऐसा न हो कि हमलोग किसी दिन इस आश्रयविग्रहकी कथा भूलकर अन्यका आश्रय करनेकी दुरभिलाषा हृदयमें पोषण करें। ऐसा होनेपर हमलोगोंका मङ्गलद्वार चिररुद्ध रहेगा। श्रीगुरुपादपद्ममें सर्वात्म-समर्पण करना होगा, उनका एकनिष्ठ सेवक होना होगा, एवं उन्हींके लिये ही जीवनधारण या कोई भी कार्य करना होगा। दूसरोंके साथ स्वतन्त्रभावसे हमलोगोंका कोई सम्बन्ध नहीं। यदि है तो वह मायाके सिवा और कुछ नहीं। मङ्गलाकाङ्क्षी जीव श्रीगुरुपादपद्मके सङ्गके सिवा उनके निकट सर्वदा कृपाभिक्षाके सिवा और कुछ नहीं करते। वे सभीको श्रीगुरुके सम्बन्धसे दर्शन करते और किसीके निकटसे अपने लिये कुछ ग्रहण नहीं करते। गुरुदास वैष्णव अपनेको, सभी वस्तु और व्यक्तिको श्रीगुरुदेव-श्रीआचार्यके चरणोंमें समर्पण करते हैं। श्रीआचार्यपादपद्मके गुणकीर्त्तनके सिवा, सभीको आचार्यके चरणोंमें आकृष्ट करनेके सिवा, आचार्य-सेवक-गुरुसेवक—नित्यानन्दसेवकको अन्य कोई अभिलाषा या कृत्य नहीं है। वे शत नहीं गुरु-गौर-कीर्त्तनमें अनन्तमुख हैं। यही उनका एकमात्र साधनभजन है। गुरुदास वैष्णव कभी भी गुरुको धोखा देकर दूसरेको अपनी सेवामें नियुक्त करने या निजानुगत करनेकी दुर्बुद्धि पोषण नहीं करते। यही गुरुदासका वैशिष्ट्य और स्वरूप है। वे स्वयं मङ्गलालय श्रीगुरुपादपद्मके सम्पूर्ण अनुगत हैं

एवं दूसरे जिसमें आचार्यानुगत या आचार्याश्रित होकर परम मङ्गललाभ कर सकें इसके लिये सर्वदा सम्पूर्ण चेष्टाविशिष्ट रहते हैं।

श्रीगुरुपादपद्मका ही सर्वतोभावेन सर्वान्तःकरणसे आश्रय करना होगा। भगवानकी कृपासे ऐसे गुरुदेवका सन्धान प्राप्त होगा। फिर गुरुदेवकी कृपासे निष्कपटजीव गुरुदास वैष्णव और भगवानका सन्धान प्राप्त करेगा। उस समय वैष्णवानुगत्यमें गुरुगौराङ्गकी सेवाका सौभाग्य पाकर, जीव कृतार्थ होगा। श्रीगुरुपादपद्म ही विश्वके एकमात्र रक्षक और पालक हैं। 'और रक्षा कर्त्ता नाहि ए भव संसारे'। जिसने प्रकृत आश्रय प्राप्त किया है, वह असहाय नहीं है। 'कृष्ण कृपा करिबेन दृढ़ करि जाने'-- यही उसका हृद्‌गत भाव है। पहले श्री गुरुदेवके साथ सम्बन्ध हो, तब दूसरेके साथ सम्बन्ध होगा। श्रीगुरु या आचार्यको छोड़ जहां वैष्णव प्रीति की छलना है वह अभक्ति, अन्याभिलाप या कपटता-जननीके सिवा और कुछ भी नहीं। पिता एकमात्र श्रीआचार्यदेव हैं। हमलोग सभी उन्हींके पाल्यपुत्र-शिष्य-सेवाभिखारी हैं। इस गुरुपिताके प्रति प्रीति हमारी अपेक्षा जिसकी अधिक है,आचार्य चरणमें जिसकी श्रद्धा अचला है, उसका सङ्ग करने से गुरुपादपद्ममें विश्वास, निष्ठा, प्रीति बढ़े, उसके अनुसार अपनेसे श्रेष्ठ सज्जनोंका सङ्ग करना होगा। किन्तु जहां गुरुपादपद्मकी कोई कथा नहीं जहां माथाको छोड़कर माथाके व्यथाकी कथा है, वहां मङ्गल नहीं होगा। मङ्गलमयकी कथा न सुननेसे,- मङ्गलप्रदाताका सन्धान न पानेसे-किसी उपायसे जीवनयापन ही सार होगा। किसी उपायसे जीवन यापन करना बुद्धिमत्ताका परिचय नहीं। प्रति मुहूर्तमें सेवामय जीवनयापन ही जीवनका साफल्य (सार्थकता) है। ये गुरु या आचार्य या आश्रयवस्तु श्रीनित्यानन्द हैं, दूसरे नहीं। वर्तमान गौड़ीय-मठाचार्य ही वह वस्तु हैं। इसीलिये कह रहा हूँ "दृढ़ करी धर निताइर पाय" श्रीगुरुदेव परम करुणामय हैं उनकी कृपाकी सीमा नहीं। वे हमारे मङ्गल न चाहने पर भी हमलोगोंका मङ्गल करने के लिये सर्वदा उद्विग्न रहते हैं। श्रीगुरुदेव की महिमा - कीर्त्तनमें हमलोगोंकी रुचि न रहनेपर भी आदरके साथ उनके गुण- महिमाका श्रवण करते ही उनके चरणमें हमलोगोंकी श्रद्धा या प्रीति होगी। हमलोगोंके निष्कपट होनेसे गुरुसेवकगण निश्चय ही हमलोगोंको गुरुसेवाका सन्धान देंगे, कितने स्नेह कीर्त्तन और आदरके साथ हमलोगोंको गुरुपादपद्मकी सेवामें नियुक्तकर श्रीगुरुकी प्रीतिका विधान करेंगे। भूलसे यदि कोई गुरुदास वैष्णवको एकमात्र आश्रय समझकर श्रीगुरुपादपद्मकी कथासे अलग रहना चाहे तो गुरुसेवक उसको यत्नके साथ श्रीगुरुपादपद्ममें आकृष्ट करते हैं। गुरुसेवक कभी भी किसीको अपना सेवक नहीं समझते उनकी सर्वत्र ही गुरुबुद्धि है। मैं सेवक हूँ-श्रीगुरुका नित्य अयोग्य भृत्य। श्रीगुरु ही एकमात्र हमारे सेव्य एवं गुरुकेसेवक सूत्रसे गुरुसेवकगण हमारे पूज्य या सेव्य हैं यही गुरुदासका भाव है। इसी गुरुदास्यमें उनके नित्य प्रतिष्ठित रहनेके कारण गुरुदासानुदासाभिमान ही उनका सम्बल (सर्वस्व) है। यह वैष्णवी प्रतिष्ठा सभी की काम्य है। इसके अतिरिक्त इतर-कामना गुरुदासकी नहीं रहती। गुरुदास सर्वदा गुरुका ही सङ्ग करते हैं, गुरुके ही साथ रहते हैं। वे गुरुका सङ्ग छोड़कर एक मुहूर्त्त भी नहीं रह सकते। गुरुके लिये ही उनका सब कुछ है। गुरुकी सेवा ही उनकी सत्ता है। श्रीगुरुदेव समस्त (सभी)वस्तु और

व्यक्तिको भगवान्की सेवामें नियुक्त करते हैं और गुरुदास वैष्णव सभीको गुरु सेवामें नियुक्तकर देते हैं। वे सर्वत्र गुरुका अवस्थान उपलब्ध करते हैं। गुरुके असाक्षात या अज्ञानरूपमें कुछ भी कार्य नहीं करते। वे जानते हैं कि अन्तर्यामी श्रीगुरुदेव सर्वत्र अवस्थानकर उनके प्रत्येक कार्यकलापको दर्शन कर रहे हैं, नवीन सेवाकी प्रेरणाकर रहे हैं और इङ्गित कर रहे हैं।

उसका प्रत्येक कार्य- श्रीगुरुको सन्तोष दे रहा है कि नहीं, यह वे सर्वदा सतर्कताके साथ लक्ष्य करते हैं। उनकी विमुखता नहीं। इसीलिये वे गुरुपादपद्म की अविस्मृतिमें निमग्न रहकर सेवोन्मुखचित्त हो सर्वदा गुरु सेवामें विभोर हैं। ये श्रीगुरुदास श्रीगुरुपादपद्ममें जैसा प्रीतिविशिष्ट हैं, श्रीभगवान्में भी उनकी प्रीति वैसी ही है। गुरुमें प्रीति है किन्तु भगवान्में प्रीतिका अभाव-यह गुरुकी प्रीतिके नाम से कुछ दूसरा है। इसका कारण यह है कि गुरु और कृष्ण परस्पर अविच्छेद-सम्बन्ध विशिष्ट या अङ्गाङ्गिभावयुक्त हैं। सुतरां एकको छोड़कर एककी सेवा नहीं होती। श्रीगुरुपादपद्ममें पूर्ण शरणागति का जो भाव है वही श्रीगुरुदास सम्बन्धमें भी चाहिये। तात्पर्य यह है कि गुरु, वैष्णव और भगवान् ये तीनोंके प्रति प्रीति होना स्वाभाविकहै। यही श्रद्धाभक्ति है। तब मूल (जड़) श्रीगुरुपादपद्म हैं। उसकी कृपासे ही सब कुछ होता है; नहीं तो सारी चेष्टा वृथा है।

परीक्षित (१)

महाराज युधिष्ठिरका कुरुक्षेत्रके युद्धमें विजय होने पर कृष्ण भगवान् युधिष्ठिरको राजगद्दीपर विठाकर अपने धामकी ओर गमन करनेके लिये तैयार हुए। उस समय एक घटना हुई। महाराज परीक्षितकी माता उत्तरादेवी बहुत घबराई हुई भगवानके चरणोंमें आ गिरीं। कारण पूछने पर बतलाया कि एक ज्वलन्त अस्त्र उनकी ओर आ रहा है। भगवान्ने समझा कि अश्वत्थामाने पाण्डवों के कुल का नाश करनेके लिये एक ब्रह्मास्त्र छोड़ा है। भगवानने तुरत उत्तराके गर्भमें प्रवेश कर सुदर्शन-अस्त्रसे ब्रह्मास्त्रको रोका। उस समय परीक्षितको भगवानके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ। परम पुरुषका वह सुन्दर रूप देखते हुए परीक्षितने सोचा--ये सुन्दर-मूर्त्ति वाले पुरुष कौन हैं? देखते देखते ही भगवान् अन्तर्द्धान हो गये। उसकेबाद शुभ कालमें अनुकूल ग्रहोंके सम्मिलित होने पर महाराज परीक्षित भूमिष्ठ हुए। धर्मराज युधिष्ठिरने ब्राह्मणोंके द्वारा बालकका जातकर्म करवाया और उनलोगोंको बहुमूल्य सामग्रियां भेंटकीं। ब्राह्मणलोगोंने सहर्ष कहा -- हे महाराज! आपके इस वंशधरके दैवात नाश होनेपर भी आपके प्रति अनुग्रह प्रकाश कर नारायणने इसको फिर लौटा दिया। इस बालकके भगवान्से रक्षित होनेकी वजहसे इसका नाम हुआ विष्णुरात। यह महात्मा, वैष्णवोचित और अन्य बहुतेरे गुणों से युक्त पुरुष होगा। यह मनुपुत्र इक्ष्वाकुके समान प्रजारञ्जक, श्री रामचन्द्रके बराबर प्रजाहितकारी और सत्यप्रतिज्ञ होगा। यह शिविराजाके तुल्य वदान्य और शरणागत पालक, महावीर धनंजय और कार्त्तवीर्यके समान धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ तथा दुर्जेय होगा।

यह बालक सिंहके समान शक्तिशाली, हिमालयके साधुओंकी अनन्यगति, पृथ्वीके समान क्षमाशील धीरतामें बलिराजाके तुल्य और लक्ष्मीपति नारायण के समान बराबर सकल प्राणियों का अवलम्ब होगा। यह जन्मेजय राजर्षिका जन्मदाता, असत्मार्ग में गमन शील व्यक्तियोंका शासनकर्ता और कलिका दण्डदाता होगा। पश्चात् शमीकके पुत्र शृंगके भेजे हुए तक्षक नागसे अपना विनाश जान विषयसे विरक्त हो श्री हरिके श्री चरणमें एकान्त भजनशील होगा और व्यासपुत्र शुकदेवके-मुखारविन्दसे परमार्थ तत्व सुनकर भगवच्चरणकमलको प्राप्त करेगा।

यह बालक, जन्मग्रहण करनेके उपरान्त, मातृगर्भमें दर्शन किये हुए परम पुरुष भगवानका ध्यान करते-करते, संसारमें जिसजिस प्राणीको देखता था उन सबकी ही परीक्षा करता था कि "यह क्या वही सुन्दर पुरुष है? इसलिये उसका नाम हुआ परीक्षित। वह बालकपनसे ही महाभक्त और सब जन-हितकारी हुआ।

महाराज युधिष्ठिर कलिकाल का समागम समझकर और परीक्षितको राज्य सौंपकर भगवच्चरणकमल का ध्यान करते हुए उत्तर दिशा की ओर चल पड़े। उनके भ्रातृगणने भी उन्हींका अनुगमन किया।

महाराज परीक्षितने उत्तरकी कन्या इरावतीसे विवाह किया और ब्राह्मणोंके उपदेशसे राज्यका संचालन आरम्भ किया। उन्होंने तीन अश्वमेध-यज्ञ का अनुष्ठान किया जिसमें देवताओंने प्रत्यक्ष रूपसे दर्शन दिया था और भद्राश्व, केतुमाल, भारत, उत्तर कुरु तथा किम्पुरुष वर्षों के राजाओं को जीतकर कर ग्रहण किया। उन सब स्थानोंमें भगवान् कृष्णचन्द्रके माहात्म्यके साथ अपने पूर्व पुरुष पाण्डवोंकी महिमा सुनकर बहुत ही हर्षित हुआ। जिन भगवान कृष्णचन्द्रको पृथ्वीके समस्त जीव प्रणाम करते हैं, उन्होंने ही पाण्डवों का सारथी, पार्षद, सभापति, सखा, द्वारपाल इत्यादि बन कर उनकी विचित्र सेवा की। यह सब बातें सुनकर भगवच्चरणकमलमें परीक्षित महाराजकी अत्यन्त भक्तिका उदय हुआ।

इसी समय एक घटना परीक्षितके कर्णगोचर हुई। बैलरूपी धर्मने एक चरणमें टहलते टहलते गो-रूपिणी पृथ्वीको रोती हुई देखकर पूछा—हे पृथ्वी! क्या तुम्हारे शरीरका कुशल है। तुममें किसी बीमारीका लक्षण नहीं देख पड़ता परन्तु मलिन मुखकान्ति देख कर यह समझ पड़ता है कि तुम्हारे हृदयमें कुछ कष्ट है। क्या तुम्हें किसी दूरस्थित मित्रके लिये शोक है अथवा मेरा तीन चरण शून्यभाव देखकर ही यह कष्ट है; वा कलिमें शूद्र राजा तुम्हारे ऊपर आधिपत्यका विस्तार करेंगे यह जान दुःख होता है। आजकल पतिलोग स्त्रियोंका और पितृगण संतानोंकी रक्षा नहीं करते हैं बल्कि राक्षसोंके समान व्यवहार करते हैं। सरस्वती देवी सदाचारहीन ब्राह्मणोंकी सेवा करती हैं तथा श्रेष्ठ ब्राह्मण लोग विप्रद्वेषी क्षत्रियोंके सेवक बन गये क्या यही तुम्हारी तकलीफकी वजह है? कलि द्वारा आक्रान्त अधम क्षत्रियगण भविष्यमें राज्यका नाश करेंगे अथवा प्रजागण शास्त्रकी आज्ञा न सुनकर अपनी अपनी इच्छाके अनुसार पान, भोजन, अवस्थान, स्त्रीसंगादी करते हैं, यही एक दुःख का कारण है? हे धरित्रि! जिन भगवान् श्रीहरिने तुम्हारे प्रबल भार हटानेके लिये अवतीर्ण हो अनेक आनन्दप्रद लीलायें की थीं, वे ही भगवान् अन्तर्द्धान कर चुके

क्या तुम इसीलिये सोचरही हो ? पहिले तुम्हारा जो सौभाग्य था, क्या कालने उसका हरण कर लिया ?

धरणीने कहा...हे धर्म ! सत्य, शौच, दया, त्याग, सरलता, शम, दम, तपस्या, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य इत्यादि महत गुणोंके नित्य आश्रय भगवान श्रीहरि ने इस मृत्युलोकको त्यागा, इसी कारण मैं शोचकर रही हूँ। आपको, मेरी, तथा देवतागण पितृगणसाधुगण ब्राह्मणादि वर्ण और ब्रह्मचर्यादि आश्रमोंकी बुरी दशा देखकर मैं दुःखित हूँ। ब्रह्मादि देवोंने जिन कमलाकी किंचित् कृपाके लिये बहुत दिन तपस्याकी थी वही लक्ष्मीजी अपना निवास-स्थान कमलवन छोड़कर जिस कृष्ण भगवानके श्रीचरण कमलकी सेवा अनुराग -सहित करती हैं, उन भगवानके श्रीचरणारविन्द के विचित्र चिन्हसे मैं शोभायुक्त थी, शायद उससे मेरा गर्व हुआ था। उसीगर्वके नाश करनेके लिये ही श्रीकृष्णने मुझे छोड़कर अपने धामकी ओर पधारा है। मेरे शोकका कारण यही है। मेरे हजारों असुरराजासे पीड़ित होनेसे जिन भगवानने असुरोंका विनाशकर मेरा बोझ हटाया, यदुकुल में जन्म लेकर आपकी भी रक्षा की जिनकी प्रेमपूर्ण दृष्टिसे सत्यभामा आदि कामिनियां अपनी अपनी धीरता और अभिमान खो बैठी थीं, जिनके चरण स्पर्शसे मुझेभी अत्यन्त आनन्द का अनुभव होता था, उनकी विरह कौन सहन कर सकता है ? उन दोनोंमें ऐसा बार्त्तालाप होता था इसी मौके पर परीक्षित् महाराज कुरुक्षत्रके समीप सरस्वती के किनारे आ पहुंचे।

महाराजने वहां देखा कि एक शूद्र राजा एक गाय और एक बैलको दण्डसे ताड़ना कर रहा है। बैल डरके मारे एक पैरके ऊपर खड़ा हो बीचमें पेशाब करता है और गाय अत्यन्त कातर हो घास खानेकी इच्छा करती है। महाराजने ऐसी दशा देखकर बहुत ही क्रोधसे धनुषबाण लेकर गम्भीर स्वरसे पूछा---अरे तू कौन है ? तेरी इतनी शक्ति है कि तू मेरे शरणागत दुर्बल प्राणी की हिंसा करता है, तेरा वेष राजाका है किन्तु तेरा कार्य तुझे शूद्र बतलाता है। भगवान कृष्णचन्द्रके गाण्डीवधारी अर्जुनके साथ पृथ्वी त्यागनेके कारण ही क्या तेरी ऐसी हिम्मत हुई है ? इसलिये तुझको दण्ड देना मुनासिब समझता हूँ।

तत्पश्चात् बैलसे कहा-तुम कौन हो ? तुम्हारा वर्ण मृणालके समान शुभ्र है। क्या तुम कोई देवता हो ? बृषरूप धारण करके मुझे ठगते हो। कौरव श्रेष्ठ वीरोंके द्वारा इस राज्यमें तुम्हारे सिवा और किसीको रोते नहीं देखा। तुम्हें घबरानेकी आवश्यकता नहीं है।

इसके बाद गायसे कहा -हे माता। तुम्हारे रोदन की भी जरूरत नहीं है। मैं दुष्टों का शासन कर्त्ता वर्तमान हूँ। मेरे रहते तुम्हरा मंगल अवश्य ही होगा। जिनके राज्यमें प्रजालोग असत व्यक्ति के द्वारा पीड़ित होते हैंइस दुराचारी राजाकी आयु, परलोकादि सभी नष्ट हो जाते हैं।

पीड़ितोंका कष्ट हटाना ही राजाका परम धर्म है। अतएव मैं इस असाधु श्रेष्ठ शूद्रका विनाश करूंगा। हे सुरभीनन्दन ! तुम चतुष्पद हो। तुम्हारे और तीन पांव किसने काट डाले। श्री कृष्णके अनुयायी पाण्डवोंके राज्य में तुम्हारे समान कष्ट और किसी ने नहीं उठाया। हे वृष ! मुझे बताओ किस व्यक्तिने पाण्डवोंकी कीर्त्ति कलुषित की है जो-निरपराध व्यक्तिको तकलीफ देता है। मुझसे उसका भय अवश्य ही है। दुष्टोंके दमनसे ही साधु-

ओं का मंगल होता है। जिस दुर्वृत्तने निर्दोष जीवोंकी हिंसा की है उसे देवता होने पर भी मैं सजा दूंगा। जो लोग शास्त्रके अनुसार धर्मका पालन करते है उनलोगोंका पालन करना और जो शास्त्रकी आज्ञा लंघन करते हुए स्वतन्त्र भावसे कार्य करता है उसका शासन करना ही राजा का परम धर्म है।

धर्मनेकहा-हे महाराज! जिस वंशके गुणों से आकर्षित हो कृष्ण भगवानने अपनी इच्छासे दूतोंका कार्य करना स्वीकार कर लिया था, उन पाण्डवोंके वंशधर आपकी ये बातें सुनासव हैं पर किससे प्राणियों का क्लेश होता है वह वाक्य भेदसे समझा नहीं जा सकता। किसी किसी का कथन है कि भेदके अवस्थानके कारण क्लेश होता है, भेद ही सत्य-वस्तुको आच्छादित करता है। योगी कहते हैं कि आत्मा ही आत्मा का प्रभु है। वह भगवान से स्वतंत्र होने की वजह सुख या दुःख प्राप्त करता है। अद्वैतवादियोंके विचारमें द्वैत वस्तु मिथ्या होनेके कारण, सुख दुःखकी बिलकुल उत्पत्ति नहीं मानी जाती। वेदके आश्रयमें ही इन सब मतोंकी सृष्टि हुई है। अवैदिक मत से भी मालूम होता है कि ग्रह नक्षत्रादि ही सुख दुःखके कारण हैं। पूर्व मीमांसाकार जैमिनीके अनुसार जीवके द्वारा अनुष्ठित धर्म को ही कारण समझा जाता है। नास्तिक चार्वाक आदि स्वभावका ही कारण निर्णय करते हैं। सांख्यवादियों की विचारधारा दूसरी हो है। कोई कहता है कि वचन और मनके अतीत भी अनिर्दिष्ट कारण है जिससे इन की उत्पत्ति होती है। अतएव हे वैष्णवराज आपही कृपाकर अपनी बुद्धिसे इसका विचार कीजिये। धर्मकी बातें सुनकर सम्राट परीक्षित् ने विशेष ध्यानसे सोच कर कहा-हे धर्मज्ञ! धर्मशास्त्रमें कहते हैं कि अधार्मिक तथा पापिष्टकी जो लोक में गति होती है अधर्मको बनाने वालोंको भी उसी स्थानमें जाना पड़ता है। इसी लिये अपने अनिष्ट कार्योंको जान बूझकर भी नहीं बता रहे है। सुतरां आप स्वयं ही धर्म हैं और वृष का रूप धारण किया है। किम्वा देवी मायाकी गति जीवोंको इन्द्रियातीत है सत्य युगमें सत्य,तपस्या,शौच और धर्म इन चार वस्तुओं से आपके चार चरण पूर्ण थे अब कलिके प्रभावसे तीन पांव नष्ट हो गये अर्थात् तपस्या, शौच और धर्म ये तीन वस्तुएं नष्ट हो गईं। जो चरण बाकी है, वह है सत्य। अधर्मरूपी कलि उसको भी नाश करना चाहता है। ये गोरूपिणी पृथ्वी हैं, ब्राह्मणोंके अनहितकारी शूद्र लोग उनका सम्भोग करेंगे इसी कारण यह पृथ्वी सोच रही है। ऐसा कहते हुए धर्म और पृथ्वी को आश्वासन देकर महाराजने कलिको काटनेके लिये अस्त्रधारण किया। कलि परीक्षित् को मुस्तैद देखकर राजवेष छोड़कर महाराजके चरणों में गिर पड़ा। दीनवत्सल शरणागतपालक महाराज परीक्षित् कलिको पैरोंमें पतित देखकर उसके विनाशसे निवृत्त हो उससे बोले हे कलि! गुडाकेश अर्जुनके वंशधरोंके निकट अंजलिबद्ध होनेसे किसीको और भय नहीं रहता। पर तुम मेरे राज्यमें कहीं भी ठहर नहीं सकोगे। तुम अधर्म के प्रधान सहचर हो। तुम्हारे राजशरीरमें वर्तमान रहने से तुम्हारे पश्चात् लोभ, मिथ्या, चोरी, दुष्टता, स्वधर्मत्याग, अलक्ष्मी कपटता, झगड़ा, दम्भ प्रभृति अधर्म सकल आ उपस्थित होते हैं। सुतरां हे अधर्मबन्धु, जहां धर्म और सत्यको रहना चाहिए, जहां याज्ञिक ब्राह्मण सदा यज्ञ द्वारा यज्ञेश्वर विष्णुकी पूजा करते हैं और जहां सचल तथा अचलोंके आत्मा याज्ञिक

गणोंके मंगलका विधान करते हैं, उस ब्रह्मावर्त प्रदेशमें तुम ठहरनेके योग्य न हो। महाराजकी ऐसी आज्ञा होने पर कलिने कांपते हुए कहा,---हे सार्वभौम! आप पृथ्वीके एकमात्र सम्राट हैं। सुतराम् मैं जहां निवास करनेकी इच्छा करूंगा वहां आपके शासनदण्डको मेरे लिये तैयार देखूंगा। अब आप ही कृपाकर मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं कहां ठहरूं। कलिकी यह प्रार्थना सुनकर परीक्षितने उसे चार स्थान का निर्देश कर दिया। [१] द्यूतक्रीड़ा, [२] पान, [३] स्त्रीसंग और [४] प्राणिहिंसा। द्यूतक्रीड़ा कहनेसे ताश, पाशा, जुआ, घुड़दौड़, इत्यादि बेकार खेलोंको समझना चाहिये। ये सब खेल बिभिन्न स्थानोंमें विभिन्न प्रकारके हैं। 'पान' कहनेसे नशीली चीजें समझी जाती हैं। पान, तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट, चा, अफीम, गांजा, भांग, शराब, इत्यादि 'पान' में गिने जाते हैं। इनसे चित्त चंचल होता है। जो धार्मिक होना चाहते हैं उनको इन चीजोंसे पृथक् रहना चाहिये। स्त्रीसंग दो किस्म का है--अपनी स्त्रीमें अत्यन्त आसक्ति और असली (?) स्त्रीका संग करना। जिन जिन सम्प्रदायोंमें ये सब व्यापार चलते हैं, वहां कलि विराजता है, सुतराम् उन स्थानोंमें धर्मका लेश भी नहीं है। प्राणिहिंसाको 'सूना' भी कहते हैं। जो व्यक्ति भगवत् भजन करते हैं वे ही इससे स्वतन्त्र रहते हैं। कारण कि उनकी हरेक चेष्टा भगवत्सेवाके लिये ही है। हरिसेवाविमुख जीव क्षण क्षणमें जीवहिंसा करते हैं। कर्मकाण्डके प्रायश्चित्तमें पंचसूनाके निवारणके लिये पंच यज्ञकी व्यवस्था है। उससे पापबीजका नाश नहीं होता। प्राणिहिंसा बहुत किस्मकी है। अपने शरीरको पुष्ट करनेके लिये दूसरे-प्राणीकी हत्या करनेसे हिंसा होती है। इस जन्म में जिसको बध किया जाता है वह दूसरे जन्म में उसका बदला लेता है अर्थात् बधकारीको बध करता है। केवल अपने हाथसे बध करने से ही हिंसा समझी जाती है, ऐसा नहीं। बल्कि मनुसंहितामें यह भी कहा है कि

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्त्ता चोपहर्त्ता च खादकाश्चेति घातकाः॥

जो आज्ञा देता है जो मांसका विभाग करता है, जो स्वयं हत्या करता है, जो खरीदता है, जो परोसता है और जो भोजन करता है--इन सब व्यक्तियोंको घातक वा हत्याकारी समझना चाहिये। कर्मकाण्डमें जो यज्ञादि कार्यमें पशुहिंसा की व्यवस्था है, वह केवल प्रवृत्ति मार्गके व्यक्तिको निवृत्तिमार्गमें ले जानेके लिये ही है।

उपर्युक्त चार स्थान प्राप्त करने पर भी कलिने फिर एक स्थान मांगा जहां इन चारों वस्तुओंका निवास हो सके। उसकी प्रार्थनाके अनुसार पुनश्च महाराजने अर्थको भी दे दिया। उसीमें मिथ्या अहंकार, काम, हिंसा, क्रोध आदिका निवास है। सुतराम् जो व्यक्ति अपनी उन्नति चाहता है, वह इन सब स्थानोंमें कभी नहीं रहेगा। विशेषतः धार्मिक व्यक्ति, राजा, मुखिया, गुरु प्रभृतिको इससे सर्वदा हुशियार रहना चाहिये। इसके उपरान्त महाराज परीक्षितने वृष के चारों चरणोंको संयुक्त कर दिया और पृथ्वीको मधुर वचन से आश्वासन दिया। जिस दिन कृष्ण भगवान्ने इस पृथ्वीको त्यागा उसी दिनसे कलिने पृथ्वी पर अपना आसन जमा लिया। सम्राट परीक्षित्ने कलिको बिलकुल नष्ट नहीं किया। कारण, वे सारग्राही थे। उन्होंने देखा कि कलियुगमें केवल नाम संकीर्त्तनसे मनुष्य समस्त पापों का नाश करके परमपुरुषको प्राप्त कर सकता है। बालकोंके पास ही जिसकी वीरता है, और साधुओंको देखनेसे ही जो डरता है, उसके अवस्थानसे कुछ भय नहीं है।

शरणागति

साधक-जीवनकी प्रथम एवं प्रधान आवश्यकता शरणागति है। भजन-राज्यमें प्रवेशके साथ ही प्राथमिक शिक्षाके सदृश इस बातकी शिक्षा दी जाती है। सिद्ध अथवा प्रयोजन (भगवद्प्रेम) प्राप्त होने तक तथा उसके उपरान्त भी शरणागति ही एकमात्र वरणीय वस्तु है। यह शिक्षा जो जितना ग्रहण कर सकते हैं अर्थात जितना शरणागत हो सकते हैं भजन-पथमें क्रमशः वे उतनीही उन्नति कर सकते हैं। शरणागत नहीं होनेसे भजन-राज्यमें प्रवेशाधिकार नहीं होता। दाम्भिकताके अवलम्बन करनेसे भजनराज्यमें प्रवेश तो दूरकी बात रही, भजनराज्यका अनुसन्धान भी नहीं मिलता। एकान्त शरणागत जन ही मानवजीवनका परम प्रयोजन कृष्ण चरणारविन्द प्राप्त कर सकते हैं, दूसरों के लिये यह सम्भव नहीं है। यहां पर प्रश्न हो सकता है कि किसका शरणापन्न होना चाहिये ?

इसका उत्तर यह है कि कृष्णके जो पूर्ण शरणागत हैं, सौ हिस्सेमें सौ हिस्सा कृष्णकी प्रसन्नताके कार्योंमें तत्पर हैं, अपने किसी सुख सुविधा वा लाभ की आशासे नहीं, कृष्णके सुखके लिये वा सेवाके उद्देश्यसे ही सेवा करना सेवकका एकमात्र कृत्य है, यह जानकर जो सेवा करते है, वे ही सच्चे शरणागत साधु हैं। जो पूर्ण शरणागत हैं, एकमात्र वे ही शरणागतिके शिक्षक हो सकते हैं/ उसी शरणागत साधुका अनुगत [आश्रित] होना पड़ेगा। कारण, हमलोगोंका साधन कृष्णप्रीतिविधान करनेकी योग्यता प्राप्त करनेके लिये है। जो इस कार्यमें तत्पर हैं— वेही उसकी योग्यता दे सकते हैं, यह और किसीके लिये साध्य नहीं है। इसप्रकार के शरणागत साधु ही श्रीगुरुदेव वा श्रीआचार्यदेव हैं। श्रीआचार्यदेव जगद्गुरु हैं, और उन्होंने शरणागतिके शिक्षारूप से जो आदर्श जगतमें स्थापित किया है उस आदर्शको शरीर, मन तथा वचन द्वारा अनुसरण करने से ही पतित जीवोंके समस्त अमंगल दूर हो जायेंगे। सर्वस्व समर्पण करके जो कृष्णके हो गये हैं कृष्ण को छोड़कर जिनको और किसी विषयकी चिन्ता नहीं है, उन कृष्णभक्तको शरणागत होनेके लिये सम्यगरूपसे उनकी वाणीका अनुसरण करना होगा (अर्थात उनके उपदेशानुसार चलना होगा)। वाणीको छोड़ देनेसे उनका वास्तवरूपसे अनुसरण नहीं हो सकेगा। वास्तव रूप से अनुसरण नहीं करने से अनुगत होना सम्भव नहीं होगा। सुतरां श्रीआचार्यदेवके सहित समचित्तवृत्ति - विशिष्टता (एक ही प्रकारका चित्त वृत्तिका होना) उनके आचार प्रचारका वास्तविक अनुगमन, उनके अनुग्रह निग्रहको (ताड़ना) समभावसे ग्रहण करना, अपनी निष्कपट आर्ति, दैन्योक्ति, अपनी अयोग्यताको जानकर सेवा प्रार्थना, और उनकी कृपा बिना अपने अथवा दूसरोंकी चेष्टा द्वारा कुछ लाभ नहीं होता—इस प्रकारकी पूर्ण निर्भरता ये अनुसरणकारीका लक्षण है। जो इस प्रकार की अवस्था में प्रतिष्ठित हुए हैं, उन्होंने सत्य रूप से आनुगत्य स्वीकार किया है। पूर्ण शरणागत नहीं होनेसे भजन आरम्भ ही नहीं होगा, हरि नामके बदले नामापराध होगा।

अनुगत होनाही वैष्णव धर्मका मूल उपदेश है। सुतरां श्री गुरु वैष्णवकी सेवाप्राप्ति की थोड़ी सी आकांक्षा यदि हृदयमें उदित हो

तो अपनेको सम्पूर्णरूपसे उनके चरणारविन्दमें नहीं समर्पण करनेसे कभी भी सेवालाभ नहीं होता। वर्तमान समयमें हमलोग जैसे अनुगत हैं उससे नित्यमङ्गलकी आशा अत्यन्त दूर है। मायाका दासत्व करके सम्पूर्ण रूपसे मायाका ही आनुगत्य हमलोगों ने स्वीकार किया है। यद्यपि हमलोगोंमेंसे कुछलोग मुखसे अपनेको अनुगत कहकर परिचय देते हैं तथापि निष्कपट होकर विचार करनेसे ही मालूम हो जाता है कि हम किस प्रमाणमें शरणापन्न हो सके हैं। स्वतन्त्र जीवन यापन अर्थात् आनुगत्य स्वीकार नहीं करनेकी ऐसी तीव्र आकाङ्क्षा क्यों देखनेमें आती है? मुखसे अनुगतका अभिनय करके हृदय की गुफामें स्वतन्त्र जीवन-यापन करनेकी आकाङ्क्षाका मूल कारण हमलोगोंकी दुर्दमनीय भोग प्रवृत्ति है। यह विरूपका (कुत्सित, कुरूपका) धर्म है-- इस धर्म में स्वभावका विकृत (मलीन) प्रतिफलन (प्रतिबिम्बन) होता है। जिस प्रकार दर्पणमें प्रतिबिम्ब देखने से स्वाभाविक अवस्थाके विपरीतका दर्शन होता है, उसी प्रकार हमलोगोंके सच्चे स्वभावका विपर्यय होनेसे हमलोगोंकी प्रत्येक धारणा कार्य, चेष्टा तथा चिन्ता स्रोत, विपरीत भावकी देखी जाती है। भोक्ताके अभिमानसे (अर्थात् मैं भोग करूंगा इस विचार से) प्रभुत्व की कामना प्रति अणुपरमाणुमें घुसा हुआ है। संसारको दिखलानेके लिये अनुगतका अभिनय, इसी कारण अधिक दिन तक नहीं ठहरता है, कुछ दिन तक गुप्त रहकरसुविधा पानेसे ही प्रभुत्व करनेकी इच्छा फिर पूर्णरूपसे हृदयमें जागृत हो जाती है। विकृत स्वभावसे उत्पन्न ऐसी रुचिको अपने सच्चे स्वभावमें फिराकर लाने के लिये आनुगत्य स्वीकार करने अर्थात् श्रेष्ठ साधुका दास हो जानेके सिवा और कोई उपाय नहीं है। (क्रमश)

विविध-संवाद

गत ५ तथा ६ मार्चको श्रीगौड़ीय मठ, बम्बईके प्रेमियोंने महाप्रभु श्री कृष्णचैतन्यके आविर्भावकी तिथिका उत्सव कल्याण दास बिल्डिङ्ग, गोवालिया टैंक स्थित श्रीगौड़ीय मठमें बहुत ही समारोहके साथ मनाया। उस रोज पूजा अर्चा सेवा कथा, व्याख्यान नाम संकीर्त्तन, महाप्रसादका वितरण इत्यादि हुआ।

५ मार्चको श्रीमन्महाप्रभुके आविर्भावकी तिथिके दिन, मठके ब्रह्मचारियोंने आरती इत्यादिके बाद विधिपूर्वक नाम-संकीर्त्तन किया। उसके बाद एक ब्रह्मचारीने अंग्रेजीमें उस तिथीकी महत्ता पर भाषण दिया जिसके अन्तमें महामन्त्रका कीर्त्तन हुआ। तदनन्तर श्री चैतन्यभागवतका पाठ हुआ। सन्ध्या ६॥ बजे नामसंकीर्त्तनके बाद सन्ध्यारतीकी गई। सन्ध्यारतीके बाद श्रीपाद राघवचैतन्य ब्रह्मचारी तथा अन्य ब्रह्मचारियोंने अंग्रेजी, गुजराती तथा हिन्दीमें श्री चैतन्य महाप्रभुकी जीवनीका वर्णन किया। ततपश्चात महामन्त्रका कीर्त्तन हुआ। उसके बाद महाप्रसादका वितरण किया गया।

६ मार्चको ९ बजेसे ३ बजे तक करीब ४०० भक्त लोगोंको अनेक प्रकारके प्रसाद वितरण किये गये। पंचमुखी मन्दिर, भुवनेश्वरके महन्त श्री नरसिंहदासजी महाराजने प्रसाद वितरण का खर्च दिया। महन्त जी ने इस सुकार्जमें बहुत उत्साह दिखलाया तथा भविष्यमें भी यथा शक्ति श्रीगौड़ीय मठकी सहायता करना स्वीकार किया। ये उत्सव बहुत ही समारोहके साथ सम्पन्न हुये।

SREE KRISHNA CHAITANYA

By Prof. N. K. SANYAL, M. A.

Late Senior Professor of History, Ravenshaw College, Cuttack.

A rational, scientific and comprehensive study, based on the SHRAUTA PATH, with a highly appreciative foreward by His Divine Grace Paramahansa Srimad Bhakti Sidhanta Saraswati Goswami with an Introduction containing full information for following the narrative of events, as well as with an Index and a Glossary. Royal 8 vo 800 pages, handsome calico jacket—Price Indian Rs. 15/- ; Foreign 21 s. nett

To be had at **SREE GAUDIYA MATH,** Baghbazar, Calcutta.

SREE BRAHMA SAMHITA (Fifth Chapter)

With commentary by Sri Jeeva Goswami and translation and purport in English by His Divine Grace Sreemad Bhakti Sidhanta Saraswati Goswami.

First class calico binding—Rs. 2-8-0.

RELATIVE WORLDS

A lecture delivered on the 28th August 1932 at the Saraswati Assembly Hall of Sree Gaudiya Math, Calcutta by His Divine Grace Ans. 0-6-0

A few words on Vedanta by His Divine Grace—Ans. 0-8-0

The Vedanta its Morphology and ontology by His Divine Grace—Ans. 0-8-0

THE BHAGBAT

Its Philosophy, Its Ethics and its Theology. New enlarged edition with an appendix by Srila Prabhupad. Full calico bound—Rupee One. Thick paper bound—Twelve Ans.

(बंगला में)

श्रीमद्भागवतम्

महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यास—प्रणीत, मूल, श्रीमन मध्वाचार्यकृत तात्पर्य निर्णयटीका, श्रीमद् विश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठाकुर-कृत सारार्थदर्शिनी टीका, बंगानुवाद, संस्कृत अन्वय व प्रतिशब्द, तथ्य व विवृत्यादियुक्त। प्रति स्कन्धके आरम्भमें उस स्कन्धका प्रतिपाद्य कथासार, प्रत्येक अध्यायके प्रथममें उस अध्याय सारके साथ सुविस्तृत तात्पर्यादि विवृत है। श्लोकसूची, विषयसूची अध्याय-विवरण, पत्र व स्थान-सूचीके साथ उत्तम कागजपर उत्तम अक्षरमें मुद्रित। प्रथमसे १०वां स्कन्धतक छपा सम्पूर्णरूपमे शेष हो गया है। भिक्षा प्रथमसे ९वां स्कन्धतक ४०), १०म स्कन्ध सम्पूर्ण बिना बंधा हुआ ८) और कपड़ेकी बंधाई ९) मात्र।

श्रीश्रीचैतन्यचरितामृत

श्रील कविराज गोस्वामीकृत। श्रीभक्तिविनोद ठाकुर रचित 'अमृतप्रवाहभाष्य' व श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद-लिखित 'अनुभाष्य' श्रुति-स्मृत्यादि अनेक शास्त्र प्रमाणके साथ प्रकाशित हुए हैं। श्लोककी सान्वय व्याख्या, बंगानुवाद व प्रत्येक पयारके पूर्व संक्षिप्त अभिप्राय संयोजित है। प्रत्येक अध्यायके आरम्भमें उसी अध्यायका कथासार लिखा हुआ है। श्लोक, पयार, शब्द, स्थान, पात्रका सुवृहत सूची व ग्रन्थकारकी विस्तृत जीवनी-समन्वित इस तरहका अभूतपूर्व संस्करण इसके पहले कहीं भी प्रकाशित नहीं हुआ है। उत्तम कागजपर सजावटके साथ मोटे अक्षरमें मूलांश मुद्रित हुआ है ग्रन्थ प्राय २५०० पृष्ठमें सम्पन्न है। भिक्षा बिना बंधा हुआ ६) कपड़ेकी बंधाई ७) मात्र।

श्रीचैतन्यभागवत

श्रीश्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद-रचित गौड़ीय भाष्यके साथ ग्रन्थका आयतन—क्राउन ४ पेजी मूल १०९६ पृष्ठ, सूचीपत्र २४४ पृष्ठ—कुल १३४० पृष्ठ भिक्षा—६) मात्र (बिना बंधा हुआ)।

श्रील प्रभुपादकी पत्रावली—(तृतीय खण्ड)

आचार्य-प्रकट तिथिमें श्रील प्रभुपादकी पत्रावलीका तृतीय खण्ड प्रकाशित हुआ है। प्रत्येक पत्र विशेष शिक्षाप्रद व सारगर्भ उपदेशसे परिपूर्ण है। हमलोग प्रत्येक मंगलकामी व सत्यका अनुसन्धान करनेवाले व्यक्तिको इस पत्रावलीको पाठ करनेका अनुरोध करते हैं।

श्रीचैतन्यदेव

[illegible]

सरस्वती जयश्री

गौड़ीय-वैष्णवाचार्य ॐ विष्णुपाद परमहंस [illegible] प्रभुपादका [illegible] मंगलप्रद जीवनचरित ग्रन्थ है। [illegible] पाठसे युगपत् अनेक शास्त्रग्रन्थ पाठ व अनेक साधुसङ्गका फल लाभ कर सकेंगे। वैभवपर्वका प्रथम खण्ड रायल ८ पेजी आकारमें [illegible] कागजपर उत्तमरूपसे मुद्रित, ३[illegible] पृष्ठोंमें। विस्तृत सूचीपत्रके साथ उसमें अनेक चित्र भी दिये गये हैं। भिक्षा ४)

'सामयिक-संख्या'—गौड़ीय

सामयिक-संख्या गौड़ीय अनेक त्रिवर्ण व एकवर्ण चित्र-शोभित व अनेक श्रेष्ठ वैष्णवसाहित्यिकगणोंकी गवेषणापूर्ण प्रबन्धसे समलंकृत होकर प्रकाशित हुई है। श्रीधाम-मायापुरमें श्रीश्रीगौरजन्मोत्सवके उपलक्षमें सर्वसाधारणोंके लिये भिक्षा ॥) आना।

ठाकुर भक्तिविनोद

श्रीरूपानुगशुद्धभक्ति स्रोतके प्रवाहका मूल पुरुष ॐ विष्णुपाद श्रील ठाकुर भक्तिविनोदका जीवनचरित व शिक्षामाला बहुत सरल भाषामें बड़े बड़े अक्षरोंमें मुद्रित। भिक्षा ।॥) मात्र। प्राप्तिस्थान—कलकत्ता (बागबाजार) श्रीगौड़ीयमठ व ढाका—श्रीमाध्वगौड़ीय मठ।

अणुभाष्यम

चार अध्यायों ब्रह्मसूत्रके प्रत्येक अधिकरणका तात्पर्य श्रीमन्मध्वाचार्य-कृत श्लोकाकारमें बहुत संक्षेपमें बना हुआ। बंगभाषामें सर्वप्रथम संस्करण। पहले प्रति अध्यायके प्रतिपादका श्रीमन्मध्वाचार्य-विरचित अणुभाष्यमूल, उसके बाद प्रति अध्यायके प्रतिपाद का सूत्र-समूह, अणुभाष्य-मूलका बंगला अनुवाद, व श्रीपाद राघवेन्द्रयतिविरचित तत्वमञ्जरी टीका, उसका बंगला अनुवाद व तात्पर्य इस क्रमसे पुस्तक मुद्रित हुई है। इसके अतिरिक्त मातृका क्रमसे ब्रह्मसूत्र समूह, उसका अध्यायांक, पदांक व सूत्रांकके साथ सूचीपत्र भी संयोजित हुआ है। भिक्षा २) मात्र।

Printed by:- Brajeshwari Prasad, at The 'Indian Nation Press' and published by him from Sree Gaudiya Math, Mithapur, Patna.

वर्ष ५]

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः

Regd. No. P. 168.

संख्या ३]

भागवत

एकमात्र

पारमार्थिक

मासिक पत्र

५ मधुसूदन
गौराब्द
४५३

वैशाख कृष्ण ५
संवत
१९९६ वि०

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥१॥

जिससे इन्द्रियज्ञानातीत श्रीकृष्णमें श्रवणादि-लक्षणा फलानुसन्धानरहिता ऐकान्तिकी स्वाभाविक निरपेक्षा भक्ति उदय होती है, वही मानव जातिका सर्वश्रेष्ठ धर्म है। उसी भक्तिके बलसे अनर्थ शमन होने पर आत्मा प्रसन्नता लाभ करता है।

प्रति संख्या
-)॥

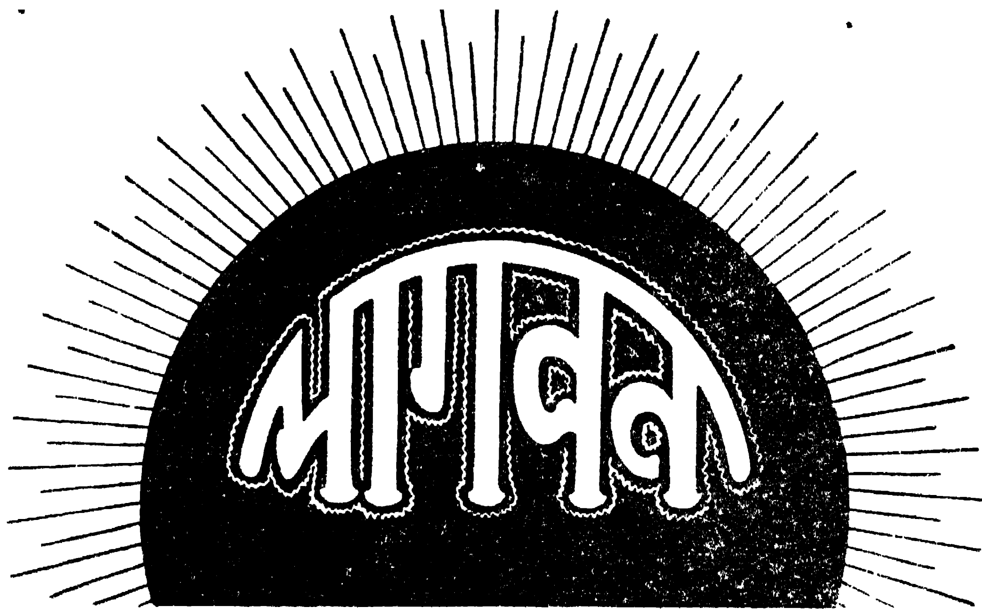
सम्पादक—पं० श्रीपाद रूपविलास ब्रह्मचारी भक्तिशास्त्री

वार्षिक ४)
डा० म०

Editor:— Pundit Sripad Rupbilas Brahmachari, Bhaktishastri B.A.

SREE GAUDIYA MATH Mithapur (Patna).

विषय सूची



वर्ष ५ | श्रीगौड़ीयमठ, मीठापुर (पटना) | संख्या ३

वं० कृष्ण ५, ४५३ सं० १९९६ वि०, ८ अप्रैल सन् १९३९ ई०

श्रीश्रील आचार्यदेव और राय बहादुर मदनगोपाल साहीना

गत १६ वीं अक्टूबर (१९३८) श्रीहरिवासर के दिन लखनऊके वाराणसी-बाग पल्लीस्थ 'श्रीकृष्णभवन' में युक्त प्रदेशके सींचाई विभागके सुपरिण्टेण्डिङ्ग इञ्जिनियर (Superintending Engineer, Irrigation Department, U. P.) राय बहादुर मदनगोपाल साहीना महाशयने श्री-गौड़ीय मिशनके सभापति परमहंस ॐ विष्णुपाद श्रीश्रील अनन्त वासुदेव परविद्याभूषण गोस्वामी प्रभुका दर्शन करनेके लिये आगमन किया था। १९३२ सालके नवम्बर मासमें जिस समय प्रभुपाद श्रीगुरुदेव व्रजवन-परिक्रमाके उपलक्षमें मथुरामें ठहरे हुए थे उस समय राय बहादुर साहीना महोदयने श्रील प्रभुपादके श्रीचरणोंका दर्शन कर उनकी कृपा प्राप्त की थी।

राय बहादुर साहीना परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डि-स्वामी श्रीपाद भक्तिसर्वस्व गिरि महाराजकी कृपा-से श्रीश्रील आचार्यदेवका दर्शन प्राप्तकर परमा-नन्दित हुए और उन्होंने श्रीश्रील आचार्यदेवको आचारोचित अभिवन्दनादिके द्वारा श्रद्धा प्रदर्शित की।

परदुःखदुःखी श्रीश्रील आचार्यदेव अहैतुकी कृपा-के वश होकर साहीना साहबको कहने लगे— दिन द्रुतवेगसे बीतता चला जा रहा है। अतएव

आपसे हमलोगोंकी सकातर विनीत प्रार्थना यही है कि हम आपमें श्रीश्रीप्रभुपादकी कृपा अर्थात श्रीनाममें ऐकान्तिक रुचि-परिस्फुटित और आपका हरिकथा-श्रवण-कीर्त्तनमें उत्तरोत्तर उत्साहान्वित देख सकें।

साहीना साहब— कई बार मेरे मनमें यह प्रश्न उठता है कि गौड़ीयमठकी शिक्षाके अनुसार हरिनाम-कीर्त्तन ही प्रधान साधन भजन है; किन्तु केवल हरिनाम-कीर्त्तनके द्वारा ही क्या चित्त स्थिर हो जायगा?

आचार्यदेव—हरिनाम-कीर्त्तन केवल प्रधान भजन ही नहीं' वही एकमात्र भजन—एकमात्र भजन—एकमात्र भजन है। दशविध नामापराधको परित्याग कर जो श्रीहरिनाम कीर्त्तन किया जाता है, वही श्रीनाम-कीर्त्तन है— अपराध-युक्त कीर्त्तन 'कीर्त्तन' नहीं है।

साहीना सा:—वे दस प्रकारके नामापराध कौन कौन है?

आचार्यदेव—'साधुनिन्दा' प्रथम नामापराध है। साधुको 'असाधु' एवं असाधुको 'साधु' समझना ही साधु निन्दा है। यद्यपि कुछ लोग साधु शब्दको एक General term (साधारण शब्द) समझते हैं तो भी 'वैष्णव' ही प्रकृत साधुशब्द वाच्य हैं। पुरुषोत्तम विष्णुके सेवकका नाम ही वैष्णव, सेवक या भक्त है। "साधु" means eternally existent, eternally Cognisant, eternally Blissful (नित्य सत्, चित् और आनन्दमय)। संसारके धार्मिक-सम्प्रदायोंमें दो प्रकारके मत हैं—एक श्रुति-स्वतन्त्र आध्यक्षिक युक्ति-चालित (बुद्धि- द्वारा निर्णय किया हुआ) आरोहपथ और एक अधोक्षज (इन्द्रियातीत भगवान्) के पूर्ण शरणागतिका पथ या अवरोहपथ। आध्यक्षिक मतसे युक्ति या ज्ञानका पोषण करते करते भगवद्वस्तुको अनाम, अरूप, अगुण, अपरिकर, निर्लील, वा निर्विशेषरूपसे कल्पना करते हैं और शरणागतिके पथसे स्वप्रकाश वस्तु नित्य नाम, रूप, गुण, परिकर और लीलामय निरङ्कुश स्वराटप्रभु पुरुषोत्तमरूपसे आविर्भूत होते हैं।

संसारके तथाकथित धार्मिक और अधार्मिक सम्प्रदायोंके अधिकांश लोग ही प्रथम श्रेणीके अन्तर्गत हैं। जो दूसरे पथके पथिक है, वे साधु ही वैष्णव वा भगवद्भक्त हैं। वे भगवद्भक्ति, भगवान् और भक्तको नित्यवस्तुरूपसे उपलब्धि करते हैं—"ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः"—यही उनलोगोंका मंत्र है। जो पुरुषोत्तम ऐतिहासिक, रूपक, आध्यात्मिक वा आध्यक्षिक चिन्तास्रोतके परिमित वस्तु नहीं है, उन्हीं पुरुषोत्तमके सेवकको तथा-कथित निर्विशेषवादीके समान समझना प्रथम नामापराध है। प्रकृत (सच्चे) साधु कनक, कामिनी, प्रतिष्ठा यहांतक कि मुक्तिकी भी कामना नहीं करते। वे एकमात्र श्रीहरिनाम प्रभुकी नित्य सेवामें प्रतिष्ठित रहते हैं—सेवाके लिये ही सेवा करते—अन्य उद्देश्यसे नहीं करते हैं।

साहीना सा:—इस प्रकारके साधुको तो कोई काम ही नहीं रहता, वे निष्क्रिय अवस्था लाभ करते है।

आचार्यदेव पुरुषोत्तमके सेवक साधु सबसे अधिक Active वा सेवातत्पर होते हैं यह मैं पीछे कहूँगा। वे सब इन्द्रियोंसे सर्वदा अपने प्रभुकी सेवाके लिये निरन्तर चेष्टा करते रहते हैं। कृष्णसे आम्नाय परम्परा द्वारा शब्द ब्रह्मरूपसे जो वास्तव सत्य संसारमें अवतीर्ण हुए हैं, अहैतुक

कृपा-परवश होकर उसी सत्यवाणीको सर्वत्र वितरण (Broadcast) करनेमें उनलोगोंको एक मिनट भी विराम नहीं; वे सर्वदा सर्वेन्द्रिय-द्वारा Active वा सक्रिय रहते हैं ।

साहनी सा:—प्रथम नामापराध समझमें आ गया । द्वितीय क्या है ?

आचार्यदेव--शिवादि देवताओंको सर्वेश्वरेश्वर विष्णुका प्रतिद्वन्द्वी समझकर उनको विष्णुसे स्वतन्त्र या विष्णुके समान समझना द्वितीय नामापराध है। Krishna is the Transcendental Autocrat or Despot. He is the God of all gods or Absolute Prime cause of all entities. All other gods are mere effects of His Shakti with delegated powers higher than men, अर्थात् कृष्ण निरङ्कुश, स्वराट्, लीला-पुरुषोत्तम, सभी ईश्वरोंके ईश्वर, सभी कारणोंके कारण हैं । अन्यान्य अधिकारी देवता उनकी शक्तिके कार्यमात्र हैं तब मर्त्य मानवसे श्रेष्ठ हैं । देवताओंका जन्म और ध्वंस है, किन्तु विष्णु अज, नित्य, सनातन, विभु, चैतन्यानन्दमय विग्रह हैं; अतएव विष्णु और अन्यान्य देवताओंको समान समझना अपराध है ।

साहनी सा:—तृतीय नामापराध क्या है ?

आचार्यदेव - नामतत्त्ववित् गुरुदेवको मर्त्य बुद्धिके साथ असूया करना । भगवद्विमुखतारूपी पिता और कृष्ण-विस्मृतिरूपी मातासे दम्भके सहोदर असूया या मत्सरताकी सृष्टि होती है । नामाचार्यमें प्राकृत-बुद्धि, मनुष्य बुद्धि प्रभृति असूयाकी सन्तान-(सन्तति) हैं । श्रीगुरुदेवको पूर्णरूपसे, स्नेहमय नियामक और शासकरूपसे वरण तथा उनके पूर्ण आनुगत्यमें विश्रम्भसेवा स्वीकार करके श्रीहरिनामका अनुशीलन करना होगा । श्रीगुरुदेवका शासन और आनुगत्य परित्याग कर, उनकी सेवासे दूर रहकर या स्वकपोलकल्पित उनकी सेवाका अभिनय कर लक्ष लक्षबार नामाक्षर उच्चारण करनेसे भी वह गुरु अवज्ञाका अपराध होगा । श्रीगुरुपादपद्म बद्धजीवका बन्धन छुड़ाकर अर्थात् चतुर्विध अनर्थ दूर कर पूर्ण सच्चिदानन्द पादपद्मके साथ मिलन करा देते हैं— विमुख जीवको उन्मुखता उदय करा देते हैं; सम्बन्धज्ञान, अभिधेय और प्रयोजनरूप तत्त्व वस्तु प्रदान करते हैं । उनकी ऐसी परदुःखकातरता ही उनका नित्य स्वभाव है । वे एक ही साथ जीवपर दया, नाममें रुचि और वैष्णव-सेवाकी शिक्षाके आदर्शके स्वरूपमें अपना आचार्यत्व प्रकाश करते हैं। He is a Transcendental mediator between the Absolute Krishna and His Servitors--Transparent not opaque. उसी गुरुदेवमें मर्त्यबुद्धि करनेसे कभी भी मुखसे शुद्ध हरिनाम नहीं उच्चारित होंगे।

साहनी सा:—गुरुदेव क्या मनुष्य नहीं हैं ? उनको क्या श्रम, मृत्यु, और तृष्णा नहीं होती ? यदि ये सब धर्म उनमें भी हैं तो किस प्रकार उनको अतिमर्त्य कहा जायगा ?

आचार्यदेव—हमलोगोंके भोग्य-दर्शनसे अर्थात् "मैं द्रष्टा हूँ" इस बुद्धिसे देखनेसे ही भ्रान्त दर्शन है । जिसको मेरी भोग्य-दृष्टि माप सकती है वह वस्तु निश्चय ही मुझसे लघु है; वे मेरे गुरु नहीं हो सकते, उनको मौखिक भावसे 'गुरु' कहना विडम्बना मात्र है । गुरुको हमलोग दर्शन नहीं कर सकते, गुरुकी कृपासे गुरुपादपद्मका दर्शन होता है. हिरण्यकशिपु स्तम्भको जड़वस्तु-मात्ररूपसे दर्शन करता है , किन्तु अपने नहीं

विष्णु से द्वन्द्वमें उपलब्धि करनेवाले प्रह्लादको गुरु या विष्णु दर्शन ही होता है। श्रीगुरुपाद-पद्मके ज्ञानाञ्जन शलाका द्वारा जीवके जन्म जन्मान्तरका अन्ध चक्षु उन्मीलित होनेसे उनके निकट यह द्रष्टृ- दृश्य-विज्ञान प्रकाशित होता है। श्रीगुरुदेव जन्म मृत्यु या च धातुपाके अतीत वस्तु हैं; वे मेरे सदृश पतित जीवका उद्धार करनेके लिये नरसमष्टिसे अवतीर्ण होकर जा लीला करते हैं, उससे उनका दो स्वरूप प्रकाशित होता है—कृपा और वञ्चना। निष्कपट सेवोन्मुख व्यक्ति उनकी कृपामें अभिषिक्त होते हैं और आत्यन्तिक भोगोन्मुखलोग उनकी वञ्चनामें पतित होते हैं।

साहनी सा:—चतुर्थ नामापराध क्या है?

आचार्यदेव—श्रुत और श्रौत शास्त्रोंकी निन्दा। जो भगवान्के श्रीमुखसे निकलकर गुरु शिष्य परम्परा या आम्नाय धाराके मध्य होकर अवतीर्ण होते हैं, वही श्रुति हैं। गुरुदेव नित्य (सर्वदा) कीर्त्तन करते हैं। शिष्य नित्यकाल श्रवण करते हैं। यह कीर्त्तन और श्रवणकी नित्यताके कारण श्रुति नित्य और सनातन हैं।

श्रुति कोई व्यक्ति विशेषकी रचना नहीं, वे साक्षात् श्रीभगवान्के मुखसे निकली हुई वाणी हैं और श्रीभगवान्के अभिन्न विग्रह श्रीव्यासके द्वारा संसारके कल्याणके लिये विभक्त और व्याख्यात हैं। वेद एवं वेदानुग सात्वत स्मृति पुराण-पञ्चरात्रादि शास्त्र—सभी एक तात्पर्यमय हैं। इन शास्त्रोंमें भेददृष्टि या इनमेंसे किसी एककी अवमानना करने से उस व्यक्तिके मुखसे कभी भी शब्द-ब्रह्म-नामका कीर्त्तन नहीं हो सकता।

साहनी सा:—पञ्चम नामापराध क्या है?

आचार्यदेव—हरिनामके माहात्म्यको mere hyperbolic exaggeration of dogmatic and emotional men अर्थात् कितने साम्प्रदायिक कट्टर अन्धविश्वासयुक्त और जड़ीय भावुकगणों की धर्म-मादकतासे अभिव्यक्त अतिस्तुति (अर्थवाद) समझनेसे कभी भी उसके मुखसे शुद्धनाम उच्चरित नहीं होंगे।

साहनी सा:—(छठा) षष्ठ नामापराध क्या है?

आचार्यदेव—भगवान्के नामसमूहका अर्थान्तर कल्पना (अर्थ लगाना) या नामसमूहको अनित्य काल्पनिक व्यापार समझना। जिस प्रकार 'हरि' शब्दका अर्थ सिंह, साँप, वानर, मेढ़क, हँस, कोकिल, मयूर, अग्नि, सूर्य, यम इत्यादि। अज्ञ रूढ़ीका अवलम्बन कर ये सब प्राकृत अर्थ-वाचक नाम ग्रहण करनेसे 'हरिनाम' ग्रहण करना नहीं हुआ या हरि स्वरूपतः निर्विशेष वस्तु हैं, उनके नाम, रूप, गुण, परिकर, लीला चरम अवस्थामें कुछ भी नहीं रहेंगे, सामयिक भावसे साधककी सुविधाके लिये 'हरि', 'कृष्ण' इत्यादि ब्रह्मके एक नाम और रूप कल्पना किये गये हैं ऐसा विचार कर हरिनाम-ग्रहण करनेकी छलना करनेसे कभी भी उसके जिह्वापर शुद्धनाम उदय या उसका फल स्वरूप प्रेमोदय नहीं हो सकता।

साहनी सा:—सप्तम अपराध क्या है?

आचार्यदेव—नामके बलसे पापबुद्धि ही सप्तम अपराध है। हरिनामको पापनाशक मन्त्र समझ हरिनामका जप या उच्चारणकर पापस्रोत प्रवाहित रखनेकी चेष्टा। नामापराध ही से पापका नाश हो सकता है। अधर्म और धर्म, पाप और पुण्य ये सभी तुच्छ नामापराधके फल हैं। नामाभास से अविद्या-विनाशरूपी मुक्ति और शुद्धनामसे ही

कृष्णप्रेम प्राप्त होता है।

साहीना सा:—धर्म या पुण्य नामापराधका फल कैसे हो सकता है?

आचार्यदेव—धर्म, अर्थ, काम या अधर्म, अनर्थ, कामकी अतृप्ति अर्थात् पुण्य या पाप नाशवान कर्मफल-विशेष हैं। ये सब नामके अर्थात पूर्ण चेतनमय विग्रहकी सेवाके प्रतिबन्धक स्वरूप हैं। पूर्ण-सच्चिदानन्द-विग्रह श्रीनामके चरणोंमें अपराध होनेसे उनकी सेवाके प्रतिबन्धक-स्वरूप पुण्य और पापादि कर्मफलकी प्राप्ति होती है।

साहीना सा:—अष्टम अपराध क्या है?

आचार्यदेव—अन्य शुभकर्मोंके साथ अप्राकृत नाम ग्रहणको समान समझना अष्टम नामापराध है। हरिद्वार या प्रयागमें पूर्णकुम्भस्नान, तीर्थभ्रमण, यज्ञादि क्रिया, गो ब्राह्मण-भोजनादि कर्मको हरि नाम कीर्त्तनके साथ एक समान समझनेमें पूर्ण, विभु, आनन्दघन, चेतनका अनुशीलन नहीं हो सकता। हरिनाम कीर्त्तन is the direct service of Absolute Supreme Lord—परात्पर सच्चिदानन्दविग्रहकी साक्षात् सेवा है। अपनी स्वार्थसिद्धि अर्थात् धर्म, अर्थ, काम या मोक्षके लिये जो सब साधन हैं, उन सबोंके साथ निरङ्कुश स्वेच्छामय चैतन्यरसविग्रह नामकी सेवा कभी समान नहीं हो सकती।

कोटी अश्वमेध एक कृष्णनाम सम।
येइ कहे, से पाषण्डी, दण्डे तारे यम॥

साहीना सा:—यदि कोई अपने लिये यह सब न करके दूसरेके लिये या निष्कामभावसे करें?

आचार्यदेव—All altruistic acts are done for transitory purposes and not for the Absolute Person's sake. परोपकारी लोग सारा कार्य सामयिक और नश्वर व्यक्ति या वस्तुके अस्थायी उपकारके लिये ही करते हैं। उनलोगोंका सारा कार्य ही कालान्तरमें होता है, सुप्त होता है और फिर नाशको प्राप्त होता है। मनुष्यके परोपकार मनुष्यके लिये ही किये जाते हैं, अपर प्राणीगण कितने ही मौके पर उस उपकारसे वञ्चित होते हैं, यहां तक कि कभी कभी वे मांसाहारियोंके खाद्य और भोग्य पदार्थरूपसे भी व्यवहृत होते हैं!! उन लोगोंका चेतन सङ्कुचित और सुप्त है। उसी सङ्कुचित और सुप्तावस्थाको जागृत न करके उनलोगोंको भोग्यवस्तुरूपमें परिणत करना ही उनलोगोंका हिंसा करना है। मानवजातिके प्रति परोपकारी समाज जो नश्वर तात्कालिक उपकार करते हैं, वह भी एक प्रकारका हिंसा ही है, क्योंकि, उसके द्वारा मानवके चेतनकी सङ्कुचितावस्था विकसित और जागृत करनेके बदले उनलोगोंको देह और मनका सामयिक भोग ही आयोजित किया जाता है, उसके द्वारा सुप्त चेतन या आत्मा लेशमात्र भी जागृत नहीं होता।

साहीना सा:—यदि हमलोग पशु पक्षी इतर प्राणीको किसी अच्छे काममें नियुक्तकर उनलोगोंके द्वारा बहुतसे लाभदायक कार्य करा सकें, तबतो उनलोगोंका यथार्थ सद्व्यवहार ही किया गया। दुष्ट-लोगोंको सहायता देकर उनलोगोंके द्वारा संसारके बहुतसे कार्य किये जा सकते हैं।

आचार्यदेव—This is a mere bartering system—mere business, not doing real and absolute good to them. यह वणिक् वृत्ति या व्यवसाय है। इसके द्वारा उनलोगोंका आत्यन्तिक (प्रचुर) कल्याणकी चेष्टा नहीं हुई—हम लोगोंका तथा उनलोगों का अर्थात दोनों पक्षका इन्द्रिय-

तर्पण मात्र हुआ। All sentient or conscious or animate beings are meant for the service of one common Lord Krishna समस्त चेतन जगत एक अद्वितीय प्रभु कृष्णकी सेवाके लिये ही निर्दिष्ट है।

माईनो मा: इतर प्राणीगण किस प्रकार परमेश्वरकी सेवा कर सकते हैं?

आचार्यदेव—जो सब साधु या वैष्णव अपने प्रति दिये गये किसी सेवाको भी भोग या इन्द्रिय तर्पणके उद्देश्यसे आत्मसात् नहीं करते, उन साधुओंके हरिभजनके अनुकूल सेवाकर इतर प्राणीगण भी परमेश्वरकी सेवा कर सकते हैं।—('यत्तदद्भुत-क्रम-परायण-शील-शिक्षा-स्तिर्यग्जना अपि किमु श्रुतधारणा ये' —श्रीमद्भागवत) प्रकृत साधुगण इतर प्राणियोंको भी इसी प्रकार भगवद्भजनके अनुकूल कार्यमें नियुक्तकर इतर प्राणियोंका भी प्रकृत नित्य उपकार अर्थात् उनलोगोंके सुप्त और सङ्कुचित चेतनको धीरे धीरे (क्रम क्रमसे) मुक्तनियुक्त और उद्‌बुद्ध करनेकी चेष्टा करते हैं। यही इतर प्राणियोंके प्रति यथार्थ उपकार साधनकी चेष्टा है। जैन लोगोंके सदृश खटमलको मनुष्यका रक्त पान करा कर (खटमल खिलाकर) अथवा जराग्रस्त वा रोगी, वृद्ध वा दुर्बल पशुको पिञ्जड़े में रखकर तथाकथित अहिंसा-साधनके प्रस्तावके द्वारा उनलोगोंकी सुप्त चेतनको जन्म जन्मान्तरके लिये आवृत रखने वाली हिंसाकी प्रवृत्ति प्रकृत वैष्णवोंकी कभी नहीं रहती। श्रीमन्महाप्रभु झारिखण्डमें भ्रमण करते समय रास्तेमें हरिनाम-कीर्त्तन श्रवण करा कर हिरण, सिंह, व्याघ्र और भालू आदिके सुप्त चेतनका विकाश करनेका लीलाप्रदर्शन किया था। शिवानन्द सेनका कुत्ता श्रीमन्महाप्रभुका उच्छिष्ट ग्रहण और कीर्त्तन श्रवण कर नित्य वैकुण्ठ लोकका अधिकारी हुआ था। श्रील हरिदास ठाकुर उच्चस्वरसे हरिकीर्त्तन कर वनके पशु पक्षियोंकी चेतनताका उद्बोधन किया था।

माईनो मा:—ये सब प्राणी क्या केवल हरिकीर्त्तन श्रवण करकेही मङ्गल लाभ करते हैं, या साधुओंकी कुछ सेवा भी कर सकते हैं?

आचार्यदेव—साधु लोग जिस समय हरि-कीर्त्तन प्रचारमें गमनागमन करते हैं, उस समय घोड़ा, बैल प्रभृति पशु उनलोगोंको वहन कर साधु लोगोंके भजनके अनुकूल सेवा कर सकता है। गाय दूध दानकर हरिकीर्त्तन-कारी वैष्णवोंकी सेवा कर सकती है। कुत्ता चोर भगाकर या पहरेदारका कार्य कर हरिभजनकारी वैष्णवोंकी सेवा कर सकता है। काकादि पक्षी भी नानाप्रकारके मैल परिष्कार कर वैष्णवोंकी सेवा कर सकते हैं। एकमात्र वैष्णव लोग ही इतरप्राणियोंको भगवद्‌भजनके अनुकूल कार्यमें नियुक्त कर सकते हैं और उनके सिवा सभी उन-लोगोंके प्रतिहिंसा करते हैं; यहां तक कि बौद्ध लोग भी अहिंसाके नामसे हिंसा ही करते हैं; क्योंकि वे इन सब प्राणियोंको पुरुषोत्तम भगवान्‌की सेवाके अनुकूल किसी कार्यमें नियुक्त नहीं कर सकते। भगवत्सेवक वैष्णव चौंवरी-गायके पूंछके द्वारा विष्णुसेवाके लिये चाँवर प्रस्तुतकर उसके द्वारा भगवान्‌की सेवा करते हैं, मोरका पूंछ संग्रह करके कृष्णकी चूड़ामें लगा या व्यजन-यन्त्र (पंखा) निर्माण करके भगवत्सेवा किया करते हैं; अग्निके द्वारा यज्ञेश्वर विष्णुकी सेवा करते हैं; पशुओंके चर्मद्वारा वैष्णवोंके पादुका, मृदङ्गके नानाप्रकारके उपकरण प्रस्तुत करते हैं। पशुओंके रोम, ऊन या

रेशमके कीड़ेसे उत्पन्न रेशमके द्वारा कम्बल और वस्त्रादि तैयार कर हरिकीर्त्तनकारी वैष्णवोंके भजनका आनुकूल्य विधान कर देते हैं। जो सब वस्तुओंसे हरिसेवाके अनुकूल विषय संग्रह कर सकते हैं, वे वैष्णव लोग उद्भिदादि, यहां तक कि पत्थरादि आच्छादित चेतनको भी हरिकीर्त्तनकारी साधु और वैष्णवोंकी सेवामें नियुक्त कर देते हैं। उद्भिदादि जीवोंके द्वारा जिस समय हरिकीर्त्तनकारी जीवोंकी सेवा होती है, उस समय उद्भिदादिको छेदन करनेसे भी उनलोगोंके प्रति हिंसा नहीं होती, क्योंकि उनलोगोंका जीवन विष्णु-वैष्णवकी सेवामें उत्सर्गीकृत होता है, किन्तु उन लोगोंको वैष्णवोंकी सेवामें नियुक्त न कर भोगीके इन्द्रिय-तृप्तिकर उद्यान सजानेके लिये संरक्षण-पूर्वक उनलोगोंकी पुष्टि और श्रीवृद्धिके लिये यथेष्ट यत्न और परिश्रम करनेपर भी उनलोगोंका जीवन हरि-सेवामें नियुक्त न होनेके कारण उनलोगोंके प्रति हिंसा ही की जाती है।

साहीना सा:— ऐसा होनेसे जो लोग बकरे आदि पशु देवीके उद्देशसे प्रदान करते हैं, वे भी तो कह सकते हैं कि हमलोगोंके भगवानके उद्देशसे पशुके उत्सर्ग करनेसे वह हिंसामें परिगणित नहीं हो सकता।

आचार्यदेव—यज्ञादिमें यज्ञेश्वरके उद्देशसे जो वैध सात्वत-शास्त्र-विहित पशु-बलिका विधान है, उसके द्वारा भी साक्षात् चेतनके अनुशीलनका आनुकूल्य विधान नहीं होता, मांस खानेके उद्देशका अभिनय कर पशु बलि देनेकी तो कथा ही नहीं है। तामसिक शास्त्रोद्दिष्ट देवी पूजामें पशु बलि देनेका विधान द्वि—मनुष्योंके अत्यन्त तामसिक प्रवृत्तिको कुछ नियमित (दमन) करनेके लिये ही है, वह उच्छृङ्खल और अत्यन्त हिंसाको कुछ विधिके अन्तर्गत लानेका कौशल विशेष है। वह प्रकृत अहिंसा या भगवत् सेवा नहीं। यज्ञमें पशुहननादिकी जो शास्त्र-विधि है, वह भी इन सब कार्योंसे निवृत्त करनेका कर्म कौशल मात्र है। ये सब कार्य किसी न किसी अप-स्वार्थ लाभके उद्देशसे ही अनुष्ठित होता है; उसके द्वारा चेतनका कोई अनुशीलन नहीं होता। श्रुतिने कहा है—

प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा
अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म्म।
एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा
जरामृत्युं ते पुनरेवापि यान्ति॥

(मुण्डक १।२।७)

यज्ञरूप प्लव (नौका) भवसमुद्र-उत्तरण करनेके लिये दृढ़ नहीं; क्योंकि इन सब यज्ञोंमें अष्टादश पुरुषोक्त कर्म्म भगवत् उद्देशसे अनुष्ठित नहीं होता अतएव वह तुच्छ है। जो सब अविवेकी-व्यक्ति उसको ही परम कल्याण प्राप्त करनेका उपाय समझ कर उससे ही आग्रह प्रकाश करते हैं वे पुनः जन्म-मृत्युको प्राप्त होते हैं।

साहीना सा:— समझ गया। अब नवम अपराध कृपा कर कहिये।

आचार्यदेव— कहनेमें भूल गया हूँ— अन्य शुभ कर्मोंके सहित श्रीनामाचरणको समान समझना भी अनवधान वा प्रमाद है। हरिनाम ग्रहणके समय कृष्णेतर विषयमें भोग त्याग बुद्धिसे विक्षिप्त होना या अन्याभिलाषमें प्रमत्त रहकर हरिनाम कीर्त्तनका अभिनय भी अनवधान वा प्रमाद है। यह भी पूर्वोक्त अष्टम अपराध है। अब आपके जिज्ञास्य नवम अपराधकी कथा कहता हूं। श्रद्धाहीन और नाम-श्रवणसे विमुख व्यक्तिके

निकट हरिनाम कीर्त्तन या उसको लाभ-पूजादि की प्राप्तिकी आशासे नाम-ग्रहणमें उद्योगी करना नवम अपराध है। मसजिदके निकट नामकीर्त्तन करना एवं इसके लिये अन्य धर्मावलम्बीके साथ झगड़ा उपस्थित करना नवम अपराधके मध्यमें गणित है। कुलके गुरु-व्यवसाय संरक्षणके लिये नाममें एकान्त श्रद्धाहीन व्यक्तिको नामाक्षरादि प्रदानका अभिनय नामापराध है।

सार्होना साः— पृथ्वीके प्रायः अधिकांश लोग ही तो हरिनामके प्रति विमुख हैं। तो क्या उनलोगोंको हरिनाम श्रवण कराना न होगा?

आचार्यदेव — हरिनामसे विमुख व्यक्तिको हरिनामका यथार्थ तात्पर्य और माहात्म्य श्रवण करा कर श्रीनामके प्रति उन्मुख करना अपराध नहीं है। एकमात्र यही करना होगा। किन्तु जो परम कृपामय हरिनामके प्रति विद्वेषी एवं नाम विलासी अर्थात् नामकीर्त्तनकारीके प्रति विद्वेषी हैं उनलोगोंको बलपूर्वक हरिनामाक्षर सुनानेकी चेष्टा करनेसे उनलोगोंका लेशमात्र भी मङ्गल नहीं होगा; बल्कि जो इस प्रकार प्रचेष्टित करायेंगे उनकी असुविधा होगी।

सार्होना साः— दशम अपराध क्या है?

आचार्यदेव —दशम अपराध सबशेष अपराध होनेपर भी इसको सबसे कठिन अपराध कहा जा सकता है, जो शीघ्र परित्याग नहीं किया जा सकता है। नामका अद्भुत माहात्म्य श्रवण कर भी 'मैं और मेरी' इस प्रकार देहात्मबुद्धिविशिष्ट होकर श्रीनामका ग्रहण और श्रवणमें प्रीति राहित्य। यही देहात्मबुद्धिके बीज श्रीनित्यानन्द प्रभुकी कृपाके सिवाय किसी प्रकार विनष्ट नहीं होता। इसी देहात्म-बोधसे साधु-निन्दारूप सर्वप्रधान और सर्वप्रथम अपराधका उदय होता है—

नाश्चर्य्यमेतद्यदसत्सु सर्वदा
महद्विनिन्दा कुणपात्मवादिषु।
सेर्ष्यं महापुरुष-पादपांशुभि-
र्निरस्ततेजःसु तदेव शोभनम्॥
(भाः ४।४।१३)

जो इस जड़ देहको 'आत्मा' समझते है, तादृश असत् पुरुष निरन्तर महाजनगणोंकी निन्दा करेंगे, इसमें आश्चर्यकी बात क्या? यद्यपि महापुरुषगण अपनी निन्दा सहन कर लेते हैं तथापि उनलोगोंके पदरेणु समूह बड़ोंकी निन्दा सहन नहीं कर सकते, वे निन्दकोंके तेज नाश कर देते हैं। अतएव असत् लोगोंका महद्-विद्वेष यही शोभनीय है, कारण इसका यह है कि उसके द्वारा उनलोगोंको समुचित सजा ही प्राप्त होती है।

सार्होना साः —तो क्या हरिनाम ग्रहण करनेके समय निर्जनता प्रयोजनीय नहीं है?

आचार्यदेव—निर्जनता नहीं बल्कि प्रकृत नामाश्रित साधु लोगोंका सङ्ग ही आवश्यक है। तथाकथित निर्जनताके द्वारा विक्षेप वा अनवधान दूर नहीं होता, मनका दुःसङ्ग होता है। दुष्ट मनमें अनेक प्रकारकी दुष्प्रवृत्तियाँ वर्तमान है। साधु लोगोंके सङ्गके बिना उन सब दुःसङ्गोंसे निस्तार लाभ करनेका और कोई उपाय नहीं। सर्वात्म-निवेदित,प्रपन्न, शरणागतकी सेवोन्मुखी जिह्वापर ही श्रीनामप्रभु कृपापूर्वक आत्मप्रकाश कर सभी प्रति-कूल विघ्न-समूहों को दूर कर देते हैं।

सार्होना साः—हरिनाम-ग्रहण करनेकी योग्यता क्या है?

आचार्यदेव—अकपट श्रद्धा और शरणागतिके परिमाणानुसार जिह्वापर हरिनाम आभास या शुद्ध-

रूपमें उच्चारित होते हैं।

साहोना सा: जो हरिनाम करेंगे, वे क्या कोई एक निर्जन स्थानमें बैठ कर हरिनाम नहीं करेंगे ?

आचार्यदेव हरिनाम ग्रहणकारी केवल हरिनामाश्रित साधु लोगोंका ही सङ्ग करेंगे। साधु लोगोंके सङ्गमें शरणागतिके साथ हरिनाम कीर्त्तन करनेके सिवा उनका किसी प्रकारका उद्देश्य जब न रहेगा, तभी हरिनाम होगा।

साहोना सा — मेरे प्रश्नका उद्देश्य यह है कि हरिनाम करनेके लिये एकाग्रताका प्रयोजन है कि नहीं एवं निर्जनताके बिना वह एकाग्रता हो सकती है कि नहीं

आचार्यदेव [illegible] एकाग्रता नहीं [illegible] सकता. कोई [illegible] चेष्टा या [illegible]के द्वारा एकाग्रता प्राप्त नहीं होती। हरिनाम सर्वशक्तिमान है। श्रीनामाचार्य [illegible]देवके एकान्त आनुगत्यमें सर्वशक्तिके आधार श्रीहरिनामके चरणोंमें जिस परिमाणमें पूर्णरूपसे आत्म समर्पण होगा उसी परिमाणमें आनुषङ्गिकरूपसे एकाग्रता उपस्थित होगी। एकाग्रताके लिये पृथकरूपसे चेष्टा करनेका प्रयोजन नहीं। हरिनामकी कृपासे ही सब होगा। इसलिए उन्हीं कृपाके प्रार्थी होगे।

साहोना सा:— एकाग्रता नहीं होनेसे हरिनाम किस प्रकार होगा, यह नहीं समझ रहा हूं।

आचार्यदेव Concentration is the virtue [illegible] after all एकाग्रता मनका एक धर्म विशेष है। अनर्थयुक्त मनका कोई कार्य या धर्मके द्वारा कभी भी हरिनामकी सेवाकी सहायता नहीं हो सकती। हरिनामकी कृपासे ही हरिनाम होता है। अनर्थयुक्त मन हरिका नाम, हरिका रूप, हरिका गुण, हरिका परिकर, या हरिकी लीला चिन्ता नहीं कर सकता। इसके सिवा प्रकृति या प्राकृत विषयसे मनको हटाकर उसी मनको सङ्कल्पित विषयमें नियुक्त करनेके लिये मनके सिवा एक दूसरे श्रेष्ठ और बलवान वस्तुसे यह कार्य करना पड़ता है, वे ही प्रपन्न उद्बुद्ध आत्माएं हैं।

साहोना सा: - क्या हरिनाम-ग्रहणकारी ईश्वरके किसी रूपकी चिन्ता नहीं करेंगे ?

आचार्यदेव - Certainly not, not at all. [illegible] एकमात्र श्रीनामके निकट पूर्ण प्रपत्ति (शरणागति) के बिना 'सर्वात्मना' आश्रयके बिना हरिनाम ग्रहणकारीका अपनी कोई कृत्रिम चेष्टा नहीं रहेगी। मन प्रकृतिको अतिक्रम नहीं कर सकता। कृत मन जो कुछ स्मरण करेगा, धारणा करेगा, ध्यान करेगा, वह सभी प्रकृतिके द्वारा सृष्ट और अन्तर्गत विश्वकी ही वस्तु है। इस विश्वके भीतर ही गमनागमन कर सकता है इसको अतिक्रम कर बाहर जानेकी शक्ति उसमें नहीं है।

साहोना सा:—मनुष्य जिस समय हरिनाम करेगा, उसी समय साथ ही साथ एकाग्र होनेकी चेष्टा करेगा। आज एक मिनट, कल दो मिनट, परसों तीन मिनट इसी प्रकार अभ्यास करते करते यदि वह व्यक्ति क्रमशः एकाग्रताकी मात्रा बढ़ा सकता है, तभी तो धीरे धीरे सम्पूर्णतः एकाग्र होकर नाम कर सकेगा।

आचार्यदेव—ऐसा कृत्रिम उपाय व्यर्थ और निष्फल है। विश्वामित्र, सौभरी, वशिष्ठ, भरद्वाज प्रभृति श्रेष्ठ योगीगणने अन्तमें इस पथकी निरर्थकताकी उपलब्धि की है। दो चार पांच मिनट नहीं, शत-शत वर्ष समाधिस्थ रहनेके बाद भी विश्वामित्र

सौभरि प्रभृतिका चित्त-आक्रान्त हुआ है संसार-वासना द्वारा है।

युञ्जानानामभक्तानां प्राणायामादिभिर्मनः।
अक्षीणवासनं राजन् दृश्यते पुनरुत्थितम्॥
(भा: १०-५१-६०)

अभक्त लोग प्राणायामादिके द्वारा चित्तको निरोध करते हैं; किन्तु हे राजन! उनके द्वारा उन लोगोंका चित्त विषय-सम्बन्धशून्य नहीं होता, बल्कि फिर विषयाभिमुखी हो जाता है।

अन्तरायान् वदन्त्येता युञ्जतो योगमुत्तमम्।
मया सम्पद्यमानस्य कालक्षपणहेतवः॥
(भा. ११-१५-३३)

इसीलिये जिनने उत्तम योग अर्थात सर्वश्रेष्ठ भक्तियोगमें चित्त सन्निविष्ट किया है वे इन **सब** चेष्टाओंको भक्तिपथका विघ्नस्वरूप **कहते** हैं। मेरे भक्तगण मेरे द्वारा ही सभी साधनोंका फल **प्राप्त** करते हैं सुतरां उन लोगोंके लिये ये सब साधन चेष्टा समय नष्ट करनेका हेतु मात्र है। मेरी सेवा छोड़ कर वे लोग वृथा कालक्षेप नहीं करते।

परीक्षित् (५)

एक दिन महाराज परीक्षित्ने धनुषबाण लेकर शिकारके लिये वन वनमें भटकते हुए थकावटके मारे एक मुनिके आश्रममें प्रवेश किया। उनपर क्षुधा तृष्णाने बहुत जोरसे आक्रमण किया था। मुनि अपनी इन्द्रियां, मन, प्राण और बुद्धिको प्रत्याहार कर उपशान्त हो बैठे थे। उनकी जटायें शरीरमें विक्षिप्त थीं और पहननेमें मृगचर्म था। महाराजने अन्यत्र पानीका कुछ बन्दोबस्त नहीं कर सकनेपर मुनिके समीप आकर कुछ जलकी प्रार्थना की। किन्तु मुनि महाराजको बैठनेके लिये न तो स्थान ही दिया न मधुर वचनसे कुछ आलाप किया। इससे वे बहुत ही अपमानित समझ क्रोधके मारे धनुषसे एक मृत सर्पको मुनिके गलेमें स्थापित कर अपने राज्यमें लौट गये। उन्होंने सोचा क्या इस मुनिने सचमुच ही इन्द्रियोंको प्रत्याहृत किया है या समाधिके बहानेसे मेरा निरादर कर रहे हैं? ब्राह्मणोंके प्रति परीक्षितका ऐसा क्रोध और कभी नहीं देखा गया था।

उस मुनिका नाम था शर्मीक। उनके पुत्र अन्यान्य बालकोंके साथ खेलते थे। खेल कर लौटकर पिताकी इस बुरी दशा देखकर बहुत ही दुःखित चित्तसे कहा,- आश्चर्यकी बात है कि राजागण भोगसे पुष्ट होकर प्रजाके प्रति पापाचरणमें प्रवृत्त हो जाते हैं। ब्राह्मणगण क्षत्रियोंको गृहरक्षक कुत्तोंके समान देखते हैं। घरके दरवाजा ही जिसका स्थान निर्दिष्ट है, वह आज कैसे अन्दरमें प्रवेशकर पात्रमें अन्नादिको भोजन किया? कुमार्गगामी व्यक्तियोंके शासनकर्ता कृष्ण भगवान अपने धाममें पधारनेसे जो अपनी मर्यादा का लंघन किया है उसके योग्य दण्ड मैं ही विधान करूंगा। जिसने मेरे पिताको अवमानित किया आजसे सातवें दिन तक्षक आकर उसे डसेगा मैं यही शाप देता हूं। इसके बाद पिताके समीप आकर चिल्लाते हुए रोने लगा। बालकके रोदनसे पिता शर्मीककी समाधि भंग हुई। उन्होंने देखा कि एक मृत सांप उनके गलेमें झूलता है। सांपको फेंककर मुनिने पुत्रसे पूछा--वत्स! तुम्हारे रोनेका कारण क्या है। क्या किसीने तुम्हारी कुछ बुराई की? बालकने सभी बातें पिताको सुनाई।

शमीकने अपने पुत्रके इस कार्यकी तारीफ नहीं की। पर उन्होंने कहा—बड़े अफसोसकी बात है कि तुमने अज्ञानी होकर बहुत ही खराबी की। लघु-अपराधसे गुरु दण्डकी व्यवस्था की। हे मन्द बुद्धि बालक राजा विष्णुके समान कहे जाते हैं जिनके प्रभावसे प्रजायें सुरक्षित हो निडर भावसे सुख-भोगती हैं। उनको साधारण मनुष्य समझना मुनासिब नहीं है। राजा नहीं रहनेसे पृथ्वीमें चोर-डाकुओंके अत्याचार बढ़ जायेंगे और मनुष्यगण रक्षकके अभावसे नाश हो जायेंगे। तब वर्णाश्रम धर्मका पालन करना बहुत ही कठिन हो जायगा। अनन्तर मनुष्यगण केवल कुत्ते और बन्दरोंके बराबर कामासक्त हो अर्थ और कामकी सेवामें ही तत्पर हो जायेंगे और वर्णसङ्करकी उत्पत्ति होगी। विशेषतः परम भागवत महाराज परीक्षित क्षुधा तृषासे पीड़ित हो मेरे आश्रममें पधारे थे, उनको शाप देना मुनासिब नहीं हुआ। इसके बाद भगवानसे प्रार्थना की—हे भगवन्! आप सभीके अन्तर्यामी हैं। इस अज्ञानी बालकने आपके भक्तोंके चरणोंमें जो कसूर किया कृपया उसे क्षमा कीजिये। भक्त किसीसे तिरस्कृत, अपमानित, प्रतारित, ताड़ित या अभिशापग्रस्त होनेपर भी उसका बदला नहीं लेते। शमीक राजाके प्रति अपने पुत्रके अपराधके लिये ही सोचने लगे, पर उन्होंने राजा द्वारा उनका जो अपमान हुआ था उसके लिये तनिक भी चिन्ता नहीं की। साधुओंकी विशेषता यही है कि वे लोग दूसरोंसे सुख वा दुःख प्राप्त करनेपर भी उनसे विचलित नहीं होते; क्योंकि वे अनासक्त हैं।

महाराज परीक्षित् शमीक मुनिके आश्रमसे लौटकर सोच रहे थे मेरा यह कार्य अत्यन्त बुरा हुआ है। मैंने ब्राह्मणका गूढ़ तेज न समझकर नीच अनार्य व्यक्तिका सा कार्य किया। उस कारण फौरन मुझपर कोई भयङ्कर आफत आवेगी, इसमें कुछ सन्देह नहीं है वह आफत शीघ्र ही आनेमें अच्छा है क्योंकि उसीसे मेरे पापका योग्य प्रायश्चित्त होगा। फिर ऐसा नीच कर्म करनेमें दिल नहीं जायगा।

महाराज ऐसा सोच ही रहे थे, कि इसी समय शमीक मुनिके एक शिष्यने आकर समाचार सुनाया कि मुनिपुत्रके अभिसम्पातसे महाराजको एक हफ्तेके भीतर पृथ्वी त्यागनी होगी। उस शापको वैराग्यका कारण समझकर महाराज परीक्षितने उसे अच्छा ही समझा। उन्होंने पहिलेसे ही सोचा था कि यह मृत्युलोक तथा स्वर्गलोक अनित्य और हेय है। अब श्रीकृष्ण चरणको ही पुरुषार्थसार समझकर गंगा तटपर प्रायोपवेशन (अनशनव्रत) करनेकी इच्छा की। जो गंगादेवी कृष्णभगवानके चरण-रेणु-मिश्रित तुलसी दलको वहन करती हुई तीन लोकको पवित्र कर रही है, उनकी सेवा कौन व्यक्ति, जो अपना मंगलप्रार्थी है, नहीं करता है? ऐसा सोचकर महाराज समस्त आसक्तियां छोड़कर शान्त भावसे भगवत् चरणके ध्यानमें तल्लीन हो गये।

उस समय जगत्पवित्रकारी साधु अपने अपने शिष्योंके साथ वहां पधारे। अत्रि वशिष्ठ, च्यवन, शरद्वान, अरिष्टनेमि, भृगु, अंगिरा, पराशर, विश्वामित्र, परशुराम, उतथ्य, इन्द्रप्रमद, मेधातिथि, सुबाहु, देवल, आर्ष्टिसेन, भरद्वाज, गौतम, पिप्पलाद, मैत्रेय, और्व, कवष, अगस्त्य, व्यासदेव, नारद, प्रभृति मुनि स्वयं ही तीर्थके स्वरूप हैं, पर तीर्थगमनके बहानेसे तीर्थोंको पवित्र करते हैं। वे लोग कृपा-

कर वहां पधारनेसे महाराजने उनलोगोंकी यथाविधि पूजाकी और उन्हें प्रणाम किया। मुनिलोगोंके आराम से बैठनेके पश्चात् महाराजने अपने कर्त्तव्यके सम्बन्धमें पूछा—आज मेरा अहोभाग्य है कि ऐसे ब्राह्मणगण जो अपने चरणसलिलको दूरसे फेंकते हैं, बल्कि राजकुलमें नहीं छिड़कते वे आज मुझपर कृपाकरनेके लिये यहां पधारे हैं। सब भार्य तथा कारणोंके नियन्ता भगवानने भी मुझपर कृपा की है। क्योंकि मैं सर्वदा गृहमें आसक्त हूं, फिर भी ब्राह्मणका अपमान किया है। शायद भगवानजीने सोचा कि भय ही विषयानुरागी व्यक्तिके वैराग्यका मूल है। विषय वैराग्यके सिवा भगवत्प्राप्तिका उपाय नहीं है। इसलिये उन्होंने ब्राह्मणके शापका रूप धारण किया। हे ब्राह्मणगण! आप लोग भगवानका शरणागत समझकर मुझको भगवत्कथा श्रवण कराइये। तक्षकके आकर मुझको डसनेमें कुछ डर नहीं है। मेरा फिर जन्म होनेसे जिसमें भगवान् श्रीकृष्णमें रति, उनके भक्तोंका संग और सब जीवोंके साथ मित्रता हो, यही मेरी प्रार्थना है। ब्राह्मणोंके चरणोंमें मैं फिर प्रणाम करता हूं। ऐसा कहते हुए महाराज पुत्रको राज्य सौंपकर भागीरथीके दक्खिन तटपर कुशासन बिछाकर अनशन-व्रतके लिये बैठे। महाराजका यह कार्य देखकर देवताओंने स्वर्गसे पुष्प वर्षण किया और पुनः पुनः दुन्दुभिकी ध्वनि हुई। महर्षियोंने भी इस कामकी तारीफ करते हुए कहा- हे राजर्षिवर! जिन लोगोंने भगवत् पार्षद होनेकी अभिलाषासे सार्वभौमके सिंहासनको भी त्यागनेमें कष्ट अनुभव नहीं किया था उन्हीं पाण्डवोंके वंशधर आपके लिये यह काम कुछ कठिन या आश्चर्य पूर्ण नहीं है। इसके बाद उनलोगोंने आपसमें सोचा कि यह भक्तवर परीक्षित जबतक शरीरको नहीं त्यागते हैं तबतक हम लोग यहां ही रहें।

महाराजने फिर मुनियोंसे कहा—साक्षात् वेद ही मूर्त्तिके समान आपलोग चारों ओरसे यहां पधारे हैं। दूसरोंपर कृपा करना ही आप लोगोंका स्वभाव है। इसके अतिरिक्त आपलोगोंका और कुछ काम नहीं है। इसलिये मैं ईमानके साथ पूछ रहा हूं कि मुमूर्षु (जो मरनेके समीप हो) के लिये हरेक अवस्थामें पापसे सम्बन्धरहित कर्त्तव्य क्या है, विशेष विचारके साथ बताइये।

मुनि लोग आपसमें विचार कर रहे थे उसी समय वहां व्यासदेवके पुत्र भक्तराज श्री शुकदेवगोस्वामीजी अचानक पधारे। वे बाह्य विषयमें अत्यन्त विरक्त थे। उनका कोई आश्रमका भेष भी नहीं था परन्तु आत्माराम तथा अवधूत थे; इसलिये बालक पागल समझ उनके पीछे आते थे। उनकी उम्र १६ वर्षकी थी। उनके चरण, हाथ, उरु, बाहु और वदन सुन्दर थे; नेत्र कर्ण तक विस्तृत और भौंहें सुन्दर थीं। भुजायें आजानुलम्बित थीं शरीर श्यामवर्ण और नवयौवनके लिये अंगकी कान्ति भी सुन्दर थी, सब मुनियोंने उनको महापुरुष समझ खड़े होकर अभ्यर्थना की। महाराज परीक्षित्‌ने ऐसे अतिथिका दर्शनकर उनकी पूजा की। यह देखकर बालक भाग गये। परीक्षितने ऐसे अतिथिको दर्शनकर उनकी पूजा की। शुकदेवजीने उस सभामें राजर्षि, तथा ब्रह्मर्षि तथा देवर्षिगणों के बीचमें नक्षत्रवेष्टित चन्द्रमाके समान शोभा प्राप्त की।

मुनिको यथासुख बैठते हुए देखकर महाराज परीक्षित्‌ने उनके समीप जाकर विनतीके साथ पूछा- हे ब्राह्मण! आप कृपया मेरा मेहमान हो यहां पधारे हैं इसलिये मैं क्षत्रियाधम होनेपर भी साधुओंके लिये आदरणीय बन गया। जिनके स्मरणसे ही

गृहस्थका घर फौरन पवित्र हो जाता है, फिर भी उन लोगोंके दर्शन, स्पर्श, चरणसेवा आदिसे जो पवित्रता होती है उसमें कुछ कहना ही नहीं है। हे महायोगी! जैसे भगवत्समीप उपस्थित होनेसे ही असुरोंका नाश हो जाता है, वैसे ही आपके दर्शनमात्रसे ही पातकोंका फौरन नाश हो जाता है। पाण्डवोंके सखा भगवान्‌ने ही उनके भक्त पाण्डवों पर की प्रीतिके कारण ही आपसे मुझसे मित्रता प्रगट की है नहीं तो मेरे अन्तकालमें पहुँचकर आपका दर्शन मिलना सम्भव नहीं होता। अतएव मैं पूछता हूँ कि जिसकी मृत्यु आसन्न है (अधिक विलकुल देर नहीं है) उसके लिये क्या कर्तव्य है। मनुष्य मात्रके क्या सुनने, जपने, स्मरण करने के या न करनेके योग्य है उसे कृपया बताइये। आपका दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है। गाय दुहनेके समयतक आपलोग गृहस्थके घरमें ठहरते हैं सुतराम कृपाकर मेरे इस प्रश्नका जवाब दीजिये।

महाराज परीक्षितके ऐसा पूछनेके बाद धर्मज्ञ भगवान् शुकदेव मधुर वचनसे बोलने लगे। हे महाराज! आपका प्रश्न सुन्दर है क्योंकि वह जगत् के हितार्थ है और आत्मवित् पुरुषसे भी अनुमोदित है। जिन लोगोंने आत्मतत्त्वका दर्शन नहीं किया है उनके लिये सुननेको बहुत ही बातें हैं। उन लोगोंके नाम "गृहमेधी" है (जो घरके द्वारा और घूमते रहते हैं अर्थात गृहासक्त)। उन लोगोंके दिन अर्थकी चेष्टा मे और रात इन्द्रियके तोषणमें ही बीत जाती हैं। वे लोग अपने शरीर, स्त्री, पुत्र, रिश्तेदार या संसारी वस्तुमें ही आसक्त रहते हैं। पर इन सभी वस्तुओंकी अनित्यताके बारेमें विलकुल अन्ध हैं। वे लोग ये सब अनित्य वस्तुका विनाश देखकर भी उदासीन रहते हैं। अतएव जो अभय होनेकी प्रार्थना करते हैं उनके लिये भगवानकी बातें सुनना, कीर्त्तन करना तथा स्मरण करना ही एकमात्र कर्त्तव्य है। शास्त्रोंमें भी यही कहा है कि अन्तकालमें नारायणकी स्मृति रहना ही सबसे अधिक फायदेमन्द है। संसारमें फंसे हुए करोड़ों वर्षसे भी कुछ भरोसा नहीं है पर एक मुहूर्त्तके लिये भी भगवत्स्मरण होनेसे वही समय मूल्यवान है। राजर्षि खट्वांग अपनी आयु मुहूर्त मात्र बाकी है, ऐसा जानकर उसी समय भगवच्चरणकमलमें तल्लीन हो गये थे। सुतराम, हे महाराज! आपके लिये एक हफ्ताका समय यथेष्ट है। यह समय परमात्माकी चिन्तामें ही व्यतीत कीजिये।

शरणागति

(गताङ्कसे आगे)

स्वरूपका (आत्माका) धर्म सेवा है, सुतरां गुलामीमें प्रतिष्ठित होनेसे पूर्ण रूपसे शरणापन्न हो जाता है, उस समय अपने सुखकी वासना हृदयमें स्थान नहीं पाती है। अपने सुखकी वासना अर्थात् सम्भोगकी पिपासा अल्पमात्र भी हृदयमें रहनेसे परिपूर्ण रूपसे शरणागत होना असम्भव है। यदि कोई उसप्रकारकी चेष्टा द्वारा अनुगत्य करने जाय अर्थात् हृदयमें भोग बुद्धिको प्रबल रखकर मुखसे कपट अनुगतका अभिनय करे तो ऐसी हालतमें वह अपनेको ही ठगता रहेगा। अपने तथा दूसरेको ठगनेकी इच्छा रखनेवाले बद्धजीव अपने तथा दूसरेको ठग सकते

है, किन्तु अन्तर्यामी गुरुवैष्णवको ठगना सम्भव नहीं है।

• बहुतसे लोग कहते हैं कि हरिभजन करने तथा भगवान्‌को पुकारनेमें गुरुकी अनुगतिकी क्या आवश्यकता है? स्वयं तो भगवान्‌को पुकार सकते हैं, शास्त्रमें तो पुकारनेकी प्रथा लिखी हुई है। सद्‌गुरुके चरणाश्रयके अतिरिक्त क्या स्वयं (दर्शनगास्त्रसे) ही भजन नहीं होता है? शास्त्रमें भगवान्‌को पुकारनेकी प्रणाली लिखी हुई है एवं महाजनोंकी वाणीसे भी जाना जा सकता है, किन्तु साधु शास्त्रवाक्य समझेगा कौन? अतिमूर्ख, अज्ञ हमलोग जीवकीट हैं, हमलोगोंकी दाम्भिकताकी सीमा नहीं है, इसी लिये हमलोग हृदयके भीतरकी ओर एकबार भी नहीं देखते और न देखना चाहते कि वहांपर साधु शास्त्रवाक्यको समझनेकी योग्यता है या नहीं। किन्तु केवल हमलोगोंके स्वीकार-अस्वीकार करनेसे ही भलेबुरे की पहचान नहीं होती, दाम्भिकताका नाम अनुगतिकी स्वीकृति नहीं है। मुखसे जिस-तिस प्रकारका भाव दिखलानेसे ही कोई निष्कपट नहीं हो सकता। मूर्खताके कारण हमलोग यह बात नहीं समझते कि सर्वोत्तम साधुगुरुवैष्णवका पूर्णरूपसे शासन स्वीकार करनेसे ही पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त होती है (जीव माया मुक्त हो जाता है) तथा स्वतन्त्रताका ठीक-ठीक सद्‌व्यवहार होता है (अर्थात् जीवात्मा मायामुक्त होकर भगवान्‌की सेवामें नियुक्त हो जाता है) नहीं तो पराधीनताकी (अर्थात मायाके) असंख्य शृंखलाओंमें (अर्थात "मैं" और "मेरा" के बन्धनमें) बंधा रहता है। असंख्य दोषयुक्त, रिपुगणोंके वशीभूत, मायाके शासनकारी लघु जीवकीट हमलोग सद्‌गुरुके चरणाश्रयके सिवा अन्य किसीप्रकारसे मंगलकी आशा नहीं कर सकते। सभीप्रकारकी असुविधाओंके हाथसे छुटकारा दिलानेमें एकमात्र श्रीगुरुदेव ही समर्थ हैं। तब ही गुरुके समीप जाना है, गुरु होकर गुरुके समीप नहीं जाया जाता। जिस प्रकार मूर्खको पण्डित बनानेके लिये ही पण्डितके समीप भेजा जाता है, पण्डित होकर कोई पण्डितके समीप पढ़नेके लिये नहीं जाता उसी प्रकार निष्कपट होकर (अर्थात् अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्षकी इच्छा छोड़कर) सद्‌गुरुके चरणारविन्दमें शरणापन्न होनेके अतिरिक्त नित्यकल्याणका और कोई पथ नहीं है।

यत्किञ्चित

वैष्णव-गुरुकी आज्ञा पालन करना ही सर्वश्रेष्ठ सेवा है। यदि इस आज्ञा-पालनमें हमें "दाम्भिक" होना पड़े, 'पशु' होना पड़े, अनन्तकालतक नरकमें जाना पड़े —तौभी हमें ठीका (Contract) करके वैसे नरकमें अनन्तकाल तक जाना चाहिये। संसारके अन्यान्य समस्त लोगोंके चिन्ताश्रोत गुरुपादपद्मकी कृपा द्वारा मुष्ठाघात करके खण्डन करेंगे। हम इतने बड़े दाम्भिक हैं।

जिस मुहूर्त्तमें हमलोगोंके रक्षक नहीं रहेंगे उसी मुहूर्त्तमें हमलोगोंके निकटवर्त्ती वस्तु समूह हमलोगोंके शत्रु होकर आक्रमण करेंगे। प्रकृत साधु लोगोंका हरिकथा ही हमलोगोंकी एकमात्र रक्षणकर्त्री है।

असत्संगसे सर्वदा सर्वभावेन अलग रहकर निरपराध होकर संख्यापूर्वक श्रीहरिनाम ग्रहण करना चाहिये। सम्बन्धज्ञानके साथ हरिनाम करनेसे कोई भी विरोधी आपको लेशमात्र भी अनिष्ट नहीं कर सकता। भगवान्‌के नाम-भजनके सिवा और अन्य किसी उपायसे जीवोंका मङ्गल नहीं होता है। श्रीनाम ही साक्षात् भगवान् हैं। प्राकृत चक्षुके कारण ही भगवान्‌के नाम और भगवान्‌में भेद दीखता है। मुक्त पुरुषगण श्रीनामको ही भगवान् जानते हैं। श्रीनाममें रुचि कम होनेसे विधिपूर्वक आदरसहित नाम ग्रहण करते करते श्रीनाम और श्रीनामी एकही तत्व हैं यह जाना जा सकता है।

भगवान्‌के यहांसे डाक तार प्रभृति द्वारा पत्र प्राप्त नहीं किया जा सकता। कृष्ण-प्रेरित जनोंके द्वारा ही उनका सम्वाद हमलोगोंको मिलता है और हमलोगोंका सम्वाद उनके पास पहुंचता है।

जीवोंका क्लेश देखकर वैष्णवलोगोंका हृदय दयासे आर्द्र हो जाता है, किन्तु जीवोंका वैराग्य या भगवद्भक्ति विद्वेष देखते ही वे कठोर होकर उनकी उपेक्षा करते हैं। संसार जबतक भजनानुकूल रहता है तबतक वे अपनी स्त्री, पुत्र-परिवार आदिके प्रति अत्यन्त कृपालु रहते हैं। संसार जब भजनके प्रतिकूल हो जाता है, उस समय वे कठोर होकर स्त्री-पुत्रोंके क्रन्दन करते रहनेपर भी उनलोगोंसे सदाके लिये विदा होते हैं। उनलोगोंका हृदय सद्धर्म देखनेसे फूलसे भी कोमल और सद्धर्म विरोध देखनेसे वज्रसे भी कठोर हो जाता है। यह साश्चर्य स्वभाव जिन पुरुषोंमें दिखलाई पड़ता है, वे ही महानुभव वैष्णव हैं। जीवोंको कृष्णोन्मुख करना ही वैष्णव लोगोंका प्रधान कार्य है। जहांका प्रधान उद्देश्य है स्थूल-शरीरकी रोग निवृत्ति या क्षुधा निवृत्ति वहां वैष्णवता नहीं है। क्योंकि उससे केवल क्षणिक उपकार होता है, नित्य (स्थायी) उपकार नहीं होता है। हां,यह अवश्य है कि यदि इन सब कार्योंसे कृष्णोन्मुखता प्राप्त हो तो वैष्णव लोग सहर्ष इसको स्वीकार करते हैं। प्राकृत पाण्डित्यसे ही भजनमें सहायता मिल सकती है किन्तु प्राकृत पाण्डित्य न रहनेसे हरिभजन ही नहीं होगा ऐसी कोई बात नहीं है।

सम्वित् शक्तिकी कृपा प्रकाश ही सिद्धान्तज्ञान है। वह ज्ञान कोई अपरा विद्याकी अपेक्षा नहीं करता है। एकमात्र गुरुपादपद्मकी कृपासे ही वह प्राप्त किया जाता है।

हमसे लेशमात्र भी वैष्णवसेवा नहीं हुई ऐसा समझकर वैष्णवसेवकमात्रको ही दीन होना चाहिये। जिस वैष्णवमें जितना ही निष्कपट दैन्य अधिक है वह कृष्णका उतना ही अधिक प्रिय है-कृष्ण उसमें उतना ही अधिक आकृष्ट होते हैं। भक्ति सिद्धान्तमें वैष्णव-सेवाका विचार है एवं तादृशी भक्ति ही श्रीकृष्ण कर्षिणी होती है। सभीको यह दृढ़ और निश्चितरूपसे जानना चाहिये कि हरिगुरुवैष्णवकी विरहस्मृति ही कृष्णके साथ साक्षात्कारकी योग्यता प्रदान करती है।

विविध-संवाद

गौड़ीयवैष्णवाचार्य परमहंस श्रीश्रील अनन्त वासुदेव पारविद्याभूषण गोस्वामी महाराज वर्तमान श्रीचैतन्यमठमें रहकर — निरन्तर हरिकथा कीर्त्तन कर रहे हैं। अस्वस्थतावस्थाके मध्यमें भी श्रील आचार्यदेवके हरिकथा-कीर्त्तनका विराम नहीं है। जब कोई उनका श्रीपदपद्म-दर्शनाभिलाषी होकर उनके निकट जाते हैं, उसीके निकट वे कृपापूर्वक परम मङ्गलकी कथा कीर्त्तन करते हैं।

पटनाका

श्रीश्रीविश्ववैष्णवराजसभाके अन्यतम शाखा पटना श्रीगौड़ीयमठमें गत ६ वीं अप्रेल वृहस्पतिवारको गौड़ीयमठके अन्यतम प्रचारक उपदेशक पण्डित श्रीपाद कृष्णविलास ब्रह्मचारी भक्तिशास्त्री विद्यार्णव बी० ए० महोदय शहरके विभिन्न स्थानोंमें हरिकथा कीर्त्तन कर रहे हैं। शहरके विभिन्न स्थानोंसे बहु शिक्षित सम्भ्रान्त भद्रमहोदय श्रीमठमें आकर हरिकथा श्रवण कर रहे हैं।

बिहार उड़ीसाके Ex-Minister श्री गणेशदत्त सिंह महोदय मठमें आगमनकर दो दिन ब्रह्मचारीजीसे हरिकथा श्रवणकर परमानन्दित हुए एवं शुद्ध भक्तिकी कथा धाराबाहिकरूपसे श्रवण करनेके लिये आग्रह प्रकाश किया है। वे अपनी मोटरपर ब्रह्मचारीजीको घर बुलाकर हरिकथा श्रवण कर रहे हैं। उन्होंने ब्रह्मचारीजीके निकट प्रश्न किया था कि किस प्रकार चित्तकी शान्ति प्राप्त हो सकती है। इसके उत्तरमें ब्रह्मचारीजीने शास्त्र युक्ति द्वारा यह भलीभांति समझा दिया कि एकमात्र शुद्धभक्ति मार्गका आश्रय करनेसे ही नित्य शान्ति मिल सकती है; कर्म, ज्ञान, तप, योग, दान द्वारा नहीं मिल सकती। उन्होंने नित्य भागवत-धर्म श्रवण करनेके लिये आशय प्रकाश किया है।

दिल्लीका

श्रीश्रील आचार्यदेवके अनुगत्यमें श्रीगौड़ीय मठके एक विख्यात प्रचारक तथा उपदेशक पण्डित श्रीपाद अप्रमेयदास भक्तिशास्त्री गत २८ वीं जनवरीको श्रीभक्तिका प्रचार करनेके लिये जयपुर स्टेट गये थे। स्टेटके [illegible] मि० एन० जी० भट्टाचार्य उनके आतिथ्यका भार ग्रहण किया था। पण्डितजीने एक विशिष्ट श्रोतृमण्डलीके सम्मुख श्रीगौड़ीय मठके उद्देश्य और शुद्धभक्ति सम्बन्धमें एक हृदयग्राहिणी वक्तृता दी थी।

भट्टाचार्यजीकी सहायतासे इस स्टेटके P.W.D. के [illegible] श्रीयुक्त [illegible] एम० ए० और मि० [illegible] जीने गौड़ीयमठका प्रचार-विषय ध्यानपूर्वक श्रवणकर राधाकृष्ण मठमें एक Tube-well बनानेके लिये २०१ रु० दिये हैं। साथ ही साथ मि० एन० जी० भट्टाचार्यजीने भी मन्दिरके लिये श्रीश्री राधा गोविन्दजीकी एक सुन्दर मूर्त्ति दान की है।

निवेदन

भागवत-पत्रका पञ्चम वर्ष आरम्भ हो गया है। इसलिये भागवत पत्र के ग्राहकोंसे प्रार्थना है कि वे लोग कृपया पंचम वर्षकी भिक्षा (चन्दा) १) एक रुपया भागवत ऑफिसमें भेजनेकी कृपा करें।

श्रील प्रभुपादकी पत्रावली—(तृतीय खण्ड)

आचार्य-प्रकट तिथिमें श्रील प्रभुपादकी पत्रावलीका तृतीय खण्ड प्रकाशित हुआ है। प्रत्येक पत्र विशेष शिक्षाप्रद व सारगर्भ उपदेशसे परिपूर्ण है। हमलोग प्रत्येक मंगलकामी व सत्यका अनुसन्धान करनेवाले व्यक्तिको इस पत्रावलीका पाठ करनेका अनुरोध करते हैं।

श्रीचैतन्यदेव

श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके पहले व बाद भारत व बंगालकी राजनैतिक अवस्था, अर्थ-नैतिक अवस्था, विद्या, साहित्य व समाजिक अवस्था, धर्मजगतकी अवस्था, समसामयिक पृथिवीकी अवस्था, नवद्वीपका परिचय व तथ्य और प्रमाणिक ग्रन्थ व विवरण समूह सहज व सरल भावसे साधारणके पढ़नेके योग्य वर्णन किया गया है। ग्रन्थमें अनेक चित्र व मानचित्र दिये गये हैं। सुन्दर जिल्द भक्त, साधारण व्यक्ति व विद्यालयके छात्र सभीके लिये यह ग्रन्थ उपयोगी व प्रीति देनेवाला होगा। भिक्षा १)। प्राप्तिस्थान—श्रीगौड़ीयमठ, पो० बागबाजार, कलकत्ता। श्रीमाध्वगौड़ीयमठ, पो० वोयारी, ढाका।

सरस्वती जयश्री

गौड़ीयवैष्णवाचार्य ॐ विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादका भुवनके मंगलदायक जीवनचरित ग्रन्थ है। निमनसर शुद्धभक्ति पिपासु व्यक्ति इस ग्रन्थके पाठसे युगपत् अनेक शास्त्रग्रन्थ पाठ व अनेक साधुसङ्गका फल लाभ कर सकेंगे। वैभवपर्वका प्रथम खण्ड रायल ८ पेजी आकारमें एण्टिक कागजपर उत्तमरूपसे मुद्रित, ७६० पृष्ठोंमें। विस्तृत सूचीपत्रके साथ इसमें अनेक चित्र भी दिये गये हैं। भिक्षा ४)

'सामयिक-संख्या'—गौड़ीय

सामयिक-संख्या गौड़ीय अनेक त्रिवर्ण व एकवर्ण चित्र-शोभित व अनेक श्रेष्ठ वैष्णवसाहित्यिकगणोंकी गवेषणापूर्ण प्रबन्धसे सुमण्डित होकर प्रकाशित हुई है। श्रीधाम-मायापुरमें श्रीश्रीगौरजन्मोत्सवके उपलक्षमें सर्वसाधारणोंके लिये भिक्षा ।।) आना।

ठाकुर भक्तिविनोद

श्रीरूपानुगशुद्धभक्ति स्रोतके प्रवाहका मूल पुरुष ॐ विष्णुपाद श्रील ठाकुर भक्तिविनोदका जीवनचरित व शिक्षामाला बहुत सरल भाषामें बड़े बड़े अक्षरोंमें मुद्रित। भिक्षा ।।।) मात्र। प्राप्तिस्थान—कलकत्ता (बागबाजार) श्रीगौड़ीयमठ व ढाका—श्रीमाध्वगौड़ीय मठ।

अणुभाष्यम्

चार अध्यायी ब्रह्मसूत्रके प्रत्येक अधिकरणका तात्पर्य श्रीमन्मध्वाचार्य-कृत श्लोकाकारमें बहुत संक्षेपमें बना हुआ। बंगभाषामें सर्वप्रथम संस्करण। पहले प्रति अध्यायके प्रतिपादका श्रीमन्मध्वाचार्य-विरचित अणुभाष्यमूल, उसके बाद प्रति अध्यायके प्रतिपाद का सूत्र-समूह, अणुभाष्य-मूलका बंगला अनुवाद व श्रीपाद राघवेन्द्रयतिविरचित तत्वमञ्जरी टीका, उसका बंगला अनुवाद व तात्पर्य इस क्रमसे पुस्तक मुद्रित हुई है। इसके अतिरिक्त मातृका क्रमसे ब्रह्मसूत्र समूह, उसका अध्यायांक, पदांक व सूत्रांकके साथ सूचीपत्र भी संयोजित हुआ है। भिक्षा २) मात्र।

Printed by:—Brajeshwari Prasad, at the 'Indian Nation' Press and published by him from Sree Gaudiya Math, Mithapur. Patna.

वर्ष ५]

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः

Regd No. P. 468.

संख्या ४]

भागवत

एकमात्र
पारमार्थिक
मासिक पत्र

५ त्रिविक्रम
गौराब्द
४५३



ज्येष्ठ कृष्णा ५
संवत
१९९६ वि०

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥१॥

जिससे इन्द्रिय ज्ञानातीत श्रीकृष्णमें श्रवणादि [illegible] फलाभिसन्धान-रहिता ऐकान्तिकी स्वाभाविक निरपेक्षा भक्ति उदय होती है, वही मानव जातिका सर्वश्रेष्ठ धर्म है — उसी भक्तिके बलसे अनर्थ शमन होनेपर आत्मा प्रसन्नता लाभ करती है।

प्रति संख्या -)॥ } सम्पादक—पं० श्रीपाद रूपविलास ब्रह्मचारी भक्ति शास्त्री बी० ए० { वार्षिक १)

Editor :—Pundit Sripad Rupbilas Brahmachari, Bhaktishastri B A.

SREE GAUDIYA MATH Mithapur (Patna).

विषय सूची

भक्तिके अन्यान्य पत्र

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः



श्रीगौड़ीयमठ, मीठापुर (पटना)

वर्ष ५ | संख्या ४

ज्येष्ठ कृष्ण ५, ४५३ स० १९९३ वि०, ८ मई सन १९३६ ई०

श्रील जगन्नाथदास बाबाजी महाराजकी उपदेशावली ।

१ कभी भी मर्कट लोगोंके (अधिक विरक्त योषित्सङ्गी कपटी व्यक्तियोंके) साथ नहीं मिलना।

२ कभी भी विषयीका अन्न ग्रहण नहीं करना, ग्रहण करनेसे विषयी हो जाओगे।

३ गौरधामके कृपा करनेसे व्रजवास होता है।

४ सांसारिक अमङ्गलको भगवानकी दया समझना।

५ हृदयमें कृष्णसेवाके लिये अनुराग नहीं आनेसे बाहरसे वेष ग्रहण करनेपर भी किसीको 'सन्यासी' नहीं कहा जाता।

६ भजनाकाङ्क्षी व्यक्तियोंके शरीरमें कष्टकर व्याधि उपस्थित होकर भी उत्कृष्ट खाद्यद्रव्य न पाकर आपसे आप भाग जाती है। बाबू और विलासी लोगोंके शरीरमें वह आदर पाकर अधिक दिन अवस्थान करती है।

७ 'सेवाकी है' कहकर हृदयमें भी ढोल पीटनेका यत्न नहीं करना। उस समय फिर उसको सेवा नहीं कहा जायगा।

८ निर्जन-भजनकी छलनाकर आलसी नहीं होना।

९ अनवधानताके साथ लक्ष लक्ष माला फेरनेकी अपेक्षा वैष्णव सेवाके लिये बागीचा

खनना और पेड़ोंको पटाना अधिक मङ्गलजनक है। वैष्णव-सेवासे नाममें निष्कपट रुचि होगी।

१० वैष्णवोंका अनुकरण मत करना, नहीं तो जलकर मर जाओगे; उनकी अकपट सेवाके लिए प्रार्थना करो।

११ हरि-सेवाका अर्थका भोग करनेसे सबसे अधिक पापण्ड होना पड़ता है।

१२ साधारण चोरका शायद कभी मङ्गल होता है, किन्तु गुरु-वैष्णवका अर्थके भोग करनेवालेका कभी भी मङ्गल नहीं होता।

१३ सभी भगवत्तत्त्वोंके मध्यमें कृष्ण जैसे सबसे अधिक वञ्चक हैं, उसी प्रकार सभी वैष्णवोंमे रूपानुग-वैष्णव सबसे श्रेष्ठ वञ्चक हैं।

१४ अन्याभिलापके साथ गुरु-वैष्णवकी सेवा करनेसे वे सेवकाभिमानीको लाभ पूजा-प्रतिष्ठा देकर अलग हो जाते हैं।

१५ जिसने मेरी सेवा की है, उसको पेटके लिये कोई कष्ट पाना नहीं होगा, या चिन्ता करना नहीं होगा। जो मेरे निकट उदर-पूर्त्तिका रसद अदाकर ही सन्तुष्ट हुआ, वह कृष्ण-सेवा नहीं पायेगा।

१६ प्रत्येक गृहस्थको गुरुपादपद्मका आश्रय कर गिरिधारीका अर्चन करना कर्त्तव्य है।

१७ अपराधशून्य होकर श्रीनाम-कीर्त्तन करना ही महाप्रभुकी शिक्षाका सार है।

१८ गुरु वैष्णवका अनुगत होकर गौरनाम प्रचार करना।

१९ आनुगत्यही श्रेष्ठ सदाचार है। स्वतन्त्रता ही भ्रष्टाचार है।

२० हरिसेवामें कर्त्तव्यबुद्धि और सन्तोष रहनेसे प्रकृत सेवावृत्ति प्रकाशित नहीं होती।

२१ सर्वदा सभी प्रकारसे सेवा करके भी अतृप्तिबोध (असन्तोष) मालूम होनेसे सेवावृत्तिका उन्मेष होता है।

२२ रातको जागकर साधुसङ्गमें एकादशी पालन करना।

२३ प्रति एकादशीको आत्मपरीक्षा करना कि तुम्हारा निष्कपट हरिभजनमें आग्रह बढ़ रहा है या अन्याभिलाप बढ़ रहा है, इसको विशेषरूपसे अनुसन्धान कर गुरु वैष्णवोंके चरणोंमें आत्म-निवेदन करना।

२४ हरिभजन करनेके लिये सहिष्णु, अमानी और मानद होना एवं शत बाधा और विघ्नमें भी परमोत्साही रहना।

२५ एक मुहूर्त्त भी हरिकथा-श्रवण-कीर्त्तन और वैष्णव-सेवाके बिना नहीं रहना, रहनेसे माया ग्रास करेगी।

२६ सभी वस्तु और व्यापारके द्वारा विष्णु और वैष्णवकी सेवाका अनुसन्धान करना।

२७ सिद्धान्त-विरोध और रसाभासकी गन्धभी रहनेसे वैष्णवाधिकार प्राप्त नहीं हुआ ऐसा जानना होगा।

२८ परच्छिद्रान्वेषणके बदले अपने दोषोंको दूर करनेकी चेष्टा करना।

२९ शरणागत नहीं होनेसे श्रवण और गुरुसेवाके बिना मायाजाल छिन्न नहीं होता।

३१ कृत्रिम स्मरण-पद्धति रूपानुग-पथ नहीं है।

३२ श्रीनाम-कीर्त्तन द्वारा स्वाभाविक स्मरण ही गौड़ीय लोगोंका सिद्धान्त है।

श्री श्रील आचार्यदेव और राय बहादुर मदन गोपाल सार्दाना।

सार्दाना सा:—हरिनाम-ग्रहण करनेके समय कितने ही को प्राणायामादि करते देखा जाता है?

आचार्यदेव—वह शुद्धभक्ति पथ नहीं—श्रीनाम-कीर्त्तनका पथ नहीं, अभक्ति पथ है। ये लोग कभी भी हरिनामकी कृपा प्राप्त नहीं करेंगे।

आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः
पतन्त्यधोऽनादृत युष्मदङ्घ्रयः॥

सार्दाना सा:—मैं यह स्वीकार करता हूँ कि हरि-नामग्रहणका पथ सर्वापेक्षा श्रेष्ठ है।

आचार्यदेव:—केवल श्रेष्ठ ही नहीं यही एकमात्र वास्तव सनातन पथ है। सब अनुकूल विषयका सङ्कल्प, प्रतिकूल विषयका वर्जन करके हरिनाम ग्रहण करना होगा।

सार्दाना सा:—कुछ लोग सारे दिनके कार्यादिके बाद सांसारिक झंझटसे पृथक् होकर किसी निर्जन स्थानमें हरिनाम करते हैं, तो क्या वह उनका कार्य अनुकूल नहीं होता?

आचार्यदेव:—यदि अनुकूल कार्य हो, तो वह साधुसङ्ग-रहित नहीं होगा।

सार्दाना सा:—सब समय तो साधु लोगोंके साथ बैठा नहीं जाता?

आचार्यदेव:—सब समय साधु-सङ्ग करना होगा। साधु-सङ्गके लिये, और साधु लोगोंकी वाणी श्रवण करनेके लिये आकाशपाताल मथन करना होगा, एक मुहूर्त्त भी साधु-सङ्ग छूटनेसे फिर हरिनाम नहीं होगा। दुष्ट मन या उसकी अधीश्वरी माया या प्रकृति या संसार विषय भोग या त्यागवासना उसको कवलित कर देगी।

सार्दाना सा:—यह तो व्यवहारिक बात नहीं है। किस प्रकारसे मनुष्य सर्वक्षण साधु-सङ्गमें हरिनाम ग्रहण कर सकता है? उसको तो अन्यान्य कार्यसमूह भी है?

आचार्यदेव:—साधु लोगोंके सङ्गमें हरिनाम श्रवण-कीर्त्तन करना ही एकमात्र कार्य है, जीव लोगोंके पक्षमें और कोई काम ही नहीं। २४ घंटों-में चौबीसों घंटे साधु-सङ्ग और हरिनाम कीर्त्तन करना होगा।

सार्दाना सा:—I want a practical solution, मैं एक व्यवहारके योग्य मार्ग (वा निर्णय) चाहता हूँ।

आचार्यदेव:—The so-called practical aspect is direly erroneous, फलकामना-मूलक कर्म वा भोग ही क्या Practical aspect है? और हरिसेवा—जो एकमात्र नित्य वास्तव सत्य है, वह theory वा utopian etherial speculation मात्र है? (विकृत मस्तिष्कके लोगोंकी कल्पना वा अवास्तव और शून्य मतवाद विशेष है)?

सार्दाना सा:—मान लीजिये कि कोई ऑफिसमें कार्य करता है, उसको सात आठ घण्टे तक ऑफिसमें कार्य करना पड़ता है, कुछ देर तक विश्राम करना पड़ता है, और कुछ देर तक सोना पड़ता है। बचे हुए समयमें वह किस प्रकार हरिनाम कर सकता है?

आचार्यदेव:—वह किस लिये ऑफिसका कार्य, विश्राम, निद्रा-उपभोग वा आहारादि करता है? क्या अपनी आत्मेन्द्रिय-तृप्तिके लिये, या पुरुषोत्तम-की इन्द्रिय-तृप्तिके लिये? इसीका सबसे पहले

निर्णय होना चाहिये। यदि पुरुषोत्तमकी इन्द्रिय-तृप्तिके लिये ये सब कार्य साधित होते हैं, तो हरिनाम ग्रहणके अनुकूल कार्य हुआ; और यदि इन्द्रिय तर्पणोद्देश्यसे माया बन्धन वृद्धिके लिये हो, तब पशुवत् क्रियाके अनुष्ठानसे हरिनाम किस प्रकार हो सकता है ?

साहोना मा:—मैं यदि भगवानकी सेवाके लिये ही सब कुछ करता हूँ, ऐसा मनमें समझ लूँ ?

आचार्यदेव:—केवल मन-ही-मन मनको Hood wink कर लेनेसे वा आरोप वा कल्पना करलेनेसे ही हरिभजन नहीं हो सकता, वास्तवमें ऐसा विज्ञान लाभ करना चाहिये।

साहोना मा:—प्राथमिकके पक्षमें वह किस प्रकार सम्भव हो सकता है ?

आचार्यदेव:—साधुके सङ्गमें रहकर श्रद्धा-पूत सेवोन्मुख कर्णके द्वारा उसकी शुश्रूषा करते करते यह सम्भव हो सकता है।

साहोना मा:—जो लोग महापुरुष हैं उनको तो आहार, निद्रा, विश्राम प्रभृतिमें समय व्यतीत करना पड़ता है तब वे किस प्रकार २४ घण्टे हरिनाम कर सकते हैं ?

आचार्यदेव:—जो कृष्णके सम्पूर्ण शरणागत हैं, उनलोगोंकी समस्त चेष्टा ही हरिनाम-कीर्त्तन-पर है। वे आहार, निद्रा, विश्राम, भ्रमण, शयन सभी कार्यसे ही हरि कीर्त्तन करते हैं, यह मायाबद्ध जीव समझ नहीं सकता है। मुक्त पुरुष ऑफिसके कार्य करते समय भी हरिकीर्त्तन कर सकते हैं। ठाकुर भक्तिविनोदने विचारकका कार्य करते समय भी सर्वेन्द्रियद्वारा सर्वदा हरिकीर्त्तन किया है, शरणागत हरिकीर्त्तन करनेवाले समझते हैं कि हरिनाम प्रभु ही एकमात्र सेव्य वस्तु हैं। उनकी सेवाके सिवाय उनका और कोई कार्य नहीं है। उनकी सेवाके अनुकूल ही वे सभी कार्य करते हैं। अकपट शरणागत हरिनाम-ग्रहण करने वालेका विचार ही ऐसा है। यह कल्पना वा आरोप नहीं है।

साहोना मा:—ऐसा विचार क्या आसानीसे आ सकता है ? धीरे धीरे होनेकी सम्भावना है।

आचार्यदेव—कृष्ण और उनके भक्त साधु लोगोंकी कृपासे बहुत आसानीसे भी आ सकता है। धीरे धीरे आवेगा ऐसा समझकर इतर कार्योंमें व्यस्त रहनेसे काम नहीं चलेगा। सर्वदा साधु-लोगोंके सङ्गमें सुदृढ़ भावसे शरणागतिके पथपर चलते-चलते इस प्रकारकी चित्त वृत्तिका विकाश होगा।

साहोना मा:—But during the transition period he should have recourse to निर्जन-भजन (किन्तु अवस्थान्तर प्राप्ति कालके बीचमें तो उसको कुछ समय तक निर्जनमें रहना चाहिये) ?

आचार्यदेव—उस निर्जन स्थानमें कौन उसे पथ दिखलावेगा ? वह तो उस समय दुष्ट मनके पल्लेमें पड़ जावेगा ? उसका दुष्ट मन उसे अकेला पाकर उसके ऊपर सवार होगा—प्रभुत्व करेगा। उस समय वह किसका परामर्श लेकर चलेगा ? अपना परामर्श अर्थात् दुष्ट मनके परामर्शसे चलनेसे तो वह मारा जायगा। केवल सांसारिक कार्य अर्थात् जञ्जालसे कुछ समय तक दूर रहा, किन्तु साधु लोगोंके सङ्गमें श्रवण-कीर्त्तन न कर दुष्ट मनका ही सङ्ग किया,—इस प्रकार निर्जनतासे ही क्या उसका मन वशीभूत होगा वा उन्नति होगी ? जिस प्रकार जागतिक शिक्षाक्षेत्रमें Private tutor से regular coaching ग्रहण करना पड़ता है, दुष्ट मनको दमन करनेके लिये भी उसी प्रकार

साधु-गुरुके निकट regular coaching वा training ग्रहण करना पड़ता है। साधु-गुरुकी वाणी श्रवण करते-करते दुष्ट मन क्रमशः आनुषङ्गिक भावसे दमित होगा अर्थात अनर्थ-निवृत्ति होगी एवं क्रमशः हरिनाममें रुचि उत्पन्न होगी। इसीलिये श्रीचैतन्यदेवका उपदेश है कि—

सजातीयाशये स्निग्धे साधौ सङ्गः स्वतोवरे।
श्रीमद्भागवतार्थानामास्वादो रसिकैः सह॥
(भः रः सिः)

एकही जातीय वासनाद्वारा स्निग्ध, पर अपनेसे श्रेष्ठ साधु लोगोंका सङ्ग करेंगे; उसी प्रकार साधु रसिकगणोंके साथ ही श्रीमद्भागवतका अर्थ आस्वादन करेंगे।

साहनी सा:—मैं इसे अस्वीकार नहीं करता हूँ। साधु-सङ्गकी प्रयोजनीयताका यथेष्ट स्वीकार करता हूँ। कितने ही इसको करते हैं। किन्तु हरिनाम ग्रहण करनेके समय साधु सङ्गकी क्या आवश्यकता है--केवल मात्र नामाक्षर उच्चारणके द्वारा नाम-ग्रहण नहीं होता?

असाधु-सङ्गे भाई कृष्णनाम नाहि हय।
नामाक्षर बाहिराय बटे, नाम कभु नय॥
कभु नामाभास हय, सदा नामापराध।
ये सब जानिबे भाई, कृष्णभक्तिर बाध॥
यदिः करिबे कृष्णनाम, साधुसङ्ग कर।
भुक्ति-मुक्ति-सिद्धि-वाञ्छा दूरे परिहर॥

'असाधु सङ्ग' भुक्ति-मुक्ति-सिद्धि कामी लोगोंका सङ्ग और फल्गुवैराग्यपर निर्जनतारूप दुष्ट मनके सङ्ग को कहते हैं। साधु लोगोंके सङ्गमें कौन नामाभास, कौन नामापराध, और कौन शुद्धनाम है यह प्रति क्षण जान लेना चाहिये। दुष्ट मन प्रति मुहूर्त्त हमलोगोंको आवृत्त और विक्षिप्त करनेकेलिये प्रस्तुत रहता है। मायाकी आवरणात्मिका और विक्षेपात्मिका वृत्तिसे दुष्ट मन कभी भी अपनी रक्षा नहीं कर सकता। इसीलिये सर्वदा साधु सङ्गमें श्रवण-कीर्त्तन करना होगा।

साहनी सा:— गुरुदेवके निकटसे जिसने एकबार हरिनाम श्रवण किया है एवं उनका उपदेश श्रवण किया है, उसको सर्वदा स्मरण रखनेसे ही तो कार्य हो सकता है। प्रति मुहूर्त्त साधु-सङ्गका क्या प्रयोजन है?

आचार्यदेव— गुरुदेवके निष्कपट अनुगत और अपनेसे श्रेष्ठ वैष्णव लोगोंका सर्वदा सङ्ग न करनेसे गुरुदेवका उपदेश स्मरण नहीं रहता। बीसों वर्ष तक अद्वितीय सद्गुरुके सहस्र-सहस्र उपदेशोंके श्रवण करनेका अभिनय करके भी बहुत लोग विपथगामी हो गये हैं—दुष्ट मनके कवलमें कवलित हो पड़े हैं। इसलिये साधु सङ्गके निरवच्छिन्न प्रवाहमें सर्वदा अवस्थान करना होगा, सर्वदा सेवोन्मुख कर्णके द्वारा अपनेसे श्रेष्ठ साधुकी शुश्रूषा करनी होगी, केवलमात्र mechanically हरिनामाक्षर उच्चारण करनेमें नहीं होगा। जहां हरिनाम ग्रहणके साथ ही साथ हरिनामके सम्बन्ध में clear conception, perception वा realisation और चेतनमयी भक्ति-वृत्तिका Progress नहीं, जहां श्रीनामके परिकरगणोंके प्रति अकपट अनुराग वृद्धि नहीं वह Static वा Stagnant अवस्था मात्र है। श्रीहरिनाम सेवाके द्वारा आत्माका dynamic devotional Progress होगा—आत्मा inert वा Stagnant अवस्थामें नहीं रहेगा। जीवात्माकी सेवावृत्ति (dynamic) है static नहीं।

साहनी सा:— हाँ, यह बात स्वीकार करता

हैं। बहुत ठीक बात है।

आचार्यदेव— सर्वदा अपनेसे श्रेष्ठ वैष्णवोंका सङ्ग करना होगा। उनका regular tutelage coaching और training ग्रहण करना होगा। उस प्रकारके साधुको eternal tutor बनाना होगा—जो साधु हमारी खुशामद नहीं करते, हमको कनक-कामिनी-प्रतिष्ठा देकर वञ्चना नहीं करते सद्गुरु भी वैसी वस्तु देकर बहुत बार हमलोगोंकी परीक्षा करते हैं, किन्तु अकपट होकर अपनेसे श्रेष्ठ और निष्कपट साधु लोगोंका सङ्ग करनेसे गुरुदेवकी उस परीक्षामें उत्तीर्ण हो सकते हैं, उनकी वञ्चनासे पतित नहीं होना पड़ता। राय बहादुर, आप श्रील प्रभुपादसे सम्बन्धयुक्त हैं आपको अति विनती भावसे मैं यही निवेदन कर रहा हूँ कि हमलोगोंका दिन बहुत शीघ्रतापूर्वक बीतता जाता है, हमलोगोंको इस समय अकपट होकर अनन्य चित्त होकर हरिभजन करना होगा श्रील प्रभुपादकी अहैतुकी, असीम कृपाका भिखारी और उससे अभिषिक्त होना होगा।

साहाना सा:— आप मेरे प्रति विशेष कृपा रखते हैं। मैं आपके उपदेशानुसार यथासाध्य चेष्टा करूँगा।

आचार्यदेव— आप वास्तवमें कौन हैं, आपका स्वरूप क्या है। यह कृपापूर्वक एकबार उपलब्धि करनेकी चेष्टा कीजिये। आप स्वरूपत: श्रीकृष्ण-चरणमें उत्सर्ग करने योग्य सुनिर्मल शुभ्र पवित्र कुसुम हैं। आपकी जरामृत्यु नहीं है, आप पञ्चनद वा युक्तप्रदेशवासी नहीं हैं, आप पुरुष वा स्त्री नहीं हैं, आप वृद्ध वा बालक नहीं हैं। आपको शोक-मोह-भय नहीं है। आप श्रीगुरुपादपद्मके एक स्वच्छ नैवेद्य हैं। पृथ्वीका कोई नि:स्वार्थी बन्धु वा आत्मीय-स्वजन भी आपको यह सब बात नहीं कह सकता है। जगतके सभी व्यक्ति आपको Commercial interest वा bartering system का ही (बनिग वृत्तिका) परामर्श ही देंगे। मैं नम्रतापूर्वक कर जोड़ कर आपकी प्रार्थना कर रहा हूँ कि आप अपने प्रकृत नित्य चेतनमय आनन्दमय स्वार्थका अनुसन्धान कीजिये। आप पूर्ण प्रस्फुटित पुष्परूपसे श्रीगुरुगौराङ्गके श्रीचरणमें आत्मनिवेदन कीजिये।

साहाना सा:—मैं कुछ ग्रन्थ पढ़ना चाहता हूँ, अंग्रेजी और हिन्दी ग्रन्थ होनेसे सुविधा होगी।

आचार्यदेव— ग्रन्थ पढ़नेके पहले जो भगवद्भजनमें सर्वदा प्रतिष्ठित हैं, उनसे Living source के निकटसे भगवत्प्रसङ्ग श्रवण करना और अच्छा है।

गिरि महाराज— आज हरिवासर है, आचार्यदेव निरम्बु उपवासी हैं। आगामी कल और आलोचना हो सकेगी।

साहाना सा:— आज एकादशी ?

आचार्यदेव— हाँ, आज हरिका वासर हरिका दिन—सारा दिन हरिकथा श्रवण-कीर्त्तनका दिन है। आज आहारादिके लिये यत्न न कर सारा दिन हरिकथामें नियुक्त रहना होगा।

साहाना सा:— आज क्या कुछ ग्रहण नहीं किया जाता ?

आचार्यदेव—एकान्त असमर्थके लिये सामान्य दुग्धफलादि अनुकल्पकी व्यवस्था है, किन्तु निरम्बु उपवास ही विधि है।

साहाना सा:—आप जबतक यहां रहेंगे, प्रतिदिन जिसमें मैं आपका सङ्ग पा सकूं इसके लिये चेष्टा करूँगा। किन्तु इन कई दिनोंके सिवाय दूसरे समय, जब आपके निकट नहीं आ सकूँगा,

उस समय किस प्रकार आपकी सेवा कर सकता हूँ ?

आचार्यदेव— श्रीगुरुपादपद्मसे सुनी हुई जो सब कथा आपके निकट निवेदन की आप वह सब अपनी भाषामें यथासाध्य लिपिवद्ध कीजिये; उसका संशोधन कर दिया जायगा. ऐसा होनेसे ही आप समझ सकेंगे कि कहां कहां defect वा deficiency है। इससे ग्रन्थ पाठसे भी आपका अधिक उपकार होगा; क्योंकि यह direct training, regular coaching है। मैं आपकी और क्या सेवा कर सकता हूँ, कहिये ?

सार्दाना सा:— मैं कल फिर आपके समीप आकर आपकी वाणी श्रवण करूँगा।

आचार्यदेव— आपके निकट प्रार्थना है कि स्वार्थगतिकी सेवासे लाभवान होइये—प्रतिदिन जिससे भजनमें उन्नति लाभ कर सकें, इस प्रकार दृढ़ सेवोन्मुख होइये। क्योंकि समय तेजीसे बीतता जा रहा है।

सार्दाना सा:— मैं नहीं समझता, इसीलिये वृथा कार्यमें कितना मूल्यवान समय नष्ट कर देता हूँ।

आचार्यदेव— मुझे स्मरण है आपने मुलतान-से गत १९३३ खृष्टाब्दकी १ ली जनवरीको गुरुमहाराजके (श्रीश्रील प्रभुपादके) निकट एक पत्र लिखा था। गुरु महराजने मेरे द्वारा ढाकासे उस पत्रका उत्तर लिखवाया था।

सार्दाना सा:— हां, मुझे स्मरण हो रहा है। मैं उस समय आठ मासकी छुट्टी लेकर मुलतानमें था। आपका उपदेश सुनकर सचमुच ही ज्ञात हुआ कि आपने श्रीगुरुमहराजकी कृपा उपलब्धि की है। मैं कल फिर आऊंगा। दण्डवत।

भजन

आमार (मेरा) जीवन, सदा पापे रत,
नाहिक (नहीं है) पुण्येर लेश।
परेरे (दूसरेको) उद्वेग, दियाछि जे कत,
दियाछि जीवेरे क्लेश ॥१॥

निज सुख लागि, पापे नाहि डरि
दयाहीन स्वार्थपर (स्वार्थी)।
पर सुखे दुःखी सदा मिथ्या-भाषी
परदुःख सुखकर ॥२॥

अशेष कामना हृदि (हृदयमें) माझे मोर
क्रोधी दम्भपरायण
मदमत्त सदा, विषय मोहित,
हिंसा गर्व विभूषण ॥३॥

निद्रालस्य-हत, सुकार्ये विरत,
अकार्ये उद्योगी आमि।
प्रतिष्ठा लागिया, शाठ्य (कपटताका) आचरण,
लोभहत (लोभी) सदा-कामी ॥४॥

ए हेन (ऐसा) दुर्जन, सज्जन-वर्जित,
अपराधी निरन्तर
शुभकार्यशून्य, सदानर्थमना,
नाना दुःखे जर जर ॥५॥

वार्द्धक्ये (बुढ़ापेमें) एखन, उपायविहीन,
ताते दीन अकिञ्चन (निष्किञ्चन)।
भकतिविनोद, प्रभुर चरणे,
करे दुःख निवेदन ॥६॥

नामाचार्य श्रील ठाकुर हरिदास (३)

भागवतके पूर्व दो सङ्ख्याओंमें नामाचार्य श्रील ठाकुर हरिदासके गुणोंका कुछ कुछ कीर्त्तन किया गया है। भक्तका गुण-गान करनेसे आत्म-मङ्गल होता है एवं हरि भक्ति प्राप्त होती है। इसलिये इस प्रबन्धमें भी उसी विषयकी आलोचना की गयी है।

महाभागवत ठाकुर हरिदासके निकट जाकर जब ब्राह्मणोंने कहा कि आपकी गुफामें एक महानाग रहता है जिसकी ज्वालासे यहांपर कोई ठहर नहीं सकता, और इस कारण उस भजनस्थानको छोड़ देनेके लिये उनसे अनुरोध किया तब ठाकुर हरिदासने कहा कि मैंने तो किसी प्रकारका विष या ज्वाला अनुभव नहीं की परन्तु जब आपलोग मेरे लिये व्यस्त हैं तब आपलोगोंके सन्तोषके लिये मैं अन्यत्र चला जाऊँगा। आपलोग अब चिन्तारहित हो कृष्ण गुण-गान कीजिये। महाभागवत ठाकुर हरिदासके स्थान त्याग करनेके सङ्कल्पको सुनकर महानाग सन्ध्या समय उनके भजन कुटीके गढ़ेसे निकलकर सबोंके सामने ही अन्य स्थानको चले गये। सर्पके चले जानेके उपरान्त वहांपर और ज्वाला नहीं रही जिससे विप्रगण अत्यन्त आनन्दित हुए।

अब उनकी एक और अद्भुत लीला सुनिये। एक दिन किसी एक बड़े आदमीके मन्दिरपर मन्त्रके प्रभावसे आविष्ट एक सँपेरा, बिषैले दांत उखड़े हुए सर्पके साथ, नाना प्रकारसे नृत्य कर रहा था और उसके चारों ओर उसके उच्चारित मन्त्रके प्रभावसे मुग्ध होकर उसके साथी लोग झाल, मृदङ्गादि बाजे बजाकर उच्च स्वरसे गीत गा रहे थे। दैवात् वहांपर ठाकुर-हरिदास पहुँचे और एक ओर खड़े होकर नृत्य देखने लगे। उस समय नागराज (वासुकि, अनन्त) मन्त्रके प्रभावसे मनुष्यके शरीरमें प्रविष्ट होकर आनन्दसे नाच रहे थे और कालिय-दहमें कालिय-सर्पके ऊपर चढ़कर जगद्गुरु कृष्णने जैसा ताण्डव नृत्य किया था, वैसा ही भाव अवलम्बन कर सँपेरेके साथी लोग उच्च स्वरसे कालिय-नागके प्रति भगवानके दण्डदानके बहाने महादया सूचक गीत गा रहे थे। अपने प्रभुकी करुणा-सूचक गीतसे मुग्ध होकर उद्दीपनके कारण ठाकुर-हरिदास प्रेमानन्दसे मूर्छित हो गये और उनका श्वास-प्रश्वास बन्द हो गया। कुछ देरके बाद चेतनता प्राप्त कर ठाकुर आनन्दके मारे हुङ्कार कर नृत्य करने लगे। महाभागवत वैष्णव ठाकुर हरिदासको कृष्ण प्रेमावेशमें नृत्य करते देखकर अनन्त देवाविष्ट सँपेरा सम्भ्रमके साथ एक ओर खड़ा होकर उनकी अद्भुत लीलाको देखने लगा। श्रीकृष्ण-प्रेमके आवेशमें ठाकुर-हरिदास अप्राकृत अश्रु-कम्प-पुलकान्वित अप्राकृत शरीरसे तन्मय होकर दुष्ट सर्पकुलमें उत्पन्न महाक्रूर कालियनागके प्रति कृष्णकी अतुलनीय महादयाकी बात श्रवण एवं स्मरण करते २ पृथ्वीपर लोटने लगे और रोने लगे और उन्हें घेरकर सब कोई गीत गाने लगे। कुछ समयके बाद जब ठाकुर-हरिदासने बाह्यज्ञान प्राप्त किया तब उस सँपेरेने अपना नृत्य आरम्भ किया। हरिदास ठाकुरके कृष्ण-प्रेमको देखकर सब कोई अत्यन्त आनन्दित हुए और जहां २ उनके चरण पड़े थे वहां वहांकी धूल लेकर वे लोग प्रेमसे अपने २ शरीरमें लगाने लगे। इस व्यापारको एक विषयी और नीच विप्र देख रहा था। उसने दुर्बुद्धि-

के वश महा-भागवत वैष्णव ठाकुरके अलौकिक भाव-क्रिया-मुद्राको अपने प्राकृत बुद्धि और कृत्रिम रूपसे अनुकरण करनेकी इच्छा की। उसने मन-ही-मन विचार किया कि साधारण मूर्ख लोग अपने अन्धविश्वासके कारण किसी व्यक्तिके सामान्य धर्मानुष्ठान तथा एक प्रकारके नृत्य-गीतको देख तथा श्रवण करके ही नाना प्रकारसे भक्तिके साथ उसका बहुत सम्मान करते हैं। इसी कारण यवन-कुलमें जन्म ग्रहण करनेवाले एक सामान्य मनुष्य ठाकुर-हरिदासको जब इतनी अधिक पूजा, सम्मान तथा प्रतिष्ठा प्रदान की गयी, तो मैं यदि हिन्दू जातिके सर्व-श्रेष्ठ ब्राह्मण कुलमें जन्म लेकर कपटतापूर्वक वैष्णव ठाकुरके अलौकिक अष्ट-सात्विक भाव तथा क्रिया-मुद्रादिका अनुकरण करके नृत्य करूँ तो मुझे कितना लाभ और मेरी कितनी पूजा प्रतिष्ठादि होगी इसका अनुमान नहीं किया जा सकता। जब एक मामूली मनुष्य ठाकुर-हरिदासके भावको देखकर ही उनके प्रति लोगोंकी इतनी श्रद्धा हुई तब मैं देव-शर्म्मा नामका शौक्र ब्राह्मण-तनय होकर उनके अप्राकृत भाव-मुद्राको नकल करके न जाने कितनी पूजा-प्रतिष्ठा सम्मानादि प्राप्त करूँगा। कृत्रिम भाव दिखलानेसे ही मेरी क्षुद्र जड़प्रतिष्ठा अप्राकृत वैष्णव-के अप्राकृत वैष्णवी प्रतिष्ठासे अत्यन्त अधिक होगी। ऐसा विचारकर वह पाखण्डी विषयासक्त विप्र अपनेको बड़ा भारी भक्त दिखलानेके लिये अचानक पृथ्वीपर गिरकर लोटने लगा तथा संज्ञाहीन भाव प्रदर्शित करने लगा। उस विप्रके कपट, क्षणभङ्गुर और कृत्रिम भावाभास दिखलाने-के साथ ही सँपेरा अपने नृत्यमें बाधा देखकर और उसकी कपटताको समझकर अत्यन्त क्रोधकर बेंतोंसे बड़े जोरोंसे उसपर प्रहार करने लगा। शरीर, कन्धा, मस्तक इत्यादि पर निर्दयताके साथ प्रहारित होकर वह विप्राधम 'बाप रे बाप, मर गये' कहते हुए वहांसे भागा और वह सँपेरा अत्यन्त आनन्दके साथ नृत्य करने लगा। तब दर्शक लोगोंने विनयपूर्वक सँपेरेसे पूछा कि आप हरिदासके नृत्यके समय सादर कर जोड़-कर एक ओर खड़े थे और इस विप्रके मूर्च्छित होनेपर आपने निर्दयताके साथ इसपर इतना प्रहार क्यों किया? इसके उत्तरमें सँपेरेके शरीर-में अवस्थित अनन्तदेव उस सँपेरेके मुखसे सबों-को कहने लगे कि तुमलोगोंने जो पूछा वह आश्चर्य-जनक तथा अनिर्वचनीय है। परन्तु रहस्यपूर्ण होनेपर भी मैं तुमलोगोंके प्रश्नका उत्तर दूँगा। हरिदास-ठाकुरके प्रेमावेशको देखकर तुमलोगोंने उनके प्रति जो श्रद्धा दिखलाई उसको देखकर यह ब्राह्मण ढोंग करके मात्सर्य बुद्धिसे पृथ्वीपर गिर पड़ा। परन्तु मत्सरतावश मेरे (अनन्तदेवके) अलौकिक नृत्यको भङ्ग करनेकी शक्ति किसी विषयी, मर्त्य जीवको नहीं है। अप्राकृत हरिजन ठाकुर-हरिदासके साथ इस विषयी व्यक्तिको बराबरी करनेकी इच्छा हुई इसी कारण इसकी इतनी सजा हुई। हरिदास ठाकुर—निष्कपट अप्राकृत और सहज-प्रेमिक और यह विप्र घृणित विषयासक्त तुच्छ जीव है। निष्कपट शुद्धभक्तके साथ मिथ्या प्रतिद्वन्द्विताके कारण उनकी नकल करनेकी चेष्टा ही विषयी पाखण्डी व्यक्तिकी कुटिलता है। तत्व विचार अनभिज्ञ मूर्खलोगोंके निकट जड़ प्रतिष्ठा प्राप्त करनेकी इच्छासे ही कपटता कर महाभागवत वैष्णव ठाकुरके प्रति हिंसा करनेके कारण ही मैंने इसको पूर्णरूपसे दण्ड दिया। इस नकली ब्राह्मणके तौरपर

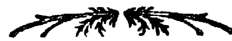
पाखण्डी भक्तगण भी संसारके लोग जिससे उसको भक्त समझें इस दुर्वासनासे कृत्रिम भावाभासका प्रदर्शन करते हैं। ऐसे दाम्भिकोंको कृष्णभक्ति प्राप्त नहीं होती कारण कपटतारहित (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष वासना रहित) होनेसे ही कृष्ण भक्ति प्राप्त होती है। जो महाभागवत-वैष्णवोंके अलौकिक क्रिया-मुद्राको कृत्रिमरूपसे नकल करके 'भक्त' कहलाकर सांसारिक प्रतिष्ठा प्राप्त करना चाहते हैं, भगवच्चरणमें उनकी किसी प्रकारकी सेवा प्रवृत्ति नहीं होती। अपने जड़-इन्द्रिय-सुखके लिये दम्भसे कृष्ण भक्त होनेका अभिमान करके भी भक्तिमुद्रा प्रदर्शन करनेकी उसकी चेष्टा लोक वञ्चनाके लिये ही हुई है। जहां इस प्रकारका धर्मध्वजत्व नहीं रहता है वहा पर ही कपटतारहित कृष्णभक्ति होती है और जहां ये सब दोष विराज रहे हैं वहां दम्भ, कपटता, और कृष्णसेवा छोड़कर अन्य प्रकारकी दुर्वासना है। सेवोन्मुख वैष्णवोंका कृष्णप्रीति-वाञ्छामय नृत्य देखनेसे दर्शक लोगोंका जहां भवबन्धन विनष्ट होता है, वहां विषयासक्त जीवोंकी क्रिया-मुद्रा उनलोगोंके भवबन्धनको ही बढ़ाती है। वैष्णवोंके कृष्ण-इन्द्रिय-प्रीति-वाञ्छामय नृत्य-दर्शन करनेसे वैष्णवोचित निष्कपट भाव उत्पन्न होता है, और नकल करने वालोंकी चेष्टासे संसारमें कुफल ही उत्पन्न होता है। ठाकुर हरिदास जिस समय अप्राकृत नृत्यलीला प्रदर्शन करते हैं उस समय उनके निष्कपट प्रेमसे वशीभूत होकर उनके साथ पार्षदोंके सहित स्वयं भगवान कृष्णचन्द्र नृत्य करते हैं। संसारके सौभाग्यवान् जीव उस अप्राकृत नृत्यको देखकर बहुत जन्मके सञ्चित पाप-पुञ्जसे मुक्त होकर भक्तोन्मुखी सुकृति प्राप्त करके शुद्ध हो जाते हैं। जिनके हृदयमें कृष्णचन्द्र निरन्तर वास करते हैं उनके ही योग्य 'हरिदास' नाम है। हरिदास-ठाकुर सभी प्राणियोंके प्रति स्नेहदृष्टिसम्पन्न एवं स्थावर तथा जङ्गम सबोंके उपकारी हैं। भगवानके प्रत्येक अवतारमें वे भी अवतरित होते हैं अर्थात् लीला-सचिव पार्षद हैं। हरिदास-ठाकुर साक्षात् भगवत्पार्षद हैं इसलिये उनका विष्णु तथा वैष्णवोंके प्रति कभी अपराध नहीं होता। साधारण विषयी पुरुषोंकी नाईं उनकी कृष्णसेवन-मयीचेष्टा कभी, यहां तककि स्वप्नावस्थामें भी, विपथमें नहीं जाती। अत्यन्त थोड़े-समयके लिये भी यदि किसी जीवको जन्म-जन्मान्तरके सञ्चित महासौभाग्यके कारण हरिदासका सङ्ग प्राप्त हो तो उस संगके प्रभावसे वह जीव अवश्यही भगवच्चरणारविन्द प्राप्त करेगा। नामाचार्य हरिदास-ठाकुर सदृश महा भागवत भक्तोंका संग प्राप्त करनेके लिये ब्रह्मादि देवगण सर्वदा इच्छा करते हैं। प्राकृत सत-असत कर्मका फल भोगनेके लिये बद्धजीव ऊंच नीच योनिमें जन्म ग्रहण करता है—वह जीवके कर्मफल-भोगको ही दिखलाता है। परमार्थ-विचारसे जाति वा संसारी वंश मर्यादाका कुछ मूल्य नहीं है—इस परम सत्यको संसारमें सबोंको बतलानेके लिये ही मंगलमय भगवानकी मंगलमयी इच्छासे ही हरिदास-ठाकुर यवन कुलमें आविर्भूत हुए थे। कर्मफलकी उत्तमता तथा अधमताकी पहचान उत्तम तथा अधमवंशमें जन्म प्राप्तसे ही किया जाता है, किन्तु जीव स्वरूपतः विष्णुभक्त होनेके कारण तात्कालिक वंश-परिचयके अनुसार छोटा या बड़ा होनेपर भी भगवद्भक्तिके परिमाण-अनुसार ही उत्तम अथवा अधम कहा जाना चाहिये—यही शास्त्रोंमें उच्च स्वरसे कहा गया है। निम्नकुलमें जन्म

लेनेसे ही जीवको विष्णुभक्तिका अधिकार नहीं होगा, ऐसी बात नहीं। नीच कुलमें उत्पन्न व्यक्ति वैष्णव होनेपर उच्चकुलोद्भूत अभक्तोंका पूज्य, गुरुदेव तथा ब्राह्मण है। सत् कर्मके फलसे अति उत्तम कुलमें जन्म ग्रहण करके भी भगवद्भजनसे उदासीन रहनेसे उसको अवश्य ही नरक प्राप्ति होती है। विदेहराज-निमि तथा नवयोगेन्द्रके सम्वादमें कहा है (भा: ११-५-३)

य एषं पुरुषं साक्षादात्म प्रभवमीश्वरम् ।
न भजन्त्यवजानन्ति स्थानाद्भ्रष्टाः पतन्त्यधः ॥

इन सब वेदवाक्योंको यथार्थ रूपसे प्रदर्शन करनेके लिये ही हरिदास-ठाकुर यवनकुलमें अवतीर्ण हुए थे। जिस प्रकार विष्णुविद्वेषी दैत्यकुलमें श्रीप्रह्लाद और पशुकुलमें श्रीहनुमानजीने जन्म ग्रहण किया था, उसी प्रकार यवनकुलमें ठाकुर-हरिदास प्रभुकी इच्छानुसार प्रकट हुए थे। साधारणतः मनुष्य देवताओंको स्पर्श करके एवं गङ्गाजीमें स्नान करके पवित्र होनेकी इच्छा करते हैं किन्तु ब्रह्मादि देव, यहांतक कि विष्णुचरणसे प्रकट हुई परम पवित्र गङ्गाजी भी, महाभागवत परमहंस वैष्णवाचार्य सर्वदेवमय हरिदास-ठाकुरको स्पर्श करके धन्य होनेकी इच्छा करती हैं। हरिदास-ठाकुर-को स्पर्श करना तो दूर रहे उनका दर्शन करने से ही जीवके अनादिकालकी अविद्याका बन्धन-सूत्र (शरीराभिमान, शरीरमें आत्म बुद्धि) उसी क्षण नष्ट हो जाता है। नामाचार्य-हरिदासमें जो अप्राकृत गुरुका भाव रखते हैं (अर्थात् उनको अप्राकृत गुरु समझते हैं) उन भक्तोंको देखनेसे भी (अर्थात हृदय मन वचन द्वारा उनका आनुगत्य स्वीकार करनेसे) बद्धजीवोंका संसार बन्धन नष्ट हो जाता है। तदुपरान्त नागराज मन्त्रसिद्ध (जिसने अनन्तदेवके मन्त्रकी सिद्धि प्राप्त की थी) सँपेरेने कहा कि तुमलोग अत्यन्त भाग्यवान हो क्योंकि तुमलोगोंके प्रश्न करनेसे ही आज मेरे मुखसे भगवद्भक्तकी थोड़ीसी गुण-महिमा कीर्त्तित तथा प्रकाशित हुई है। मैं यदि सौ वर्षों तक सौ मुखों द्वारा ठाकुर-हरिदासकी अप्राकृत गुणमहिमा गान करूँ, तौभी उनका अन्त नहीं होगा। एकबार भी यदि कोई व्यक्ति श्रद्धापूर्वक 'हरिदास' इस अप्राकृत चिन्मय वैष्णव ठाकुरका नाम उच्चारण करे तो वह निश्चय ही भगवद्धाम प्राप्त करेगा। इतना कहकर वह सँपेरा चुप हो गया और उसके मुखसे हरिदास-ठाकुरका माहात्म्य सुनकर सज्जनलोग अत्यन्त प्रसन्न हुए।

(क्रमशः)



गुरु-सेवा

श्रुति-स्मृति पुराणादि शास्त्रोंमें सर्वत्र ही आचार्य सेवा करनेका माहात्म्य गान किया गया है। सद्गुरुसेवाके सिवाय बद्धजीवकी अनर्थ निवृत्ति (अनर्थ चार प्रकारके हैं—स्वरूपभ्रम, असत्तृष्णा, हृदयदौर्बल्य और अपराध) और भगवत्सेवाप्राप्तिका और दूसरा उपाय नहीं। शास्त्रोंने आचार्यको भगवत्प्रकाश वा आश्रयजातीय भगवद्विग्रह कहा है। गुरुदेव भगवानसे अभिन्न हैं। वे जीवोंको नित्य

सेवाशिक्षा देनेके लिये प्रपञ्चमें सेवक-विग्रहरूपसे प्रकट हैं। उनका आश्रय ग्रहण करनेसे जीव विषयस्वरूप भगवानको प्राप्त कर सकता है। सद्‌गुरु सेवा करते करते जब बद्धजीवके हृदयकी अविद्याराशि दूर होती है और चित्त-दर्पण निर्मल होता है, तब गुरु कृपासे जीवके उस निर्मलहृदय-में परमश्रेय दानकरनेवाली ब्रह्मविद्याका उदय होता है। जीवकी जबतक भुक्ति कामना प्रबल रहती है, तबतक वह सद्‌गुरुके समीप अभिगमन नहीं कर सकता। श्रुति कहते हैं—

परीक्ष्य लोकान कर्मचितान ब्राह्मणो।
निर्वेदमायान्नास्त्यकृत: कृतेन॥
तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत।
समितपाणि: श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्॥

ब्राह्मण कर्म द्वारा अर्जित स्वर्गादि लोकसमूहको केलेके छिलकेके समान असार समझकर और "नित्य भगवद्धाम अनित्य कर्मके द्वारा प्राप्त नहीं होता" ऐसा समझकर, कर्मफलमें निर्वेद (विरक्ति) लाभ करते हैं। इस प्रकार भुक्ति-कामनासे निर्वेदप्राप्त पुरुष अति विनीतभावसे ब्रह्मज्ञान प्राप्त करनेके लिये वेदतात्पर्यवित (वेदके तात्पर्यको जानने वाले) और भगवत्सेवापरायण सद्‌-गुरुके चरणमें सम्पूर्णरूपसे शरण ग्रहण करते हैं।

श्वेताश्वतर श्रुतिने कहा है—

यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्था: प्रकाशन्ते महात्मन:॥

जिन अधिकारी पुरुषकी भगवानमें अहैतुकी पराभक्ति वर्तमान है और जो सद्‌गुरुमें भी ऐकान्तिकी भक्ति विशिष्ट हैं, उन्हीं महात्माके निकट आत्मतत्व-विषयक सभी उपदेश प्रकाशित होते हैं। श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामीपादने भी कहा है—

"ताते कृष्ण भजे, करे गुरुर सेवन।
माया जाल छूटे, पाय कृष्णेर चरण॥"

अर्थात त्रिगुणात्मिका दुष्पार मायाके हाथमे उद्धार प्राप्तकर नित्य भगवत्सेवा पानेके लिये गुरुसेवा एवं गुरुके आनुगत्यमें भगवद्भजनके सिवाय और दूसरा उपाय नहीं। सद्‌गुरु शिष्यके भुक्तिमुक्ति-कामनाको निराशकर एकमात्र अहैतुकी सेवा शिक्षादान करते हैं। जहां गुरु (?) शिष्यको अपना भोग्य समझते हैं एवं शिष्य भी आत्मेन्द्रिय प्रीतिवांछा लेकर गुरुके निकट गमन करते हैं, वहां गुरुसेवा नहीं होती। इस प्रकार गुरु और शिष्यका सम्बन्ध नरक जानेका द्वारस्वरूप एवं सद्‌-गुरुसेवा वैकुण्ठ जानेका द्वारस्वरूप है। गुरु नित्य भगवत्सेवामें प्रतिष्ठित हैं अत: वे शिष्यको भी भगवानकी सेवामें नियुक्त करते हैं। सद्‌गुरुकी सेवाके सिवाय अन्य कोई भी दूसरा कृत्य नहीं है इसलिये एकमात्र सद्‌गुरुकी सेवा करनेसे ही युगपत गुरुसेवा और भगवत्सेवा सिद्ध होती है। प्रसिद्ध वैष्णवाचार्य श्रीरामानुजपादका नाम परमार्थी लोगोंने श्रवण किया होगा। उन्होंने मायारूपी अन्धकार और कर्ममार्गीय स्मार्त्तोंके चक्करसे जीवों-के उद्धार करनेके लिये संसारमें भक्त और भगवानकी सेवामाधुर्यका प्रचार किया है। एकबार उन्होंने शिष्योंके साथ श्रीशैलोद्देश्य गमन किया। उच्चस्वरसे हरिनाम कीर्त्तन करते करते वे अग्रसर होने लगे। दो तीन दिनोंके बाद वे एक ग्राममें आ पहुँचे। उसी ग्राममें रामानुजके दो शिष्योंका वासस्थान था। एक धनी और एक निर्धन थे। धनी शिष्यका नाम यज्ञेश एवं दूसरे शिष्यका नाम वरदाचार्य था। रामानुजने उक्त

धनाढ्य शिष्यके निकट शिष्योंके साथ अपने आगमनकी सूचना देनेके लिये अपने दो शिष्योंको भेजा। यज्ञेश श्रीगुरुदेवके आगमनकी वार्ता सुनकर आनन्दमें इतना अधीर हो गये कि अन्तःपुरमें जाकर किस प्रकार प्रभुकी अभ्यर्थना करेंगे इसके लिये व्यस्त हो पड़े। इधर दो गुरुभ्राता जो उनके घरके द्वारपर बैठे हुए थे उनके विषयमें वे उदासीन हो गये। रामानुजके दोनों शिष्योंने यज्ञेशके इस व्यवहारसे दुःखित होकर गुरुके निकट यह सब निवेदन किया। रामानुज भी धनाढ्य शिष्यके व्यवहारसे अत्यन्त दुःखित होकर दरिद्र वरदाचार्यके घरमें आतिथ्य स्वीकार करनेके लिये शिष्य लोगोंके साथ पहुँचे। वरदाचार्य प्रतिदिन प्रातःकाल भिक्षाके लिये बाहर जाते एवं सारा दिन भिक्षाकर जो कुछ पाते, उसे गुरु और नारायणको निवेदन कर उनलोगोंका अवशेष ग्रहण करते। उनके लक्ष्मी नामकी परम साध्वी रूपलावण्यवती सहधर्मिणी थीं। वे प्रकृत स्वामीके धर्मकी सहायता करनेवाली थीं। जिस समय रामानुज वरदाचार्यके टूटे फूटे झोंपड़ेपर शिष्य लोगोंके साथ उपस्थित हुए, उस समय वरदाचार्य भिक्षाके लिये बाहर गये हुए थे। लक्ष्मी, स्नान करके एक क्षुद्र शतच्छिद्र फटा वस्त्र किसी प्रकार धारणकर दूसरा एक फटा मलिन वस्त्र धूपमें सुखा रहीं थीं। वे ऐसी अवस्थामें गुरुदेवके सामने आकर उनका अभिनन्दन नहीं कर सकतीं थीं, इस बातको उन्होंने करतलध्वनि द्वारा ज्ञापन किया। रामानुजने उसी समय बाहरसे अपना चादर गृहके भीतर फेंक दिया। लक्ष्मी उसके द्वारा अपना शरीर आच्छादनकरके गुरुके सम्मुख उपस्थित हुई एवं गुरुदेवको पुनः पुनः साष्टाङ्ग प्रणामकरके कहने लगीं, "प्रभो, आपलोग कृपापूर्वक बैठिये, मेरे स्वामी भिक्षाके लिये बाहर गये हैं, मैं शीघ्र ही विष्णु नैवेद्य प्रस्तुत कर देती हूँ।" इधर गृहमें चावलकी खुद्दी भी नहीं। क्या करेंगी कुछ स्थिर न कर सकीं। किन्तु प्राण देकरके भी यदि गुरु और वैष्णवलोगोंकी सेवा हो सके तो वह अवश्य करनी चाहिये यह चिन्ता करते २ नारायणको स्मरण करने लगीं। अन्तमें लक्ष्मीदेवीको एक उपाय सूझ पड़ा। निकट ही एक धनाढ्य वणिकका वासस्थान था। उक्त वणिक चरित्रहीन था। उसने लक्ष्मीदेवीके रूप लावण्य पर मुग्ध होकर कईबार उनको अपनी विलासिनी होनेके लिये अनुरोध किया था और कहा था कि जिस समय लक्ष्मीदेवी उसकी मनोकामना पूर्ण करेंगी उसी समयसे उनके और उनके स्वामीका दारिद्र्य दूर हो जायगा। उन्हें और किसी बातका अभाव नहीं रहेगा। किन्तु सती साध्वी लक्ष्मीदेवीने वणिकके ऐसे विचारकी ओर दृष्टिपात भी नहीं किया था। आज देखती हैं कि श्रीगुरुदेव और वैष्णववृन्द द्वारपर उपस्थित हैं। यदि सामान्य देहके लौकिक वा नैतिक धर्मको त्यागकर भी उनलोगोंकी सेवा हो सके तो उनके देह धारण करनेकी सार्थकता होगी। वे इतने दिनोंतक अपने भोगके लिये वणिकके असाधु (निकृष्ट) प्रस्तावसे सहमत नहीं हुई थीं। किन्तु आज हरि, गुरु-वैष्णवसेवाके लिये ऐसा घृणित कार्य करनेके लिये भी उतारू हो गईं और इससे उन्हें नरकमें जाना पड़ेगा इसके लिये चिन्ता नहीं की क्योंकि उससे वैष्णवोंकी प्रीति होगी। आत्मेन्द्रिय-प्रीतिवांछा ही काम है। किन्तु कृष्णेन्द्रिय-प्रीतिवांछाका प्रेमनाम दिया गया है। कलिध्न नामक एक महाभागवतने चोरी कर भगवान्‌की सेवा की थी। तिरुमङ्गई आलवरने

दस्युवृत्तिके द्वारा अर्थ अपहरण करके भी अपने इष्ट रङ्गनाथके श्रीमन्दिरका निर्माण कराया था। "नरक जाने पर भी मैं गुरुसेवा और वैष्णसेवा त्याग नहीं करूंगी"; ऐसा सङ्कल्प कर लक्ष्मीदेवी उस धनाढ्य वणिकके निकट गईं और उसी दिन रात्रिमें उसकी मनोवासना पूर्ण करनेका वचन दिया। वणिक कितना अनुरोध कर, और कितना प्रलोभन दिखाकर भी जिसको ऐसे असत् कार्यमें प्रेरित नहीं कर सका था वही आज प्रार्थी होकर उसके द्वारपर उपस्थित हुई है। यह देखकर वणिक आनन्दमें अधीर हो गया। लक्ष्मीदेवीने वणिकके निकट ज्योंही अपने गुरु और वैष्णव वृन्दोंके आतिथ्य सत्कार करनेके लिये द्रव्यसमूहकी आवश्यकता बतलाई त्यों ही बरदाचार्यकी कुटीमें बहंगीपर तण्डुल दुग्ध, दधि, घृत, चीनी और नाना प्रकारका फल-मूल प्रेरित होने लगा। लक्ष्मीदेवीने शीघ्रतापूर्वक नैवेद्य बनाकर विष्णुको निवेदन किया और उसे गुरु और वैष्णव लोगोंको प्रदान किया। सबोंने सन्तुष्ट होकर प्रसादका सम्मान किया एवं दरिद्रके घरमें प्रसादका ऐसा सुन्दर आयोजन देखकर आश्चर्यित हो गये। इधर लक्ष्मीदेवीके पति भिक्षा-से लौटकर अपने गुरुदेव और गुरु भ्रातृगणको अपने टूटे फूटे झोपड़ेपर देखकर अतिशय आनन्दित हुए एवं श्रीगुरुदेव और वैष्णववृन्दोंकी परिचर्या करनेके लिये उन्हें व्यग्र होते देखकर वैष्णव लोगोंने कहा कि उनलोगोंने परम सन्तोषके साथ प्रसाद सम्मान किया है। बरदाचार्य सुनकर अतिशय विस्मित हुए एवं घरके अन्दर जाकर सहधर्मिणीसे पूछा। लक्ष्मीदेवीने नम्रतापूर्वक भयभीत होकर वणिकके निकट अपनी की हुई प्रतिज्ञाका निवेदन किया। बरदाचार्य यह सुनते ही आनन्दमें विह्वल होकर नृत्य करते हुए लक्ष्मीदेवीसे कहने लगे—लक्ष्मी, यथार्थमें तुम मेरी सहधर्मिणी हो, आज मैं धन्य हुआ। मैं इतने दिनोंसे समझता था कि तुम मेरे हाड़-मांसके देहको ही पति समझती हो किन्तु आज साक्षात् देखा कि तुम्हारे ऊपर गुरुकृपाकी पूर्णरूपसे वर्षा हुई है। तुम्हारा सम्बन्ध-ज्ञानोदय हुआ है। तुमने समझ लिया है कि श्रीनारायण ही एकमात्र पति हैं और सभी जीव प्रकृति है। अतएव आज तुमने यह श्वशृगाल-भक्ष्य देहके द्वारा जो परमपतिकी सेवा की है यह स्मरण कर मैं पुनः पुनः आनन्दित होता हूँ। धीरे धीरे श्रीरामानुज और वैष्णवगण भी लक्ष्मीदेवीकी ऐसी सेवा-प्रवृत्तिको जानकर विस्मित हुए एवं श्रीरामानुजने उन दम्पतिको कहा। तुमलोग दोनों इस वणिकके घरमें जाकर उसको कुछ महाप्रसाद दे आओ। दम्पति उस वणिकके निकट महाप्रसाद ले गये। बरदाचार्य बाहर रहे। लक्ष्मीने वणिकके निकट जाकर उसको महाप्रसाद अर्पण किया। लक्ष्मीदेवीके अनुरोधसे वह वणिक रामानुजाचार्यका अवशेष ग्रहण करने लगा। किन्तु वैष्णव लोगोंके उच्छिष्टका क्या माहात्म्य है! प्रसाद ग्रहण करते करते वणिकका मन फिर गया। वणिकके चित्तमें अनुताप होने लगा—हाय, मैंने किसके प्रति ऐसा असदभिलाप किया है। "आप वैष्णव गृहिणी हैं, आपके नारायणके प्रति समर्पित देहमें मैंने भोग बुद्धि की है। हे माता मुझको नरकसे उद्धार करो। आपके श्रीगुरुदेवकी कृपासे क्या मैं वञ्चित रहूँगा? वैष्णवगण अदोषदर्शी हैं। क्या वे हम-पर कृपा करेंगे?"

सतीने स्वामीके निकट आकर सब घटना सुनाई

एवं तत्पश्चात बनियेकी बात श्रीगुरुदेवके चरणमें भी निवेदित की। पतितपावन श्रीरामानुजाचार्यने वणिकको बहुत दुःखित देखकर दीक्षा प्रदान की। इसके बाद उस बनियेने श्रीगुरुदेवके निकट उन वैष्णव-दम्पत्तिका दारिद्र्य दूर करनेके लिये अपना धन देनेकी इच्छा प्रकट की। यह सुनकर बरदाचार्यने गुरुदेवके निकट बहुत नम्र भावसे कहा—"प्रभो, ऐसी कृपा कीजिये, जिससे यह अधम हरि-गुरुवैष्णवसेवाधिकारसे अलग न हो। प्रभो, धन, जन वा प्रतिष्ठादिके द्वारा जिससे मेरा चित्त आपके चरण कमलोंकी सेवासे स्खलित न हो।" रामानुजने भी बरदाचार्यके ऐसे भावको देखकर बनियेसे जैसा कहा था वैसाही ज्यों का त्यों हम श्रीचैतन्यभागवत-में देखते हैं—

यत देख वैष्णवेर व्यवहार-दुःख।
निश्चय जानिह सेइ परानन्द सुख॥
विषय-मदान्ध सब किछुई ना जाने।
विद्या-धन कुलमदे वैष्णव ना चिने॥

इधर रामानुजके धनाढ्य शिष्य यज्ञेश श्रीगुरु-सेवा न कर सकनेके कारण बहुत दुःखित होकर बरदाचार्यके घरपर पहुँचे एवं श्रीगुरुदेवसे हृदयका दुख प्रकट किया। रामानुजने यज्ञेशसे कहा तुमसे वैष्णवापराध हुआ है, इसीलिये हमने तुम्हारे गृहमें आतिथ्य ग्रहण नहीं किया। तू अपने दोनों गुरु-भ्राताओंकी अभ्यर्थना न कर अन्तःपुरमें चला गया था। उस समय यज्ञेश ने कहा प्रभो आपके शुभागमनकी वार्ता सुनकर मैं आनन्दमें विह्वल होकर आपकी अभ्यर्थना करनेके लिये आयोजन कर रहा था। उस समय रामानुजने कहा कि आनन्दमें विह्वल होना कुछ सेवा नहीं है।

"निज प्रेमानन्दे कृष्ण-सेवानन्द बाधे।
से आनन्देर प्रति भक्तेर हय महाक्रोधे॥"

जहां अपना आनन्द लाभ करनेकी लेशमात्र भी इच्छा है, वहां भुक्तिकामना है सेवा नहीं; सेवामें **केवलमात्र इष्टदेवकी सुखकामना रहती है।** वैष्णवोंको त्यागकर कभी गुरु-सेवा नहीं हो सकती। वैष्णव वा गुरुसेवक सभी श्रीगुरुदेवके अङ्ग-प्रत्यङ्ग हैं। अतएव तू जो 'अर्द्धकुक्कुटीजरती' वाली कथाका अनुसरण कर वैष्णवका सम्मान न कर केवल मेरी सेवा-चिन्तामे ही विह्वल हो उठा था उससे तुमसे वैष्णवापराध हुआ। इसलिये मैं तुम्हारे गृहमें नहीं गया। यज्ञेश उस समय अपना अपराध समझकर श्रीगुरुदेव और वैष्णवगणोंके चरणोंमें वारंवार अपना अपराध ज्ञापन कर क्रन्दन और क्षमाकी भिक्षा मांगने लगे। श्रीरामानुजाचार्यने यज्ञेशके गृहमें आतिथ्य स्वीकार किया। सद्गुरु धन, कुल, विद्या नहीं देखते, वे सेवा प्रवृत्ति देखते हैं। सद्गुरु सेवा एवं भुक्ति और मुक्तिका पार्थक्य प्रदर्शन करते हैं। सद्गुरु शिष्यको पतित रखकर पतितपावन नाम नहीं धारण करते हैं। शिष्यको सचमुच ही पवित्र करते हैं। सद्गुरु निष्किञ्चन और निरपेक्ष शिष्यके अन्याय आचरणका प्रश्रय नहीं देते।



विविध-संवाद

पटना

श्रीश्रीविश्ववैष्णवराज सभाकी शाखा पटना श्रीगौड़ीयमठमें परमाराध्यतम श्रीश्रील आचार्यदेवके (नियन्त्रणमें) नियमितरूपसे पाठ, कीर्त्तन और

सर्वदा हरिकथा हो रही है। शहरके विभिन्न स्थानोंसे कई शिक्षित और सम्भ्रान्त सज्जन मठमें आकर श्रीपादपशुपाल पङ्कजदक दासाधिकारी भक्ति प्रसून प्रभुके निकट प्रश्नादिके साथ साथ हरिकथा श्रवण कर रहे हैं।

श्रीपाद भक्ति प्रसून प्रभुने विहार और उड़ीसाके Postmaster General Mr. N. N. Banerjee महोदयके निकट श्रीगौड़ीयमठके प्रचारका वैशिष्ट्य, श्रीचैतन्यमहाप्रभुका जीवके प्रति असमोर्द्ध-दानकी कथा—आत्मधर्मकी कथा—जीवके एकमात्र नित्यमङ्गल प्राप्त करनेकी कथाका प्रायः १ घण्टे तक कीर्त्तन किया था। Postmaster General महोदय श्रीपाद भक्ति प्रसून प्रभुके निकट हरिकथा श्रवणकर मठके प्रति विशेष आकृष्ट हुए हैं एवं यथासाध्य मठकी सेवामें सहायतादेने और कभी कभी श्रीमठमें आनेके लिये भी कहा है। Postmaster General महोदय सहृदय व्यक्ति हैं। उनका हरिकथा-श्रवणमें आग्रह देखकर हमलोग परमानन्दित हैं।

लखनऊ

लखनऊमें श्रीगौड़ीयमठके सेवकोंकी चेष्टा और लखनऊ मौलभिगञ्जनिवासी बाबू त्रिपुरारि शरण श्रीवास्तवके यत्नसे लखनऊ रेकाबगञ्ज-निवासी श्रीयुक्त बाबू वासुदेव प्रसादकी ठाकुरवाड़ीमें गत ७ वीं मई रविवार को छायाचित्र द्वारा श्रीकृष्ण-लीलाका कीर्त्तन हुआ था। श्रीपाद सुदर्शन ब्रह्मचारी भक्तिशास्त्रीजी ने कई सेवकोंके साथ ७ बजे सन्ध्याको उपस्थित होकर छायाचित्र द्वारा श्रीकृष्णलीला और श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षाका कीर्त्तन किया था। उनकी मर्मस्पर्शिनी वाणी सुनकर उपस्थित सज्जनमण्डली बहुत प्रसन्न और कीर्त्तनकी ओर आकृष्ट हुई थी। उस दिन श्रीकृष्ण-लीला सुननेके लिये उत्सुक होकर अनेक शिक्षित सज्जन और महिलायें उपस्थित हुई थीं। इनमें लखनऊके रेकाबगञ्जस्थित वासुदेव-कीर्त्तन सभाके सभापति श्रीयुक्त पण्डित दयालजी बी० ए०, रेलवेके अवसर प्राप्त कर्मचारी श्रीयुक्त बाबू मथुरा प्रसाद आदि कई मुख्य सज्जनोंके नाम उल्लेखनीय हैं।

श्रीपाद सुदर्शन प्रभुने तीन सप्ताह तक लखनऊ श्रीगौड़ीयमठमें रहकर मठके ब्रह्मचारियों और मठमें आये हुए सज्जनोंके निकट सतत हरिकथाका कीर्त्तन किया था और शहरके विभिन्न स्थानोंमें भी निमन्त्रित होनेपर हरिकथा सुनाकर भगवान की भक्तिका उपदेश किया था।

दिल्ली

भागवतके सम्पादक महोदय कई दिनोंसे दिल्ली गौड़ीयमठमें ठहरकर निरन्तर श्रीहरिकथा कीर्त्तन कर रहे हैं। उनके मुखसे हरिकथा श्रवण कर सेवकोंको बहुत आनन्द हो रहा है। उनकी हरिकथाकी विशेषता यह है कि "वे आचार्य निष्ठा ही साधकोंका एकमात्र साधन है" इसीका उपदेश कर रहे हैं। आचार्यपादपद्ममें मर्त्यबुद्धि रखकर हमलोग चाहे जितना श्रवण कीर्त्तन और प्रचारादि करें, उसका कोई मूल्य नहीं। शरणागति ही वैष्णवधर्म है। शरणागतिके तारतम्यानुसार ही वैष्णवधर्मका तारतम्य है।

जो शरणागतिका मूल्य न समझकर सांसारिक कर्म-दक्षताको प्रधान समझते हैं, वे वैष्णवधर्मकी कथा नहीं समझते हैं। इसी प्रकारके अनेक उपदेश उन्होंने किये। उनकी हरिकथासे मठ सर्वदा ही गूंजा करता है। उनकी निष्कपट श्रीहरिकथा कीर्त्तन-सेवा चेष्टा प्रशंसनीय है।

श्रील प्रभुपादकी पत्रावली—(तृतीय खण्ड)

आचार्य प्रकट तिथिमें श्रील प्रभुपादकी पत्रावलीका तृतीय खण्ड प्रकाशित हुआ है। प्रत्येक पत्र विशेष शिक्षाप्रद व सारगर्भ उपदेशसे परिपूर्ण है। हमलोग प्रत्येक मंगलकामी व सत्यका अनुसन्धान करनेवाले व्यक्तिको इस पत्रवालीको पाठ करनेका अनुरोध करते हैं।

श्रीचैतन्यदेव

श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके पहले व बाद भारत व बंगालकी राजनैतिक अवस्था, अर्थ-नैतिक अवस्था, विद्या, साहित्य व समाजिक अवस्था, धर्मजगत्की अवस्था, समसामयिक पृथिवीकी अवस्था, नवद्वीपका परिचय व तथ्य और प्रमाणिक ग्रन्थ व विवरण समूह सहज व सरल भावमें साधारणके पढ़नेके योग्य वर्णन किया गया है। ग्रन्थमें अनेक चित्र व मानचित्र दिये गये हैं। सुन्दर जिल्द भक्त, साधारण व्यक्ति व विद्यालयके छात्र सभीके लिये यह ग्रन्थ उपयोगी व प्रीति देनेवाला होगा। भिक्षा १)। प्राप्तिस्थान—श्रीगौड़ीयमठ, पो० बागबाजार, कलकत्ता। श्रीमाध्वगौड़ीयमठ, पो० वोयारी, ढाका।

सरस्वती जयश्री

गौड़ीय-वैष्णवाचार्य ॐ विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादका भुवनके मंगलदायक जीवनचरित ग्रन्थ है। निर्मत्सर शुद्धभक्ति पिपासु व्यक्ति इस ग्रन्थके पाठसे युगपत् अनेक शास्त्रग्रन्थ पाठ व अनेक साधुसङ्गका फल लाभ कर सकेंगे। वैभवपर्वका प्रथम खण्ड रायल ८ पेजी आकारमें एण्टिक कागजपर उत्तमरूपसे मुद्रित, ३६० पृष्ठोंमें। विस्तृत सूचीपत्रके साथ इसमें अनेक चित्र भी दिये गये हैं। भिक्षा ४)

'सामयिक-संख्या'—गौड़ीय

सामयिक-संख्या गौड़ीय अनेक त्रिवर्ण व एकवर्ण चित्र-शोभित व अनेक श्रेष्ठ वैष्णवसाहित्यिकगणोंकी गवेषणापूर्ण प्रबन्धसे सुमण्डित होकर प्रकाशित हुई है। श्रीधाम-मायापुरमें श्रीश्रीगौरजन्मोत्सवके उपलक्षमें सर्वसाधारणोंके लिये भिक्षा ।।) आना।

ठाकुर भक्तिविनोद

श्रीरूपानुगशुद्धभक्ति स्रोतके प्रवाहका मूल पुरुष ॐ विष्णुपाद श्रील ठाकुर भक्तिविनोदका जीवनचरित व शिक्षामाला बहुत सरल भाषामें बड़े बड़े अक्षरोंमें मुद्रित। भिक्षा ।।।) मात्र। प्राप्तिस्थान—कलकत्ता (बागबाजार) श्रीगौड़ीयमठ व ढाका—श्रीमाध्वगौड़ीय मठ।

अणुभाष्यम्

चार अध्यायी ब्रह्मसूत्रके प्रत्येक अधिकरणका तात्पर्य श्रीमन्मध्वाचार्य-कृत श्लोकाकारमें बहुत संक्षेपमें बना हुआ। बंगभाषामें सर्वप्रथम संस्करण। पहले प्रति अध्यायके प्रति पादका श्रीमन्मध्वाचार्यविरचित अणुभाष्यमूल, इसके बाद प्रति अध्यायके प्रतिपादका सूत्र-समूह, अणुभाष्य-मूलका बंगला अनुवाद व श्रीपाद राघवेन्द्रयतिविरचित तत्त्वमञ्जरी टीका, उसका बंगला अनुवाद व तात्पर्य इस क्रमसे पुस्तक मुद्रित हुई है। इसके अतिरिक्त मातृका क्रमसे ब्रह्मसूत्र समूह, उसका अध्यायांक, पदांक व सूत्रांकके साथ सूचीपत्रभी संयोजित हुआ है। भिक्षा २) मात्र।

Printed by :—Mukunda Madhab Das Brahmachari, at the Ramesh Printing Works
and published by the same from Sree Gaudiya Math, Mithapur, Patna.

Po.d No. P. 468.

वर्ष ५] श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयत. संख्या ५]

भागवत

एकमात्र

पारमार्थिक

मासिक पत्र

५ वामन
गौराब्द
४५३



अषाढ़ कृष्ण ५
संवत्
१९९६ वि०

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥१॥

जिससे इन्द्रिय ज्ञानातीत श्रीकृष्णमें श्रवणादि-लक्षणा फलाभिसन्धान-रहिता ऐकान्तिकी स्वाभाविक निरपेक्षा भक्ति उदय होती है, वही मानव जातिका सर्वश्रेष्ठ धर्म है— इसी भक्तिके बलसे अनर्थ शमन होनेपर आत्मा प्रसन्नता लाभ करता है ।

प्रति संख्या —)॥ } सम्पादक—पं० श्रीपाद रूपविलास ब्रह्मचारी भक्ति शास्त्री बी० ए० { वार्षिक १)

Editor :—Pundit Sripad Rupbilas Brahmachari, Bhaktishastri B A.

SREE GAUDIYA MATH Mithapur (Patna).

विषय सूची

भक्तिके अन्यान्य पत्र

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः



वर्ष ५ — श्रीगौड़ीयमठ, मीठापुर (पटना) — संख्या ५

आषाढ़ कृष्ण ५, ४५३ म० १९९६ वि०, ७ जून सन १९३९ ई०

भक्ति के प्रति अपराध

(ॐ विष्णुपाद श्रीश्रील भक्तिविनोद ठाकुर)

यह एक भयङ्कर बात है। हमलोग बहुत तरहसे भक्तिका अनुष्ठान करते हैं। सम्प्रदायमुक्त ब्राह्मण गुरुके समीप मन्त्र ग्रहण करते हैं। प्रतिदिन द्वादश तिलक लगाकर श्रीकृष्णकी पूजा करते हैं। एकादशी करते हैं। यथासाध्य नाम स्मरण करते हैं। श्रीवृन्दावनादि स्थानका दर्शन भी करते हैं। किन्तु दुर्भाग्य की बात यह है कि भक्तिदेवीके प्रति अपराध न हो इसके लिये यत्न नहीं करते। श्रीभक्तिदेवीके प्रति अपराधका लक्षण श्रीमन्महाप्रभुने भक्तलोगोंके लिये मुकुन्दको लक्ष्यकर इस प्रकार वर्णन किया है :—

"मुकुन्द मेरा दर्शन प्राप्त नहीं कर सकता, कारण वह कभी तृणादपि सुनीच (तृणके समान तुच्छ) हो जाता है और कभी झाड़ मारनेके लिये प्रस्तुत हो जाता है—वह जहां जाता है वहांके लोगोंके अनुकूल बातचीत करके मिल जुल जाता है। वह अद्वैताचार्यके समीप योगवाशिष्ठ पढ़ता है और भक्तोंके सङ्गमें तृणादपि सुनीच होकर नाचता गाता है। वह अभक्तोंसे जब मिलता है तब भक्तिको नहीं मानता, झाड़ मारता है। उसने भक्तिदेवीके प्रति अपराध किया है, इसलिये वह मेरा दर्शन प्राप्त नहीं कर सकता।

श्रीमुकुन्द भी भगवत् पार्षद थे। सुतरां प्रभुकी उस सम्बन्धमें जो बातें हैं, वे रहस्यमात्र हैं। किन्तु महाप्रभुका हृदय अतिशय गम्भीर था। उन्होंने जो बातें जिस समय कही थीं उनमें उपदेश था। वह उपदेश यह है, कि केवल दीक्षादि ग्रहणकर (गुरु-

मुखसे मन्त्र ग्रहणकर) भक्ति के अङ्गोंका अनुष्ठान करनेसे ही कृष्ण प्रसन्न होंगे, ऐसी बात नहीं है। अनन्यभक्तिमें जिनकी अनन्य श्रद्धा है वेही प्रभुकी प्रसन्नता प्राप्त कर सकते हैं। जिनके हृदयमें उस प्रकारकी श्रद्धा उत्पन्न हुई है वे शुद्धभक्तिके पक्षपातमें दृढ़ रहते हैं। जहांपर शुद्धभक्तिका प्रसङ्ग नहीं है वहांपर वे न जाते हैं और न बैठतेही हैं। जहां-पर शुद्धभक्तिके विषयोंकी आलोचना होती है वहां पर वे प्रसन्नतापूर्वक ठहरते हैं। सरलता, दृढ़ता तथा एकान्तप्रियता ही शुद्धभक्तका स्वभाव है। वे, लोगों की प्रसन्नताके लिये कभी भक्तिविरुद्ध बातोंमें सम्मति नहीं देते। शुद्ध भक्तलोग सर्वदा निरपेक्ष रहते हैं।

आजकल बहुतसे लोग ऐसे हैं जो इस प्रकारके अपराधका भय नहीं करते। भक्तको देखनेसे ही अश्रुपुलकादि होता है। कभी कभी कथा-आलोचना में भी यह दशा प्राप्त होती हैं। और आध्यात्मिक सभामें आध्यात्मिक मतकी सहायता करते हैं। विषयमें आसक्त होकर विषय प्राप्त करनेके लिये नितान्त उन्मत्तवत व्यवहार करते हैं। हे पाठकवर्ग! लोगों की इस प्रकारकी निष्ठा कैसी है ?

हमलोग विचार करते हैं कि प्रतिष्ठाके लिये ही वे भक्तोंके निकट भक्तिका लक्षण दिखलाते हैं। कहींपर प्रतिष्ठाके लिये एवं कहींपर अन्य जड़-विषय प्राप्तिके लिये अनेक प्रकारका व्यवहार करते हैं। दुःखकी बात यह है कि वे संसारके लोगोंको इस प्रकारके व्यवहार की शिक्षा देकर शुद्धभक्तिके प्रति अपराध ही नहीं बल्कि संसारके जीवोंका सर्वनाश करते हैं।

हे पाठको ! आइये हमलोग सावधान हो जायँ। भक्तिदेवीके प्रति हमलोगोंका जिसमें अपराध न हो, वैसा करें। पहले हमलोग निरपेक्ष होकर भक्ति याजन करें। ऐसी प्रतिज्ञा करें:—"किसी पक्ष-का समर्थन करके हमलोग भक्तिप्रतिकूल कोई बात नहीं कहेंगे और न कोई काम करेंगे। सभी कामोंमें सरल रहेंगे। हृदयमें एक, तथा व्यवहारमें दूसरा, ऐसे नहीं होंगे। भक्तिप्रतिकूल पक्षके लोगोंको कृत्रिम लक्षण दिखलाकर उनसे प्रतिष्ठा प्राप्त करने का यत्न नहीं करेंगे। शुद्धभक्तिका ही पक्षपात करेंगे। और किसी प्रकारके सिद्धान्तका पक्ष समर्थन नहीं करेंगे। हमलोगोंका हृदय तथा व्यवहार एक ही प्रकारका हो।"

श्री श्रील आचार्यदेव और रायबहादुर मदनगोपाल सार्दाना

सार्दाना साहेब—निर्जनस्थानमें बैठकर हरिनाम करना क्या वैष्णवधर्मसे अनुमोदित पथ नहीं है ?

आचार्यदेव—जिस समय दुर्भाग्यवश हमलोगों-को साधुओंका दर्शन नहीं मिलता, उस समय बहिर्मुख जनसङ्गकी अपेक्षा निर्जनमें (एकान्तस्थानमें) हरिनाम ग्रहण करनेकी विधि देखी जाती है। वस्तुतः अकपट साधुलोगोंका सङ्ग ही प्रकृत निर्जनता है।

सार्दाना सा:—हमलोगोंको तो प्रकृत साधुका दर्शन नहीं मिलता।

आचार्यदेव—आपको प्रकृत साधुका अनुसन्धान करना होगा। इस विषयमें आलसी वा उदासीन होनेसे नहीं चलेगा। प्रकृत साधुका सङ्ग प्राप्त करनेके लिये सभी प्रकारसे चेष्टा करनी होगी। आपकी सच्छास्त्र और भगवानके प्रति आन्तरिक श्रद्धा रहनेसे कृष्ण-कृपासे प्रकृत साधुका दर्शन अवश्यही

मिलेगा।

साहीना सा:—प्रकृत साधुको पानेपर भी हम-लोगोंके सदृश संसारी जीवको वैसा साधुसङ्ग करनेका समय कहां है ?

आचार्यदेव—हम नश्वर परिवारवर्गोका पोषण करनेके लिये इतना समय और शक्ति नियोग कर सकते हैं, किन्तु हमारे पास अपने आत्माका और आत्मसम्बन्धी आत्मीयगणोंके नित्यमङ्गलके लिये साधुसङ्ग करनेका समय नहीं है, यह विचार लाना बड़े ही दुर्भाग्य की बात है। साधुसङ्गके लिये ही संसार वा देहयात्रानिर्वाह करनेकी आवश्यकता है; नहीं तो इन सबोंकी कुछ भी आवश्यकता नहीं है। जिस उद्देश्यके लिये संसार है, उसी मूल उद्देश्यको परित्याग कर जो संसारमें प्रवृत्ति हो वह पशु-प्रवृत्ति से भी नीच है !

साहीना सा:—तो क्या जिस समय मैं हरिनाम ग्रहण करता हूं, उस समय अकेला नहीं रहूंगा ?

आचार्यदेव—किसी प्रकारसे भी अकेला रहना नहीं होगा। अपनेसे श्रेष्ठ अकपट वैष्णवके सङ्गमें रहकर हरिनाम करना होगा; श्रीहरिनामकी कृपाके लिये प्रार्थना करनी होगी। यदि निष्कपट साधुका अभाव हो, तो हरिनामके निकट इस प्रकार प्रार्थना करनी होगी कि जिसमें शुद्ध नामाचार्यके अर्थात् हरिनाम परायण प्रकृत वैष्णवका सङ्ग प्राप्त हो। श्रीनाम प्रभुके निकट सकातर प्रार्थना जनानेसे वे प्रकृत साधु प्रदर्शन करायेंगे एवं साधुसङ्गमें रहकर नामप्रभुकी सेवा करनेकी योग्यता और बल प्रदान करेंगे।

साहीना सा:—जिस समय साधुसङ्ग पाऊँगा, उस समय क्या करूँगा ?

आचार्यदेव—उस समय साधुके निकट अकपट होकर आत्ममङ्गलका परिप्रश्न करेंगे एवं वे जो कुछ कीर्त्तन करते हैं उसे सेवोन्मुख कर्णके द्वारा श्रवण, कर तदनुरूप जीवन यापन करेंगे। इसीका नाम है —'साधुसङ्ग'।

साहीना सा:—मैं यदि साधुसङ्गमें हरिकथाके इतना समय दान करूँ तो निर्दिष्ट एकलक्ष हरिनाम करनेका समय किस प्रकार पाऊँगा ?

आचार्यदेव—हरिकथा और हरिनाम एकही वस्तु हैं; जो हरिकथा श्रवण और कीर्त्तन करते हैं वे हरिनाम नहीं करते, इस प्रकार जड़ और खण्ड प्राकृत विचार नहीं करना चाहिये। तब निर्बन्धरूपसे जो हरिनाम ग्रहण किया जाता है वह यदि हरिसेवा वा हरिकार्यमें नियुक्त रहनेके समय सम्पूर्ण नहीं हो, तो अन्यान्य दैहिक कार्य—जैसे निद्रादिको कम करके हरिनाम कर सकते हैं।

साहीना सा:—उस प्रकारसे जो हरिनाम ग्रहण किया जायगा वह तो अकेला ही करना होगा; नहीं तो किस प्रकार निबन्धकी रक्षा होगी ?

आचार्यदेव—पहले ही तो बार बार कहा है—अपनेसे श्रेष्ठ और नामपरायण साधुका सङ्ग नहीं होनेपर विवश हो अकेले दुःसङ्ग वा नामापराध छोड़नेमें यत्नवान होकर वैधमार्ग से श्रीनाम करना होगा। साधुके मुखसे हरिकथा और हरिनाम माहात्म्य सुनते सुनते हरिनामका आदर करते करते श्रीनाम ग्रहण करना होगा।

साहीना सा:—ऐसा होनेसे उस प्रकारका हरि-नाम ग्रहण तो mechanical हो जायगा ?

आचार्यदेव—इससे हरिनाम स्फूर्तिके पक्षमें और भी सहायता मिलेगी। साधुकी श्रीमुखनिःसृत उपदेशवाणी हरिनाम कीर्त्तनका ही पोषक है। साधु के श्रीमुखवाणीका श्रवण और हरिनाम ग्रहणका

तात्पर्य भिन्न नहीं है। श्रीहरिनामप्रभुकी जो इन्द्रिय-तृप्ति करता है, वह हरिनामस्फूर्तिका ही पुष्टिकारक है। जिस प्रकार हरिनाम और हरि एक हैं, उसी प्रकार हरिकथा और हरिनाम अभिन्न हैं। हरिकथा ही हरि हैं,—हरिनाम ही हरि हैं। अतएव हरि-कथा ही हरिनाम हैं। जो हरिकथा कीर्त्तन करते हैं, वे हरिनाम ही करते हैं। हरिनाम ग्रहणके समय हरिकथा सुननेसे चित्तका विक्षेप नहीं होता; क्योंकि वह एक ही तात्पर्यमय है। हरिकथा हरिनामकी अधिकतर स्फूर्ति कराती है। दोनोंके मध्यमें किसी प्रकार विजातीय भाव नहीं है। हरिकथा और हरिनाम, दोनों ही एक स्वरूप हैं।

साहीना सा:—मेरे पितृदेव खूब अर्चनप्रिय और वेदान्ती थे। वे वैष्णव नहीं थे, वे निर्जनमें बैठकर लगातार कई घण्टे ध्यान करते थे। मैं जब बहुत छोटा (बालक) था, उसी समयसे वे मुझको निर्जनमें आंख मूंदकर ध्यान करनेके लिये उपदेश देते थे। इसीलिये मैं बाल्यकालसे ही निर्जनमें ध्यानादिके द्वारा चित्त-निरोध करनेका पक्षपाती हूँ। इसके विपरीत विचार पर विश्वास कर नहीं सकता।

आचार्यदेव—कार्य देखकर कारण निर्णीत होता है। आप बाल्यकालसे निर्जनमें ध्यानादिमें अभ्यस्त रहकर कितना आत्मोन्नति कर सके हैं?

साहीना सा:—मैं तो इस विषयमें ऐकान्तिक नहीं हुआ। ऐकान्तिक होनेसे, समझमें आता है कि इस विषयमें उन्नति लाभ कर सकता था।

आचार्यदेव—यह तो आपका अनुमान है। श्रीमद्भागवतने बहुत स्पष्टरूपसे दृढ़ताके साथ कहा है कि, चित्त सम्पूर्ण रूपसे शुद्धसत्त्व-भूमिमें उपस्थित न होने तक किसी आकार का ध्यान करनेसे, वह पौत्तलिकताके (पुतलीके से भावके) सिवाय और कुछ नहीं हो सकता। अधोक्षज परमेश्वरके सच्चिदानन्द आकारको तृतीयमानके किसी ध्यान वा धारणाके द्वारा मापा नहीं जा सकता। परमेश्वर वश्य जीव तत्वके कल्पनाके द्वारा नियमित नहीं होते यही उनका अधोक्षजत्व है।

साहीना सा:—तो क्या जो हरिनाम ग्रहण करेंगे, वे एक मात्र ओष्ठ स्पन्दनके करनेके सिवाय और कुछ नहीं करेंगे? उस समय उनका मन कहां रहेगा?

आचार्यदेव—श्रीहरिनाम ग्रहणकारी पहले ही श्रद्धायुक्त और शरणागत होंगे। पहले ही आत्म-निवेदन कर श्रवण कीर्त्तनमें रत होंगे। इस आत्म निवेदन वा शरणागतिके छः लक्षण हैं। उसी छः लक्षणोंके द्वारा चित्तवृत्ति अभिषिक्त रहनेसे हरिनाम ग्रहण करनेके समय मन उसी नामका ही सेवानु-कूल्य करेगा। शरणागतका मन साधारण भोगी और त्यागी जीवके मनके समान भोग वा त्यागके सन्धानमें इधर उधर नहीं घूमता। जो शरणा-गतिके पथमें चले हैं दीक्षामन्त्रके द्वारा सर्वप्रथम ही उनलोगोंका मनोधर्म नियन्त्रित हुआ रहता है एवं हरिनाम ग्रहणके द्वारा कृष्णपादपद्ममें चित्त क्रमशः सम्पूर्णरूपसे तृष्णायुक्त हो जाता है। सुतरां हरिनाम ग्रहण करनेके समय उनलोगोंको पृथक्-रूपसे मनके अभिप्सित वस्तुको देनेकी आवश्यकता नहीं होती। मन उस समय आपसे आप हरिना-मके औदार्य और माधुर्यसे आकृष्ट होता है। हरिनामके निकट कृपा प्रार्थना करते करते उसीसे आर्त्त और आकुल हो उठता है। वह आर्त्ति और आकुलता जितनी ही वृद्धि पाती है उतना ही चित्त हरिनाममें अधिकतर आकृष्ट होता है और जड़ मनोधर्म नहीं रहता है। श्रीनामप्रभुकी ओरसे जितनी

कृपा अवतीर्ण होती है, उतनी ही चेतनकी वृत्ति विकशित होकर सभी एकतात्पर्यपर हो जाता है। उस समय श्रवण कीर्त्तन और स्मरणमें जड़ भेद नहीं रहता। श्रीहरिनामकी सेवाके तात्पर्यमें सभी पर्यवसित (शेष) होकर उत्तरोत्तर उत्कण्ठाकी वृद्धि करते रहते हैं। इस उत्कण्ठा का विराम नहीं, यह क्रमशः वर्द्धमान रहता है।

माहोना सा:—आपने जो शरणागतिके छः लक्षण बतलाये हैं वह क्या क्या हैं ?

आचार्यदेव—जो विषय श्रीहरिनामके नित्य नर्तनविधानमें सहायता करते हैं, उन सब अनुकूल विषयोंके ग्रहण करनेमें सुदृढ़ सङ्कल्प होना ही प्रथम लक्षण है।

माहोना सा:—श्रीहरिनाम ग्रहण करनेके अनुकूल विषय क्या क्या है ?

आचार्यदेव—निष्कपट हरिनाम लेनेवाले साधु-का प्रीतिपूर्वक सङ्ग ही हरिनाम ग्रहणके अनुकूल है। पहले ही आपको कहा है,—कर्णके द्वारा उसी साधुकी शुश्रूषा वा सङ्ग करना होगा। उस प्रकार नामपरायण साधुकी वाणी श्रवण करनेमें परम उत्साही होना होगा। इसीके द्वारा ही हमलोगोंका चरम मङ्गल होगा, इसका सुदृढ़ निश्चय कर लेना होगा। अनर्थकी प्रबलताके कारण हरिनामकी स्फूर्ति न होते देखकर श्रीहरिनामका पथ परित्यागकर किसी प्रकारका दूसरा आरोहमार्ग स्वीकार करतेहुए आशु फल पानेकी चेष्टामें न दौड़ कर विशेष धैर्य और सहिष्णुताके साथ गुरु वैष्णवके आनुगत्यमें हरिनाम ग्रहणकरनेमें धैर्य, साधुगणोंकी प्रदर्शित और कथित सेवाका अनुशीलन, असत्सङ्गत्याग और साधुगणोंकी सेवामयी वृत्तिका अनुसरण करना-होगा। ये सब हरिनाम ग्रहणके अनुकूल हैं। यही आत्मनिवेदनका प्रथम लक्षण है।

माहोना सा:—शरणागतिका दूसरा लक्षण क्या है ?

आचार्यदेव—जो विषय हरिनाम श्रवण कीर्त्तनमें प्रतिबन्धक रूपसे उपस्थित होते हैं वा उसका किसी-रूपसे प्रातिकूल्य विधान करते हैं, उन सबोंको सर्वप्रकारसे वर्जन करनेके लिये दृढ़ सङ्कल्प होना चाहिये। 'आज प्रतिकूल विषय कुछ ग्रहण करें, कल वा भविष्यमें इसका परित्याग किया जायगा', इस प्रकारके विचारको प्रतिकूल वर्जनका सङ्कल्प नहीं कहा जाता। जिस समय प्रतिकूल विषय उपस्थित होगा वा हुआ है, उसी समय कुछ भी विलम्ब न कर दृढ़ताके साथ उसको वर्जन करना होगा।

माहोना सा:—यदि उस प्रकारका सुदृढ़ सङ्कल्प हृदयमें नहीं आये, तब क्या करूँगा ?

आचार्यदेव—प्रकृत साधुलोगोंका सङ्ग करनेसे उस प्रकारका सुदृढ़ सङ्कल्प हृदयमें अवश्य आयेगा। श्रीनामके निकट और श्रीनामपरायण वैष्णवोंके निकट उसके लिये अकपट कृपा प्रार्थना करनी होगी, जिससे प्रतिकूल वर्जनकी दृढ़ता उपस्थित हो।

माहोना सा:—शरणागतिका और लक्षण क्या है ?

आचार्यदेव—'कृष्ण ही हमारी रक्षा करेंगे' इस प्रकार सुदृढ़ विश्वास। जगतके कोई धन, ऐश्वर्य, लोकजन, विद्यावुद्धि वा अन्य किसी प्रकारकी वस्तु जीवकी रक्षा नहीं कर सकती। कृष्ण ही एकमात्र रक्षक हैं यह हृदयसे विश्वास—और कृष्णको ही एकमात्र पालनकर्त्ता समझकर वरण—शरणागति-का चतुर्थ और सर्वश्रेष्ठ लक्षण है। कृष्णमें Unconditional full surrender अहैतुक पूर्ण आत्मनिक्षेप पञ्चम लक्षण—एवं 'कृष्णसेवा कर

नहीं सका'—इस प्रकार अधिकतर कृष्ण सेवाके लिये उत्कण्ठाजनित दैन्य और आर्त्ति अर्थात् अपनेको गुरु वैष्णवके पादपद्मका हेयतम (सबसे नीच) धूलीज्ञानरूप दैन्य ही—षष्ठ लक्षण है।

सार्दाना सा:—भक्तगण जिस समय हरिकीर्त्तन करते हैं, उस समय तो जिह्वाका काय होता है, उस समय मन कहां जायगा ? यदि मनमें किसी रूपादि की चिन्ता नहीं की जाय वा भगवानके रूपका ध्यान न करें तो मन क्या कभी स्थिर हो सकता है ?

आचार्यदेव—आप वह एक ही बात पुन: पुन: कह रहे हैं ? विषयको अच्छी तरहसे अवधारण कीजिये। श्रीनामग्रहणके आनुषङ्गिक फलस्वरूप चित्तदर्पण परिमार्जित होगा, संसाररूप महादावाग्नि निर्वापित होगी (बुझ जायगी) ; यह हरिनाम ग्रहणका आनुषङ्गिक फल है—This is the secondary effect of Harinam. The net result of Harinam is attainment of pure reinstatement in true unconditioned self and love of Sri Krishna.

चेतोदर्पणमार्जनं भव महादावाग्नि-निर्वापणम्
श्रेय: कैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम्।
आनन्दाम्बुधिवर्द्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्ण संकीर्त्तनम्॥

(शिक्षाष्टक प्रथम श्लोक)।

श्रीकृष्णसङ्कीर्त्तन मलिनचित्त जीवके हृदय दर्पणको मार्जन करते हैं, संसाररूपी वनकी दावाग्निका निर्वापण करते हैं, जीवके परममङ्गलरूप कुमुदके शुभ्रत्वविकाशक कल्याण-किरण वितरण करते हैं, वे अप्राकृत विद्यावधूके जीवनस्वरूप और जीवके अप्राकृत-कृष्णसेवानन्दवर्द्धनकारी हैं। वे पद पदमें पूर्णामृतका आस्वादन कराते हैं एवं सर्वात्माके कृष्णप्रेमसलिलमें स्नान सम्पादन कराते हैं। उसी सर्वोत्कृष्ट श्रीकृष्ण कीर्त्तन की जय हो।

सार्दाना सा:—जिस समय हमलोग कृष्णनाम उच्चारण करें, उस समय यदि कृष्णका कोई रूप स्मरण हो, तो क्या उसको भी परित्याग करना होगा ?

आचार्यदेव—आप अपने किसी कल्पनाके मध्यमें नहीं जायंगे। आप केवल श्रीहरिनाम उच्चारण करेंगे, एवं अनुक्षण आर्त्ति और प्रपत्तिके साथ उनकी करुणा प्रार्थना करेंगे, और इसके बाद सब हरिनाम ही आपके लिये विधान करेंगे। हरिनाम—सर्वशक्तिमान् हैं, वे स्वत:कर्त्तृत्वधर्मविशिष्ट और स्वराट् हैं।

सार्दाना सा:—हरिनामग्रहण करनेके समय क्या कृष्णके रूपकी कथा की बिलकुल ही चिन्ता नहीं करनी होगी ?

आचार्यदेव—इस विषयमें हरिनामकीर्त्तनके लिये चेष्टाविशिष्ट अनर्थयुक्त व्यक्तिकी ओरसे किसी प्रकार की चेष्टा नहीं होगी। श्रीहरिनामही उसको स्फूर्ति करानेके साथ साथ अपना नित्यरूप प्रदर्शन करायेंगे।

सार्दाना सा:—हमलोगोंका क्या कोई पुरुषाकार (चेष्टा) नहीं रहेगा ?

आचार्यदेव—साधन फलभोगकामी कर्मीके पुरुषाकार जातीय नहीं है, वह कृत्रिमता वा कल्पना नहीं है। हमलोग अशुद्ध मलिनमनमें अधोक्षज पुरुषोत्तमके किसी रूप वा आकारकी कल्पना नहीं कर सकते। कल्पना एक प्रकारकी पुतली है। Harinam is not impotent—He is potent—He can show his Eternal Form अर्थात् हरिनाम पुरुषत्वहीन वस्तु नहीं हैं; वे सम्पूर्ण

शक्तिशाली हैं वे अपने स्वतः कर्तृत्वधर्मके द्वारा ही अपना निज रूप स्वयं प्रदर्शन करेंगे। "शुद्धे चान्तःकरणे रूपस्य स्फुरणम्"।

माहेना सा:—हरिनाम करनेके समय चक्षु बन्द करना उचित है कि अनुचित?

आचार्यदेव—हरिनाम-ग्रहणकारीकी ऐसी चेष्टा-का कोई प्रयोजन नहीं। सुनिये श्रीरूप गोस्वामी प्रभुने क्या कहा है:—

तुण्डे ताण्डविनी रतिं वितनुते तुण्डावलीलब्धये
कर्णक्रोडकडम्बिनी घटयते कर्णार्बुदेभ्यः स्पृहाम्।
चेतः प्राङ्गणसङ्गिनी विजयते सर्वेन्द्रियाणां कृतिं
नो जाने जनिता कियद्भिरमृतैः कृष्णेति वर्णद्वयी॥

(विदग्धमा: १।१०)

'कृष्ण' यह दो वर्ण कितना अमृतके साथ उत्पन्न हुआ है, यह नहीं जानता;—देखो, जिस समय (नटीके समान) वह मुखमें नृत्य करता है, उस समय बहुत तुण्ड (मुख) पानेके लिये रति विस्तार (अर्थात आसक्ति वर्द्धन) करता है। जिस समय कर्णकुहर में प्रवेश करता है (अङ्कुरित होता है) उस समय अर्बुद (दश करोड़) कर्णके लिये स्पृहा जन्माता है, जिस समय चित्तप्राङ्गणमें (सङ्गिनीरूपसे) उदित होता है, उस समय समस्त इन्द्रियकी क्रियाको विजय करता है।

If any empiric or mechanic effort is shown or attempt made by you to conduct your senses which is not accepted by Harinam that effort may not reach its goal—no empiric (physical or mental) attempt should be mechanically made by a novitiate—अर्थात् यदि अपनी ओरसे इन्द्रियों के चलानेके लिये किसी प्रकारकी चेष्टाकी जाय, जो हरिनामके अनुमोदित नहीं है, उसके द्वारा आपका उद्देश्य सिद्ध नहीं होगा। नवीन व्यक्तिकी ओरसे किसी प्रकारकी कृत्रिम आध्यत्मिक चेष्टा करना कर्त्तव्य नहीं है।

माहेना सा:—मैं तो अन्य कोई उद्देश्यसे यह नहीं कर रहा हूँ। जिससे हरिनाममें मेरी एकाग्रता हो, उसीके लिये कर रहा हूँ।

आचार्यदेव—यह आपका अनुमान (Hypothesis) मात्र है चक्षु बन्द करनेके लिये अपने किसी प्राकृत इन्द्रियकी चेष्टा करनी नहीं होगी। सेवोन्मुख इन्द्रियमें स्वतः ही अवतीर्ण होंगे। स्मरण रखेंगे—कृष्णकी समस्त शक्ति उनके नाममें युक्त है। तो पर भी हरिनाममें रुचि नहीं हो रही है—विश्वास नहीं हो रहा है—शरणागति नहीं आ रही है—यही हमलोगोंका दुर्दैव, अनर्थ वा अपराध है। इसलिये श्रीगौरसुन्दर ने कहा है,—

नाम्नामकारि बहुधा निज सर्वशक्ति
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।
एतादृशी तव कृपा भगवन्ममापि
दुर्दैवमीदृश मिहाजनि नानुरागः॥

—शिक्षाष्टक २य श्लोक।

[हे भगवन, तुम्हारे नामही जीवका सर्वमङ्गल विधान करते हैं, इसीलिये अपना 'कृष्ण' 'गोविन्दादि' बहुविध नाम तुमने विस्तार किया है। उस नाममें तुम्हारी सर्वशक्ति नित्य निहित है एवं उस नाम स्मरणमें कालादिका नियम (विधि वा विचार) नहीं किया। प्रभो, जीवके पक्षमें ऐसी अतुलनीय कृपा कर तुमने अपने नामको सुलभ किया हैं, तथपि मेरा नामापराधरूप दुर्दैव हमको इस प्रकार जकड़े हुए है, कि तुम्हारे ऐसे दयालु नाममें भी मेरा अनुराग नहीं हुआ।]

सार्दाना सा:—आंख बन्द करनेसे क्या हरिनाम की शक्तिको कुछ कम कहा जा रहा है वा उनकी शक्तिके प्रति अविश्वास किया जा रहा है ?

आचार्यदेव—आप कोई ऐसा चेष्टा क्यों कीजियेगा जिसके विषयमें आप स्वयं निश्चित नहीं कि वह हरिनाम प्रभुके द्वारा गृहीत होगी कि नहीं। आपके पक्षमें जो प्रकृत मङ्गलकर है उस विधानके करनेकी परिपूर्ण शक्ति हरिनाममें है। आप क्यों पहले ही ऐसी कल्पना करते हैं कि, हरिनाममें वैसी शक्ति नहीं है।

सार्दाना सा:—तो क्या मैं सम्पूर्ण निश्चेष्ट (चेष्टा रहित) रहूँगा ?

आचार्यदेव—आप श्रीहरिनामप्रभुके इन्द्रिय-तर्पणके लिये निखिल चेष्टाविशिष्ट होंगे। जो हरिनामका अनुशीलन करते हैं, उन लोगोंके समान सर्वेन्द्रियद्वारा श्रीनामप्रभुकी सेवामें अखिल चेष्टा-विशिष्ट व्यक्ति और कोई नहीं है। वे जगत्के प्राकृत फलभोगी वा फलत्यागी स्वसुखकामी सर्वश्रेष्ठ परि-श्रमीके भी कभी कभी विश्रामसुखवांछा शान्तिसुख लाभकी इच्छा से आलस्य प्रदर्शन वा निश्चेष्टता प्रदर्शनको धिक्कार, घृणा वा परित्यागकर सर्वदा चेतनकी वृत्तिमें प्रतिष्ठित हैं। आप हरिनाम श्रवण कीर्त्तन करते २ जिस समय हरिनाम प्रभुकी सेवा और कृपा प्रार्थना करते रहेंगे, उस समय देखेंगे आपका चित्त उनकी सेवा करनेके लिये किस प्रकार चेष्टाविशिष्ट हो उठा है! हरिनामप्रभुकी सेवाके लिये उस समय आप अत्यन्त चञ्चल हो उठेंगे। यह स्वभाव आपसे आप प्रकाशित होगा।

सार्दाना सा:—तो क्या हमलोग निर्जन स्थानका अनुसन्धान वा चक्षु बन्दकर हरिनाम करनेकी चेष्टा कुछ भी नहीं करेंगे ?

आचार्यदेव—आपके सामयिक भावसे वैसा करनेपर भी उस प्रणालीके द्वारा आपके हृदयमें शुद्ध हरिनामके प्रकाश पानेकी कोई सम्भावना नहीं। हरिनामकीर्त्तनधर्म स्वतन्त्र है। उसका प्रथम आनुषङ्गिक फलही मनका सम्पूर्ण नियमन (दमन) —चित्तदर्पण मार्जन है। यह प्रथम फल होनेपर भी मुख्य फल नहीं है।

सार्दाना सा:—किन्तु वही सबसे अधिक प्रयोजनीय है।

आचार्यदेव—आपके निकट। किन्तु आपको उसके लिये व्यग्र होना उचित नहीं है। आप केवल एकमात्र हरिनामका इन्द्रियतर्पण अनुसन्धान करेंगे। आपका मन नियन्त्रित करनेके लिये श्रीगुरुपादपद्मकी वाणी और हरिनाममें यथेष्ट शक्ति है। आपका धर्म यह है कि हरिनामका किस प्रकारसे इन्द्रिय तृप्ति विधान हो सकेगा उसके लिये सर्वदा चेष्टाविशिष्ट रहें।

सार्दाना सा:- चित्तका विक्षेप दूर नहीं होता ? किस प्रकार हरिनाम करूँगा और उनका सुखानु-सन्धान करूँगा।

आचार्यदेव—खूब उच्चस्वरसे हरिनाम करेंगे—आर्त्तनाद कर हरिनाम प्रभुको पुकारेंगे, ऐसा होनेसे चित्तविक्षेप क्रमशः सङ्कुचित होता रहेगा।

सार्दाना सा:—हां उच्चस्वरसे हरिनाम करनेसे चित्तविक्षेप नष्ट होता है। अच्छा, तुलसी माला-से—हरिनाम करनेमें सार्थकता क्या है ?

आचार्यदेव—तुलसी कृष्णके अतिशय प्रिय हैं, तुलसी—गुरुपादपद्म—Ever Benevolent Mediator—She shows and invokes mercy of Krishna for the Chanter, तुलसी परमहितकारिणी आवेदनकर्त्री हैं। वे स्वयं कृपा कर

कृष्णके निकट हरिनाम कीर्त्तनकारीके लिये आवेदन-कर कृष्णकी कृपा आकर्षण करेंगी। तुलसीके निरन्तर आनुगत्य और सङ्गमें कृष्णनाम करना होता है।

(४)

नामाचार्य श्रीयुत ठाकुर-हरिदास

भागवत की चौथी संख्या में ठाकुर हरिदास का गुण-गान करते हुए कहा गया है कि वे कालिय-नागके प्रति भगवानके दण्डदानके बहाने उनका महादया सूचक गीत सुनकर अपने प्रभु के करुणा-सूचक गीतसे मुग्ध होकर उद्दीपनके कारण प्रेमानन्दसे मूर्छित होगये तथा कुछ देरके बाद चेतनता प्राप्त कर आनदके मारे नृत्य करने लगे। उन्हें कृष्ण प्रेमावेशमें अप्राकृत अश्रु-कम्पादि होने लगा। महाभागवत ठाकुर-हरिदासने क्यों हरिनाम संकीर्त्तन किया, उनका क्या अभिप्राय था यह कोई नहीं समझ सका। कारण, महाप्रभु श्रीगौरहरिने उस समय तक इस संसारमें कृष्णनाम-प्रेम भक्तिका प्रचार आरम्भ नहीं किया था। हरिकथा-कीर्त्तनके अभावसे लोग विष्णुभक्तिरहित हो गये थे, सुतरां वैष्णवोंके सर्वश्रेष्ठ पदवीको नहीं समझनेके कारण वैष्णवोंका उपहास करते थे। विषयी लोगोंको हरि-विस्मृति निरन्तर बनी रहती है, वे लोग किसी-न-किसी उपायसे हरिस्मरणरूपी भक्तिसे दूर रहकर अपने इन्द्रियोंकी प्रसन्नताके कामोंमें प्रमत्त रहते हैं। दुःसङ्ग छोड़कर भक्त लोगोंके एक साथ निर्जन में परस्पर कृष्णकीर्त्तन करनेसे दुष्टलोग क्रुद्ध होकर कहते कि उदरभरण तथा जीविकाके लिये ये सब उच्च स्वरसे कीर्त्तनकारी ब्राह्मणलोग हरिनाम कीर्त्तन करते हुए भावुक होगये हैं। धर्मानुष्ठानके बहाने अपने उदर पोषणके अतिरिक्त इनलोगोंका और कोई उद्देश्य नहीं है। इनलोगोंके ऐसे आचरणसे इस देशमें महा-दुर्भिक्ष होगा, सुतरां भिक्षा-वृत्तिको चलाकर ये संसारकी अत्यन्त बुराई करेंगे।

भगवद्भक्तोंके प्रति इस प्रकारका मिथ्या दोषा-रोपण करनेसे जीवों का कभी भी मङ्गल नहीं होता, बल्कि नरक जाना पड़ता है। भक्तलोग मुखसे कृष्णकीर्त्तन करते हुए भगवानकी सबसे श्रेष्ठ सेवा करते रहते हैं। वे लोग तमोगुणकेवश आलस्य करके साधारणलोगोंके उपार्जित धनको प्राप्त करनेके लिये लोभी होकर उसको ग्रहण वा भोग नहीं करते, परन्तु साधारणलोगोंके अपनी इन्द्रियों की प्रसन्नताके लिये दुर्बुद्धिसे सञ्चित किए हुए द्रव्यादिको हरि सेवाके कामोंमें लगाकर उन लोगोंके नित्य एवं परम मंगलका उपाय करते हैं।

इन सब कामोंमें आसक्त स्मार्त्त पाखण्डीलोग कहते थे कि चातुर्मास्यके समय भगवान् विष्णु शयन करते हैं, अतएव श्रावण, भादो, आश्विन तथा कार्त्तिक—इन चारों महीनोंमें किसीको भी कृष्ण नाम लेना उचित नहीं है। इन महीनोंमें कृष्णकीर्त्तन करनेसे योगनिद्रासे निद्रित भगवानकी निद्रामें बाधा होनेके कारण वे अप्रसन्न हो जाते हैं। इस-लिये शास्त्रके आदेशको उलङ्घन करके यदि वैष्णव-लोग विष्णुके शयनके समय भी उच्चस्वरसे हरिनाम कीर्त्तन करेंगे, तो भगवान् अवश्य ही अत्यन्त क्रुद्ध होकर इस देशमें भारी दुर्भिक्षादि करा देंगे।

बहुतसे कर्मासक्तलोग निरपेक्षता दिखलाते हुए कहते है कि प्रति दिन भगवान्को उच्च स्वरसे बार-बार पुकारनेसे क्या फायदा। जीव जब अपने किये कर्म फलको भोगनेके लिये बाध्य है तथा ईश्वर भी

जब कर्म के आधीन हैं, तो ऐसी अवस्थामें जीव ईश्वरको पुकारकर केवल अपने पित्तको बढ़ाता है—अभक्त तथा भक्तोंके बीचमें रहनेवाले मीमांसक समाजके लोग इस तरहसे नाना प्रकारका प्रजल्प (बकवाद) तथा विचार किया करते थे। भक्तलोग इन सब बातोंको सुनकर अत्यन्त दुःखित होते थे, परन्तु हरिनाम-कीर्त्तनमें अचल निष्ठा रहनेके कारण वे हरिसंकीर्त्तन नहीं छोड़ते थे।

अन्याभिलाप (भगवद्भक्तिको छोड़कर अन्य किसी विषयकी अभिलाषा होना), कर्म, योग तथा ज्ञान प्रभृति चेष्टाके आवरणमें (परदे) आवृत्त रहकर भगवत् सेवाका अभिनय, या भगवत् प्रतिकूल आचरण भक्ति कहलाने योग्य नहीं है। किन्तु इसी प्रकारकी अभक्तिके विचारमें उस समय लोगोंकी प्रवृत्ति थी। देह तथा मनके धर्मने बद्ध-जीवोंको भक्तिपथसे विमुख करके उनलोगोंसे विमलभक्तिकी महिमाको छिपा रखा था। ठाकुर हरिदास सांसारिक लोगोंको इस प्रकार अपने-अपने अमङ्गलोंके साधनमें प्रवृत्त देखकर हृदयमें अत्यन्त दुःखित होते थे और उच्चस्वरसे नाम सङ्कीर्त्तन करते रहते थे। परन्तु पापीलोग उसे सुन नहीं सकते थे। हरिनदी-ग्रामका एक दुर्जन नास्तिक ब्राह्मण ठाकुर-हरिदासको देखकर कहने लगा "अये हरिदास तुम्हारा ऐसा व्यवहार क्यों है, इतना चिल्लाकर नाम लेनेसे क्या फायदा है। मन-ही मन जपनेसे ही तो धर्म होता है चिल्लाकर नाम लेनेको किस शास्त्रमें कहा गया है। इसके उत्तरमें ठाकुर-हरिदासने दीनतापूर्वक अपनेको मानरहित समझतेहुए और उस ब्राह्मणके प्रति आदर करते हुए कहा कि मैंने हरिनाम कीर्त्तनका अतुल माहात्म्य स्वयं शास्त्र पढ़कर अथवा तर्ककरके नहीं प्राप्त किया। नामत-त्त्वविन शुद्धनामोच्चारणकारी लोगोंके मुखसे जो सुना है, वही तुमलोगोंको कहता हूं। मन-ही-मन श्रीनाम ग्रहण या उच्चारण करनेसे जो फल प्राप्त होता है उच्चस्वरसे नाम कीर्त्तन करनेसे उससे सौगुणा अधिक फल होता है-यही सब शास्त्रोंका मत है। जोलोग महामन्त्र हरिनामको केवल 'जप' कहते हैं, वे शास्त्रमर्मको नहीं समझते हैं। 'हरे' 'कृष्ण' एवं 'राम'—यह सम्बोधनका तीनों पद 'जप्य' भी है और कीर्त्तनीय भी है। भगवान मन-ही-मन पुकारे जासकते हैं तथा उच्चस्वरसे भी पुकारे जासकते हैं। उच्चस्वरसे पुकारनेसे बहुतलोग भगवन्नाम श्रवण कर सकते हैं और उससे बहुतलोगोंका मंगल होता है। नाम-श्रवण नवधाभक्तिका एक प्रधान अंग है। साधुलोगोंके उच्चस्वरसे हरिकीर्त्तन नहीं करनेसे किसीको भी श्रवणाख्य भक्तिका अधिकार नहीं होता है। सुतरां उच्चकीर्त्तन-विरोधीलोगोंका असत कुतर्क—कलि प्रणोदित मात्र है। ध्यान, यज्ञ तथा अर्चन द्वारा श्रीनाम कीर्त्तन अव्यक्तरूपसे होता है। इसीलिये कलिकालमें ध्यान, यज्ञ, तथा अर्चन विधिमें नानाप्रकारका विवाद उपस्थित होता है। कलिकालके मारे लोग जिस समय परमार्थी लोगोंके हरिभजनमें बाधा देनेके लिये अग्रसर होते हैं उस समय सत्ययुग त्रेता तथा द्वापरके अभिधेय क्रमशः ध्यान, यज्ञ तथा अर्चन करनेवाले सज्जनलोग उनलोगोंके साथ कुतर्कमें प्रवृत नहीं होते किन्तु कलिकालका अभिधेय हरिनाम संकीर्त्तन है इसीलिये ये हरिनामोच्चारणकारी सज्जनलोग कलिकालके वशीभूत लोगोंकी असत प्रवृत्तिको दूर करके उनलोगोंके नित्यमङ्गलके लिये श्रीनामकी अनन्त महिमाको कीर्त्तन करते रहते हैं जिससे कुतार्किकलोगोंको कुतर्करोगग्रस्त चित्तवृत्तिका उपयुक्त औषध मिलता

है। तब उस विप्रने पूछा कि उच्चस्वरसे हरिनाम कीर्त्तन करना सौगुना अधिक लाभदायक है इसका क्या कारण है। इस प्रश्नके उत्तरमें ठाकुर-हरिदासने कहा कि वेद तथा श्रीमद्भागवतमें इस विषयमें जो कहा गया है उसे सुनिये। ऐसा कहकर ठाकुर-हरिदास जिनके मुखमें सर्वशास्त्रकी स्फूर्ति आपसे आप होती थी कृष्णानन्दमें मग्न होकर कहने लगे कि हे विप्र साधु, भक्त अथवा वैष्णवोंके मुखसे श्रीनाम श्रवण करनेसे शुश्रूषु जीवमात्रके (पशु, पक्षी कीटादिके) कर्णके छिद्रसे वह उच्चरित वैकुण्ठशब्द प्रवेश करके उस जीवको मायाबन्धनसे छुड़ा देता है। कारण, वैकुण्ठनाम जीवको भोग-बुद्धिसे विमुक्त करके उसमें वैकुण्ठ वस्तुकी सेवा-बुद्धि विकसित करते हैं। साधारण नाम उच्चारण करने के समय शब्द जड़ आकाशमें पैदा होता है अतः नाम लेने वालेकी भोग बुद्धि बनी रहती है किन्तु भक्तोंकी जिह्वासे जो शुद्ध नामका उच्चारण होता है वह वैकुण्ठ धामकी वस्तु होती है इसलिये उसमें भोग बुद्धिरूप किसी प्रकारका अज्ञान नहीं रहने पाता। वह वैकुण्ठनाम अद्वयज्ञान वाचक होता है। इन्हीं कारणोंसे इस नामके उच्चारण करने वाले जीवको कोई भोगात्मक बुद्धिका बन्धन होने नहीं पाता। सुतरां, वैकुण्ठ भगवन्नाम ग्रहण करनेसे जीव जीवनमुक्त हो जाता है।

बद्धजीवको अपने संसार-बन्धनसे मुक्त होनेके लिये मुक्तपुरुषके निकट मन्त्रदीक्षारूप अनुग्रह ग्रहण करना चाहिये। मन्त्रसिद्ध होनेसे उन्हें उच्चस्वरसे नामग्रहण करनेका अधिकार होता है। उस समय वे जगद्गुरुके रूपमें बद्धजीवोंको जो, शुद्ध कृष्ण नामसे भिन्न इस जड़ आकाशमें उत्पन्न चित्तको लुभाने वाले असत् शब्दों और प्रजल्पनाओं (बकवादों) के सुननेसे, अनर्थ दर्शन होता है उससे द्रवीभूत और दुःखी होकर उन्हें उनका इस जड़ानुभूतिसे विमुक्त करके शुद्धसत्त्व वैकुण्ठ राज्यमें जानेकी प्रेरणा करते हैं। साधारण मूढ़लोग समझते हैं कि केवल एक बार वैकुण्ठनाम लेने, श्रवण करने तथा कीर्त्तन करनेसे जो हमारे शास्त्रोंमें वैकुण्ठ गमन का कथन है वह केवल अर्थवाद है (अर्थात् कहने सुनने की बात है)। किन्तु वास्तवमें वैकुण्ठनामका अतीन्द्रिय प्रभाव ऐसे भ्रान्त और जड़विचारपरायण लोगोंके क्षुद्र मस्तिष्कके भीतर नहीं पहुँचता है। वैकुण्ठनामको मायिक शब्दोंके समान समझनेसे जीवोंकी भोगमयी कुप्रवृत्ति अप्राकृत तथा अधोक्षज (ज्ञानातीत) भगवानको जानने नहीं देती। पशु, पक्षी कीटादि जो बोल नहीं सकते वे वैकुण्ठ नाम सुनकर तर जाते हैं। जो वैकुण्ठनाम जप करते हैं वे केवल अपनाही मङ्गल करते हैं; और जो वैकुण्ठनाम उच्चस्वरसे सङ्कीर्त्तन करते हैं वे अपने मङ्गल के साथ २ श्रोतालोगोंका भी मंगल करते हैं। एकमात्र कृष्ण-कीर्त्तनकारी श्री सद्गुरुदेव ही जीव पर दया अथवा परोपकार करने में समर्थ हैं, और कोई नहीं। अतएव उच्चस्वरसे संकीर्त्तन करनेसे उसका सौगुण-अधिक फल होता है। यह बात युक्तिसंगत भी है कारण जपकर्त्ता केवल अपनेको ही पवित्र करते हैं, किन्तु उच्चस्वरसे हरिकीर्त्तन करने वाले व्यक्ति अपने को तथा श्रोतृवृन्दको भी पवित्र करते हैं। मूर्ख गुरुके समीप हरिनामके बदले और कोई शब्द सुनकर यदि कोई व्यक्ति भोगकी इच्छासे सकाम उपासना करता है, तो उससे उसे कभी नित्य मंगल प्राप्त नहीं होता। किन्तु महाभागवत मुक्त गुरुदेवके मुखसे सुना हुआ शुद्ध हरिनाम कीर्त्तन करने वालेको यदि हरिनामकी महिमा समझमें न आवे तो अन्य

श्रोतृ-वैष्णवगण उसे समझा देते हैं इसलिये भी जप करनेवालोंकी अपेक्षा उच्चस्वरसे नामकीर्त्तन करनेवालोंको अधिकही मंगल लाभ होता है। नामापराध नामाभास तथा शुद्ध श्रीनाम-ग्रहण इन तीन प्रकारके विचारकी उपलब्धि जिसको नहीं हुई रहती है वह व्यक्ति बहुत दिनों तक दश अपराधों में से एकान्तिष्ठ नामाश्रित साधु वा वैष्णव की निन्दाका अपराध करता ही रहता है। वह पुनः गुरुअवज्ञारूप भीषण अपराध तथा गुरुको स्वजीव समझकर उनकी निन्दा का अपराध भी किया करता है। प्राकृत-वस्तुमें देवज्ञान करके वैसेही देवताओं को सर्वेश्वर विष्णुके समान समझनेका अपराधभी उसे होता है जिससे वह एकान्तिक वैष्णवोंके प्रति श्रद्धाहीन होकर वैष्णवापराधी होजाता है। उससे श्रीनामप्रभुकी सेवामें अनवधान (मनोयोग शून्यता) होनेका एवं नाम-महिमामें अर्थवाद समझनेका अपराध होजाता है। अन्य शुभक्रियाके साथ नाम-ग्रहणको बराबर समझता है एवं नामके भरोसे पापमें प्रवृत्त होकर पापासक्त होजाता है। वह लोभवश गुरुका आसन ग्रहण करके अर्थात् (अर्थात् गुरु बनकर) अश्रद्धालु व्यक्तियोंको सौदा बेचने की नाईं नामउपदेश करनेका छल करके संसार का अमङ्गल करता है। 'मैं' 'मेरा' भावसे प्रमत्त होकर क्रमशः वेदशास्त्र तथा वेदानुग ब्राह्मणोंका विरोधी हो जाता है। इस प्रकार दशप्रकारके अपराध जपकरनेवालेके अधःपतनका कारण होते हैं, किन्तु श्रीनाम-कीर्त्तन करने वाले व्यक्ति सत्संगतिके प्रभावसे इन सब अपराधोंकी जानकारीके कारण निर्जन-भजनकी असुविधासे छुटकारा पाते हैं।

मनुष्यको छोड़कर और और प्राणियोंको भी जिह्वा रहती है जिसके द्वारा वह नाना-प्रकारकी ध्वनि उच्चारण करते हैं, परन्तु मनुष्यके अतिरिक्त कोई दूसरा प्राणी कृष्णनाम उच्चारण नहीं कर सकता है। कुछ लोग कह सकते हैं कि पक्षी भी तो कृष्ण-नामके सदृश शब्द अनुकरण (उच्चारण) करता है तो क्या उससे वह भी मुक्ति प्राप्त कर सकता है? इसका उत्तर यह है कि 'अनुकरण' तथा 'अनुसरण' बिलकुल पृथक् बात है। अनुकरणकारीके कृष्ण-नामके सदृश जड़ाकाशमें इन्द्रियोंको प्रसन्न करने-वाले शब्दोंके उच्चारण करनेपर भी उसकी सेवोन्मुख जिह्वा पर चिदिन्द्रियग्राह्य चिदाकाशविराजित कृष्णनाम उच्चारित नहीं होता है। शुद्धसत्त्व कृष्ण नामके अतिरिक्तविषय-भोगकी इच्छासे वा सकाम-भावसे उच्चारित नाम-प्रतिम शब्द, 'वैकुण्ठ-नाम' नहीं है। वह तो तुच्छफल देनेमें समर्थ होनेके कारण नामापराध कहा जाता है, परन्तु वह शुद्धनामके फल कृष्णप्रेमका उदय नहीं करा सकता। जीवनाव वैकुण्ठनाम ग्रहण नहीं कर सकनेपर भी कर्ण द्वारसे वैकुण्ठ नाम श्रवण कर सकते हैं। वैकुण्ठनाम श्रवण करनेकी जिसको योग्यता नहीं हुई, उसका जीवन सचमुच ही वृथा है। जिस वैकुण्ठनाम-कीर्त्तनके श्रवण का अधिकार प्राप्त कर उसके प्रभावसे प्राणी जीवनमुक्त हो सकता है, वह उच्च हरिनाम कीर्त्तन कभी भी दोष वा तर्कद्वारा समालोचना का विषय नहीं हो सकता।

कोई स्वार्थवश अपने पोषण पालनमें लगा रहता है और कोई अपने पोषण पालनके साथ साथ अन्य हजारों व्यक्तियोंका भी पोषण करता है,—इन दोनोंमें कौन श्रेष्ठ है यह स्वीकार करना होगा। इतना तो विचार करनेसे समझमें आ जाता है कि उच्च-कीर्त्तनकारी निःस्वार्थी तथा परोप-

कारी होते हैं। अतएव केवल नाम-जपकी अपेक्षा उच्चनामसङ्कीर्त्तन हजारों गुणा श्रेष्ठ है।

ठाकुर हरिदासके उपदेशको सुनकर वह पाखण्डी विप्राधम क्रोधवश व्यंग वचन कहने लगा,—भारत-वर्षमें छः प्रधान दर्शनशास्त्र प्रसिद्ध हैं। ये सब शास्त्र न्यूनाधिक वेदानुगत हैं। अब हरिदासका विचार षड्दर्शनके बदले 'सप्तम दर्शन' नामसे विख्यात होगा। यह कलिकाल है, सुतरां वैदिक पथ कालके प्रभावसे हरिदास जैसे नाम भजनपन्थी शुद्ध वैष्णव लोगोंके द्वारा लोप होनेके लिये चला! कपिल तथा पतञ्जलि, कणाद तथा अक्षपाद, जैमिनी एवं व्यास—यही लोग क्रमशः षड्दर्शनके मालिक थे। इस समय हरिदास उपस्थित होकर सप्तम-दर्शनके मालिक हो गये! समय समयपर कितने प्रकारके विचार उपस्थित होते हैं।

इस प्रकार वह अभक्त और शौक्राभिमानी विप्र (जातिकुलका अभिमान करने वाला) गुरु वैष्णवके प्रति सामान्य जाति बुद्धि आरोप करके महापराध-वश नरकका भागी हुआ और हरिदाससे कहने लगा कि यदि तुम्हारी कही हुई नाम-महिमा पूर्ण-रूपसे शास्त्रोक्त न हो तो मैं सबके सामने तुम्हारा नाक कान काट लूंगा।

—क्रमशः।

"आदौ श्रद्धा"

श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षा और श्रीरूपगोस्वामी प्रभुकी वाणीमें "आदौ श्रद्धा" का उपदेश पाया जाता है। प्रेमभक्ति प्राप्त करनेके क्रमनिर्णयमें भक्तिसाम्राज्यके मूल महात्मा श्रीरूपने "आदौ श्रद्धा" अर्थात सबसे पहले 'श्रद्धाकी' कथा का उल्लेख किया है। 'श्रद्धा' ही प्रेम भक्तिकी प्रथम कथा है। 'श्रद्धाके' बिना भक्तिमें अधिकार नहीं होता। 'श्रीसनातनशिक्षामें' श्रीमन्महाप्रभुने दूसरे शब्दोंमें यों कहा है, कि

"श्रद्धावान जन हय भक्ति-अधिकारी।"

—चै: च: म २२।६४

एकमात्र श्रद्धावान व्यक्ति ही भक्तिके अधिकारी हैं। जबतक श्रद्धा नहीं होती, तबतक जीवका अभक्तिमें अर्थात अन्याभिलाष कर्म, ज्ञान, योगा-दिमें वा आध्यत्मिकतामें ही स्वाभाविक अधिकार रहता है। गीतामें भी श्रीभगवानजीने अर्जुनसे कहा है,—

"श्रद्धावान लभते ज्ञानम्"

(गीता ४।३९)

अर्थात श्रद्धावान व्यक्ति ही ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। अश्रद्धालुका विनाश अवश्यम्भावी है—

"अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति।"

(गीता ४।४०)

अज्ञ, अश्रद्दधान और संशयात्मा पुरुष नाशको प्राप्त होते हैं अर्थात वह कभी भी आत्ममङ्गल प्राप्त नहीं कर सकते।

श्रीसनातनशिक्षामें श्रील कविराज गोस्वामी प्रभु कहते हैं,—

कोन भाग्ये कोन जीवेर 'श्रद्धा' यदि हय।
तबे सेइ जीव 'साधुसङ्ग' करय॥

चै: च: म २३।९

किसी विशेष भक्त्युन्मुखी सुकृतिके फलस्वरूप जीवके हृदयमें श्रद्धादेवी का आविर्भाव होता है। श्रील कविराज गोस्वामी प्रभुने 'भाग्य' शब्दके पहले

एक 'कोन' (कोई) और 'जीवेर' शब्दके पहले पुनः 'कोन' (कोई) शब्द का प्रयोग कर भाग्य वा सुकृति एवं सुकृतिसम्पन्न जीव सुदुर्लभ हैं—यही बतलाया है। इससे बड़े भाग्यवश इनेगिने (बहुत-कम) जीवके हृदयमें श्रद्धा उदय होती है एवं श्रद्धा के उदय होने ही से कृष्णभक्तिकी जड़ साधुसङ्गके प्रति जीवकी रुचि होती है। इससे यही सिद्ध होता है कि श्रद्धाका अभाव रहनेसे सच्चे महापुरुषों-को सामने पाकर भी वा प्रकृत साधुके पास रहते हुए भी हमें साधुका सङ्ग नहीं मिलता।

क्या गीता, क्या भागवत, क्या उपनिषदादि-शास्त्र सर्वत्र ही कहा गया है कि अश्रद्धालु को शास्त्र-उपदेश नहीं करना चाहिये। शास्त्र और साधुओंने एकस्वरसे अश्रद्धालु का 'प्रवेश निषेध' किया है। अश्रद्दधानको नामोपदेश करनेसे 'नामापराध' होता है। श्रीगीतामें भगवान "सर्व्व-धर्म्मान् परित्यज्य" श्लोकके बाद ही कहते हैं कि अभक्त और अश्रद्दधानको कभी भी गीताशास्त्र श्रवण नहीं कराना। श्रद्दधान और विद्वेष शून्य व्यक्ति ही गीता श्रवणकर मङ्गल प्राप्त कर सकते हैं।

श्रद्धाके तारतम्यानुसार ही भक्तके बड़प्पनका तारतम्य समझा जाता है। जो शास्त्रके वचनोंमें निपुण हैं और दृढ़श्रद्धा रखते हैं, वे ही संसारके उद्धार करनेवाले उत्तम अधिकारी हैं; जो दृढ़ शास्त्र-युक्ति नहीं जानते, किन्तु श्रद्धावान् हैं, वे मध्यमाधि-कारी हैं; और जिनकी श्रद्धा अत्यन्त कोमल है, वे कनिष्ठाधिकारी हैं। कोमलश्रद्ध व्यक्ति जब दृढ़श्रद्ध होता है तब उसे उत्तमाधिकार प्राप्त होता है। अतएव प्रौढ़, मध्यम और कनिष्ठ-भेदसे श्रद्धा जैसे तीन प्रकारकी है, वैसे ही भक्त भी तीन प्रकारके हैं।

श्रीचैतन्यचरितामृतमें श्रीमन्महाप्रभुका जो वाक्य मिलता है, उसमें श्रद्धा शब्दका ऐसा अर्थ है—

'श्रद्धा'—शब्दे विश्वास कहे सुदृढ़ निश्चय।
कृष्णे भक्ति कैले सर्व्व कर्म्म कृत हय॥
—चै. च. म २२।६२

कृष्ण-भक्ति करनेसे सभी कर्म सम्पादित हो जाते हैं (किसी कामका करना बाकी नहीं रहता)—ऐसा सुदृढ़ निश्चयात्मक हार्दिक विश्वास पृथ्वीके प्रायः सैकड़े एक मनुष्यमें भी नहीं है। जिनका ऐसा विश्वास है वे ही भाग्यवान हैं। प्रतिदिन प्रसाद-सम्मान करनेके समय जो 'साधु सावधान' की ध्वनि महात्मा लोग हमलोगोंके कानोंमें प्रवेश कराते हैं, उससे भी यही बात साबित होती है—

"महाप्रसादे गोविन्दे नामब्रह्मणि वैष्णवे।
स्वल्पपुण्यवतां राजन् विश्वासो नैव जायते॥"

जो अति अल्प-पुण्यवान हैं अर्थात् जिनलो-गोंकी भक्त्युन्मुखी सुकृति नहीं है, उनलोगोंका महाप्रसादमें, श्रीविग्रहमें, नामब्रह्ममें और वैष्णवमें विश्वास नहीं होता।

यह श्लोक भक्तिविज्ञानकी कसौटीके सदृश है। आध्यक्षिक (इन्द्रियों से ज्ञान प्राप्त करनेवाला व्यक्ति) महाप्रसादको दाल-भातके सिवाय और कुछ नहीं समझ सकता। इसका कारण यह है कि वह पञ्च ज्ञानेन्द्रियों को ही ज्ञानका साधन समझता है। अर्चावतार, नामब्रह्म और वैष्णव-सम्बन्धमें भी वह यही देखता और समझता है। गुरु और वैष्णवमें मर्त्यबुद्धि और असूया करना बद्ध जीवका स्वाभाविक धर्म समझकर ही श्रीमद्भागवतमें स्वयं भगवान्को कहना पड़ा है—

आचार्यं मां विजानीयात् नावमन्येत कर्हिचित्।

न मर्त्यबुद्ध्यासूयेत सर्वदेवमयो गुरुः ।।

आम्नायसूत्रमें श्रील ठाकुर भक्तिविनोदने कहा है—"अन्योपायवर्जं भक्त्युन्मुखी चित्तवृत्तिविशेषः । ज्ञान और कर्म प्रयोजन-सिद्धिका उत्तम उपाय नहीं है, भक्ति ही एकमात्र शुद्ध उपाय है; शास्त्र-विश्वासके सहित अनन्यभक्तिके प्रति जो इस प्रकारकी चित्तवृत्ति है, उसका ही नाम श्रद्धा है।"

तत्त्ववित पण्डित श्रद्धा और शरणापत्तिको एक कहते हैं (एक ही समझते हैं)। भक्तिसन्दर्भमें,—

कर्म-परित्याग-हेतुत्वेनाभिधानाच्छ्रद्धाशरणापत्त्योरैकार्थ्यं लभ्यते । तथाप्युक्तं । श्रद्धाहि शास्त्रार्थ-विश्वासः । शास्त्रञ्च तदशरणस्य भयं तच्छरणस्याभयं वदति । अतो जातायाः श्रद्धायास्तत् शरणापत्तिरेव लिङ्गमिति ।

'तावत् कर्म्माणि कुर्वीत' इत्यादि भगवद्वाक्यमें श्रद्धाको ही कर्म-त्यागका हेतु बतलाकर निर्दिष्ट किया है इससे श्रद्धा और शरणापत्तिको एकार्थ-सूचक प्रमाणित किया गया है। शास्त्रार्थ-विश्वास का नाम श्रद्धा है। शास्त्रार्थ यह है कि श्रीकृष्णके शरणागत नहीं होनेसे जीवको भय है, शरणागत होनेसे फिर भय नहीं रहता। अतएव श्रद्धा उत्पन्न होनेके साथ ही शरणापत्ति-उत्पन्न होती है और उसीसे श्रद्धाका बोध होता है। सब शास्त्रों-पर विचार करनेपर ही यह सारा सिद्धान्त प्राप्त होता है। सब शास्त्रोंके सिद्धान्तकेरूपमें श्रीभगवद्-गीता को यह श्लोक कहा गया है,—

सर्वधर्म्मान परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।।

हे अर्जुन तुम कर्म, ज्ञान, योग प्रभृति शास्त्रोक्त सभी धर्मोंको त्याग कर मेरी शरणमें आओ तो मैं तुम्हारा सभी प्रकारके पापोंसे उद्धार करूँगा, शोच मत करो।

'श्रीकृष्णचरणमें शरणापत्तिके बिना और किसी उपायसे मेरा मङ्गल नहीं। अतएव मैं उसी अभय पदमें शरणापन्न हुआ'—इस दृढ़ विश्वासका नाम श्रद्धा, शरणापत्ति वा प्रपत्ति है। (सज्जनतोषणी ४ र्थ खण्ड, ८म संख्या 'श्रद्धा और शरणागति'।)

श्रद्धाके आविर्भावके साथ ही साथ शरणापत्ति वा प्रपत्तिका उदय होगा। जो श्रद्धालु होनेका अभिनयकरने वाले हैं किन्तु श्रद्धास्पद व्यक्तिमें शरणागत नहीं है, उनलोगोंका श्रद्धाका अभिनय केवल धोखा है।

बहुत लोग कहते हैं, कि जबरदस्ती श्रद्धा नहीं उत्पन्न होती वा जबरदस्ती कोई किसीको श्रद्धालु नहीं बना सकता। बहिर्मुख व्यक्तियोंके अनर्थरोग-की प्रबलताके कारण यदि हरि-गुरु-वैष्णवमें श्रद्धाका उदय न हो तो उससे यह नहीं प्रमाणित होता कि प्रकृत हरि-गुरु-वैष्णव संसारमें नहीं हैं। पृथ्वीके अधिकांश लोगोंको ही महाप्रसाद, गोविन्द, नामब्रह्म और वैष्णवमें श्रद्धाका उदय नहीं होता यह कहकर इन वस्तुओंकी वास्तवता वा गुरुत्वसे इनकार नहीं किया जा सकता। विष्ठाभोजी कुत्तेसे यदि श्रीतुलसीदेवी बलपूर्वक श्रद्धा अदा नहीं करा सकतीं तो इसलिये तुलसी कृष्णप्रिया वैष्णवी नहीं हैं वा अप्राकृत वस्तु नहीं हैं, यह विचार सत्य नहीं है। इन्द्रियविमूढ़से अर्चावतार बलपूर्वक श्रद्धा नहीं करा सकते इसलिये श्रीविग्रह अप्राकृत वस्तु नहीं हैं, ऐसी बात नहीं—'याहारे देखिले मुखे आइसे कृष्णनाम। ताँहारे जानिबे तुमि वैष्णव प्रधान।" इस उक्तिके अनुसार यदि कोई वैष्णव-विद्वेषी पाखण्डीसे प्रकृत महाभागवत श्रद्धा नहीं करा सकते, तो क्या उस महाभागवतका वैष्णवत्व अस्वीकृत

होगा ? महाप्रभुको समुद्रमें से उठानेके कारण मछुएके देहमें भी सात्त्विकविकार प्रकाशित और उसके मुखसे हरिनाम उच्चारित हुआ था, यहां तक कि विधर्मी यवनके मुखमें भी महाप्रभुके दर्शनमात्रसे ही कृष्णनाम उच्चारित हुआ था किन्तु रामचन्द्रपुरी वा पाखण्डी पाठकोंको ऐसा नहीं हुआ इसलिये क्या केवल इसी युक्तियादपर महाप्रभुका महाप्रभुत्व अस्वीकृत किया जा सकता है ?

अप्राकृत वस्तुके प्रति श्रद्धाके अभावके कारण वस्तु-दर्शन ही नहीं होता। श्रद्धा नहीं रहनेसे साधुसङ्ग नहीं होता; श्रद्धा नहीं रहनेसे साधुका परममङ्गलकर उपदेशामृत भी विष मालूम पड़ता है, उनकी वाणीको नानाप्रकारकी समालोचनाके शृङ्खलमें आवद्ध करनेकी चेष्टा होती है। जिसके प्रति हमलोगोंकी श्रद्धा नहीं रहती, वह यदि संसारके परममंगल का कार्य भी करे तो वह कार्य हमें बड़ा अहितकर मालूम पड़ता है।

क्रमशः।

विविध-संवाद

पटना

भागवत सम्पादक पण्डित श्रीपाद रूपविलास ब्रह्मचारी, भक्तिशास्त्री, बी० ए० दिल्ली, एलाहाबाद, लखनऊ प्रभृति स्थानोंमें शुद्ध भक्तिका प्रचार करते हुए पटना पहुंचे। यहां पर उन्होंने मठवासी तथा श्रद्धावान भक्तोंके निकट निरन्तर हरिकीर्त्तन करके प्रत्येक व्यक्तिको हृदय-मन-वचन द्वारा हरिभजन करनेके लिये उत्साहित किया। उन्होंने यह भी बतलाया कि असतसंगमें रहकर हरिभजन नहीं होता। सद्गुरुके आनुगत्यमें रहकर ही हरिभजन करना चाहिये।

यहां पर पहली जुलाई शनिवारसे श्रीमठके सेवक लोगोंने चातुर्म्मास्य-व्रत आरम्भ किया है।

दिल्ली

श्रीश्रीविश्ववैष्णवराजसभाके श्रेष्ठ प्रचारक पण्डित श्रीपाद अप्रमेय दासाधिकारी भक्तिशास्त्री महोदयजीने श्रीगौड़ीयमठ न्यू दिल्लीमें अवस्थान करके शहरके विभिन्न स्थानोंमें श्रद्धालु सज्जनोंके समीप श्रीचैतन्यदेव तथा श्रीगौड़ीयमठके प्रचार्य विषयको कीर्त्तन किया। उनकी हरिकथामें आकृष्ट होकर दिल्लीके विख्यात धनी तथा बैंकर लाला श्रीयुत मङ्गतराए महोदय प्रतिदिन दो घन्टेतक अत्यन्त आग्रहकेसाथ शुद्धभक्तिकी कथा श्रवण करते थे।

मीनापुर

श्रीगौड़ीय मिशनके प्रचारक पण्डित श्रीपाद सुदर्शन ब्रह्मचारी, भक्तिशास्त्रीजीने कई ब्रह्मचारियोंके साथ यहांपर पधारकर शुद्धभक्तिकी कथा श्रद्धान्वित-लोगोंके समीप घरघर घूमकर कीर्त्तन की। शहरके स्वनामधन्य दानवीर सेठ जयनारायणजीने प्रचार मंडलीको सभी प्रकारसे सहायता करके अत्यन्त सुकृति अर्जन की।

काशी

श्रीयुत श्रीनिवास राए, एम-ए, डी-लिट् महाशयने काशी श्रीसनातन गौड़ीयमठमें आकर हरिकथा श्रवण की।

श्रील प्रभुपादकी पत्रावली—(तृतीय खण्ड)

आचार्य-प्रकट तिथिमें श्रील प्रभुपादकी पत्रावलीका तृतीय खण्ड प्रकाशित हुआ है । प्रत्येक पत्र विशेष शिक्षाप्रद व सारगर्भ उपदेशसे परिपूर्ण है । हमलोग प्रत्येक मंगलकामी व सत्यका अनुसन्धान करनेवाले व्यक्तिको इस पत्रवालीको पाठ करनेका अनुरोध करते हैं ।

श्रीचैतन्यदेव

श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके पहले व बाद भारत व बंगालकी राजनैतिक अवस्था, अर्थ नैतिक अवस्था, विद्या, साहित्य व समाजिक अवस्था, धर्मजगतकी अवस्था, समसामयिक पृथिवीकी अवस्था, नवद्वीपका परिचय व तथ्य और प्रमाणिक ग्रन्थ व विवरण समूह सहज व सरल भावमें साधारणके पढ़नेके योग्य वर्णन किया गया है। ग्रन्थमें अनेक चित्र व मानचित्र दिये गये हैं। सुन्दर जिल्द, भक्त, साधारण व्यक्ति व विद्यालयके छात्र सभीके लिये यह ग्रन्थ उपयोगी व प्रीति देनेवाला होगा। भिक्षा १)। प्राप्तिस्थान—श्रीगौड़ीयमठ, पो० बागबाजार, कलकत्ता। श्रीमाध्वगौड़ीयमठ, पो० वोयारी, ढाका ।

सरस्वती जयश्री

गौड़ीय-वैष्णवाचार्य ॐ विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादका भुवनके मंगलदायक जीवनचरित ग्रन्थ है। निर्मत्सर शुद्धभक्ति पिपासु व्यक्ति इस ग्रन्थके पाठसे युगपत् अनेक शास्त्रग्रन्थ पाठ व अनेक साधुसङ्गका फल लाभ कर सकेंगे । वैभवपर्वका प्रथम खण्ड रायल ८ पेजी आकारमें एण्टिक कागजपर उत्तमरूपसे मुद्रित, ३६० पृष्ठोंमें । विस्तृत सूचीपत्रके साथ इसमें अनेक चित्र भी दिये गये हैं । भिक्षा ४)

'सामयिक-संख्या'—गौड़ीय

सामयिक-संख्या गौड़ीय अनेक त्रिवर्ण व एकवर्ण चित्र-शोभित व अनेक श्रेष्ठ वैष्णवसाहित्यिकगणोंकी गवेषणापूर्ण प्रबन्धसे सुमण्डित होकर प्रकाशित हुई है । श्रीधाम-मायापुरमें श्रीश्रीगौरजन्मोत्सवके उपलक्षमें सर्वसाधारणोंके लिये भिक्षा ।।) आना ।

ठाकुर भक्तिविनोद

श्रीरूपानुगशुद्धभक्ति स्रोतके प्रवाहका मूल पुरुष ॐ विष्णुपाद श्रील ठाकुर भक्तिविनोदका जीवनचरित व शिक्षामाला बहुत सरल भाषामें बड़े बड़े अक्षरोंमें मुद्रित । भिक्षा ।।।) मात्र । प्राप्तिस्थान—कलकत्ता (बागबाजार) श्रीगौड़ीयमठ व ढाका—श्रीमाध्वगौड़ीय मठ ।

अणुभाष्यम्

चार अध्यायी ब्रह्मसूत्रके प्रत्येक अधिकरणका तात्पर्य श्रीमन्मध्वाचार्य-कृत श्लोकाकारमें बहुत संक्षेपमें बना हुआ । बंगभाषामें सर्वप्रथम संस्करण । पहले प्रति अध्यायके प्रति पादका श्रीमन्मध्वाचार्यविरचित अणुभाष्यमूल, उसके बाद प्रति अध्यायके प्रतिपादका सूत्र-समूह, अणुभाष्य-मूलका बंगला अनुवाद व श्रीपाद राघवेन्द्रयतिविरचित तत्त्वमञ्जरी टीका, उसका बंगला अनुवाद व तात्पर्य इस क्रमसे पुस्तक मुद्रित हुई है । इसके अतिरिक्त मातृका क्रमसे ब्रह्मसूत्र समूह, उसका अध्यायांक, पदांक व सूत्रांकके साथ सूचीपत्रभी संयोजित हुआ है । भिक्षा २) मात्र ।

Printed by :—Mukunda Madhab Das Brahmachari, at the Ramesh Printing Works and published by the same from Sree Gaudiya Math, Mithapur, Patna.

वर्ष ५]

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः

Regd. No. P. 468.

संख्या ६]

भागवत

एकमात्र

पारमार्थिक

मासिक पत्र

५ श्रीधर
गौराब्द
४५३



श्रावण कृष्ण ५
संवत
१९९६ वि०

प्रति संख्या -)॥

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥१॥

वार्षिक १)

जिससे इन्द्रिय ज्ञानातीत श्रीकृष्णमें श्रवणादि-लक्षणा फलाभिसन्धान-रहिता ऐकान्तिकी स्वाभाविक निरपेक्षा भक्ति उदय होता है, वही मानव जातिका सर्वश्रेष्ठ धर्म है— उसी भक्तिके बलसे अनर्थ शमन होनेपर आत्मा प्रसन्नता लाभ करता है ।

सम्पादक—उपदेशक पं० श्री रूपविलास ब्रह्मचारी भक्ति शास्त्री बी० ए० ।

Editor :—Upadeshak Pandit Sree Rupvilas Brahmachari,
Bhaktishastri B. A.

SREE GAUDIYA MATH Mithapur (Patna).

विषय सूची

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः



वर्ष ५

श्रीगौड़ीयमठ, मीठापुर (पटना)

श्रावण कृष्ण ५, ४५३ सं० १९९६ वि०, ६ जुलाई सन् १९३९ ई०

संख्या ६

प्रवृत्ति तथा निवृत्ति

(ॐ विष्णुपाद श्रीश्रील भक्तिविनोद ठाकुर)

जिस समयसे मनुष्य जातिकी सृष्टि हुई है, उसी समयसे प्रवृत्ति तथा निवृत्ति सम्बन्धी विचार उपस्थित हुए हैं। सभी समय तथा सभी देशोंमें इन दोनों विषयोंकी आलोचना होती रहती है। जितने प्रकारके लिखे शास्त्र इस देश तथा विदेशमें देखनेमें आते हैं, वे सभी प्रवृत्ति तथा निवृत्तिकी समालोचनासे परिपूर्ण हैं। आर्य जातिके वैदिक शास्त्र, मुसलमानोंके कुरान, ख्रष्टोंके बाइबिल तथा बौद्ध समाजके वेद-विरुद्ध व्याख्यान इसके प्रमाण हैं। प्रवृत्ति तथा निवृत्ति विषय मानव-जातिका एक प्रधान तत्व है, यह पहले कही गई विशाल आलोचनाके दृष्टान्तसे साबित होता है! जब सभी समय तथा सभी देशोंमें किसी एक विषयकी आलोचना और पूर्ण विचार किया जाता है, तब वह विषय सत्य सम्बन्धी है, इसमें क्या सन्देह हो सकता है? मृत्यु होनेपर फिर कोई व्यक्ति लौटकर नहीं आता, अतएव जीवके शरीर वियोगके द्वारा अस्तित्वका अभाव नहीं होता ऐसे विश्वासका आधार क्या है? जनसाधारणमें इस विश्वासकी व्याप्ति ही इसका प्रमाण है। उत्तरी ध्रुवका रहनेवाला कोई व्यक्ति इस विषयमें दक्षिणी ध्रुवके रहनेवाले किसी व्यक्तिसे मतभेद नहीं प्रकाश करता। बल्कि आत्माका अमरत्व सभी देशोंमें तथा सभी कालोंमें स्वीकार किया गया है। यद्यपि बहुतसे अभागे कुतर्क करके असत् आलोचनाके कारण स्वतःसिद्ध आत्माकी अमरताके विश्वासको छोड़कर

स्वेच्छाचारी हो जाते हैं, तौभी इनलोगोंकी संख्या इतनी कम है कि उनके द्वारा संसारके साधारण विश्वासमें कुछ व्याघात नहीं हो सकता। आर्यदेशमें चार्वाक प्रभृति एवं दूसरे-दूसरे देशोंमें सारडनेपलसादि बहुतसे अनित्यवादी पाखण्डी उत्पन्न हुए हैं, तौभी आत्माकी अमरताके प्रति जो स्वाभाविक विश्वास होता है उसका नाश नहीं हुआ।

परमेश्वरके अस्तित्वमें दृढ़ विश्वास एवं जीवके अनश्वर होनेमें निश्चयता प्रभृति जो सब साधारणतः स्वतःसिद्ध विषय हैं, उनमें प्रवृत्ति-निवृत्ति विषयक तत्वभी प्रधान विषय है। बहुत दिनोंसे इस विषयके विचार लिपिबद्ध होकर परम्परासे हमलोगोंको प्राप्त हुए हैं। सारा वेदभी कर्मकाण्ड तथा ज्ञानकाण्ड इन दो भागोंमें विभक्त हो गया है। इन विषयोंकी आलोचना नीचेकी जायगी। इस समय विचारनीय विषयकी आलोचना, जो विशेषरूपसे यहां आवश्यक है, की जायगी।

हजार वर्षभी नहीं बीते कि आर्यविरोधी लोगोंने हमलोगोंकी आर्यभूमिको हस्तगत किया था। उनलोगोंकी भाषा, स्वभाव, चरित्र तथा धर्म इस देशके लिये अत्यन्त विरुद्ध होनेके कारण हमलोगोंके पूर्व-पुरुष अत्यन्त क्लेशमें पड़ गये थे। उनलोगोंके स्वभावतः तथा धर्मतः निष्ठुर होनेके कारण इस देशकी सभी संस्कृतियोंका ह्रास होने लगा। जिस देशमें आदि कवि वाल्मीकि तथा ज्ञानी श्रेष्ठ वेदव्यासने सरल संस्कृतके भिन्न २ सुन्दर छन्दोंमें अनेक श्रेष्ठ ग्रन्थोंकी रचनाकर मनुष्योंका सांसारिक तथा पारमार्थिक मंगल किया था, जिस देशमें हरिश्चन्द्र, युधिष्ठिर इत्यादि धार्मिक राजा प्रजाके हितके लिये अपना अपना शरीर तथा इन्द्रियबल लगा कर बूढ़े हुए, जिस देशमें सावित्री, अरुन्धती, वृन्दा प्रभृति महिलाएँ सतित्वालङ्कारसे विभूषित होकर ऐतिहासिक यशाकाशमें नक्षत्ररूपसे शोभित हुई थीं, वही भुवनविजयिनी भारतभूमि.... खड्गधारी व्यक्तियोंके हाथसे कितनी दुर्दशाको प्राप्त हुई यह वर्णन करने योग्य नहीं है। वेदशास्त्र लुप्त हो गये, ज्ञान गुप्त हो गया, और आर्य-चेतनता शीतकालके सर्पके सदृश निद्रितसी हो गयी। ब्राह्मणोंका तर्क सुदीर्घ पुस्तकोंके भीतर स्थान बनाकर तटस्थरूपसे रहा। क्षत्रियोंके शौर्य (बल) तथा वीर्य केवल शयनागारमें ही कुछ कुछ प्रकाशित होने लगे। दूसरी दूसरी जातिके लोग अपने धर्मोंके आचरण द्वारा भरण-पोषण करनेमें असमर्थ होकर वेदविधिको छोड़ने लगे। यद्यपि ऐसे आपत्तिकालमें भी बहुतोंके लिये निवृत्ति-धर्म ही अवलम्बनीय रहा, तथापि कर्म-फलानुसार बहुतसे आर्यवंशके लोग वेद-धर्मको छोड़कर कितने प्रकारके स्वकपोलकल्पित उपधर्म सृष्टिकर उसीके अनुसार समय बिताने लगे।

विलायतवासी लोगोंके इस देशमें आनेसे हम कुछ बातोंमें सुखी जान पड़ते हैं। परन्तु कोई भी घटना अमिश्र सुख नहीं दे सकती। अंग्रेजोंका भारतवर्षमें अधिकार होनेसे जहां हमें कुछ सुख प्राप्त हुआ वहां किसी किसी विषयमें हमारा अमङ्गल भी हुआ। अंग्रेजलोगोंने इस देशमें अपनी भाषा द्वारा कई तरहसे वैज्ञानिक उपदेश देकर प्रतिष्ठा प्राप्त की है। यहांके नवीन-सम्प्रदाय वालोंने उनलोगोंकी भाषा सीखकर तथा उनकी चलाई रेलगाड़ी, रेडिओ प्रभृति यन्त्रों से प्रभावित होकर उन्हें अपना गुरु समझ लिया है। इससे अनेक भयङ्कर दोष उत्पन्न हो रहे हैं। आर्यभाषा एवं उसमें लिपिबद्ध विशाल तथा निर्मल ज्ञानविज्ञान

प्रायः लुप्त हो रहा है। इसका प्रमाण सहज है। किसी शिक्षित अंगरेजी विद्याके अध्यापकसे परम-पूजनीय सभी वेदोंके सार साक्षात् सामवेदरूपी श्रीमद्भागवतकी बात पूछनेपर वह हँसकर उसे पुरानी पुस्तक कहकर ताखेपर रखदेनेको कहेगा। श्री श्रीमद्भागवतके आध्यात्मिक परमरमणीय अप्राकृत वृत्तान्तोंके मूलतत्वको न समझकर उसको लम्पटता बढ़ानेवाली तुच्छ पुस्तकोंमें उसे गिनेगा। अहा! कैसी मूर्खता है। इन सब बालकोंने अब अपनी संख्या बढ़ाकर दलबलके साथ कई उपधर्म स्थापन किए हैं। जो हो इंगलैण्डका प्राकृत विज्ञान ही मनुष्य जातिका प्रकृत उद्देश्य है, ऐसी शिक्षा पाकर वे अपक व्यक्ति अप्राकृत तत्वको स्वप्नवत् समझने-लगे हैं। इसमें अंग्रेजोंका क्या दोष है।

इन सब ऐतिहासिक बातोंको कहनेका तात्पर्य यही है कि हमारे पाठक इस बातको जानें कि अंगरेजोंके संसर्गसे आर्यवासी निवृत्ति-तत्वको अग्राह्य समझने लगे हैं। प्रवृत्ति तथा निवृत्ति इन दोनोंके बीच श्रेष्ठ मार्ग प्रवृत्ति है, ऐसा ही उन-लोगोंने स्थिर किया है; और निवृत्ति मार्गको पूर्वकालका भ्रम समझकर परित्याग किया है। जैसा सङ्ग होता है वैसे ही जीवके विचार, सिद्धान्त तथा स्वभाव हो जाते हैं। यह बहुतसे शास्त्रोंमें कहा गया है। इस समय अंगरेजोंने इन्द्रिय तथा मनोबलकी प्रचुरता द्वारा प्रवृत्ति-मार्गको भगवद्धामका एकमात्र पथ स्वीकार किया है। "इस समय" शब्दोंके व्यवहार करनेका तात्पर्य यह है कि उनलोगोंके अवतार पुरुष वा धर्मगुरु ख्रीष्टने अपने प्रकाशित धर्ममें दोनों-अर्थात् प्रवृत्ति एवं निवृत्ति-मार्गको स्वीकार करते हुए निवृत्तिकी उत्कृष्टताका स्थापन किया है।

किसी व्यक्तिने ईसासे पूछा कि हे गुरो! बहुत दिनोंकी आयु पानेके लिये मुझे क्या करना चाहिये? ईसाने कहा, "यदि सांसारिक धर्मोंका प्रतिपालन करके भी ऐसा प्रश्न करते हो, तो सुनो, तुम्हारे पास जो धन है उसे बेचकर दरिद्रोंको दान करदो एवं मेरा अनुगामी होजाओ।" उस व्यक्तिके इस परामर्शके अनुसार नहीं चल सकनेपर उन्होंने अपने शिष्योंसे कहा, देखो विषयीलोगोंके लिये वैकुण्ठ प्राप्ति अत्यन्त कठिन है। उन्होंने फिर कहा कि जिस मनुष्यने मेरा पथानुगामी होनेके लिये घर, भाई, भगिनी, पिता, माता, स्त्री तथा पुत्रादिका परित्याग किया है उसीको अधिक लाभ होगा और वही अनन्त आयुका अधिकारी होगा।

ईसाके ऐसे बहुत उपदेश हैं। वे एक वैरागी पुरुष थे इसमें कुछभी सन्देहकी बात नहीं है। इस समय जो ख्रीष्टधर्मकी शिक्षा मिलती है, वह यथार्थमें ख्रीष्टका उपदेश नहीं है। यदि ऐसा न होता तो ख्रीष्टीयलोग राज्य प्राप्तिके लिये प्राणवध करना स्वीकार नहीं करते। युद्ध करना एक प्रकारकी पशुवृत्ति है, अतएव वैराग्यधर्म-विरोधी है, इसमें कुछ संदेहकी बात नहीं।

हे महापुरुषो! क्या ख्रीष्टके इस उपदेशसे निवृत्तिमार्ग उत्कृष्ट स्वीकृत नहीं हुआ? अंगरेजलोग क्या ख्रीष्ट धर्मसे च्युत नहीं हुए? केवल प्रवृत्ति मार्ग ही श्रेष्ठ है, ऐसा सब अंगरेज नहीं कहते यह बात ठीक है, किन्तु जो निवृत्तिके विरोधी हैं, वे लूथर नामक किसी धर्म-संस्कर्ताके शिष्य हैं। लूथरके समयसे उनने प्रवृत्ति-मार्गको ही उपासनाका एकमात्र उपाय स्वीकार किया है। वर्तमान समयके प्रोटेस्टेन्ट अर्थात् लूथरके शिष्यलोग सन्यासावलम्बी पुरुषोंको भ्रान्त कहते हैं। किन्तु

रूस, फ्रान्स इत्यादि देशोंमें लूथरका मत विशेषरूपसे स्वीकृत नहीं हुआ और इस कारण वहांके पादरीलोग हमलोगोंके वैरागी तथा महन्थोंके सदृश स्त्रीसम्भोग छोड़कर निःसङ्ग भावसे उपासना करते पाये जाते हैं। इस मतको कैथलिक अर्थात् खीष्टका यथार्थ मत कहते हैं।

लूथरने खीष्टके उपदेशोंका लक्षणा द्वारा स्वतन्त्रार्थ करके नया मत चलाया। हमलोगोंके देशमें जिस प्रकार श्रीशङ्कराचार्यने वेदान्तसूत्र तथा उपनिषदोंके गौणार्थ द्वारा मायावादरूप असच्छास्त्र प्रकाश किया है, इंगलैन्डमें लूथरने भी उसी प्रकारसे बाइबल शास्त्रका गौणार्थ करके निवृत्ति मार्गको भ्रममार्ग कहकर प्रवृत्ति-मार्गको श्रेष्ठ बतलाया है। हमारे नये अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त विद्यार्थियोंने ऊपर कहे हुए अंगरेजोंके प्रति श्रद्धान्वित होकर इस प्रवृत्ति-मार्गकोही श्रेष्ठ समझ लिया है। सन्न्यासी तथा वैरागियोंको देखतेही उन्हें दुःख होता है और वे कहते हैं कि अहा! ऐसे क्षमताशील व्यक्ति संसारकी उन्नतिके प्रति अकर्मण्य हो गये हैं। यह यदि विवाहादि करके जमीन जोतते तो उससे पृथ्वीदेवीका बहुत दुःख कम हो जाता।

जो इस प्रकारके विचार रखते हैं, वे मूर्ख हैं, ऐसा हमलोग नहीं कहते, बल्कि उनलोगोंमें बहुतसे अत्यन्त पण्डित तथा विज्ञानविन् महापुरुष हैं। किन्तु रक्तमांससे बना हुआ मनुष्य भ्रमरहित नहीं हो सकता, अतएव उनको भ्रम रहेगा, इसमें सन्देह क्या है? प्रवृत्ति-मार्गके पक्षपाती वस्तुतः बहुतसे पण्डित देखनेमें आते हैं, अतएव इस विषयके विचार करनेके लिये श्री श्रीमद्भागवतमें कहे गये चार प्रमाणोंको अवलम्बन करना उचित है।

"श्रुतिः प्रत्यक्षमैतिह्यमनुमानं चतुष्टयम।"

अखिल शास्त्र, प्रत्यक्ष, इतिहास तथा युक्ति इन चार प्रमाणोंका अवलम्बन करनेसे विवेचना निर्मल होगी। किसी बातके निर्णय करनेके समय किसी एक मनुष्यके पाण्डित्यसे भीत वा भ्रान्त नहीं होना चाहिये। अतः हम स्वाधीनताके साथ विचार करें। परमाराध्य श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुने हमलोगोंको ऐसा कहा है।

स्वाधीनता रत्न हय ईश्वरेर दान।
ताहारे त्यजिते कभु नारे बुद्धिमान्॥

निर्मल युक्ति, शास्त्र, ऐतिह्य तथा प्रत्यक्ष प्रमाणोंके द्वारा जो स्थिर होगा वह हमलोगोंका नितान्त पूज्य होगा। शङ्कराचार्यके समान पण्डित यद्यपि इस सिद्धान्तके विरुद्ध विश्वास करेंगे, तौभी उससे हम विचलित नहीं होंगे। अंगरेज पण्डित ऐसा विश्वास करते हैं इसलिये प्रवृत्ति-मार्ग सर्वश्रेष्ठ है, ऐसा नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अंगरेज भी तो मनुष्य ही हैं। हमारे नवयुवक जो परमसाध्य वस्तुकी प्राप्तिके मार्गमें प्राप्त हुए भ्रमके वशीभूत होकर आर्य-प्रकाशित निवृत्ति-पथसे घृणा करते हैं, यद्भी उनलोगोंके बहुतसे भ्रमोंमेंसे एक प्रधान भ्रम है। अब मुख्य विषयका विचार किया जाय।

दूसरोंके भ्रमको छोड़कर उनके साधुवाक्यको ग्रहण करना हमलोगोंके लिये वाञ्छनीय तथा आचरणीय है। इसके उदाहरणमें श्रीशङ्कराचार्यका मायावाद अनादरणीय होनेपर भी उनका लिखा निम्न-प्रकाशित युक्तवाक्य ग्रहण किया गया है। उन्होंने श्रीगीता भाष्यके प्रारम्भमें लिखा है:—

"द्विविधो हि वेदोक्तो धर्म्मः प्रवृत्ति-लक्षणो निवृत्तिलक्षणश्च।"

धर्म वास्तवमें दो प्रकारका है—प्रवृत्तिमूलक तथा निवृत्तिमूलक सम्पूर्ण शास्त्रोंकी आलोचना

करके देखनेसे यही स्पष्टरूपसे देखनेमें आता है कि प्रवृत्ति-धर्मका फल भोग एवं निवृत्ति-धर्मका फल मुक्ति है। प्रवृत्ति-धर्मावलम्बन करनेसे संसारमें अधिकतर उन्नति होती है, जैसे दुर्गोत्सव, अश्वमेध, अग्निहोत्रादि क्रियाके द्वारा प्रतिष्ठा तथा बहुतसे लोगोंके अनुग्रहका पात्र हो सकता है। प्रवृत्ति-मार्गसे संसारकी बहुत उन्नति होती है।

पण्डितलोग प्रवृत्ति-मार्ग अवलम्बन करके अनेक ग्रन्थोंकी रचना करते, वैज्ञानिक तत्त्वका आविष्कार करते तथा भूगोलके अनेक भागों का वर्णन करते हैं। तरल पदार्थोंके गुणोंका अन्वेषण करके उसके द्वारा मनुष्यको जो कुछ फल प्राप्त हो सके, उसे स्थिर करते हैं। विद्युत्तत्वका (electricity) आविष्कार करके वार्त्तावहादि (telegraphy) शिल्पकी नींव देते हैं। वाष्पतत्व (steam) द्वारा जहाज, हवाईजहाज तथा मोटरगाड़ी इत्यादिको चलाते हैं। वृक्ष लतादिका गुण अनुसन्धान करके अपूर्व औषधि-विद्याका प्रचार करते हैं। संसारोपयोगी अन्य विषयोंके सम्बन्धमें भी वे बहुतसा काम करते हैं। संसार-सम्बन्धी नानाप्रकारकी सभ्यताका नियम स्थापन करते हैं। राजा-प्रजाका सम्बन्ध, अर्थके द्वारा जीवन-यापन करनेका उपाय तथा अन्यान्य प्रकारके लाभको स्थिर करना, ऋण-ग्रहण तथा दानविचारके द्वारा अभावको पूर्ण करना, गृह, ग्राम, नगर तथा दूकान स्थापन द्वारा व्यावहारिक अभावका दूर करना इत्यादि विषय निश्चित हुए हैं। विवाहादि संस्कारोंके द्वारा प्रजा-वृद्धि एवं न्यायपूर्वक स्त्रीसम्भोग द्वारा देह तथा बलकी रक्षा करते हैं। शिल्पकारलोग प्रवृत्तिके अधीन होकर कितने कितने अलङ्कार, वस्त्र, काष्ठासन, दीपादि, अपर द्रव्याधार एवं-खाट, गृह, पलङ्ग प्रभृति बनाकर प्रवृत्तिशाली लोगोंके सुखको बढ़ाते हैं। इन सब द्रव्योंके प्रति तथा विशेषतः गृह-परिवारादि एवं यशके प्रति प्रवृत्त पुरुषोंको इतना प्रेम-उपजता है कि वे अन्यान्य आक्रमणकारी पुरुषोंके साथ युद्ध द्वारा रक्त-पातादि करते रहते हैं। यह सब न्यायानुगत प्रवृत्तियां हैं, किन्तु इन सबोंके अतिरिक्त अन्याय प्रवृत्तियां भी बहुतसी हैं। इन्द्रियोंके वश प्रवृत्त पुरुष स्त्रियोंमें अन्यायपूर्ण आसक्ति तथा पान-भोजनादिसे गाढ़-प्रेम इत्यादि क्रियाओंके द्वारा जीवन-यापन करते हैं। प्रवृत्त-पुरुष केवल इस संसारमें आबद्ध रहते हैं, ऐसी बात नहीं है, वे इन्द्रपुरी प्रभृति नानाप्रकारसे पारलौकिक संसारके सुखकी आशाकर उन सुखोंके देनेवाले देवताओंकी उपासना करते हैं। अश्वमेधादि यज्ञ करके वे इन्द्रपुरीकी अप्सराओंके सहित इन्द्रिय-चरितार्थ करके सुखी होनेकी इच्छा करते है। वास्तवमें प्रवृत्तिशील लोगोंकी आशाका अन्त नहीं है। पृथ्वीका राजत्व, स्वर्गका राज्य, ब्रह्मपद, शिवत्व प्रभृति बहुतसे पदोंकी वाञ्छा करते हैं। इन सब विषयोंके बहुतसे उदाहरण शास्त्रोंमें तथा इस संसारमें पाये जाते हैं किन्तु हमलोगोंने उनसबोंका यहांपर कुछ भी संग्रह नहीं किया, कारण पाठकगण उनसब बातोंको जानते हैं, यही हमारा विश्वास है।

प्रवृत्ति-पथ इन्द्रिय गोचर है, एवं उस पथके अवलम्बन करनेवालोंको प्रत्यक्ष फल मिलता है इसमें सन्देह नहीं। मनुष्यजातिको विचार शक्ति रहती है, अतएव उनलोगोंके सम्मुख प्रवृत्ति-मार्गका फल प्रकाशित होगा, इसमें कहनेकी कोई बात नहीं है। पशुओंकी बुद्धि आबद्ध रहनेपर भी वे भी प्रवृत्तिके फलको जानते हैं। 'त्रिभर' नामक पशुका

गृह-निर्माण एवं बाबुइके घोसलेका निर्माण केवल प्रवृत्तिका फल है।

प्रवृत्ति-पथमें मनष्यको बहुत सुख मिलता है, इसमें सन्देहकी कोई बात नहीं है। तोतली-बोली बोलनेवाले बालक-बालिकाओंको गोदमें लेना, घृत अन्नादिका रसास्वादन, स्त्रियोंके साथ नाचना एवं दूधके फेनके समान शय्यापर शयन करना, रेलगाड़ी मोटर इत्यादिपर चढ़कर दूर देशमें भ्रमण करना अतिशय आनन्दकर हैं, इसमें क्या संदेह है। जीवोंपर दया करके परमेश्वरने संसाररूपी धर्मशालाको सुसज्जित किया है, अवश्य यही विश्वास होना है, कारण जिह्वाके गठनके साथ उद्भिद पदार्थका जो कोमल सम्बन्ध, कर्णछिद्रके साथ गीतरागादिका जो प्रिय अन्वय, चक्षुके साथ दृश्य पदार्थ प्रकाशादिका जो सौहार्द्र है, वह परमेश्वरकी अचिन्त्यशक्तिकी क्रियाशक्तिका फल है, यह कौन स्वीकार नहीं करेगा।

संसारमें जितने प्रकारके सुख हैं वे सभी 'प्रवृत्ति-सुख' हैं। प्रवृत्ति-सुखके वशीभूत पुरुष दैहिक, मानसिक तथा सामाजिक उन्नतिके लिये सर्वदा व्यस्त रहते हैं। यह प्रवृत्ति-सुख यदि नहीं रहता, तो सांसारिक अवस्थामें मनुष्यकी बहुत दुर्दशा होती। कहांसे नगर, कहांसे रेलकी सड़क, कहांसे नौका, कहांसे दूकान, कहांसे मन्दिरादि देखनेमें आते। मानवजाति पशुसदृश बन-बनमें भ्रमण करते करते नष्ट हो जाती। पृथ्वीका सौन्दर्य पृथ्वीमें ही अदृष्ट भावसे छिपा रहता।

क्रमशः

श्रीभक्तिसिद्धान्तवाणी

जिनलोगोंकी सेवा करनेके लिये स्वयं-भगवान् भी व्यस्त रहते हैं, उन्हीं वैष्णव लोगोंकी सेवा करना अज्ञ प्राकृत लोग नहीं चाहते। हमलोगोंका प्रधान कर्त्तव्य है—वैष्णवोंकी सेवा करना। बहुतसे प्रचारक भगवानकी ही सेवा करनेको कहते हैं, किन्तु श्रीगौरसुन्दरने भक्त-सेवा को सर्वोत्तम बतलाया है। जो सजीव भगवद्विग्रह हैं—जिनसे भगवद्विग्रहकी जीती जागती कथा प्रकाशित होती है, जिनसे प्रश्नों के उत्तर मिलते हैं, और सेवा किसको कहते हैं जिनसे यह जाना जाता है, उन्हीं भगवद्भक्तों की सेवा भगवान्की अर्चामूर्त्तिकी सेवासे भी श्रेष्ठ है। अर्चामूर्त्तिकी सेवा भी भगवद्भक्तोंकी वाणीश्रवण किये विना पूर्णरूपसे नहीं हो सकती। भगवद्भक्तों की पूजासे ही भगवान्की पूजाकी पूर्णता साधित होती है।

कोई कोई कहते हैं कि चुपचाप रहना ही अच्छा है; चुपचाप नहीं रहनेसे परचर्चा हो जायगी। किन्तु परोपकार करनेकी वृत्तिकी अपेक्षा प्रतिष्ठा-प्राप्तिकी प्रवृत्ति ही जिनलोगोंकी प्रबल है, वे ही असत्यके प्रतिवादको 'परचर्चा' कहा करते हैं। जगत्का उपकार यदि कोई न करे, तो भगवान् क्यों उसका उपकार करेंगे? हमलोगोंका एकमात्र कर्त्तव्य है दुःसङ्ग परित्याग करना; दुःसङ्ग परित्यागका नाम ही तीर्थवास है। सत्यकी जहाँ प्रतिष्ठा है वहीं तीर्थ है और वह सर्वत्र ही सम्भव है। भजनमय गृह भी तीर्थ हो सकता है; किन्तु जहाँ कपटता है और कपटताकी आड़में जहां अमङ्गल वस्तुके ग्रहण करनेकी चेष्टा है, वह तीर्थ नहीं। यदि कोई यह कहे कि कलिकाल ही क्यों न हो पर हमारे ठीक रहनेसे ही सब ठीक हो जायगा तो इसका

उत्तर यह है कि जिन इन्द्रियोंका हमलोगोंने आश्रय लिया है, वेही चक्षु, कर्ण, नाक, जिह्वा, त्वक् प्रभृति इन्द्रियाँ हमलोगोंके प्रति परम शत्रुता और विश्वासघात कर रही हैं। तिसपर भक्तिमार्ग नाना-प्रकारके मनोधर्ममय मतवादरूप कण्टकोंसे आकीर्ण है। अतः मनुष्य इन्द्रियोंके सहारे असल मार्ग अवलम्बन करनेमें असमर्थ है। इसलिये श्रीचैतन्यचन्द्रके निज जनोंकी शरणमें जानेके सिवा और कोई उपाय नहीं।

यथार्थमें भोगी एकमात्र भगवान हैं- वेही भोगपुरन्दर हैं। जीवके स्वरूपधर्ममें भोगवृत्ति नहीं है। जीव भोगपुरन्दरके भोगका उपकरणमात्र है। निष्कपट होकर हरिसेवा करनेके समय यदि कोई भगवत्सेवकको भोगी वा त्यागी देखे तो देखे; हरिसेवक त्यागी भी नहीं हैं और भोगी भी नहीं हैं; किन्तु निष्कपट सेवक हैं।

महाभागवत निष्किञ्चन साधुका भी अभाव है और हमलोगोंकी हरिकथा सुननेकी प्रवृत्तिकाभी अभाव है। हमलोग अन्य विषयोंके सुननेके लिये खूब उपाय करते हैं। जहाँ शुश्रूषु और महत्‌का सम्मेलन है, वहाँ हरिकीर्त्तन होता है। वर्तमान समयमें निष्कपट होकर दूसरेकी भलाई करनेवाले बहुत ही कम हैं। भगवान्‌की कथाकी आलोचना करनेका अभिनय कर भी अनेकवार अवास्तव उद्देश्यसिद्धिकी यथेष्ठ चेष्टा की जाती है किन्तु इसके भीतर दूसरा मतलब रहता है। जिनलोगोंमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष अथवा अधर्म, अनर्थ, कामकी अतृप्ति एवं संसारप्रवृत्ति वर्तमान है, जगत्-में उनलोगोंकी ही संख्या अधिक है। वे जो हरिकथा सुनानेका अभिनय करते हैं, वह भी अन्यान्य अवास्तव उद्देश्यसिद्धिके लिये ही। इसलिये कपटी लोगोंके मुखसे कीर्त्तन सुननेसे कोई सुविधा नहीं होगी। हमलोग यदि सचमुचही अपना मङ्गल करना चाहते हों, और सचमुच दूसरोंके मङ्गल करनेकी इच्छा रखतेहों तो भगवान निश्चय ही हमपर दया करेंगे। दूसरेको फाँकी देनेसे स्वयं भी फाँकीमें पड़ना पड़ेगा।

भगवानके चरणमें शरण ग्रहण किये विना स्वाधीनता प्राप्त करनेका और कोई उपाय नहीं। गुरुकी शरणमें अधोक्षज पूर्ण पुरुषके आधीन स्वतन्त्रताका सद्व्यवहार ही पूर्ण स्वाधीनता है। मनोयोग पूर्वक हरिकथा श्रवण करनेके द्वारा ही उत्तम साधुसङ्ग होता है। साधुलोगोंका उत्तम सङ्ग मिलनेसे भगवानके वीर्य और जगत्‌के दौर्बल्यकी कथा हमलोग समझ सकते हैं। हमलोग तव साधुलोगोंके कथनानुसार सेवा करते करते कृष्णसेवामें सुदृढ़ विश्वास, आसक्ति और प्रीति प्राप्त कर सकते हैं। कृष्णसेवामें प्रीति ही निखिल जीवका चरम प्रयोजन है।

कृष्ण भजनीय वस्तु हैं, जीव भजनकारी वस्तु है, दोनोंके बीच वाली क्रिया 'भजन' है। सम्बन्ध जाननेके बाद क्रिया होती है; जैसे घड़ीसे देखकर समय जाननेकेबाद उस समय हमारा क्या कर्तव्य है यह समझमें आता है। तब उस समयका आवश्यक कार्य किया जाता है। ब्रह्म जिज्ञासाके बाद, ब्रह्म निरूपित होनेपर—ब्रह्मके साथ अपना सम्बन्ध ज्ञान होता है, तब उसके प्रति अपना क्या कर्तव्य है यह जानकर मनुष्य उसका आचरण करता है। जो भ्रान्त विचार वाला है, उसे ही "मैं कर्त्ताहूं"—यह अभिमान रहता है; वह विमूढ़ है। तुच्छता रूपी भगवद्दास्य ही हमलोगोंका वाञ्छनीय है। तृणसे भी छोटा बनने पर कर्तृत्वाभिमान बिलकुल

नहीं रहेगा। कर्म और कुछ नहीं है—केवल दूसरों की चीजमें अपना कर्त्ताभिमान है।

भक्ति एक क्रिया है। निष्कपट हरि-भजन-परायण पुरुष या भगवद्भक्त प्रसाद सेवा करते हैं—भोग नहीं करते। भात दाल भोगी खाता है। भात दाल खाना कर्म है। भगवद्भक्तका प्रसाद-सम्मान बाह्य दृष्टिसे कर्मके समान देख पड़ने पर भी उसका देह-प्राण और आत्मा के भगवत्सेवाके लिये समर्पित होनेके कारण 'कर्म' नहीं 'सेवा' है। मनमाना धर्म माननेवाले भजनीय वस्तु और भजनकारीके स्वरूप निर्णयमें असमर्थ होकर भक्ति और कर्मको एक समझते हैं।

"आदौ श्रद्धा"

(गतांक से आगे)

जब किसीके प्रति हमलोगोंकी श्रद्धा कम रहती है, तो उस समय यदि वह हमलोगोंकी तरफ दृष्टि भी करे तो हमें मालूम पड़ता है कि वह निश्चयही अपने किसी स्वार्थ साधनके लिये मेरे प्रति दृष्टि निक्षेप कर रहा है। अप्राकृत गुरुदेव जिस समय अपने शिष्यको निर्जन घरमें मन्त्रोपदेश प्रदान करते हैं, उस समय श्रद्धाहीन आध्यक्षिक उसको दूसरी दृष्टिसे देखता है और नानाप्रकारकी समालोचना करता है। जिस समय महाप्रभु नवद्वीपमें श्रीवास मन्दिरमें द्वार बन्दकर भक्तोंके साथ कृष्णसङ्कीर्त्तन करते थे, उस समय नवद्वीपके श्रद्धाहीन व्यक्ति कितने प्रकारकी समालोचना किया करते थे। साधु यदि योषिद् दर्शन न कर पुरुष वा स्त्री-रूपधारी किसीके निकट हरिकथा कीर्त्तन करते हैं, उस समय श्रद्धाहीन व्यक्ति कितने प्रकारकी कल्पना वा समालोचना करता है। श्रद्धाहीन व्यक्ति साधुकी खाद्यवस्तु और गाड़ीके सम्बन्धमें भी कितनी समालोचना करता है। अधिक क्या स्वयं महाप्रभुके सम्बन्धमें भी उसी प्रकार कितनी समालोचनायें हुई हैं! नवद्वीपवासी पाखण्डी, रामचन्द्रपुरी, अमोघ प्रभृति आध्यक्षिकगणने पतितपावनशिरोमणिगणोंके आराध्य श्रीगौरपादपद्ममें भी कितने ही कलङ्कोंका आरोप किया है और अभी भी कर रहे हैं। महापुरुष क्यों वैद्युतिक पंखा की हवा भोग करेंगे, प्रथमश्रेणीके वाष्पीय गाड़ी, वैद्युतिक गाड़ीमें चढ़ेंगे?—इस प्रकारकी कितनी ही बातें श्रद्धाहीन आध्यक्षिक व्यक्तियोंके मुखसे सर्वदा सुनी जाती है। श्रद्धाहीन व्यक्तिगण परदुःखदुःखी साधुओंके भगवद्भक्ति-प्रचारको भी उनलोगोंका प्रतिष्ठा-कामनाका वाहन समझते हैं। साधुके प्रति श्रद्धा नहीं रहनेसे साधुके हाथ उठानेपर भी मालूम होगा कि वह दूसरेका धन अपहरण करनेके लिये ऐसा कर रहा है! साधुके नैष्ठिक ब्रह्मचारियों का आचरण करनेपर भी समझमें आयेगा, कि उसने छिपकर व्यभिचार करनेके लिये ऐसा छद्मवेश ग्रहण किया है। साधुसजातीयाशयस्निग्ध (एक चितवृत्तिविशिष्ट) व्यक्तियोंके साथ एकान्तमें निर्मत्सर भागवतधर्मकी कथा कीर्त्तन करनेसे भी मालूम देगा कि साधु विश्वनिन्दा वा नानाप्रकारका षड़यन्त्र कर रहा है। साधुके कनक (अर्थ) के द्वारा माधवकी सेवा करनेसे मालूम होगा, कि वे अपना प्रभुत्व विस्तार कर रहा है। साधुके किसी कामनीको कृष्णसेवामें नियुक्त करानेसे मालूम पड़ेगा कि, वह योषित्सङ्ग कर रहा है। श्रद्धाकी दृष्टिसे जिनलोगोंको भुवनमङ्गल महापुरुष समझा जाता है, और

जिनलोगोंकी प्रत्येक क्रिया-मुद्रासे मङ्गलमयी उपलब्धि होती है, अश्रद्धाकी दृष्टिसे उनलोगोंको पाखण्डी और उनलोगोंके कार्यको भांड़पना (कपटता) कहा जाता है।

इसीलिये महाजनोंने कहा है,—जो अश्रद्दधान और संशयात्मा हैं, उनलोगोंको कभी महाप्रसाद, गोविन्द, नामब्रह्म और वैष्णव—इन अप्राकृत चार वस्तुओंका दर्शन नहीं होता। वे इन अप्राकृत चार वस्तुओं में भी दोष है, ऐसा हृदयसे विश्वास करते हैं। वे आध्यक्षिकताके द्वारा वञ्चित होकर इस प्रकार श्रद्धाहीन और संशयपूर्ण हो जाते हैं कि साधु-के सभी कार्य ही उनलोगोंके निकट सन्देह और समालोचनाकी वस्तु हो जाते हैं। इसप्रकार मक्षिकावृत्ति अनुशीलन करते करते ही ये नरक की ओर प्रधावित होते रहते हैं। इसीलिये सभी महाजन, सभी शास्त्र उच्चस्वरसे कहते हैं,—"श्रद्धा-युक्त हो"—"अश्रद्दधानकी गति नहीं।" सरलता रहनेसे अन्धविश्वासीभी किसी न किसी दिन सत्य पथकी ओर फिर प्रत्यावर्त्तनकर (लौट) सकता है, किन्तु कपट, श्रद्धाहीन, संशयात्मा कभी भी सत्य-पथ पर नहीं आ सकता है। उसका विनाश अवश्य-म्भावी है यह स्वयं भगवान्‌की वाणी है। यह वाणी मिथ्या नहीं हो सकती—

"अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति।"
गी: ४।४०

इसीलिये ठाकुर भक्तिविनोदने पुनः पुनः कहा है,—

"सकल छाड़िया भाई, श्रद्धादेवीर गुणगाई।"

जिससे लोग "आदौ श्रद्धा"—इस कथाको कभी न भूलें। जब श्रद्धा होगी तब साधुसङ्ग होगा। यदि श्रद्धा ही नहीं हुई तो किस प्रकार साधुसङ्ग होगा? फिर किस प्रकार भक्ति प्राप्त होगी? अधिक क्या कहा जाय, हमलोगोंका कर्माधिकार ही नहीं जायगा। अश्रद्धालु व्यक्ति अन्याभिलाषवीर, कर्म्मवीर, ज्ञानवीर, योगवीर हो सकते हैं,—सम्पूर्ण जगत्‌को अपने व्यक्तित्व और प्रतिभाके द्वारा विमोहित और स्तम्भित कर सकते हैं, किन्तु वे कर्म्माधिकारसे मुक्त नहीं हो सकते। महाजनगण उनको 'भक्त' नहीं कहते। आध्यक्षिकके सौ-सौ अकाट्य समालोचनाओं वा सौ सौ प्रत्यक्ष प्रमाणोंके द्वारा भी महाप्रसादका महापावनत्व, श्रीअर्चावतार-का करुणामयत्व, श्रीनामब्रह्मका अप्राकृतत्व और वैष्णवका पतितपावनत्व विनष्ट नहीं होगा।

श्रद्धाहीन व्यक्ति जगत्‌के कर्मी, ज्ञानी अन्याभि-लाषी आध्यक्षिक लोगोंको मिलाकर उनलोगोंका नेतृत्व कर सकेंगे, किन्तु भक्तिदेवीकी विन्दुमात्र भी भी कृपा नहीं पा सकेंगे। अतएव—"आदौ श्रद्धा"। गङ्गाजलमें बुद्बुद् वा फेन-पङ्क देखकर श्रद्धाहीन होनेसे पतितपावनी गङ्गाका दर्शन नहीं होगा। द्रवब्रह्मकी कृपा प्राप्त नहीं होगी। वैष्णवोंका वपुगत दोषादि दर्शनकर उनके प्रति श्रद्धाहीन होनेसे कभी भी साधुसङ्ग नहीं होगा।

हमलोगोंने जिनलोगोंको नहीं देखा, पर केवल जिनलोगोंकी कथामात्र ग्रन्थादिमें पाठ किया है, ऐसे व्यक्तियोंको हमलोगोंने बहुतवार महापुरुष समझ लिया है। हम जिन महापुरुषोंको सामने देखते हैं उन्हेंही कुछ आदमियोंके पल्लेमें पड़कर आंशिकरूपसे महापुरुष समझने लगते हैं पर उनलोगों-के प्रति सुदृढ़ श्रद्धा नहीं हो सकती। श्रद्धाहीन होनेसे कितने प्रकारकी पाखण्डता का रक्तबीज दैत्य, प्रति मुहूर्त्तमें हृदयमें जन्म ग्रहणकर प्रत्येक क्षणमें अश्रद्धालुके सद्वृत्तियोंको ध्वंस कर देता है, श्रद्धाकी

कर्मोके कारण ही हमलोग गुरुवैष्णवके पल्लादार हो जाते हैं ! हमलोग अपनेको वैष्णवसे भी 'अधिक समझते हैं' । ऐसा मनमें समझते हैं कि हम गुरुवैष्णवकी चालाकी धर सकते हैं, अतएव साधु सावधान ! श्रीहरि गुरुवैष्णवके पाद-पद्ममें यही प्रार्थना है कि हम श्रद्धादेवीकी कृपासे वञ्चित नहीं हों ।

साधुका अनुसन्धान

गत मासके भागवतमें 'श्रद्धाके' सम्बन्धमें आलोचना हुई है । श्रील रूपगोस्वामी प्रभुने प्रेम प्राप्त करनेके लिये जो क्रम निर्णय किया है, उसमें 'श्रद्धाके' बाद ही 'साधुसङ्ग' की कथा है । सुकृतिशाली श्रद्धावान् जीव ही प्रकृत साधुके सङ्गके लिये उत्कण्ठित और यत्नवान् होते हैं ।

साधु-सङ्ग करनेके लिये प्रकृत साधुका अनुसन्धान करना कर्त्तव्य है । असाधुको साधु समझकर उसका सङ्ग करनेसे कभी भी प्रकृत मङ्गल प्राप्त नहीं होगा ।

प्रकृत साधुका अनुसन्धान यत्नके साथ करना कर्त्तव्य है; किन्तु एक श्रेणीके लोगोंका ऐसा स्वभाव है कि वे सत्यके अनुसन्धान करनेकी आड़में ज्ञान वा अज्ञानवश आध्यक्षिकताको ही सत्यानुसन्धान समझते हैं । यह भोग और त्याग-पिपासाकी एक प्रकारकी प्रच्छन्न नास्तिकता वा कपटता है । प्रच्छन्न आध्यक्षिकोंका यह स्वभाव है कि वे सत्यानुसन्धान करनेके बहाने केवल नये नये धर्ममत, नये नये धर्म-प्रतिष्ठान और साधुके नये नये दोषोंका अनुसन्धान करते फिरते हैं । इष्टवस्तुके आवाहन और विसर्जन ग्रहण और त्यागके चक्करमें अपनेको गिराकर उसको ही सत्यानुसन्धित्सा कहकर कल्पित करते हैं । सत्यानुसन्धित्सुका अभिनयकर आज वे जिस मत, पथ वा व्यक्तिविशेषको अनेक युक्तियोंके साथ एकमात्र वास्तव सत्य वा एकमात्र साधु, गुरु, वैष्णव वा इष्टदेव कहकर आवाहन करते, जिसके लिये दूसरोंके साथ कितना न संग्राम करते, कल व्यतीत होने न होने ही उसी एकमात्र वास्तव सत्यको असत्य कहकर प्रतिपादन वा अद्वितीय साधु-गुरु-वैष्णवको बहुत बुरा असाधु और वञ्चक कहकर सर्वदाके लिये विसर्जन करनेके लिये उद्यत होते हैं । इस प्रकार आवाहन और विसर्जन श्रीविग्रह गढ़ने और तोड़नेका स्वभाव निर्विशेषवादियोंके चरित्रमें सर्वत्र ही देखा जाता है ।

ये जब अपने पूर्वस्वीकृत 'वास्तव' सत्यको दूसरे मुहूर्त्तमें 'अवास्तव' कहकर प्रचार करते हैं, उस समय वे कहते हैं कि वे सत्यका खोज कर रहे हैं, इसलिये इस प्रकार आवाहन और विसर्जनके मध्यमें चलते चलते ही किसी न किसी दिन वास्तव सत्य प्राप्त कर ही लेंगे । आरोहवादी आध्यक्षिक सम्प्रदायकी ऐसी युक्ति भगवद्भक्तियाजनके अभिनय करनेवाले प्रच्छन्न निर्विशेषवादियोंके आचरणमें देखा जाता है ।

एक विख्यात धर्मनेता पहले वैष्णव धर्ममें विशेष अनुरागी थे । वैष्णवधर्म याजन करते करते उनकी ब्राह्म-धर्मके प्रति आसक्ति हुई । वे उपवीतादि परित्यागकर श्रीमूर्त्तिपूजा और ब्रह्मण्यधर्मके विरुद्ध प्रचारक हो पड़े । ब्राह्ममत ग्रहण करनेके पहले उनके दो अपने सम्बन्धी व्यक्ति एक ब्राह्म-नेताके पास जाते थे ; उन्होंने उसमें पूर्णरूपसे वाधा प्रदान की, यहाँ तक कि इसके

लिये वे अपने आत्मीय स्वजनको भी परित्याग करनेमें कुण्ठित नहीं हुए; किन्तु उसी व्यक्तिने फिर अपने ही निन्दित मतको प्रकृत सत्य समझकर ग्रहण और वैष्णवधर्मके विरुद्ध प्रचार आरम्भ किया। इसके बाद उस ब्राह्ममतको परित्यागकर उन्होंने एक किसी योगीको प्रकृत (सच्चा) साधु समझा एवं योगमिश्रित मतवाद अवलम्बनकर बहु शिष्य करने लगे।

एक दूसरे विश्वविख्यात धर्म-नेता पहले शिव भक्त थे। शिवरात्रि-दिवस दिन भर उपवास रहकर जब रात्रिके दूसरे प्रहरमें किसी शिवमन्दिरमें शिव पूजा करनेके लिये गये तो देखा कि कितने चूहे शिव-लिङ्गके सामने ही दिये हुए नैवद्यको खा रहे हैं और शिवलिङ्गके ऊपर अनायास घूम रहे हैं, इसको देखते ही उनकी शिवभक्ति जड़से नष्ट हो गयी! वे यह प्रचार करने लगे कि यदि शिव सर्वशक्तिमान ईश्वर हैं, तो चूहे उनके ऊपर क्यों विचरण कर रहे हैं? इसके बाद वे सन्यासी होकर भगवद्विग्रह और श्रीमद्भागवतका दोष अनुसन्धानको ही 'सत्यानुसन्धान' कहते हुए संसारमें प्रचारकर एक विराट् आध्यात्मिक-सम्प्रदाय रचना कर गये। इस जातिके सैकड़ों व्यक्ति सत्यानुसन्धानके बहाने आध्यात्मिक और हरिगुरु-वैष्णवापराधी हो गये हैं और हो रहे हैं!

प्रायः बीस वर्षों की बात है कि श्रीगौड़ीयमठका आश्रित होनेका अभिनय कर कोई एक सज्जन प्रवल सत्यानुसन्धित्साका अभिनेता होकर जाति-गोस्वामी और वेतन लेनेवाले प्रचारकोंके विरुद्ध प्रचारक हो गये। वे अपने जीवनमें सभी धर्म-मत और सभी सम्प्रदायके नेताओंके साधुत्व और गुरुत्वका आस्वादनकर अन्तमें वैष्णव-धर्मके स्तावक हुए। श्रीश्रीविश्व-वैष्णवराजसभाके प्रचारकोंकी कथा आध्यात्मिक कर्णोंसे श्रवण कर वे प्रकृत भक्ति और भक्तका स्वरूप न समझकर उसके सुविख्यात महाजनके निन्दक हो गये और उनका असद्गुरु परित्याग एवं सद्गुरु और सत्सङ्ग प्राप्त हुआ है, यह बड़े बड़े सभासमितियोंमें प्रवन्धमें और निवन्धमें प्रचार करते रहे। वैष्णवधर्म और वैष्णव सद्गुरुके सुखके आस्वादनका "शौख" थोड़े ही दिनों में मिट जानेसे उन्होंने श्रीमद्भागवत और श्रीचैतन्यचरितामृतसे भी ख्रीष्टीय धर्मपुस्तकमें अधिकतर सौन्दर्य देखा! महाप्रभुसे भी यिशुख्रीष्टका अधिक माहात्म्य उपलब्धि किया! वैष्णव सद्गुरुके आचार और विचारसे उनका इन्द्रियतृप्तिविधान नहीं होनेसे, वे मनोधर्मके आवाहन और विसर्जनके चक्करमें पतित होते हैं। जिज्ञासा करनेसे वे अब भी उत्तर प्रदान करते हैं कि "वे सत्यानुसन्धित्सु" हैं, यदि भूलसे किसी असत्यको ही सत्य समझकर ग्रहण किया है, तो उसीको लेकर वे क्यों चिरकाल बैठे रहेंगे? प्रच्छन्न पञ्चोपासकगण इसी प्रकार मनोधर्मके आवाहन और विसर्जनरूप आध्यात्मिकताको ही सत्यानुसन्धित्सा समझकर नित्य नये साधुगुरुकी प्रतिमा गढ़ते हैं और दूसरे मुहूर्त्तमें ही उसको तोड़ते हैं।

पुराणमें इस जातिके प्रवृत्तिविशिष्ट व्यक्तित्वके अनेक उदाहरण हैं। वाण राजाने शिवका एक सर्वश्रेष्ठ स्तावक कहकर अपनेको विख्यात किया था; किन्तु महादेवके निकटसे प्राप्त अस्त्र से ही अर्थात् सहस्र वाहुद्वारा ही महादेवके साथ युद्ध आरम्भ किया था।

वृक भी उसी प्रकार शिवके स्तावक थे। बहुत तपस्याकर वृकने वैष्णवराज शिवसे यह वर प्राप्त

किया कि वे जिसके मस्तकपर अपना हाथ रखेंगे, उस व्यक्तिकी उसी मुहूर्तमें मृत्यु हो जायगी। वृक ऐसा वर प्राप्तकर अपने इष्टदेवके वाक्यकी सत्यता-का प्रमाण करनेके लिये शिवके मस्तकपर ही हाथ रखनेके लिये उद्यत हुए। जो आध्यक्षिकताको ही सत्यानुसन्धित्सा समझते हैं, उनलोगोंका विचार भी ऐसा ही है। जब कोई प्रकृत साधु 'कृष्णभक्त और योषित्सङ्गीके' विरुद्ध प्रचार करते हैं, तो उस समय आध्यक्षिक उसी साधुके मस्तकपर हाथ रखकर उसकी परीक्षा करनेके लिये उद्यत होता है! महाप्रभुने "भाल ना खाइबे, आर भाल न परिबे" उपदेश दिया है, सुतरां रामचन्द्रपुरी वही अस्त्र महाप्रभुके अङ्गमें निक्षेप करनेके लिये कृत सङ्कल्प हुए। रूप-कविराज वृकके समान श्रीनिवासाचार्य प्रभुके मस्तकपर हाथ रखकर उनके साधुत्व की परीक्षा करनेके लिये उद्यत हुआ था!

इस प्रकारकी प्रवृत्ति और चित्तवृत्तिके द्वारा परिचालित होनेसे कभी भी साधुका सङ्ग प्राप्त नहीं होता। संशयात्मा होकर गङ्गाके किनारे जल प्राप्त करनेकी आशामें नित्य नया असमाप्त कूप खननेसे परिश्रम ही केवल लाभ होता है, अर्थात् न तो गङ्गा-का जल ही प्राप्त होता और न किसी एक कूपको धैर्य पूर्वक पूर्णरूपसे खोदकर उससे जल प्राप्त किया जाता; इस प्रकार गङ्गाके किनारे रहकर भी उस आध्यक्षिक व्यक्तिको जलके नहीं मिलनेके कारण प्राण त्याग करना पड़ता है। इस प्रकार आत्महत्या ही हरिगुरुवैष्णवके चिद्विलासके अस्वीकार करनेवाले निर्विशेषवादियोंको प्राप्त होता है।

श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने जैवधर्ममें कहा है,—

"साधु सर्वदा संसारमें हैं। केवल असाधुगण उनलोगोंको नहीं पहचान सकते इसीलिये साधुसङ्ग दुर्लभ होता है।"

(जैवधर्म ७ म अध्याय)

अन्यत्र श्रील ठाकुर भक्तिविनोदने कहा है:—

"जीवनमें बहुत साधुओंके साथ साक्षात्कार होता है; किन्तु हमलोगोंके कपट व्यवहारसे हमलो-गोंको साधुसङ्गका कोई फल प्राप्त नहीं होता।"

(सज्जनतोषणी १५।२)

साधुके अनुसन्धान करनेके समय हमलोग मुख्य बात भूल जाते हैं। हमलोग समझते हैं कि हमलोग अपनी विद्या, बुद्धि, सुनीति, विचारशक्ति, प्रभृति परिमाप-यन्त्रके (तौलनेके यन्त्रके) द्वारा साधुको पहचान सकते हैं! हमलोगोंके हाथमें कसौटीपत्थर है, उससे साधुरूप स्वर्ण और असाधु-रूप 'नकली सोने' को पहचान लेंगे। किन्तु विचारनेकी बात है कि हमलोगोंके हाथोंमें यदि 'कसौटी-पत्थर' हो तो हम हरक्षणमें तोड़ने और गढ़नेके दास क्यों बनते हैं? हमारे सिद्धान्तकी स्थिरता क्यों नहीं है? हमलोग विभ्रान्त (अस्थिरचित) और वञ्चित क्यों होते हैं? जिनके निकट 'कसौटी पत्थर' है, वे तोड़ने और गढ़नेके अर्थात् मनोधर्मके दास नहीं हैं, उनके सिद्धान्तमें अस्थिरता नहीं है, हृदयमें संशय नहीं है, चित्तमें दोलायमान वृत्ति (करूँ कि न करूँ) नहीं है, निष्ठाके मध्यमें यवनिका-पात नहीं है; उनके पतिव्रता-धर्मके मध्यमें व्यभिचा-रिणीकी चित्तवृत्ति नहीं है, उनको कोई असाधु साधु कहकर वञ्चना नहीं कर सकता, उनके निकट कोई प्रकृत साधु आत्मगोपन भी नहीं कर सकता।

साधुकी कृपासे ही साधुको पहचाना जाता है, साधुकी दी हुई आँखसे साधुको देखा जाता है, साधुके निकटसे प्राप्त दिव्यज्ञानके द्वारा ही साधुकी

क्रिया मुद्रा उपलब्धि की जाती है—इसी प्रकारसे प्रकारसे प्रकृत साधुका अनुसन्धान होता है।

श्रीगौरपार्षद जगदानन्दने गीतमें कहा है :—

"साधु पावा कष्ट बड़ जीवेर जानिया।
साधु-गुरुरूपे कृष्ण आइला नदिया॥"

किन्तु श्रीरामचन्द्रपुरीकी आँखने गौरसुन्दरका साधुत्व देखनेके बदले जिह्वा-लाम्पट्य दर्शनकी, नवद्वीपके पाखण्डी हिन्दू महाप्रभुमें साधुत्व दर्शन करनेके बदले नाना प्रकारका असदाचार और दुर्नीति देखा करते थे। अमोघने महाप्रभुकी साधुता दर्शन करनेके बदले पेटूपना देखा किया।

प्रद्युम्न मिश्रने आध्यक्षिक आँखसे सबसे श्रेष्ठ विद्वत्सन्यासी राय रामानन्दमें योषित्सङ्ग (!) दर्शन किया है। श्रील गदाधर पण्डितने लोक शिक्षाके लिये पुण्डरीक विद्यानिधिकी साधुता देखनेके बदले विषय और विलास दर्शन करनेका अभिनय किया है। किन्तु उनलोगोंके परवर्त्ती आचरणसे यही शिक्षा मिलती है कि साधुकी कृपासे ही साधुका सन्धान मिलता है। साधुकी कृपासे साधुका अनुसन्धान न कर अन्य चेष्टा द्वारा साधुका अनुसन्धान करनेसे अपराध और निर्विशेषवादमात्र प्राप्त होगा।

निर्विशेषवादीके समान अभागा और कोई नहीं है। वल्कि पापी सविशेषवादी एक प्रकारसे अच्छे हैं, किन्तु तपस्वी निर्विशेषवादी किसी प्रकारसे अच्छे नहीं। उनका सङ्ग सबसे बड़ा दुःसङ्ग है। श्रीचैतन्यभागवत-रचयिताने यह बार-बार कहा है। धर्म-जगत्में पापने जितनी नुकसानी नहीं की है, निर्विशेषवादने उसकी अपेक्षा करोड़गुणा अधिक नुकसान पहुँचाया है। चार्वाकका मत धर्ममतके नामसे बहुत कम गृहीत हुआ है। किन्तु सिद्धार्थका मत, महावीर, पारशनाथ प्रभृतिका मत, अष्टावक्र, शक्ति प्रभृतिका मत, शंकराचार्यका मत, पृथ्वीके सैकड़ों तथाकथित धार्मिक लोगोंने श्लाघ्य (धन्यवाद देने योग्य) धर्म मत समझकर ग्रहण किया है। इसका कारण यह है कि उनलोगोंकी सुनीति, त्याग-तपस्याके ऐश्वर्यसे जीवकी आँख झप गयी। एकमात्र गौरभक्तोंने ही इस प्रकार आध्यक्षिकताके प्रति घृणा प्रदर्शनकर चिद्विलासका जयगान किया है।

साधु और गुरुका अनुसन्धान करनेके समय भगवद्बहिर्मुखतासे उत्पन्न निर्विशेषवाद-दैत्य हमलोगोंके सत्यानुसन्धानके रास्तेको बन्द कर देता है। उस दैत्यके प्रभावसे हमलोग समझते हैं कि इन्द्रिय-निग्रहकारी तपस्वी ही प्रकृत साधु हैं। हरिगुरु-वैष्णवके चिद्विलासका लोप कर देना ही निर्विशेषवाद-दैत्यकी प्रतिज्ञा है।

श्रीमन्महाप्रभुने गुरुकी कोई दूसरी संज्ञा न देकर केवल यही कहा है,—"येई कृष्णतत्त्ववेत्ता सेई गुरु हय" किन्तु कर्मी, ज्ञानी, योगी-सम्प्रदाय कृष्णतत्त्ववेतृत्व वा कृष्णमें अन्यान्य शरणागति रूप किसी लक्षण को गुरु और साधुका लक्षण कहकर वर्णन नहीं करते हैं। अर्थात् कर्मी, ज्ञानी, अन्याभिलाषी योगी-सम्प्रदायके तटस्थ लक्षणके प्रति अधिक आदर, और सविशेष-वादियोंके निकट स्वरूप लक्षणके प्रति अधिक आदर देखा जाता है।

प्रच्छन्न आध्यक्षिक तथाकथित साधुके दोषका अनुसन्धानकर साधु और गुरु-परित्यागके प्रति बहुत उत्साही रहते हैं; किन्तु अपने रिपु और मनोधर्म-रूप दुष्ट गुरुका सङ्ग परित्याग करनेके उद्योगी नहीं हैं। अपने ६ रिपुओंकी चंचलता, मनोधर्मका ताण्डव नृत्य, सिद्धान्तके अस्थिरताको वे यत्नपूर्वक अनुकूल खाद्यादिदानकर पोषण करते रहते हैं! वे समझते हैं कि अपना मङ्गल-संग्रह और दूसरेका

उपकार करनेके लिये ही वे प्रकृत साधुके अनुसन्धानमें आध्यात्मिकताका पोषण करते रहते हैं; किन्तु भक्तिवृत्तिके बढ़नेके बदले आध्यात्मिकताके बढ़नेसे उनलोगोंका अपना और दूसरेके मङ्गलका अनुसन्धान मायाउगके पीछे दौड़नेके व्यापारके समान हो जाते हैं। भगवद्भक्तका पथ ऐसा नहीं है। साधनेका धर्म भगवद्भक्ति नहीं है। भगवद्भक्त कृपाके अवतारके लिये अत्यन्त धैर्यशील और सहिष्णु होकर सेवाका पथ वरण करते हैं। पहले सत्यानुसन्धान, इसके बाद सेवा, यह आध्यात्मिक निर्विशेषवादीका पथ है; भगवद्भक्तिका पथ नहीं है। सेवाके साथ साथ कृपाका अवतार, सत्यका स्वतःप्रकाश और सत्यका सुदृढ़ परिचय भक्तिके पथमें पाया जाता है। भक्त सेवाके पथमें ही सत्यका अनुसन्धान प्राप्त करते हैं, सेवा छोड़कर आरोह चेष्टासे सत्यको या साधु-गुरुका अनुसन्धान नहीं करते। सेवा छोड़नेसे, और प्रीतिपूर्वक सेवामें सर्वदा नहीं लगे रहनेमें बुद्धियोग कहां पाया जायगा? साधुकी कृपाके बिना कौन प्रकृत साधुका अनुसन्धान प्रदान करेगा? यदि तपस्या, वैराग्य, पाण्डित्य, सुनीति, विद्याशक्ति ये सब प्रकृत साधुका और गुरुका सन्धान देते, तो अभक्तिके द्वारा ही भक्तिका सन्धान प्राप्त होता है और धर्म ज्ञान, योग, वैराग्य, तपस्याके द्वारा कृष्ण-पादपद्मका सन्धान प्राप्त किया जाता है—यही प्रमाणित होता। यदि उच्च ज्ञानके द्वारा साधुका दर्शन प्राप्त होता तो महाजन लोग साधुकी योगीका शुश्रूषु और सर्वोन्मुख कानसे ही सब-दर्शीकी ओरोंका उपदेश नहीं करते। सिद्धान्त-वाक्य क्या यांके युक्तिविरोध हैं? श्रीचैतन्य-भागवतकारकी ये सब बातें क्या निरर्थक हैं?

अधिकारी वैष्णवेर ना बुझि' व्यवहार।
ये जन निन्दये, तार नाहिक निस्तार॥
अधम जनेर ये आचार, येन धर्म।
अधिकारी वैष्णव ओ करे सेइ कर्म॥
कृष्ण-कृपाय से इहा जानिवारे पारे।
ए सब सङ्कटे केह मरे, केह तरे॥
—चै० भा० अ ९।२६७-२६९।

श्रील प्रभुपादने कहा है,—"अनधिकारी व्यक्ति वैष्णवको और अवैष्णवको बराबर समझनेके कारण नरक गमन करते हैं। वे वैष्णवके मध्यमें दुष्कर्मका दुराचार दर्शन करते हैं; किन्तु यथार्थमें वैष्णव कभी भी दुराचारी नहीं हैं। भगवत्-कृपा नहीं होनेसे भक्तचरित्रके तात्कालिक दर्शनसे कर्मका सर्वनाश होता है एवं कोई अपराधसे न कर अपराधसे दूर रहते हैं। जो सावधान होकर श्रीमद्भागवत पाठ नहीं करते और भक्तोंका अलौकिक चरित्र नहीं समझते, उनलोगोंको अमङ्गल प्राप्त होता है। किन्तु प्रकृत भगवद्भक्तको भगवान् दिव्य बुद्धि प्रदान करते हैं, उनलोगोंके किसी अमङ्गलकी आशङ्का नहीं रहती। विपज्जनक व्यापारसमूह होनेसे भी उनलोगोंको अमङ्गल प्राप्त नहीं होता। न्यूनाधिक साठ वर्ष पहले श्रीस्वरूप दास बाबाजी महाशयके लिये श्रीकृष्णने इस प्रकारकी कृपा-परीक्षा लीलाका प्रकाश किया था।

(गौड़ीय भाष्य)

लिखा है वे भी एक बार श्रील ठाकुर भक्तिविनोदका चरित्र न समझ सके जिससे उनको अपराध हुआ था। यही बात कहकर उन्होंने ठाकुरके निकट क्षमा भिक्षा की थी। इसलिये "वैष्णवेर क्रिया मुद्रा विज्ञे ना बुझय"—यह महाजन वाक्य सर्व प्रकारसे सत्य है।

श्रीरघुनाथदास महाशयके समान वैष्णवगण जब भगवद्भक्तका चरित्र देखनेमें असमर्थ होनेका अभिनय करते हैं, तो मनोधर्म वशीभूत अनर्थयुक्त, दोष-चतुष्टयके अधीन व्यक्तिगण भगवद्भक्तकी क्रिया मुद्रा और चरित्र समझनेमें असमर्थ हों, तो इसमें और आश्चर्य क्या है? मनोधर्मके कहनेमें पड़कर यदि हमलोग गुरुवैष्णवापराध करें, तो कभी किसी दिन मङ्गल प्राप्त कर सकेंगे? आनन्द साधुके अनुसन्धान करनेके समय हमलोग आध्यात्मिकताको ही साधु गुरु न कर बैठें, महत् (सच्चा साधु) के छिद्रानुसन्धित्साको, सत्यानुसन्धित्सा न समझें और प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा प्रतारित होकर अप्राकृततत्त्व की अवहेलना न करें। जो इस भक्तिके अनुकूल विचारको, व अन्वय विचारको ग्रहण न कर नित्य नई प्रतिमा गढ़ने तोड़नेके विचारमें दौड़ा फिरेगा उसे आध्यात्मिक परामर्शमें अन्तमें नाशके सिवाय और कोई फल प्राप्त नहीं होगा।

श्रीरामानुजाचार्यकी उपदेशावली

पूर्व महाजनोंकी शिक्षाके प्रति दृढ़ विश्वास रखना।

इन्द्रियोंका दास होकर न रहना।

सांसारिक ज्ञान-प्राप्तकर सन्तुष्ट न होना।

भगवानके गुण और लीला-कीर्त्तनविषयक ग्रन्थादि पाठमें रुचिविशिष्ट रहना।

श्रीगुरुदेवकी कृपासे जब एकबार अज्ञानान्धता उन्मीलित हो जावे, तब फिर मायाके मोहमें न भटकना।

इन्द्रियज सुख और दुःख दोनोंके प्रति समान भावसे उदासीन रहना।

भगवन्नाम और महिमा-कीर्त्तनमें जिस प्रकार आग्रह होता है उनके सेवकोंके नाम और महिमा कीर्त्तनमें भी तुम्हारा उसी प्रकार उत्साह हो।

तुम्हारे हृदयमें यह दृढ़भावसे अंकित रहे कि भक्तोंकी सेवामें जो सर्वदा नियुक्त हैं, वे जितना शीघ्र भगवत्पादपद्म प्राप्त करेंगे उतना शीघ्र दूसरा कोई प्राप्त नहीं कर सकेगा।

भगवान और उनके भक्तोंकी सेवामें पूर्णरूपसे नियुक्त नहीं रहनेसे महाज्ञानियोंको भी भ्रष्ट होना अनिवार्य है। कभी वैष्णवसेवाको उपायरूपसे ग्रहण न करना, वही उपेय है अर्थात् वैष्णवोंके द्वारा अपना कोई अन्याभिलाष चरितार्थ मत करना। वैष्णवसेवाके लिये ही वैष्णवसेवा करना।

उपेयके प्रति सर्वदा लक्ष्य रखना, वहीं तुमको पहुँचना होगा।

भजन

जीव जाग जीव जाग गोराचाँद (गौरचन्द्र) बले।
कत (कितना) निद्रा जाओ माया-पिशाचीर कोले (गोदमें) ॥१॥

भजिब बलिया एसे (आकर) संसार-भितरे।
भुलिया रहिले तुमि अविद्यार (शरीराभिमान) भरे (वशमें) ॥२॥

तोमारे लइते आमि हैनु अवतार ।
आमि बिना बन्धु आर के आछे तोमार ॥३॥
एनेछि औषधि माया नाशिवार लागि' ।
हरिनाम महामन्त्र लओ तुमि मागि' ॥४॥
भक्तिविनोद प्रभु-चरणे पड़िया ।
सेइ हरिनाम-मन्त्र लइल मागिया ॥५॥

प्रचार-प्रसङ्ग

कलकत्ता श्रीगौड़ीयमठके प्रचारक श्रीसत्यनारायण दासाधिकारीजीने ता:२० जुलाईको पीलीभीत राजाके ठाकुरमन्दिरमें प्राय: दो सौ श्रोताओंके निकट छायाचित्र द्वारा कृष्णलीला प्रदर्शनकी तथा प्राय: डेढ़ घन्टेतक वक्तृता दी। सभामें राजासाहब तथा उनके कर्मचारियोंने हरिकथा सुनकर अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक उनकी प्रशंसाकी। सभाके पहले तथा पीछे संकीर्त्तन भी हुआ। उक्त ब्रह्मचारीजी महोदय पीलीभीतके विभिन्न स्थानोंमें श्रीचैतन्य-वाणीका प्रचारकर लखनऊ शहरमें पधारे हैं।

उपदेशक श्रीपाद निताइदास ब्रह्मचारी भक्तिशास्त्रीजीने बम्बे नगरमें साण्टाक्रुश-प्रवासी श्रीयुत केदारनाथ भार्गव बी ए महोदयके भवनमें गत पहली जुलाईको चातुर्मास्य व्रतारम्भके दिन श्रीमद्भागवतसे "अजामिल" उपाख्यानका हिन्दी भाषामें पाठ और व्याख्या कर कुछ सज्जनोंके परिप्रश्नोंका सदुत्तर दिया। दूसरे दिन पतितपावन ब्रह्मचारीजीने साण्टाक्रुश-प्रवासी प्रसिद्ध व्यवसायी एम्. के. चोकसीजीके भवनमें श्रीमद्भागवतके कुछ विषयोंको लेकर गुजराती भाषामें हरिकथाकीर्त्तन किया था। गत १८ वीं जूनकी रथयात्राके दिन प्रातःकाल श्रीचैतन्यमठमें महामहोपदेशक श्रीपाद नारायणदास भक्तिसुधाकर प्रभुने श्रीचैतन्य भागवत पाठ और व्याख्या की थी। १ बजे मठाश्रित और मठवासी भक्तवृन्दने संकीर्त्तन शोभायात्राके साथ श्रीधामके सभी मठ और श्रीमन्दिरादिकी परिक्रमा की। ३ बजे अविद्या-हरण नाट्यमन्दिरमें एक बड़ी सभामें महोपदेशक श्रीपाद किशोरीमोहन भक्तिबान्धव बी·एल् महोदयने वक्तृता दी।

मूल मठ श्रीचैतन्यमठके एकमात्र शाखा कटकके श्रीसच्चिदानन्द मठका वार्षिक उत्सव गत २२ वीं जून बृहस्पतिवारसे श्रीश्री विश्व वैष्णव राजसभाके वर्तमान पात्रराज गौड़ीयमठाचार्यके आनुगत्यमें संकीर्त्तन द्वारा आरम्भ हुआ।

श्रीभक्तिविनोद-विरह महामहोत्सव

श्रीगोद्रुमस्थ स्वानन्दसुखदकुञ्जमें नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्रीश्रील भक्तिविनोद ठाकुरके प्रिय प्रवीण शिष्यवर, गौड़ीय मिशनके चेअरमैन, त्रिदण्डिपादाग्रणी श्रीपाद भक्तिप्रदीप तीर्थ गोस्वामी महाराज प्रमुख शुद्ध भक्तगणने श्री श्रीविरह महामहोत्सव सम्पादन किया है।

श्री श्री विरह-महामहोत्सवके दिन प्रातःकाल श्रील तीर्थ गोस्वामी महाराजको अग्रणी कर श्रीधामवासी सेवकवृन्दने नगरसंकीर्त्तन द्वारा श्रीनामहट्टके परिमार्जक-लीलाभिनयकारी श्रीश्रील ठाकुर भक्तिविनोदकी आराधना की। इसके बाद गौड़ीयकी श्री श्रीभक्तिविनोद-विरह संख्या से श्रीश्रील ठाकुर-रचित "भक्तितत्वविवेक" प्रबन्ध सभाके मध्यमें पढ़ा गया। भोगारात्रिकके बाद कीर्त्तन द्वारा महाप्रसाद दिया गया।

श्रील प्रभुपादकी पत्रावली—(तृतीय खण्ड)

आचार्य-प्रकट तिथिमें श्रील प्रभुपादकी पत्रावलीका तृतीय खण्ड प्रकाशित हुआ है। प्रत्येक पत्र विशेष शिक्षाप्रद व सारगर्भ उपदेशसे परिपूर्ण है। हमलोग प्रत्येक मंगलकामी व सत्यका अनुसन्धान करनेवाले व्यक्तिको इस पत्रावलीको पाठ करनेका अनुरोध करते हैं।

श्रीचैतन्यदेव

श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके पहले व बाद भारत व बंगालकी राजनैतिक अवस्था, अर्थनैतिक अवस्था, विद्या, साहित्य व समाजिक अवस्था, धर्मजगतकी अवस्था, समसामयिक पृथिवीकी अवस्था, नवद्वीपका परिचय व तथ्य और प्रमाणिक ग्रन्थ व विवरण समूह सहज व सरल भावमें साधारणके पढ़नेके योग्य वर्णन किया गया है। ग्रन्थमें अनेक चित्र व मानचित्र दिये गये हैं। सुन्दर जिल्द भक्त, साधारण व्यक्ति व विद्यालयके छात्र सभीके लिये यह ग्रन्थ उपयोगी व प्रीति देनेवाला होगा। भिक्षा १)। प्राप्तिस्थान—श्रीगौड़ीयमठ, पो० बागबाजार, कलकत्ता। श्रीमाध्वगौड़ीयमठ, पो० वोयारी, ढाका।

सरस्वती जयश्री

गौड़ीय-वैष्णवाचार्य ॐ विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादका सुननके मंगलदायक जीवनचरित ग्रन्थ है। निर्मत्सर शुद्धभक्ति पिपासु व्यक्ति इस ग्रन्थके पाठसे युगपत् अनेक शास्त्रग्रन्थ पाठ व अनेक साधुसङ्गका फल लाभ कर सकेंगे। वैभवपर्वका प्रथम खण्ड रायल ८ पेजी आकारमें एन्टिक कागजपर उत्तमरूपसे मुद्रित, ३६० पृष्ठोंमें। विस्तृत सूचीपत्रके साथ इसमें अनेक चित्र भी दिये गये हैं। भिक्षा ४)

'सामयिक-संख्या'—गौड़ीय

सामयिक-संख्या गौड़ीय अनेक त्रिवर्ण व एकवर्ण चित्र-शोभित व अनेक श्रेष्ठ वैष्णवसाहित्यिकगणोंका गवेषणापूर्ण प्रबन्धसे सुसज्जित होकर प्रकाशित हुई है। श्रीधाम-मायापुरमें श्रीश्रीगौरजन्मोत्सवके उपलक्षमें सर्वसाधारणोंके लिये भिक्षा ॥) आना।

ठाकुर भक्तिविनोद

श्रीरूपानुगशुद्धभक्ति स्रोतके प्रवाहका मूल पुरुष ॐ विष्णुपाद श्रील ठाकुर भक्तिविनोदका जीवनचरित व शिक्षामाला बहुत सरल भाषामें बड़े बड़े अक्षरोंमें मुद्रित। भिक्षा ।।।) मात्र। प्राप्तिस्थान—कलकत्ता (बागबाजार) श्रीगौड़ीयमठ व ढाका—श्रीमाध्वगौड़ीय मठ।

अणुभाष्यम्

चार अध्यायी ब्रह्मसूत्रके प्रत्येक अधिकरणका तात्पर्य श्रीमन्मध्वाचार्य-कृत श्लोकाकारमें बहुत संक्षेपमें बना हुआ। बंगभाषामें सर्वप्रथम संस्करण। पहले प्रति अध्यायके प्रति पादका श्रीमन्मध्वाचार्यविरचित अणुभाष्यमूल, उसके बाद प्रति अध्यायके प्रतिपादका सूत्र-समूह, अणुभाष्य मूलका बंगला अनुवाद व श्रीपाद राघवेन्द्रयतिविरचित तत्वमञ्जरी टीका, उसका बंगला अनुवाद व तात्पर्य इस क्रमसे पुस्तक मुद्रित हुई है। इसके अतिरिक्त मातृका क्रमसे ब्रह्मसूत्र समूह, उसका अध्यायांक, पदांक व सूत्रांकके साथ सूचीपत्रभी संयोजित हुआ है। भिक्षा २) मात्र।

Printed by :—Mukunda Madhab Das Brahmachari, at the Ramesh Printing Works and published by him from Sree Gaudiya Math, Mithapur, Patna.

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः

श्री श्रीगुरुपूजा संख्या Regd No. P. 468.

वर्ष ५] संख्या ६]

भागवत

एकमात्र

पारमार्थिक

मासिक पत्र

६ हृषिकेश
गौराब्द
४५३

भाद्र कृष्ण ६
संवत
१९९६ वि०



प्रति संख्या —)॥	स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे । अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥१॥	वार्षिक १)

जिससे इन्द्रिय ज्ञानातीत श्रीकृष्णमें श्रवणादि-लक्षणा फलाभिसन्धान-रहिता ऐकान्तिकी स्वाभाविक निरपेक्षा भक्ति उदय होती है, वही मानव जातिका सर्वश्रेष्ठ धर्म है—
उसी भक्तिके बलसे अनर्थ शमन होनेपर आत्मा प्रसन्नता लाभ करती है ।

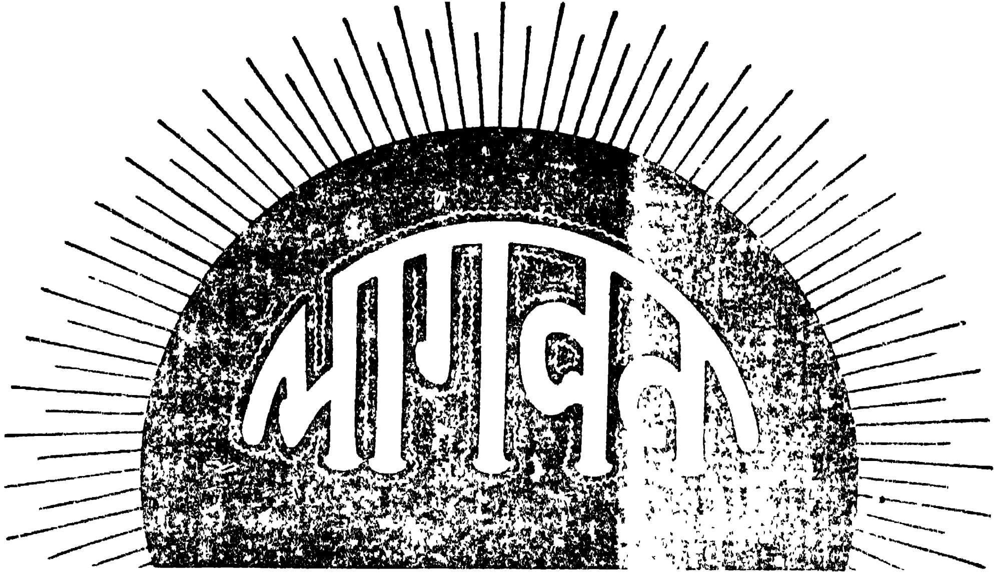
सम्पादक—उपदेशक पं० श्री रूपविलास ब्रह्मचारी भक्ति शास्त्री बी० ए० ।

Editor :—Upadeshak Pandit Sree Rupvilas Brahmachari,
Bhaktishastri B A.

SREE GAUDIYA MATH Mithapur (Patna).

विषय सूची

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः



श्रीगौड़ीयमठ, मीठापुर (पटना)

वर्ष ५ संख्या ७-८

भाद्र कृष्ण ६, ४५३ सं० १९९६ वि०, ४ सितम्बर सन १९३९ ई०

प्रवृत्ति तथा निवृत्ति (२)

(ॐ विष्णुपाद श्रीश्रील भक्तिविनोद ठाकुर)

भागवतकी गत संख्यामें प्रवृत्ति सुखका वर्णन किया गया है। ऐसे सुखके अतिरिक्त जीवके लिये और एक प्रकारका सुख है। गम्भीररूपसे विचार करनेसे निवृत्ति-सुखके उत्पत्ति-स्थानकी उपलब्धि होती है। निवृत्ति-सुख किसको कहते हैं, इसकी व्याख्या होनी चाहिये। जीव कौन है, यह पहले विचार करना आवश्यक है। इस मनुष्य शरीर में त्वक्, चर्म, मांस, रुधिर, मेद, मज्जा, अस्थि प्रभृति सात पदार्थ देखनेमें आते हैं। इनसे जीवको क्या सम्बन्ध है? त्वक्, अस्थि प्रभृति पदार्थ प्राकृत अर्थात् भौतिक हैं किन्तु जीव इन सबोंके अतिरिक्त दूसरा पदार्थ है, जिसके बहुतसे प्रमाण हैं। देह के वियोग होनेपर त्वक्, मज्जा प्रभृति पदार्थ देहमें ही रहते हैं, किन्तु किसके अभावसे ये सब शून्य मालूम पड़ते हैं, यह विचार करना अत्यन्त आवश्यक है। चक्षु शीतल होकर पुतलीके चक्षुके समान स्थिर रहता है, हाथ-पांव स्पन्दनहीन हो जाता है, बन्धुबान्धव हा हा करके रोते हैं,—किन्तु वियुक्त देह किसी को भी उत्तर नहीं देता! अहा! यह विषय कितना गम्भीर है!! जो देह अपनी सुन्दरता से वेशविन्यास द्वारा कितनी २ रमणियोंका मन हरण करता था, जो चक्षु अनुवीक्षण यन्त्र द्वारा कल ही ध्रुवतारा तथा अरुन्धतीकी दूरीको निर्णय करता था, जो कर्ण नाना प्रकारके मधुर स्वर मिले हुए उत्कृष्ट संगीतांशके टप्पे श्रवण करके मोहित

होता था, जो हाथ कल ही खड्ग, चर्म, बन्दूकादि धारणकर स्वदेश रक्षा तथा शत्रुदलन करता था, जो पद कई दिन पहले काशीक्षेत्र भ्रमण कर आया था, वही आज कुत्ते तथा शृगालादिके महोत्सवका उपकरण हुआ है। यह सब विचार करके कौन महाजन चिन्तामें व्यस्त नहीं होगा? पाखण्डी लोग भी थोड़े समयके लिये वैराग्य-विस्तारक वाक्य कहते हैं, परन्तु चित्तके अत्यन्त विक्षिप्त रहनेके कारण अति शीघ्र उन बातोंको वे भूल जाते हैं।

इन त्वगादि सप्त आवरणोंसे युक्त देह ही जीव कहलाने योग्य है, ऐसा नहीं हो सकता। जीव स्वयं आत्मा अथवा जीवात्मा नामसे विख्यात है। प्राकृत पदार्थके सहित जीवात्माका जो वर्तमान सम्बन्ध है, वह कभी नित्य नहीं हो सकता। प्राकृत पदार्थमें जो सब 'रस' देखनेमें आता है वह नितान्त तुच्छ तथा असम्पूर्ण है। प्राकृत किसी पदार्थसे जीवको नित्यानन्द लाभ नहीं हो सकता। प्राकृत पदार्थ स्वयं जड़ तथा शरीरको उत्पन्न करनेवाला है। किन्तु जीवात्मा देहसे पृथक् एक विलक्षण वस्तु है। जीवात्मा सर्वदा स्वभावतः किसी अनिर्वचनीय अखण्ड आनन्दकी लालसा करता रहता है। प्राकृत पदार्थसे उस आनन्दका आभास भी प्राप्त नहीं होता। बल्कि भौतिक देहमें आबद्ध होकर जीवका कई प्रकार अकल्याण होता आया है। जीव प्रकृतिके आधीन होकर अपने स्वाधीनता-सुखको अनुभव करनेमें असमर्थ है। क्षुधा, पिपासा-प्रभृति छः प्रकारकी आपत्तियां सर्वदा जीवको यन्त्रना देती रहती हैं। भौतिक पदार्थोंके बीच जीवके प्रवेशको 'बद्धभाव' कहा जाता है। समस्त वैष्णव इस प्रकारके अवस्था-प्राप्त जीवोंको 'बद्धजीव' कहते हैं। फलतः उनलोगोंको किसी किसी मुक्त जीवका आभास प्राप्त हो जाता है।

भौतिक पदार्थोंमें जीव जिस समय आबद्ध होकर सुखान्वेषण करता है, उस समय माया-प्रकृतिस्थ प्रवृत्ति-सुख, उसको अपना अतिथि बनाकर और उसे मोहित करके रखता है। ऐसी अवस्थाको प्राप्त पुरुष सांसारिक पदार्थ-सुख, कल्पित इन्द्रत्व, ब्रह्मत्व, तथा शिवत्व प्रभृति पदोंकी आशाकर चिरकाल दुःखके उपरान्त दुःख भोग करता रहता है। जीव मनमें सोचता है कि जो ऊँची ऊंची अट्टालिकायें हैं तथा जो नाना प्रकारके सुन्दर उपकरण तथा सुन्दरी स्त्री, पुत्रादि हैं और जो ये रेल तथा वार्तावहादि यन्त्र हैं उसी प्रकार ये जो नियमित और नियन्त्रित राज्य-शासन तथा पदार्थ-विज्ञानकी आविष्क्रियायें हैं वे ही जीवनका उद्देश्य हैं। अहा! कैसा कठिन भ्रम है! यदि वैज्ञानिक आविष्क्रिया-द्वारा और समस्त राजनियमोंके अनुष्ठानसे उनका १५० वर्षों तक देहान्त न होता, तब अवश्यही कुछ अंशोंमें उनकी जय स्वीकारकी जाती। नास्तिक वैज्ञानिक तथा भक्तिहीन तार्किक इस संसारकी उन्नतिके द्वारा जीवकी परमायु वृद्धि तथा अनन्त उन्नतिकी कल्पना करते हैं। अहा! उनलोगोंका भ्रम कितनी दूर तक है! प्राचीनकालसेही भौतिक विज्ञानकी उत्तरोत्तर उन्नति होती आरही है। ग्रीसदेशके थेलिस नामक पण्डितने जिस समय जलसे सभी पदार्थोंकी उत्पत्तिकी बात बतलाई, उस समय लोगोंने विज्ञानसे अनेक प्रकारकी आशायेंकी थी। बेकन, निउटन, लामार्क, गोयटी प्रभृति अनेक नवीन तत्ववादी नाना प्रकारके चिन्तामणिका आविष्कार करकेभी जीवका कोई प्रकृत (सच्चा) मङ्गल साधन न कर सके। चुम्बक, रेल, बन्दूकके अतिरिक्त अनेक शिल्प सम्बन्धी आविष्कृ-

तियां हुईं, किन्तु उनके द्वारा मानवजातिका संसार-सुख क्या बढ़ सका है? हमारी ऐसी युक्तियोंसे नवीन-सम्प्रदायको सन्तोष नहीं होगा, क्योंकि वे बालकालसे ही इन सब विषयोंमें कुसंस्कृत हैं। रेल और जहाज प्रभृतिके द्वारा जो बहुत प्रकारके वाणिज्यादिकी उन्नति हुई है उसका असल कारण विज्ञानके खोज ही हैं, यही लोगोंका दृढ़ विश्वास है और यही बात बचपनसे ही वे सुनते आ रहे हैं। किन्तु निरपेक्ष होकर विचार करनेपर पता चलता है कि उनके द्वारा जैसे कई बातोंमें सुविधा हुई है, वैसेही कई बातोंमें नाना प्रकारकी दुःखदायिनी असुविधायें भी आ खड़ी हुई हैं। 'स्वल्पे सन्तोष' 'थोड़े में सन्तोष' का नाम भी अब सुनने में नहीं आता। यह बात अब पौराणिक कथा मात्रही रह गई। सन्तोषकी इस कर्माको कौन स्वीकार नहीं करेगा? सन्तोष ही जीवका अमूल्य रत्न है। आशाका अन्त नहीं। आशारूपी मत्त-हस्ती इन्द्र-लोक, ब्रह्मलोक तक प्राप्त करके सन्तुष्ट नहीं होता। आशाही जीवका प्रधान शत्रु है। नेपोलियन बोनापार्टके आधुनिक इतिहास और दुर्योधन-रावणादिके पौराणिक वृतान्तपर जो मनन करते हैं उन्हें इस संसारमें आगे और किसी आशाकी आशा नहीं रहती। इस समय जो सन्तोषके अभावसे आशाकी वृद्धि हुई है, उसकी थोड़ीसी आलोचना करनेसे निःसन्देह यह पता चलेगा कि इस संसारमें प्रवृत्ति-मार्गावलम्बी पुरुषोंके जो उन्नति सम्बन्धी भाव हैं वे निकृष्ट हैं, आशा अनर्थमूलक है इसका प्रमाण श्रीमद्भागवतमें है :—

आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखं।
यथा संच्छिद्य कान्ताशां सुखं सुष्वाप पिङ्गला॥
(भा० ११-८-४४)

यद्यपि पदार्थ-विद्याकी अनुपयोगिता हम स्वीकार नहीं करते, तथापि उस विद्याकी उन्नतिसे जीवको प्रत्यक्ष क्या लाभ हुआ यह देखनेमें नहीं आता। गम्भीर विचारक इस विषयपर बहुत चिन्ता करते आये हैं। जर्मनी देशवासी एक महापुरुषने अनेकानेक तत्व-विद्याका आविष्कार करके अपनेको कई प्रकारके नियमोंका सृष्टिकर्त्ता समझकर एक दिन सन्ध्या समय अपने पुस्तकालयमें बैठकर कहा,— "हाय मैंने समस्त पदार्थ-विद्यामें नये सत्यका आविष्कार किया है यह बात प्रसिद्ध होगई है; किन्तु इससे मुझे क्या शिक्षा मिली? साधारण मूर्ख और मुझमें क्या भेद है?" तब उन्होंने बहुत सोचकर कहा,—"आज मुझे विशाल ज्ञान हुआ है, जिससे मुझे पता चला कि किसी एक विषयका भी सत्य स्वरूप मैं नहीं जानता।" यह वृतान्त "फॉष्ट" नामक एक अपूर्व ग्रन्थमें वर्णन किया गया है। सुइडेनवर्ग नामक एक महापुरुष भी इसी प्रकारके नतीजेपर पहुँचा था। नवीन-सम्प्रदायके लोगोंको विदेशी ग्रन्थ तथा पाण्डित्यमें अधिक आस्था होती है, इसीलिये यहांपर मैंने विजातीय उदाहरण दिया। हमलोगोंके स्वदेशीय शास्त्रमें इन सब विषयोंके अनेकानेक प्रमाण हैं। केवल एक प्रमाण यहांपर दिया जाता है। श्रीमद्भागवत द्वितीय, शुकवाक्य—

शाब्दस्य हि ब्रह्मण एष पन्था यन्नामभिर्ध्यायति धीरपार्थैः।
परिभ्रमंस्तत्र न विन्दतेऽर्थान् मायामये वासनया शयानः॥

स्वामिकृत टीकाच-शाब्दं शब्दमयं ब्रह्म, वेदस्तस्य एष पन्थाः कर्म्मफलबोधनप्रकारः। कोऽसौ? अपार्थैरर्थशून्यैरेव स्वर्गादिनामभिः साधकस्य धीर्ध्यायति तत्तदिच्छां करोतीति यत्। अपार्थत्वमेवाह तत्र

मायामये पथि सुखमिति वासनया शयानः स्वप्नान् पश्यन्निव परिश्रमन्नर्थान्न विन्दति, तत्तल्लोकं प्राप्तोऽपि निरवद्यं सुखं न लभत इत्यर्थः ।

किन्तु 'जीवका नित्य सुख क्या है' इस विषयको विचार करनेसे देख पड़ेगा कि 'स्वाधीनताही जीवका नित्य सुख है' प्रकृतिकी आधीनता प्राप्त करनेसे जीवका दुःख उदय हुआ है। इस माया-प्रकृतिको अतिक्रम करके (पार होकर) जीवके स्व-स्वरूप-प्राप्तिका नाम मुक्ति है। इसको निवृत्ति-सुख कहते हैं। प्रवृत्ति-मार्गस्थित पुरुषोंको कर्मका फल भोगनाही पड़ता है, अतएव प्रवृत्त पुरुषोंको सहसा मुक्त होनेकी सम्भावना नहीं है। प्रवृत्ति-मार्गकी उन्नतिही उस मार्गसे चलनेवालोंको प्राप्त होती है। किसी काममें विपरीत फल नहीं होता; सजातीय फलही प्राप्त हुआ करता है। अतएव प्रवृत्ति कभी निवृत्ति प्रसव नहीं कर सकता। तब यदि भाग्यवश किसी प्रवृत्त पुरुषको प्रवृत्तिके प्रति अप्रवृत्ति उत्पन्न हो तो उसको शुभफल लाभ होता है। इस प्रकार अनेक लोग मायामुक्त हुए हैं।

बहुतसे आधुनिक तथा पुरातन युक्तिवादी पुरुष मुक्तिके विषयमें प्रतिवाद करते हैं। उनलोगोंका पहिला प्रतिवाद यह है "यह ब्रह्माण्ड ईश्वरका सृष्टि किया हुआ है, अतएव मनुष्यके लिये वाञ्छनीय है। जगदीश्वरने मनुष्योंको युक्ति-शक्ति द्वारा भूषित करके इस ब्रह्माण्डमें रहनेके लिये आज्ञा दी है। मनुष्य युक्तिशक्तिको चलाकर समाज और उस सम्बन्धमें बहुतसी व्यवस्थायें स्थापन करके संसारमें सुखभोग कर रहे हैं। अनेकानेक आविष्कार करके सुख तथा सुखके उपायकी परिमाण बढ़ाया है तथा समय समयपर इस प्रकार उन्नति होते होते यह ब्रह्माण्ड भी एक अपूर्व क्लेशरहित धाम हो जायगा। मनुष्य उस समय अनायासही सर्वसुख भोग कर सकेंगे, यही भगवत् इच्छा है"

यह सब सिद्धान्त-विश्वास भी युक्ति-विरुद्ध है, कारण इसके विपरीत स्वतःसिद्ध दृष्टान्त देखनेमें आता है। स्वभावतः आत्माकी एक अप्राकृत आशा देखनेमें आती है। हे पाठकगण! हड्डी-चमड़ेकी स्थूल देह और मनोमय सूक्ष्म देह पार होकर आप आत्माके कमरेमें प्रवेश करके एकबार समाधि अवस्थामें इस विषयको देखें। तब देखेंगे कि आप पथिकके सदृश इस स्थान प्रकारके आवरणवाली देहमें वास कर रहे हैं और अपने धामको जानेके लिये गाड़ी आशा कर रहे हैं। श्रीजगन्नाथधामके यात्री जिस प्रकार पथमें किसी एक गृहमें वासकर रात्रि बिताकर अरुणोदयकी अपेक्षा करते हैं, उसी प्रकार आपलोग भी इस प्राकृत देहमें अज्ञानरूप रात्रि बिताकर ज्ञानरूप सूर्यकी अपेक्षा कर रहे हैं। सरायमें आसक्त होकर कौन मूर्ख उसकी उन्नतिकी चेष्टा करेगा? यात्री कभी ऐसी चेष्टा नहीं करेगा। तब इस सरायमें निवास करानेके द्वारा जिसको लाभ होता होगा और जो उसका अधिकारी होगा वही व्यक्ति उस काममें हाथ लगावेगा। जिस पुरुषने इस पाञ्चभौतिक सरायकी सृष्टिकी है, वही इसका पालनकर्त्ता है। कर्त्तव्यविमूढ़ यात्रीलोग इस सरायमें आसक्त होकर इसकी उन्नति करते हैं और ईश्वर भी इन सब व्यक्तियोंके द्वारा अपना काम चला लेते हैं। इससे उनकी असीम कौशलका परिचय मिलता है। जिन कारणोंसे पथिक उसमें आसक्ति-रूप जो अपराध करते हैं, उसके दण्डमें उनको अनावश्यक परिश्रम करनेके लिये बाध्य होना पड़ता है। पूर्वपापक्षयरूप फलके सिवा और कुछ प्राप्त नहीं होता है, वरन् उन सबोंकी आसक्ति गाढ़ी हो

जाती है और वे वहां वास करके अपनी वञ्चना करते हैं। जीव इस मायिक ब्रह्माण्डका चिरनिवासी नहीं है, यह बात स्वतः सिद्ध है, अतएव इसको ब्रह्माण्डकी प्रजा कहनेसे विश्वासविरुद्ध वाक्य हो जाता है। यह भौतिक ब्रह्माण्ड कितनाही उन्नति क्यों न करे, निर्दोष नहीं होगा। कभी भी इससे विमल सुख प्राप्त नहीं होगा। यह भी एक स्वतः सिद्ध विश्वास है। पञ्चभूतकी उत्पत्ति मायासे है, अतएव इसमें सदाही अभाव बना रहता है। अभाव ही इसका स्वभाव है, अतएव भौतिक ब्रह्माण्ड किसी कालमें अभावरहित नहीं होगा। पूर्णता नहीं होनेपरभी विमल सुखकी आशा कभी की जायगी, ऐसी बात नहीं है। इस मायिक ब्रह्माण्डकी कितनी उन्नति क्यों न हो, देश, काल प्रभृति परिच्छेदक गुण कहां जायगा? यूरोप और अमेरिका देशके अनेक...तत्ववित् पण्डितभी इस सम्बन्धमें बहुत भ्रममें पड़ गये हैं। कोई कोई "इन भूतोंकी क्रमोन्नतिके द्वारा अप्राकृतत्व प्राप्त होगा", ऐसा स्वीकार करते हैं। हाय! वे युक्ति करनेके समय परमेश्वरके अचिन्त्य शक्तिका ध्यान नहीं करते। यदि एकबार हृदयरूपी कन्दरेमें परम-पुरुष भगवान्‌के सच्चिदानन्द भावका स्थापन करें, तब आगे उनके ऐसे सङ्कीर्ण तथा असंस्कृत तर्कका उदय नहीं होगा। परमेश्वर जब सर्वशक्तिसम्पन्न हैं, तब उनकी बनाई हुई अनन्त प्रकारकी सृष्टि हो सकती है। यह प्राकृत जगत्‌ही जो क्रमशः अप्राकृत हो जायगा इसका क्या प्रयोजन है? क्या उनका एक अप्राकृत जगत् नहीं रह सकता है? जो प्रकृतिको सम्पूर्ण जगत्‌का आदि कारण समझते हैं तथा एक महान् चैतन्यको स्वीकार करनेमें असमर्थ हैं, और उसपरभी एक चैतन्यस्वरूप पुरुषको प्रकृतिका सन्तान कहते हैं, वे ही केवल प्राकृत जगतमें अप्राकृत जगत्‌के प्रादुर्भावकी कल्पना कर सकते हैं। सेश्वरवादी पुरुषोंके ऐसा कहनेसे आश्चर्यान्वित होना पड़ता है। प्राकृत जगत् कभी अप्राकृत हो जायगा ऐसा कभी स्वीकृत नहीं हो सकता।

ऐसा प्रतिवाद युक्तिविरुद्ध भी है। परमेश्वरको वेद सत्यसंकल्प और सर्वशक्तिमान कहते हैं। जगदीश्वरने मनुष्योंको उन्नतिकी आशा कर प्रथम सृष्टिके उपरान्तही इस संसारको स्थापित किया ऐसा नहीं हो सकता। वे सर्वमङ्गलमय हैं, अतएव अकारण ही हमलोगोंको इस क्लेशमय देशमें रखकर विपज्जालमें गिरा देंगे, ऐसा उनका स्वभाव नहीं। यदि यही ब्रह्माण्ड हमलोगोंका चिरनिवास अथवा भोगके लिये बना रहता, तो वे अवश्य ही निर्मलरूपसे इसकी सृष्टि करते। वे सर्वशक्तिमान् हैं अतएव इस ब्रह्माण्डके किसी विशेष परिणामकी आशाकर बैठे हुए हैं, ऐसी बात उनके लिये सम्भव नहीं है। बढ़ई काठ तथा बटालीके नहीं रहने पर और किसी वस्तुका निर्माण नहीं कर सकता, कर्मकार लोहे, हथौड़ी और अग्निके विना कुछ नहीं कर सकता और कुम्हार कुदाल, चक्र, मिट्टी प्रभृति उपकरणको छोड़कर कुछ गढ़ नहीं सकता, यह बात प्रसिद्ध है। किन्तु हमलोगोंके परमेश्वर क्या ऐसे ही अक्षम अयोग्य पुरुष हैं? वे क्या मानव-बुद्धि और कर्मफल-सृष्टिके विना इस संसारको श्रेष्ठ नहीं बना सकते थे? अहा! जिस महापुरुषकी इच्छासे ही सदसत् जगत्‌की उत्पत्ति हुई है, काम करनेकी इच्छा होने पर क्या उनको द्रव्य वा यन्त्रकी आवश्यकता होती है? जो समस्त चैतन्य, जड़ और यन्त्रादिके नियन्ता हैं उनका सङ्कल्प कभी अपेक्षात्मक नहीं हो सकता।

यह ब्रह्माण्ड चिरकाल असिद्ध और अभावपूर्ण रहेगा, यही उनकी इच्छा है, नहीं तो इसकी अवस्था ऐसी नहीं होती। जीवके लिये प्राप्य किसी और एक धामको स्वीकार किये बिना कोई विशुद्ध सिद्धान्त नहीं हो सकता, शास्त्रयुक्ति और आत्माकी प्रत्यक्ष दृष्टिद्वारा यही सिद्ध होता है। जीव उसी अद्भुत अप्राकृत धामकी आशा करता रहता जैसे वामनपुराणमें लिखा है :—

श्रुत्वैतद्दर्शयामास स्वलोकं प्रकृतेः परम्।
केवलानुभवानन्दमात्रमक्षयमव्ययम् ॥

श्रुतौ च—एषः ब्रह्मलोकः एष आत्मलोक इति।

इस प्रकार प्राकृत और अप्राकृत दो जगत्‌का स्वीकार करना अनादिसिद्ध कहना होगा।

क्रमशः

भय और संशय

द्वितीयाभिनिवेशसे भयकी उत्पत्ति होती है। भगवानसे स्वतन्त्र द्वितीय-वस्तुकी प्रतीति जिससे होती है, वह माया है। मायामें जबतक अभिनिवेश रहता है, तबतक जीवका भय बना रहता है।

साधारण भोगी व्यक्ति सर्वदा ही भयभीत रहता है। भोगी संसारमें जिन वस्तुओंमें आसक्त होता है, वे नश्वर हैं। न जाने किस मुहूर्त्तमें उसका सभी सुख दुःखमें परिणत हो जाय, इसी चिन्तासे भोगी सर्वदा भयभीत रहता है। नाशवान् वस्तुके प्रति आसक्ति वा अभिनिवेश दूर नहीं होने तक भोगी जीव निर्भय नहीं हो सकता, अतः शान्ति भी नहीं पा सकता।

नश्वर वस्तुके प्रति आसक्त होनेसे उसकी अनिष्टाशङ्का चित्तको सर्वदा ही अस्थिर करेगी, यह स्वाभाविक है। किन्तु विस्मयका विषय यह है कि जड़की क्षुद्रता जानते हुए उसके प्रति अत्यन्त विरक्त होकर जो उसे त्याग कर चिद्‌वस्तुके प्रति अभिनिविष्ट होनेकी चेष्टा करते हैं, वे भी निर्भय नहीं हो सकते। चिदनुशीलनके समय अनुशीलनीय वस्तु एवं अनुशीलनकारीके बीचमें पीछे माया आकर प्रवेश करेगी, यही भय रहता है। भोग्य जड़वस्तु पीछे नष्ट हो जायगी, यही भोगीको भय रहता है, और त्याज्य जड़ वा अचित पीछे किसी प्रकार आ उपस्थित होगा, यही त्यागीका भय रहता है। भयकी मात्रा दोनोंकी समान है। कहना नहीं होगा कि यह भय ही निर्विशेषवादकी भित्ति है। महाजनोंने गाया है :—

जड़ प्रति घृणा करि, भजिते प्रेमेर हरि,
स्वरूप लक्षिते कर भय।
स्वरूप करिते ध्यान, पाछे जड़ पाय स्थान
एइ भये भाव ब्रह्ममय॥

जड़के प्रति निर्विशेषवादीकी विलक्षण घृणा रहती है! पीछे वही घृणित जड़त्व तत्ववस्तुमें स्थान प्राप्त करे, यही चिन्ता कर निर्विशेषवादीके उद्वेगकी सीमा नहीं। तत्ववस्तुको विलासवान् वास्तव-सविशेष "हरि" रूपसे निर्विशेषवादी किसी प्रकारभी स्वीकार नहीं कर सकेगा। हरिका भजन-रूप अभिधेय एवं हरिके साथ जीवका प्रभु-दासरूप सम्बन्ध निर्विशेषवादीके निकट आदर नहीं पाते। विलास, विचित्रता वा विशेष स्वीकार करनेसे माया आ उपस्थित होगी, यही निर्विशेषवादीका भय है। विलास ही स्वतन्त्रताका प्रकाश एवं स्वतन्त्रता ही चेतनता का लक्षण है। किन्तु निर्विशेषवादीकी चिद्‌वस्तु अपनी स्वाधीन वृत्ति परिचालित कर जड़

से अपनेको पृथक् नहीं रख सकती; बल्कि वह सर्वदा ही मायावश होजाने के योग्य है। भयका मूल द्वितीयाभिनिवेश एवं द्वितीयाभिनिवेशका मूल अविद्या वा माया है। निर्विशेषवादीका जो यह भय है इसके मूलमें भी है द्वितीयाभिनिवेश, किन्तु निर्विशेषवादी द्वितीय वस्तुका अस्तित्व स्वीकार करनेमें असम्मत है। माया वा अविद्या वास्तवमें मिथ्या वा कल्पना है—यही निर्विशेषवादीकी युक्ति है। किन्तु उसी कल्पित मायाके आक्रमणकी कल्पना कर निर्विशेषवादी सर्वदा भयभीत रहता है। वस्तुतः निर्विशेषवादीका चिद्वस्तुके प्रति अभिनिवेश नहीं है, उसका सोलह आना अभिनिवेश है जड़ हटानेके प्रति (जड़ निरसनके प्रति)। भोगीका अभिनिवेश भोग्य जड़द्रव्यमें है और त्यागीका अभिनिवेश त्याज्य जड़द्रव्यमें है। निर्विशेषवादी तत्त्ववस्तुको अचिन्त्य विलक्षण चित्पदार्थ और अपनेको ब्रह्म कहकर केवल ब्रह्मवाद स्थापन करके मायाको मिथ्या वा कल्पना कहकर बिलकुल अस्वीकार करनेकी जितनी ही चेष्टा क्यों न करे, वास्तवमें उसकी दृष्टि जड़के सिवा और कुछ नहीं देखती, उसकी चिन्ता भी जड़का अतिक्रम नहीं कर सकती। इसीलिये चिद्विलासके जो विलासी हैं उनलोगोंके निकट निर्विशेषवादीका चिन्मात्रवाद मायावादमात्र है। मायावादमें विशुद्ध मायाके सिवाय और कुछ नहीं है।

माया वा जड़के प्रति बहुत गाढ़ अभिनिवेशके कारण ही इस भयकी उत्पत्ति होती है। तत्त्व वस्तुको अतद्वस्तु माया दूषित कर सकती है, अप्राकृत वस्तुमे जड़का अच्छा बुरा विचार स्थान पा सकता है, यह भय ही मायावाद का स्वरूप लक्षण है। शङ्करानुगत कहकर परिचय प्रदान करनेवाले और तत्त्ववस्तुका चिद्विलास, चिद्विग्रह अस्वीकार करनेवाले निर्विशेषवादीही केवल मायावादी हैं ऐसा नहीं है। मायावाद सर्वत्रही स्पष्ट रूपसे प्रकाशित है या होगा, ऐसी कोई बात नहीं। सेव्य भगवान और सेवक भगवान अर्थात् विषय और आश्रयकी नित्य वास्तवता, अतीन्द्रियत्व, अप्राकृतत्व मुखसे स्वीकार करने पर भी भीतर प्रच्छन्न भावसे मायावादका आवाहन होता है। जहां अधोक्षज भगवान और भागवतकी निरङ्कुश स्वतन्त्रताका नाश करनेकी इच्छा जिस किसी रूपमें उपस्थित हो, अधोक्षजके प्रति जहां सतर्कता वर्तमान हो, वहां मुखसे भलेही जो कुछ भी कह दिया जाय पर भीतरमें अधोक्षज-विलास विरोधी मायावाद विष ही पूर्ण भरा रहता है। श्रीगुरुमुखनिःसृत श्रौतवाणीमें अन्यमनस्कता आनेसे अनर्थयुक्त जीव या तो भोगी हो जायगा वा त्यागी हो जायगा और साथ ही साथ उसके पास भय आ उपस्थित होगा। जड़ाभिनिविष्ट बद्धजीव अपनेको जड़ पदार्थ ही समझता है। स्व-स्वरूपज्ञान नहीं रहनेसे हरि, गुरु-वैष्णवका स्वरूप दर्शन भी उसको नहीं होता है। हरि-गुरुवैष्णवको मुखसे अधोक्षज स्वीकार करके भी भीतर प्रच्छन्न मायावादी उनके कृपालोकसे ही उनलोगोंका स्वरूप दर्शन करनेका यत्न न कर एक कल्पना-मात्र पोषण करता है। किन्तु अधोक्षज तत्त्व, बद्धजीवकी कल्पनाके अनुसार प्रकाशित नहीं होते। निर्विशेषवादीकी पङ्गुधारणाके मस्तकपर पदाघातकर उसकी स्वेच्छातन्त्रता वे प्रकाश करते हैं। यह उनकी अपार करुणा होनेपर भी भीतिग्रस्त निर्विशेषवादीकी आंख अधोक्षज विलासको जड़विलास ही देखती है। जड़के प्रति उसकी विषम घृणा है; इसीलिये अधोक्षज विलासको भी वह जड़ज्ञानसे

हेय समझकर परित्याग करना है। जड़ हेय है, किन्तु स्वरूप तो हेय नहीं है। जड़का निरसन (खण्डन) करनेमें स्वरूप का परित्याग नहीं करना होगा, यह भीतिग्रस्तोंके विचारमें स्थान नहीं पाता। अधोक्षज-वस्तुका अधोक्षजत्व मायावादी समझही नहीं सकता। किन्तु प्रच्छन्न मायावादी तत्ववस्तु अतीन्द्रिय, अधोक्षज है—यह स्वीकार करता है। स्वीकार करके भी उसकी चारों ओर नियमका घेरा करनेके लिये उद्यत होता है। उनकी धारणा है—अधोक्षजको बद्धजीवकी अन्ध धारणाका आसामी होना ही होगा, स्वतन्त्रताहीन, स्वतःकर्त्तृत्वहीन, मनोधर्मकी पुतली होनी ही होगी। जबतक बद्धजीव अपनी मायिक धारणाके अनुकूल उसको देख सकेगा तभीतक वे चिद्वस्तु रहेंगी, और जब उसे स्वतन्त्रता आवेगी उसी समय वे जड़ वस्तु हो जायँगी; भीतिग्रस्तका (भयभीतका) यही विचार है। बद्धजीव अधोक्षजके सम्बन्धमें जो कुछ कल्पना वा धारणा करता है, वे यदि वही होते, तब तो वे निर्विशेषही हो पड़ते, प्राकृत हो जाते; किन्तु यथार्थमें वे वैसा नहीं हैं। जबतक बद्धधारणा प्रबल रहेंगी, तबतक यह तत्व उपलब्ध नहीं होगा। अधोक्षजके अपने स्वरूप प्रकाश करनेपर भी मायावाद कलुषित जीव उसे नहीं देख सकेगा। गुरुदेवतात्म होनेका विचार अर्थात् श्रौतपथमें गुरुपादपद्मके साथ सम्यक् युक्त होनेका विचार परित्यागकर अपनी अन्धधारणा वा तर्कपथका अवलम्बनकरनेसे द्विनियाभिनिवेश प्रबल होगा। उस समय चाहे भोगी होकर जड़में स्वरूप वुद्धिकर सर्वदा भयभीत रहना होगा, नहीं तो त्यागीको निर्विशेषवादी होकर स्वरूपविलासको जड़ समझकर उसको स्वीकार करनेमें भयभीत होना होगा।

इस भयके साथ साथ संशय आता है। संशय नास्तिकता का ही प्रच्छन्न रूप है। संशयात्मा अविश्वासी है। शास्त्र, साधु, गुरु—सभीके प्रति उसका अविश्वास है। शरणागत विश्वासी है; किन्तु संशयात्मा विश्वासी नहीं है। संशयात्मा दाम्भिक है। तब यह दाम्भिकता स्पष्ट नहीं है, प्रच्छन्न है। क्योंकि दाम्भिक हरि-गुरु-वैष्णवको स्पष्टभावसे उपेक्षा करता है; उनलोगोंके वाक्योंकी स्पष्टभावसे अवहेला करता है। संशयात्मा बाहरसे आनुगत्यका छल करता है; किन्तु वास्तवमें वह अनुगत नहीं है। उसकी सोलह आना बुद्धि मापनेकी है। हरि-गुरु-वैष्णवका अधोक्षजत्व मुखसे स्वीकार करके भी जो हृदयसे उसको अस्वीकार करते हैं वे ही संशययुक्त हैं। नित्य आनुगत्यका छली मायावादी ही संशयात्मा है। मायावादी भयभीत. और नास्तिक—दम्भ-परायण है। संशयात्मा प्रच्छन्न नास्तिक और प्रच्छन्न दाम्भिक है; इसीलिये वह मायावादी और नास्तिकसे भी अधिक निन्दनीय है। संशयात्माका लक्षण यही है कि उसका जितना संशय है सभी साधुगुरु और उनकी वाणीके प्रति है। संशयात्माका अपने प्रति संशय नहीं है. अपने प्रति उसका अखण्ड विश्वास है। अपनेको वह बद्धजीव समझता है। बद्धजीवकी धारणा प्रकृत है, दर्शन असम्पूर्ण है, बद्धजीवका विचार भ्रममय है—यह सभी स्वीकार करते हैं; किन्तु स्वीकार करके भी अपने प्रति उनका अन्धविश्वास है। हमलोगोंके हृदयमें शत शत अनर्थ, अन्याभिलाष और कपटता, भरी ही है, हमलोगोंकी समझसे हममें हेयता, असम्पूर्णता, भ्रम रहनेपर भी हम ठीक हैं, हममें कोई गोलमाल नहीं है। सभी दोष, सभी अपराध

गुरुवैष्णव ही करते हैं—इस विचारसे गुरुवैष्णवके प्रति विचार दण्ड प्रयोगमें संशयात्मा सर्वदा उद्यत है।

संशय और जिज्ञासा एक वस्तु नहीं है। सम्पूर्ण स्वरूपज्ञानमें प्रतिष्ठित न होने तक जिज्ञासा रहती है। साधक मात्र ही जिज्ञासु हैं। किन्तु संशयात्मा और जिज्ञासुमें भेद यही है कि जिज्ञासु शरणागत हैं, वे अविश्वासी नहीं हैं। हरि, गुरु और वैष्णवका सब कुछ अच्छा है; उनलोगोंमें कुछ दोष नहीं है। उनलोगोंके चरित्रमें वर्तमान जो विरोध दिखलाई पड़ता है वह वास्तवमें उनलोगोंके चरित्रमें नहीं है। हमलोगोंके विचारमें जड़त्व है अतः हम विरोध देखते हैं। वे जिस भूमिकामें अवस्थित हैं उसी भूमिकामें पहुँचनेसे यह विरोध दर्शन नहीं होगा—इसी विचारमें दृढ़ निर्भरता रखकर जिज्ञासु reconcile करनेमें ही यत्न करते हैं, संशयाकुलके समान गुरुवैष्णवका संस्कार करना नहीं चाहते। गुरुवैष्णवकी भूमिकामें उपस्थित होकर चिन्मय चक्षुके द्वारा गुरुवैष्णवका पूर्ण चिदानन्द विग्रह दर्शन करूँगा—यही जिज्ञासुका विचार है। और स्वयं जड़में आवद्ध रहकर गुरुवैष्णवको भी जड़में उतार लाऊँगा, अपनेको जड़पिण्ड जानूंगा, गुरु वैष्णवको भी जड़पिण्डके रूपमें ही देखूंगा—ऐसा संशयात्माका विचार है। वर्तमान अवस्थामें देखनेपर संशयात्मा और जिज्ञासु एक समान देख पड़ते हैं किन्तु वास्तवमें बात वैसी नहीं हैं। उनलोगोंकी चित्तवृत्ति सम्पूर्ण विभिन्न है। एकही आकाशमें अवस्थित होकर भी चातककी दृष्टि ऊपरकी ओर रहती है; किन्तु शकुनिकी दृष्टि नीचेकी ओर रहती है, गलित मांसके प्रति। मांसदृक् संशयात्मा जितना भी उच्च विषयका विचार करे, उसकी दृष्टि जड़के प्रति अवश्य निबद्धही रहेगी।

जिज्ञासुका standard ठीक है। वे जानते हैं कि भक्ति निरपेक्ष है। भक्तिके विचारसे कभी भी अभक्ति प्रमाणित नहीं हो सकती। उसी मानयन्त्रको ठीक रखकर वे जो कुछ विरोध देखते हैं उसके सम्बन्धमें सामञ्जस्य करनेकी चेष्टा करते हैं। किन्तु संशयात्माको मानदण्ड नहीं है, और रहनेपर भी शास्त्र और साधुवाक्य उसके मानदण्ड नहीं हैं। उसकी प्रच्छन्न दाम्भिकता वा मापनेकी बुद्धि ही उसका मानदण्ड है। माप लूंगा—यही संशयात्माका मूल मन्त्र है।

भय वा संशय आत्माकी नहीं, वह विकृत जड़ मनकी वृत्ति है। किन्तु प्रकृत जिज्ञासामें कपटता नहीं है। उसमें उन्मुखता, अन्वय अनुशीलन है। भय और संशय कपटता मात्र है।

संशयात्मा भी बहुत बार जिज्ञासाका भान करता है। संशयात्मा कहता है, मैं जब बद्ध जीव हूँ, बद्ध धारणा करना ही मेरा स्वभाव है, इसके अतिरिक्त कुछ कहनेपर जब मैं नहीं समझता तो मुझे मेरे उपयुक्तही उपदेश देना चाहिये। वास्तवमें वह सरल जिज्ञासा नहीं है, कपटतामात्र है। स्वरूपमें किसीकी बद्धता नहीं है; बद्ध धारणा पोषण करना भी स्वरूपका स्वभाव नहीं है। जो घटनाक्रमसे आगया है, उसको दूर करना ही आवश्यक है। बद्धता रखकर मुक्तके विचारमें प्रतिष्ठित होनेकी इच्छामें आन्तरिकता नहीं है। स्वरूपके स्वभावमें सन्देह, संशय वा अज्ञान—कुछ नहीं है। फिर स्वरूपके ऊपर जो अस्वच्छ आवरण आगया है वह जिससे दूर हो वह कौशल वे ही जानते हैं जो स्वयं स्वरूपमें प्रतिष्ठित हैं। मैं जो कल्पना करता हूँ, वह उपाय नहीं है। जिसमें मैं अपने स्व-स्वरूपमें

प्रतिष्ठित हो सकूं, इसीलिये गुरुदेवका पतित-पावन-लीला जगतमें नित्य प्रकट है। गुरुदेवकी उसी लीलाका तात्पर्य हृदयङ्गम करनेकी अकपट आकांक्षा लेकर प्रणिपात और सेवाके साथ परिप्रश्न आयेगा। स्वरूपमें प्रतिष्ठित होनेके लिये ही जिज्ञासा है। मैं बद्ध हूँ, यह धारणा दृढ़ रखकर बद्धताके उपयुक्त स्वरूपकी कथा कही जाय, तो वह कथा निरर्थक होगी। बद्धताके उपयोगी अर्थात विमुख मन जिसको रुचिर समझकर ग्रहण करेगा, उस प्रकारकी इन्द्रियतर्पणकारिणी कथा स्वरूपकी कथा नहीं है। बद्धताके उपयुक्त कथाके द्वारा बद्धता वृद्धि पावेगी। बद्धता कुछ हमलोगों का स्वरूप नहीं। स्वरूपकी कथा अविमिश्ररूपसे कीर्त्तित होनेपर भी उसे उपलब्ध करनेकी सम्पूर्ण योग्यता हमलोगोंकी है अतः जड़ जगतमें वैकुण्ठ वस्तुका अवतार है; नहीं तो वह सम्पूर्ण निरर्थक होता। हमलोग यदि निष्कपट और विश्वासी हों, तो स्वरूपकी वार्त्ता हमलोगोंके निकट दुर्बोध कभी भी नहीं होगी, बल्कि उसीका सबसे अधिक सहजरूपसे प्रतिभान होगा। गुरुपादपद्मसे सहज सरल पारमार्थिक ब्राह्मणता प्राप्त करके स्वरूप जिज्ञासा वा ब्रह्मजिज्ञासाका अधिकारी बना जाता है। गुरुदेवको उस अधिकार दानमें कोई आपत्ति नहीं। किन्तु गुरुपादपद्मसे स्वरूपका परिचय प्राप्त करनेका पूर्ण अवकाश पानेके बाद भी यदि "यदि मैं बद्ध हूँ" यह ज्ञान प्रबल रहा एवं गुरुदेव द्वारा कीर्त्तित वाणी ब्रह्मकी विजातीय बोध हुई, तो समझना होगा, गुरुदेवके कृपा-ग्रहणसे वे इच्छा पूर्वक पराङ्मुख हुए हैं। वे अविश्वासी हैं, कपटी हैं। उनकी जिज्ञासा भी सरलताका भानमात्र हैं, क्योंकि वास्तवमें वे जानना नहीं चाहते।

सनातन धर्म

जड़ जगत् परिवर्त्तनशील है। आज जो नवजात शिशु है कल वही प्रफुल्लवदन बालक होता है, पुनः वही वीर्यवान युवक, धीरे धीरे प्रशान्तमूर्त्ति प्रौढ़ और अन्त में सफेद केशवाला और दन्तहीन वृद्ध हो जाता है। स्निग्ध प्रभात किरण देखते देखते प्रखरसे भी प्रखर होता और पुनः अन्धकारमें विलीन हो जाता है। आज जहाँ अत्युच्च पर्वतश्रेणी विराजमान है, कल वहीं अथाह समुद्र अवस्थित देखा जाता है। सागर सूखता है, मरुभूमि जलसे प्लावित होती है। आज जो लोगोंसे परिपूर्ण और चहकती हुई राजधानी है कल वही श्मशानमें परिणत हो जाती है। इतिहास इसका साक्षी है। यह जगत् हेयता और अनुपादेयता (घृण्य) से परिपूर्ण है। प्राणसे भी प्रिय पुत्र अपने हाथसे पिताको विष देकर राज्य प्राप्त करता है, प्रियतमा पत्नी उपपतिकी सहायतासे अपने स्वामीके हृदयमें अस्त्राघात करती है और सहोदर भ्राता अपनेही भ्राताके सर्वनाश-साधनमें तत्पर होता है। निर्दोष दण्ड पाता और खूनी बेकसूर साबित हो जाता है। यह हम प्रति क्षणमें देख रहे हैं। इस रङ्गमञ्चपर नित्य और निर्मल आनन्दका पूर्ण अभाव है। बहुत अच्छा हूँ, कोई अभाव नहीं है,—सुन्दर रूप, अनेक सद्गुण, अद्भुत पाण्डित्य, आश्चर्यमयी बुद्धि, अतुल ऐश्वर्य, सुवृहत् अट्टालिका, पति-प्राणा पत्नी, सोने और चाँदके समान पुत्र और कन्या, सब कुछ। अकस्मात्

कहींसे एक भवदावाग्नि जल उठी—एक मुहूर्त्तमें भस्मीभूत हो गया। पण्डित मूर्ख हो जाता, मूर्ख पण्डित हो जाता है। ज्ञानी अज्ञानी, अज्ञानी ज्ञानी हो जाता। धनी दरिद्र और दरिद्र धनी हो जाता। उसी प्रकार बलवान् दुर्बल और दुर्बल बलवान् हो जाता है। इस प्रहेलिकाके मध्यमें नित्य सत्य वस्तुका संवाद क्या प्राप्त किया जा सकता है?

रोम ग्रीस और चीनके मनीषिवृन्दों एवं भारतीय विद्वत्सम्प्रदायके जड़वस्तुसमूहकी धारणाओंके इतिहासकी विशेषरूपसे आलोचना करनेपर ज्ञात हो जाता है कि उन्होंने जिसे सत्य समझकर ग्रहण किया था, वही धारणा कालान्तरमें शिक्षाके प्रभावसे परिवर्तित होती जाती है। काम और क्रोधसे अभिभूत (ग्रसित) व्यक्तिकी धारणा मायिक होनेसे दूसराही आकार धारण करलेती है। हम अपने जीवनकी आलोचना करकेभी देखते हैं कि कभी कभी हमारी धारणायें भी अद्भुतरूपसे परिवर्तित होती रहती हैं। प्रति वर्ष, प्रति मास, प्रति दिन, प्रति घण्टे, प्रति मिनट, प्रति मुहूर्त्त हम यह परिवर्त्तन देखा करते हैं। तो क्या नित्य, सत्य, उत्कृष्ट और निर्मल आनन्द प्राप्त करनेकी आशा नहीं है?

सत्यानुसन्धानकी इच्छासे सनातन धर्मपर विचार करनेसे उक्त प्रश्नका यथार्थ उत्तर मिल जाता है। सनातन धर्म क्या है? सनातन धर्म किसका धर्म है? सनातन धर्मकी आवश्यकता क्या है? एवं किस प्रकार उसका पालन किया जा सकता है?—इन सब प्रश्नोंपर विचार करना प्रत्येक मनुष्यका कर्त्तव्य है। अनित्य और नश्वर वस्तुओं को छोड़कर शेष सभी सनातन अर्थात् नित्य वस्तुओंमें सनातन धर्म नित्य बिराजमान रहता है। नित्यानन्दका उद्‌गम स्थान यहीं है।

गीताका कहना है कि क्षिति, जल, पावक (अग्नि), आकाश, हवा और मन बुद्धि अहङ्कार भगवानकी अपरा प्रकृतिसे बने हैं अर्थात् प्राकृत हैं। अतः पञ्चभूतात्मक देह और मन प्राकृत हैं। प्राकृत वस्तुएं परिवर्त्तनशील हैं, उनलोगोंका धर्म भी परिवर्त्तनशील है इसलिये देह और मनका धर्म सनातन नहीं है। भगवानकी परा प्रकृति जीव, अपरा प्रकृतिसे नहीं उत्पन्न हुआ है। भगवान् प्रकृतिके अन्तर्गत वस्तु नहीं हैं—वे अप्राकृत हैं। जीव कहनेसे देह और मनका नहीं बोध होता बल्कि उससे चित्कण आत्माका निर्देश होता है।

असूर्य्यानाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥

जो आत्म हत्या करने वाले हैं, वे आसुरी वृत्ति अवलम्बन कर (अज्ञानसे ढके हुए) नाना प्रकारका कुतर्क करते हैं। चित्तमें नाना प्रकारकी विकृति देखते हैं। आत्माका सन्धान पानेसे ही विकार हट जाता है। आत्मा नित्य है, उसका धर्म भी नित्य अर्थात् सनातन है। आत्माकी नित्यवृत्ति शुद्धभक्ति ही सुनिर्मल सनातन धर्म है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके ऊपर पञ्चम पुरुषार्थ भगवत् प्रेम ही प्रयोजन वा फल है। जीव स्वरूपतः भगवद्दास है। आत्म वृत्ति भगवद्दास्यका स्वाद पानेही जीव कहने लगता है—

नास्था धर्म्मे न वसुनिचये नैव कामोपभोगे
यद्यद्भव्यं भवतु भगवन् पूर्वकर्मानुरूपं।
एतत् प्रार्थ्यं मम बहुमतं जन्मजन्मान्तरेऽपि
त्वत् पादाम्भोरुहयुगगता निश्चला भक्तिरस्तु॥

उस समय इस जगत्‌की कोई असुविधा उसके हृदयमें स्थान नहीं पाती। अप्राकृत जीव

बन्धनावस्थामें स्थूल और सूक्ष्म दो प्राकृतिक उपाधियोंमें आवद्ध रहनेके कारण अप्राकृत तत्वकी उपलब्धि नहीं कर सकता है। जड़देहके गुणोंकी आलोचना करते करते मनके सभी भाव उदय होते हैं, इस कारणसे मनुष्योंकी कल्पना-विभावना रूप चिन्ताएँ और धारणाएँ प्रकृति-मूलक हैं इस कारण अप्राकृत नहीं हो सकतीं। सनातन धर्म अप्राकृत तत्व है। यह सत्य वस्तु अवरोह-पथसे (श्रौत पथसे-आम्नाय पथसे) श्रीभगवानसे ब्रह्माके हृदयमें प्रकट हुई थी। ब्रह्मासे नारद, नारदसे व्यास एवं व्याससे आम्नाय—परम्परामें वैयासिक सम्प्रदायने उस वस्तुको प्राप्त किया है। महाजनोंका क्या ही सुन्दर गान है :—

"भ्रमिते भ्रमिते यदि साधुसङ्ग हय।
पुनरपि गुप्त नित्य-धर्मेर उदय॥"

सूर्य जिस प्रकार मेघ द्वारा ढक जाता है, सनातन धर्म भी उसी प्रकार काल-प्रभावसे आवृत रहता है पर वह नित्य वर्तमान रहता है। सनातन धर्मके छिप जानेपर भगवान् स्वयं अवतीर्ण होते हैं, या कभी पार्षद भक्तोंको भक्तावताररूपसे प्रेरण करते हैं। नित्य-मुक्त भगवद्भक्त कभी भी माया-द्वारा अभिभूत (आकृष्ट) नहीं होते। वे बद्धजीवके सदृश स्वतन्त्रताका असद्व्यवहार न कर सर्वदा सनातन धर्ममें अवस्थित रहते हैं। प्राकृत धारणा द्वारा युक्त चित्त अप्राकृत वस्तु धारण करनेके योग्य नहीं है। काय मन और वाक्य द्वारा भगवान् और उनके भक्तोंका दासत्व करनेके पहले सुनिर्मल सनातन धर्मका आस्वादन नहीं हो सकता। प्राकृत और अप्राकृत, नित्य और अनित्य, आत्म और अनात्म, भक्ति और मुक्ति—इन सबोंके पार्थक्यका ज्ञान सद्गुरु—चरणाश्रय कर विशेष रूपसे प्राप्त किया जाता है। जो ऐसा न कर परमार्थके साथ शारीरिक, मानसिक, लौकिक, व्यावहारिक, नैतिक और सामाजिक भावोंको सम्मिश्रण करते और अपनी एक अलग सृष्टि निर्माण करते हैं उनकी वह सृष्टि सनातन नहीं हो सकती। देह और मनकी मंगल कामना करने वाले प्रचारक अनात्म प्रतीतिमें अवस्थित होकर परमार्थ-स्मृतिके साथ इतर स्मृतिके समन्वय करनेका प्रयास करते हैं। कर्मविद्ध और ज्ञानविद्ध भक्तिका आदर करते हैं। शुद्ध भक्त इसको महत्व नहीं देते। किन्तु सीधे सादे लोग इन बातों से विषम समस्यामें पड़ जाते हैं। बद्धावस्था के कारण भोगमें लीन होकर मनके अनुकूलको ही सनातन धर्म समझकर लोग भ्रममें अन्धे हो रहे हैं—उन्हें शुक्तिमें रजतका (चांदी) भ्रम होरहा है। दुग्धमें घी के मौजूद रहने पर भी प्रज्वलित अग्निमें वही दूध डालनेसे वह अग्नि बुझ जाती है, किन्तु उसी दूधसे घी निकालकर उस बुझी जाती हुई अग्निमें डालनेसे वह प्रज्वलित हो उठती है। वस्तुतः शुद्धभक्ति वा पराभक्ति ही आत्मधर्मविकाशके अनुकूल है, विद्धभक्ति उसके प्रतिकूल है। शुद्धभक्ति वा पराभक्तिको ही सनातन धर्म, नित्यधर्म, आत्मधर्म या जैवधर्म कहते हैं। भगवान नित्य हैं, भक्त नित्य हैं और भक्ति नित्य है। ये तीनों वस्तुएं आनन्दमय हैं। वहां अनित्यता, हेयता वा अनुपादेयताका स्थान नहीं है।

हमलोग जिस समय भोगकी अनित्यता मायावादी की ईशविमुखता एवं देह और मनकी परिवर्त्तनशीलताकी उपलब्धि कर श्रद्धान्वितचित्तसे सद्धर्माश्रयके लिये व्याकुल होते हैं उस समय यह समझनेका अवसर मिलता है कि हमलोग चिद्वस्तु

हैं एवं वृन्दावन ही हमलोगोंका नित्यवास है। माया द्वारा सृष्ट इस संसार वृक्षके कोटरमें पक्षीके समान कुछ दिनके लिये वास कर रहे हैं। जड़बुद्धिसे भोक्ताके रूपमें नश्वर जड़का भोग अङ्गीकार करनेके कारण और अनात्म देह और मनमें आत्म-वस्तुका भ्रम उत्पन्न हो जानेके कारण हमलोगोंका सर्वनाश हुआ है।

जो नित्यकाल अवस्थित है, वही 'सत्' है। 'असत्' परिवर्त्तन और ध्वंसशील है। सद्गुरुसे दीक्षा, सत्सङ्ग और सच्छास्त्र अध्ययन करते करते अनर्थके कट जानेपर समस्त असत् धारणायें चली जाती हैं उसी समय नित्यतत्त्वका रहस्य प्रकाशित होता है। उसी समय "ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते" इस श्लोकका तात्पर्य हृदयङ्गम होता है। मेघके हटते ही सौभाग्यसूर्यकी रश्मि (किरण) दिखलाई पड़ती है, चक्षु उन्मीलित होता है, और बधिरता नष्ट होती है। उसी समय हमलोग श्रीगुरुदेवका "कोटिचन्द्र सुशीतल" पदकमल दर्शन कर अमरत्व प्राप्त कर सकते हैं। अपना कार्पण्य और भगवत् प्रीतिहीनता का ज्ञान होते ही आंसुओंसे छाती प्लावित हो जाती है।

अज्ञान-तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरुवे नमः॥

कहते कहते उनके चरणकमलोंमें लोटने लगते हैं। उस अप्राकृतचरणाश्रयसे हृत्कर्णरसायन हरिकथा, सुनते सुनते चक्षु-कर्णोका विवाद, और मनका समस्त सन्देह मिट जाता है मानव-जीवन सार्थक होजाता है। सच्छास्त्र और असच्छास्त्र, सद्गुरु और असद्गुरु, सत्सङ्ग और असत्सङ्ग, असल और नकल—सभी धराधाममें (इस संसारमें) वर्त्तमान हैं। तनिक भी असतर्क होनेसे असत् सत् प्रतीत होता है, मन ही आत्मा मालूम पड़ता है, देह देही मालूम पड़ता है, नश्वर जगतको नित्यवासोप-योगी स्थान समझकर महामाया राज्यमें जीव आबद्ध होजाता है और दुर्लभ मानव जन्म वृथा ही नष्ट हो जाता है। इसीलिये स्वभावतः करुणामय महाजन-गण बद्धजीवकी बद्धदशा हटानेके लिये—उनलोगोंकी मोह निद्रा तोड़ कर आत्मधर्मकी कथा सुनानेके लिये "प्रचार" कार्यकी व्यवस्था कर गये हैं—

"प्रति घरे घरे गिया कर एइ भिक्षा।
भज कृष्ण, बल कृष्ण, कर कृष्ण शिक्षा॥

किन्तु हमलोग सांसारिक अनुभवों से (ज्ञान द्वारा) परिचालित होकर प्रत्येक वस्तुमें अपने २ सत्याभासको सत्य स्वीकार कर परस्पर कलह कर रहे हैं, शास्त्रों के कल्पित व्याख्याके विवादमें अग्रसर होकर अपनेसे निम्नतरस्थित जीवोंकी परमार्थ चेष्टाका पथ बन्द कर रहे हैं और दाम्भिकताके आश्रयमें घृणित जीवन यापन कर नरक पथके पथिक हो रहे हैं। भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा और करणापाटव हमलोगोंके चित्तमें प्रबल झड़ उपस्थित कर रहे हैं, हम मायाके ताण्डव नृत्यमें चरणचारण मुग्ध हो रहे हैं। यथेच्छाचारका आश्रयकर मनोविमानमें चढ़कर सुखकी कल्पनामें मायाके पीछे कितना दौड़ रहे हैं! बार बार हार रहे हैं—हताश हो रहे हैं। त्रिताप ज्वालासे जलकर राख हो रहे हैं किन्तु तो भी आशासे विराम नहीं पाते —नित्य नये यत्नोंसे फिर कमर कस कर दौड़ते हैं। कभी धर्म, अर्थ कामका फल अनुसन्धान करनेके लिये कनक, कामिनी और प्रतिष्ठाकी प्राप्तिमें पटुता प्राप्तकर पुण्यवान होना ही धर्म समझते और कभी मुमुक्षु होने की पिपासामें अहंग्रहोपासक (अहंकार रूपी ग्रहकी उपासना करनेवाला) मायावादी

होकर ईशवैमुख्यकी पराकाष्ठा प्राप्त करते हैं। स्वतन्त्रताका असदव्यवहार कर अज्ञज ज्ञानका दास होकर दुर्दशाकी चरम सीमामें पहुँच गये हैं—स्वरूप विभ्रम होनेसे (स्वरूप भूल जानेसे) क्या ही भयानक और कुत्सित अवस्थाके कीड़े हो पड़े हैं। हाय! हाय! हमारे ऐसे घोर दुर्दिनमें कौन मायाके कवलसे मुक्तकर नित्य परम आत्मीय श्रीभगवान्‌के निकट ले जायगा! कब हम श्रीहरिको परम सत्य समझ सकेंगे कब हम प्राकृत जगत् के अन्दर वैकुण्ठ धामका संवाद पावेंगे। कब हम युक्तिको अपने अधिकारमें रखकर आत्ममङ्गल स्वरूप अच्युत विश्वासको (भगवद् विश्वासको) हृदयमें पोषण करनेमें समर्थ होंगे? कब हम अपनी क्षुद्रता और पाखण्डको समझकर सभी प्राकृत अभिमानसे रहित होते हुए भगवद्भक्तोंके शरणापन्न हो सकेंगे? हाय, हाय! कब हमलोग आत्म प्रतीतिमें और कृष्णेन्द्रिय प्रीतिवाञ्छामें अनित्य कामनाको छोड़नेके योग्यहोंगे। हे हरि! कब हमारा जड़ सम्बन्ध शिथिल होकर चित् सम्बन्ध प्रबल होगा? कब हमारा आत्म धर्म-स्वरूप धर्म जागेगा। कब हम भक्तिको जीवका परम पुरुषार्थ समझते हुए श्रीगुरुपादाश्रयकर वृन्दावनमें अप्राकृत कामदेवकी उपासनामें निर्मलानन्दका आस्वादन प्राप्त करेंगे।

वह देखिये, माधुर्यैश्वर्यपति भगवान श्रीनिवास हमें सान्त्वना प्रदान कर रहे हैं। यह सुनिये, कलियुगपावनावतार श्री श्रीगौरसुन्दर अपने पार्षद भक्तोंके साथ प्रकट होकर "श्रीमद्भागवतसंगही एकमात्र अवलम्बनीय है" इसीकी शिक्षा दे रहे हैं। इसे एक बार सुनें जीवन धन्य हो जायगा। पहला ग्रन्थभागवत और दूसरा भक्तभागवतके आश्रयसे ही सत्य वस्तुकी उपलब्धि होगी एव शोक, भय, मृत्युके कवलसे निस्तार पाकर हमलोग अमृत प्राप्त कर सकेंगे।

यस्मिन् शास्त्रे पुराणे वा हरिभक्तिर्न विद्यते।
न श्रोतव्यं न मन्तव्यं यदि ब्रह्मा स्वयं वदेत्॥
ततो दुःसङ्गमुत्सृज्य सत्सु सज्जेत बुद्धिमान्।
सन्त एवास्य छिन्दन्ति मनोव्यासङ्ग मुक्तिभिः॥

इसी सर्वाराध्य महासमन्वयवाद अद्वयज्ञानोपासनाके प्रवर्त्तक श्रीमायापुरचन्द्रकी और उनके भक्तोंकी अभयवाणी शिरपर धारणकर, आइये हमलोग सत्यवस्तुके अनुसन्धानमें अग्रसर हों,—भावग्राही जनार्दन सभी अमङ्गल हटाकर हमें अभीप्सित सिद्धि निश्चय प्रदान करेंगे।

भजन

यशमती-नन्दन, व्रजवर-नागर,
गोकुल-रञ्जन-कान।
गोपी-परान-धन, मदन-मनोहर,
कालिय-दमन-विधान॥
अमल हरिनाम अमिय विलासा।
विपिन-पुरन्दर, नवीन नागर वर,
बंशीवदन सुवासा॥

व्रजजन-पालन, असुर-कुल नाशन,
नन्द-गोधन राखओयाला।
गोविन्द माधव, नवनीत तस्कर,
सुन्दर नन्दगोपाल॥
यामुनातटचर, गोपी वसनहर,
रास-रसिक कृपामय।
श्रीराधावल्लभ, वृन्दावन नटवर,
भकतिविनोद-आश्रय॥

पतितपावनवर परदुःखदुःखी

श्री श्रील आचार्यदेवकी त्रिदण्ड-सन्यासलीला

अकेले ही श्री श्रीगुरुगौराङ्गका आदर्श अनुसरण और निर्विशेषवादी लोगोंके प्रति अहैतुकी कृपा श्री श्रील गोपालभट्ट गोस्वामी प्रभुके विरह-दिवस को ४५३ गौराब्द, आषाढ़ कृष्ण पञ्चमी तिथिमें श्री ईश्वरपुरी और श्रीगौरसुन्दरके मिलनक्षेत्र गयाधाममें सन्यासलीला

सन्यासनाम—श्री श्रीमद्भक्ति प्रसाद पुरीगोस्वामी

परदुःखदुःखी अतिमर्त्य आचार्यवर्गोंकी महावदान्यलीलाकी धारणा करनेमें जीव असमर्थ है। श्रीरामानुजाचार्यने लोगोंकी निन्दाके भयसे क्यों दूसरे स्थानमें आश्रय ग्रहण किया था, क्या कारण था कि भगवान श्रीगौरसुन्दरने निर्विशेषवादी, कर्मनिष्ठ, कुतार्किक, निन्दक पाखण्डी विद्यार्थी प्रभृति निपुण व्यक्तियोंको कृतघ्नताके प्रतिदानके लिये श्रीमायापुरसे विदा ग्रहण करनेकी लीलाकी और सन्यासग्रहणकी लीलाका अभिनय किया था, क्या कारण था कि परमहंसवर ऊँ विष्णुपाद श्री श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी-प्रभुपादने वर्णाश्रमके अन्तर्गत त्रिदण्ड सन्यासग्रहण लीला प्रकट की थी, क्या कारण था कि उद्धवगीतामें अवन्तीनगरीके त्रिदण्डी भिक्षुकी कहानी वर्णित हुई है एवं परवर्त्ती आचार्योंने उसी त्रिदण्डी भिक्षुकी गाथा गाकर व्रजके पथमें चलनेकी लीला प्रकट की है। ये बातें क्षुद्र जीवकी धारणाके परे हैं। निर्विशेषवादी, निन्दक, पाखण्डी आध्यात्मिकोंके लिये ये बातें निन्दाके मसाले हैं किन्तु भगवद्भक्त सदा इन निपुण आध्यात्मिकोंकी निन्दाको अपने भजनके अनुकूल समझकर हरि-भजनके पथकी ओर अग्रसर हुए हैं।

पतितपावनवर श्रील आचार्यदेवका एक स्वतः सिद्ध स्वभाव यह है कि वे प्रत्येक गुरुसेवकके कल्याण और भजनकी उन्नतिके लिये बाहरसे किसी प्रकारका विज्ञापन न कर सर्वदा सब तरहसे बहुत यत्न करते हैं। प्रत्येक निष्कपट सेवक निःसंकोच भावसे इसे स्वीकार करेगा। किन्तु श्रील प्रभुपादके श्रीमुखसे हमलोगोंने सुना है कि श्रील प्रभुपादने जिनलोगोंका अधिक उपकार किया है उनने ही श्रील प्रभुपादके चरणमें अपराधकर उपकारका बदला दिया है। इसके प्रसङ्गमें श्रील प्रभुपादके कथित पण्डित विद्यासागर महाशयका एक गल्प बहुतोंको स्मरण रह सकता है। श्रील आचार्यदेवकी महावदान्य लीलामें भी हमलोग उसी लीलाकी पुनरावृत्ति देख पाते हैं। महाप्रभुने नवद्वीपवासी कर्मकाण्डियों और निन्दकोंका सबसे अधिक उपकार करना चाहा था परन्तु वे ही महाप्रभुके सबसे अधिक निन्दक हुए। किन्तु महाप्रभुने उसका बदला दिया था सन्यास आश्रम ग्रहण लीलाके द्वारा।

करिल पिप्पलिखण्ड कफ निवारिते।
उलटिया आरो कफ बाढ़िलो देहेते॥
आमा देखि कोथा पाइबेक बन्धनाश।
एकगुण बन्ध छिल-हैल कोटी-पाश॥
आमारे मारिते-यबे करिलेक मने।
तखनइ पड़ि गेल अशेष बन्धने॥

भाल, लोक तारिते करिलूँ अवतार ।
आपने करिल सब जीवेर संहार ॥
देख कालि शिखासूत्र सब मुड़ाइया ।
भिक्षा करि बेड़ाइमु सन्यास करिया ॥

(चै० भा० म १६ । १२१, १२६-१३२)

श्री श्रीगुरुगौरांगके इस आदर्शका अनुसरण परदुःखदुःखी श्रील आचार्यदेवकी लीलामें पूर्णरूपसे प्रकाशित हुआ है। श्रील आचार्यदेवने निन्दक निर्विशेषवादी निपुण आध्यात्मिक लोगोंके आचरण-का बदला अपने महावदान्यमयी सन्यासलीला द्वारा दिया। श्रील आचार्यदेव नित्यसिद्ध कृष्णतत्त्ववित हैं, वे श्री श्रीरूपरघुनाथके वाणीके श्रेष्ठ सेवक हैं, वे



ॐ विष्णुपाद परमहंस परिव्राजक आचार्यवर्य्य
अष्टोत्तरशत श्री श्रील भक्तिप्रसादपुरी गोस्वामी महाराज ।

महाभागवतवर परमहंस हैं, उनकी सन्यासलीलाका अभिनय केवल श्री श्रीगुरुगौराङ्गके मनोऽभिष्टानुयायी, उनलोगोंके पदाङ्कानुसरण सेवा है।

इस लीलाके द्वारा उन्होंने हमें काय मन और वाक्यसे दुःसङ्ग परित्यागमें अधिकतर बलवान् और सत्सङ्ग वरण (ग्रहण) में अधिकार शक्ति सञ्चार की है।

श्रील आचार्यदेवकी इस लीलाके विषयमें बहुत लोग अनभिज्ञ थे। गयासे पण्डित श्रीपाद रूपविलास ब्रह्मचारी विद्यार्णव बी-ए महोदय कर्तृक 'गौड़ीय' सम्पादकके निकट प्रेरित एक पत्रमें आचार्यदेवकी इस गूढ़ लीलाकी कथा प्रथम प्रकाशित हुई। उस पत्रमें विद्यार्णव प्रभुने लिखा है—"श्रील आचार्यदेवने हमको अति निकट बुलाकर कहा मैं भगवानके irresistible force के द्वारा चालित होकर यहां आया हूं। मेरी दूसरी ओर जानेकी इच्छा थी। मैं जब पार्वतीपुरमें था उस समय श्रीमन्महाप्रभुने मुझे गयामें सन्यास लेनेके लिये प्रबल प्रेरणा की। मुझे त्रिदण्डसन्यास ग्रहण करना होगा, यह मैं नहीं जानता था, मठके और कोई भी यह नहीं जानते। श्रीपादभक्तिसुधाकर प्रभु और श्रीपाद तीर्थ महाराज वा श्रीपाद सुन्दरानन्द प्रभु प्रभृति कोई भी नहीं जानते। तुम मुझे इस विषयमें सहायता करो। आगामी कल प्रातः श्री श्रीगदाधरका श्रीपादपद्म दर्शन और परिक्रमा करनेके बाद श्रील गोपाल भट्ट गोस्वामी प्रभुकी तिरोभाव तिथिमें मठमें श्रील प्रभुपादके निकट सन्यास ग्रहण करूंगा। इस बात को अति दैन्यके साथ मुझे बताकर दण्ड-बहिर्वास प्रभृति प्रस्तुत करनेके लिये आदेश किया। उस समय उन्होंने और भी कहा—सभी लोग विषय लेकर झगड़ा-विवाद कर रहे हैं। एक भीषण बवण्डर आया है। इसमें बहुत कम लोग बचेंगे। शरणागत और निष्किञ्चन लोगोंको कोई भय नहीं। श्रीगुरुपादपद्मने मुझे अनुकूल कृष्णभजनका खूब सुयोग प्रदान किया है। मैं कृष्णानुसन्धानमें बाहर हुआ हूं। श्रील प्रभुपादके निकट जो कथा सुनी है उस कथाके साथ किसी अन्य उपदेशका बहुत मेल नहीं होगा। मुझे श्रीगुरुपादपद्मसे कोई च्युत नहीं कर सकता। मेरे अनुपस्थितिकालमें श्रील तीर्थमहाराज मेरा कार्य करेंगे।"

विद्यार्णव प्रभुने पत्रमें और भी लिखा है—श्रीलआचार्यदेवका वैराग्य देखनेसे पाषाण भी विदीर्ण होगा। हमलोगोंका किसी प्रकारका अनुनय विनय भी उन्होंने नहीं सुना। सन्यासके दिन प्रातःकाल मस्तक मुण्डन कराकर स्नान किया और मुझे साथ लेकर पैदल श्री श्रीविष्णुपादपद्मदर्शन करनेके लिये गये। अखौरी श्रीयुक्त कृष्ण प्रकाश सिंहकी अति सुन्दर गाड़ी श्रील आचार्यदेवकी सेवाके लिये प्रस्तुत रहनेपर भी वे उसपर नहीं बैठे। प्रायः दो मील रास्ता पैदल चलकर फल्गु नदीका जल स्पर्श किया, विरजाके जलमें स्नानकर अधोक्षज विष्णुपादपद्म सेवा प्राप्त करनेका वैशिष्ट्य वर्णन करते करते श्रीविष्णुपादपद्मके मन्दिरमें उपस्थित हुए। वहां पुनः पुनः साष्टाङ्ग दण्डवन्नति और कुछ देरतक पूर्व महाजनोंके विरचित स्तवसमूह उच्चारणकर मन्दिर-प्राङ्गणमें उपस्थित हुए। वहां श्रीमन्मध्वाचार्यका एक चित्रपट विराजित है। उसी चित्रपटकी ओर दृष्टि निबद्धकर कहा—आज हम श्रीमन्मध्वाचार्यके आनुगत्यमें यहांकी क्रिया दि सम्पन्न करेंगे। श्रीमन्दिर प्राङ्गणमें बैठकर प्रायः आधे घण्टे तक श्रीमन्मध्वाचार्य, श्रीरामानुजाचार्य और श्रीमन्महाप्रभुके प्रचारित भागवत धर्मके सिद्धान्तका

वैशिष्ट्य समूह कीर्त्तन किया, श्रीमन्दिरके द्वारके खुलनेपर श्रील आचार्यदेवने दूर परही दण्डायमान होकर कुछ देरतक स्तवस्तुति की एवं कीर्त्तन करते हुए श्रीमन्दिरकी परिक्रमा करने लगे। परिक्रमा करनेके समय उन्होंने एक पड़े हुए शेषशायी श्रीविग्रह एवं उसके बाद दण्डायमान अवस्थामें ही एक और शेषशायी मूर्त्ति का दर्शनकर उनके चारों हाथोंका अस्त्रादि हमें लिखलेनेके लिये कहा एवं मठमें आकर श्रीचैतन्यचरितामृत के वर्णनके साथ मिलाकर देखा कि वे यथाक्रमसे अधोक्षज और त्रिविक्रम श्रीविग्रह हैं। इन दोनों विग्रहोंकी कथा आपको ('गौड़ीय' सम्पादकको) सूचित करदेनेके लिये आदेश किया।

श्रील आचार्यदेवकी सन्यासलीलाका सम्वाद जानकर स्थानीय बहु भक्त मठमें उपस्थित हुए। वैष्णवहोम सम्पादनके बाद श्रील आचार्यदेवने ठाकुरमन्दिरमें प्रवेश किया और श्रीश्रील प्रभुपादके निकट यथारीति सन्यास ग्रहण किया। श्रील आचार्यदेव अब श्रीमद् भक्तिप्रमाद पुरी इस सन्यास नामसे विभूपित हुए हैं।

इस प्रकार उन्होंने श्रील गोपालभट्ट गोस्वामी प्रभुकी तिरोभावतिथि को सन्यास लीला प्रकट की एवं उसी दिन गया मठमें बहु वैष्णव, भक्त, सज्जनें, और विशिष्ट व्यक्तियोंकी एक सभामें उन्होंने सङ्कीर्त्तन करते हुए प्रायः डेढ़ घण्टेतक एक सारगर्भित भाषण प्रदान किया। उसमें उन्होंने जो दैन्योक्तियां सुनाई उनके सुननेसे पाषाण भी विदीर्ण होजाता, किन्तु पाषाणसे भी कठिन हमलोगोंका हृदय विदीर्ण नहीं हुआ। उन्होंने श्री श्रीमद् गोपाल भट्ट गोस्वामीके दान और उनके माहात्म्य, त्रिदण्डकी व्याख्या, अवन्ती नगरीके भिक्षुककी सहिष्णुता और भजनमें दृढ़ता, जीवशिक्षाके लिये श्रीमन्महाप्रभुका गयामें श्रीगुरुपाद-पद्म आश्रयग्रहणका लीलाभिनय एवं अधोक्षज विष्णु-की सेवा वैशिष्ट्यकी कथा कीर्त्तन की। सन्यास लीला प्रकट करनेके बाद श्रील आचार्यदेवने जो अतिमर्त्त्य वैराग्यका आचरण आरम्भ किया है, उसको अपने आँखसे नहीं देखनेसे समझाया नहीं जा सकता। उनकी यह जीवशिक्षामयी लीला हमलोगोंकी दुर्बुद्धि-को दण्डित करे। जय ॐ विष्णुपाद परमहंस परिव्राजकाचार्यवर्य अष्टोत्तरशत श्री श्रील भक्तिप्रमाद पुरी गोस्वामी प्रभुकी जय !!

शिक्षाष्टक

अनुवादक—रामकीर्ति सिंह वकील, औरंगाबाद।

(१) चरम साधन क्या है ?

चेतोदर्पणमार्ज्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं
श्रेयः कैरवचन्द्रिक वितरणं विद्यावधू जीवनम्।
आनन्दाम्बुधिवर्द्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्व्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्त्तनम्॥

घनाक्षरी

चित दर्पण मल हारी हरि कीरतन,
भवदावानलके बुझाविवेको वारी है।
श्रेय कुलकैरवको सुखकारी चन्द्रिकासी,
विद्यावरनारीके सुजीवन संचारी है॥
आनन्द उदधि वृद्धकारी प्रतिपद यह,
भक्तिरस भखेको अमृत स्वाद कारी है।
अखिल प्राणिनके परानको आधार यह,
जय जय जय जय जय जयकारी है॥

(२) नामसाधन सुलभ क्यों है ?

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्व्वशक्ति-
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।

एतादृशी तव कृपा भगवनममापि
दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नानुरागः ॥२॥

सवैया

पावन नामनि में निज नाथ,
प्रभो निज शक्ति सवैभर दीनी ।
तहां नहिं देश न काल न शौच,
अशौचहु की कछु टेक न कीनी ॥
भगवान तुम्हारी कृपा इतनी,
अरु मैं हतभाग महामति हीनी ।
पाइ सुऔसर ऐसो प्रभु,
तबहुं तिन में अनुराग न कीनी ॥

(३) नामसाधन की प्रणाली क्या है ?

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना ।
अमानिना मानदेन कीर्त्तनीयः सदा हरिः ॥३॥

दोहा

क्षमाशील तरुते अधिक, तृणहुं ते लघु होय ।
आप अमानी मानप्रद, हरि कीर्तन कर सोय ॥

(४) साधक की कामना क्या है ?

न धनं न जनं न सुन्दरीं
कवितां वा जगदीश कामये ।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे
भवताद्भक्तिरहैतुकी त्वयि ॥४॥

चौपाई

नहिं धन जन न रुचिर कविताई,
चाहौ मैं जगदीश दुहाई ।
जनम जनम तव पद रति होऊ,
अविरल भक्ति-प्रकारण सोऊ ॥

(५)

अयि नन्दतनुज किङ्करं
पतितं मां विषमे भवाम्बुधौ ।
कृपया तव पादपंकज-
स्थितधूलीसदृशं विचिन्तय ॥

चौपाई

नन्दसुवन मैं किंकर तोरा,
परेउ विकट भवसागर मंह घोरा ।
निज पद पंकज धूरि समाना,
करि राखहु मोहि कृपानिधाना ॥

(६)

नयनं गलदश्रुधारया
वदनं गद्गद्रुद्धया गिरा ।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा
तव नामग्रहणे भविष्यति ॥

चौपाई

प्रभु कहँ कब ऐहै दिन सोई,
जब तव नाम लेत अस होई ।
नयनन बहिहिं अश्रु जल धारा,
गद्गद् कंठन गिरा प्रचारा ॥
हृदय मोद भरि पुलकित गाता,
रहिहौ लेत नाम दिन राता ॥

(७)

युगायितं निमेषेण चक्षुषा प्रावृषायितम् ।
शून्यायितं जगत सर्व्वं गोविन्दविरहेण मे ॥

दोहा

युग सम बीतत निमिष मोहि,
निशिदिन बरषत नैन,
शून्य जगत गोविन्द सुनु,
तुम बिनु नहीं लगत चैन ॥

(८)

आश्लिष्य वा पादरतां पिनष्टु मा-
मदर्शनान्मर्महतां करोतु वा ।
यथा तथा वा विदधातु लम्पटो
मत्प्राणनाथस्तु स एव नापरः ॥

घनाक्षरी

अंक भरि मेले चाहे लात मारि ठेले मोहि,
देश ते निकारै मोहि जानि अति खुसरो ।
चाहे तरसावे दरशावे न सरूप निज,
चाहे विनती करत मारै मार मुसरो ॥
भावे तेहि जाहि विधि राखै मोहि ताहि विधि,
लम्पट को नेह विचलित बात कुसरो ।
तौहूँ सुनु सांची सखि सांवरी सुरति रांचो,
मेरो प्राणनाथ सोई कृष्ण नहीं दूसरो ॥

शिक्षाष्टक

(ॐ विष्णुपाद श्री श्रील भक्तिविनोद ठाकुर)

परमतत्व एक और अद्वितीय है । यह तत्व सर्वदा सर्व अवस्थामें स्वाभाविक अचिन्त्य शक्तिसे सम्पन्न है ।

इसी अचिन्त्य शक्तिके द्वारा यह परमतत्वका एकही समय सविशेष और निर्विशेष दो भिन्न भावोंमें अनुभव होता है ।

सविशेष और निर्विशेष दोनों भावोंसे, एकही समयमें, सिद्ध होनेपरभी, इन दोनोंमें सविशेष प्रतीति ही बलवती है । निर्विशेष प्रतीति अनुभूत नहीं होती यह केवल मान ली जाती है ।

यह सविशेष प्रतीतिमय परमतत्व अचिन्त्य शक्ति-के बलसे स्वयं सर्वदा चार रूपोंमें अर्थात् स्वरूप, तद्रूपवैभव, जीव और प्रधान रूपोंमें अवस्थित है ।

जैसे सूर्य्य मण्डलका तेज, उसका मण्डल, मण्ड-लके बाहरकी तेजरश्मि और तेजकी छाया जिस प्रकार एकही सूर्य्यतत्वमें सदा चार रूपोंसे अवस्थित है उसी प्रकार परमतत्वके चार प्रकारके रूप नित्य सिद्ध हैं ।

शक्तिमान तत्व स्वरूपतः एक होनेपर भी चार प्रकारका है । अतएव भेद और अभेद दोनों एकही समय नित्य और सत्यात्मक हैं ।

परमतत्वकी अचिन्त्य शक्ति विचित्र विक्रममयी है । उसके अनन्त प्रभावोंमें तीन प्रभावोंको हम-लोग जान सकते हैं । उन तीन प्रभावोंमें एक एक प्रभाव विशेषतायुक्त होकर तत्वकी पराशक्ति स्वभावतः अन्तरंगा चिच्छक्ति; तटस्था वा जीव शक्तिः बहिरङ्गावा माया शक्ति के रूपोंमे नित्य देदीप्यमान है ।

जीवसमूह अन्तरङ्गा शक्तिकी सहायतासे उस तत्वके अगणित रश्मि परमाणुओंके से नित्य सिद्ध हैं, बहिरङ्गाशक्तिकी सहायतासे उस तत्वकी छायाकी रंगोंके जगहपर माया वैभव है । नित्य सिद्ध स्वरूपादिकी असलियत यही है ।

स्वरूप अनन्त होनेपर भी विशेष परिचित इन नित्य तीन भावोंसे अर्थात् ऐश्वर्य, माधुर्य्य और औदार्य्य भेदोंसे भगवत्स्वरूप तीन प्रकारके हैं अर्थात नारायणरूप, कृष्णरूप और कृष्ण चैतन्यरूप ।

स्वरूपवैभव अनन्त है । उनमेंसे परव्योम गो-लोक, वृन्दावन और नवद्वीप इन तीन धामोंसे विशिष्ट वैकुण्ठरूप चिज्जगत् है ।

इन्हीं इन्हीं स्वरूपोंके और उनके स्थानोंकी समस्त लीलाओंको उपकरणके ही स्वरूप वैभव कहते हैं।

भगवत सूर्यके बाहर निकले हुए चित्त परमाणुरूप जीवोंकी संख्या अनन्त है।

जीव स्वभावत: स्वरूपशक्ति और बहिरङ्गा मायाशक्ति इनदो वैभवोंके मध्यवर्त्ती तटस्था शक्तिके द्वारा दोनों वैभवोंकी योग्यतासे युक्त है। परन्तु अनादि स्वरूप विमुखताके कारण माया वैभवमें फंसा हुआ है और मायावृत्ति रूपा अविद्यासे पैदा हुए जड़ाभिमानके द्वारा जड़धर्म्मरूप कर्म्ममार्गमें भ्रमणशील है। इसीलिये यह सदा संसार-दुःखसे पीड़ित है।

अनन्त जड़ात्मक ब्रह्माण्ड समूह तथा बद्ध जीवगणके स्थूल और लिङ्गशरीरसे युक्त मायावैभव ही परमतत्वकी छायाके वर्णवैचित्र्यरूपमें उस विभूति का अत्यन्त हीन चौथा पाद है।

ऐश्वर्य्यसे भरा हुआ भगवत स्वरूप चतुर्भुज मूर्तिसे वैकुण्ठ परव्योममें दास्य रसाश्रित नित्य सिद्ध जीवगणोंके द्वारा सेवित हैं।

माधुर्य्य प्रचुर भगवत स्वरूप द्विभुजमूर्तिसे वैकुण्ठ के अन्तर प्रकोष्ठमें नित्य दास्य, सख्य, वात्सल्य, और मधुर रससे अनन्तलीलाका विस्तार करनेवाला है।

वैकुण्ठके इस अन्त:पुरमें दो प्रकोष्ठ हैं एक प्रकोष्ठमें गोलोक है जहां मधुर रस नित्य स्वकीय भावात्मक है। दूसरे प्रकोष्ठमें वृन्दावन है जहां मधुर रस नित्यपरकीय भावात्मक है।

औदार्य्य प्रचुर भगवत स्वरूप द्विभुज और कभी षड्भुज मूर्तिसे वैकुण्ठके अन्तर्गत नवद्वीप प्रकोष्ठमें भक्त भावात्मक औदार्य्य रस विशेषसे अपने रस योग्य परिकरोंके साथ जीवाचार्य्य स्वरूपसे नित्य विराजमान है।

१४०१ शकाब्द के फाल्गुनी पूर्णिमाके सन्ध्याके बाद औदार्य्य प्रचुर भगवान् श्री चैतन्यदेव गौड़देशमें गंगातीरपर प्रपञ्चगत स्वीयधाम नवद्वीपमें श्री जगन्नाथ मिश्रकी पत्नी श्री शची देवीके गर्भसे अवतीर्ण हुए। और उन्होंने शिशुकालके वयसोचित बालचपलता, पौगण्ड वयसमें विद्याभ्यासादि, कैसोर वयसमें विवाह, माध्व सम्प्रदायी वैष्णव श्री ईश्वरपुरीके पास दीक्षा ग्रहण और कीर्त्तन प्रचार द्वारा समस्त गौड़ भूमिका आनन्द विधान किया।

चौबीश वर्षकी अवस्थामें केशव भारतीसे सन्यास ग्रहण करके पहले छ: वर्षोंमें पाश्चात्य, गौड़ तट, दाक्षिणात्य प्रभृति देशोंमें पवित्र हरिभक्तिका प्रचार और शुद्ध हरिभक्तिके विरुद्ध समस्त मतोंका खण्डन किया और अन्तिम अठारह वर्षों तक श्री पुरुषोत्तम क्षेत्रमें अपने पार्षदोंके साथ रहते हुए श्री रूप सनातन प्रभृति प्रचारकोंके द्वारा बहुत देशोंमें अपने "अचिन्त्य भेदाभेद" मतका प्रचार किया, और अपने बनाए हुए शिक्षाष्टकके प्रेमरसका पान कराते हुए जीवोंको कर्त्तव्यता विधान की।

श्री कृष्णदास गोस्वामी श्री चैतन्यचरितामृतकी अन्त्य लीलाके २०वें परिच्छेदमें लिखते हैं:—

पूर्वे अष्ट श्लोक करि लोक शिक्षा दिल।
सेइ अष्ट श्लोक आपने आस्वादिल ॥
प्रभु शिक्षा अष्ट श्लोक येह पढ़े सुने।
कृष्ण प्रेम भक्ति तार बाढ़े दिने दिने ॥

प्रभुने जिन आठ श्लोकोंका प्रचार किया था, उनके तात्पर्यकी व्याख्या करता हूँ।

(१)

जिस श्री कृष्ण संकीर्त्तनके द्वारा जीवोंका चित्त-दर्पण मार्जित होता है, भवरूप महादावाग्नि बुझ जाती है, श्रेय रूप कुमुद विकाशक भाव चन्द्रिका वितरित होती है और जो विद्या वधूके जीवन स्वरूप आनन्द समुद्रको वर्धन करने वाला है, पद पदपर पूर्णामृतका आस्वादन कराने वाला है एवं शुद्ध जीवके समस्त स्वरूपको स्निग्ध करने वाला है वह श्रीकृष्ण नाम, रूप, लीला संकीर्त्तन सर्वोपरी उपयुक्त हो।

इस श्लोकके द्वारा परम औदार्य्य विग्रह निखिल जीवनाचार्य्य श्री मन्महाप्रभु समस्त तत्वोंको बतलाते हुए जीवगणको आशीर्वाद करते हैं। पूर्वोक्त परमतत्वके अन्तर्गत तटस्था शक्तिसे पैदा हुए जीवके सम्बन्ध ज्ञानकी सिद्धिके लिये "चेतोदर्पण मार्ज्जनम् भवमहादावाग्नि निर्वापणम्" इस चरणकी उक्ति हुई है। स्वरूप सिद्धि क्या है? जीव स्वभावतः तटस्थ अर्थात् स्वरूपानन्दरूप वैकुण्ठ और विरूपानन्द रूप माया वैभव इन दोनों अवस्थाओंके योग्य है।

परेश वैमुख्यवश होनेके कारण उसने मायामें प्रवेश किया है, और विशुद्ध चिदभिमान रूप विशुद्ध अहंकार विकृत होकर जड़ाभिमान रूप विकारके द्वारा शुद्ध चितत्व जड़मलसे ढक गया है।

कृष्णानुशीलनके द्वारा चित्तका अविद्यामल दूर होनेसे चित्त दर्पणमें स्वरूप तत्वका विशुद्ध दर्शन होता है इसी अवस्थाका नाम स्वरूप सिद्धि है।

इस सिद्धिके अवान्तर फलसे सुख दुःखका नाश हो जाता है। जीव इससे माया स्वरूप वैधर्म्मको परित्याग करके स्वरूपशक्तिका आश्रय लाभ करता है, भगवत् स्वरूप, जीवस्वरूप, माया-स्वरूप और मायान्तर्गत भूत, भविष्यात्मक काल और कर्म्म स्वरूप ज्ञानको सम्बन्ध ज्ञान कहते हैं।

"श्रेयः कैरव चन्द्रिका वितरणम्" इस अर्द्धपद के द्वारा अभिधेयतत्त्वरूप साधन भक्तिका उल्लेख किया है। कर्म्म ज्ञानादिके द्वारा जीवका नित्य मंगल-साधन नहीं हो सकता है। केवल हरिभक्तिके द्वारा ही यह साधित होता है।

सतसंगके द्वारा इस प्रकारकी शास्त्रार्थ अवधान-रूपा श्रद्धाके उत्पन्न होनेसे जीव साधु गुरुपदाश्रय करके श्रवण कीर्त्तन, विष्णुस्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन रूप नवधा भक्तिका अवलम्बन करके श्रीकृष्ण संकीर्त्तन करता है। और इसी संकीर्त्तनसे परविद्याकी परम-ज्योति प्रकाशित होकर जीवका श्रेय साधन करती है।

साधनाङ्गके द्वारा पहलेकी जनमी हुई श्रद्धा वा भगवन्माधुर्य्य लोभ जिस समय परिपक्व होकर निष्ठा, रुचि, आसक्ति इत्यादि अवस्थाओंको पार करके भावदशा प्राप्त होती है उस समय स्वरूपतः जडोद्भूत स्थूल और लिङ्गरूप औपाधिक देहद्वय आत्माभिमान शून्य हो जाता है और पूर्व सिद्ध चित् स्वरूप और रसाधिकार विशेषसे इस योग्य चिद्देह प्राप्त होता है।

मधुर रस विशिष्ट जीवगण अपना रस योग्य गोपीदेह लाभ करके माधुर्य्यमय श्री वृन्दाबन धाम में कृष्ण लीलाके उपकरण हो जाते हैं।

यहां पर स्वरूप शक्ति विद्याके प्रभावसे जीवका गोपीभाव प्राप्त करना ही स्वरूपतः विद्यावधूत्व प्राप्त करना है। उस समय जीव विद्यावधू होकर श्रीकृष्ण कीर्तनको जीवन स्वरूपसे वरण करता है।

भावदशा क्रमशः चिद्धामका विभाव अनुभाव, सात्विक और व्यभिचारी रूप चित्त सामग्रीके द्वारा परिपुष्ट होकर चिदेकरसता लाभ करता है। ऐसे समयमें जीवकी आनन्दाम्बुधि स्वभावतः परिवर्द्धित होती है और चिद्रसकी नित्यता धर्म्मके द्वारा भूत भविष्यत रूप जड़मल दूर हो जाता है। और उसके लिये सदाही वर्तमान कालकी नवीनता रहती है अतएव अनुराग लब्ध जीवको पग पग पर श्रीकृष्ण संकीर्त्तन पूर्णामृत स्वादनरूप होता है इस अवस्थामें गुण गुणी भेदभाव जनित विशुद्ध चिन्मय तत्वात्मक जीव विशुद्ध अहंकार चित, मन, बुद्धि देह, इन्द्रियविशिष्ट अणु-चैतन्य स्वरूपमें रहता है।

ऐसी अवस्थामें जो कृष्णकीर्त्तन होता है वह सर्वात्मस्नपन रूप अवस्था है अर्थात् स्वरूप साक्षात्कार समयमें ब्रह्मलय वा स्वीय सम्भोगसुख रहित सच्चिदानन्द युगल स्वरूपकी सेवाही जीवके सिद्धसत्ताका हर समयका साथी है। यही प्रयोजन तत्व है।

इस प्रकार सम्बन्धाभिधेय प्रयोजन ज्ञानसे मार्जित शुद्धभक्ति स्वरूप श्रीकृष्ण संकीर्त्तन ही का सर्वत्र प्रयोजन है।

यहांपर श्लोकके चतुर्थ पाद में "परम" शब्दके द्वारा ऐसे धर्म्म ज्ञानान्तर्गत हरि कीर्त्तनका जो भुक्ति और मुक्तिकी साधनाके लिये की जाती है अनादर हुआ है।

श्री कृष्ण संकीर्त्तन चार प्रकारका है नाम संकीर्त्तन, रूप संकीर्त्तन, गुण संकीर्त्तन और लीला संकीर्त्तन।

परमार्थरूप वस्तु का नाम ही उसके अनुभवका मूल है। नामके पूर्णरूपसे उदित होनेसे उसके गुण समूहका उदय होता है। गुणके सम्पूर्ण रूपसे उदित होनेसे लीला मालूम होती है अतएव नामही सबका मूल एवं समस्त सिद्धियोंका एकमात्र कारण है।

नामही क्रमशः रूप गुण लीलारूप में परिणत हो जाता है अतएव नामको छोड़कर बद्ध और मुक्त दोनों प्रकारके जीवोंकी दूसरी गति नहीं है।

प्रभुके सभी उपदेश नामको ही लक्ष्य करते हैं।

(२)

श्रीमनमहाप्रभु कहते हैं हे भगवन! आपने जीवोंके प्रति अपार करुणा प्रकाश कर अनेक नामका प्रकाश किया है कृष्ण, गोविन्द, अच्युत, प्रभृति मुख्य नामोंमें जिनका अधिकार नहीं होता है उनके लिये परमात्मा, पाता, नियन्ता ब्रह्म प्रभृति अनेक गौण नामका प्रकाशित किया है।

उन समस्त नामोंमेंसे मुख्य नामोंमें समस्त शक्ति एवं गौण नाम समूहोंमें अनेक प्रकारके पापनाशक भुक्ति मुक्तिफल देने वाली शक्ति दे रखी है, जीवकी अयोग्यताका विचार करके अपने नामके लेनेमें देशकालादिका कोई नियम नहीं रखा है। यह सब तुम्हारी कृपा है किन्तु हम अपने दुर्भाग्यकी बात क्या कहें। तुम्हारे ऐसे मधुर नाममें मेरा अनुराग नहीं हुआ।

नाममें समस्त शक्ति है जरूर किन्तु दस प्रकार के नाम अपराध रूप दुर्दैव दूर नहीं होनेसे नाममें जीवकी रुचि नहीं होती।

साधु निन्दा, भगवान कृष्ण और उनकी विभूति शिवादि देवताओंमें भेदबुद्धि, गुरु के प्रति अवज्ञा वेद और उनके अनुगत शास्त्रोंकी निन्दा, हरिनाम में अर्थवाद नाम बल पर असत प्रवृत्ति: अन्यशुभ कर्म्मो के साथ हरिनाम की समानता, बहिर्मुख और

श्रील प्रभुपादकी पत्रावली—(तृतीय खण्ड)

आचार्य-प्रकट तिथिमें श्रील प्रभुपादकी पत्रावलीका तृतीय खण्ड प्रकाशित हुआ है । प्रत्येक पत्र विशेष शिक्षाप्रद व सारगर्भ उपदेशसे परिपूर्ण है । हमलोग प्रत्येक मंगलकामी व सत्यका अनुसन्धान करनेवाले व्यक्तिको इस पत्रावलीको पाठ करनेका अनुरोध करते हैं ।

श्रीचैतन्यदेव

श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके [illegible] बंगालकी राजनैतिक अवस्था, अर्थनैतिक अवस्था, विद्या, साहित्य व सामाजिक अवस्था, धर्मजगत्‌की [illegible] सम्प्रदायिक पूर्वपक्षोंकी अवस्था, नवद्वीपका परिचय व [illegible] और प्रमाणिक ग्रन्थ व [illegible] गया है । ग्रन्थमें अनेक चित्र व [illegible] लिये यह ग्रन्थ उपयोगी व प्रीति [illegible] प्राप्तिस्थान—श्रीगौड़ीयमठ [illegible], कलकत्ता । श्रीमाध्वगौड़ीयमठ, पो० वोयारी, ढाका ।

सरस्वती जयश्री

गौड़ीय-वैष्णवाचार्य ॐ विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादका भुवनके मंगलदायक जीवनचरित ग्रन्थ है । निर्मत्सर शुद्धभक्ति पिपासु व्यक्ति इस ग्रन्थके पाठसे युगपत् अनेक शास्त्रग्रन्थ पाठ व अनेक साधुसङ्गका फल लाभ कर सकेंगे । वैभवपर्वका प्रथम खण्ड रायल ८ पेजी आकारमें एन्टिक कागजपर उत्तमरूपसे मुद्रित, ३६० पृष्ठोंमें । विस्तृत सूचीपत्रके साथ इसमें अनेक चित्र भी दिये गये हैं । भिक्षा ४)

'सामयिक-संख्या'—गौड़ीय

सामयिक संख्या गौड़ीय अनेक त्रिवर्ण व एकवर्ण चित्र-शोभित व अनेक श्रेष्ठ वैष्णवसाहित्यिकगणोंकी गवेषणापूर्ण प्रबन्धसे सुमण्डित होकर प्रकाशित हुई है । श्रीधाम-मायापुरमें श्रीश्रीगौरजन्मोत्सवके उपलक्षमें सर्वसाधारणोंके लिये भिक्षा ||) आना ।

ठाकुर भक्तिविनोद

श्रीरूपानुगशुद्धभक्ति स्रोतके प्रवाहका मूल पुरुष ॐ विष्णुपाद श्रील ठाकुर भक्तिविनोदका जीवनचरित व शिक्षामाला बहुत सरल भाषामें बड़े बड़े अक्षरोंमें मुद्रित । भिक्षा ।|।) मात्र । प्राप्तिस्थान—कलकत्ता (बागबाजार) श्रीगौड़ीयमठ व ढाका—श्रीमाध्वगौड़ीय मठ ।

अणुभाष्यम्

चार अध्यायी ब्रह्मसूत्रके प्रत्येक अधिकरणका तात्पर्य श्रीमन्मध्वाचार्य-कृत श्लोकाकारमें बहुत संक्षेपमें बना हुआ । बंगभाषामें सर्वप्रथम संस्करण । पहले प्रति अध्यायके प्रति पादका श्रीमन्मध्वाचार्यविरचित अणुभाष्यमूल, उसके बाद प्रति अध्यायके पतिपादका सूत्र-समूह, अणुभाष्य-मूलका बंगला अनुवाद व श्रीपाद राघवेन्द्रयतिविरचित तत्त्वमञ्जरी टीका, उसका बंगला अनुवाद व तात्पर्य इस क्रमसे पुस्तक मुद्रित हुई है । इसके अतिरिक्त मातृका क्रमसे ब्रह्मसूत्र समूह, उसका अध्यायांक, पदांक व सूत्रांकके साथ सूचीपत्रभी संयोजित हुआ है । भिक्षा २) मात्र ।

Printed by :—Mukunda Madhab Das Brahmachari, at the Ramesh Printing Works and published by him from Sree Gaudiya Math, Mithapur, Patna.

Regd. No. P. 468.

वर्ष ५] श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः संख्या ९]

भागवत

एकमात्र
पारमार्थिक
मासिक पत्र

५ पद्मनाभ
गौराब्द
४५३

आश्विन कृष्ण ५
संवत
१९९६ वि०



प्रति संख्या ~)॥ | वार्षिक १)

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥१॥

जिससे इन्द्रिय ज्ञानातीत श्रीकृष्णमें श्रवणादि-लक्षणा फलाभिसन्धान-रहिता ऐकान्तिकी स्वाभाविक निरपेक्षा भक्ति उदय होती है, वही मानव जातिका सर्वश्रेष्ठ धर्म है— उसी भक्तिके बलसे अनर्थ शमन होनेपर आत्मा प्रसन्नता लाभ करता है ।

सम्पादक—उपदेशक पं० श्री रूपविलास ब्रह्मचारी भक्ति शास्त्री बी० ए० ।

Editor :—Upadeshak Pandit Sree Rupvilas Brahmachari, Bhaktishastri B A.

SREE GAUDIYA MATH Mithapur (Patna).

विषय सूची

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः



श्रीगौड़ीयमठ, मीठापुर (पटना)

वर्ष ५ — संख्या ९

आश्विन कृष्ण ५, ४५३ सं० १९९६ वि०, ३ अक्टूबर सन् १९३९ ई०

प्रवृत्ति तथा निवृत्ति (३)

(ॐ विष्णुपाद श्रीश्रील ठाकुर भक्तिविनोद)

यहांपर प्रतिवादीलोग कुतर्क कर सकते हैं और पूछ सकते हैं कि परमेश्वर जीवोंको अपूर्व धाममें न रखकर इस असम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें क्यों रखे हुए हैं। यदि जीव उस धामके योग्य बनाये गये हैं, तब वे वहांपर क्यों नहीं रहे। इस विषयमें भी विश्वास तथा युक्ति उत्तर देगी। हे भागवत महोदयो! आप-लोगोंकी आत्मा निगूढ़ प्रदेशमें (हृदय कन्दरेमें) एकबार स्थिरचित्त होकर समाधियोगके द्वारा इस तत्वका विचार करें। समाधिके बिना अप्राकृत तत्व-का कोई भाव उपलब्ध नहीं होता। जो लोग समाधि-वृत्तिकी आलोचना नहीं करते, उन लोगोंके लिये आत्मतत्व नितान्त दुरूह है। समाधिके द्वारा जीव बाहरी दरवाजोंको बन्द करके अन्तर्वृत्ति द्वारा अप्राकृत धाममें विचरण करते हुए अप्राकृत तत्वोंका साक्षात् दर्शन करता है। जिस समय हमलोग समाधियोगमें उस परमपुरुष सच्चिदानन्द कृष्णके सन्निकटस्थ होकर साक्षात्कार प्राप्त करते हैं, उस समय हमलोगोंका अन्तःकरण परमप्रेमसे उत्फुल्ल (आनन्दित) होता है। किन्तु उस समय हमलोगोंके पूर्वकृत किसी अपराधके लिये अनुताप उपस्थित होता है। हमलोगोंका उस समय भोगेच्छा द्वारा माया-स्वीकाररूप जो अकार्य, वह स्मरणपथारूढ होकर हमलोगोंको विलज्जित तथा सन्तप्यमान करता है। हमलोग उस समय विवेचना करते हैं कि हाय! हमलोगोंने क्यों ऐसे अपूर्व पूर्णानन्दका परित्यागकर मायाके क्षुद्रानन्दमें प्रवेश किया था। ऐसे दयालु

परमेश्वरको परित्यागकर सामान्य जड़सुखकी वाञ्छा की थी। किन्तु परमेश्वर कैसे दयालु हैं! वे हमें परित्याग नहीं कर अपने धामके सहित हमारे निकट वर्त्तमान हैं। हम जिस अवस्थामें पतित क्यों न हों, वे स्व-स्वरूपमें हमारे साथ साथ हमारे पीछे पीछे गमन करते हैं। हमारे केवल दृष्टिपात करनेकी आवश्यकता है। इस प्रकारका भाव समाधिमें हमलोगोंके मनमें निरन्तर उदित होता है। इसका कारण क्या है? हमलोग किसी न किसी समय ईश्वरके निकट अपराधी हुए हैं, यही प्रत्यक्ष मालूम पड़ता है। स्वतः सिद्ध आत्म-प्रत्यय (विश्वास) होनेसे वार्त्ताओंका केवल बीज पाया जाता है, वार्त्ता नहीं जानी जा सकती। इस बीजसे युक्ति तथा शास्त्र विचार द्वारा समग्र वार्त्ता संगृहीत होती है। महाप्रभुने सनातनसे कहा था—

कृष्ण-नित्यदास जीव ताहा भूलि गेल।
एइ दोषे माया तार गलाय बाँधील॥

उपरोक्त उपनिषद स्वरूप प्रभु-वाक्य द्वारा क्या संगृहीत हुआ? मालूम पड़ता है कि जीव किसी समय अपने स्वाभाविक कृष्णभक्तिकी विस्मृति करके भोगेच्छाद्वारा मायाके हाथमें पड़कर इस ब्रह्माण्ड कारागारमें बन्द होनेके सदृश ठहरा हुआ है। असम्पूर्ण मायिक ब्रह्माण्डमें यत्किञ्चित इन्द्रिय-सुखभोगके द्वारा जीव समय बिता रहा है। इस ब्रह्माण्ड में की अवस्थिति-कालको जीवोंका दण्डकाल कह सकते हैं। जीव अपने कर्मफलसे इस स्थानमें नानाप्रकारका दुःख भोग रहा है। इस ब्रह्माण्डमें हमलोगोंकी जितनी प्राकृत उन्नति होती है, उतनीही बन्धनकी दृढ़ता होती जाती है। यह स्वीकार करना होगा। इस ब्रह्माण्डकी उन्नतिसे हमलोगोंके सुखका कोई कारण नहीं है। जीवकी इस पतित अवस्था को, जो एक निश्चित सत्य है, सभी देशके शास्त्र-वेत्ता स्वीकार करते हैं। ख्रीष्ट धर्ममें आदमका पतन जिस प्रकार हुआ था, उसको आपलोग जानते हैं। ज्ञान-वृक्षका फल-भक्षणही उसके पतनका कारण था। कृष्णके अधीनत्वको परित्यागकर जो अपने ज्ञान द्वारा स्वाधीन होकर भक्ति-सुखको छोड़ देते हैं, उसका और मङ्गल कहां? जीव कृष्णदास्यत्व परित्यागकर शैतान अर्थात मायाके हाथमें पड़कर इस ब्रह्माण्डमें दुःख पा रहा है, यह कुरानमें भी स्वीकार किया गया है। जीवका स्वतः सिद्ध सन्तापका मूलही समस्त विवरणमें देखा जाता है। यद्यपि स्वतः सिद्ध विश्वास करनेके उपरान्त भी कोई विशेष सत्यका आविष्कार नहीं किया जाय तो हमलोगोंकी युक्तिशक्तिका क्या फल हुआ? हमलोग पशुओंसे किस विषयमें श्रेष्ठ हुए?

यहांपर प्रतिवादी प्रश्न कर सकते हैं कि जीव क्यों ईश्वरका दासत्व भूल गया तथा परमेश्वरहीने किस कारण उसको इस प्रकार भूल जानेकी योग्यता दी थी। इस विषयके विचारमें प्रवृत्त होनेसे पहले यह जानना चाहिये कि समस्त ज्ञानका आकर जो स्वतः सिद्ध आत्म-प्रत्यय (विश्वास) है वह कभी भी समाधि छोड़कर विवेचित नहीं हो सकता। अतएव हे भागवत! आपलोग और एकबार समाधियोगके द्वारा आत्माके अन्तःपुर धाममें प्रवेश कीजिये। अप्राकृत तत्त्वस्वरूप भगवद्दीपिका वहांपर निरन्तर सङ्कर्षण-मुखसे सुनी जाती है। जिस प्रकार सनकादि ऋषियोंने भगवान सङ्कर्षणके निकट सात्वती श्रुति भागवत श्रवण किया था आपलोगभी उसी प्रकार श्रवण कीजिये। विशुद्धसत्त्वमय आत्मावाले सङ्कर्षण अनन्त कहते हैं—श्रवण करो, परमेश्वर सर्वमङ्गलमय हैं। उन्होंने जीवोंकी अनन्त उन्नतिको

कल्पनाकर जीवके स्वभावको अपने दासत्वमें परिणत किया है। कृष्ण-दासत्व ही जीवका स्वभाव हुआ। दासत्व-सुखमें जीव परमानन्दसे कालयापन करने लगा। किन्तु जीवका जो अगत्या दासत्व, उससे जीवको किसी विशेष गौरव नहीं रहनेके कारण अधिकतर उन्नतिका अधिकारी नहीं हो सकता। परमकरुणामय जगदीश्वरने जीवको स्वाधीनता रूप एक अपूर्व रत्न दान किया। उस स्वाधीनताका सद्व्यवहार करके जो सब जीवोंने ईश्वर-सेवामें अधिकतर भक्ति की वे उन्नत अवस्थाके अधिकारी हुए। किन्तु जिन जीवोंने उस स्वाधीनताका असद्-व्यवहार करके भोग-कामना करके दासत्वको छोड़ दिया, उन्होंने गुणमयी मायासे आकर्षित होकर मायाके अपकृष्ट सेवामें रत होकर [illegible], अपने सुख भोग करनेके लिये भोगायतन स्थूल देहका आकार जगतमें प्रवेश किया। यह वृत्तान्त पूर्व उपाख्यानमें मिलेगा। जो लोग परमेश्वर पर विश्वास करते हैं किन्तु इन विषयोंके विचारमें प्रवृत्त नहीं होते, वे इस प्रकारके सिद्धान्तमें रह जाते हैं।

केवल परमेश्वरकी असीम कृपामें विश्वास करके जो भजनानन्दमें कालयापन करते हैं, वे निर्बोध होकर भी सुखी हैं तथा जो तत्त्वका विचार करके इस प्रकार सिद्धान्त करते हैं, उनलोगोंका भी दुःख अपगत होता है, किन्तु जो व्यक्ति इन दोनोंके मध्यमें हैं वे अत्यन्त दुःख पाते हैं। जैसे

यश्च मूढतमो लोके यश्च बुद्धेः परं गतः।
तावुभौ सुखमेधेते क्लिश्यत्यन्तरितो जनः॥

हे भागवत महोदय! [illegible] जीवके क्लेशका कारण [illegible] है? परमेश्वरने [illegible] प्रकाश करके हमलोगोंके [illegible] जगतमें भी [illegible] किया है। अहो! [illegible] भजनलीलाका जो [illegible] है, [illegible] होनेसे जीवका [illegible] हो सकता है? [illegible] मङ्गल क्या हो सकता है।

शिक्षाष्टक (२)

(ॐ विष्णुपाद श्री श्रील भक्तिविनोद ठाकुर)

उक्त चारों लक्षणोंसे युक्त निरपराधनाम ग्रहण करनेसे अहैतुकी, उत्तमा, केवला श्रद्धा, अमिश्रा, अकिञ्चना निर्गुणा इत्यादि विशेषणोंसे युक्त भक्ति प्राप्त होती है।

किन्तु जीवकी बद्धावस्थामें दो व्यतिरेक लक्षण देखे जाते हैं। उन लक्षणोंसे युक्त होनेसे भक्ति शुद्धा होती है। अन्याभिलापशून्यता और ज्ञान कर्मादिसे अनासक्तता ही भक्तिके व्यतिरेक लक्षण हैं।

(४)

इसी तत्त्वको अच्छे प्रकारसे सिखलानेके लिये श्री श्री महाप्रभु कहते हैं—"हे जगदीश! मैं धन, जन वा सुन्दरी कविताकी प्रार्थना नहीं करता किन्तु जन्म जन्ममें प्राणेश्वर रूप तुममें हमारी अहैतुकी भक्ति रहे" यही प्रार्थना है।

वर्णाश्रमधर्म्मप्रवृत्त धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इत्यादि मैं नहीं चाहता हूँ। देह वा देहानुगत स्त्रीपुत्र कलत्र प्रजादिरूप जन भी मैं नहीं चाहता। कृष्ण

भक्तिकी पोषण करनेवाली विद्याको छोड़कर सामान्य व्याकरणादि अलङ्कार, काव्य, नाटकादिकी रचना-शक्तिके लिये बहिर्मुख विद्या भी मैं नहीं चाहता। मैं चाहता हूं केवल फलानुसन्धान रहिता शुद्धा भक्ति। यही मेरी प्रार्थना है।

संसार-दुःखका नाश एवं चित्स्वरूपलाभरूप मोक्ष तो भक्तोंको अनायास ही प्राप्य हैं, ये तो भक्ति के अवान्तर फल हैं। इसके लिये प्रयास वा प्रार्थना द्वारा भक्तिके स्वरूपको दूषित करना उचित नहीं है।

जिस समय जीव को जड़मोचनकी योग्यता प्राप्त होगी उस समय कृष्ण कृपाके द्वारा वह अवश्य ही प्राप्त होजायगा। अतएव भक्तगण जन्म जन्ममें अहैतुकी भक्ति लाभ करें इतनाही वासना करें और दूसरी वासना न करें।

संसारके दुःखविषयकी आलोचना क्या नितान्त अकर्तव्य है? नहीं। ऐसी बात नहीं है।

भक्ति भावको विशुद्धरूपसे रखकर जहां तक संसार-मोचनके विषयकी आलोचना की जा सकती है साधक वहां तक उस विषयकी आलोचना कर सकते हैं। सिद्धान्त यही है कि श्रीकृष्णके निकट संसारके दुःख-मोचनकी प्रार्थना कदापि नहीं करनी चाहिये।

(५)

प्रार्थना केवल इस प्रकार होनी चाहिये कि हे माधुर्य्यरसविग्रह श्री नन्दननन्दन! मैं तुम्हारा नित्यदास हूँ तुमको भूल जानेसे माया वैभवमें कर्म्मजालमय विषम-भव समुद्रमें गिर गया हूँ। इस अवस्थामें मैं जितनीही चेष्टा करता हूं उतनाही तुम्हारा चरणाश्रय मुझसे सुदूरवर्ती हुआ जाता है। तुम्हारे कृपा नहीं करनेसे तुम्हारी अकृत्रिम दासता रूप मेरा स्वधर्म्म मेरे लिये सुलभ नहीं हो सकता। हे करुणामय! मुझे अपने पाद पद्मकी धूल बना कर रखो ऐसा होनेसे मैं तुम्हारी बहिर्मुखतारूप मायामें आबद्ध नहीं होऊंगा।

इस प्रकार प्रार्थना करते ही वह करुणामय जिस समय अपना चरणाश्रय देंगे उस समय जीवको और क्लेश नहीं रह जायगा।

(६)

पूर्व पांच श्लोकोंमें सत्सङ्गके साथ साथ कृष्णानुशीलन करनेवाली श्रद्धा, उसके उपरान्त साधुगुरु-चरणाश्रय, तब श्रवणकीर्तनादिमय भजन, उससे स्वरूपोपलब्धिवर्जानित अविद्यारूप अनर्थ-नाश, तदन्तर निष्ठा, उससे रुचि, उससे आसक्ति और आसक्तिके परिपक्व होने पर भाव वा रति ह्लादिनीसारवृत्तिको आश्रय करके उदित होती है; यही क्रम चला आरहा है। भावदशामें भक्तिका अखण्ड एकस्वरूपत्व सिद्ध होता है। नाम-कीर्त्तन उस समय अत्यन्त प्रबल होता है। शान्ति, अव्यर्थकालत्व, विरक्ति, मानशून्यता, आशाबद्ध, समुत्कण्ठा, नामगान करनेमें रुचि, कृष्णगुणगान करनेमें आसक्ति तथा कृष्णधाममें प्रीति इत्यादि रतिके लक्षण होते हैं। भाव वा रति शुद्धसत्वविशेष प्रेमरूप सूर्यकी किरणों का परमाणु है अर्थात् प्रेमकी प्रथमावस्था है। उसके उदय होनेसे नृत्य, लोटपोट, गीत, चित्कार, शरीर-मोटन, हुंकार, जम्हाई, प्रभूतस्वास, लोकापेक्षाशून्यता, लालास्राव, अट्टहास, घूर्ण तथा हिक्का यह सब अनुभाव तथा स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, स्वरभेद, कम्प, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलयरूप अष्ट सात्विक विकार कुछ कुछ देखनेमें आते हैं। उनमेंसे नृत्य, गीत, अश्रु, पुलक और स्वरभङ्ग विशेषरूपसे देखनेमें आते हैं।

अतएव उसदशाकी उपलब्धिकी प्रार्थनाके बदले साधक इस प्रकारकी लालसा करते हैं:—"हे गोपीजनवल्लभ ! तुम्हारा अमृतमय नाम उच्चारण करते करते कब मेरी दोनों आंखोंसे अश्रुधारा बह चलेगी। मेरा बदन गद्‌गद्‌भावसे कब स्वरभङ्गरूप विकार लाभ करेगा और मेरा समस्त शरीर पुलकित होता रहेगा ? हे नाम ! मैं भोगमोक्ष प्रार्थना नहीं करता उसी सर्वानन्दविस्तारिणी भावदशा की प्रार्थना करता हूं।"

(७)

रतिरूपा साध्यात्मिका भक्ति प्रेम दशामें विभाव, अनुभाव, सात्विक और व्यभिचाररूप भावचतुष्टयके द्वारा परिपुष्ट होकर भक्तिरसरूपमें परिणता होती है। उस समय पूर्वोक्त अनुभाव और सात्विक विकार सम्पूर्णरूपसे देखनेमें आते हैं। ममतातिशयद्वारा भक्तका अन्तःकरण भलीभांति मसृण तथा घनीभूत और भावमय होकर प्रेमका आधार हो जाता है। उस समय भक्तिरसके आश्रय जो भक्त तथा विषयरूप जो कृष्ण हैं उनदोनों-में मुख्य सम्बन्ध—बुद्धि भेदसे शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा मधुर यही पांच प्रकारके मुख्यरस तथा उनदोनोंके गौण सम्बन्धसे हास्य, अद्‌भुत, वीर, करुण, रौद्र, भयानक और वीभत्स यही सात गौणरस देखनेमें आते हैं। जिस जीवकी जिस रसमें रुचि हो उसके लिये वही रस आश्रयणीय है। किन्तु मधुर रस ही सर्वोत्कृष्ट है। उसमें प्रेम, प्रणय, मान, स्नेह, राग, अनुराग और महाभाव सम्पूर्ण-रूपसे अवस्थित हैं। शान्त रसमें उल्लासमयी प्रीति रति अवस्थामें देखनेमें आती है। उस अवस्थामें उस विषयको छोड़कर अन्य विषयोंमें तुच्छताका विचार रहता है। रति ममतातिशययुक्ता होनेसे प्रेमरूपमें दास्यरसमें देखा जाता है। उस अवस्थामें प्रीतिभङ्गकारी हेतुसकल कार्य नहीं कर सकता। नितान्त विश्वासमय प्रेम प्रणयरूपसे सख्यभावमें देख पड़ता है। उस अवस्थामें विषयका सम्भ्रम-योग्यता रहने पर भी सम्भ्रम नहीं रहता है। प्रिय-त्वका आतिशय्य प्रयुक्त कौटिल्याभासमय भाववै-चित्र्यका नाम मान है। उस अवस्थामें भगवान भी प्रेममय भयको स्वीकार करते हैं। चित्तके अतिशय द्रवभावमय प्रेमको स्नेह कहते हैं। उस अवस्थामें महावाष्पादि विकार दर्शनसे अतृप्ति, विषयमें ऐश्वर्य्य रहनेपर भी अनिष्टकी आशङ्का होती है। मान और स्नेह वात्सल्यमें ही देखनेमें आता है, अर्थात् शान्त, दास्य तथा सख्यमें नहीं देखे जाते। अभिलाषात्मक स्नेहका नाम राग है। उस अवस्थामें थोड़ा विरह भी असह्य हो जाता है। संयोगपर दुःख भी सुख है। वही राग अनुक्षण अपने विषयीभूत तत्वको नये नये रूपसे अनुभव कराकर स्वयं नवनवभावसे अनुभूत होकर अनुराग नामसे परिचित होता है। उस अवस्थामें आश्रय तथा विषयका परस्पर अत्यन्त वशभाव रहता है। विषय-सम्बन्धसे अन्य प्राणीमें जन्म ग्रहण करनेकी लालसा होती है। विप्रलम्भमें अत्यन्त विस्फूर्त्ति होती है। असमोर्द्ध चमत्कार उन्मत्ततामय अनुरागको ही महाभाव कहते हैं। उस अवस्थामें संयोगके समय निमेषभी असह्य तथा कल्प भी क्षण जान पड़ता है। वियोगमें क्षणकल्पके ऐसा मालूम पड़ता है। योगमें भी वियोगसे उद्दाम अशेष सात्विक विकारादि उदित होते हैं। इन समस्त लक्षणोंका दिग्‌दर्शन श्री मन्महाप्रभुके वाक्योंसे होता है। "अहो ! गोविन्दविरहमें मुझे निमेष युगके समान बोध होता है, नेत्रोंसे वर्षाकालकी धारा चल

रही है तथा समस्त जगत शून्यवत् बोध हो रहा है।" जड़बद्ध जीवोंके लिये पूर्वरागमय विप्रलम्भ अत्यन्त उपयोगी है, यही कहा गया है।

(८)

प्रेमदशाप्राप्त जीवका ऐसा भाव होता है,—
मैं श्रीकृष्ण-चरणारविन्दको छोड़कर और कुछ नहीं जानता। वे कृपा करके मुझे आलिङ्गन करें अथवा चरणोंके नीचे मुझे मर्दन करके सुखी हों अथवा अदर्शन द्वारा मुझे मर्म्माहत करें। वे प्रेमलम्पट हैं। मुझे जिस प्रकार विधान करके वे सुख प्राप्त करें मुझे वही अवस्था स्वीकार है। कारण वे मेरे प्राणनाथ हैं दूसरे नहीं। प्रेमदशामें भक्तलोग कृष्णैकजीवन हो जाते हैं। उस समय भक्त तथा कृष्ण दोनोंके बीच आकर्षणरूप एक उभयसम्बन्धनिष्ठ परमधर्म उदय होता है। चुम्बक और लोहा जिस प्रकार परस्पर यथाविहित रखे जानेपर लोहा चुम्बककी ओर दौड़ता है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण-प्रति मार्जित चित्त विहित होता रहता है। यही जीव और कृष्णके बीचमें पूर्वसिद्ध धर्म है। जीवकी विमुखताके कारण यह धर्म लुप्तसा होकर विषय और आश्रयमें अवस्थित है। सामुख्य उदित होनेसे ही उस धर्मकी क्रियाका परिचय लक्षित होता है। वही धर्म साधन जीवका कार्य्य और उस धर्मके उदयको छोड़कर उसका और कोई फल नहीं है। श्रीकृष्णने गोपी लोगोंसे कहा है:—(भा: १०-३२-२२)

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां
स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः।
या माभजन दुर्जय-गेहशृङ्खलाः
संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना॥

इस शिक्षाष्टकमें श्रीमन्महाप्रभुने सम्बन्ध-अभिधेय-प्रयोजन-स्वरूप-ज्ञान-विज्ञान की सहायतासे साधनभावप्रेम-अनुसन्धानरूप परमतत्वकी आलोचनाका उपदेश दिया है,—हे जीव! यदि तुम्हारा भाग्योदय हुआ है, तब समस्त कर्मचेष्टा ज्ञानचेष्टा परित्याग करके तुम विशेष यत्नके साथ इस शिक्षाष्टक का अनुभव करो।

श्रीचैतन्यार्पणमस्तु।

दास

'दास' शब्द इस संसारमें अत्यन्त हेय और घृणित समझा जाता है किन्तु बैकुण्ठमें यह परमोपादेय है। वहां कृष्णही एक मात्र प्रभु हैं एवं उनकी कान्ता, पिता माता एवं बन्धु-बान्धव सभी उनके सेवक वा दास हैं। कृष्णही एकमात्र भोक्ता हैं, और उनके सिवाय सभी उनके भोग्य हैं। सभी एक साथ कृष्णेन्द्रिय तर्पणमें व्यस्त हैं। किन्तु इस संसारमें ठीक उसका उल्टा है। इस संसारके प्रभु-भृत्य, पिता-पुत्र, कान्त कान्ता सभी प्रभु अभिमानी हैं। इन लोगोंमें एक दूसरेका दासत्व करनेका दिखावा रहनेपर भी अन्तरमें प्रभु अभिमान ही प्रबल है। यहां कोई किसीके आधीन नहीं रहना चाहता, सभी अपना अपना सुख चाहते हैं। इसी लिये इस संसारमें परस्पर विवाद विसम्वाद और नाना प्रकारकी अशान्ति देखी जाती है। भगवानकी सेवामें कितना असीम सुख है यह हम लोगोंकी उपलब्धिका विषय नहीं होता। इसीलिये हम लोग दास्य सम्बन्धमें ऐसी विकृत धारणा पोषण करते हैं। शास्त्र कहते हैं—

"कृष्णदास अभिमाने जे आनन्द सिन्धु।
कोटी ब्रह्म-सुख नहे तार एक बिन्दु ॥"

भगवान् भोगकर जो सुख अनुभव करते हैं उससे अधिक आनन्द उनके सेवक सम्प्रदाय उनकी सेवा करके पाते हैं। कृष्ण दास्यकी इतनी महिमा है।

कृष्णके सिवाय सभी उनके भृत्य हैं इस कथा-का शास्त्रने तारस्वरसे कीर्त्तन किया है।

"एकला ईश्वर कृष्ण आर सब भृत्य।
जारे जैछे नाचाय से तैछे करे नृत्य ॥"

सख्य, वात्सल्य, मधुरादि सभी रसमें पूर्णदास्य विराजमान है।

कृष्णेर प्रेयसी व्रजेर जत गोपीगण।
जार पदधूली करे उद्धव प्रार्थन ॥
जा सवार उपरे कृष्णेर प्रिय नहीं आन।
तारा वो करेन कृष्णेर दासी अभिमान ॥

श्रीकृष्णके द्वितीय देह सभी विष्णु तत्वके मूल शक्तिमत्तत्व श्रीबलदेव नित्यानन्द प्रभुभी अपनेको सर्वदा गौर-कृष्ण दासही समझते हैं।

आपनाके भृत्य करि कृष्णे प्रभु जाने।
कृष्णेर कलार कला आपनाके माने ॥

यहां तक कि कृष्ण-दास्यमें इतना सुख है कि उस सुखका आस्वादन करनेके लिये भगवान कृष्ण भक्तभाव अङ्गीकार कर गौराङ्ग रूपसे इस संसारमें आये थे। कृष्ण दास्यकी इतनी महिमा है, कृष्ण दास्यमें इतना सुख है! अतः ऐसा मूढ़ कौन होगा जो ऐसा सेवासुखरूप परमानन्द प्राप्त करनेसे वञ्चित रहे? इसी लिये भक्तगण भूलसे भी कृष्णदास्यकी कथा विस्मृत नहीं करते।

बहुतसे लोग अज्ञतावश समझते हैं कि वैष्णव-का अर्थ है नौकर—नौकरानी या दास-दासी। क्योंकि वे इस जगतमें भी दास होना अर्थात् भगवानके अधीन रहना चाहते हैं और उस जगतमें भी अधीन अवस्थाको ही पसंद करते हैं। यदि इस लोक और परलोक दोनोंमें ही अधीन रहना हुआ तो लाभ क्या हुआ? मूर्खोंका यह विचार चाञ्चल्य उन लोगोंकी अज्ञताका ही परिचायक है। वे इस जगतकी धारणाको पर जगतमें ले जाना चाहते हैं। इसीलिये उन लोगोंकी ऐसी अवस्था है। किन्तु भगवत्सेवासुखमग्न बुद्धिमान व्यक्ति ऐसी मूढ़ताको प्रश्रय नहीं देते।

कृष्ण दास्यके असमोर्द्ध महिमाकी कथा हम-लोग कृष्णसेवावञ्चित होनेसे नहीं जानते। किन्तु शास्त्र कहते हैं—

अल्प करि ना मानिह 'दास' हेन नाम।
अल्प भाग्ये दास नाहि करे भगवान ॥
आगे हय मुक्ति तवे सव वन्ध नाश।
तवे से हइते पारे श्रीकृष्णेर दास ॥

हम लोगोंमें अनेकों व्यक्ति स्वाधीनता प्राप्त करनेके लिये व्यस्त हैं किन्तु प्रकृत स्वाधीनता किस प्रकार प्राप्त की जाती है इसका ज्ञान उन्हें नहीं है। इसीलिये हमलोगोंका परिश्रम और चीत्कारही सार होता है। इस संसारमें दास्य बन्धन और पराधीनता बड़ाही कष्टकर है। किन्तु उस जगतमें स्वराट पुरुषका दास्यही पूर्णतम स्वाधीनता है, पूर्णतम आनन्द वा पूर्णतम मङ्गल है। उसमें दुखकी कोई कथा नहीं है। यह दास्य कृष्णेन्द्रिय तर्पणपर है, निजेन्द्रिय तर्पणपर नहीं है। यहांके घृणित दास्यके साथ वहांके परमोपादेय दास्यका यही पार्थक्य है। वर्तमान श्री गौड़ीयमठही एकमात्र गुरुगौरानुगत्यमें कृष्णदास्यके असमोर्द्धत्व प्रचारमें दृढ़व्रत है।

हम लोगोंकी धारणा है कि इस संसारमें प्रभु होनाही वाञ्छनीय है, क्योंकि दास्य जीवनमें आज्ञाकारी कुत्तेके समान केवल कष्टही भोगना पड़ता है। सुतरां तारतम्य विचारसे दास्यकी अपेक्षा प्रभुत्वका ही आदर करना उचित है। सुकृतिवर्जित (सुकृतिहीन) भाग्यहीन हमलोग वैकुण्ठ और मायिक जगतका वैशिष्ट्य नहीं समझते हैं। इसीलिये इसके सम्बन्धमें हमलोगोंके हृदयमें नाना प्रकारके चिन्तास्रोत उपस्थित होते हैं। भगवद्दास्यही जो आत्माकी एकमात्र वृत्ति है—इस बातके साधु मुखसे न श्रवण करनेके कारण ही आनन्दके कङ्गाल हम लोग अविमिश्र सुख प्राप्त करनेका एकमात्र उपाय जो भगवत्सेवा है, उससे उदासीन रहकर भोग और त्यागमें सुखानुसन्धान करते हुए वञ्चित होते हैं।

भक्तगण सर्वदा सेवानन्दमें मत्त हैं। वे नित्य पूर्णकामा हैं। दुःखका लेश भी वहां नहीं है। परम दयालु और परदुःखदुःखी हैं। इसीलिये हमलोगोंको सेवासुख-प्रदानपूर्वक आनन्द समुद्रमें निमज्जित करनेके लिये वे इस जगतमें आगमन करते हैं। उन लोगोंके श्रीमुखसे हम लोग सुन पाते हैं—आत्मेन्द्रियतृप्तिकामी, भगवानकी सेवा विस्मृत होना उचित नहीं है। विष्णुदास्यमें लालसा ही जीव का मङ्गल उत्पादन करती है। साधु संगके प्रभावसे भगवानकी एकान्तिकी सेवा प्राप्त होनेसे जीवका परम मङ्गल होता है। भगवद्दास्यके बिना—भगवानके प्रीतिविधानके बिना—आनन्दमयके साथ नित्य सम्बन्धयुक्त न होने तक जीवको शान्ति प्राप्त करनेका और कोई उपाय नहीं। इसीलिये आज हमलोग हरिगुरुवैष्णवचरणमें उनका नित्यदास्य प्रार्थना कर रहे हैं एवं इसके लिये कर जोड़कर सभीको अनुरोध कर रहे हैं।—

प्रेमधन बिना व्यर्थ दरिद्र जीवन।
'दास करि' वेतन मोरे देह(दीजिये) प्राणधन॥
(चै० च०)

'आददानस्तृणं दन्तैरिदं याचे पुनः पुनः।
श्रीमद्रूपपदाम्भोजधूलिस्स्यां जन्म जन्मनि॥
"भवबन्धच्छिदे तस्मै स्पृहयामि न मुक्तये।
भवान प्रभुरहं दास इति यत्र विलुप्यते॥"
"मज्जन्मनः फलमिदं मधुकैटभारे
मत्प्रार्थनीय मदनुग्रह एष एव।
त्वद्भृत्य-भृत्य-परिचारक भृत्य भृत्य-
भृत्यस्य भृत्य इति मां स्मर लोकनाथ॥"

वैष्णव कौन पहचानेगा ?

श्री श्रीमन्महाप्रभुने वैष्णवका लक्षण इस प्रकार वर्णन किया है —

श्रद्धावान् जन हय भक्ति अधिकारी।
'उत्तम,' 'मध्यम,' 'कनिष्ठ'—श्रद्धानुसारी॥
शास्त्रयुक्तेय सुनिपुण दृढ़ा श्रद्धा याँर (जिसका)।
उत्तम अधिकारी सेइ तारये संसार॥
शास्त्र-युक्ति नाहि जाने दृढ़, श्रद्धावान्।
'मध्यम अधिकारी' सेइ महाभाग्यवान्
याहार कोमल श्रद्धा से कनिष्ठ जन।
क्रमे क्रमे तिंहो भक्त होइब उत्तम॥

पूर्वोक्तमतानुसार जिनके हृदयमें श्रद्धा हुई है, वे ही भक्तिके अधिकारी हैं। वेही श्रद्धावान् व्यक्तिगण उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ भेदसे त्रिविध हैं। जो

शास्त्र और युक्तिमें दक्ष होकर दृढ़-श्रद्ध हुए हैं वे उत्तमाधिकारी हैं, जो दृढ़ शास्त्रयुक्ति नहीं जानते, किन्तु श्रद्धावान् हैं, वे मध्यमाधिकारी हैं, और जिनकी श्रद्धा दृढ़ नहीं हुई है, वे कनिष्ठाधिकारी हैं। इस त्रिविध विभागके द्वारा केवल भक्त लोगोंकाही विभाग हुआ ऐसा नहीं, शुद्धभक्तिके अधिकारी व्यक्तिका भी विभाग हुआ। कनिष्ठ-श्रद्ध केवल 'कृष्णभक्ति अच्छी है' इतना ही मात्र विश्वास करते हैं, किन्तु शुद्ध कृष्णभक्ति क्या है एवं भक्तिके तटस्थ लक्षण द्वारा सिद्ध-प्रक्रिया क्या है, उसको नहीं जानते। इसीलिये कोमल श्रद्धालुओंके हृदयमें ज्ञानकर्मका मिश्र भाव पाया जाता है। उसके तिरोहित होनेसे साधक मध्यमाधिकारी होते हैं। फिर वही मध्यमाधिकार-गत श्रद्धा शास्त्रयुक्ति द्वारा जब दृढ़ीकृत होगी तब वे उत्तमाधिकारी होंगे।

जो भक्त ईश्वरमें प्रेम, भक्तमें मैत्री, मूढ़लोगोंपर कृपा एवं विद्वेषी लोगोंके प्रति उपेक्षा करते हैं, वे मध्यम भक्त हैं। जो लौकिक एवं पारिवारिक प्रथाक्रमसे परम्परागत श्रद्धाके साथ अर्च्चा-मूर्त्तिमें हरिकी पूजा करते हैं, किन्तु शास्त्रानुशीलन द्वारा शुद्धभक्तितत्त्व अवगत न होनेके कारण हरिभक्तोंकी पूजा नहीं करते,—वे प्राकृत भक्त हैं अर्थात् उन्होंने केवल भक्तिपथ मात्र आरम्भ किया है। वैसेलोगोंको भक्त-प्राय वा वैष्णवाभास प्रभृति शब्दोंसे वर्णन किया गया है।

तात्पर्य यह है कि जब वे ईश्वरके प्रति प्रेम, भक्तके प्रति मैत्री, मूढ़लोगोंके प्रति कृपा एवं भगवद्विद्वेषी और भक्तविद्वेषीकी उपेक्षा करनेमें समर्थ होते हैं तब वे शुद्धभक्तरूपसे मध्यमभक्तके मध्यमें परिगणित होते हैं। इसके बाद भजन करते करते जब उनका सर्वभूतमें भगवद्भाव एवं सभी भगवत्-पदार्थोंमें आत्मस्वरूपदृष्टि पड़ती है, उस समय उनका ईश्वर, तदधीन व्यक्ति, बालिश एवं विद्वेषीके प्रति भेदभाव नहीं रहता। उसी अवस्थामें वे भागवतोत्तम होते हैं।" (अमृतप्रवाहभाष्य) मध्यमभक्त श्रद्धावान् होनेपर भी शास्त्रादिमें उतने कुशल नहीं होते; और कोमल श्रद्धाविशिष्ट कनिष्ठ भक्त शास्त्रज्ञान विहीन होते हैं, अतः इन दो श्रेणियोंके भक्त उत्तम भागवतका स्वरूप किस प्रकार समझेंगे?

जिसको उत्तम समझकर जाना गया है एवं उसके अनुरूप सम्मान किया गया है, उसको अकस्मात बिना कारण अस्वीकार करनेसे वा लघु प्रतिपादन करनेकी चेष्टा होनेसे मध्यम और कनिष्ठके मध्यमें कोई गड़बड़ी आई है ऐसा समझना होगा। कनक, कामिनी वा प्रतिष्ठाकी वासना मनुष्यको अन्धा कर देती है, उस समय उसको और हिताहित ज्ञान नहीं रहता। अभक्त-सङ्ग उत्तमाधिकारीको अधःको कम नहीं कर सकता। किन्तु अभक्तगण यदि प्रपन्न हों तो उत्तमाधिकारीके सङ्गसे उत्तम हो सकते हैं; नहीं तो केला, मूलीकी चर्चा कर चले जानेसे कुछ लाभ नहीं होगा।

"आश्रय लइया भजे, तारे कृष्ण नाहि त्यजे, आर सब मरे अकारण"—इस महाजन-वाणीको भूलकर वा इसकी उपेक्षाकर स्वतन्त्रताके वशीभूत होना सर्वनाशका मूल है। कनिष्ठ वा मध्यम भक्तको सर्वदा उत्तम-भक्तका आश्रय आवश्यक है। किन्तु जहां अन्य प्रकारकी वासना है, वहां ही स्वतन्त्र होनेकी चेष्टा है। उत्तमभक्तके आश्रयमें रहनेसे अपनी स्वतन्त्रतावश स्वेच्छापूर्वक काम नहीं करने पायेंगे क्योंकि वे शासनके आधीन रखेंगे।

मनेर कथा गोरा जाने फाँकि केमने दिब।
सरल होले गोरा शिक्षा बुझिया लोइबे॥

बाहरसे लोगोंको दिखलानेके लिये भगवद् भजनकी चेष्टा करनेसे क्या होगा. अन्तर्यामी रूपसे श्रीकृष्ण हमलोगोंका स्वरूप पहचान लेते हैं। अत आसन ग्रहण नहीं करनेसे "स्वकर्मफलभुक् पुमान्"। यदि शुद्ध भागवतके मुखसे मनुष्य जन्मके सुदुर्लभत्वकी कथा सुनकर और 'काल विलम्ब न कर हरि भजन करो' यह वाणी सुनकर भी मेरी अन्य वासना यानी भोगवासना, मोक्षकामना, सिद्धिवासना वा देशभ्रमणादि काम हृदयमें उदित हो, और मैं बाहरसे हरिभजन करनेकी छलना दिखलाकर हृदयमें इन सब कामनाओंको पोसनेकी चेष्टा करूँ तो अन्याभिलापका प्रश्रय देना हुआ। स्वत शुद्धभक्तिसे बहुत दूर रहा।

सद्गुरुपदाश्रयकर भजन आरम्भ करनेसे अनर्थ निवृत्त होनेके पहले साधककी कई अवस्थाएं हैं, उसके मध्यमें 'तरङ्गरङ्गिणी' नामक अवस्था आनेसे लोग मुझपर बहुत श्रद्धा करते हैं, मेरी कथासे बहुत लोग आकृष्ट हो रहे हैं एवं मेरी लाभ-पूजा प्रतिष्ठा बहुत हो रही है, सुतरां उत्तम भागवतसे मैं क्या किसी अंशमें कम हूँ ?-- इस प्रकार अभिमान आकर हमलोगोंको और भी अनर्थके मध्यमें ले जाता है। मेरा यथेष्ट पाण्डित्य रह सकता है, मेरे वागाडम्बरसे आकृष्ट होकर बहुत लोग आ सकते हैं, किन्तु मेरी कितनी निष्ठा हुई है ? मैं क्या रुचि, आसक्ति वा भावदशामें उपनीत हो सका हूँ ? तब तो "कृष्णेर चरणे जबे उपजय राग। कृष्ण बिनु अन्यत्र तार नहे अनुराग।" इत्यादि बातें मुझमें पूर्णरूपसे देखी जायगी। किन्तु ऐसा न होकर यदि सचमुच ही अन्य वासनाएँ मेरे हृदयपर सोलहों-आना कब्जा किये रहें, तो समझना होगा कि मेरी इतने दिनों की साधन भजन चेष्टा भस्ममें [illegible]के समान निरर्थक हुई है; मेरे समान [illegible] अनर्थ-समुद्रमें निमज्जित व्यक्ति किस प्रकार [illegible] भक्तको पहचानेगा ? गौरशक्ति गदाधरके समान व्यक्तिने भी एकदिन पुण्डरीक विद्यानिधिको न पहचाननेका अभिनय कर हमलोगोंके समान महामूर्खोंको अभिमान-पङ्कसे उद्धार करनेकी [illegible] है। किन्तु मैं किसी प्रकारसे भी वह नहीं [illegible]। इसीलिये कहता हूँ, हे दुष्ट मन! श्रील [illegible] ठाकुर-की यह वाणी श्रवण करो--

विषय-मदान्ध सब किछु [illegible]।
विद्यामदे, धनमदे वैष्णव [illegible]॥
भागवत पड़िया वा कारो [illegible]।
नित्यानन्द निन्दा करे याइबेक नाश॥
प्रेम भक्ति हय प्रभु-चरणारविन्दे।
सेइ कृष्ण पाय जे वैष्णव नाहि निन्दे॥
निन्दाय नाहिक काय सबे पाप लाभ।
एतेके ना करे निन्दा यत महाभाग॥
अनिन्दुक हइ ये सकृत कृष्ण बले।
सत्य सत्य कृष्ण तारे उद्धारिबे हेले॥
वैष्णवेर पाय मोर एइ नमस्कार।
श्रीचैतन्य-नित्यानन्द हउक प्राण मोर॥

श्रवण और कीर्त्तन

भक्तिमार्गमें पहले ही साधुगुरु-मुखसे हरिकथा श्रवण एवं उसके बाद कीर्त्तन है। कीर्त्तन करनेवालोंके चेतनमय नहीं होनेसे अप्राकृतका कीर्त्तन नहीं होता। वैकुण्ठ वा वैकुण्ठशब्दके वक्ता अकिञ्चन हैं। वे शास्त्रयुक्तिपूर्ण चेतनमयी वाणीके द्वारा श्रोताका चित्त निर्मलकर अर्थात् उसको सभी

धमकी किञ्चनता परित्याग कराकर उसको भी अकिञ्चन बना सकते हैं। कीर्त्तनकारीको भगवानका पूर्णानुगत होना चाहिये— उन्हें भगवानका शुद्धभक्त होना चाहिये एवं श्रोताको भी श्रद्धालु होकर श्रवण करना चाहिये। ऐसा होनेसे चेतनका विकाश दिखलाई पड़ेगा। साधुमुखसे हरिकथा श्रवणकर उसको साधुसङ्गमें ही कीर्त्तन करना होगा। हमलोग यदि मनोयोगपूर्वक आकर्षक कृष्णकी कथा कीर्त्तन करें, तो हमलोग बहुत आसानीसे उनके प्रति आकृष्ट हो सकेंगे।

मैं क्या करूँगा, मेरा कर्त्तव्य क्या है, यह सब बात यदि मैं किसी आसक्त व्यक्तिके निकट नहीं सुनूँ, तो मेरा जीवन किस प्रकार नियमित होगा? यदि किसीके निकट न सुनकर स्वेच्छाचारिताके वश मुझे जो अच्छा लगे [illegible] करनेकी चेष्टा करूँ, तो मैं [illegible] पन्थी हुआ, मैंने अपना अमङ्गल आप ही किया। इसलिये श्रेयःपन्थी गुरुकी आवश्यकता है एवं उनके निकट श्रवण कर उसको ग्रहण करना आवश्यक है। साधुमुखसे मङ्गलोपदेश श्रवणकर उसको फिर साधुके निकट ही कीर्त्तन करना आवश्यक है। साधुलोग मेरे मङ्गलाकाङ्क्षी बन्धु हैं; मैं यदि उनके निकट श्रुत-विषयका कीर्त्तन करूँ तो वे मेरी भूल संशोधन कर देंगे। इसके सिवा यदि हमलोग अकपट भावसे कीर्त्तन करें तो चैत्यगुरु (अन्तर्यामी) भी वह संशोधन कर देते हैं।

श्रवण और कीर्त्तन भक्तिके दो प्रधान अङ्ग हैं; एकको छोड़ देनेसे फल प्राप्त नहीं होता। पक्षी दोनों डैनोंकी सहायतासे उड़ते हैं। एक डैना काट देनेसे उसकी जो अवस्था होती है, श्रवण और कीर्त्तनमें भी एकको छोड़ देनेसे जीवकी वही अवस्था होती है। श्रवण और कीर्त्तन दोनोंही नित्य हैं। यह चिरकाल समभावसे चलेगा। भगवान बड़े ही दयालु हैं, सुतरां उन्होंने हमलोगोंके एकमात्र मङ्गलका उपाय भगवत्-कथा [illegible] कीर्त्तनका सुयोग दिया है। भगवानका [illegible] है कि हमलोगोंके अपराधी होनेपर भी [illegible] भगवानको अनायास प्राप्त कर सकते हैं। [illegible] निकट नहीं जानेसे पूर्ण मङ्गल प्राप्त नहीं [illegible]। पूर्णके निकट स्वच्छानन्द या परिमित [illegible] हमलोगोंकी आशा नहीं मिटती। [illegible] पूर्ण वस्तु हैं। श्रीचैतन्यदेवने दयाकर सबको [illegible] सङ्ग करनेके लिये—सर्वदा सबोंको हरिनाम [illegible] करनेके लिये आदेश किया है। जिन्होंने [illegible] उनकी कथाका श्रवण किया है, वे सर्वदा [illegible] अर्थात हरिकथा श्रवण-कीर्त्तन करते हैं। [illegible] हरिनाम कीर्त्तन नहीं करना होगा, [illegible] है—हरिः सदा कीर्त्तनीयः। कीर्त्तन [illegible] कीर्त्तन आरम्भ होता है, कीर्त्तन [illegible] स्मरण [illegible] है। कीर्त्तनकारी जब कीर्त्तन करते हैं, उस [illegible] हरिकी कथा स्मरण होती है। सुतरां निरन्तर कीर्त्तनही निरन्तर कृष्णस्मृति प्राप्त करनेका सहज उपाय है, यह अनायास ही अनुमेय है। जो सुमेधा हैं वे ही कृष्ण कीर्त्तन करते हैं; और कुमेधागण अन्याभिलाषी हैं सुतरां उनकी कीर्त्तनमें रुचि नहीं है। श्रीवार्षभानवी सर्वदा ही कृष्णनाम उच्चारण करती हैं। वे साक्षात कृष्ण भी नहीं हैं, फिर कृष्णके सिवाय दूसरा कोई नहीं है। श्रीवार्षभानवी सुमेधा लोगोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं; और श्रीगौरसुन्दर इन सुमेधालोगोंके मूलपुरुष हैं।

कृष्ण कौन वस्तु हैं, यह हमलोग नहीं जानते, इसीलिये कृष्ण अपनी सर्वशक्ति नाममें अर्पणकर श्रीनामरूपसे जगतमें अवतीर्ण हुए हैं। गौण और मुख्यभेदसे भगवानके नाम अनन्त हैं। गौणनाममें

शब्द और शब्दीमें कुछ भेद है, किन्तु मुख्य नाममें शब्द और शब्दी अभेद हैं। सर्वदाही कीर्त्तन करना होगा, नहीं तो इतर कथा हमलोगोंको ग्रस लेगी। यदि हमलोग हरिकथा श्रवण न करें तो अन्य कथा सुने बिना नहीं रह सकेंगे। बहुतेरे हरिकथा छोड़कर मौनधर्मावलम्बन करते हैं, यह कपटता और प्रतिष्ठा कामना मात्र है। मौनी होनेसे श्रवण और स्मरणका द्वार भी रुद्ध हो जाता है। जो हरिस्म-रणकी अवहेलना करते हैं, परममङ्गलमय हरिस्मृति अपेक्षा जिनको अन्य स्मृति अच्छी लगती है वे ही निर्ज्जनता-प्रयासी और मौनी होकर श्रवण-कीर्त्तनका पथ रुद्ध करते हैं। यह बुद्धिमानका कार्य नहीं है। श्रीमद्भागवत का कथन है—

"शृण्वतः श्रद्धया नित्यं गृणतश्च स्वचेष्टितम्।
नातिदीर्घेण कालेन भगवान् विशते हृदि॥"

हरिकथा-श्रवण कीर्त्तन ही साधुलोगोंका जीवन है। इसको छोड़कर वे लोग ठहर नहीं सकते। श्रवण-कीर्त्तन साक्षात् भगवत्-सेवा है। सुतरां भक्त भगवत्-सेवा छोड़कर किस प्रकार रहेंगे? हमलोग बद्धजीव हैं, इसीलिये हमलोगोंको हरिकथा श्रवण कीर्त्तनमें रुचि नहीं है। जिनलोगोंको हरिकथा श्रवण-कीर्त्तनमें रुचि है, उनलोगोंको इतर कथा श्रवण-कीर्त्तनमें रुचि नहीं होता। सुतरां साधुसङ्ग करना ही प्रयोजनीय है।

सन्यास ग्रहण-लीलाके बाद श्रील आचार्यदेव

लोकशिक्षकवर पतितपावनशिरोमणि श्रीश्रील आचार्यदेवने जो सन्यासलीला प्रकट की है, उसपर विचार करते हुए श्री श्रीरूपानुगशुद्धभक्त सम्प्रदायके हृदयमें बहुतसी बातें उदित हो रही हैं। नित्यसिद्ध आचार्यवर्गके सन्यासलीलाका वैशिष्ट्य आध्यात्मिक और निर्विशेषवादी सम्प्रदाय अनुभव नहीं कर सकता। निर्विशेषवादी सम्प्रदाय कहता है, श्रीरामानुजाचार्यने अपनी पत्नीसे विवाद कर सन्यास लिया था। यादवप्रकाश और कृमिकण्ठके भयसे आत्म-गोपन किया था। श्रीमन्महाप्रभु कर्मफलवाध्य जीवके समान मायावादी-सम्प्रदायके सन्यासी हुए थे। क्योंकि, "आसित सन्यासी मायावादे भारति" प्रभृति महाप्रभुके स्वमुखसे निकली हुई उक्ति यह प्रमाण कर रही है। श्रील प्रभुपादने अपने स्वलिखित जीवनचरितमें लिखा है कि पुरीमें शुद्धभक्तिकी कथाका प्रचार आरम्भ करनेपर अन्याभिलाषी-सम्प्रदायने उनके ऊपर नाना प्रकारसे निर्यातन (शत्रुता) आरम्भ किया। उस समय ठाकुर भक्तिविनोद के आदेशसे श्रील प्रभुपादको पुरी परित्याग कर श्रीरामानुजाचार्यके तिरुनारायणपुरमें वास करनेके समान श्रीमायापुरमें निर्जन भजन करना पड़ा था। पतीप प्रियनाथ प्रभृतिने श्रीश्रील प्रभुपादकी सन्यासलीलाका तात्पर्य न समझकर उनके चरणोंमें और भी भीषण अपराध किया। उसी आध्यात्मिक निर्विशेष-वादी प्रियनाथके प्रत्युत्तर ग्रन्थसे और 'श्रीसज्जनतोषणी' 'गौड़ीय,' 'नदिया प्रकाश' प्रभृति संवाद पत्रके स्तम्भमें यह असंख्यबार खण्डित हुआ है। निर्विशेष-वादी श्री श्रीरूप-सनातन और श्रीरघुनाथकी वैराग्य लीलाको मायावादीके फल्गुत्यागी और तपस्याको एक सा समझता है। क्योंकि, वे कृष्णभक्तिरसमयी विप्रलम्भ-लीलाकी कथा नहीं समझ सकते। परमाराध्यतम श्रीश्रील आचार्यदेवकी सन्यासलीलाके मध्यमें बहुत गूढ़ तात्पर्य भरा है, वह हमलोगोंके समान क्षुद्रबद्ध जीवकी समझ में नहीं आसकती है।

हमलोग कृतघ्न हैं, श्रील आचार्यदेव अहैतुक कृपामय हैं; हमलोग "कामुकाः पश्यन्ति कामिनीमयं जगत्" मन्त्रसे दीक्षित हैं, श्रील आचार्यदेवने हमारे उसी जड़ काममें अन्धीभूत चक्षुको अप्राकृत प्रेमाञ्जनशलाकाके द्वारा निर्मल करनेके लिये सर्वदा चेष्टा की है; हमलोग इन्द्रियजज्ञानके विश्वासी हैं, वे अधोक्षज ज्ञानके शिक्षादाता हैं; हमलोग कनक कामिनी-प्रतिष्ठाको ही-हरिभजनाभिनयका उपेय-रूपसे वरण (ग्रहण) करनेके लिये कृतसङ्कल्प हैं, और वे अनुकूलकृष्णानुसन्धानको श्रील प्रभुपादका प्रदत्त सर्व श्रेष्ठ उत्तराधिकाररूपसे वरण करनेके आदर्श-प्रदर्शनकारी हैं।

परमाराध्यतम श्रीश्रील आचार्यदेवने हरि शयन-कालमें अपनी सन्यासलीला प्रकट की है। आत्यन्तिक लोग हरि-शयन कालको कृष्णकीर्त्तनके प्रतिकूल समझते हैं। जिस समय हरि निद्रित हैं, उस समय हरिका अनुसन्धान करना वृथा है—यही उनलोगोंका विचार है। हरिके निद्रित होनेसे किम्वा गुरुगौराङ्गके इस संसारसे विदा ग्रहण करनेसे कनककामिनी-प्रतिष्ठाका भाग बंटवारा लेकर खूब प्रमत्त रहा जाता है। उस समय हरिके अनुसन्धानका क्या प्रयोजन है? हरिदास नामाचार्यके अस्तित्वका भी उस समय सहज ही लोप किया जाता है। कौशल और षड्यन्त्रका आश्रय ग्रहण किया जाता है। मत्सर रामचन्द्रखाँके समान नामाचार्यके चरित्र कलङ्कित करनेके लिये अनेक प्रकार अवैध कौशल और षड्यन्त्रका आश्रय ग्रहण किया जाता है किन्तु हरिके दास इस समय जीवके जागरणकी गीति गान करते अधिकतर कृष्णानुसन्धान लीला प्रकट करते हैं।

पतितपावनवर श्रीश्रील आचार्यदेवने श्रील गोपालभट्ट गोस्वामी प्रभुकी विरहस्मृति तिथिमें सन्यास लेकर श्रील भट्टगोस्वामी प्रभुकी रचित और श्रील ठाकुर भक्तिविनोदकी आविष्कृत संस्कारदीपिका वा वैष्णवस्मृतिकी कथा रूपानुग साधु लोगोंके चित्तमें उद्दीप्त की है। हरिभक्तिविलासके उपक्रममें श्रीगोपालभट्ट श्रीगौरप्रिय प्रबोधानन्दके शिष्य और श्रीसनातन-रूप-रघुनाथके प्रियाचरणकारी एवं वैष्णवस्मृतिके रचयिता बतलाये गये हैं। अतएव श्रील गोपालभट्टगोस्वामी प्रभुकी विरहस्मृतिके साथ ही साथ श्रीरूपकी धारामें जो विप्रलम्भकी स्मृति है एवं गौरवमार्गमें जो वैष्णव-स्मृतिके विचार हैं, उनका भी समावेश देखा जाता है, अर्थात् आचार्यदेवकी जो सन्यासलीला है वह श्रीश्रील गोपालभट्टके स्मृति-विधानसम्मत है, श्रीरूपकी उपदेशामृत धारामें निष्णात है एवं श्रीरूप-सनातन-रघुनाथके कथामृतके प्रवाहमें सर्वात्मस्नापन (सम्यक्‌रूपसे आत्माको शीतल करने वाला) मुकुन्दसेवनव्रत है।

कृष्ण पञ्चमीतिथि ॐ विष्णुपाद श्रीश्रील भक्ति-सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादके आविर्भावतिथिरूपसे धन्य हुई है। कृष्ण पञ्चमीतिथिके साथ श्रीश्रील प्रभुपादके आविर्भाव लीलाकी स्मृतिका समावेश (लगाव) है। श्रील प्रभुपादने इस तिथिमें आविर्भूत होकर अपने श्रेष्ठ निजजनको भक्ति प्रसाद वितरण किया है।

"श्रीमद्भक्तिप्रसाद" नामके मध्यमें श्रीभक्तिविनोद-गौरवाणीका प्रसन्नता और कृपाकी कथा है। 'पुरी' नामके साथ प्रेमभक्तिके मध्यमूल माधवेन्द्रपुरीका सम्बन्ध और धाराकी कथा एवं गया क्षेत्रमें श्री श्री-ईश्वरपुरीसे भगवान श्रीगौरसुन्दरकी दीक्षालीलाके मध्यमें वही माधवेन्द्रकी सम्बन्धधारा वा ब्राह्ममाध्व गौड़ीयाम्नाय-धाराके प्रवाहकी कथा है।

गया धाममें गयासुर अर्थात आध्यक्षिकता और निर्विशेषवाद असुरका विनाश अधोक्षज विष्णुके पादपद्मके द्वारा साधित हुआ है। त्रिपुरासुरका पुत्र गयासुर है। यह असुर किस प्रकार आध्यक्षिक और निर्विशेषवादीका आदर्श था, वह भागवतमें कहा गया है। गयासुरने प्रस्तरत्वमें परिणत होनेका आदर्श प्रदर्शन किया था। इस स्थानमें श्रीगौरसुन्दरने कर्मकाण्डका खण्डन कर चिद्विलासविद्धान्तके दिव्यज्ञानकी कथा प्रकाशकी थी। इसस्थानमें निरञ्जना वा विरजानदी निर्विशेषवादी बौद्धगणोंकी गति और चिद्विलासविद्धान्तमें प्रतिष्ठित वैष्णवलोगोंके विचारका वैशिष्ट्य निर्देश कर रही है। गयाधाममें "अयि दीनदयार्द्रनाथ हे मथुरानाथ कदावलोक्यसे।" यह विप्रलम्भगीति कीर्त्तन करनेवाले श्रील माधवेन्द्रपुरीकी जो प्रेमामृतधारा, प्रवाहित हुई थी, वही विष्णुपाद परमहंस परिव्राजकाचार्यवर्य अष्टोत्तरशत श्री श्रील भक्तिप्रसाद पुरी गोस्वामी प्रभुमें प्रकाशित होकर भक्तिविनोदाम्नायका नित्यत्व संरक्षण कर रही है।

आचार्यदेवने अधोक्षज श्रीगदाधरपादपद्ममें आध्यक्षिकता और निर्विशेषवादको निराश करके भी अधोक्षज मुकुन्दसेवनव्रतमें दीक्षित होनेकी लीला प्रकट कर सम्बन्ध विज्ञान-क्षेत्र काशीमें वैराग्ययुक्ति भक्तिरसप्रदाता श्री श्रील सनतनप्रभुकी कृपासे अभिषिक्त होनेकी लीला और उसके बाद अभिधेय विज्ञानक्षेत्र प्रयागके दशाश्वमेधमें श्रीरूपके श्री श्रीराधागोविन्दकी सेवामृतमें आत्माके निमज्जित होनेकी लीला प्रकटकर प्रयोजनक्षेत्र श्रीव्रजमण्डलमें अपने रूपानुगवरत्वका परिचय प्रकाश किया है।

उत्तर-पश्चिम प्रदेशके विभिन्न मठोंके सेवकोंने जो विवरण प्रेरण किया है, वह पाठ करनेसे पाषाणहृदयभी विगलित होता है। काशी श्रीसनातन गौड़ीयमठसे श्रीपाद-नैवानन्द ब्रह्मचारी भक्तिसुन्दरप्रभुने लिखा है:—

"परमाराध्यतम श्री श्रीलआचार्यदेवके गयामें सन्यासलीला प्रकट करनेके दूसरे दिन अर्थात २३ आषाढ़ शनिवार को १०½ बजे काशीधाममें शुभविजय करनेसे मठके सेवकवृन्द, रायबहादुर गुरुचरण राविय, शेठ जयगोविन्दलाल, श्रीकृष्णचन्द्रदास अधिकारी प्रभृति बहु विशिष्ट सज्जनोंने श्रीलआचार्यदेवका श्रीपादपद्म अभिनन्दन किया। श्रील आचार्यदेव श्रीसनातनगौड़ीय मठमें उपस्थित होकर श्रीविग्रहके सम्मुख कटे हुए केलेके समान साष्टांग दर्शित हुए एवं उन्होंने वन्दनाकी। दोपहरको श्रीमठमें प्रसाद सेवाके लिये अनुरोध किये जाने पर श्रील आचार्यदेवने मधुकरीभिक्षा संग्रह करनेकी लीलाका आदर्श प्रदर्शन किया और भिन्न भिन्न सज्जनोंके गृहसे हरिकथा-कीर्त्तन कर भिक्षा संग्रह की। मठमें जो थोड़ी देर तक ठहरे उसमें सर्वथा समागत सज्जनवृन्दोंके निकट अविश्रान्तभावसे हरिकथा कीर्त्तन की। इसके बाद श्रीसनातन-शिक्षाक्षेत्र श्रीचैतन्यवट दर्शन करनेके लिये गये एवं रातमें नव बजे तक निरन्तर हरिकीर्त्तन किया। कई सज्जन और मठसेवकगण उनकी इस सुगम्भीर जगन्मङ्गल-लीलाके दर्शनसे आनन्दित हुए; किन्तु उनकी आश्चर्यमय वैराग्य दर्शनसे महापाषण्डका हृदय भी विदीर्ण हो जाता है। केवलमात्र त्रिदण्ड और कौपीन वहिर्वासके सिवाय उनके साथ और कोई द्रव्य नहीं है। ठीक महाप्रभुके समान कृष्णप्रेममें उन्मत्त हैं; मुखमें केवल 'कहाँ कृष्ण' यही वाणी है। 'कृष्ण' प्राप्त करना ही होगा; कहां जानेसे कृष्ण पाऊंगा?' केवल इसी प्रकार कह रहे हैं, सभीको उपदेश कर

रहे हैं—'कृष्णको पुकारो, और कुछ न चाहो और न बोलो।' श्रील आचार्यदेवने काशीमें २४ आषाढ़ रविवारको इलाहाबाद शुभ विजय किया है।

इलाहाबादसे श्रीपाद अतुलानन्द ब्रह्मचारी भक्तिकङ्कण भक्तिशास्त्रीजीने एक पत्र लिखा है:—

"परमाराध्यतम श्रीश्रील आचार्यदेवने यहां शुभ विजय कर उसी दिन व्रजमण्डलकी ओर शुभ विजय किया है। उनकी यह लीला देखकर सभी अवाक् हुए हैं। यहां आकर मधुकरी-भिक्षा ग्रहणलीला प्रकाश कर कुछ प्रसाद ग्रहण करनेके बाद दशाश्व-मेधघाटमें जाकर उन्होंने 'श्रीरूपमञ्जरीपद' प्रभृति सङ्गीत कीर्त्तन किया। उसी दिन पाँच बजे व्रज-मण्डलकी ओर यात्रा की।"

श्रीधाम वृन्दावनके प्रेरित संवादसे जाना गया है कि श्रीश्रील आचार्यदेव किसीको साथ न ले अकेला ही व्रजमण्डलके विभिन्न वनोंमें कृष्णानुसन्धान लीला प्रकटकर विचरण कर रहे हैं। श्री श्रील आचार्य-देवका आदर्श देखनेसे ठाकुर श्रील नरोत्तमकी यह आर्त्तिमयी गीति हृदयमें मूर्त्तिमती हो उठती है—

हरि हरि, कबे मोर हइबे सुदिन
फल मूल वृन्दावने, खाइया दिवा अवसाने, (शेषमें)
भ्रमिबो हइया उदासीन॥
शीतल यमुनाजले, स्नान करि कुतूहले।
प्रेमावेशे आनन्दित हइया।
बाहुर उपर बाहु तुलि, वृन्दावने कुलि कुलि,
कृष्ण बोलि बेड़ाबो (भ्रमण करूँगा) कान्दिया॥
देखिबो सङ्केत स्थान जुड़ाबे तापित प्राण,
प्रेमावेशे गड़ागड़ी दिबो।
कहां राधा प्राणेश्वरी, कहां गिरिवरधारी,
कहां नाथ बोलिया डाकिबो॥
माधवीकुञ्जेर परि, सुखे वसि शुकसारी,
गाइबेक राधाकृष्ण रस
तरुमूले वसि ताहा, सुनि जुड़ाइबे हिया।
कबे सुखे गवांबो दिवस॥
हरि हरि! कबे (कब) हब (होऊँगा) वृन्दावनवासी
निरखिबो नयने युगल-रूपराशी॥
त्यजिया शयनसुख विचित्र पालङ्क।
कबे व्रजेर धूलाय धूसर हबे (होगा) अङ्ग॥
षड् रस-भोजन दूरे परिहरि।
कबे व्रजे मांगिया खाइबो माधुकरी॥
परिक्रमा करिया बेड़ाबो वने वने।
विश्राम करिब जाइ यमुनापुलिने॥

लोकशिक्षक श्री श्रील आचार्यदेवका यह लीला-दर्शन मेरे सदृश जड़सम्भोगवादी और आत्यन्तिक निर्विशेषवादीके स्पष्ट और प्रच्छन्न जड़सम्भोगबुद्धि-को दण्डित कर उनके श्रीश्री पादपङ्कजमें सम्यक् प्रकारसे शरणागत करे।

श्री श्रील आचार्यदेवके उपदेश

(स्थान अविद्या हरण नाट्यमंदिर (श्रीचैतन्यपीठ) काल १ मार्च १९३९ अपराह्ण)

श्रीयुक्त व्रजेश्वरीबाबू—दीक्षागुरु और शिक्षागुरु-में क्या भेद है और क्या विशेषताएँ हैं?

श्रील आचार्यदेव—शिक्षागुरु और दीक्षा गुरु दोनों एक अद्वयज्ञान हैं। दीक्षा गुरु मन्त्रदाता और सम्बन्ध ज्ञान दाता है।

गुरु तीन प्रकारके हैं श्रवण गुरु, शिक्षा गुरु और दीक्षा गुरु। श्रवण गुरु वर्त्म प्रदर्शक गुरु हैं दीक्षा गुरु एकही होते हैं दो नहीं हो सकते। श्रवण

गुरु और दीक्षा गुरु अनेक हो सकते हैं। श्रवण गुरु preliminary आरम्भिक बातें सिखलाकर प्रारम्भिक योग्यता देते हैं। जो मंत्र देते हैं वह दीक्षा गुरु हैं वेही सम्बन्ध ज्ञान भी देते हैं। श्रीमूर्ति के प्रति क्या कर्तव्य है वे बतला देते हैं।

वे अर्थ पञ्चककी शिक्षा देते हैं संस्कार देते हैं।

शिक्षा गुरु हरिभजनकी बातें बतलाते हैं। किस प्रकार भजन किया जाता है इसकी शिक्षा देते हैं। शिक्षा गुरु और दीक्षा दोनों एक हो सकते है इसमें दोनोंमें से किसी एककी बड़ाई दुसरेकी छुटाईकी बात नहीं है।

दीक्षा गुरु और शिक्षा गुरुके बीच दुनीयवी बड़ाई छुटाई (Mundane Superiority and Inferiority) का विचार नहीं है।

(कारण वस्तु एक है) दोनों ही भगवत प्रेष्ठ हैं। भगवत प्रेष्ठोंमें बड़ाई छुटाईका भेद नहीं है। जिस प्रकार दीक्षा गुरु यदुनन्दन आचार्यके सम्बन्धमें श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी प्रभुने कहा था:—

नामश्रेष्ठं मनुमपि शचीपुत्रमत्र स्वरूपम्।
रूपंतस्याग्रजमुरुपुरीम् माथुरीम् गोष्ठ वाटीम्॥
राधाकुण्डं गिरिवर महा राधिका माधवा शाम्।
प्राप्तो यस्य प्रथित कृपया श्रीगुरुं त नतोऽस्मि॥

श्रील यदुनन्दनाचार्य श्रील रघुनाथ दास गोस्वामीके शिक्षा गुरु थे। दीक्षा गुरुने इन्हीं तीनोंकी पता बतलाई है ये ही तीनों आराध्य वस्तु हैं।

श्रील दास गोस्वामी प्रभु, गोष्ठ वाटी राधाकुण्ड, गिरिराज गोवर्धन और राधामाधवकी सेवा पाकर भी "सेवाशाके लिए" क्यों कहा है? सेवा पाकर और "सेवाशा" अर्थात विरह क्यों? वे कृष्णके प्रियतम हैं तोभी "पालिया" ऐसा अभिमान नहीं करते वल्कि कहते हैं कि "पावेंगे" यही आशा है।

'पालिया' यह बात सम्भोग है।

दीक्षा गुरु शिक्षा गुरु हो सकते हैं। शिक्षा गुरु अभिधेय दाता है अनर्थ निवृतिके बाद अभिधेयके देनेवाले हैं।

शिक्षा गुरु नाम भजनकी शिक्षा देते हैं। दीक्षा गुरु दिव्य ज्ञान वा सम्बन्ध ज्ञानके देनेवाले हैं। वे मंत्र देकर संसार मोचन करते हैं वे मंत्र द्वारा (Tendency to measure the universe) विश्वको नाप लेनेकी प्रवृति और (Predominating mood) भोक्तृत्वाभिमानका नाश करते हैं।

मंत्र है भगवत् शब्द वा भगवन्नाम। मन्त्रमें नमः वा स्वाहा शब्द चतुर्थि विभक्ति है।

केवल भगवन्नाम (भजनकी बात) जो विशुद्ध अभिधेय है उसे अनर्थ निवृतिके बाद शिक्षा गुरु बतलाते हैं। अभिधेय और प्रयोजन शिक्षा गुरु देते हैं। भागवत परम्परा ही शिक्षा गुरु परम्परा है यह दीक्षा गुरु परम्परा नहीं है।

श्रील कृष्णदासके प्रियतम नरोत्तम थे नरोत्तमके दीक्षा गुरु लोकनाथ थे। नरोत्तमके प्रिय थे विश्वनाथ। गंगानारायण प्रभृति तीन पुरुषोंके बाद विश्वनाथ थे। यह पाञ्चरात्रिक परम्परा नहीं है यह शिक्षा गुरु परम्परा है।

ठाकुर भक्ति विनोद श्रील जगन्नाथ दासके पाञ्चरात्रिक शिष्य नहीं थे वे वेदान्त स्यमन्तकके रचयिता श्रीराधादामोदरके शिष्य थे। वे राधादामोदरजी बलदेवके दीक्षा गुरु थे। श्रील बलदेव श्री विश्वनाथके अनुगत थे।

सम्बन्ध ज्ञान दीक्षा गुरु देते हैं। नाम भजनकी शिक्षा देते हैं शिक्षा गुरु मन्त्र दीक्षा और भजन शिक्षाके बाद और एक शिक्षा है।

स्वरूप सिद्धिके बाद यदि सौभाग्यसे लीला प्रवेश हो अर्थात् वस्तु सिद्धि हो तब भी शिक्षा गुरुके साथ संग करनेकी आवश्यकता रहती है।

श्रील प्रभुपादकी पत्रावली—(तृतीय खण्ड)

आचार्य-प्रकट तिथिमें श्रील प्रभुपादकी पत्रावलीका तृतीय खण्ड प्रकाशित हुआ है। प्रत्येक पत्र विशेष शिक्षाप्रद व सारगर्भ उपदेशसे परिपूर्ण है। हमलोग प्रत्येक मंगलकामी व सत्यका अनुसन्धान करनेवाले व्यक्तिको इस पत्रावलीको पाठ करनेका अनुरोध करते हैं।

श्रीचैतन्यदेव

श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके पहले व बाद भारत व बंगालकी राजनैतिक अवस्था, अर्थनैतिक अवस्था, विद्या, साहित्य व समाजिक अवस्था, धर्मजगत्की अवस्था, समसामयिक पृथिवीकी अवस्था, नवद्वीपका परिचय व तथ्य और प्रमाणिक ग्रन्थ व विवरण समूह सहज व सरल भावमें साधारणके पढ़नेके योग्य वर्णन किया गया है। ग्रन्थमें अनेक चित्र व मानचित्र दिये गये हैं। सुन्दर जिल्द भक्त, साधारण व्यक्ति व विद्यालयके छात्र सभीके लिये यह ग्रन्थ उपयोगी व प्रीति देनेवाला होगा। भिक्षा ५)। प्राप्तिस्थान—श्रीगौड़ीयमठ पो० बागबाजार, कलकत्ता। श्रीमाध्वगौड़ीयमठ, पो० वोयारी, ढाका।

सरस्वती जयश्री

गौड़ीय-वैष्णवाचार्य ॐ विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादका सुन्दर मंगलदायक जीवनचरित ग्रन्थ है। निर्मत्सर शुद्धभक्ति पिपासु व्यक्ति इस ग्रन्थके पाठसे युगपत् अनेक शास्त्रग्रन्थ पाठ व अनेक साधुसङ्गका फल लाभ कर सकेंगे। वैभवपर्वका प्रथम खण्ड रायल ८ पेजी आकारमें एन्टिक कागजपर उत्तमरूपसे मुद्रित, ३६० पृष्ठोंमें। विस्तृत सूचीपत्रके साथ इसमें अनेक चित्र भी दिये गये हैं। भिक्षा ४)

'सामयिक-संख्या'—गौड़ीय

सामयिक संख्या गौड़ीय अनेक त्रिवर्ण व एकवर्ण चित्र शोभित व अनेक श्रेष्ठ वैष्णवसाहित्यिकगणोंकी गवेषणापूर्ण प्रबन्धसे सुसज्जित होकर प्रकाशित हुई है। श्रीधाम-मायापुरमें श्रीश्रीगौरजन्मोत्सवके उपलक्षमें सर्वसाधारणोंके लिये भिक्षा ।।) आना।

ठाकुर भक्तिविनोद

श्रीरूपानुगशुद्धभक्ति स्रोतके प्रवाहक मूल पुरुष ॐ विष्णुपाद श्रील ठाकुर भक्तिविनोदका जीवनचरित व शिक्षामाला बहुत सरल भाषामें बड़े बड़े अक्षरोंमें मुद्रित। भिक्षा ।।।) मात्र। प्राप्तिस्थान—कलकत्ता (बागबाजार) श्रीगौड़ीयमठ व ढाका—श्रीमाध्वगौड़ीय मठ।

अणुभाष्यम्

चार अध्यायी ब्रह्मसूत्रके प्रत्येक अधिकरणका तात्पर्य श्रीमन्मध्वाचार्य-कृत श्लोकाकारमें बहुत संक्षेपमें बना हुआ। बंगभाषामें सर्वप्रथम संस्करण। पहले प्रति अध्यायके प्रति पादका श्रीमन्मध्वाचार्यविरचित अणुभाष्यमूल, उसके बाद प्रति अध्यायके प्रतिपादका सूत्र-समूह, अणुभाष्य-मूलका बंगला अनुवाद व श्रीपाद राघवेन्द्रयतिविरचित तत्त्वमञ्जरी टीका, उसका बंगला अनुवाद व तात्पर्य इस क्रमसे पुस्तक मुद्रित हुई है। इसके अतिरिक्त मातृका क्रमसे ब्रह्मसूत्र समूह, उसका अध्यायांक, पदांक व सूत्रांकके साथ सूचीपत्रभी संयोजित हुआ है। भिक्षा २) मात्र।

Printed by :- Mukunda Madhab Das Brahmachari, at the Ramesh Printing Works and published by him from Sree Gaudiya Math, Mithapur, Patna.

Regd No. P. 468.

वर्ष ५] श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयत: संख्या १०]

भागवत

एकमात्र
पारमार्थिक
मासिक पत्र

५ दामोदर
गौराब्द
४५३



कार्तिक कृष्ण ५
संवत्
१९९६ वि०

प्रति संख्या ~)॥ | वार्षिक १)

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥१॥

जिससे इन्द्रिय ज्ञानातीत श्रीकृष्णमें श्रवणादि लक्षणा फलाभिसन्धान-रहिता ऐकान्तिकी स्वाभाविक निरपेक्षा भक्ति उदय होती है वही मानव जातिका सर्वश्रेष्ठ धर्म है—
उस भक्तिके बलसे अनर्थ शमन होनेपर आत्मा प्रसन्नता लाभ करता है।

सम्पादक—उपदेशक पं० श्री रूपविलास ब्रह्मचारी भक्ति शास्त्री बी० ए०।

Editor :—Upadeshak Pandit Sree Rupvilas Brahmachari, Bhaktishastri B A.

SREE GAUDIYA MATH Mithapur (Patna).

विषय सूची

भक्तिके अन्यान्य पत्र

१ The Harmonist—प्रभुपाद श्रील अनन्त वासुदेव परविद्याभूषण गोस्वामी महाराज सम्पादित अंग्रेजी पाक्षिक पत्रिका। प्रति एकादशीको कलकत्ता बागबाजार श्रीगौड़ीयमठसे प्रकाशित होते हैं। भिक्षा ४॥ डाक महसूल समेत।

२ गौड़ीय—महामहोपदेशक पण्डित श्रीपाद सुन्दरानन्द विद्याविनोद बी० ए० द्वारा सम्पादित बंगला साप्ताहिक और कलकत्ता श्रीगौड़ीयमठसे प्रकाशित। वार्षिक भिक्षा ३) डाकखर्च समेत।

३ दैनिक नदीया-प्रकाश (बंगभाषामें प्रकाशित)—भारतमें सर्वत्र प्रचारित—नदीया जिलेकी एकमात्र पारमार्थिक दैनिक पत्रिका हैं। श्रीधाम-मायापुर श्रीचैतन्यमठसे नित्य प्रकाशित होती हैं। वार्षिक भिक्षा डाक व्यय समेत ६) मात्र।

४ परमार्थी—श्रीयुक्त रघुनाथ महापात्र द्वारा सम्पादित उत्कल पाक्षिक। कटक श्रीसच्चिदानन्द मठसे प्रकाशित। वार्षिक भिक्षा १॥ मात्र डाक व्यय समेत।

५ श्रीगौड़ीय—महामहोपदेशक पण्डित श्रीपाद सुन्दरानन्द विद्याविनोद बी० ए० द्वारा सम्पादित बंगला पाक्षिक। कलकत्ता श्रीगौड़ीयमठसे प्रकाशित। वार्षिक भिक्षा १॥०) मात्र डाक व्ययके साथ।

SREE CHAITANYA MAHAPRABHU

The teachings and characteristics of Sree Manmahaprabhu have been clearly published in this book. It has been written by Tridandi Swami Sreemad Bhakti Pradip Tirtha Maharaj. Price Rs. 4/-
To be had:—Nand Kishore Bhaktishastri,
Sree Jogpith, Sree Mandir
P. O. Sree Mayapur (Nadia)

वैष्णवाचार्य श्रीमध्व

गौड़ीय सम्पादक-सम्पादित, इस ग्रन्थमें श्रीमध्वाचार्यका जीवन चरित, सिद्धान्त और शिक्षा भली भांतिसे आलोचित हुआ है। यह एक अपूर्व मौलिक विराट् ग्रन्थ है। भिक्षा २) मात्र।

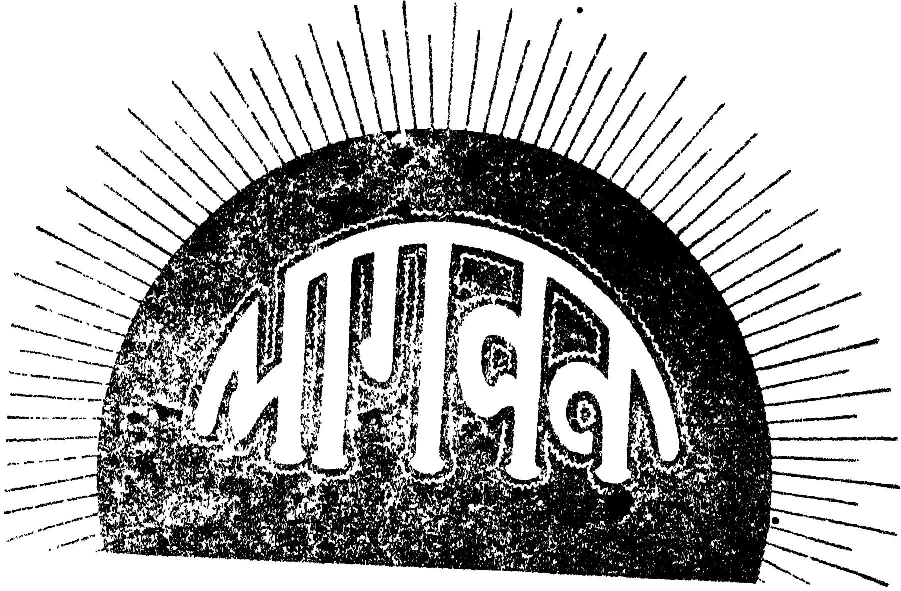
श्रील प्रभुपादका पद्यप्रसूनमाला

इस ग्रन्थमें ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद् भक्तिसिद्धान्तसरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद-रचित पद्यावली श्रील आचार्यदेव-विरचित "सौरभ" नामक भाष्यके सहित प्रकाशित हुआ है। श्रील प्रभुपादके बहुतसे अप्रकाशित पद्य इसमें दिये गये हैं। भिक्षा ॥०) आठ आना मात्र।

श्रीश्रीभक्तिविनोदवाणीवैभव

श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके बंगला, संस्कृत और अंग्रेजी भाषामें रचित विभिन्न ग्रन्थोंसे सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजनाकारमें प्रश्नोत्तररूपसे उनका वाणी-सङ्कलन। भिक्षा ३) मात्र।

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः



वर्ष ५ श्रीगौड़ीयमठ, मीठापुर (पटना) } संख्या १

कार्त्तिक कृ० [illegible] वि० नवम्बर सन [illegible]

श्रीमद्भागवत

(ॐ विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद)

श्रीमद्भागवत ग्रन्थमें कृष्णकथा वर्णन की गयी है। उस कृष्णकथाकीर्त्तनके कानमें प्रवेश करनेसे साक्षात् कृष्णकी स्फूर्ति होती है, उस समय जड़कथाके प्रवेशरूपी मधुकैटभ नामक असुर का विनाश होता है। यही कर्णवेध संस्कार है। चिन्मय कर्ण जड़से आवृत है। विचार करनेपर समझमें आता है कि भोगसम्बन्धी बातें हमारे हृदयको चञ्चल कर देती हैं। ऐसी अवस्थामें कृष्णसे भिन्न विषय ही हमलोगोंका लक्ष्य होता है। श्रद्धापूर्वक श्रीमद्भागवतका श्रवण करनेसे जीवके शुद्ध और निर्मल हृदयमें भगवानके वैकुण्ठ नाम ग्रहण करने, वैकुण्ठ रूप और गुण श्रवण करने, वैकुण्ठ परिकर कीर्त्तन श्रवण करने और वैकुण्ठलीला कथा श्रवण करनेकी योग्यता पैदा होती है। उस समय उसका हृदय वृन्दावन हो जाता है। वहांपर कृष्णचन्द्रकी अवस्थिति होती है।

जो व्यक्ति मूल छोड़कर शाखा पकड़नेकी नीतिका अवलम्बन करके अनेक कलाओंका ज्ञान प्राप्त करनेका प्रयत्न करता है वह श्रीमद्भागवतको अनेक शास्त्रोंमेंसे एक शास्त्र समझता है, अतः वह धर्मच्युत पथभ्रष्ट हो जाता है और इसी कारण श्रीमद्भागवतका तात्पर्य और श्रीभगवान्की लीलाको किसी प्रकार नहीं समझ सकता। उसकी जन्म-जन्मान्तरवाली वासना भागवतके तात्पर्यको समझने नहीं देती। वह भागवत पाठ करके भी कृष्णसे भिन्न वासनाके कारण भक्तिहीन दोषसे दूषित रहता है।

भागवतके तात्पर्यमें प्रवेश न पाकर केवल शब्दों-द्दिष्ट व्यापारों द्वारा जड़वासनाओंमें आबद्ध होकर जो समझनेकी चेष्टा करते हैं, वे भगवत् सम्बन्धी कथामें किसी प्रकार प्रवेश नहीं पा सकते।

सारे वेदशास्त्र व सद्भागवतको 'प्रेम' रूप प्रयोजन-तत्त्व कहते हैं। क्या उनमें साधारण भोगीसम्प्रदाय धर्मार्थकामको समझते हैं, त्यागी-सम्प्रदाय मोक्षको पुरुषार्थ करते हैं, किन्तु भोगी और त्यागी सब प्रयत्नों छोड़कर अन्य मुक्तिसंग आत्मार भगवद्भजनमें पारङ्गत होकर चारोंवर्गोंमेंसे धर्मार्थ काम मोक्ष प्रवृत्ति चतुर्वर्गका विचार छोड़कर श्रीमद्भागवतके कृष्णप्रेमको ही प्रयोजन समझते हैं। धर्म, ज्ञान, योग, स्वाध्याय प्रभृति अभिधेय समूह यदि सत्त्वगुण पुरुषार्थ संग्रह करनेके लिये उत्कंठित हों तो वे अपना अस्तित्व त्यागकर भक्तिमें ही लीन हो जाते हैं।

वेदशास्त्रको दधिके साथ उपमा दी गयी है। शुकदेव उसी दधिके मथने वाले हैं, उससे वेद-तात्पर्य मक्खन श्रीमद्भागवतरूपसे उदित हुआ। श्रीपरीक्षितने विषयोंसे निवृत्त होकर सारे वेदोंका तात्पर्य श्रीशुकदेवके उपदेशों द्वारा ही प्राप्त किया था।

मेरठ जिलेकी सीमापर हस्तिनापुर है। आधुनिक मोजफ्फरनगर जिलेकी सीमापर भोपा थानेके अन्दर मुखाड़हेड़ा स्थानके निकटवर्ती शुकरताल ग्राममें गङ्गातटपर ही श्रीपरीक्षित महाराजने अनशनव्रत धारणकर श्रीशुकदेवजीसे समग्र वेद-तात्पर्य एक सप्ताहके अन्दर प्राप्त किया था। दधिके मथनेमें जिस प्रकार सारांश मक्खन निकलता है, उसी प्रकार वेदके कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्डके असार अंशोंकी तुच्छता दिखलाते हुए प्रेम-भक्ति साररूपसे प्रतिपादित हुई थी। परीक्षितने और सब कथा छोड़कर वही सार ग्रहण किया था इसीलिये सकल भागवतगण सारग्राही हैं। किन्तु भागवतगणोंने असत् संसर्गसे फल-भोगवाद और फलत्यागवादके विचारमें लगकर सारग्राहीरूपसे अपना अधःपतन ला उपस्थित किया है। असार-मिश्रित किञ्चित् सारकी अपेक्षा असार-रहित विशुद्ध सार वा निचोड़ही ग्रहण करना चाहिये। यही आत्मविद् लोगोंका श्रेय और प्रेय है। असार सर्वशाखा फलभोगवादके कारण स्वभाव से सारत्यागी एवं फलत्यागवादके कारण वाहरसे 'सारहीन' होनेका अनुभव करते हुए भी सूक्ष्मभावसे शुष्कसारत्यागी हैं। दोनोंही सार-ग्रहण करनेसे पराङ्मुख हैं।

भगवान् तथा भक्तोंमें भेदबुद्धि रखनेके कारण जो विष्णु-वैष्णव-तत्त्व नहीं जानते, वे इस प्रकार अपने असमञ्जसता ही आवाहन करते हैं। लीलामें प्रविष्ट नहीं होनेतक भगवानके परम कथा सुन्दररूपसे कही नहीं जा सकती। भगवत्कथामय भागवत शुकदेव ही जानते हैं, और कोई नहीं जानता। एक कहावत है कि महादेवने एक समय कहा था मैं भागवत जानता हूं और शुकदेव भागवत जानते हैं। लेखक श्रीव्यासदेवने गुरुपदाश्रय करके विशुद्ध गुरुसेवाके अभावके कारण कुछ दिनोंतक धर्मार्थ-काम मोक्षके सेवकोंके उपकारार्थ शास्त्र ग्रन्थादि रचना की थी; किन्तु सच्छास्त्र-समूहका एकमात्र तात्पर्य श्रीमद्भागवतकी रचना करनेके समय उन्होंने धर्मार्थ-काम-मोक्षाधिकारी बुद्धिका आश्रय करके कृष्णलीलाका वर्णन किया था, तोभी चूंकि उन्होंने साधारण लोगोंकी अयोग्यताका ध्यान रखकर श्रीवार्षभानवीदेवीकी कथाकी प्रधानता न दी और इसीलिये अपने वर्णनमें जो सावहितचित्तता प्रकाश किया है उससे उन्होंने ऐसा जतलाया है मानो कुछ वे जानते और कुछ नहीं जानते थे

किन्तु नृसिंहोपासक त्रिदण्डीस्वामी श्रीधरने भगवत्-कृपासे सेवोन्मुख होकर भागवतका तात्पर्य सुन्दररूपसे जाना था इसीसे गोपीजनवल्लभकी सेवाकी कथा उन्होंने खूब समझी थी। भक्तिके एकमात्र रक्षक श्रीधर और उनके सहोदर भाई लक्ष्मीधर ने नाम भजनके प्रभावसे भगवान्के रूप, गुण, परिकर-वैशिष्ट्य तथा लीलामें जो अधिकार दिखलाया है, उसे श्रीधर विरोधी पर श्रीधरटीकापाठकारी भोगी तथा मोक्षकामी सम्प्रदाय अभक्त होनेके कारण नहीं पा सका है और उनकी दया कृपासे सदा वञ्चित रहगया है। कनिष्ठाधिकारियोंकी चेष्टामें भगवान्के कुछ परिचयकी बात रहनेपर भी भक्तोंका निरादर करनेके कारण वे भागवतसेवाके कनिष्ठाधिकारसे भी वञ्चित हो जाते हैं। इसीलिये परिकर-वैशिष्ट्य तथा विषय-आश्रय विचारसे ज्ञानियोंके भीतर भेदज्ञान-जनित अमङ्गल प्रवेश कर गया है, वे प्रेमभक्तिको पूर्ण प्रयोजनीय नहीं समझते। अतएव वे मानव-जीवन प्राप्त करके भी केवल आत्मघाती हैं।

जहाँपर अद्वयज्ञान तथा ज्ञानियोंके जाननेकी वस्तु है वहाँपर ज्ञान-ज्ञेय ज्ञाता इन्हीं तीनों अवस्थाओंका निर्वैशिष्ट्य प्राप्त करना ही चरम आराध्य व्यापार है। योगी गर्भोदकशायी विष्णुसे संयुक्त होनेका प्रयास करते हुए कैवल्य प्राप्त करनेके लिये यत्न करते हैं। भगवद्भक्त वैसा नहीं करते। श्रीमद्भागवत ग्रन्थमें भगवान्की लीला, परिकर वैशिष्ट्य, अनन्त सद्गुण भगवद् रूप एवं भगवान्के नामादिका उल्लेख है। नित्यमुक्त भगवद्भक्त एवं साधनसिद्ध भक्तगण तथा भक्तिपरायण सेवकगण भगवान्की नित्यकाल सेवाको छोड़कर और कुछ प्रयोजनीय नहीं समझते। सुतरां नित्य सेवकके लिये सेवा विचार छोड़कर और कोई बात भागवतमें नहीं है। जो भागवतमें भगवान्की नित्यसेवाको छोड़कर और कुछ खोजते हैं उन्हें नितान्त मूर्ख समझना चाहिये। जो भक्त नहीं हैं वे सेवा धर्मसे हटकर अन्याभिलाष, कर्म-फल-लाभ, निर्भेदब्रह्मानुसन्धान, प्रभृति भागवतमें ढूंढते और उसके प्रचार करनेकी चेष्टा करते हैं किन्तु असल उद्देश्यसे भ्रष्ट होकर भागवतके असली उद्देश्यको ग्रहण करनेसे वञ्चित हो जाते हैं। श्रीमन्महाप्रभुने भागवतकी अभक्तियुक्त व्याख्या सुनकर कहा था कि जिस भागवतसे पाठकोंके हृदयमें अशान्ति पैदा होती है वञ्चनाके भावसे परिपूर्ण उस भागवतका कोई प्रयोजन नहीं। अतः उस भागवत ग्रन्थको भगवद्विग्रह नहीं समझना चाहिये और उसे पार्थिव पदार्थ और नश्वर समझकर फाड़कर फेंक देना चाहिये। श्रीमद्भागवतको भोग्य वस्तु समझकर जो उसका दर्शन करते हैं उनके उस दर्शनसे उनकी उत्तरोत्तर कामवृद्धि ही होती है। इसलिये भोगबुद्धिसे विषयी लोगोंको भागवत पाठसे हटाना ही भगवान्का उद्देश्य है।

सभी शास्त्रोंसे प्रमाणित होता है कि भोग और त्याग बुद्धि बनी रहने तक श्रीमद्भागवतका विचार कभी किसीको समझमें नहीं आसकता। इसीलिये जड़विद्या जड़तपस्या, जड़वस्तुमें प्रतिष्ठाकी आशा जबतक रहेगी तबतक चिन्तासे परेवाले राज्यमें अवस्थित भगवत्कथाके समझनेकी किसीको भी सम्भावना नहीं होती। जोलोग भागवतको भोग्य वस्तुओंमेंसे एक समझकर उसमें अधिकार प्राप्त कर लिया है ऐसा समझते हैं वे भागवतके किसी अंशको नहीं समझ सकते। श्रीमद्भागवत जिस वस्तुको प्रतिपादित करनेके लिये लिखा गया है, वह प्रमेय वस्तु कभी जड़ इन्द्रियोंके अधिकारकी वस्तु नहीं हो सकती। जो श्रीमद्भागवतके कीर्त्तनको साक्षात्

भगवद्विग्रह समझते हैं और उसे केवल प्राकृत ग्रन्थ मात्र नहीं समझते और श्रीमद्भागवतके विचारके द्वारा अपने जन्माश्रित बुद्धि-दोषको निर्वासित करते हैं, वे श्रीमद्भागवतका एकमात्र प्रयोजन सर्वसार भगवद्भजन ही है यह समझ सकते हैं। अतिशय प्रतिभा सम्पन्न सदगुरु परिचित ज्ञानवान पण्डित होकर भी श्रीमद्भागवतके अर्थ ग्रहण करनेमें भूल कर सकते हैं; ऐसे पण्डितोंके गौरवको बढ़ानेके लिये जो प्रयत्न-शील हैं, न्याय तथा अन्यायके विचारकर्त्ता वा पुरस्कार तिरस्कार-दाता यम उसको दण्ड देते हैं। भक्तिरहित पण्डित "हमने भागवतमें अधिकार प्राप्त कर लिया है" ऐसा मनमें समझते हैं पर भक्तिके मूल आश्रयवस्तुकी निन्दा करनेके कारण वे कभी भागवतके अधिकारी नहीं हो सकते।

श्रीमद्भागवत ग्रन्थ भगवत्कथामय है अतः दूसरे दूसरे ग्रन्थोंसे पृथक भिन्न है। ऋक् मन्त्रोंमें हमलोग भग नामक प्रकाशमय देवताकी बात देखते हैं। भगवत शब्दसे हमारा भी उसी भगदेवतासे मतलब है कि नहीं यह सोचनेकी बात है। अर्यमा, विवस्वान सविता प्रमुख देवगण-सदृश भगदेव देवश्रेणीमें गणने योग्य हैं एवं ऐसे भगवानकी कथाने ही श्रीमद्भागवत ग्रन्थमें स्थान पाये हैं, ऐसा मनमें विचार हो सकता है। किन्तु वर्तमान श्रीमद्भागवत-ग्रन्थमें उस प्रकारके आंशिक प्रतीतिपूर्ण भजनीय वस्तुका उपचरत्व सम्पादित नहीं हुआ है।

पाठकोंके मनमें ऐसी भावना भी उठ सकती है कि भगवद्वस्तु जानने योग्य प्राकृत वस्तुओंमेंसे एक है। किन्तु श्रीमद्भागवतके प्रतिपाद्य स्वरूप भगवद्वस्तु **अप्राकृत,** अतीन्द्रिय तथा अधोक्षज है। पाठकके मनमें पुनः ऐसा भी विचार आ सकता है कि 'अपरा' विद्याकी श्रेणीमें उल्लिखित ऋक, साम, यजुः अथर्व एवं शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष प्रभृति वेदाङ्ग भी वेदतुल्य वेदानुगशास्त्र हैं। वस्तुतः ऐसी बात नहीं। ये तरज्ञानमय अर्थात् परिवर्त्तनशील हैं; किन्तु भगवद्वस्तु कालक्षेपमें नाश होने वाली नहीं है। तरज्ञानके अन्तर्गत नहीं है। अक्षर और अच्युत वस्तुकी आलोचना वा व्याख्या या वर्णन जिस शास्त्रमें होती है वह शास्त्र परविद्याके अन्तर्गत है। यह श्रीमद्भागवत ग्रन्थ उन परविद्या शास्त्रसमूहोंमें शिरोमणि है। आधुनिक तार्किक मनमें सोच सकते हैं कि मानव सभ्यताका आदि ग्रन्थ भारतीय ऋग्वेदसंहिता ही है। उस सर्वप्राचीन आदि ग्रन्थके पीछे जो सब ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं वे अपेक्षाकृत नये तथा आधुनिक ग्रन्थ हैं। ऐतिहासिकोंमेंसे कोई ऐसा भी कह सकते हैं कि यह पौराणिक ग्रन्थोंकी कोटिमें गिनाजाने वाला एक शास्त्र है और यह भी कि जब उसमें पौर्वापर्य अन्य शास्त्रोंकी समालोचना की गयी है तब उनके पीछे यह ग्रन्थ लिखा गया होगा। कुछ लोग ऐसा भी समझ सकते हैं कि नारायणी, कृतमाला वा पयस्विनी नदी तीरवासी किसी लेखकने अपने देशके महिमा गान करनेकी इच्छासे श्रीमद्भागवतकी रचना की है। फिर दूसरे दूसरे पुराणोंकी प्राचीनता तथा उनकी लेखन प्रणालीसे इसकी प्रणालीका मिलान करके यह भी कहा जा सकता है कि दूसरे पुराणोंकी अपेक्षा यह पीछेका रचा हुआ है। जो हो अर्वाचीन-पन्थी ऐसेही असंख्य विवाद पूर्ण युक्तियोंके बलपर श्रीमद्भागवतको अन्य पुराणोंकी अपेक्षा आधुनिक वा मध्ययुगीय समझ सकते हैं किन्तु वास्तवमें ऐसी धारणाओंके विरुद्ध नीचे लिखी हुई कई बातोंपर ध्यान देनेपर दूसरे निर्णयपर पहुंचना होगा।

श्रीमद्भागवतमें जिस विषयका वर्णन किया गया

है, उसकी प्रतिपादनप्रणालीसे हमें ज्ञात होता है कि मानव सभ्यताकालके भीतर जिन ग्रन्थोंका निर्माण हुआ है उनमें सर्व प्राचीन ग्रन्थके प्रतिपाद्य देवगण इन्द्रिय-ग्राह्य द्वितियाभिनिवेशके जाज्वल्यमान दृष्टान्त मात्र हैं। ऋग्वादि-संहिता प्रतिपाद्य-विषयमें अलौकिकताका अधिक अवकाश नहीं है। उसके बादके सूत्र इत्यादिने भी जो आधुनिक संस्कृत भाषामें लिखे गये हैं उन्हींकी बातोंके सारका वर्णन मध्ययुगीय संस्कृत भाषामें विस्तारपूर्वक किया है। दर्शन ग्रंथोंके सूत्र, श्रौत, गृह्यसूत्र और बौद्धादि सम्प्रदायके मत-ग्रंथ प्रत्यक्ष विचारसे भगवदितर द्वितियाभिनिवेशका प्रकृष्ट परिचय देते हैं, परन्तु अपरोक्ष, अधोक्षज या अप्राकृत विचार तथा अलौकिक लीलाका कोई परिचय नहीं देते। श्रीमद्भागवतके अतीन्द्रिय विषयमें द्वितीयाभिनिवेशसे पैदा होनेवाली युक्ति, तर्क तथा विचारादिको विनाश करनेके लिये जो इतिहासादिका वर्णन किया गया है उनमें भी मानव ज्ञानकी इन्द्रिय-लौल्य-विरोधी और प्रत्यक्ष ज्ञानादिअतीत कथा ही अत्यन्त विस्तार पूर्वक कही गयी है। यद्यपि संस्कृत भाषामें लिखित ग्रन्थोंकी भाषा और संहिता कालके ग्रन्थोंकी भाषामें विषमता देख पड़ती है तोभी विषय विचारसे श्रीमद्भागवतमें वर्णन किये गये भाव विचारयुगसे पहलेके और अलौकिक सत्यके सहज आवाहन ही प्रमाणित होते हैं। उस समयके नित्य श्रीमद्भागवतप्रमुख पुराणादिमें सन्निविष्ट है, इसीका सामान्य निर्देश वैदिक संहितादि ग्रन्थमें संक्षिप्त-रूपसे देखनेमें आता है। जिन ग्रंथोंके आधारपर पुराण लिखे गये वे जिस भाषामें लिखे गये हों पर वे सब वैदिक ग्रंथ कालवश लुप्त हो गये। बाद वाले कालमें चूंकि वे सब मूल ग्रन्थ लुप्त और अलभ्य हो गये इसलिये यह नहीं कहा जा सकता कि पुराणोंमें वर्णित विषय आधुनिक है। हम कहनेके लिये बाध्य होते हैं कि पुराणमें लिखी हुई विष्णु सम्बन्धीय प्राचीन आख्यायिकायें जो कथा रूपमें अवतीर्ण हुई हैं उपन्यासके सदृश्य आधुनिक वा काल्पनिक नहीं हैं। श्रीमन्महाभारत और श्रीमद्भागवतादि पुराण ग्रंथोंके प्रतिपाद्य विषय ऋक्-संहिताप्रकाशकालके बहुत पहलेकी बातें हैं, इसलिये संहिताके पीछे लिखे हुए पुराणादि वैदिक कालसे पहलेके विषयकी आलोचनासे परिपूर्ण हैं। सूत्र ग्रंथोंके बीच हम शाण्डिल्य और भरद्वाजादि ऋषि-प्रणीत कई सूत्र ग्रन्थोंका संधान पाते हैं। भिक्षुसूत्र कर्मन्दी, पाराशर्यसूत्र, व्याससूत्रसे बहुत पहले रचे गये थे। भक्ति सूत्रोंने सात्वत-पञ्चरात्र रचनाकालमें विस्तार लाभ की थी। गृह्य-सूत्रोंने कर्मकाण्डी स्मार्तलोगोंके हाथमें जिस प्रकार [illegible] धर्मशास्त्रोंके रूपमें स्थान पाया है, उसी प्रकार सूत्र ग्रंथादिनेभी पंचरात्रादि सात्वतशास्त्रोंमें संस्कृत भाषामें स्थान लाभ किया है। सात्वतसूत्र राजस तथा तामस सूत्रकी प्रणालीसे भिन्न प्रणालीसे रचे गये हैं। भागवत, वैष्णव, नैष्कर्म, वैखानस, पाञ्चरात्रिक प्रभृति विचारधारा प्राग्वैदिक युगमें प्रबल थी। उसके उपरान्त जड़विचारसे परिपूर्ण और तर्कदर्शनोंमें भगवद्भक्तिका विचार मन्द हो जानेपरभी और पौराणिक रचना कालमें पूर्वके रहते हुए भी पुनः प्रकाशित हुए हैं। भागवत पाठके पहले बुद्धिमान निष्पक्ष पाठक वेदरूपी कल्पतरुसे गिरे हुए रसीले भागवतरूपी फलकी सर्वश्रेष्ठता जानकर तर्कयुक्त विचारपर निर्भर करनेमें अन्धकार रहित सहज सत्यको प्राप्त करनेमें असमर्थ होंगे। आनुगत्यरूप भक्तिधर्मही श्रौत विचारकी सर्वश्रेष्ठताको बतलाता है। उसके अभावमें कर्म और ज्ञान मार्ग दोनों प्रकृत सत्यप्राप्तिके प्रतिबन्धक

हो जायगें।

अन्तमें हमलोगोंका कहना यह है कि इस श्रीमद्भागवत ग्रंथको ही कलियुगपावनावतारी श्री मन्महाप्रभुने अमल प्रमाण-शिरोमणि कहकर स्वीकार किया है। अतः प्रत्येक कोविदोके लिये चिद्धर्मानुगत्य अनिवार्य है। श्रीमद्भागवत-विरोधी दलको हम उससे अधिक बुद्धिमान् कहकर आदर नहीं कर सकते।

श्री श्रील आचार्यदेवके उपदेश

श्रीरूपविलास प्रभु—शिक्षागुरु क्या जीवतत्व हैं ?

श्रील आचार्यदेव—नहीं। गुरु जीवतत्व नहीं हैं। जब गुरुज्ञान हो जाता है, तब जीवतत्व-दर्शन वा तटस्थ-दर्शन नहीं रहता; मुक्त जीवरूपसे भी दर्शन नहीं होता है। गुरुमें कृष्ण प्रिय—भागवानकी स्वरूप-शक्ति वा पराशक्तिका दर्शन होता है विभिन्नांश दर्शन नहीं। तटस्थजीव मुक्त होनेपर भी विभिन्नांश रहेंगे। तटस्थजीव भावोदयके पहलेतक माया कवलित हैं। गुरु कहकर उनका मुक्तजीवरूपसे—विभिन्नांश दर्शन करना नहीं होगा। गुरु विष्णु तत्व हैं। वे भगवानसे अभिन्न हैं—सेवक भगवान हैं। श्रीगुरुदेव Enjoyer Absolute नहीं हैं, वे Enjoyed Absolute हैं। कृष्ण और गुरु—भोक्ता भगवान और भोग्य भगवान हैं—सम्भोक्ता और सम्भोग्य हैं। सम्भोक्ता भगवान—कृष्ण, और सम्भोग्य—भगवान—लक्ष्मी वा गुरुदेव हैं। श्रीगुरुदेव भगवानके प्रियतम सेवक हैं। भगवानके साथ उनका अविच्छेद्य (नित्य) सम्बन्ध है। किन्तु वे सम्भोक्ता नहीं हैं। शिक्षागुरुगण सभी भगवत्‌प्रेष्ठ हैं। शुद्ध—भगवद्भक्त शिव और गुरुको भगवानके साथ अभिन्न समझते हैं। 'भगवत-प्रिय तमत्वेनैव दृश्यते' सदाशिव भगवानके साथ अभिन्न हैं। रुद्र जो गुणके द्वारा संसारका ध्वंश करते हैं, और जो मायासङ्गी हैं वे वह शिव नहीं है। जगतकी सृष्टि करनेवाले ब्रह्मा हमलोगोंके गुरु नहीं हैं। मेरे गुरुके साथ जगतसृष्टि वा मायाशक्तिके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। वे भगवानको सबसे अधिक सुख विधान करते हैं। जो भगवानको सबसे अधिक सुख देते हैं, वे ही मेरे गुरुदेव हैं।

मुक्त जीव वैष्णव हैं। बद्ध, तटस्थ और मुक्त एक नहीं। गुरुदर्शन जीवरूपका दर्शन नहीं है। 'आचार्य मां विजानीयात्।' यहां जीवरूपसे दर्शन करनेसे अपराध होगा। नित्यसिद्ध पार्षद जीव-जातीय नहीं हैं। इनलोगोंको जीव नहीं कहा जा सकता। तटस्थ अवस्थामें ब्रह्म—परमात्म ज्ञान होता है, और मुक्त अवस्थामें भगवदनुभूति होती है।

व्रजेश्वरी बाबू—गुरुका ज्ञान कौन करेगा ? वह कब होगा ?

आचार्यदेव—शिष्य आचार्यको गुरु समझेगा।

किबा विप्र किबा न्यासी शूद्र केने नय।
येइ कृष्णतत्ववेत्ता सेइ गुरु हय॥

वर्णाश्रम बद्ध जीवके लिये है; भगवान् वा परमहंसके लिये वर्णाश्रम नहीं है। श्रीगुरुदेव विप्रकुलमें उत्पन्न हुए हों, वा जिस किसी वर्ण वा आश्रममें रहें वा शूद्र वर्णमें आविर्भूत हों, उनसे कुछ आना जाना नहीं। जो कृष्णतत्ववेत्ता हैं वे ही गुरु हैं।

श्रीवलदेव विद्याभूषण प्रभुके "सिद्धान्तरत्नमें" और ठाकुर भक्तिविनोदके "जैवधर्ममें" ये सब

बातें हैं; वह कृष्णतत्त्ववेत्ता (कृष्णतत्त्वको जानने वाला) कृष्णको छोड़कर दूसरा नहीं होता। कृष्णको कृष्ण ही जानते हैं। वहां जीव वा तटस्थ वा विभिन्नांश दर्शन नहीं हो सकता। मुक्त जीव दो प्रकारके हैं—नित्यमुक्त और बद्धमुक्त।

ब्रजेश्वरी बाबू—तब तो मुक्त जीवोंको गुरु नहीं कहा जायगा?

आचार्यदेव—जीव कहनेसे 'गुरु' नहीं कहा जायगा। और 'गुरु' कहनेसे जीव नहीं कहा जायगा। पार्षद और जीव एक नहीं हैं। पार्षद वा परिकर ही 'गुरु' हैं। उन्हें जीव कहनेसे काम नहीं चलेगा।

श्रीपाद भक्तिमानव प्रभु—गुरुको वैष्णव कहनेसे कौनसा दोष होता है?

आचार्यदेव—वैष्णव दो प्रकारके हैं—विभिन्नांश जीव और आश्रय विग्रहगण। मुक्त जीव ही वैष्णव हैं। मधुररसमें—वार्षभानवी, वात्सल्यरसमें—नन्द यशोदा—ये स्वांश हैं—स्वरूपशक्ति हैं। गुरुको केवल वैष्णव न कहकर 'भक्तश्रेष्ठ' वा 'वैष्णवराज' कहा जाता है। महाभागवत वा वैष्णव एक तत्त्व है। महाभागवत-श्रेष्ठ—गुरुदेव हैं। 'महाभागवतवर श्रीगौरकिशोरवर, मुक्तजीव—वैष्णव हैं। स्वरूपशक्ति वा परिकरगण ठीक मुक्त जीव नहीं हैं। वे चिच्छक्तिके विलास हैं। विभिन्नांश जीव कारणार्णवशायीसे प्रकट हैं। वे तटस्थ हैं। सङ्कर्षणसे प्रकटित जीव नित्यसिद्ध हैं। सन्धिनी-शक्तिमद्-विग्रह बलदेव—सङ्कर्षण-प्रकटित नित्य-सिद्ध पार्षद-गण कारणार्णवशायीसे प्रकटित जीवके ठीक एक समान नहीं हैं, उनसे श्रेष्ठ हैं। बलदेव ही नन्दादि-रूपसे कृष्णकी सेवा कर रहे हैं! सन्धिनी-शक्ति-प्रकटित धाम और नित्यानन्द एक समान हैं। वे बहुरूपसे गौरसेवा कर रहे हैं।

श्रीभक्तिबान्धव—विलास कहनेसे क्या समझा जाता है?

आचार्यदेव—विलासमें जहां जीव हैं, वहां जड़-विलास है। वह बन्धन है। चिद्‌विलास—परममोक्ष मोक्षकी पराकाष्ठा है। कृष्णका जितना विलास है सब पूर्णज्ञान-घनानन्दरूप है। वह अविद्याद्वारा अभिभूत (मुग्ध) कोई पदार्थ नहीं है। वहां बन्धन वा क्लेश नहीं है, वहां केवल निरवच्छिन्न (अप्रतिहत) आनन्द है। वहां सब एक ही तात्पर्यके बोधक हैं—All Harmony एक सुरपर हैं। वहां विरोध नहीं है—Parallel नहीं है। वह प्रेमभूमि है, वहां विलास हो रहा है, संघका अर्थ मिशन वा यूथ है। वही संघ यहां अवतीर्ण होते हैं।

अभिधेय भक्ति विशुद्ध वस्तु है। श्रद्धासे भक्ति आरम्भ होती है।

ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन भाग्यवान जीव।
गुरु कृष्ण-प्रसादे पाय भक्ति लताबीज ॥

यहां बीज है—वहां बीज नहीं है, सभी प्रस्फुटित हैं। यहां पहले बीज आरम्भ होता है। भक्ति लताका पहला बीज श्रद्धा है, उसके बाद मुकुलित अवस्था होती है। अप्रस्फुटित विकाश वा स्वल्पतम प्रकाश ही बीज है। उसका प्रथम आरम्भ है—Seed (बीज), embroinc stage (अङ्कुरित अवस्था), slightest manifestation (कुछ विकसितावस्था)।

विलास और प्रकाश एक ही वस्तु है। एक ही वस्तु जहां बहुरूपसे प्रकाशित होती है, वह प्रकाश है। जैसे द्वारकेश कृष्णने बहुरूप धारणकर षोड़श सहस्र महिषियोंका पाणिग्रहण किया था—वहां प्रकाश था और जहां मूर्तिके आकारमें भेद है, वह विलास

है। बलदेव, नारायण—कृष्णके विलास हैं। रासमें कृष्णका प्रकाश शक्तिका विलास-वैचित्र्य वा वैशिष्ट्य Excellent diversity है। प्रभुपाद ने इनको 'Relative worlds' कहा है।

श्रीभक्ति बान्धव—गुरुदेवको बलदेवाभिन्न विग्रह कहनेसे क्या विषय विग्रहत्व नहीं रहता?

आचार्यदेव—श्री गुरुदेव रोहिणी-नन्दन वा रौहिणेयराम नहीं हैं। बलदेवका जो रास है उसमें कृष्णने ही बलदेवके अङ्गमें रास किया है। भोग किया है। बलदेवमें कृष्णसुखपरताके सिवाय और कुछ नहीं है। उन्होंने चार रससे कृष्ण सेवाकी है। रासमें उन्होंने अपने अङ्गसे कृष्णको भोग कराया है।

चतुर्व्यूहमें जो बलदेव हैं उनमें ईश्वरत्व है। Quadrant Diversity जहां वहां विषय विग्रहकी प्रबलता है। ह्लादिनी (श्री राधारानी)का आनुगत्य करनेसे अप्राकृत प्रकृति होना ही होगा। शक्तिविलास की कथा ही सेवाकी कथा—आश्रयकी कथा है। श्री गुरुदेव शक्तिमान नहीं हैं, वे कृष्णकी शक्ति हैं—स्वरूप शक्ति हैं—आश्रयविग्रह हैं।

सन्धिनीके प्रकाश-धाम, चित्तवृत्ति वा भाव और रूप—Entity हैं। सम्वित्‌से कृष्णकी अनुभूति होती है, और ह्लादिनी शक्तिका कार्य—रसका उदय कराना वा आनन्द देना है।

श्रीभक्ति बान्धव—साधुसङ्ग किस प्रकारसे प्राप्त होता है?

आचार्यदेव—'कोन भाग्ये, कोन जीवेर श्रद्धा यदि हय। तबे सेइ जीव साधुसङ्ग करय।'

श्रद्धा और साधुसङ्ग दोनों एक साथ होता है। जब संसार क्षयोन्मुख होता है, Prison gate के खुलनेका समय आता है तब High Court Judgeने release order दिया है ऐसा समझना होगा, क्योंकि दोनों एक साथ होता है।

जहां कृष्णको अपना जान है, वहां पूर्ण शरणागति समझनी होगी। जहां शरणागति, अकिञ्चनत्व वा दीनताकी उपलब्धि है वहां गुरु और वैष्णव ठाकुरका सङ्ग है। वहां मायाधर्म, पुरुषाभिमान वा प्रभुत्वस्पृहा कम होती जाती है—सुखवाञ्छाका ह्रास होता है, वहां बन्धन भी कटता जाता है।

अज्ञातभक्त्युन्मुखी सुकृति ही भाग्य है। संसारके क्षयोन्मुख नहीं होनेसे श्रद्धा नहीं होती। वह सौभाग्यवान जीव ही गुरु कृष्ण कृपासे श्रद्धा प्राप्त करते हैं। जिसको श्रद्धा नहीं होती उसके भाग्यका उदय नहीं हुआ।

भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवे-
ज्जनस्य तर्ह्यच्युत सत्समागमः।
सत्सङ्गमो यर्हि तदैव सद्गतौ
परावरेशे त्वयि जायते मतिः॥

हे अच्युत, संसार भ्रमण करते करते जब संसारसे उत्तीर्ण होनेका समय उपस्थित होता है, तब जीवका यदि सत्सङ्ग हो तभी सद्गति और परावरेश्वर स्वरूप आपमें मति होती है।

साधुसङ्ग विशेष रूपसे आवश्यक है। साधु सङ्ग करते करते बन्धन खुल जायगा। सब असुविधा मिट जायगी। कृष्ण ग्रहण (accept) करेंगे। A pencil of ray from the sun of mercy आनेसे प्रकृतिके ऊपर प्रभुत्व करनेकी स्पृहा कम हो जायगी। वर्ण वा आश्रमके प्रति उस समय आसक्ति नहीं रहेगी। जागतिक अभिमान वा भोग त्यागकी प्रवृत्ति कम हो जायगी। इस जगतके साथ केवल देहका सम्बन्ध है। इस जगतके साथ सम्बन्ध वा देहात्म बुद्धि उस समय शिथिल हो पड़ेगी।

सङ्गका इतना प्रभाव है। कृष्णकी इतनी शक्ति है!

साधुसङ्ग करते करते आत्माभिमान वा सेवकाभिमान जागता है इसलिये वैष्णवके प्रति समस्त अभिनिवेश होता है। आत्मानुभूतिमें अप्राकृत वस्तुके प्रति—साधु गुरुके प्रति जो अभिनिवेश (आसक्ति) होता है वही राग है। 'रञ्ज्' धातुसे 'राग' शब्द निष्पन्न हुआ है। यही राग वा अभिनिवेश (आसक्ति) अनात्म वस्तुमें वा प्राकृत वस्तुमें होनेसे रजोगुण वृत्ति वा बन्धनका कारण होता है, और आत्मवस्तुमें होनेसे—अप्राकृत वस्तुमें होनेसे—गुरु वैष्णवमें होनेसे सम्बन्ध वा लगाव होता है। वहां बन्धन नहीं है। यही आवश्यक है। प्रीति नहीं होनेसे सङ्ग नहीं होता।

कृष्णके अनुकरण करनेका नाम पराक्रम इच्छा है। वही बन्धन है। जहां मनुष्य जीव अनुमानके द्वारा अपनेको अनित्य देह और मन समझ लेता है, और एकमात्र भोक्ता भगवानका अनुकरण करते हुए विवर्त्त बुद्धिद्वारा कृष्णके प्रति मत्सरी हो जाता है वहीं उसका सर्वनाश है। Enjoyment is the eternal function of Krishna. Krishna—minus enjoyment—निर्विशेष ब्रह्म है, और जहां कृष्णका अनुकरण है, वहां जड़विलास है। बद्ध जीव Perverted shadow भोग करता है। जीवके स्वरूपमें पुरुषाभिमान (भोक्ताभिमान) नहीं है। पुरुषाभिमान बुरा है, स्वरूपमें ग्रहण वा त्यागकी कोई बात नहीं है।

श्रीभक्तिबान्धव—साधुसङ्ग क्या है?

श्रीआचार्यदेव—साधु कृष्णकी चिच्छक्ति है—प्रकृतिके अतीत वस्तु हैं। कृष्णके सेवोपकरणका नाम साधु है। साधु दर्शन होनेसे बाहरका दर्शन नहीं रहता। जहां देहके प्रति दृष्टि है, वहां आत्मदर्शन नहीं है। आत्म दर्शन होनेसे देहकी ओर दृष्टि नहीं रहती। शरीर रक्षाके लिये पोशाककी आवश्यकता है। अज्ञानक्रमसे अप्राकृत वस्तुके सम्बन्धके लिये यदि कुछ किया जाय एवं वह फल यदि अप्राकृत वस्तुको मिले, तो सुकृति होती है। जहां सम्बन्ध नहीं हुआ वहां सुकृति है। साधुसङ्गके पहले यह अज्ञातक्रमसे होता है और जहां सम्बन्धज्ञान है वहां भक्ति होती है। वही प्रकृत सेवा है।

घरमें आग लग गयी है। कोई बन्धु घरसे बाहर आनेके लिये कह रहे हैं। द्वार खोलने वा बन्द करनेकी शक्ति वा अधिकार गृहस्वामीका है। यदि उस समय स्वतन्त्रताका सद्व्यवहार हो अर्थात् बान्धवोंमें—आत्मीयके पुकारसे यदि उत्तर दे तभी बचेगा और यदि सोया रहा तो वञ्चित हुआ अथवा मर गया। सूर्य उठा है, समय हुआ है। बन्धु दरवाजा पर धक्का दे रहा है। किन्तु मैं यदि दरवाजा न खोलूं, तो प्रकाश किस प्रकार पाऊंगा? साधुसङ्ग करनेसे बन्धुके पुकारसे उत्तर देनेसे अवश्य मङ्गल होगा। ग्रहण करना ही स्वतन्त्रताका सद्व्यवहार है; इसलिये बुद्धिमान उसका ही आदर करते हैं; मोहका कोई आदर नहीं करता।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्त्ति संयमी।
यस्यां जाग्रत्ति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥

सेवामें जगे हुए विद्वत्समाजकी प्रशंसा करूंगा; नहीं तो पुरुषाभिमानसे बन्धन होगा। जहां चेतनके पुकारसे उत्तर नहीं, वहां ही पुरुषाभिमान है—वहां ही बन्धन है।

संसारे आसिया, प्रकृति भजिया,
पुरुषाभिमाने मरि।

जीव जब प्रकृतिका भजन करता है, उस समय जड़ प्रकृतिके अधीन होता है। प्रपन्न वा शरणागत

होकर मुक्त जीव जिस भावसे भजन करते हैं—जिस भावसे मेरे साथ विलास करते हैं, उसी भावसे वा उसी रससे मैं (भगवान) उनको सुख देता हूँ। कृष्ण कहते हैं—"ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।" तटस्थको पुरुषाभिमान है—बन्धन है। पुरुषोत्तम—तुरीय हैं। पुरुषावतार तीन हैं—कारणार्णवशायी, गर्भोदकशायी और क्षीरोदकशायी। प्रकृति वा जीवके साथ इनलोगोंका कार्य है। जीवके कारण वा आश्रय हुए कारणार्णवशायी विष्णु। समष्टि-अन्तर्यामी वा आधार हुए गर्भोदकशायी विष्णु, और प्रत्येक जीवके अन्तर्यामी हुए क्षीरोदकशायी विष्णु। वे पुरुष हैं, क्लीव (नपुंसक) नहीं हैं। पुरुष—विलासी हैं। वे चित्शक्तिके साथ विलास करते हैं। जीवको मुक्तकर बलदेवकी कृपा तुरीय पहुंचाती है। 'मां'—मुझको—मेरे विग्रहको। स्थायी-भाव रति उदय होनेके पहले विग्रह दर्शन नहीं होता।

देवता—अचिदावृत्त तटस्थ हैं। सत्वगुणप्रधान तटस्थ जीव देवता हैं। उनके भजनमें Bartering system है। देवताओंमें jealousy है। एक देवताको भजन करनेसे दूसरे रंज होते हैं। किन्तु Absolute की सेवा करनेमें Bartering system नहीं है।

यथा तरोर्मूलनिषेचनेन
तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः।
प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां
तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या॥

जिस प्रकार वृक्षके मूलमें जल पटानेसे, उसके स्कन्ध, शाखा, उपशाखा प्रभृति सभी सञ्जीवित होते हैं, और प्राणमें आहार प्रदान करनेसे (अर्थात् भोजन करनेसे) जिस प्रकार सभी इन्द्रियोंकी तृप्ति होती है, उसी प्रकार एकमात्र श्रीकृष्णकी पूजा द्वारा सभी देव-पित्रादिकी पूजा होती है।

प्रथम वैभव

सम्बन्धतत्त्व और श्रीभक्तिविनोद

प्रश्नः—सम्बन्धतत्त्व तथा सम्बन्धज्ञान किनको कहते हैं?

उत्तरः—सम्बन्धतत्त्वमें तीन वस्तुओंकी पृथक पृथक शिक्षायें हैं—जड़जगत वा मायिक तत्त्व, जीव वा अधीनतत्त्व एवं भगवान वा प्रभुतत्व की। भगवान एक और अद्वितीय, सर्वशक्ति सम्पन्न, सबोंको अपनी ओर खींचने वाले, ऐश्वर्य और माधुर्यके एकमात्र निलय तथा माया और जीव-शक्तिके एकमात्र आश्रय हैं। वे माया और जीवके एकमात्र आश्रय होकर भी सर्वदा सुन्दररूपमें एक स्वतन्त्र स्वरूप हैं। उनके अङ्गोंकी कान्ति अति-दूरस्थ हो निर्विशेष ब्रह्मके रूपमें लक्षित होती है। उनकी ऐसी शक्ति संसार और जीवोंकी सृष्टि कर एक अंशसे (परमात्म-रूपसे) जगतमें प्रविष्ट ईश्वर-तत्त्व है। ऐश्वर्य-प्रधान प्रकाशावस्थामें वे परम व्योममें विराजमान नारायण हैं; माधुर्य-प्रकाश-कालमें वे गोलोक वृन्दावन वासी गोपीजनवल्लभ श्रीश्रीकृष्णचन्द्र हैं। उनके प्रकाश और विलास नित्य तथा अनन्त हैं। उनके समान कोई और कुछ भी नहीं है, उनसे अधिककी तो बात ही नहीं। समस्त प्रकाश और विलास उनकी परा शक्तिसे ही उत्पन्न हुए हैं। उनकी परा शक्तिके अनेक विक्रमोंमेंसे तीन ही विक्रमोंका जीवको पता है—एकका नाम चिद्विक्रम है, जिसके द्वारा उनकी सम्पूर्ण लीलायें सुचारुरूपसे संपन्न होती हैं; दूसरेका नाम है जीवविक्रम वा

तटस्थविक्रम— जिसके द्वारा अनन्त जीवोंका उदय तथा अवस्थिति होती है; तीसरे विक्रमका नाम मायाविक्रम है, जिसकेद्वारा सकल मायिक वस्तुओं, काल तथा कर्मकी रचना होती है। जीवके साथ भगवानका जो सम्बन्ध, भगवानके साथ जीव और जड़का जो सम्बन्ध, एवं जड़के साथ जो भगवान और जीवका सम्बन्ध है—इन्हीं सम्बन्धोंका नाम है सम्बन्धतत्त्व। सम्बन्धतत्त्वके अन्तर्गत ज्ञानतत्त्व से ही 'सम्बन्धज्ञान' होता है। सम्बन्धज्ञानसे हीन व्यक्ति किसी प्रकार शुद्ध वैष्णव नहीं कहा जा सकता।"

—जै० ध० ४थं अ०

७ प्रश्न:—सम्बन्ध-ज्ञानयुक्त 'अहन्ता ममता' क्या कोई निकृष्ट वस्तु है?

उत्तर:—श्रील ठाकुर भक्तिविनोद कहते हैं—वास्तविक श्री कृष्ण-सम्बन्ध-अभिमानमें अहंता ममताका भाव नहीं है। कृष्णेतर प्राकृत वस्तुओंमें जो मेरा अहंता और ममताका भाव है वह श्रीकृष्ण-की सेवाके साथ सम्बन्ध रखते हुए ही है।

-यामुन भावावली, गीतमाला

द्वितीय वैभव

१ 'आम्नाय' क्या है?

"संसार-रचयिता ब्रह्माके निकटसे गुरुशिष्य-परम्परा द्वारा प्राप्त 'ब्रह्मविद्या' नामक वेद-समूहको 'आम्नाय' कहते हैं।"

--श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षा ४थ परिच्छेद।

२ श्री चैतन्यदेवकी मूलशिक्षा क्या है?

"आम्नाय: प्राह तत्त्वं हरिमिह परमं सर्वशक्तिं रसाब्धिं
तद्भिन्नांशांश्च जीवान् प्रकृतिकवलितानां तद्वि-मुक्तांश्च भावात्।
भेदाभेदप्रकाशं सकलमपि हरे: साधनं शुद्धभक्तिं
साध्यं प्रीतिमेवेत्युपदिशति जनान् गौरचन्द्र: स्वयं स:॥"

—'दशमूलनिर्यास,' सज्जनतोषिनी ९।९।

३ दशमूल क्या है?

दशमूलमें एक तो प्रमाण और नव प्रमेय हैं। प्रमाण है आम्नाय वाक्य, और प्रमेय ये हैं—

(१) हरि ही पर तत्त्व हैं; (२) वे (श्यामसुन्दर) सर्वशक्तिमान हैं; (३) वही श्यामसुन्दर परमरसमय हैं, मंत्र्याम या परव्योममें ही उनका धाम है; (४) जीव अनन्त, चित्परमाणु तथा कृष्णके विभिन्नांश हैं; और नित्यबद्ध तथा नित्यमुक्त भेदोंसे दो प्रकारके हैं। (५) कृष्णवहिर्मुख जीव मायासे बन्धे हुए हैं; (६) शुद्ध भक्तगण माया से मुक्त हैं; (७) जीव और जड़मय समस्त जगत उनकी अचिन्त्य शक्तिसे उत्पन्न उनका नित्य-भेदाभेद प्रकाश है; (८) नव प्रकारकी कृष्ण भक्ति ही अभिधेय तत्त्व है; (९) कृष्ण-प्रेम ही प्रयोजन तत्त्व है।"

—श्रीत शास्त्रानन्दा ह: चि:।

४ तत्त्ववस्तु एक है वा अनेक?

"तत्त्वमेकमेवाद्वितीयम्
तत्त्ववस्तु एक ही है दो नहीं।"

—शक्तिमत्तत्त्व प्रकरण श्रा: सू:२।

५ श्रीचैतन्यदेवकी शिक्षायें किन ग्रन्थोंमें लिखित हैं?

"श्रीमहाप्रभुकी शिक्षायें दो ग्रन्थोंमें अच्छीतरह लिखी हुई हैं: तत्त्वशिक्षा—'श्रीब्रह्मसंहिता' में तथा भजनशिक्षा—'श्रीकृष्ण कर्णामृत' ग्रन्थमें।"

—"वह्निप्रि" कृ: क: ।

६ एकमात्र प्रमाण क्या है? वेदोंका प्रतिपाद्य—विषय-वस्तु क्या है?

"वेदशास्त्रोंमें विशुद्ध भक्ति ही की शिक्षा दी गई है। वेद-वादियोंके प्रकृति-दोषसे अनेक प्रकारके मतों, तथा अनेक प्रकारके कर्मों और ज्ञानोंकी व्यवस्था प्रचलित है। वास्तवमें तो केवल वेद ही मनुष्योंके एकमात्र प्रमाण तथा शिक्षागुरु है। वेदोंमें मतमतान्तर प्रवेश कराकर शुद्धभक्तिसे पृथक्, भिन्न भिन्न मतोंका प्रचार हुआ है।"

—प्रमाणनिर्देश, भा: म: ११६।

७ सच्छास्त्र क्या है?

"एक अन्धा मनुष्य यदि दूसरे अन्धेको पथ-प्रदर्शन करे तो दोनों जाकर कुएंमें गिर पड़ें; उसी तरह असत शास्त्रके बनाने वाले तथा उनके अनुसरण करने वाले अज्ञ लोग कुमार्गमें चले जाकर शोचनीय होते हैं। वेद और वेदानुगत शास्त्र ही 'सच्छास्त्र' हैं।

—चै: शि: १।२।

८, वेद क्या है?—

"जिस किसी स्थानमें कोई एक वेदग्रंथ पा लेनेसेही जो वह ग्रंथ सब जगह माननीय होगा यह बात नहीं है। समय समयपर मतसम्प्रदायोंके आचार्योंने जिनको स्वीकार किया है वेही 'वेद' हैं और जिनको प्रक्षिप्त कह परित्याग किया है वे 'वेद' नहीं हैं, अतएव हमारे माननीय नहीं हैं।"

—जै: ध: १३श अ: ।

९, गीता, भागवत, सात्वत-पञ्चरात्रादि शास्त्र, वेद और श्रीचैतन्यदेवकी वाणी—इनमें पार्थक्य क्या है?

"गीताको श्रीमुखसे उच्चारित वाक्य होनेके कारण 'गीतोपनिषद्' कहा जाता है अतएव वह वेद है। श्रीचैतन्य महाप्रभुका शिक्षित दशमूलतत्त्व भी श्रीमुखवाक्य है सुतरां वह भी 'वेद' है। समस्त वेदार्थोंके सार संग्रहरूप श्रीमद्भागवत ही प्रमाण चूड़ामणि हैं। और अन्यान्य स्मृतिशास्त्रोंके वचन भी यदि वेदानुगत हों तो वे भी प्रमाण ही हैं। तन्त्र शास्त्र तीन प्रकारके हैं—सात्विक, राजस और तामस। उनमें 'पञ्चरात्र' प्रभृति सात्त्विक तन्त्र सब वेदोंके गूढ़ अर्थोंका विस्तार करनेके कारण वे भी प्रमाणोंके मध्य माने गये हैं।

जै: ध: १३श अ:

१०, आम्नाय धाराओंके नित्यत्वका क्या प्रयोजन है?

"No book is without its errors. God's Revelation is Absolute Truth, but it is scarcely received and preserved in its natural purity * * * Truth when revealed is Absolute, but it gets the tincture of the nature of the receiver in course of time and is converted into error by continual exchange of hands from age to age. Now Revelation, therefore, are continually necessary in order to keep Truth in its original purity."

The Bhagawat Its Philosophy, Its Ethics and Its-Theology.

अर्थात—"कोई भी ग्रन्थ पूर्णतया दोषरहित

नहीं होता है। स्वयं भगवान अपने भक्तके हृदयमें जिस सत्यका प्रकाश करते हैं वह परम सत्य है किन्तु अपनी स्वाभाविक पवित्रताके साथ वह मनुष्योंसे प्रायः गृहीत तथा रचित नहीं हो होता है। सत्य जब प्रकाशित होता है परम सत्य रहता है, किन्तु समयवशात् वह ग्राहकके स्वभावकी कलङ्क ग्रहण कर लेता है और एक हाथसे दूसरे हाथोंमें जाते रहनेके कारण दिनोंदिन दोष रूपमें परिवर्तित होता जाता है। अतएव सत्यके स्वाभाविक पवित्रतावस्थामें रखनेके लिये आम्नाय नित्य आवश्यक है।''

ठी भागवत इट्समर्फिलोसोफी, इट्स पाथवम, एण्ड इट्स पिओलोजी।

तृतीय वैभव

१, सद्गुरुका लक्षण क्या है? कुलगुरुके स्वीकार करनेपर क्या सद्गुरुका आश्रय-लाभ नहीं होता?

"समयके दोषसे गुरुके सम्बन्धमें मनुष्योंके विचार अत्यन्त दोषपूर्ण हो गये हैं। इन दिनों कुलगुरुके निकट अथवा जिसी किसी साधारण व्यक्तिके निकट उपदेश ग्रहण किया जाता है, इससे परमाराध्य गुरुदेवका आश्रय प्राप्त नहीं होता। शास्त्रों में कहा गया है कि जो गुरु शब्दब्रह्म और परब्रह्ममें निष्णात हैं उनके निकट आत्म-धर्मके जिज्ञासु व्यक्ति गमन करें तथा उनकी शरणागति स्वीकार करें।"

पञ्चसंस्कार, स० तो० ७।१

२, 'गुरु' पदके योग्य कौन हैं?

"परमार्थ-विषयमें जो पारंगत हैं वे ही गुरु होनेके योग्य हैं।"

'गुर्व्ववज्ञा' ह० चि०।

३, उच्चवर्णोका विचार कर क्या गुरु करना उचित नहीं है? 'हरिभक्ति विलास'में ब्राह्मण तथा गृहस्थको गुरु स्वीकार करनेकी कथा क्यों कही गयी है?

कृष्ण तत्त्वका ज्ञान ही सब जीवोंका परमार्थ है। इस तत्त्वज्ञानसे गुरु होनेके अधिकारके सम्बन्ध में यह सिद्धान्त है कि कृष्णतत्त्वके ज्ञाता चाहे ब्राह्मण हों या शूद्र, चाहे गृहस्थ वा सन्यासी हों गुरु हो सकते हैं। श्री 'हरिभक्ति विलास'में जो उच्चवर्णोके योग्यपुरुषोंके रहते हीनवर्णोंके व्यक्तिके निकट कृष्णमन्त्र दीक्षा लेना उचित नहीं है—ऐसी कथा है वह लोकापेक्षी वैष्णवके सम्बन्धकी है; अर्थात यह कथा उस वैष्णवके सम्बन्ध की है जो समाज परिचालित विधिमार्गमें रहता हुआ कथञ्चित् परमार्थ विषयक इच्छा रखता है। परन्तु जो वैधी और रागानुगा भक्तियोंके तात्पर्य को जानकर विशुद्ध कृष्णभक्ति पानेकी इच्छा करते हैं उनके सम्बन्धमें उपयुक्त कृष्णतत्त्व ज्ञाता जिस वर्णमें वा जिस आश्रयमें प्राप्त हों उन्हें ही गुरु स्वीकार करनेकी विधि कही गयी है।"

—अ० प्र० भा० म ८।१२७

४ ब्राह्मणत्व और गृहस्थत्व—ये दोनों क्या गुरुके मुख्य लक्षण नहीं हैं?

"किबा विप्र किबा न्यासी शूद्र केने नय।
जेइ कृष्णतत्त्ववेत्ता सेइ गुरु हय॥"

(क्या ब्राह्मण, क्या सन्यासी, अथवा शूद्रही क्यों न हो जो व्यक्ति कृष्णतत्त्वके ज्ञाता हैं वे ही गुरु हो सकते हैं।) जिनमें यह गुरुत्व का स्वरूप-लक्षण मौजूद है उनको यदि एक या दो तटस्थलक्षण नहीं भी हैं तो वे गुरु होनेके योग्य हैं। ब्राह्मणत्व और गृहस्थत्व—ये ही दो गुरुके तटस्थलक्षण गिने जाते हैं। गुरुकी स्वरूपयोग्यतासे युक्त व्यक्तिमें

यदि ये दोनों तटस्थलक्षण मौजूद हैं तो अच्छा ही है। परन्तु जिनको कृष्णतत्त्ववेत्तृत्वरूप स्वरूप योग्यताही नहीं है उनको इन दो तटस्थलक्षणोंसे गुरु होनेकी योग्यता नहीं हो सकती।

—तत्त्वकर्म प्रवतन, सं॰तो॰ ११ ८

४ दुष्टगुरु और सद्‌गुरुके चरणाश्रय क्या है?

"गुरु दो प्रकारके होते हैं-अर्थात् अन्तरङ्ग और वहिरङ्ग। समाधिस्थ आत्मा ही आत्माका अन्तरङ्ग गुरु है। जो युक्तियोंको 'गुरु' कह उनके निकट उपासना सीखता है उसने दुष्ट गुरुका आश्रय लिया। नित्यधर्मके पोषक रूपमें युक्तियोंके छलने की प्रवृत्ताके छलनेसे तुलना की जासकती है। रागमार्गके उपासकगण परमार्थतत्त्वमें युक्तियोंका विसर्जनकर आत्मसमाधिका आश्रय लेते हैं। जिस मनुष्यके निकट उपासनातत्त्वकी शिक्षा ली जाती है वे वहिरङ्ग गुरु हैं। जो रागमार्गको जानकर शिष्योंके अधिकारानुसार परमार्थका उपदेश करते हैं वे सद्‌गुरु हैं।"

—कृ॰ सं॰ ८।१४

लोकशिक्षक ठाकुर भक्तिविनोद

नदिया जिलेके वीरनगर ग्राममें एक धनाढ्य व्यक्तिके घरमें श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुर अवतीर्ण हुए थे। बचपनसे ही उनकी धीशक्ति (बुद्धिशक्ति), धर्मप्रियता, सदाचार-वैशिष्ट्य और वैष्णव शास्त्रमें विशेष रुचिका परिचय मिलता था। विभिन्न मतवाद और धर्मशास्त्रादिके आलोचना एवं तुलनामूलक विचारसे वैष्णवधर्म और शास्त्रका असमोर्द्धत्व और पूर्णताके विषयमें उनकी बहुत निष्ठा देखी जाती थी।

महाप्रभु और उनके अनुग गोस्वामीगणोंके तिरोभावके बाद शुद्धभक्तिधर्मके योग्य प्रचारकोंके अभावसे कर्म, ज्ञान और योगादिके द्वारा जीवके चित्तमें मलिनताका समावेश हो गया था।

सकल संसार मत्त व्यवहार-रसे।
कृष्णपूजा, कृष्णभक्ति कारो नाहि वासे॥

चै॰ भा॰ आ॰ २।८६

कलियुगकी ऐसी अवस्थामें अबसे ठीक एक सौ वर्ष पहले ठाकुर भक्तिविनोदका आविर्भाव हुआ था। वैष्णवोंका जन्म वा मृत्यु नहीं होती। इसीलिये, ठाकुर भक्तिविनोदके संबंधमें आविर्भाव और तिरोभाव ये दो शब्द प्रयुक्त हुए हैं। बचपनसे ही वे भक्तिपथके पथिक थे। भक्ति-प्रचार करनेके लिये यत्नशील रहकर विभिन्न भाषामें सौ से अधिक ग्रन्थोंकी रचना उन्होंने की है।

श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षा, उनके शिष्य छः गोस्वामियोंके बनाये हुए कठिन संस्कृत ग्रंथोंमें लिखे रहनेके कारण संस्कृत नहीं जाननेवालोंका उसमें प्रवेश नहीं हो पाता था अतः वे उस ओर आकृष्ट नहीं होते थे। इसलिये ठाकुर भक्तिविनोद जीवोंके ऊपर बड़ी कृपा करके गोस्वामीशास्त्र समुद्रका मथन करके बङ्ग भाषामें जो नवनीत (मक्खन) संग्रहकर रख गये हैं, उससे आज भाग्यवान जीवात्माका प्रचुर आहारका संस्थान हुआ है। ठाकुर भक्तिविनोदके इस संसारमें आविर्भूत नहीं होनेपर महाप्रभुके शिक्षामृतकी उपलब्धि करनेका भाग्य कितने लोगोंको होता, यह कहना कठिन है। यह उनका एक बड़ा अवदान है।

ठाकुर भक्तिविनोदने ग्रन्थ-रचनाके सिवाय १८८० खृष्टाब्दसे १८९८ खृष्टाब्द तक पारमार्थिक पत्रिका "सज्जनतोषणी" में इन सब शिक्षाकी कथाओं-को अनेक सरल प्रबन्धों और निबन्धोंसे प्रचार किया है। महाप्रभुके प्रचारित प्रेमधर्मके मूलमें श्रीनामसंकीर्त्तन और श्रीनाम और श्रीनामका अभिन्नत्व विचार है। ठाकुर महोदयने अपने आचार और प्रचारके द्वारा हमलोगोंको उसकी शिक्षा दी है। उनकी शिक्षा केवल ग्रन्थोंके पृष्ठोंमें ही नहीं। उन्होंने अपनेको श्रीनामहट्टका झाड़ूदार बतलाया है। इस समय शुद्ध भक्तिपथमें वे हमलोगोंके प्रथम बन्धु, वर्त्मप्रदर्शक गुरु और सहायक है।

षड्गोस्वामियोंमें से एक श्रील जीवगोस्वामी पादने विश्व-वैष्णवधर्मके प्रकृष्ट प्रचार और क्रमोन्नतिके सहायकरूपसे आजसे प्राय चार सौ वर्ष पहले "श्रीश्रीविश्ववैष्णवराजसभा" नामक सभा स्थापित की थी। श्रील श्रीजीवगोस्वामीपादके अप्रकट होनेके बाद वह सभा लुप्त होगई थी। सन १८७० खृष्टाब्दमें ठाकुर भक्तिविनोदने उसी "श्रीश्रीविश्व-वैष्णव राजसभा" को पुनः जगाकर बहुत दिनों तक सभापतिके रूपसे प्रेमधर्मका प्रचार किया था।

श्रीमन्महाप्रभुके अप्रकट होनेके बाद उनका अविर्भावस्थल श्रीधाम मायापुर बहुत दिनों तक सर्वसाधारणके लिये अज्ञात रूपमें था। ठाकुर भक्तिविनोदने महाप्रभुके आदेश और वैष्णवसार्वभौम श्रील जगन्नाथदास बाबाजी महाराजके निर्देशसे उसको खोजकर संसारके लोगोंका महाकल्याण किया है। वर्त्तमान युगमें ठाकुर भक्तिविनोद ही महाप्रभुके प्रचारित शुद्ध वैष्णवधर्म वा प्रेमधर्मके संस्थापक हैं।

उन्होंने सांसारिक लोगोंकी लीलाका अभिनय करके भी मुक्तपुरुषकी लीलाका प्रदर्शन किया है। कृष्णका संसार (बद्धजीवका संसार नहीं) किस प्रकार किया जाता है उसका आदर्श उन्होंने अपने जीवनमें प्रतिफलित किया है। जीवनके शेषकालमें परमहंसवेष धारणकर नवद्वीपान्तर्गत श्रीगोद्रुममें अपने भजनस्थल स्वानन्दसुखदकुञ्जमें भजननिरत रहकर उन्होंने अपनी तिरोभाव लीलाका प्रकाश किया (१९१४ खृ०)। वहां उनके भजनगृह और समाधि मन्दिर अबतक पूजित होते आ रहे हैं।

उनके तिरोभावके बाद उनकी असम्पादित कार्यावलीका उनके बाद होनेवाले आचार्यवर्य ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद् भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुरने सम्पादित किया और उनके अप्रकट होनेपर श्रीश्रीविश्ववैष्णवराजसभाकी कार्यावली वर्तमान गौड़ीय वैष्णवाचार्य ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद् भक्तिप्रसाद पुरी गोस्वामी महाराजके द्वारा भलि-भांति होती आरही है।

ठाकुर भक्तिविनोदके इस संसारमें नहीं आनेसे आज भारतसे सुदूर पाश्चात्य जगतमें रहनेवाले महाप्रभुकी प्रचारित विशुद्ध प्रेम-धर्मकी कथा भली-भांति नहीं जान पाते। बुरे सम्प्रदायोंके आचरणके कारण जो वैष्णवधर्म लोगोंकी दृष्टिमें घृणित समझा जाने लगा था, ठाकुर भक्तिविनोदकी कृपासे उसीका माधुर्य और सौवाससौगन्ध आज विश्वमें चतुर्दिक प्रसारित हो गया है।

श्रील ठाकुर भक्तिविनोदका अवदान

श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु स्वराट्, लीलापुरुषोत्तम, और असमोर्द्ध तत्व हैं। ठाकुर भक्तिविनोद उनके ही मनोभीष्ट संस्थापक हैं। वेदका उद्दिष्ट (कृष्ण)

सम्बन्ध, अभिधेय (भक्ति) और प्रयोजन ही (कृष्ण-प्रेम ही) महाप्रभुका प्रचार्य विषय है। ठाकुर भक्ति-विनोदने इन विषयोंको अपने आचार और प्रचारके द्वारा और भक्तिग्रंथोंकी रचना करके जगतमें स्थापित किया है।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इस चतुर्वर्गने विश्ववासियोंको अपनी ओर आकृष्ट किया है, किंतु पञ्चमपुरुषार्थ 'कृष्णप्रेम' सम्बन्धमें सभी नीरव हैं। धर्मार्थ-कामियोंको किसी कालमें शान्ति नहीं। एकमात्र भगवद्भक्त ही निष्काम और शान्त हैं। जीवको जहां कर्तृत्वाभिमान (Egotism) होता है, वहीं उसको सत्व, रज और तमोरूप गुणत्रयका बन्धन भी होता है। इसीलिये महाप्रभुने कहा है

मायामुग्ध जीवेर नाहि कृष्णस्मृति ज्ञान।
जीवेर कृपाय प्रभु कैल वेद पुराण॥
(चै॰ च॰ म॰ २०।१२२)

इस वेद-पुराणमें स्वराट पुरुषोत्तम कृष्ण ही एकमात्र उपास्य हैं। श्रीमहाप्रभु उसी कृष्णके प्रच्छन्न-मूर्ति हैं। वेद-पुराणके जो वक्ता हैं वे ही आचार्य, जगद्गुरु और महाभागवत हैं। जगतके लोग अपने अपने इन्द्रिय तोषणमें व्यस्त हैं। किन्तु महाप्रभुके प्रचारित वैष्णवधर्म वा प्रेमधर्ममें एकमात्र कृष्णेन्द्रिय प्रीतिवांछा ही उद्दिष्ट है। वही प्रेम है और उसीमें जीवकी सर्वसिद्धि है। चेतनमात्रकी ही कृष्णेन्द्रियतोषणरूप सेवाके सिवाय अन्य कार्य नहीं है। यही महाप्रभुके शिक्षानुसार ठाकुर भक्तिविनोद-का अवदान है।

भक्तिराज्यमें प्रवेश करनेमें अनेक बाधायें (Impediments) हैं। जीवके अनर्थ भी चार प्रकारके हैं, यथा—स्वरूपभ्रम, हृद्दौर्बल्य, असत्तृष्णा और अपराध। इन सब बाधाओंको हटानेके लिये आचार्य-पादपद्म स्वीकार करना आवश्यक है। आचार्य शरणापत्तिके बिना इन सब बाधाओंसे छुटकारा पानेका कोई उपाय नहीं। भगवदिच्छासे ही ठाकुर भक्तिविनोद ऐसे आचार्य पृथ्वीमें आविर्भूत हुए थे।

मनुष्यका मनःकल्पित मतवाद वा धर्म जीवका नित्य धर्म नहीं हो सकता। जीव नित्य वस्तु है। इस चेतन आत्माका धर्म ही वैष्णवधर्म, भागवतधर्म, जैवधर्म, सनातनधर्म वा प्रेमधर्म नामसे कथित है। यह धर्म नित्य है। यह मानव कल्पित नहीं है। यह तो साक्षात भगवत्प्रणीत है। यह वैष्णवधर्म वा शुद्ध-प्रेमधर्म ही महाप्रभुकी शिक्षाका एवं ठाकुर भक्तिविनोदके प्रचारका विषय रहा है।

भक्तिके दो मार्ग हैं—विधिमार्ग और रागमार्ग। विधिमार्गमें शास्त्रशासनके द्वारा चालित होकर साधक क्रमोन्नति प्राप्त करते हैं। और, रागमार्गमें स्वाभाविक प्रीतिके वशसे जीव कृष्ण भजनमें अग्रसर होते हैं। 'राग' कहनेसे अनुराग वा स्वाभाविक प्रीतिको ही लक्ष्य किया जाता है।

धर्मार्थ-कामोमोक्षको कपटता बतलाया गया है। इन सबोंके द्वारा जीवके आत्यन्तिक मङ्गल होनेकी कोई सम्भावना नहीं। श्रीमद्भागवत-शास्त्रने इस धर्मार्थकाममोक्षरूप कपटतासे रहित प्रेमधर्मकी कथा विस्तृतरूपसे बतलाई है। श्रीमहाप्रभुके अनुसरणमें ठाकुर भक्तिविनोद उसी कैतववर्जित धर्मके ही विशिष्ट प्रचारक हैं। इस कपटहीन जीवके धर्मके प्रचारमें श्रीमहाप्रभुकी महावदान्यता प्रचारित और महाप्रभुके भक्तगणोंकी महा महावदान्यता प्रकटित हुई है। ठाकुर भक्तिविनोदके समान आचार्यके अभ्युदयसे उसी वदान्यताका अवदान हमलोग देख पाते हैं।

SREE KRISHNA CHAITANYA

BY PROF. N. K. SANYAL, M. A.

Late Senior Professor of History, Ravenshaw College, Cuttack.

A rational, scientific and comprehensive study, based on the SHRAUTA PATH, with a highly appreciative foreward by His Divine Grace Parmahansa Srimad Bhakti Sidhanta Saraswati Goswami with an Introduction containing full information for following the narrative of events, as well as with an Index and a Glossary. Royal 8 vo. 800 pages, handsome calico jacket—Price Indian Rs. 15/-; Foreign 21 s. nett.

To be had at SREE GAUDIYA MATH, Baghbazar, Calcutta.

SREE BRAHMA SAMHITA (Fifth Chapter)

With commentary by Sri Jeeva Goswami and translation and purport in English by His Divine Grace Sreemad Bhakti Sidhanta Saraswati Goswami.

First class calico binding—Rs 2-8-0.

RELATIVE WORLDS

A lecture delivered on the 28th August 1932 at the Saraswati-Assembly Hall of Sree Gaudiya Math, Calcutta by His Divine Grace. Ans. 0-6-0.

A few words on Vedanta by His Divine Grace—Ans. 0-8-0.

The Vedanta its Morphology and ontology by His Divine Grace—Ans. 0-8-0.

THE BHAGBAT

Its Philosphy, its Ethics and its Theology New enlarged edition with an appendix by Srila, Prabhupad. Full calico bound—Rupee One. Thick paper bound—Twelve Ans.

(बंगलामें)

श्रीमद्भागवतम्

महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यास—प्रणीत मूल, श्रीमन मध्वाचार्यकृता तात्पर्य निर्णयटीका, श्रीमद् विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर-कृत सारार्थदर्शिनी टीका, बंगानुवाद, संस्कृत अन्वय व प्रतिशब्द, तथ्य व विवृत्यादियुक्त। प्रति स्कन्धके आरम्भमें उस स्कन्धका प्रतिपाद्य कथासार, प्रत्येक अध्यायके प्रथममें उस अध्याय सारके साथ सुविस्तृत तात्पर्यादि विवृत हैं। श्लोकसूची, विषयसूची अध्याय-विवरण, पत्र व स्थान—सूचीके साथ उत्तम कागजपर उत्तम अक्षरमें मुद्रित। प्रथमसे १२वां स्कन्धतक छपा सम्पूर्णरूपसे शेष हो गया है। भिक्षा प्रथमसे १२वां स्कन्धतक ४०), १०म स्कन्ध सम्पूर्ण बिना बंधा हुआ ८) और कपड़ेकी बंधाई ६) मात्र।

श्रीश्रीचैतन्यचरितामृत

श्रील कविराज गोस्वामीकृत। श्रीभक्तिविनोद ठाकुर रचित 'अमृतप्रवाहभाष्य' व श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी-प्रभुपाद-लिखित 'अनुभाष्य' श्रुति स्मृत्यादि अनेक शास्त्र प्रमाणके साथ प्रकाशित हुए हैं। श्लोकोंका सान्वय व्याख्या, बंगानुवाद व प्रत्येक पयारके पूर्व संक्षिप्त अभिधेय संयोजित है। प्रत्येक अध्यायके आरम्भमें उसी अध्यायका कथासार लिखा हुआ है। श्लोक, पयार, शब्द, स्थान, पात्रका सुवृहत सूची व ग्रन्थकारकी विस्तृत जीवनी—समन्वित इस तरहका अभूतपूर्व संस्करण इसके पहले कहीं भी प्रकाशित नहीं हुआ है। उत्तम कागजपर सजावटके साथ मोटे अक्षरमें मूलांश मुद्रित हुआ है ग्रन्थ प्राय १५०० पृष्ठमें सम्पन्न है। भिक्षा बिना बंधा हुआ ६) कपड़ेकी बंधाई ७) मात्र।

श्रीचैतन्यभागवत

श्रीश्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद-रचित गौड़ीय भाष्यके साथ ग्रन्थका आयतन— क्राउन ४ पेजी मूल १०१६ पृष्ठ, सूचीपत्र २४४ पृष्ठ—कुल १२४० पृष्ठ भिक्षा—६)मात्र (बिना बंधा हुआ)।

श्रील प्रभुपादकी पत्रावली—(तृतीय खण्ड)

आचार्य-प्रकट तिथिमें श्रील प्रभुपादकी पत्रावलीका तृतीय खण्ड प्रकाशित हुआ है। प्रत्येक पत्र विशेष शिक्षाप्रद व सारगर्भ उपदेशसे परिपूर्ण है। हमलोग प्रत्येक मंगलकामी व सत्यका अनुसन्धान करनेवाले व्यक्तिको इस पत्रावलीको पाठ करनेका अनुरोध करते हैं।

श्रीचैतन्यदेव

श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके पहले व बाद भारत व बंगालकी राजनैतिक अवस्था, अर्थ-नैतिक अवस्था, शिक्षा, साहित्य व सामाजिक अवस्था, धर्मजगतकी अवस्था, समसामयिक पृथिवीकी अवस्था, नवद्वीपका परिचय व तथ्य और प्रामाणिक सत्य व विवरण समूह ... व सरल भावसे साधारणके पढ़नेके योग्य वर्णन किया गया है। ग्रन्थमें अनेक चित्र व मानचित्र दिये गये हैं, सुन्दर जिल्द भक्त, साधारण व्यक्ति व विद्यालयके छात्र सभीके लिये यह ग्रन्थ उपयोगी व प्रीति देनेवाला होगा। भिक्षा १)। प्राप्तिस्थान—श्रीगौड़ीयमठ, पो० बागबाजार, कलकत्ता। श्रीमाध्वगौड़ीयमठ, पो० वोयारी, ढाका।

सरस्वती जयश्री

गौड़ीय-वैष्णवाचार्य ॐ विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादका भुवनके मंगलदायक जीवनचरित ग्रन्थ है। निर्मत्सर शुद्धभक्ति पिपासु व्यक्ति इस ग्रन्थके पाठसे युगपत् अनेक शास्त्रग्रन्थ पाठ व अनेक साधुसङ्गका फल लाभ कर सकेंगे। वैभवपर्वका प्रथम खण्ड रायल ८ पेजी आकारमें एण्टिक कागजपर उत्तमरूपसे मुद्रित, ३६० पृष्ठोंमें। विस्तृत सूचीपत्रके साथ इसमें अनेक चित्र भी दिये गये हैं। भिक्षा ४)

'सामयिक-संख्या'—गौड़ीय

सामयिक-संख्या गौड़ीय अनेक त्रिवर्ण व एकवर्ण चित्र-शोभित व अनेक श्रेष्ठ वैष्णवसाहित्यिकगणोंकी गवेषणापूर्ण प्रबन्धसे सुमण्डित होकर प्रकाशित हुई है। श्रीधाम-मायापुरमें श्रीश्रीगौरजन्मोत्सवके उपलक्षमें सर्वसाधारणोंके लिये भिक्षा ॥ आना।

ठाकुर भक्तिविनोद

श्रीरूपानुगशुद्धभक्ति स्रोतके प्रवाहक मूल पुरुष ॐ विष्णुपाद श्रील ठाकुर भक्तिविनोदका जीवनचरित व शिक्षामाला बहुत सरल भाषामें बड़े बड़े अक्षरोंमें मुद्रित। भिक्षा ।॥) मात्र। प्राप्तिस्थान—कलकत्ता (बागबाजार) श्रीगौड़ीयमठ व ढाका—श्रीमाध्वगौड़ीय मठ।

अणुभाष्यम्

चार अध्यायी ब्रह्मसूत्रके प्रत्येक अधिकरणका तात्पर्य श्रीमन्मध्वाचार्य-कृत श्लोकाकारमें बहुत संक्षेपमें बना हुआ। बंगभाषामें सर्वप्रथम संस्करण। पहले प्रति अध्यायके प्रति पादका श्रीमन्मध्वाचार्यविरचित अणुभाष्यमूल, उसके बाद प्रति अध्यायके प्रतिपादका सूत्र-समूह, अणुभाष्य-मूलका बंगला अनुवाद व श्रीपाद राघवेन्द्रयतिविरचित तत्वमञ्जरी टीका, उसका बंगला अनुवाद व तात्पर्य इस क्रमसे पुस्तक मुद्रित हुई है। इसके अतिरिक्त मातृका क्रमसे ब्रह्मसूत्र समूह, उसका अध्यायांक, पदांक व सूत्रांकके साथ सूचीपत्रभी संयोजित हुआ है। भिक्षा २) मात्र।

Printed by: Mukunda Madhab Das Brahmachari, at the Ramesh Printing Works and published by him from Sree Gaudiya Math, Mithapur, Patna.

Regd No. P. 468

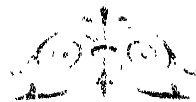
वर्ष ५]　　श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः　　संख्या ११]

भागवत

[illegible]

पारमार्थिक

मासिक पत्र

५ केशव गौराब्द ४५३		अग्रहण कृष्ण ५ संवत १९९६ वि०

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥१॥

[illegible] अधोक्षज [illegible] फलाभिसन्धान-रहिता [illegible]
स्वाभाविक निरंतर [illegible] है, वही मानव जातिका सर्वश्रेष्ठ धर्म है -
[illegible] करता है ।

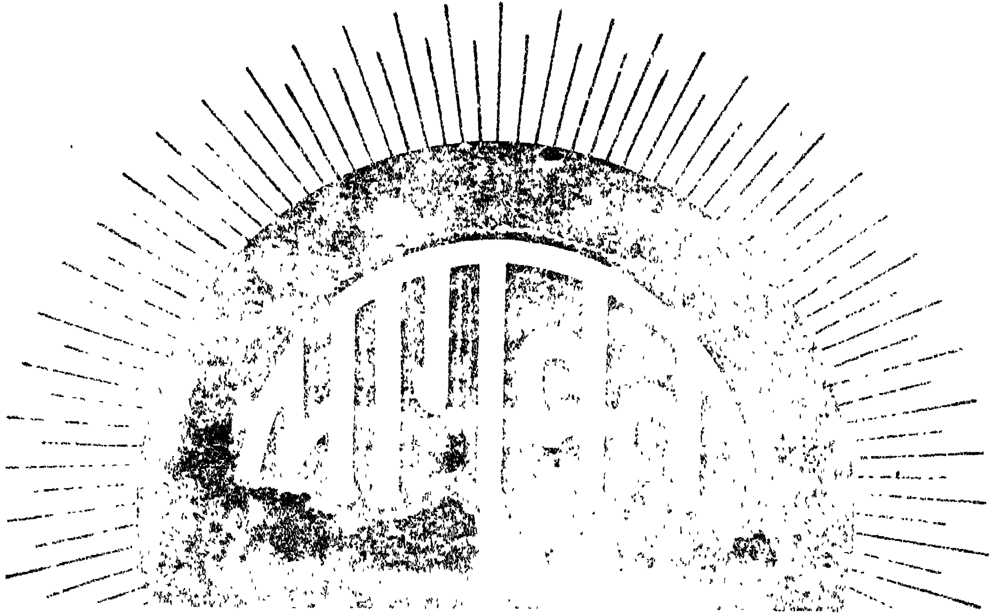
सम्पादक　उपदेशक [illegible] रूपविलास ब्रह्मचारी भक्ति शास्त्री बी० ए०

Editor :—Up[illegible] Sree Rupvilas Brahmachari,
Bhaktishastri B. A.

SREE GAUDIYA MATH Mithapur (Patna).

विषय सूची

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः



वर्ष ५ | श्रीगौड़ीयमठ, मीठापुर (पटना) | संख्या ११
अग्रहण कृष्ण ५, ४७७ गौ० १९६६ वि०, १ दिसम्बर सन १९६३ ई०

जय हरिनाम

जय जय जय हरिनाम,
चिदानन्दा-मृतधामा।
जय जय जय परतत्व,
सदा जगजन विश्रामा॥
करि जीवन पर दया,
अहो अक्षर आकारा।
निज जन पर करि कृपा,
नाम रूप ही अवतारा॥
जय जय जय हरि कृष्णनाम,
सब जन मन रञ्जन।
हे प्रभु नाम! तुम्हारे बिनु,
को है भवभञ्जन॥
होइ अकिञ्चन, दीन जब ही,
जो तुम ही पुकारे।
तीन हु ताप विनाश किए,
तुम तिन ही उधारे॥
लिङ्गभङ्ग छनमाहि होत,
तुम्हरी परतापा।
जय जय हरिनाम,
हरण संसृत संतापा॥

(कृष्ण)

श्री हरिनाम

परमेश्वरकी कृपाके बिना इस दुस्तर भव समुद्रको पार करनेका दूसरा कोई उपाय नहीं है।

जड़से श्रेष्ठ होनेपरभी जीव स्वसामर्थ्यसे ही दुर्बल और अधीन है, एक मात्र भगवान ही इस जीवके नियन्ता पाता और त्राता है।

जीव अणुचैतन्य है अतएव परमचैतन्यके अधीन और उसका सेवक है। परमचैतन्यरूप भगवान ही जीवके आश्रय हैं। जड़जगतमें जीवकी अवस्थिति केवल दण्ड पाने योग्य लोगोंके कारावास के तरह है।

भगवानसे बिमुखताके कारणही जीव मायाके बंधनमें पड़ जाता है। भगवानके सम्मुख हुए बिना जीवका मायासे उद्धार होना सम्भव नहीं है। भगवानसे वहिर्मुख जीवही मायाबद्ध हैं माया और भगवदनुगत जीवही मुक्त है।

बद्धजीवगण साधनके द्वारा भगवत कृपा प्राप्त करके मायाके सुदृढ़ बंधनको काटनेमें समर्थ होते हैं। महर्षियोंने खूब विचारकर कर्म्म ज्ञान और भक्ति ये तीन प्रकारके साधन निर्णय किए हैं। वर्णाश्रमधर्म्म, यज्ञ, तपस्या, दान, व्रत, इत्यादि नाना प्रकारके कर्म्माङ्ग शास्त्रोंमें कहे गए हैं। इन समस्त कर्मोंके भिन्न २ फल उन शास्त्रोंमें वर्णित है।

फलोंका पृथक पृथक विचार करनेसे देखाजायगा कि फलोंमें स्वर्गभोग, मर्त्यसुखभोग, सामर्थ्य, रोगशान्ति, उच्चकार्य्य करनेका अवकाश यही सब प्रधान फल है।

उच्चकार्य करनेके अवकाशरूप फलको यदि अलग कर दे तो बाकी फल सब केवल मायिक प्रतीत होंगे स्वर्गभोग, मर्त्यसुखभोग ऐश्वर्य्यादि सामर्थ्य जो कर्म्म द्वारा जीव लाभ करते हैं वे सभी नश्वर है।

भगवानके कालचक्रके द्वारा ये सभी बिनष्ट हो जाते हैं। इन सब फलों के द्वारा मायाके बन्धनका बिनाश होना तो दूर रहे और उल्टे ये समय पाकर और बासनाका साथ पाकर बंधन, को और भी दृढ़ कर देते हैं।

यदि अवकाश पाकर उच्चकार्य नहीं किया जाय तो उच्चकार्य्य करनेका अवकाश भी निरर्थक ही हो जाता है। जैसा कि भागवत में कहा है।

धर्म्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः।
नोत्पादयेद्यदि रतिं, श्रम एव हि केवलम् ॥

वर्णाश्रमरूप धर्म्मका मूल तात्पर्य यही है कि स्वभावके अनुसार सांसारिक और शारीरिक कर्म्म बिभागके द्वारा अनायास ही मनुष्यका संसार और शरीरयात्रा निर्वाह होवे। इससे हरिकथा की आलोचनाके लिए बहुत कुछ अवकाश प्राप्त होगा। यदि कोई मनुष्य उत्तम रूपसे वर्णाश्रम धर्मका अनुष्ठान करके भी हरिचर्चा द्वारा हरिकथा में प्रीति नहीं प्राप्त करे तो उसका धर्म्मानुष्ठान काम केवल परिश्रम मात्र है। कर्म्म द्वारा भवसिन्धु पार नहीं हो सकता है यह निश्चित है। यह बात संक्षेपमें कहे देता हूँ।

अब रही ज्ञान चर्चाकी बात तो यह जीवके लिए उच्चगति प्राप्त करने का साधन रूप कहा गया है। ज्ञानका फल आत्मशुद्धि है। आत्मा जड़ातीत वस्तु है इसके भूल जानेसे जीव जड़ाश्रित होकर कर्म्म मार्गमें घूमता रहता है।

ज्ञान चर्चाके द्वारा विदित हो जाता है कि मैं जड़ नहीं बल्कि चिद्वस्तु हूँ इस प्रकारका ज्ञान स्वभावतः "नैषकर्म्म" के नाम से विख्यात है क्योंकि

चिद्वस्तुका नित्यधर्म्म जो चिदास्वादन है वह इस ज्ञानके इस अवस्थासे आरम्भ नहीं होता।

इस अवस्थामें मनुष्य आत्माराम रहता है किन्तु जिस समय चिदास्वादन रूप चित्क्रिया आरम्भ होता है उस समय फिर नैष्कर्म्म बाकी नहीं रह जाता।

इसीलिये नारदजी कहते हैं :—

नैष्कर्म्यमप्यच्युत भाव वर्जितम्।
न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम्॥

नैष्कर्म रूप निरञ्जन ज्ञान जब तक अच्युतभाव विहीन रहता है तब तक उस ज्ञानकी शोभा नहीं होती।

यदि कहो कि तो होता क्या है तो सुनो भागवत में कहा है :—

आत्मारामश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्व्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूत गुणो हरिः॥

परमचैतन्य हरिमें इस प्रकार का एक असाधारण गुण है कि वे समस्त जड़मुक्त आत्माराम लोगोंको आकर्षण करके अपनी भक्ति रूप कार्य्यमें नियुक्त कर लेते हैं।

अतएव कर्म्म सदवकाश देकर और ज्ञान स्वयं नैष्कर्मस्वरूप परित्याग करके जिस समय भक्तिके साधन करनेमें नियुक्त होते हैं उसी समय ज्ञान और कर्म्मको साधनाङ्ग कहा जाता है। उनमें अपनी कोई साधनाङ्गता की क्षमता नहीं है। इसीलिये भक्तिकोही साधन कहा गया है। कर्म्म और ज्ञान भक्तिके साथ होनेसे कभी कभी साधन हो जाते हैं किन्तु भक्ति स्वभावसे ही साधन रूपा है जैसा भागवतके एकादश स्कन्धमें कहा है :—

न साधयति मां योगो न सां सांख्यं धर्म्म उद्धव।
न स्वध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता॥

हे उद्धव कर्मयोग, सांख्ययोग, वर्णाश्रमधर्म्म, वेदपाठ तपस्या वा वैराग मुझ को प्रसन्न नहीं कर-सकते हैं किन्तु तीव्रभक्ति ही केवल मुझे प्रसन्न कर सकती है।

भगवान की प्रसन्नता लाभ करनेके लिए भक्तिके सिवा और कोई दूसरा उपाय नहीं है। साधनभक्ति श्रवण कीर्तनादि लेकर नव प्रकारकी है। उनमेंसे श्रवण, कीर्तन और स्मरण ही प्रधान साधनाङ्ग हैं। भगवानके नाम, रूप, गुण और लीला इन्हीं चार विषयों का श्रवण कीर्तन और स्मरण होता है। इनमेंसे भी नाम ही आदि और सर्वबीजस्वरूप है। अतएव हरिनाम ही सभी उपासनाओं का मूल है। इसके विषयमें शास्त्रमें कहा गया है कि—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

कलिकालमें हरिनाम को छोड़ कर जीव की दूसरी गति नहीं है। कलिकाल शब्द द्वारा केवल कलिकालही नहीं समझना चाहिए। सर्वकालमें हरिनामके सिवा दूसरे उपायसे जीवकी गति नहीं है। विशेषत: कलिकालमें अन्यमंत्रादिके साधन दुरूह होनेके कारण एकमात्र केवल हरिनाम ही अवलम्बनीय है। इसका कारण यह है कि हरिनाम सबसे अधिक वीर्य्यवान है। हरिनाम क्या पदार्थ है यह पद्मपुराणमें इस प्रकार लिखा गया है :

नाम चिन्तामणि: कृष्ण चैतन्यरसविग्रह:।
पूर्ण शुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नत्वान्नाम नामिनो:॥

इस श्लोक की व्याख्या श्रील जीवगोस्वामीने यों की है:—एक मेव सच्चिदानन्द रसादिरूपं तत्वं द्विधाविर्भूतमित्यर्थ:॥

श्रीकृष्ण तत्व अद्वय सच्चिदानन्दस्वरूप है उनका आविर्भाव दो प्रकार का है अर्थात् नामीरूपसे श्रीकृष्ण

विग्रह और 'नाम' रूपमें श्रीकृष्णनाम। इसका असली अर्थ यह है कि श्रीकृष्ण सर्वशक्तिमान हैं। शक्तिमान पुरुष का समस्त प्रकाश ही उसकी शक्ति का प्रकाशनमात्र है। शक्तिही अपने आधाररूप पुरुष को दूसरेके निकट प्रकाश करती है। शक्तिके [illegible] रूप प्रकाशित होता है। एवं प्रकार के [illegible] कृष्णनाम विज्ञापित होता है।

इसी लिए कृष्णनाम [illegible] स्वरूप [illegible] स्वरूप और चैतन्यरस [illegible] [illegible] 'कृष्णाय' [illegible] [illegible] नहीं है।

[illegible] में [illegible] उदित हो जाता है। नाम सदा विशुद्ध है अर्थात जड़ीय अक्षरोंके ऐसा जड़ाश्रित नहीं है। नाम केवल चैतन्यरस मात्र है। नाम सदाही मुक्त अतएव नित्य मुक्त है कभी भी वह जड़रूप उद्भूत नहीं होता है। जिन्होंने नामरसका पान किया है वेही इस व्याख्या को समझ सकते हैं। जो नाममें जड़त्व आरोप करते हैं, जो स्वयं नामके चैतन्यरसके आस्वादनमें अक्षम हैं वे इस व्याख्याके सुननेमें आनन्द लाभ नहीं कर सकते।

यदि कहो कि सदा ही हमलोग जिस नाम का उच्चारण करते हैं वह जड़ीय अक्षरों का आश्रय किये रहता है तो ऐसा माननेसे नामको जड़जात कहना होगा इसको नित्य मुक्त नहीं कह सकते हैं।

इस बहिर्मुखतर्क को काटनेके लिए श्रीरूप गोस्वामी लिखते हैं:—

अतः श्रीकृष्णनामादिन भवेद्ग्राह्यमिन्द्रियैः।
सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यदः॥

प्राकृत वस्तुही इन्द्रिय ग्राह्य है। कृष्णनामादि अप्राकृत है वे कभी भी इन्द्रिय ग्राह्य नहीं हैं। इसलिए जो नाम जिह्वासे प्रकाशित होता है वह केवल आत्मा का अप्राकृत आनन्द है और उसीके अनुसार यह एक इन्द्रिय स्फूर्ति मात्र है। भक्त जिस समय आत्माके अप्राकृत जिह्वासे कृष्णनाम उच्चारण करता है उस समय यह उच्चारित परमानन्द प्राकृत जिह्वा पर आविर्भूत होकर नृत्य करता है।

आनन्दकुला [illegible] [illegible] कृष्णनाम [illegible]

[illegible] कहते हैं। नामाभासमें [illegible], विविक्रमके द्वारा अनेक स्थलों पर अप्राकृत नाममें रुचि पैदा होता है ऐसा देखा गया है। वाल्मीकि और अजामिलके जीवन चरित्र की आलोचना करनेसे यह बात मालूम हो जायगी।

जीव को अपराधोंके कारण नाम में रुचि नहीं होती है। अपराध शून्य होकर जो कृष्णनाम ग्रहण करते हैं उनके हृदयमें चैतन्यरस विग्रह रूप अप्राकृत हरिनाम उदय होता है। अप्राकृत नामोदयके होनेसे हृदयकी उत्फुल्लता चक्षुओंमें जलधारा और देहमें सात्विक विकार देखे जाते हैं। अतएव भागवतमें इस प्रकार लिखा है -

तदश्मसारं हृदयं बतेदं यद्गृह्यमाणैर्हरिनामधेयैः।
न विक्रियेताथ यदा विकारो नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्षः॥

जीव जिस समय हरिनाम ग्रहण करता है उस समय उसका हृदय अवश्य ही विकृत अर्थात् सात्विक विकारयुक्त होगा नेत्रसे जलधारा बहेगी एवं रोमांच

होगा। जो कृष्णनाम उच्चारण करकेभी इस प्रकारका विकार लाभ नहीं करते उनके हृदय अपराध द्वारा अत्यन्त कठिन हो गये है।

निरपराध नाम लेनाही साधकका नितान्त कर्त्तव्य है अतएव अपराध वर्जन करने के पहले अपराध के प्रकारका है जान लेना आवश्यक है।

शास्त्रोंमें हरिनामके सम्बन्धमें दस प्रकारके अपराध बतलाए गये हैं।

(१) साधु निन्दा।

(२) शिवादि देवताओंको भगवानसे भिन्न भगवत बुद्धि।

(३) गुरुअवज्ञा।

(४) सत शास्त्र निन्दा।

(५) हरिनाम की महिमा को प्रशंसा मानना

(६) हरिनाममें अर्थ कल्पना।

(७) नामके बल पर पापाचरण करना।

(८) अन्य शुभ कर्म्मोंके साथ नामकी समानता।

(९) अश्रद्धान व्यक्तियोंको हरिनाम उपदेश करना

(१०) नामका महात्म्य सुनकर उसमें अविश्वास

साधुभक्तों के प्रति अश्रद्धा प्रकाश, साधु-चरित्र और अच्छेलोगकी निन्दा करनेसे हरिनामके प्रति अपराध होता है। अतएव जो नामका आश्रय करना चाहते हैं उनके लिए वैष्णवों की अवज्ञाकी प्रवृति सर्वतोभाव से छोड़ना चाहिये।

वैष्णव के कार्य्योंके प्रति सन्देह होनेसे उनकी निन्दा नहीं करके उनके तात्पर्य का अनुसन्धान करना चाहिये। इसलिये साधुओंके प्रति श्रद्धा करनाही नितान्त आवश्यक है।

भगवान से शिवादि देवताओंको भिन्न समझना एक हरिनाम अपराध में है। भागवततत्व एक और अद्वितीय है। भगवान विष्णु से भिन्न शिवादि देवताओं की स्वतन्त्र सत्ता नहीं है।

शिवादि देवताओं को भगवान का गुणावतार अथवा भगवद्भक्त समझकर सम्मान करनेसे भेद ज्ञान नहीं रहता। जो लोग महादेव को एक पृथक देवता मानकर शिव और विष्णु की पूजा करते हैं वे महादेव की भगवत्ता नहीं करते हैं इसलिए वे विष्णु और शिव दोनोंके प्रति अपराधी होते हैं। जो हरिनाम का आश्रय करते हैं उनके लिए इस प्रकार के भेद ज्ञानको पूरे तरहसे त्याग करना कर्त्तव्य है।

गुरुकी अवज्ञा करना एक प्रकारका नाम अपराध है। जिनके द्वारा भगवत्तत्व मालूम हो जाय वेही आचार्य रूपी भगवान हैं, उनमें दृढ़भक्ति करके हरिनाम में अचला श्रद्धा करना कर्त्तव्य है।

सतशास्त्र निन्दन अवश्य छोड़ना चाहिए अर्थात् वेदशास्त्र और उनके अनुगत स्मृतिशास्त्र जिन से भागवत धर्म्म जाना जाता है उनकी निन्दा करनेसे हरिनाम अपराध होता है। वेदादि शास्त्रोंमें सदा ही हरिनाम महात्म्य कीर्तित हुआ है। जैसा कि कहा गया है :—

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा।
आदावन्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते॥

इस प्रकार सब शास्त्रोंकी निन्दा करनेसे हरिनाम में कैसे प्रेम होगा? बहुत लोग सोचते हैं कि वेदादि शास्त्रोंमें हरिनामका जो महात्म्य गाया गया है वह ज्ञानका प्रशंसामात्र है। जिनकी ऐसी बुद्धि है वे नामापराधी है। उनका नाममें फलोदय नहीं हुआ। अन्यान्य कर्मकाण्डमें जिस प्रकार रुचि उत्पन्न करनेके लिये फलों का वर्णन किया गया है वैसेही हरिनामकी फल श्रुतिको भी जो लोग समझते हैं

जो नाम [illegible] हैं वे [illegible] अर्थवादमें विश्वास नहीं करते।

एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोभयम्।
योगिनां नृप निर्णीतम् हरेर्नामानुकीर्त्तनम्॥

निर्विद्यमान, अकुतोभयके अभिलाषी योगियोंके लिए हरिनाम कीर्त्तनही एकमात्र कर्त्तव्य निर्णीत हुआ है। इस प्रकार का जिनका विश्वास है उन्हींको हरिनाममें फलोदय हुआ है।

नामाभास और नामका भेद नहीं जानकर बहुत लोग समझते हैं कि नाम अक्षरमय है अतएव श्रद्धा नहीं करके भी नामादि ग्रहण करनेसे फल होगा।

वे लोग अजामिल आदिका इतिहास "साङ्केत्यम् परिहास्यम् वा" इत्यादि शास्त्र वचनोंका उदाहरण देते हैं। पहले ही कहा जा चुका है कि नाम चैतन्य रस विग्रह है और इन्द्रिय ग्राह्य नहीं है।

ऐसे स्थान में निरपराध होकर नाम का आश्रय नहीं करने से फलोदय सम्भव नहीं है।

श्रद्धाविहीन लोगोंको नाम उच्चारण करनेका यही फल है कि कुछ दिन के बाद उनमें श्रद्धा होगी और श्रद्धाके साथ वे नाम ले सकेंगे।

अतएव दुष्ट रूप से अर्थवाद करके जो लोग नामको जड़ात्मक अक्षर स्वरूप ज्ञानसे कर्म्मकाण्डका अङ्ग समझकर उसकी व्याख्या करते हैं वे अत्यन्तही वहिर्मुख हैं और नामापराधी हैं।

वैष्णवलोग इस नामापराधको यत्नपूर्वक वर्जन करें?

बहुतेरे लोग नामका आश्रय करके सोचते हैं कि मुझे समस्त पाप व्याधियोंकी एक औषधी मिल गई और इस विश्वासके साथ वे लोग प्रवंचना मिथ्याचार, लाम्पट्य इत्यादि नव पापोंका आचरण करने लगते हैं और फिर नामका उच्चारण कर इन समस्त पापोंको [illegible] हैं। ऐसे व्यक्ति नामापराधी हैं।

जो [illegible] हैं वे [illegible] आस्वादन [illegible] प्रेम नहीं करते [illegible] नहीं है। पुनः पुनः पाप करके नाम लेना [illegible] मात्र है। यह अपराध अत्यन्त गुरुतर है और सदा परिहार्य्य है।

बहुत लोग सोचते हैं कि यज्ञादि कर्म्म दानादि धर्म्म, तीर्थ, यात्रादि चेष्टाएं जिस प्रकार शुभकर हैं वैसेही नामभी है। जिनकी ऐसी बुद्धि है वे नामापराधी हैं। नाम सदाही चिद्रस स्वरूप है। अन्यान्य सभी सतकर्म्मही जड़मय हैं अतएव वे सभी नामके विजातीय हैं। जो नामके साथ और शुभ कर्म्मों की समताकी विवेचना करते हैं उनलोगोंने प्राकृत नामरसका आस्वादन नहीं किया है। हीरा और कांचमें जिस प्रकारका भेद है वैसेही हरिनाम और दूसरे २ शुभ कर्म्मोंमेंभी वस्तुगत भेद है।

जो श्रद्धाहीन व्यक्तियोंके प्रति हरिनामका उपदेश करते हैं वे भी नामापराधी हैं। शूकरको जैसे मुक्ताफल देनेसे कुछ फल नहीं होता केवल अपमानही होता है वैसेही नामके प्रति जिनकी उपयुक्त श्रद्धा उत्पन्न नहीं हुई है उनको नाम उपदेश करना नितान्त अन्याय है।

दूसरे जीवोंको जिस कामसे हरिनाममें श्रद्धा हो वही करना कर्त्तव्य है। जब श्रद्धा हो जाय तब नाम उपदेश लेना चाहिये।

जो सब लोग अपनेको गुरु समझकर और अभिमानकर अपात्रको हरिनामका उपदेश करते हैं वे नामापराधके द्वारा गिर जाते हैं।

नामका महात्म्य सुनकरभी जो नाम में एकान्तिक

श्रद्धा नहीं करते वे भी नामापराधी हैं।

इस प्रकार दस प्रकारके नामापराधोंके छोड़े बिना हरिनाम उदित नहीं होता है। हां, वर्जन मात्र ही से नामाभास होने लगता है। नामाभास से पापक्षय होता है। पापक्षय होने से श्रद्धा होती है। श्रद्धा होनेसे यथार्थ नामरस का उदय होता है। इसीलिये शास्त्रोंमें नामाभासका महात्म्य कहा गया है।

कलिमें लोगोंके निस्तार करने वाले श्रीश्री महाप्रभु चैतन्यदेव जगतके जीवोंके नानाप्रकारके क्लेशों को देखकर दयार्द्र चित्तसे इस इस प्रकारका उपदेश किया है :—

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥

तृणसे भी अपनेको नीचा समझकर और वृक्षके समान सहिष्णु होकर स्वयं अभिमान शून्य और दूसरेको सम्मान करते हुए जीव हरिकीर्तनका अधिकारी होता है।

अपराध शून्य होकर हरिनाम ग्रहण करनेकी व्यवस्था ही इस वचनका मुख्य तातपर्य है। जो अपनेको सबसे हीन समझते हैं वे कभी भी साधु निन्दा नहीं करते हैं, शिवादि देवताको भेद-बुद्धि द्वारा अपमान नहीं करते, गुरुके प्रति किसी प्रकारकी अवज्ञा नहीं करते, सतशास्त्रकी निन्दा नहीं करते हरिनामके महातम्यको यथार्थ जान कर हरिनाममें अर्थवाद नहीं करते अर्थात् शुष्कज्ञान जनित तर्कके द्वारा हरिशब्दमें निगुर्ण ब्रह्मवाद-[illegible] आचरण नहीं करते दूसरे [illegible] के साथ हरिनामकी [illegible] नहीं करते [illegible] व्यक्ति को [illegible] की उत्पत्ति नहीं करते एवं नाम में [illegible] नहीं करते वे स्वभावतः इन दस नामापराधों को बचा कर नाम लेते हैं।

किसीके उपहास या अपकार करनेसे वे उसका उपकार करने से विमुख नहीं होते। वे जगतका समस्त कार्य करते हुए स्वयं कर्ता वा भोक्ता बनकर कभी भी अभिमान नहीं करते। वे अपने को जगत का दास जानकर सदा जगत की सेवा में व्रती रहते हैं।

इस प्रकार अधिकारी व्यक्ति के मुख से जिस समय हरिनाम उच्चारित होता है उस समय वह नाम अन्तः स्थित चिज्जगत से विद्युदाग्निके ऐसा चिन्तलोकमें व्याप्त होकर जगज्जीवके मायाविकार रूप अन्धकार को शान्त कर देता है।

अतएव हे महात्मगण! आपलोग अपराध-शून्य होकर सर्वदा हरिनाम ग्रहण करें—

हरिनाम के अलावे जीव का दूसरा कोई आधार नहीं है। इसके बिना जीव के कोई दूसरा सम्बल नहीं। इस दुस्तर भव समुद्र में आकर ज्ञान, कर्म्मादियोंका आश्रयग्रहण केवल तृण के सहारे महासागरके पार करनेकी अभिलाषाके समान नितान्त निरर्थक है। हरिनामरूप महानौकाका आश्रय करके उस दुस्तर समुद्रको पार किजिए।

श्री कृष्णार्पणमस्तु।

उपदेशामृत

श्रीश्रील आचार्यदेव की उपदेशामृत की सम्पूर्ण व्याख्या और उपदेशामृत का तात्पर्य

(स्थान सारस्वत श्रवण सदन, श्री गौडीयमठ काल १४ कार्तिक १३४५ ४ ठी नवम्बर १९३८)

श्री राधाभावद्युति सुवलित श्रीगौर सुन्दरके प्रिय स्वरूप, दयित स्वरूप, उनके द्वितीय विग्रह श्रील स्वरूप गोस्वामी प्रभुके अभिन्न स्वरूप श्री मद्रूपगोस्वामी प्रभु ही श्री गौर सुन्दर की शिक्षाओं अर्थात शिक्षाष्टक को उपदेशरूपमें जगत को दान करनेमें समर्थ हैं।

श्रीरूप गोस्वामी प्रभुके अनुगत सूत्रमें जो उनके साथ एक चित्त वा एक आशय विशिष्ट हैं वही अनुगताभिमानी समहृदय विशिष्ट सुहृद वा मित्रवर्ग भी उपदेशामृत को जगतमें वितरण कर सकते हैं। वे रूपानुगवर्य हैं।

रूपानुगवर श्रील ठाकुर भक्तिविनोदने जगतके आपामर जीवोंमें वितरण करनेके लिए उपदेशामृत को भाषान्तरित करके विस्तार किया है। और श्रील प्रभुपादने ठाकुर भक्तिविनोदके अभिन्न स्वरूपसे अगुवृत्ति भाष्य किया है।

(१)

श्रीरूप गोस्वामी प्रभुने प्रथम श्लोकमें अन्वयभावसे उपदेशामृत वितरण कारी लोगों का परिचय दिया है। गौरानुग, उपदेशक गुरु वा आचार्य्य धीर है।

वाक्यवेग, क्रोधवेग, मनोवेग, उदरवेग और उपस्थवेग को धीरपुरुष विशेषभावसे सहन करते हैं। सहिष्णुताके साथ इनसब वेगों को धारण करते हैं। ये सब बातें श्रीरूप गोस्वामी की अपनी कपोल कल्पित नहीं है। शास्त्रोंमें भी हमलोग इन बातों को पाते हैं।

महाभारतके अन्तर्गत हंसगीतामें 'वाचावेगम" इत्यादि की बातें लिखी है। श्रीरूप गोस्वामी प्रभुने हंसगीताके उपदेश को अवलम्बन करके परमहंस गीता का दान जगत को दिया हैं।

वर्णाश्रमके अन्तर्गत सन्यास आश्रममें कुटिचक, वहुदक, अवस्थाके बाद हंस अवस्था लाभ होता है। हंस असार वस्तु को त्यागकर सार वस्तु का ग्रहण कर सकता है नीर और क्षीर को एक साथ मिलाने पर भी हंस नीर को छोड़ कर क्षीर ग्रहण कर सकता है। इसी प्रकार जो सार और असार वस्तुके एकत्र रहने पर भी सार वस्तु का ग्रहण कर सकते हैं वेही सारग्राही हंस अर्थात् "सारासार विवेक चतुरः" हैं।

इसी हंस गीता की कथा को परमहंस कुल चूड़ामणि श्री मद्रूप गोस्वामी प्रभुने वर्णाश्रमी, वर्णाश्रम धर्म्म त्यागी, वर्णाश्रमातीत अर्थात वर्णाश्रमके वाहर अनत्यज जाति इत्यादि सब किसीके उपकार के लिए और भी सुन्दर और विस्तृत भावसे विश्लेषण करके कहा है।

उपदेशामृतमें हंस गीतासे भी उचे स्तर की बातें कही गई हैं। हंसोके उपास्य धेय और भजनीय की बातें उपदेशामृत कहता है। परमहंस ही हंसोके आश्रय, उपास्य और भजनीय है। उसी परमहंस धर्म्मके सोपान अर्थात परमहंसावस्था लाभ करनेके क्रम, साधन भक्ति वा उपाय तथा परमहंस अवस्था लाभ करनेके वाद क्या २ कृत्य है अर्थात परमहंस गण क्या क्या करते हैं यही सब बातें इसमें खोलकर कही गई है।

परमहंस मुकुटमौलि श्री सदरूप गोस्वामी प्रभुके अनुगतजन किस प्रकार आचारणशील है ? उनके प्रति किस प्रकार का आचार करना चाहिए ?

वे षड़वेगविजयी और दूसरोंके षड़वेग को दमन कराते हैं। आश्रितों की षड़वेगवशवर्तिता देख कर भी उनके प्रति असहिष्णु नहीं होते, उनको उपदेश देते शिक्षा देते और शासन करते हैं। इसी प्रकार आचरण करते हैं।

यहां पर "शिष्यात्में विधिलिङ्ग का प्रयोग है। इन्ही षड़वेगविजयी पुरुष को धीर" या गोस्वामी समझ कर उनके उपदेश या शासन को ग्रहण करना होगा।

"वाचोवेगम्" इत्यादि श्लोकमें नाना प्रकारके वेगों की अर्थात् कायिक, मानसिक, और वाचिक वेगों की बातें आई हैं। इन्हीं तीन प्रकारके वेगों को धीर पुरुष सहन करते हैं।

शुष्कवैराग्यके द्वारा या इन्द्रियनिरोध की चेष्टा से [illegible] नहीं। इन [illegible] 'वेग' कहा है, केवल [illegible] नहीं कहा है। इन श्लोकोंमें पराक्रम है। जैसे [illegible] आदि को जो सहन करते हैं वे इन तीन प्रकारसे छःवेगों की गति की दिशा को फेर कर उनको कृष्णसेवाके अनुकूल कर लेते हैं।

ये छः वेग तीन भागोंमें विभक्त है जिह्वावेग, उदरवेग, उपस्थवेग ये है कायिकवेग, मनकेवेग और क्रोधके वेग मानसिकवेग है और वाचोवेग ही वाचिकवेग हैं।

जिह्वाके द्वारा शब्द उच्चारण एवं आस्वादन ये दो क्रियायें होती है। जिह्वा की शब्दोच्चारण स्पृहा वाक्य-वेगके और आस्वादनस्पृहा कायिवेगके अन्तर्गत है। वाक्योच्चारण करने वाले का भगवद्विमुख विषयमें प्रजल्प ही वाक्यवेग का रूप है।

श्रीरूपानुगोंमें श्रेष्ठ श्रीदासगोस्वामी प्रभु इस प्रजल्प को "असद्वार्ता" कहते हैं। ठाकुर भक्तिविनोद इसके अनुवादमें, कहते हैं

"कृष्णवार्ता विना आन असद्वार्ता बलिजान"

कृष्ण ही 'सत' है और उनको छोड़ और सब कुछ "असत" है "वार्ता" शब्द का अर्थ "संवाद" है।

'असत" विषय का 'वार्ता' ही असद्वार्ता है यही वाक्यवेग है।

कृष्णके संवादको वहन करनेके लिए यदि वाक्यको नियुक्त किया जाय तो वाक्यका वेग जो जीवके प्रति दौरात्म्य प्रकाश करता है वह सम्पूर्ण रूपसे दूर हो जायगा और वह शान्ति प्रद अमृत दान करेगा।

ऐसा नहीं होनेसे वाक्य असद्वार्ता ग्रहण करने-वालेको मृत्युका कारण हो जायगा।

कृष्ण विस्मृति ही मृत्यु है, कृष्णस्मृति ही अमृत है। कृष्ण कहनेसे केवल कृष्ण विग्रह ही नहीं समझना चाहिए बल्कि उनसे कृष्ण और कृष्ण-सम्बन्धीय वस्तुओंको भी समझना चाहिए। कृष्ण-के विलासके सभी प्रकारके उपकरणोंको सेव्य समझ-कर उनकी महिमा प्रचुरता सहित कीर्तन करने ही से जिह्वावेग हनन होता है।

मन सदा रूप रसादिका आधार है और मायाके प्रलोभनके क्षेत्ररूप विश्वमें दौड़ लगानेमें व्यस्त है। सर्वदा इन्द्रियसुख या भोगके अनुसन्धान-में चञ्चल है। ऐसे मनसे अर्थात् ऐसे मनन या चिन्ताधारासे छुट्टी पानेके लिए दीक्षा गुरुके आश्रयानुगत्य, भूतशुद्धिके साथ मंत्रका आनुगत्य करना होगा।

मत्र असद्विषयके मननसे छुट्टी करानेमें या

कृष्ण विमुख मनको दण्ड देनेमें समर्थ है।

मन्त्रकी परिभाषा है—

"मननात् त्रायते यस्मात् तस्मान्मन्त्रः प्रकीर्तितः।"

हरिनाम महामन्त्र वा मन्त्रभजन शिक्षागुरु वा श्रवणगुरुके द्वारा प्राप्त करनेसे चित्त शुद्ध होकर वसुदेव और धाम स्वरूप होता है यही शुद्ध रूप जीवका नित्य स्वरूप है। इसी स्वरूपमें गुरुवैष्णवों-की कृपासे धामेश्वरकी सेवामें जीव नियुक्त हो सकता है।

'आस्वादन' दो प्रकारका है:—महाप्रसाद आस्वादन और नामामृत आस्वादन। श्री नामाष्टकमें श्रीरूप प्रभु कहते हैं "रसने रसने मदा" नामके साथ रसना रसमयभावसे संयुक्त है। हरिनाम उच्चारणके समय रसना नये नये भावोंसे रस युक्त होती है।

प्रश्न है कौन रसना? सेवोन्मुख रसना ही रस-मयभावसे नाम की लीला भूमि हो सकती है।

परन्तु अविद्यापित्तोपतप्त रसना नहीं।

श्रीमन महाप्रभु रसमयविग्रह हैं उनके अनुगत होकर उन की कृपा का वरण करके सेवोन्मुख होना होगा। सेवोन्मुख होनेसे ही श्रीनाम प्रभुके 'उपद्रव' अर्थात् निरंकुश प्रभुत्वके सहन करने का सौभाग्य होगा। नाम प्रभु उन्मत्त और पागल बना कर छोड़ते हैं।

प्रभु उपद्रव करके क्या करते हैं? उत्तर सुनो "करि एत उपद्रव, चिते वर्षे सुधाद्रव" वह उपद्रव उसका मधुर है अत्यन्त मधुर है। जो नाम सब घड़ी रस उदय कराता है, रसकी बाढ़ बहा ले आता है, सुधारस की झड़ी लगा देता है—वह सेवोन्मुख रसनाके साथ रसमय रूपसे ही संयुक्त है। उस समय रसमयके सेवारसके आस्वादन का विरोधीवेग वास्तविक जीता जाता है।

उच्चारणके साथ ही साथ रसनाके आस्वादन की विरोधनी अरुचि का दमन होता है। अरुचि जितना-ही दबेगी उतनाही रसनासे नाम प्रभु का आस्वादन सुष्ठुतर और मधुरतर होगा।

आस्वादन दो प्रकार का है कृष्ण कथा रूपी शब्दका आस्वादन और हरि सम्बन्धी वस्तु और उसके अनुग्रह रूपी महाप्रसाद का आस्वादन।

भगवानके प्रसाद चार प्रकारके हैं, वे सुस्वादु हैं। जिह्वाके दोनोंही कार्य्योंके विषय स्वादु हैं। श्रीलरूप प्रभुने इसी लिए बार बार रसना शब्दका व्यवहार किया है।

"अनर्पितचरीं चिरात करुणयावतीर्णः कलौ।
समर्पयितुमुन्नतोज्ज्वलरसां स्वभक्ति श्रियम"
हरिः पुरट सुन्दर द्युति कदम्ब सन्दीपितः।
सदा हृदय कन्दरे स्फुरतुवः शचीनन्दनः॥

श्रीमन्महाप्रभुकी जो इतनी बड़ी दया है उस दया के द्वारा प्रेरित होकर उन्होंने अनर्पितचरी निज भक्ति का वितरण किया है। वह दया अनर्पितचरी है अर्थात् इसके पहले कभी भी किसी के द्वारा प्रका-शित नहीं हुई थी। स्वयंरूप अपनी सेव्य शोभा को दान करनेको प्रस्तुत है। वह सेवा उन्नतोज्ज्वल-रसमयी है, वही चरम और परमरस है। उसी रसको वे आपामर सर्वसाधारणको यहां तक कि पामर पर्यन्तको—देने के लिए प्रस्तुत हैं।

केवल मात्र तीन प्रकारके व्यक्तियोंको उन्होंने वह रस नहीं दिया है। पहले तो कृष्ण अभक्तों को नहीं दिया।

"उच्छलिल प्रेमवन्या चौदिके बेड़ाय।
स्त्री, वृद्ध, बालक युवा सकलई डुबाय॥"
चै० च० आ०—१-२-२५।

"किन्तु सबे एड़ाइल काशीर मायावादी"। काशी के मायावादी बड़े कठिन होते हैं, मरुभूमिसे भी अधिक नीरस होते हैं, वहां पर विलासका विरोध अपनेको पूर्णरूप से प्रकाश किया है। अन्यान्य मायावादीगण जड़ विलासके विरोधी हैं। किन्तु काशीके मायावादी चिद् विलासके विरोधी हैं। वे गौर प्रेमामृतमें डूबना तो दूर रहे उसका स्पर्शभी नहीं कर सकते हैं। वे निर्भेद ज्ञानी हैं।

भोगीका भी महाप्रभुने इस रसको नहीं दिया है। ये भी दो प्रकार के हैं :—

जिह्वार लालसे येई इतिउति धाय॥
शिश्नोदर परायण कृष्ण नाहीं पाय।

चै० च० अ०—६-२-२१

जिह्वा लम्पट कृष्ण है। जिह्वा की लम्पटता उन्हींकी एक मात्र monopoly है जहां पर जितना ही नवनीत है जितनीही रसमयी, प्रेममयी आराधना के सार हैं वे वहीं उसको चुराकर खाते हैं वे "नवनीत तस्कर सुन्दर नन्दगोपाल" हैं। यही उनका स्वभाव है। दूधके साथ प्रेमकी उपमा दी जाती है। उस के मथनसे जो सार वस्तु निकलती है वही नवनीत है।

वे माखन चोर हैं। ब्रजवासियोंकी प्रेमसेवा मन्थन करते २ जो सार वस्तु निकलती हैं—अर्थात प्रेम, स्नेह, मान, प्रणयराग, अनुराग प्रभृति ही नवनीत हैं। उस मखनके भोग करनेवाले मालिक एक मात्र वही है।

अतएव वे इधर उधर दौड़ते रहते हैं, वे चंचल और चपल हैं। चोर को कभी आलस्य नहीं आता। चंचलता चपलता वस्तु ब्रजेन्द्रनन्दन की ही वस्तु तो है, अन्य की नहीं।

उनकी चोरीकी लीला कहां होती है ? उनके ही गठनसे गठित सच्चिदानन्द सेवकगणोंके धाममें, जहां पर वे सेवकोंके द्वारा पराजित रहते हैं। ऐसेही सेवकोंके निकट वे इधर उधर दौड़ते हैं।

उनका अनुकरण करके मायाका दासत्व करनेके लिए जो जाते हैं उनको परिणामस्वरूपमें शास्ति, दण्ड और बन्धन मिलता है। वे कृष्णको नहीं पाते।

श्री गौर सुन्दरने जो इतनी दया करके अपनी भक्तिकी शोभा दान दी वह नहीं मिली इन्हीं तीन प्रकारके जीवोंको।

जिह्वा लम्पट कृष्णको नहीं पा सकते, स्वयं कृष्णने ही इसको कहा है। जिन लोगोंने प्रतिज्ञा की है कि उदर उपस्थवेगको नहीं छोड़ेंगे उनके लिए श्री मन्महाप्रभुने अपनी भक्ति शोभा दान नहींकी है

"शिश्नोदर परायण"—यहां पर "परायण" शब्दका विशेष अर्थ किया है क्योंकि वेग तो सबका है।

लोके व्यवायामिष मद्य सेवा,
नित्यास्तु जन्तोर्नहितत्र चोदना।
व्यवस्थितिस्तेषु विवाह यज्ञ
सुरा ग्रहैरासु निवृत्तिरिष्टा॥

वेग, बद्ध दशा प्राप्त मायाके प्रभुत्वकी कामना करनेवाले जीवोंका नैसर्गिक शासन विशेष है। यह उनका second nature हो पड़ा है।

आठ प्रकारकी स्त्रीसंगलिप्सा एवं आमिष ग्रहण वा मद्यपान राजसिक और तामसिक व्यापार है। बद्धजीवके लिए रजोगुण स्वाभाविक है। उसमें मांस और मदिरा खाने पीनेकी जो प्रवृत्ति है वह तामसिक है। इन सबोंसे निवृत्ति प्राप्त करना ही उचित है। विरजा वा रजोगुणका अतिक्रमण करना ही निवृत्ति है; यह सदा 'इष्टा'—शुभ देनेवाला है।

नैसर्गिक अवस्थामें पुरुष अभिमान रहनेके

कारण किसीको चाहे वाह्य आकारमें वह स्त्री हो वा पुरुष पुरुषोत्तमके अनुकरण करनेकी इच्छा प्रबल रहती है।

"संसारे आसिया, प्रकृति भजिया
पुरुषाभिमाने मरि ॥"

जीवका जो शिवत्व वा ब्रह्मत्व लाभ करनेकी दुराशा है वह महामायाके पदके नीचे पड़कर चूर्ण हो जाती है। जीव तो स्वभावतः ब्रह्मजातीय वस्तु है ही, और स्वरूपको प्राप्त किया हुआ जीव मायाजयी ही है। किन्तु उस स्वभाव के विपर्यय होनेसे वह मायाके पैरके नीचे पड़ा हुआ है। उस समय उसको यह अभिमान भवानीके भर्ता होनेका अभिमान होता है। यह अवस्था अत्यन्त खराब है। स्त्रीसंभोग और मद्यसेवा अप्राकृत कामदेवका ही केवल अधिकार अर्थात् monopoly है। इस बातको जो अस्वीकार करते हैं जो शिश्नोदर परायण हैं अर्थात् इन चीजों ही को जो परम आश्रय समझते हैं उनलोगोंने गौरसुन्दरकी कृपा नहीं पाई है।

"मद्यमांसके उपभोगके प्रति बद्धजीवकी नैसर्गिक प्रवृत्ति रहती ही है। तब ऊपर जो बातें कही गई हैं वह शिश्नोदर परायण जिनको उसके छोड़ने की इच्छा नहीं है उनकी ही बातें हैं। बद्धजीवको इन सब भोगोंकी स्पृहा रहने पर भी उसके छोड़नेकी चेष्टा नहीं तो कम से कम लालसा रहनेकी आवश्यकता है। जिन लोगोंने इसको छोड़ दिया है वेही वैष्णव हैं। स्वयं गौरकृष्ण कहते हैं कि इस प्रकार जिह्वा शिश्नोदर लम्पट होनेसे कृष्णको नहीं पावेंगे।

जो लोग कामको चरम आश्रय बनाना नहीं चाहते वे लोग क्रमशः अच्छे होते जाते हैं। किन्तु 'शिश्नोदर परायण' अर्थात् सम्भोगको नित्य चलाता ही रहूंगा ऐसा इच्छा करने वाले उन्नति नहीं करते। इसका कारण यह है कि चौर्य्य; लाम्पट्य, चंचलता अप्राकृत कामदेव का ही केवल अधिकार अर्थात् monopoly है। अतएव ये सब गुण और किसी का हो नहीं सकता। इस अप्राकृत कामदेवका दूसरा कोई प्रतिद्वन्दी हो नहीं सकता है। जो कृष्ण का प्रतिद्वन्दी होनेकी चेष्टा करेगा वह प्रकृतिका दास होकर नरकगामी होगा। चौर्य, लाम्पट्य इत्यादि कार्य्य जगतके लिए हेय और जघन्य हैं। किन्तु जो इन सब व्यापारोंके मूलआकर वा बिम्ब हैं वह अप्राकृत परम चमत्कार और उपादेय है। वह अद्वयज्ञानके स्वरूपकी अनुशीलना होनेके कारण हेय नहीं है, इसीलिए वह अप्राकृत वस्तु निर्दोष है। निर्दोषके प्राकृत विधि निषेधके अतीत हैं। वह उनके सम्बन्धमें अच्छे और बुरे होने का कोई प्रश्न नहीं आता।

ये षड्वेग जिनके वश हो गये हैं वे ही धीर वा धैर्यशील हैं। वे ही कवि, पण्डित, सुधी, सन्त और साधु होते हैं। उनका ऐसा सामर्थ्य है कि वे समस्त पृथ्वी को शिष्य कर सकते हैं।

जो लोग लीला पुरुषोत्तम गोविन्द वा गौरकृष्णके नाम धाम और कामकी सेवामें निरत और संरत हैं वे ही श्रीरूप गोस्वामी प्रभुके अभिन्न और उनके अनुगत वृन्द हैं। उपदेशमात्रके पानेकी इच्छा होनेसे इन षड्वेगोंको कृष्णोन्मुख करके उनके सेवा विलासके वर्धनके लिए उनका नियोग करके उनको कृष्णाभिमुख करनेकी आवश्यकता है। जो ऐसा करते हैं वे ही गोस्वामी और गुरु हैं। गो, पृथ्वी, इन्द्रिय, श्रुति अथवा गो का अर्थ कृष्णेन्द्रिय सुख-वांछा है; जिसको वह है वे ही गोस्वामी हैं। यही

उपदेशामृतको परमहंस गीता है। इस गीताके प्रथम श्लोकमें भी यही बात है। सारासार और विवेकीगणों की बातें भीष्म ने कही है। परमहंसों की कथा जीवात्मा के स्वभाविक धर्मकी बातें, क्या करनेसे जीव सर्वोतम कृष्णसेवा प्राप्त कर सकता है इन्हीं सब बातोंको शिक्षा श्रीरूप गोस्वामी प्रभुने दी है।

(२)

अत्याहारः प्रयासश्च प्रजल्पो नियमाग्रहः।
जनसंगश्च लौल्यञ्च षड्भिर्भक्ति विनश्यति॥

जो लोग पारमार्थिक पथके पथिक हैं उनके लिए पहले विधि किस रास्ता पथकम है। छः दोषोंसे छुट्टि पाना होगा। श्री भक्तिविनोद ठाकुर प्रभुने इसको विस्तृत आलोचना की गई है। इसके विषयमें मैं कुछ अधिक नहीं कहना चाहता हूं।

पहले श्लोकमें गुरु, प्रकृत साधु, त्रिदण्डी और गोस्वामियोंको निर्देश किया है।

इसके बाद छः दोष ऋण जानिए है। धन अनित्य वस्तुओंका निर्देश नीचे लिखे श्लोकमें किया है-

(३)

उत्साहान्निश्चयाद्धैर्यात
तत्तत कर्म्म प्रवर्ततनात्।
सङ्ग त्यागात् सतोवृतेः
षड्भिर्भक्ति प्रसिध्यति॥

ये Positive गुण हैं केवल ऋणपरिशोधसे ही नहीं होगा धन भी इकट्ठा करना होगा। श्री भक्ति विनोदवाणी वैभव ग्रन्थमें इसकी विस्तृत व्याख्या पाई जायगी।

*छः प्रकार की प्रीति का नाम संग है केवल बाहरसे मिलने जुलने का संग नहीं कहते। आसक्ति नहीं होनेसे संग नहीं होता। गाड़ी, सवारी अतिथिशालाओंमें परस्पर साक्षात होता है उस समय यदि प्रीति आसक्ति वा रुचिपैदा होवे तभी संग हो सकता है नहीं तो नहीं। प्रीति किस तरह का होता है?

(४)

ददाति प्रतिगृह्णाति गुह्यमाख्याति पृच्छति।
भुङ्क्ते भोजयते चैव षड्विधम् प्रीति लक्षणम्॥

प्रतिगृह्णाति का अर्थ वसूल करना। देना और लेना गोपनीय बातें कहना और जिज्ञासा करना, भोजन करना और कराना येही छः प्रकार का क्रियाओंमें आसक्ति रहने से संग होता है। साधुके साथ यदि यह छः प्रकार की क्रिया हो तबतो मंगल, नहीं तो नरक प्राप्त होता है। जनसंग वा बहिर्मुख संग करनेसे मृत्यु और साधुके सङ्ग करनेसे अशोक अभय, अमृताधार और कृष्ण वा श्रीरूपके पाद पद्मोंका आश्रय लाभ होता है। क्रमपंथाको अवलम्बन करनेसे वैष्णव पदवी तक किस प्रकार पहुंच सकते

(५)

कृष्णेति यस्य गिरितं मनसा द्रियेत।
दीक्षास्ति चेत् प्रणति भिश्च भजन्तमीशम्॥
शुश्रूषया भजन विज्ञमनन्य मन्य।
निन्दादि शून्य हृदयमीप्सित संग लब्ध्या॥

साधु कितने प्रकारके हैं? साधु कौन हैं? उनके प्रति किस प्रकार का व्यवहार करना उचित है?

जिसके मुखमें "कृष्ण इति" एकबार कृष्णनाम बिराजमान होते हैं वही कनिष्ठ अधिकारी है। "दीक्षास्ति चेत" अर्थात् यदि उनकी दीक्षा हुई है दीक्षा क्या है?

दिव्यं ज्ञानं यतो दद्यात् कुर्यात् पापस्य संक्षयम्।
तस्मादीक्षेति सा प्रोक्ता देशिकैस्तत्व कोविदैः॥

गुरु प्राप्त होनेसे कृष्णनामही का आश्रय करना कर्त्तव्य है उसको वे समझ सकते हैं किन्तु उनका नाम ग्रहण निरन्तर नहीं होता।

कीर्तनकारी वैष्णवकी किस प्रकारकी अवस्था होती है वे नहीं जानते। ऐसों को कनिष्ठ-अधिकारी कहते हैं। कनिष्ठ अधिकारी का भजन नहीं होता पूजा तक हो सकती है। अर्थात् विलासोपकरणके साथ अपराध विलासी वस्तुका भजन नहीं है। उसका सम्बन्ध ज्ञान अभी ठीक नहीं हुआ है।

कनिष्ठ अधिकारीका आदर करना होगा क्योंकि वे क्रमशः अच्छे हो जायंगे। जिस समय अपराध विचारकी ओर उनकी दृष्टि पड़ेगी उस समय वे मध्यम अधिकारी होजायंगे।

तदीयगण तत्वकी धारणा उन्हें नहीं है, परन्तु वे नामाश्रित और अर्धाश्रित कनिष्ठ वैष्णव हैं। जहां पर विलासोपकरण तत्त्वविहीन केवल विष्णु तत्त्वज्ञान हैं वहां पर तदीय का विचार नहीं है। वह असम्पूर्ण है। वे साधुता वा भक्तिके तारतम्यको नहीं समझते और उनके व्यवहारमें भी गलतियां हैं।

जिसको लेकर विष्णुका विलास है उसको निकाल देनेसे केवल ब्रह्मत्व बाकी रह जाता है। जो विष्णुका विलास कराते हैं वे ही साधु हैं। इस विषयमें जिनको विचार प्राप्त नहीं है वे कनिष्ठ हैं। वे यदि तदीय विचार, नाम कीर्त्तनकारी के विचार अथवा अनुकरण को बाद देकर केवल अर्चानिष्ठ हो जायं तो वे तुरतही दाम्भिक हो जायगें, और उनका पतन हो जायगा। तटस्थ होकर वे एक जगह ठहर नहीं सकेंगे।

वे पञ्चोपासक स्मार्त हो जायंगे नहीं तो पहले संशययुक्त होकर नास्तिक हो जायगे या सगुन फिर निर्गुण ब्राह्म वा मायावादी हो जायंगे।

मंगल वा भगवत कृपा लाभ होनेसे क्रमशः तटस्थ वा निर्गुण होते हुए क्लीव, पुरुष, मिथुन, स्वकीय, पारकीय, बहुवल्लभ विचारोंमें प्रतिष्ठित हो सकते हैं। यही है भक्ति की उन्नति वा अवनतिके स्तर। यदि तदीयका विचार नहीं है तो क्रमशः दाम्भिक होकर विलास विरोधी हो पतित हो जायंगे।

विग्रहको विशेषरूपसे ग्रहण करनेका विचार जिसको नहीं है वे विग्रहके विलासके विरोधी होकर पहले संशयवादी फिर नास्तिक हो जायंगे। साधु सावधान।

फिर कहा है "भजन्नर्मांशप" सर्वांकर्ं इशं भजन्तप्" विग्रह विलासी है। वे क्या ग्रहण करते हैं? उत्तर है "रस"। जो उसके सामान ठीक कर देने वाले हैं वे तदीय हैं।

जो उसके है उनमें निरन्तरता है उनको प्रणति करनी चाहिए।

परीक्षा

यदि हरिजनमें कपटता रहे, तो बाहरसे अतिशय अनासक्ति, विरक्ति और अन्य भावदि प्रकाश करे भी तो वह प्रकृत भाव वा वैराग्य नहीं है। हरि-भजनमें यदि अकपट मतिगति रहे, तो हरि भक्तिके प्रतिकूलवस्तुके प्रति अनासक्ति, विरक्ति प्रभृति आपसे आप आ जाती हैं। जिसमें हरिभजनमें अनुराग वृद्धि हो ऐसी चेष्टा करनी चाहिये। हम-लोग जो कोई सेवा कार्य करें, उसमें हमें देखना

चाहिये हरि, गुरु और वैष्णवमें अनुराग दिनोंदिन वृद्धि हो रही है कि नहीं। यदि ऐसा ज्ञान हो कि गुरुवैष्णव, और भगवानके चरण में श्रद्धाभक्तिकी उत्तरोत्तर वृद्धि होनेके बदले उनका ह्रास हो रहा है, अपनी दीनता, और अयोग्यताके कारण गुरुवैष्णव-सेवा प्राप्त करनेके लिये पिपासा वर्द्धित न होकर अच्छी तरह सुखमें—आरामसे दिन बीतता जा रहा है, अयोग्य सेवकाभिमानके बदले कर्त्ताभिमान हृदयमें जाग रहा है। ऐसी हालतमें समझना होगा कि मेरे भविष्यमें मङ्गलका पथ कण्टकाकीर्ण होता जा रहा है। मैं जो कर रहा हूँ, उससे गुरुवैष्णव-का सुख हो रहा है कि नहीं इसकी प्रत्येक मुहूर्त्तमें परीक्षा करनी आवश्यक है। यदि गुरुवैष्णवका सुख नहीं हुआ तो कहां त्रुटी हुई है उसकी तीव्र दृष्टिसे परीक्षा करनी होगी। उसमें उदासीन होनेसे मङ्गल प्राप्त नहीं होगा। जगतके विचारमें प्रमत्त होकर मूल उद्देश्य श्रीगुरुवैष्णवकी सुखानुसन्धान-स्पृहाका विषय भूल जानेसे सुविधा नहीं होगी। रज और तमोगुणकी उत्तेजना बहुत देर तक नहीं रहती। श्रीगुरु-वैष्णव-भगवानकी अहैतुकी कृपासे हमलोगोंमें बहुतेरे सर्वोत्तम श्रेयः पथकी कथा थोड़ी बहुत जान सके हैं। अनेक अन्याय, अत्याचारों, बाधाओं, और विपत्तियोंमें भी अभीतक सद्गुरुपाद-पद्म नहीं छोड़ा वा छोड़नेकी वासना एकबार भी हृदयमें उदय नहीं हुई। यही भगवानकी अपार करुणा है। किन्तु मुझ कृपार्थीकी यहीं तो शेष कथा नहीं—करुणा प्राप्त करनेका यहीं तो अन्त नहीं है। करुणामयकी करुणा सर्वदा करुणाकाङ्क्षी लोगोंके ऊपर बरसा करती है। गुरु-वैष्णव-भगवान की ओरसे मेरे ऊपर यथेष्ट कृपा बरस रही हैं; किन्तु मैं उस कृपाको प्राप्त करनेके लिये कितना यत्न कर रहा हूं? वर्त्तमान विषम समस्यामें भी गुरुपादपद्म नहीं छोड़ा यह सत्य है, किन्तु वह हृद्-रूपसे अनर्थको—गुरुतत्व उपलब्धि करनेके लिये क्या यत्न कर रहा हूं? यदि गुरुतत्व ही उपलब्धि होती, गुरुपादपद्मको ही एकमात्र रक्षाकर्त्ता पालन-कर्त्ता समझकर हृदयमें उसकी उपलब्धि कर सकता, तब तो मुझे कोई भय नहीं रहता, विपद् देख कर शङ्कित नहीं होता। श्रीगुरुपादपद्म प्रदत्त औषधि, सुपथ्य और व्यवस्थाको अकपट होकर एकान्तभावसे ग्रहण कर सकनेसे अनर्थरोग निश्चय ही दूर होता है। किन्तु मैं वह सम्पूर्णरूपसे क्या ग्रहण कर सका हूं? उनका आदेश है—"सभी एक हरिभजनके उद्देश्यसे इस दो दिनके अनित्य संसारमें किसी प्रकारसे जीवन निर्वाह कर चलेंगे। सैकड़ों बाधा विपत्तिओंमें भी हरिभजन नहीं छोड़ेंगे। संसारके अधिकांश व्यक्ति अकैतव कृष्णसेवाकी कथा ग्रहण नहीं कर रहे हैं यह देखकर निरुत्साहित नहीं होंगे, निज-भजन, निज-सर्वस्व कृष्णकथा श्रवण कीर्तन नहीं छोड़ेंगे। तृणसे भी सुनीच और तरुके समान सहिष्णु होकर सर्वदा हरिकीर्त्तन करेंगे।" किन्तु मेरी हरिकथा-श्रवण-कीर्त्तनमें रुचि कहां है? उनका आदेश है—एकमात्र हरिकथा श्रवण कीर्त्तन करना। किन्तु मैं चौबीस घण्टोंमें के घण्टे हरिकथा-श्रवणकीर्त्तन करता हूं यह एक बार विचार करके देखना क्या उचित नहीं है? मठमें रहकर गुरुके अनुगत रहकर, यदि गुरुपादपद्मका आदेश जिस आदेशमें मेरा परममङ्गल है, वह आदेश पालन नहीं किया, तब मेरा मङ्गल किस प्रकार होगा? उनका आदेश-उपदेश पालनमें सभी प्रकारसे यत्नवान् नहीं रहनेसे हमें अनर्थके प्रबल आक्रमणसे वे क्यों बचावेंगे? हमलोग निजभजन, निज-सर्वस्व हरिकथा

श्रवणकीर्त्तन छोड़ देते हैं अत. गुरुपादपद्म के आदेश उपदेशके प्रति उदासीन होकर अपने मनगढ़े (मन-माना) हरिभजनके पथमें चलना आरम्भ करते हैं। इसलिये गुरुवैष्णव लोगोंके सङ्गसे बहुत दूर छूट जाते हैं।

विविध-संवाद

परमहंस श्रीश्रील गौर किशोर दास बाबाजी महाराज की अप्रकट तिथि पूजा :—

श्रीमायापुर में

गत २२ नवम्बर बुधवार उत्थानैकादशीतिथिको ॐ विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रील गौर किशोरदास बाबाजी महाराजका विरह महोत्सव परमाराध्यतम श्री श्रील आचार्यदेवके कृपाआशीर्वादसे श्री चैतन्य मठमें ब्राह्ममुहूर्तसे रात १० बजे तक पाठ, कीर्त्तन, वक्तृता, नगरसंकीर्त्तन और हरिकथा आलोचना सुचारुरूपसे सम्पन्न हुए।

दूसरे दिन २३ नवम्बरको श्री श्रील बाबाजी महाराजके सुसज्जित आलेख्यके सम्मुख एक विराट् सभाका अधिवेशन हुआ। गुरु-वैष्णव बन्दना महाजनपदावली और परम गुर्वष्टक कीर्त्तनके बाद श्रीपाद अघदमन ब्रह्मचारी भक्ति सर्वस्व, भक्तिशास्त्री प्रभुने श्रीगुरुतत्त्व एवं श्रील बाबाजी महाराजके अतिमर्त्य चरित्रके सम्बन्धमें एक वक्तृता दी सन्ध्यारात्रिकके बाद श्रीपाद किशोरीमोहन प्रभु वैष्णव-महिमा और श्रील बाबाजी महाराजके संबंध में प्राय: डेढ़ घण्टा तक एक वक्तृता प्रदान किया। फिर महाजन पदावली कीर्त्तन के बाद सभा भङ्ग हुई।

उसके बाद समागत बहु सज्जनवृन्दको विचित्र महाप्रसाद वितरण किया।

पटना में

गत २२ नवम्बरको पटना श्रीगौड़ीयमठमें भी वर्तमान गौड़ीय वैष्णवाचार्य ॐ विष्णुपाद परमहंस अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रसाद पुरी गोस्वामी ठाकुर के आनुगत्यमें परमगुरुदेव ॐ विष्णुपाद परमहंस अवधूत-कुलचूड़ामणि श्रीश्रील बाबाजी महाराजकी अप्रकट-तिथि पूजा हरिकथा कीर्त्तन द्वारा सम्पन्न हुई।

ब्राह्ममुहूर्त्तमें श्रीश्री गुरुगौराङ्गविनोद गोविन्द नन्दजीके मङ्गलारात्रिक और कीर्त्तनके बाद परम-गुरु 'श्रीगौरकिशोर' नामक ग्रन्थ पाठ हुआ।

सन्ध्यारात्रिक तुलसीमञ्च परिक्रमा तथा महाजन पदावली कीर्त्तनके बाद श्रीपाद मुकुन्द माधव ब्रह्म-चारीजीने श्रीश्रील गौर किशोर प्रभुका अप्रकट-लीला और उनके उपदेशामृतका पाठ और उसका व्याख्या की। पुन: महाजन पदावली कीर्त्तन हुआ। सभामें बहुतसे भद्रमहोदय और महिलावृन्द उपस्थित थे।

दूसरे दिन सन्ध्यारात्रिकके बाद श्रीमठके श्रवण सदनमें एक सभाका अधिवेशन हुआ। गुरु वैष्णव बन्दना और कीर्त्तनके बाद ब्रह्मचारीजीने श्रील गौर-किशोर दास बाबाजी महाराजकी उपदेशावली पाठ और व्याख्या की। पाठके आदि और अन्तमें महाजन पदावली और महामन्त्र कीर्त्तनके बाद सभा भंग हुई। इसके बाद उपस्थित भ्रातृमण्डलीमें महा-प्रसाद वितरण किया गया।

श्रील प्रभुपादकी पत्रावली—(तृतीय खण्ड)

आचार्य-प्रकट तिथिमें श्रील प्रभुपादकी पत्रावलीका तृतीय खण्ड प्रकाशित हुआ है । प्रत्येक पत्र विशेष शिक्षाप्रद व सारगर्भ उपदेशसे परिपूर्ण है । हमलोग प्रत्येक मंगलकामी व सत्यका अनुसन्धान करनेवाले व्यक्तिको इस पत्रावलीको पाठ करनेका अनुरोध करते हैं ।

श्रीनवद्वीपदर्पण [illegible]

[illegible] सामाजिक अवस्था, अर्थ-नैतिक अवस्था, [illegible] धर्मोकी अवस्था, नवद्वीपका परिचय व [illegible] पढ़नेके योग्य वर्णन किया गया है । [illegible] व विद्यालयके छात्र सभीके लिये [illegible] बागबाजार, कलकत्ता । श्रीमाध्वगौड़ीयमठ, [illegible], ढाका ।

सरस्वती जयश्री

गौड़ीय-वैष्णवाचार्य ॐ विष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादका भुवनके मंगलदायक जीवनचरित ग्रन्थ है । निर्मत्सर शुद्धभक्ति पिपासु [illegible] इसके पाठसे युगपत् अनेक शास्त्रग्रन्थ पाठ व अनेक साधुसङ्गका फल लाभ कर सकेंगे । वैभवपर्वका प्रथम खण्ड [illegible] ८ पेजी आकारमें एण्टिक कागजपर उत्तमरूपसे मुद्रित, २६० पृष्ठोंमें । विस्तृत सूचीपत्रके साथ इसमें अनेक चित्र भी दिये गये हैं । भिक्षा ४)

'सामयिक-संख्या'—गौड़ीय

सामयिक संख्या [illegible] अनेक [illegible] अनेक श्रेष्ठ वैष्णवसाहित्यिकगणोंका [illegible] प्रकाशित हुई है । [illegible] श्रीश्रीगौरजन्मोत्सवके उपलक्षमें [illegible] सर्वसाधारणोंके लिये भिक्षा [illegible]

ठाकुर भक्तिविनोद

[illegible] विष्णुपाद [illegible] ठाकुर भक्तिविनोदका जीवनचरित व [illegible] मुद्रित [illegible] प्राप्तिस्थान—कलकत्ता (बागबाजार) श्रीगौड़ीयमठ व ढाका—श्रीमाध्वगौड़ीयमठ

अणुभाष्यम्

[illegible] अनेक अधिकरणका [illegible] श्रीमन्मध्वाचार्य कृत श्लोकाकारसे बहुत संक्षेपमें बना हुआ । [illegible] सर्वप्रथम संस्करण । पहले प्रति [illegible] प्रति पादका श्रीमन्मध्वाचार्यविरचित अणुभाष्यमूल, उसके बाद प्रति अध्यायके प्रतिपादका सूत्र समूह, [illegible] मूलका बंगला अनुवाद व श्रीपाद राघवेन्द्रयतिविरचित तत्त्वमञ्जरी टीका, उसका बंगला अनुवाद व तात्पर्य इस क्रमसे पुस्तक मुद्रित हुई है । इसके अतिरिक्त मातृका क्रमसे ब्रह्मसूत्र समूह, उसका अध्यायांक, पादांक व सूत्रांकके साथ सूचीपत्रभी संयोजित हुआ है । भिक्षा २) मात्र ।

Printed by :- Mukunda Madhab Das Brahmachari, at the Ramesh Printing Works
and published by him from Sree Gaudiya Math, Mithapur, Patna.

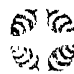
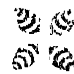
श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः

वर्ष ५ | अङ्क—१२

भागवत

एकमात्र पारमार्थिक मासिक पत्र

गौराब्द ४४४ | पौष कृष्णा ११ | सं० १९९६ वि.

सवै पुंसां परोधर्मोयतोभक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

जिससे इन्द्रिय ज्ञानातीत श्रीकृष्ण में श्रवणादि लक्षण, फलाभि-
-सन्धान रहित, एकान्तिकी और स्वाभाविक निरपेक्ष
भक्ति उदित होती है, वही मानव जाति का
सर्वश्रेष्ठ धर्म्म है इसी भक्ति के
बल से अनर्थ शमन होने
पर आत्मा प्रसन्नता
लाभ करती है

सम्पादक—
पं० श्रीपाद रूपविलास ब्रह्मचारी
भक्तिशास्त्री B. A.

वार्षिक
भिक्षा १)

उद्देश्य

शुद्ध भगवद्भक्ति का प्रचार करना

—प्रबन्ध सम्बन्धी—

[१] यह पत्र प्रति पंचमी कृष्ण को प्रकाशित होता है।
[२] इस पत्र की डाक व्यय सहित वार्षिक भिक्षा १) है।
[३] इस पत्र में किसी प्रकार का विज्ञापन वा समालोचना नहीं छापी जाती।

लेख सम्बन्धी

लेखक महानुभावों को केवल भागवत धर्म्म सम्बन्धी लेख ही इस पत्र में छापने के लिए सम्पादक के पास भेजना चाहिए। लेख के छापने या वापस करने का अधिकार केवल सम्पादक को है। डाक व्यय भेजने से लेख लौटा भी दिए जा सकते हैं।

बदले में भेजे जाने वाले पत्र सम्पादक के पते से भेजना चाहिए।

सम्पादक.—भागवत, श्री गौड़ीय मठ, रमणा, गया।

या

श्री श्री कृष्ण प्रकाश सिन्हा पो० औरंगाबाद, [गया]।

All communications are to be addressed to:—

Manager,

"BHAGWAT"

SRI GAUDIYA MATH, Ramna, Gaya.

or

A. K. P. SINHA, P. O. Aurangabad, Gaya.

श्रीश्री गुरुगौराङ्गौ जयतः

भागवत

एकमात्र पारमार्थिक मासिक पत्र

वर्ष [illegible] पौष [illegible] माघ [illegible] जनवरी [illegible] संख्या [illegible]

गान (भैरवी)

प्रभु ! हो ऐसे दिन कब अइहौ ।

गौरधाम सुरधुनी तट पै कब छाँड़ि देह सुख, जइहौ ॥
लता विटप कानन के नीचे रोइ रोइ नित पछितइहौ ।
हा गौर ! हा कृष्ण कृष्ण कहि विकल पुकार मचइहौ ॥
खाइ कबहुँ स्वपच गृह भिक्षा सरस्वती पय पइहौ ।
कृष्ण कृष्ण कहि पुलिन पुलिन तट लोटी जन्म बितइहौ ॥
व्रजवासिन की कृपा लेश कब नत होइ याचन करिहौ ।
होइ अवधूत चरण-वैष्णव-रज कब सुख सों सिर धरिहौ ॥
गौर धाम औ व्रज कानन में जबहिं भेद नहीं लइहौ ।
हे दासी राधा रानी की तबहीं अनन्त सुख पइहौ ॥

उपदेशामृत

[गताङ्क से आगे]

इसके बाद कहते हैं भजन विज्ञ, अर्थात जिसने भजन के विषय में विशेष रूप से ज्ञान लाभ किया है केवल वही सेवा में प्रतिष्ठित है। जो एकान्तिक है; केवल भक्ति परायण है, वे अन्य निन्दादिशून्य हृदयोपिता सङ्ग लभ्या है उनके हृदय में दूसरे की निन्दा स्तुति नहीं है।

अपने इन्द्रियों के भोगरूप से वे किसी पदार्थ को नहीं देखते इसी कारण से वहां पर प्रशंसा वा निन्दा नहीं है।

"पर स्वभाव कर्म्माणि, न प्रशंसेन्नगर्हयेत्
विश्वमेकरूपं पश्यन प्रकृत्या पुरुषेन च ॥"

उनको पर बुद्धि नहीं है अर्थात केवल भक्ति में प्रतिष्ठित होने के लिए भोगवद्धि नहीं चाहिए। उनका हृदय हरि सम्बन्धि वस्तु के संग में सजातीयाशयविशिष्ट है ऐसे ही हृदय भगवद्धाम है।

उनके निकट कृष्णकीर्तन श्रवण [शुश्रूषा] करना होगा अथवा शुश्रूषा अर्थात परिचर्य्या (Menial service.) करनी होगी। इस प्रकार की सेवा करने से मंगल होगा।

इसको इप्सित संग समझकर प्राप्त करना होगा। यदि भजन में उन्नति चाहते हो, उन्नतिकारीगणों का सङ्ग चाहते हो; इष्टदेवता श्रीकृष्णचन्द्र का पाद-पद्म चाहते हो तो इन्हीं तीन प्रकार के भक्तों का सङ्ग करना कर्त्तव्य है। किन्तु दर्शन किस प्रकार का होगा? यदि उनमें कुछ शारीरिक दोष हो तो इसका समाधान करते हैं।

६]

दृष्टैः स्वभावजनितैर्वपुषश्च दोषैर्न
प्राकृतत्व मिह भक्तजनस्य पश्येत।
गङ्गाम्भसां न खलु बुद्बुद फेन पङ्कै-
र्ब्रह्मद्रवत्वमपगच्छति नीर धर्म्मैः ॥

सभी श्री रूपानुग भक्त सम्प्रदाय के लोगों को प्रभु कहते हैं। और जितने सम्प्रदाय हैं वे लोग गुरु के सेवक को मान्य नहीं मानते हैं। श्रीभक्तिविनोद ठाकुर ने सिखलाया है कि जो आश्रित हैं उनमें आश्रय ज्ञान करना होगा। अमानी होकर मान देना होगा क्योंकि उन लोगों ने तो गुरु के उपदेश का आश्रय लिया है किन्तु मुझ से तो वह भी नहीं हो सका है।

गुरुवर्गों ने सिखलाया है कि उनको भी "प्रभु" कहो, तुच्छ समझकर अपमान मत करो, अनादर भी मत करो। प्राकृत सहजिया मत के माननेवाले कितने अपसम्प्रदाय वाले तर्क करते हैं कि सब किसी को "प्रभु" क्यों कहें।

श्रीमद्भक्तिविनोद के अनुगतों का ऐसा विचार नहीं है। प्रभुपाद सब किसी को प्रभु कहते थे, वे गुरुदेव होकर भी क्या कनिष्ठ अधिकारी को भी बाबाजी महाराज के समान समझते थे! यह क्या apotheosis है?

जिन सबों ने मंत्र ग्रहण किया था उनको वे "प्रभु" कहते थे, प्राकृत को अप्राकृत कहते थे, यह क्या apotheosis नहीं है?

"किंतु तोमार-वैष्णव, वैभव तोमार," वैष्णव गुरुदेव के वैभव हैं। कनिष्ठ अधिकारी जिन लोगों ने वैष्णवता की ओर यात्रा आरम्भ की है वे भी तुम्हारी ही वैभव है।

"तोमार-वैष्णव" में वैष्णव को यहाँ पर वैभव कहा है जड़ को नहीं। प्राकृतभूमि को वृन्दावनभूमि नहीं कहते।

कनिष्ठ भी स्वरूप से कृष्ण के नित्यदास हैं अतएव गुरु हैं। गुरु के सेवक भी अपने लिए मान्य हैं। आप अमानी तृणादपि सुनीच होकर इस प्रकार मानते हैं कि वे अङ्गी और गुरु अङ्ग हैं और मैं उनका सेवक हूँ। जहाँ पर गुरुदर्शन है वहाँ पर   का विचार नहीं है। बालिशों का भी वे मङ्गल चाहते हैं बालिश लोग तदीयज्ञान से अनभिज्ञ हैं उनको अद्वयज्ञान के विषय में सिखलाना जरूरी है।

नामाश्रय के प्रति जिसकी जितनी रुची की गाढ़ता है उसको दूसरों के बीच में प्रकट करने की उतनी ही चेष्टा है।

बालिशों के प्रति दया करके उनको तदीयत्व का सुन्दर ज्ञान देने की चेष्टा करना उनका प्रकृत-उपकार करना है। इस प्रकार चेष्टा करके उनके गुरुत्व को प्रकट करने की चेष्टा प्रकृत-वैष्णवों में ही देखी जाती है।

"जीवे सम्मान दिबे जानि कृष्ण अधिष्ठान" प्रत्येक जीवात्मा भगवद्धाम है। जीव उसके ही हैं अतएव गुरु हैं, वे भगवान के विलास के क्षेत्र हैं और उसके उपकरण हैं इसलिए वे गुरु भी हैं। सबों के गठन में ही यह योग्यता और धर्म छिपे हुए हैं। इसी को प्रकट करना ही श्रीगुरुदेव का कार्य्य है और यह होता है श्रीकृष्ण संकीर्त्तन के द्वारा, इसी संकीर्त्तन की पुरोहिताई ही गुरुदेव का कार्य्य है।

"यारे देखे तारे कह कृष्ण उपदेश।"
"आमार आज्ञाय गुरु हो इया तार एइ देश।"

श्रीगुरुदेव का विचार है कि ये जीव कृष्ण-योग्य   उन्हें कृष्ण के पादपद्म में पहुँचादेना मेरा काम है वे कृष्ण भोग्य हैं अतएव मेरे गुरु हैं।

इसी प्रकार भोगत्व का प्रकट करना गुरुदेव का कार्य्य है। तटस्थ दर्शन में परमात्मदर्शन एवं भेदाभेद-दर्शन में ब्रह्मदर्शन है। नित्य कृष्णदास दर्शन में भगद्भाव दर्शन है। तटस्थ जीव अपने को तटस्थ वा भेदाभेद दर्शन कर सकते हैं। किन्तु हमलोगों का प्रयोजन कृष्ण दासत्व प्राप्त करना ही है। जो कृष्ण-दास हैं वे ही हमारे गुरु हैं। यहाँ पर तटस्थ दर्शन नहीं है बल्कि अपने को आश्रय-भेदांश और शिष्य में शुद्ध जीवात्मरूप गुरु-दर्शन होता है।

प्रत्येक को गुरु रूप में दर्शन करने की चेष्टा ही सेवा है। आचार्य्य सब को गुरु-बुद्धिकारी अतएव निरभिमानी और मानद हैं।

स्वभाव के धर्म्म में जो वैष्णवत्व है उसको शिष्यसूत्र में अपने गुरुपादपद्म के साथ मिलन कराना ही शिष्य का एकमात्र धर्म्म है।

इस मिलन में स्तरभेद है यथा आदर प्रणति, और शुश्रूषा। गुरु के सहित मिलन कराकर कृष्ण के साथ मिलन करना ही सेवा है। वैष्णव का प्राकृत-दर्शन नहीं किया जाता उनमें अप्राकृत दोष भी नहीं है। कोई जिस समय गङ्गा या गण्डकी का आलोचना करते हैं उस समय पङ्क या फेन अथवा काई का विचार नहीं करते. माता के गर्भ में जिस समय बच्चा रहता है उस समय माता की नग्नावस्था की चिन्ता वह नहीं करता। इसी प्रकार के जगत के गुरु का पिता के शारीरिक दोष नहीं देखे जाते।

गङ्गा के जल में बुद्बुद फेन और पङ्क रहते हैं। बुद्बुद सामयिक धर्म्म से उत्पन्न होते हैं चिन्मय वस्तु में वह किस प्रकार उत्पन्न हो सकता है।

बुद्बुद आदि तो प्रकृति के उपद्रव के प्रकोप से होते हैं। जलब्रह्म में फेन या पङ्क कहाँ से आ सकता है। "प्रत्यक्षे के न बाध्यते" आध्यात्मिक कहेंगे कि प्रत्यक्ष में देखते हैं कि जड़धर्म्म वर्त्तमान है फिर वह ब्रह्मद्रव कैसे हो सकता है ?

जैसे विष्णु हैं उनका पादोदक भी वैसा ही है। जल के धर्म्म में बुद्बुद आदि रहता है। किन्तु इस प्रकृति के बनाये हुए धर्म्म के रहते हुए भी आदर करनेवाले सनातनधर्म्मावलम्बियों के लिए इस दोष का कुछ ध्यान नहीं रहता।

प्राकृतभक्त को कृष्ण या गौराङ्ग के साथ मिलन कराने की चेष्टा होने ही से प्रभु के कीर्त्तन में अधिकार होगा। जहाँ पर उत्तमता और वैष्णवता पूर्ण होती है वहाँ पर अमर्यादा नहीं है, जिह्वा प्रशमित होती है जहाँ पर गौरनाम की भजन विज्ञता है, ऐसे लोगों की प्रतिष्ठा करनी होगी, वे हमारे गुरु हैं। जिस समय भी भक्ति-प्रणाम करने की, शिष्य होकर आनुगत्य करने की होगी उसी समय संकीर्त्तन रास में योग देने की भी योग्यता हो जायगी।

शिष्यरूप से अमानी मानदरूप से जो चेष्टा है इसी का नाम संकीर्त्तन रास योगदान देना है।

कनिष्ठ को आदर, निरन्तर नामपरायण को प्रणति और भजन विज्ञ की शुश्रूषा करनी चाहिए।

नाम से आठ भजनाङ्ग मिले हैं। इस लिए अभिज्ञ सुदर्शनवाले शास्त्रयुक्त सुनिपुण, दृढ़श्रद्ध भक्त की परिचर्य्या करने से संकीर्त्तन रास का अधिकार होगा।

यहाँ तक विधि है। यहाँ तक सेवा की गति धीर है। इसके बाद acceleration फिर राग या रुचि भक्ति के अभियान हैं।

[५]

रुचि रसना की चाह है। श्रीरूप रसिकमौलि हैं इसलिए उन्होंने रुचि, रसना प्रभृति शब्दों के व्यवहार किये हैं।

यहाँ तक steady या slow progress है यहाँ से Velocity का आरम्भ होता है। आलोक की गति के समान सेवा की प्रगति आरम्भ हुई। क्रमशः

कृष्ण और कृष्ण भजन

जगत में तीन प्रकार के पदार्थ देखे जाते हैं, इनके नाम हैं ईश्वर, चेतन और जड़। हमलोग: जिस वस्तु में इच्छा-शक्ति नहीं है उसे जड़ कहते हैं। जैसे-मिट्टी, पत्थर, जल, अग्नि, वायु, आकाश, गृह, वन, शस्य, वस्त्र, शरीर इत्यादि ये सब इच्छाहीन वस्तु हैं।

मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग ये सब चेतन हैं। हमलोगों में इच्छाशक्ति और विचार-शक्ति है। मनुष्यों में जिस प्रकार की विचार-शक्ति है वैसी और किसी चेतन पदार्थ में नहीं है, इसी कारण से मनुष्य को सब चेतन और अचेतन पदार्थों का राजा कहते हैं।

ईश्वर समस्त चेतन और अचेतन पदार्थों का सृष्टिकर्त्ता है। उसका जड़ शरीर नहीं होने के कारण हमलोग देख नहीं सकते। वह परमस्वरूप और शुद्ध चेतन पदार्थ है। वह हमलोगों का सृष्टिकर्त्ता, पालक और नियन्ता है। उसकी इच्छा होने से हमलोगों का मङ्गल होता है। उसी की इच्छा से सर्वनाश हो जाता है।

वे भगवत-स्वरूप में निरत होकर वैकुण्ठ-धाम में राज्य करते हैं, वे सभी राजाओं के राजा हैं। इनकी इच्छा से जगत के सभी काम होते हैं।

जड़ पदार्थ का जिस प्रकार एक स्थूल आकार होता है वैसा ईश्वर का आकार नहीं है, इसी कारण से हमलोग उसको जड़-इन्द्रियों के द्वारा देख नहीं पाते। इसी कारण से वह वेदों में निराकार कहा गया है।

परन्तु सभी पदार्थों का एक स्वरूप होता है, ईश्वर का भी एक स्वरूप है। जड़-वस्तु मात्र का स्वरूप जड़मय है। चेतन पदार्थ का स्वरूप चेतनमय है। हमलोग भी चेतन पदार्थ हैं किन्तु हमलोग जड़ शरीर विशिष्ट हैं, अतएव हमलोगों का चेतन स्वरूप जड़मयस्वरूप के बीच में छिप गया है।

ईश्वर विशुद्ध चेतनमय है अतएव उसको चेतनमय स्वरूप के अलावे और कोई दूसरा स्वरूप नहीं है। यही चेतन स्वरूप उसका आकार है। और यह आकार हमलोग केवल शुद्ध चेतनमयी आँखों से देख सकते हैं, जड़ आँखें उसे देख नहीं सकती।

कितने अभागों को ईश्वर में विश्वास नहीं होता। उनकी ज्ञानमयी चक्षुएं बंद हैं। जड़ आँखों से देख नहीं पाने के कारण वे समझते हैं कि ईश्वर है ही नहीं। जन्मान्ध जिस प्रकार सूर्य्य का प्रकाश देख नहीं सकता उसी प्रकार नास्तिक लोग भी ईश्वर में विश्वास करने में असमर्थ हैं।

स्वभाव से ही मनुष्यमात्र ईश्वर में विश्वास करते हैं! केवल वही लोग जो बाल्य-काल से ही असत्संग में कुतर्क सीखते रहे हैं, कुसंस्कार के वश होकर ईश्वर के अस्तित्व को नहीं मानते। इस अविश्वास से उनकी

अपनी शक्ति के सिवा ईश्वर की क्या शक्ति हो सकती है ?

वैकुण्ठ-धाम कहने से उसे कोई एक जड़मय स्थान नहीं समझना चाहिए। मद्रास बंबई, काश्मीर, कलकत्ता, लण्डन, पेरिस प्रभृति स्थान जड़मयी हैं। वहां जाने के लिए हमलोगों को अनेक जड़मयी भूमि पार करनी पड़ती है। जहाज वा रेल-गाड़ी में भी बहुत समय लगता है, जड़ शरीर के पैरों से चलना पड़ता है। किन्तु वैकुण्ठ वैसा प्रदेश नहीं है। समस्त जड़ जगत के पार एक अवस्थान विशेष का नाम वैकुण्ठ है। वह है चिन्मय, नित्य और निर्दोष।

उस को आंखें देख नहीं सकतीं, मन चिन्ता नहीं कर सकता। उसी अचिन्त्यधाम में परमेश्वर विराजमान हैं। उसको प्रसन्न करने से हमलोग वहां जाकर नित्यकाल परमेश्वर की सेवा कर सकते हैं।

हमलोग यहाँ जिसको सुख कहते हैं वह नित्य अर्थात् सदा रहनेवाला नहीं है वह थोड़ी देर के लिए रहकर पुनः लोप हो जाने वाला है। यहां जो कुछ है सभी दुःखमय है। जन्म प्राप्ति बहुत कष्ट और दुःख का विषय है। जन्म होने पर आहारादि द्वारा शरीर पुष्ट होता है, परन्तु भोजन नहीं मिलने से उसका अभाव क्लेशजनक होता है, पीड़ा सब जगह और सदा है। शीत, उष्ण इत्यादि नाना प्रकार के कष्ट हैं। इन समस्त कष्टों की निवृत्ति करने के लिए अनेक प्रकार के शारीरिक कष्ट स्वीकार कर धन उपार्जन करना पड़ता है। घर द्वार बनाए बिना रहा नहीं जाता। विवाह करके सन्तानादि की उत्पत्ति करनी होती है। बुढ़ापा आने पर कुछ अच्छा नहीं लगता। जीवन में अन्यान्य लोगों के साथ वाद-विवाद इत्यादि अनेक प्रकार के दुःख-प्रद परिस्थितियां आती हैं।

संक्षेपतः संसार में "अमिश्रसुख" ऐसी कोई चीज नहीं है। दुःख और अभावों के क्षणिक निवृत्ति को लोग 'सुख' कहते और समझते हैं। इस संसार में रहना हमलोगों के लिये कष्टकर है।

परमेश्वर को वैकुण्ठधाम में पाने से इन अनित्य सुख दुखों का लेश भी नहीं रह जाता और अजस्र नित्यानन्द प्राप्त हो सकता है। अतएव परमेश्वर का तुष्टिसाधन करना ही हमलोगों का कर्त्तव्य है।

जिस समय मनुष्य का ज्ञानोदय होता है, उसी समय से ईश्वर की प्रसन्नता के साधन में व्रत होना श्रेयस्कर है।

"आज हमें संसार में सुख-भोग करना है फिर वृद्धावस्था में ईश्वर की तुष्टि का साधन कर लूंगा" ऐसे सोचनेवाले से कोई काम नहीं होगा। समय अति दुर्लभ है। जिस दिन से कर्तव्य-ज्ञान होजाता है उसी दिन से साधन करने का यत्न करना अति आवश्यक है।

यह मानव जीवन अत्यन्त दुर्लभ और अस्थिर है। किस दिन मृत्यु आजायगी कुछ कहा नहीं जासकता है।

बालकपन में ईश्वर का साधन नहीं हो सकता इस प्रकार सोचना अनुचित है। हमलोग इतिहासों में देखते हैं कि ध्रुव, प्रह्लाद ने अत्यन्त शैशवावस्था में ही ईश्वर की कृपा

प्राप्त की थी। जब एक मनुष्य कोई काम कर सकता है तो इस में सन्देह नहीं है कि मानव-जाति भी उस काम को कर सकती है। विशेषतः जिस काम के करने का अभ्यास शुरू ही से किया जाता है वह स्वभावरूप हो जाता है।

परमेश्वर की प्रसन्नता के लिए अवस्था भेद से मनुष्य जो यत्न करते हैं उसके चार कारण देखे जाते हैं भय, आशा, कर्त्तव्य-बुद्धि और राग।

नरकभय, अर्थाभाव: पीड़ा और मृत्युभय से जो परमेश्वर का भजन करता है वह भय द्वारा उत्तेजित होकर ईश्वर आराधन करता है। जो संसार में उन्नति लाभ के लिए और विषय-सुख के प्रार्थी होकर ईश्वर भजन करता है वह आशा द्वारा उत्तेजित होकर ईश्वर भजन करता है। किन्तु ईश्वर साधन में इतना पवित्र गुण है कि शुरू में भय और आशा से भी किया हुआ साधन अन्त में अनेक भय और आशा से छुड़ाकर शुद्ध-भजन में अनुरक्त करा लेता है।

जो सृष्टिकर्ता के प्रति कृतज्ञता के कारण उसकी उपासना करते हैं, वे कर्त्तव्य-बुद्धि द्वारा चालित होकर उस काम में प्रवृत्त होते हैं। परन्तु जो लोग भय, आशा और कर्त्तव्य-बुद्धि द्वारा चालित नहीं होकर स्वभाव से ही ईश्वर साधन में प्रेम करते हैं वे लोग राग द्वारा साधन में प्रवृत्त होते हैं।

किसी एक विषय को देखने के लिये ही जब चित्त उसके प्रति प्रवृत्ति द्वारा विचार किये दौड़ता है, तो उसी को राग कहते हैं। यही प्रवृत्ति जब परमेश्वर की चिन्ता करने मात्र से ही किसी के चित्त में उत्पन्न होती है तब वह राग द्वारा ईश्वर-भजन करता है।

भय, आशा और कर्त्तव्य-बुद्धि द्वारा जो ईश्वर भजन में प्रवृत्त होते हैं उनका भजन विशुद्ध नहीं है। राग मार्ग द्वारा जो ईश्वर भजन में प्रवृत्त होते हैं वे ही यथार्थ साधक हैं।

जीव और ईश्वर में एक निगूढ़ सम्बन्ध है। राग के उदय होने से उनके सम्बन्ध का परिचय मिलता है। वही सम्बन्ध नित्य है किन्तु जड़बद्ध जीव के लिये यह गुप्तरूप से रहता है। सुविधा पाकर ही यह प्रकाशित हो जाता है; दियासलाई घिसने से अथवा चकमक झाड़ने से जैसे अग्नि का प्रकाश होता है उसी तरह से साधन करने से यह सम्बन्ध प्रकाशित हो जाता है।

भय, आशा और कर्त्तव्य-बुद्धि से भजन करते करते बहुतेरों को यह सम्बन्ध प्रकाशित हो गया है। ध्रुव ने पहले राज्य प्राप्ति की आशा से ही हरिभजन किया था किन्तु साधन के द्वारा हृदय में पवित्र-सम्बन्ध जनित राग के उदय हो जाने से उसने सांसारिक सुख-जनक वरदान ग्रहण नहीं किया।

भय और आशा नितान्त हेय हैं। साधक की जब अच्छी बुद्धि होती है उस समय वह भय और आशा का परित्याग करता है। और कर्त्तव्य-बुद्धि ही उसका एकमात्र आश्रय

हो जाता है। परमेश्वर के प्रति राग का जबतक उदय नहीं होता है तबतक कर्त्तव्य-बुद्धि का परित्याग नहीं करना चाहिए। कर्त्तव्यबुद्धि में विधि का सम्मान और अविधि का परित्याग इन्हीं दोनों विचारों का उदय होता है।

पहले पहले महापुरुषों ने परमेश्वर के निमित्त साधन करने के लिए जिन सब पद्धतियों को विचार कर संस्थापित किया है और शास्त्रों में लिपिबद्ध किया है उन्हीं सबों का नाम विधि है। कर्त्तव्यबुद्धि के शासन होने से ही शास्त्र का शासन और विधि का आदर हो जाता है।

देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर निवासी मनुष्यों के इतिहास और वृत्तान्त की आलोचना करने से स्पष्ट प्रतीत होगा कि ईश्वर में विश्वास मनुष्य का साधारण धर्म्म है। असभ्य लोग वन के रहनेवाले पशुओं के ऐसे पशुमांस खा कर समय बिताते हैं तथापि सूर्य, चन्द्र, और बड़े २ पर्वतों, बड़ी २ नदियों एवं बड़े २ वृक्षों को दण्डवत प्रणाम करते हैं और उनको दाता नियंता कह कर पूजा करते हैं, इसका कारण क्या है?

जीव नितान्त बद्ध होकर भी जहांतक उसका चेतन आच्छादित नहीं होता है वहां तक चेतन धर्म्म के परिचय स्वरूप कुछ२ ईश्वर विश्वास अवश्य ही प्रकाशित करता है।

सभ्य अवस्था प्राप्त कर के जब वह नाना प्रकार के विद्याओं की आलोचना करता है उस समय कुतर्कों के द्वारा इस ईश्वर विश्वास को छोड़कर नास्तिकता, अभेदवाद व अन्तगत निर्वाणवाद को मन में स्थान देता है।

ये कुत्सित विश्वास केवल अप्रामवल चेतन के अस्वस्थता के लक्षण है, ऐसा ही समझना चाहिए। नितान्त असभ्य अवस्था और ईश्वर विश्वास की उपयोगी अवस्थाओं में मानव जीवन की तीन अवस्थाएं आवान्तर में देखी जाती है।

इन तीन अवस्थाओं में ही नास्तिकवाद, जड़वाद, और सन्देहवाद और निर्वाणवाद रूप पीड़ाए जीव की उन्नति के प्रतिबन्ध रूप से बहुतों को दुर्गति की ओर ले जाती हैं।

ऐसी बात नहीं है कि सभी मनुष्य इन अवस्थाओं में उपरोक्त रोगों से रोगी हो जाते हैं बल्कि बात यह है कि जो लोग इन सब रोगों से आक्रान्त है वे उन्हीं अवस्थाओं में बंधे रहकर उच्च जीवन के अधिकार से वञ्चित रह जाते हैं।

असभ्य वन के रहनेवाले सभ्यता लाभ और विद्या नैपुण्य बल से अति शीघ्र ही वर्णाश्रम रूप धर्म्म का अवलम्बन करते, ईश्वर भक्ति के साध्योपयोगी सक जीवन लाभ करलेते हैं। यही मानव जाति का नैसर्गिक उन्नति का क्रम है, प्रतिबन्धकरूप रोग के आ जाने से जीवन की अनैसर्गिक अवस्था हो जाती है।

मनुष्यों ने भिन्न२ द्वीपों में रहकर भिन्न२ प्रकृति का अवलम्बन किया है। परन्तु मनुष्यों की मुख्य प्रकृति सब जगह एक ही है। गौण प्रकृति अवश्य ही भिन्न२ है। मनुष्य की मुख्य-प्रकृति एक होने पर भी जगत में

एक प्रकार के ऐसे दो व्यक्ति नहीं पाये जाते जिनमें सभी गौण प्रकृति एक सी हो।

जब एक गर्भमें जन्म ग्रहण करके दो भाइयों की आकृति-प्रकृति एक प्रकार की नहीं होती है तो किस प्रकार भिन्न देश के जलवायु में पैदा हुए मनुष्य एक प्रकार के हो सकते हैं। भिन्न२ देश के जलवायु, पर्वत, नद्यादि, खान-पान, वेश-भूषा, आहारादि सभी भिन्न२ प्रकार के हैं। इसी कारण से उन देशों के रहनेवाले मनुष्यों की आकृति, वर्ण, व्यवहार, पहरावा, भाषा, शिल्पकला भिन्न२ होते हैं। देश विशेष का मनोभाव भी पृथक होता है। और उसके अन्तर्गत ईश्वर भाव मुख्यांश में एक प्रकार के होने पर भी गौणांश में भिन्न२ प्रकार के होते हैं।

इस प्रकार देश विदेश में जिस समय असभ्य अवस्था लाँघकर मनुष्यगण की क्रमशः सभ्य अवस्था, वैज्ञानिक अवस्था, नैतिक अवस्था, और ज्ञानावस्था प्राप्त होती है उसी समय क्रमशः भाषाभेद, परिच्छदभेद, भोज्य भेद, और मनोभावभेद से ईश्वर भजन की प्रणाली भी भिन्न२ हो जाती है।

निरपेक्ष होकर विचारने से मालूम होगा कि इस प्रकार के गौण भेद समूहों से कोई नुकसानी नहीं है। मुख्य भजन विषय में ऐक्य रहने से फल के समय कोई दोष नहीं होता। अतएव श्री मन्महाप्रभु की विशेष आज्ञा है कि विशुद्ध सत्वस्वरूप भगवान का भजन करो किन्तु सामान्य भजन-प्रणाली की निन्दा करनी नहीं चाहिए।

उपरोक्त कारणों से भिन्न२ देशों के लोगों के चलाए हुए धर्मों के नीचे लिखे हुए पांच भेद हैं—

[१] आचार्य भेद।

[२] उपासक की मनोवृत्ति और भजन अनुभव भेद।

[३] उपासना की प्रणाली भेद।

[४] उपास्य-तत्व के सम्बन्ध में भाव और क्रिया भेद।

[५] भाषा भेद के अनुसार से नाम और वाक्यादि भेद।

आचार्य भेद से किसी देश में ऋषि लोगों का, किसी किसी देश में महम्मद साहब के ऐसे प्रचारक लोगों का; किसी देश में क्राइस्ट से धर्मात्मागणों का और देश-विदेशों में वहाँ के विद्वानों का विशेष सम्मान होते देखा जाता है।

इन आचार्यों का यथायोग्य सम्मान करना उनके देशवासियों का कर्तव्य है परन्तु अपने देश के आचार्यों की शिक्षा को दूसरों से निम्न के कारण श्रेष्ठ समझने पर भी दूसरे देश में इस प्रकार के विवादजनक परीक्षा का प्रचार करना उचित नहीं है। ऐसा करने से जगत का कुछ भी मङ्गल नहीं होगा।

उपासकों की मनोवृत्ति और भजन अनुभव भेद द्वारा किसी देश में आसन पर बैठ कर न्यास प्राणायाम इत्यादि प्रक्रियाओं के द्वारा भजन किया जाता है। कहीं पर मुक्त कच्छ होकर अपने मुख्य मन्दिर की ओर मुख करके खड़े होकर गिरकर दिन-रात में

पाँचबार उपासना करते हैं। कहीं पर हाथ जोड़कर दीनता प्रकाश कर ईश्वर का यशोगान करके भजन मन्दिर में वा अपने घर में ही पूजा करते हैं। इस प्रकार भिन्न॰ प्रकार के वस्त्र भोग व्यवहारों के द्वारा शुद्धता और अशुद्धता के साथ पूजा करने की स्थानीय विधि देखी जाती है। भिन्न॰ धर्म्मों की उपासना देखने से उपासना-प्रणाली के भेद देखे जाते हैं।

भिन्न॰ धर्म्मों में उपास्य तत्व के सम्बन्ध में भाव और क्रिया भेद देखे जाते हैं। कोई॰ चित्त में भक्तिपरिप्लुत होकर आत्मा में मन और जगत में परमेश्वर की प्रति-छविरूप श्री मूर्ति का संस्थापन करते हैं। और उस में तदात्म्य बोध द्वारा पूजा करते हैं। किसी॰ धर्म्म में अधिकतर तर्क द्वारा मनही मन एक ईश्वर भाव का गठन कर उसी के द्वारा उपासना करते हैं। प्रतिमूर्ति को स्वीकार नहीं करते। किन्तु वास्तव में यदि देखा जाय तो सभी प्रतिमूर्ति हैं।

भाषा भेद के अनुसार कोई कोई किसी॰ विशेष नाम से ईश्वर को पुकारते हैं। धर्म्मों का भिन्न॰ नाम दिया हुआ है। भजन के समय में भिन्न॰ वाक्य बोले जाते हैं। इन भेदों के कारण जगत में भिन्न भिन्न धर्म समूह आपस में एक दूसरे से अत्यन्त पृथक होगए हैं यह बात नैसर्गिक है, किन्तु इन पार्थक्य के कारण परस्पर विवाद करना नितान्त अन्याय और हानिकारक है। दूसरों के भजन के समय में उनके भजन मंदिर में उपस्थित रहने पर ऐसा व्यवहार करना चाहिए और इस दृष्टिकोण से देखना चाहिए कि हमारे ही उपास्यदेव की एक भिन्न प्रकार से पूजा की जा रही है। हम अपने अभ्यासवश इस प्रस्तुत प्रणाली के द्वारा पूजा करने में असमर्थ हैं किन्तु इसके देखने से अपनी भजन प्रणाली में अधिकतर भावोदय हो रहा है

स्मरण रहे परमतत्व एकही है दो नहीं। यहाँ पर जो ईश्वर चिन्ह देख रहा हूँ वह मेरे ही ईश्वर का है और इस प्रकार प्रार्थना करना चाहिए कि हे इस प्रकार के चिन्ह धारण करने वाले मेरे आराध्यदेव! मेरा प्रेम आप बढ़ाव।

जो इस प्रकार व्यवहार नहीं करके भिन्न प्रणालियों के प्रति द्वेष, हिंसा असूया या निन्दा करते हैं वे नितान्त असार और हतबुद्धि हैं। वे अपने परम प्रयोजन की उतनी पर्वाह नहीं करते जितना दूसरे से विवाद करने की।

इस में केवल एक बात विचारणीय है। भजन प्रणालीभेद की निन्दा करना असारता है किन्तु यदि उस में कोई प्रकृतदोष देखी जाय तो उसका आदर नहीं करना चाहिए बल्कि जहाँतक हो सदुपाय से उसको दूर करने की चेष्टा करना चाहिए इस से जीव का मंगल होगा। इसी कारण से श्री महाप्रभु ने बौद्ध, जैन, और निर्विशेष वादियों के साथ विचार करके उन लोगों को सत्पथ पर लाने का उद्योग किया था। प्रभु का समस्त चरित्र प्रभु भक्तों के लिए आदर्श स्वरूप होना ही उचित है।

जिस धर्म्म में नास्तिकवाद, सन्देहवाद,

स्वभाववाद, आत्मवाद, और निर्विशेषवाद आदि अनर्थ हैं भक्तलोग उन धर्म्मों को धर्म्म नहीं कहते। बल्कि उनको विधर्म्म, छलधर्म्म धर्म्माभास या अधर्म्म समझते हैं। जहां तक हो सके इन सबों से जीव की रक्षा करनी चाहिए।

विमल प्रेम ही जीव का नित्यधर्म है। उपरोक्त पांच प्रकार के भेद देखे जाने पर भी धर्म्म का असली उद्देश्य विमल प्रेम ही है यही परम धर्म्म है। नाना भेद लेकर विवाद करना अनुचित है। धर्म्म का उद्देश्य यदि विमल है तो तो सब कुछ मङ्गलमय युक्त है। नास्तिकवाद, सन्देहवाद, बहुईश्वरवाद, जड़वाद, अनात्मवाद अर्थात कर्मवाद स्वभाववाद और निर्विशेषवाद स्वाभाविक प्रेम के विरोधी हैं।

कृष्ण प्रेम ही विमल प्रेम है। प्रेम का धर्म्म ही यही है कि वह किसी एक तत्व का आश्रय लेकर ही रहता है एवं किसी एक तत्व को विषय कहकर वरण करता है। विषय और आश्रय को छोड़ देने से प्रेम का परिचय नहीं रहता। जीव का हृदय ही प्रेम का आश्रय है और एकमात्र कृष्ण ही प्रेम के विषय हैं। पूर्ण विमल प्रेम उदित होनेही से उपास्यवस्तु का ब्रह्मत्व, ईश्वरत्व, नारायणत्व श्री कृष्ण स्वरूप में लीन हो जाते हैं।

कृष्ण नाम सुनते ही जो नाम पर विवाद आरम्भ करते हैं वे यथार्थतत्व से वञ्चित हैं नाम का विवाद निरर्थक है। नाम जिस विषय का उद्देश्य करता है वही जीव के प्राप्त करने की वस्तु है।

सर्व शास्त्र शिरोमणि श्री मद्भागवत में जो श्री कृष्णचरितामृत वर्णित है वह विद्वद्वर श्री व्यास देव का साक्षात समाधि-लब्ध-तत्व है। नारद के उपदेश से व्यास-देव ने जब भक्तिरूप सहज समाधि अवलम्बन की तब श्रीकृष्ण स्वरूप का दर्शन करके, जिस प्रकार से उस परम पुरुष कृष्ण से जीव को शोक, मोह, भयनाशिनी अर्थात उपाधि रहिता भक्ति [प्रेम] प्राप्त हो, ऐसे चरितामृत का वर्णन किया है। श्री कृष्णचरितामृत का पाठ या श्रवण करने के अधिकार भेद से जीव को दो प्रकार की प्रतीति होती है। एक का नाम है विद्वतप्रतीति और दूसरे का अविद्वतप्रतीति।

भगवान कृष्ण के प्रकट काल में जो कृष्ण चरित प्रापञ्चिक चक्षुओं के द्वारा देखा जाता है वह भी विद्वानों के लिए विद्वतप्रतीति और जड़ बुद्धि वालों के लिए अविद्वत-प्रतीति हो कर विस्तार पाता है।

विद्वतप्रतीति और अविद्वतप्रतीति समझने की इच्छा रखनेवालों का पटसन्दर्भ भागवतामृत, या कृष्ण संहिता का अ तरह पाठ और उपयुक्त व्यक्ति के निकट आलोचना कर लेनी चाहिए। संक्षेप में समझ लेना चाहिए कि विद्या-शक्ति के द्वारा जो प्रतीति उदय होती है वह विद्वतप्रतीति और अविद्या के आश्रय लेने से जो प्रतीति उदय होती है वह अविद्वतप्रतीति है।

श्री कृष्णचरितामृत में अविद्वतप्रतीति से अनेक विवाद उत्पन्न होते हैं। परन्तु विद्वतप्रतीति में कोई विवाद नहीं है।

जिनको सर्वार्थ लाभ की वासना है वे शीघ्र ही विद्वत्प्रतीति प्राप्त कर लेते हैं। अविद्वत्-प्रतीति लेकर विवाद करके अपने असली स्वार्थ की हानी क्यों की जाय ?

विद्वत्प्रतीति का थोड़ा सा दिग्दर्शन यहां पर कराये देता हूं। जो लोग जड़ चिन्ता को अतिक्रम कर के चित्तत्त्व के पाने के योग्य हैं उन्हीं के लिए विद्वत्प्रतीति सम्भव है। वे ही चित्-चक्षुओं के द्वारा कृष्ण-रूप का दर्शन करते हैं। वेही चित्-कर्ण के द्वारा कृष्ण-लीला श्रवण करते हैं और चिद्रस द्वारा वेही कृष्ण को सर्वतोभाव से आस्वादन करते हैं। सारी कृष्ण लीला ही अप्राकृत और जड़ातीत है। कृष्ण की अचिन्त्य शक्ति के द्वारा वे जड़ चक्षुओं के विषय हो सकते हैं। किन्तु स्वभावतः चक्षु प्रभृति सभी जड़इन्द्रियां उस का साक्षात दर्शन नहीं कर सकते हैं।

श्री कृष्ण के प्रकट समय में जो समस्त भगवत लीलाएं इन्द्रियों के द्वारा गोचर होती हैं वे भी विद्वत्प्रतीति के बिना वस्तुसाक्षात्-कार रूप फल के देनेवाले नहीं होते। अतएव साधारणतः अविद्वत् प्रतीति ही प्राप्त होती है। इस प्रतीति के कारण बहुतों को कृष्णतत्त्व अनित्य ही मालूम होता है। ये लोग कृष्ण के शरीर का जन्म, वृद्धि, क्षय की कल्पना करते हैं। अविद्वत् प्रतीति के द्वारा निर्विशेष अवस्था सत्य और सविशेष अवस्था प्रापञ्चिक बोध होते हैं। और कृष्ण तत्त्व का विशेषत्व भी प्रापञ्चिक सिद्धान्तित होता है।

परम-तत्त्व क्या वस्तु है इसका निर्णय करना बुद्धि का काम नहीं है। अपरिमेय पदार्थ में ससीम तर्कयुक्ति क्या कर सकती है। अतएव जीव की भक्तिवृत्ति के द्वारा ही परम-तत्त्व का आस्वादन किया जा सकता है।

जिसको विमल प्रेम कहते हैं उसी की प्राथमिक अवस्था का नाम भक्ति है। कृष्ण-कृपा के बिना विद्वत्-प्रतीति उदय नहीं होती। क्योंकि कृष्ण-कृपा से विलासशक्ति जीव को सहायता करती है।

परमतत्त्व के जितने प्रकार के भाव जगत में देखे जाते हैं। उन सबों में कृष्ण स्वरूप भाव ही विमल प्रेम के लिए एकमात्र अति उपयोगी भाव है। वर्तमान शास्त्र में जो ब्रह्म और परमात्मा कहा है उसमें विमल-प्रेम नियुक्त नहीं हो सकता है।

अति प्रिय वस्तु ऐश्वर्य भी उसके स्वरूप का साक्षात नहीं कर सके, क्योंकि उपास्यतत्त्व सर्वगत होने पर भी ऐश्वर्य के कारण उपासक से अत्यन्त दूरगतत्व रहता

ब्रह्म की तो बात ही चलानी बेकार

नारायण भी जीव के सहज प्रेम से प्राप्य वस्तु नहीं है। कृष्ण ही एकमात्र विमल-प्रेम के साक्षात विषय हैं। और स्वरूप चिन्मय व्रजधाम में नित्य ही विराजमान रहते हैं।

कृष्ण का धाम आनन्दमय है। वहां ऐश्वर्य के पूर्णरूप से रहने पर भी उसका प्रभाव नहीं रहता, वहाँ सभी माधुर्य्यमय और नित्यानन्द-स्वरूप हैं। फल-मूल, किशलय ही वहाँ की सम्पत्ति; गो-धन समूह ही प्रजा, गोपालगण ही सखा, गोपीगण

ही संगिनी, नवनीत, दधि, और दुग्ध ही खाद्य-द्रव्य और साग-कानन और उपवन कृष्ण-प्रेममय है। यमुना नदी कृष्ण सेवा में लगी हुई है। समस्त प्रकृति कृष्ण की परिचारिका है।

जो दूसरी जगह ब्रह्मरूप में सब की पूजा और सम्मान लेता है वही इस धाम का एकमात्र आराधन है, कहीं उपासक के तुल्य कभी उनकी अपेक्षा हीन रूप से देखा जाता है। ऐसा नहीं होने से क्या दुर्ज्ञेय परमतत्त्व के साथ प्रेम कर सकता है? परमतत्त्व परमलीलामय, स्वेच्छा-मय और स्वभाव से जीवों के विमल प्रेम-लिप्सु जो ईश्वर — वह क्या मनुष्यों की पूजा की लालसा करता है? क्या वह पूजा द्वारा सन्तुष्ट होकर उन्हें सब प्राप्त करता है? अपने भक्तों को माधुर्य द्वारा पोषण करके परम चमत्कार लीलारस के आधार स्वरूप होकर वह कृष्ण अप्राकृत वृन्दावन में रस के अधिकारी जीवगणों के साथ समता और हीनता स्वीकार करके आनन्द-लाभ करता है।

जो विमल और पूर्णप्रेम को एकमात्र प्रयोजन मान कर स्वीकार करते हैं वे क्या कृष्ण को छोड़कर और किसी दूसरे को इस प्रेम का विषय मानकर वरण कर सकते हैं? यदि आपातभेद से कृष्ण, वृन्दावन, गोप-गोपी, गो-धन, यमुना, कदम्ब प्रभृति शब्द कहीं पर नहीं भी देखे जाते तौभी विशुद्धप्रेम के साधकों के लिए उन लक्षणों से लक्षित नाम, धाम, उपकरण, रूप और लीला समूहों को प्रकारान्तर वा वाक्यान्तर में अवश्य ही स्वीकार करना होगा। अत-एव कृष्ण को छोड़कर और कहीं विशुद्ध प्रेम नहीं है।

जबतक विशुद्धराग का उदय नहीं होता तबतक साधक को कर्त्तव्यबुद्धि से गौण और मुख्यरूप विधि का अवलम्बन करके कृष्णा-नुशीलन करना ही होगा।

शास्त्ररूप से विचार करने पर देखा जायगा कि कृष्ण-प्रेम साधन के केवल दो ही उपाय हैं—एक विधि और दूसरा राग।

राग विमल है। राग के उदय होने पर विधि का बल नहीं रहता। जबतक राग का उदय नहीं होता तबतक विधि का आश्रय करना ही मनुष्यों का प्रधान कर्त्तव्य है। अतएव शास्त्रों में इन्हीं दो मार्गों का अर्थात् रागमार्ग और विधिमार्ग का उल्लेख है। रागमार्ग नितान्त स्वतन्त्र है इसलिए उसकी विशेष व्यवस्था नहीं है। जो अत्यन्त भाग्य-वान और उच्चाधिकारी हैं वे ही केवल इस मार्ग से चलने में समर्थ हैं।

दुर्भाग्यवश जो ईश्वर को नहीं मानते उन लोगों के लिए भी कुछ विधियों की व्यवस्था की गई है। इन विधियों को नीति कहते हैं। नीति के द्वारा परमेश्वर के बारे में विचार करने की व्यवस्था नहीं है। नीति कितना ही सुन्दर क्यों न हो, परन्तु वह मानव-जीवन की सार्थकता सम्पादन करने में समर्थ नहीं है। वह नीति नितान्त बहिर्मुख नीति है। ईश्वर विश्वास और ईश्वर के प्रति कर्त्तव्य-कर्म्म की व्यवस्था से युक्त होने पर ही नीति

मानव-जीवन की विधि कही जाकर आदृत होती है।

विधि दो प्रकार की है–मुख्य और गौण। जब ईश्वर की तृप्ति-साधन ही जीवन का एकमात्र तात्पर्य्य है तब जो विधि उक्त तात्पर्य्य को ठीक रूप से लक्ष्य करता है उसी विधि का नाम मुख्य विधि है और जो कुछ व्यवधान के साथ लक्ष्य करता है उसे गौण विधि कहते हैं।

एक उदाहरण देने से यह विषय साफ हो जायगा। प्रातः स्नान एक विधि है प्रातः स्नान करने से शरीर स्निग्ध और रोगशून्य होकर मन को स्थिर करता है मन के स्थिर होने से ईश्वरोपासना होती है। यहां पर ईश्वरोपासना जो जीवन का तात्पर्य्य है वह व्यवधानशून्य नहीं हुआ क्योंकि स्नान का व्यवधान-फल शरीर स्निग्धता हुई। शरीर की स्निग्धतारूप फल यदि इस विधि का चरम-फल समझा जाय तो ईश्वरोपासनारूप फल लाभ नहीं हुआ। ईश्वरोपासनारूप फल और स्नानविधि के बीच में अन्यान्य फल रहने से ये अन्यान्य फल व्यवधानरूप हैं। जहाँ पर व्यवधान है वहाँ व्याघात की भी सम्भावना है। मुख्य विधि का साक्षात फल ही भगवदुपासना है। विधि और उपासना के बीच आवान्तर फल नहीं है। हरिकीर्तन और हरिकथा श्रवण को मुख्यविधि कहते हैं। क्योंकि इस विधि का साक्षात फल ही भगवदुपासना है। हरिभक्ति मुख्यविधि है इसको सर्वदा स्मरण रखने पर भी शरीर-यात्रा निर्वाह के लिए कुछ गौणविधियों का अवलम्बन करना जरूरी है क्योंकि शरीर-यात्रा निर्वाह नहीं होने पर जीवन नहीं रहेगा। और जीवन नहीं रहने से हरिभजन रूप मुख्यविधि किस प्रकार अवलम्बित होगा।

गौणविधि का सहज लक्षण यही है कि वे नर-जीवन के अलंकाररूप समस्त पार्थिव-विद्या शिल्प और कारुकर्म, सभ्यता, परिपाट्य और अध्यवसाय एवं शारीरिक, मानसिक और सामाजिक नीति समूहों को अंगीभूत करके नर-जीवन को अकपटरूप से भगवच्चरणामृत का सेवन कराते हुए अंगीकार करते हैं।

मनुष्य वस्तुतः मुख्यविधि के अनुचर होकर आपनी अविश्वरी की कृपा से उस चरणामृत के द्वारा नर-जीवन को साधनमय और फल-काल में परमानन्दमय कर देता है।

वन्य-जीवन, सभ्यजीवन, जड़विज्ञान सम्पन्न जीवन, निरीश्वर नैतिक-जीवन, सेश्वर नैतिक-जीवन वैधभक्त-जीवन, प्रेमभक्त-जीवन इस प्रकार नाना प्रकार के नर-जीवन देखे जाते हैं। इस पर भी सेश्वर नैतिक जीवन से ही प्राकृत-नरजीवन का आरम्भ स्वीकार किया जाता है। आस्तिक नहीं होने से नरजीवन पशु-जीवन से अच्छा नहीं हो सकता। प्राकृत-जीवन सेश्वर-जीवन की विधि और निषेध को लेकर काम करता है। सभ्यता, जड़विज्ञान-सम्पत्ति और नीति-सेश्वर नैतिकजीवन किस प्रकार भक्त-जीवन में परिणत होकर चरितार्थ लाभ करता है।

जीव का धर्म्म ही जैवधर्म है। मानव अवस्था में जैवधर्म को मानवधर्म कहते हैं। वह धर्म दो प्रकार का है:—

गौण और मुख्य वा साम्बन्धिक और स्वगत। गौण का साम्बन्धिक धर्म जड़ है क्योंकि यह जड़ का गुण और सम्बन्ध का आश्रय करके विद्यमान है मुख्य वा स्वरूपगत धर्म शुद्ध जीव का आश्रय करता है। मुख्यधर्म ही जैवधर्म है। गौणधर्म केवल जड़ गुण के वश होने के कारण मुख्यधर्म की गुणी भूत अवस्था मात्र है। जड़ गुण के दूर होने से जैवधर्म केवली भूत होकर मुख्य धर्म हो जाता है। गौणधर्म को उपाधियुक्त धर्म भी कहते है। और उपाधि दूर होने से यही मुख्य धर्म हो जाता है। गौण विधि और गौण निषेध अर्थात पुण्य और पाप गौण धर्म के अन्तगत हैं। गौण धर्म जीव को परित्याग नहीं करता केवल जीव की गुणयुक्त अवस्था में मुख्य धर्म के रूप में बदल जाता है।

जड़बद्धावस्था में मुख्यधर्म के बदले हुए नकली रूप से गौण धर्म का जन्म होता है।

गौणधर्म का यथाभूत परिणति से मुख्यधर्म पुनः उदित हो जाता है।

इस लेख मे पहले 'ईश्वर' फिर भगवान शब्द अन्त में 'कृष्ण' शब्द व्यवहृत हुआ है। पाठकवर्ग ऐसा नहीं समझे कि 'ईश्वर' 'भगवान' और 'कृष्ण' पृथक २ तत्व है। कृष्ण ही एकमात्र स्वरूपतत्व और जीव के विमल उपासना के विषय है। कृष्ण ही भागवततत्व का पूर्ण माधुर्य्य प्रकाश है। जिस समय अन्यान्यतत्व वा पदार्थ के साथ साम्बन्धिक रूप से कृष्ण का विचार किया जाता है उस समय उनको ईश्वर भाव से देखा जाता है एवं ईश्वर नाम का व्यवहार किया जाता है। इस लिये इस लेख के प्रथम मे पदार्थमय कृष्ण नाम से परिवर्तित होकर 'ईश्वर' नाम से व्यवहृत हुआ है। ईश्वर भाव केवल स्वरूपतत्व कृष्ण की बनाई हुई पदार्थों के ऊपर स्वभाविक ईशिता के परिचय के अलावे और कुछ नहीं है। पदार्थ संख्या के जगह पर 'ईश्वर' नाम ही सर्वत्र व्यवहार हुआ है—जैसे चित अचित और ईश्वर।

विविध प्रसंग

गया श्री गौड़ीय मठ

गत ३० दिसम्बर शनिवार को ॐविष्णुपाद परमहंस श्रीश्रीलभक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद का विरहमहोत्सव परमाराध्यतम श्री श्रील आचार्यदेव के कृपाशीर्वाद से श्रीगौड़ीय मठ गया में पाठ, कीर्तन, वक्तता हरिकथा, आलोचना के साथ सुचारुरूप से सम्पन्न हुआ और उसके बाद समागत बहु-सज्जन वृन्द को विचित्र महाप्रसाद वितरण किया गया।

श्रीधाम मायापुर में

त्रिपुरा की महामान्या राजमाता

स्वाधीन त्रिपुरा के महाराजा की राजमाता श्री युक्ता अरुन्धती देवी महोदया ने राजपरिवार के गृह चिकित्सक और कई एक सम्भ्रान्त देवियों के साथ गत १५ दिसम्बर [illegible], शुक्रवार को मोटर के द्वारा श्रीधाम मायापुर में शुभागमन किया। उनलोगों ने श्रीचैतन्य मठ, श्रीयोगपीठ श्रीमन्दिर और चाँदकाजी की समाधि प्रभृति के दर्शन के बाद श्रीदण्डि-स्वामी श्रीमद्भक्तिसम्बल भागवत महाराज आश्रमवासी ब्रह्मचारी भक्तिशास्त्री भक्तिठाकुरविनोद इन्स्टिट्यूट के प्रधान शिक्षक श्रीपाद किशोर-मोहन भक्ति बान्धव बी० एल० श्रीपाद नन्द-गोपाल ब्रह्मचारी भक्तिशास्त्री इत्यादि प्रमुख वैष्णववृन्द के श्रीमुख से श्रीधाम महिमा के सम्बन्ध में हरिकथा श्रवण किया। इस के बाद महाप्रसाद की सेवा कर करीब [illegible] बजे कलकत्ते की ओर यात्रा की।

। श्री हरि नाम प्रचार ॥

युक्त प्रदेश

हर्ष का विषय है कि युक्त प्रदेश के सितापुर जिलान्तर्गत मुकाम मिश्रिख में ता: [illegible] को एक सभा आयोजन किया गया जिसमें जनता की उपस्थिति लगभग ४०० से अधिक थी। इस सभा में कलकत्ता श्रीगौड़ीय मठ के सेवक श्रीसत्यनारायण धर्माधिकारी जी कई ब्रह्मचारियों के साथ पधार कर दो घंटे तक हरिकीर्तन की व्याख्या किया कि श्रोतागण आप के कीर्तन को सुनकर बहुत आनन्दित हो गये।

सभा के आरम्भ और अन्त में महाजन पदावली और महामंत्र का कीर्तन आपने अपूर्व और सुललित स्वर में किये। जिसे श्रवण कर उपस्थित भक्तवृन्द आनन्द विभोर होगये।

इसके दूसरे दिन भी जनता की आग्रह से आपने एक और वक्तृता देने की स्वीकृति दी। तदनुकूल नवादा ग्राम के रहने वाले पंडित श्री लोकनाथ मिश्र जी का निमंत्रण तथा जनता के अनुरोध पर मिश्र जी के घर पर जाकर पाठ कीर्तनादि किये।

ता: [illegible] को उक्त पंडित जी की आंगन में भी एक सभा हुई। उसमें छायाचित्र द्वारा श्री भगवान की लीला-दिखाई गई। तदुपरान्त ब्रह्मचारी जी का सुललित और सार गर्भित व्याख्यान हुआ, जिसे सुन जनता मुग्ध हो गई और इनके शब्दों में हरिकीर्तन पुनः श्रवण करने की अपनी इच्छा प्रकट की।

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना ।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ॥

श्री चैतन्य शिक्षाष्टक

Printed by A. K. Narayan,
at the LAKSHMI PRESS, GAYA
and
Published by Sree Satya Govind Brahmcharya,
GOUDIYA MATH, GAYA.